समर्पण

द्वितीय संस्करण

पू० महाराज जी श्री हितकृपा मूर्ति

परम भागवत

स्वामी श्री हितदास जी

को

समर्पित

श्री हित कमल दास

अध्यक्ष

श्री हित आश्रम सत्संग भूमि, गांधीमार्ग, वृन्दावन

पूज्य श्री महाराजजी का जीवन परिचय

श्रीहित राधावल्लभ सम्प्रदाय प्रवर्तक अनन्तश्रीविभूषित रसिकाचार्य शिरोमणि गो. श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु की नाद परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र, वृन्दावन रजोपसेवी, इष्ट–गो–सन्तसेवी, साम्प्रदायिक सौहार्द की प्रतिमूर्ति रसिक अनन्य श्रीहित कृपा मूर्ति परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज का मंगलमय प्रादुर्भाव मध्य प्रान्तर्गत जिला–मण्डला मेकलसुता नर्मदा तटस्थ परमपावन नारा ग्राम में भारद्वाज गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में विक्रम सं. 1972 कार्तिक कृष्णा द्वितीया (सन् 1915) में हुआ। बाल्यकाल से ही आप दिव्य गुणगणों से सम्पन्न विलक्षण संस्कारी बालक रहे। आपने अत्यल्प काल में ही हिन्दी वाङ्मय पर पूर्ण अधिकार कर अपनी अद्भुत प्रतिभा से सबको चमत्कृत कर दिया। आपकी संस्कृत शिक्षा त्रिपुरी के समीप धवलशैल शिखरों के मध्य नर्मदा के प्रमुख जल–प्रपात भेड़ा–घाट पर सम्पन्न हुई। सन् 1936 से 42 तक पिण्डरई में आपने अध्यापन कार्य किया परन्तु पूर्वजन्म के संस्कार आपको बारम्बार श्रीधाम वृन्दावन की ओर आकृष्ट करते रहे। इसी बीच राहरा एक दिन श्रीहित महाप्रभु ने आपको स्वप्न में निज मंत्र प्रदान कर श्रीप्रिया–प्रियतम के दर्शन कराये एवं आपके मस्तक पर अपना श्रीचरण कमल पधराया। इस आकस्मिक अनुकम्पा से अभिभूत हो आप सन् 1942 में अध्यापन कार्य से त्यागपत्र देकर सर्वदा के लिये अपने निज गृह, निज परिकर में आ मिले। श्रीधाम आगमन के पश्चात् लौकिक गुरु–शिष्य परम्परा के निर्वाह हेतु आपने श्रीहित महाप्रभु वंशावतंश गो. श्रीहित वृन्दावन वल्लभ जी महाराज से शरणागत एवं कुछ ही समय पश्चात् स्वनाम–धन्य गो. श्री जुगलवल्लभजी महाराज से निजमन्त्र प्राप्त किया। विरक्त भेष आपने संत शिरोमणि बाबा श्रीपरमानन्ददासजी महाराज से ग्रहण किया। सन् 1945-48 पर्यन्त आप श्रीहित अचल विहार की बारह द्वारी में मधुकरीवृत्ति द्वारा जीवन यापन करते हुए निवास किया। सन् 1948 से 52 तक आप श्रीहित महाप्रभु की प्राकट्य स्थली श्री बाद धाम में सेवारत रहे एवं मंदिर का जीर्णोद्धार किया। पश्चात् सन् 1955 में गान्धी–मार्ग स्थित श्री हिताश्रम सत्संग भूमि की संस्थापना कर सम्प्रदाय को श्रीहितोपासना का एक सुदृढ़ केन्द्र प्राप्त कराया। आपने रसोपासना से सम्बन्धित अनेक संस्कृत एवं ब्रजभाषा के ग्रन्थों की रसपेशल एवं भावपूर्ण टीकाओं का प्रणयन–प्रकाशन कर रसिकों एवं जिज्ञासुओं का अकथनीय उपकार किया। आपकी स्वरचित कृतियाँ "भाव–मंजरी" एवं "हृदयोद्गार" साहित्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। आप अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति, मधुर–मोहिनी प्रवचन शैली एवं वाग्विदग्धता से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। श्रीमद् राधा सुधानिधि, श्रीराधा उप सुधानिधि, श्रीबयालीस लीला एवं श्रीभक्तमालजी के तो आप हृदयस्पर्शी, सरस और मार्मिक प्रवक्ता रहे। संत एवं वैष्णव समाज ने अपना गौरव मानते हुए आपको चतुःसम्प्रदाय विरक्त वैष्णव परिषद्, वृन्दावन का अध्यक्ष पद प्रदान किया। सत्य एवं निष्ठापूर्वक धर्म एवं संस्कृति के रक्षार्थ आप जीवन के अन्तिम समय तक प्रयासरत रहे। भक्ति जगत में आपका सुयश दैदीप्यमान सूर्य की भाँति आलोकित होकर अपनी कीर्ति पताका फहरा रहा है।

आपका प्रकृतिप्रेम जीवन के संध्याकाल में पुनः आपको प्रियालाल के नित्य विहार–स्थल श्रीहित अचल विहार में ले आया। जहाँ 10 सितम्बर 2003 तदनुसार भाद्रपद पूर्णिमा सम्वत् 2060 साँझीलीला के प्रथम दिवस ही अपने प्राण–पुष्प को लिये यह हितदासी श्रीजी की नित्य सेवा सन्निधि में सदा–सर्वदा के लिये प्रस्तुत हो गई।

।। श्रीहित ।।

मेरे प्राणाधार, जीवन-सर्वस्व श्रीहित निकुञ्ज-विलासी
ललित लाड़िली-लाल के कोमल कर कमलों में
सप्रेम समर्पित।

श्रीहित दासानुदास-हितदास
'रसिक-पद रेणु'

॥श्रीहित राधाबल्लभो जयति॥
॥श्रीहित हरिवंशचन्द्रो जयति॥
॥ सेवक महं वन्दे ॥ श्रीहितं वन्दे ॥

श्रीहित ध्रुवदास जी की वाणी

श्रीब्यालीस लीला नामक ग्रन्थ रसिक अनन्य नादकुल भूषण महात्मा श्रीध्रुवदास जी महाराज द्वारा रचित है। यह महात्मा श्रीहित नित्य वृन्दावन धाम के आदि आविष्कार कर्ता श्री नित्य बिहारी श्रीहित राधाबल्लभ लाल जी की नित्य आह्लादिनी परम प्रिया श्री ब्रज नवतरुणी कदम्ब चूड़ामणि श्रीहित सखी अर्थात् श्री राधिका जी की बिशेष प्रधान सहचरी जिनका निभृत निकुंज में हित सखी स्वरूप और जगत में आचारज रूप श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीहित हरिवंशचन्द्र जी महाप्रभु के तृतीय पुत्र श्रीहित गोपीनाथ जी के परम कृपापात्र शिष्य थे और गोस्वामी श्रीहित गोपीनाथ जी की सहज कृपा से बृन्दावन आये। श्रीबृन्दावन धाम ही इनका निवास स्थान बना। ध्रुवदास जी महाराज जीवन पर्यन्त बृन्दावन धाम में श्रीश्यामा श्याम की क्रीड़ाओं का वर्णन कर जीवन कृतार्थ करते रहे। इन्होंने ब्रज की सीमा से कभी भी पैर बाहर नहीं रक्खा। बृन्दावन वन बिहार परिक्रमा के रास्ते में अपनी कुटिया बनायी और उसीमें वास करते हुए युगल सरकार की भावनाओं में लीन रहते थे। श्रीहित गुरु कृपा के फल स्वरूप इन्हें मानसी में नित्य बिहार की लीलायें निराबरण होती थीं। परन्तु वाणी रूप में प्रस्फुटित नहीं होती थीं। श्रीजी के नित्य बिहार यशोगान करने की इच्छा दिन प्रति दिन प्रबल होती गयी। बिना वाणी श्रीप्रिया प्रियतम के विमल जस का विस्तार कैसे होय यह व्याकुलता इतनी बढ़ी कि श्रीयमुना तट स्थित गोविन्द घाट के समीप हित रास मण्डल पर तमाल लता के नीचे बिना कुछ खाये-पीये श्रीजी के ध्यान में मगन रहे और वाणी के प्रस्फुटित होने के लिये प्रार्थना करते रहे। तब तीसरे दिन अर्धरात्रि को श्रीहिताचार्य महाप्रभु जी निज

सहचरी वपु सों प्रिया प्रियतम सहित दर्शन दिये। श्रीजी ने कृपा करी और अपने कोमल चरणारविन्द के अग्रभाग का स्पर्श श्रीध्रुवदास जी के मस्तक से करा दिया।

स्पर्श होते ही उनकी चेतना लौटी और कोटि कोटि दामिनी को लज्जित करने वाली रूप माधुरी के तेज से बिह्वल होकर कर जोड़ स्तब्ध से हो गये। स्वामिनी जी ने पूछी क्या चाहौ ? इन्होंने बड़े विनम्र शब्दों में प्रार्थना की यदि आपकी कृपा हो तो मेरी इच्छा युगल किशोर के निर्मल यश के विस्तार करने की है। तब श्री जी ने कृपा करी -

" वाणी भई जू चाहत कियो, उठ सों वर जा कों सब दियौ।"

वर देकर निज समाज सहित अन्तर्हित हो गयीं, तब इनके हृदय कमल में नित्य बिहार की लीलायें वाणी रूप में प्रगट हुयीं, और वो रसिकों को सुख देने के लिये लिपिबद्ध की गयीं, ताकि प्रिया प्रियतम के विमल यश का विस्तार हो सके। ध्रुवदास जी को जितनी भी निकुंज लीलायें दर्शित हुयीं वे सब हितोपासना के अन्तर्गत ही हुयीं क्योंकि सिद्धान्त को बिना जाने लीला रस की अनुभूति असम्भव है। रस ठहरेगा नहीं केवल बुद्धि बिलास के दायरे में रह जायेगा। ध्रुवदास जी महाराज इस बात को भली भंति जानते थे। इसलिये उनकी प्रत्येक लीला में सिद्धान्त का पुट स्पष्ट है।

ब्रज भाषा साहित्य को काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से समृद्ध बनाने का श्रेय, अष्टछाप के कवियों को है, तो उसे भक्ति भाव और लीला गान से परिपूर्ण करने का एकमात्र श्रेय श्रीहित राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों को ही प्राप्त है। ध्रुवदास जी की रचनाओं के कई संस्करण प्रकाशित हुये। एक ही ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुयीं हैं। जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि इनकी रचनायें पर्याप्त मात्रा में पढ़ी जाती रही हैं और अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में भी इसका पर्याप्त आदर है।

गुरुवर्य के प्रति शब्द सुमन अर्पित :

इसी श्रृंखला में हिताश्रम सत्संग भूमि के संस्थापक प्रातः स्मरणीय

दर्शनीय वंदनीय मेरे गुरुवर्य स्वामी श्री हितदास जी महाराज ने अपने गुरुकृपा से हित तत्व को आत्मसात किया। अपने कठोर परिश्रम से रसोपासना से सम्बंद्धित अनेक संस्कृत और बृजभाषा के हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल संग्रह एकत्रित किया जो बहुधा अप्राप्त हो चुका था। श्री महाराज जी ने अपना अमूल्य समय राधाबल्लभीय साहित्य के अध्ययन चिन्तन में व्यतीत किया। १९५५ में गांधी मार्ग स्थित श्रीहिताश्रम सत्संग भूमि की स्थापना कर सम्प्रदाय को हितोपासना का सुदृढ़ केन्द्र प्राप्त कराया। आपने ब्रजभाषा के ग्रन्थों का मूल एवं उनकी टीकाओं का प्रणयन-प्रकाशन कर रसिकों को अत्यंन्त सुख प्रदान किया। इसी क्रम में १९९४ में भक्तों के आग्रह पर शारीरिक अस्वस्थ्या की परवाह ना करते हुये ब्यालीस लीला के अनुवाद करने में प्रवृत्त हुये और १९९७ वि. सं. २०५३ में इस टीका का प्रथम संकरण प्रकाशित हुआ। इस टीका की सरल व्याख्या को पढ़कर भक्त वैष्णव जन, साधक जन समस्त ग्रन्थ का मर्म सार रूप में ग्रहण कर सकते हैं। और वह माधुर्य भक्ति उज्जवल रस रसोपासना के गंभीर एवं सूक्ष्म रूप से परिचित हो सकेंगे।

पूज्य महाराज श्री के उत्तरार्धकाल में ब्यालीस लीला की टीका के पहले लिखा हुआ प्राक्कथन महाराज श्री के द्वारा आत्मसात किये हुये हित तत्व का निचोड़ है। जो सभी साधकों के लिये अत्यंन्त ही उपयोगी होगा। इस ग्रन्थ की अत्यधिक मांग होने के कारण इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। हम श्री जी से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे हित साहित्य प्रकाशन पर इसी प्रकार कृपा करती रहें। अन्त में राधा प्रेस के संचालक श्रीव्यासनन्दन जी शर्मा एवं बंशीबल्लभ शर्मा जी का आभार प्रकट करता हूँ। जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ समय पर प्रकाशित हो पाया। इन पर श्री जी विशेष कृपा करें यही हमारी मंगल कामना है।

श्री हित कमल दास (अध्यक्ष)

श्री हिताश्रम सत्संग भूमि, गांधीमार्ग, बृन्दावन

॥ श्रीहितं वन्दे ॥

'' वाणी भई जू चाहत कियौ,
उठि सो वर तोकौं सब दियौ।''

नित्य निकुञ्जेश्वरी, बृन्दाविपनेश्वरी, नित्य रास रस विहारिणी श्री स्वामिनी जू ने जिनके बाल हठ को स्वीकार कर अपने श्री चरण-कमल के पावन संस्पर्श पूर्वक अपने निजानन्द स्वरूप, परम गोप्य निभृत-निकुञ्जों के रस-विलास का वर्णन करने की आशीर्वादात्मक स्वीकृति प्रदान की; उन रसिक कुल भूषण, रस-सिद्ध सन्त प्रवर श्री हित ध्रुवदास जी की दिव्य वाणी के सम्बन्ध में कुछ भी कहना मुझ जैसी तुच्छातितुच्छ किंकरी के लिये असम्भव है। अपने आदरणीय श्री महान्त जी महाराज की आज्ञा का पालन करते हुये दो शब्द लिखने का दुस्साहस कर रही हूँ।

अनन्त श्री विभूषित रसिकाचार्य गो० श्रीहित हरिवंशचन्द्र जी महाराज के तृतीय सुपुत्र यशस्वी श्री गोपीनाथ जी महाराज के अतिशय कृपा-भाजन श्री हित ध्रुवदास जी महाराज का 'ब्यालीस लीला' नामक ग्रन्थ वास्तव में छोटी-बड़ी ब्यालीस लीलाओं का संग्रह है। यह एक ऐसा सम्पूर्ण ग्रन्थ है कि जिसका आश्रय ग्रहण करके रसिकोपासक को अन्य ग्रन्थाश्रय की अपेक्षा नहीं रहती। वास्तव में यह हित जू महाराज की नित्य विहार परक रसोपासना, उनके रस-सिद्धान्त एवं रस-विधा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंगों-उपांगों का मार्मिक एवं विशद विवेचन है। इसमें सर्व प्रथम 'जीवदशा लीला' में संसारासक्त जीव को श्रीकृष्ण नामाश्रय ग्रहण करने, 'वैद्यक ज्ञान लीला' में सन्त रूपी वैद्य द्वारा भव-रोग निवृत्ति का उपचार, 'मन-शिक्षा लीला' में मन को प्रबोध प्रदान कर, 'बृन्दावन शत लीला' में बृन्दावन के प्रति अपनी गरिष्ठ-निष्ठा का पुरजोर शब्दो में –

खंड खंड ह्वै जाइ तन, अंग-अंग सत टूक।
बृन्दावन नहीं छाँड़ियै, छाँड़िवौ है बड़ी चूक॥

में प्रति पादन कर उसे अखण्ड बृन्दावन-वास के लिये प्रेरित किया है। इसी तरह 'भक्त-नामावली' में साम्प्रदायिक भेद-भाव रहित सभी रसिक महानुभावों का मंगलमय स्मरण एवं 'सिद्धान्त विचार' जो उनकी एक प्रौढ़ एवं प्रामाणिक गद्यात्मक कृति में राधाबल्लभीय रसोपासना के सैद्धान्तिक गूढ़ तत्वों पर सरल भाषा में प्रकाश डाला है। पश्चात् की लीलाओं में भी श्री वृन्दाविपिन विलासी श्री प्रियालाल के पारस्परिक प्रेम, सहचरियों की तत्सुखमयी सेवा-परिचर्या का विशद सजीव वर्णन प्रस्तुतकर रसिकोपासक को अपने अन्तिम गन्तव्य-स्थल नित्य बिहार को प्रत्यक्ष करवाने का एक सफल और स्तुत्य प्रयास किया है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त दोहा, सोरठा, अरिल्ल, कवित्त, सवैया, छप्पय, कुण्डलियाँ इत्यादि को जब राग-रागनियों में आबद्ध करके गाया जाता है तो श्रोतागण बरबस झूम उठते हैं। श्रोतागण ही क्या श्री भगवत मुदित जी के मतानुसार तो –

वानी हित ध्रुवदास की, सुनि जोरी मुसिकाति।

अस्तु, प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय श्रीहित कृपा के साक्षात स्वरूप हमारे गुरुवर्य श्रीहितदास जी महाराज 'रसिक-पद-रेणु' ने इस ब्रज-भाषा पद्य में लिखित ग्रन्थ का सरल, सरस और हृदयग्राही हिन्दी में अनुवाद कर रसिक भक्तों का ही नहीं अपितु जन सामान्य के लिए भी गम्य बना दिया। इससे पूर्व इसका कोई अन्य अनुवाद उपलब्ध नहीं था। उन्होंने अस्सी बयासी वर्ष की वृद्धावस्था, साथ ही रूग्णावस्था में आश्रम स्थान की समस्त सेवाओं का सम्यक निवर्हण करते हुये जिस अदम्य लगन, अथक परिश्रम से इसकी टीका का कार्य किया, मैं तो देखकर स्तम्भित रह जाती थी। कई बार तो जब मैं लेखन कार्य के लिए उपस्थित होती, उससे पूर्व ही पूज्य महाराज श्री मुझे उस कार्य में प्रवर्त्त मिलते। उनके इस अकथनीय परिश्रम के फलस्वरूप ही यह ग्रन्थ त्रुटि रहित, सुन्दर, आकर्षक रूप में प्रकाशित हो सका। वर्तमान में रसिक भक्तों द्वारा इसकी निरन्तर मांग को दृष्टि में रखते हुए इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। प्रथम संस्करण

के 'लोकार्पण-समारोह' में पधारे परमादरणीय राष्ट्रीय सन्त श्रीमुरारी बापू जी ने इसके सम्बन्ध में कहा था कि यह ग्रन्थ नहीं, यह तो आपने मुझे एक पन्थ दिया है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो नित्य बिहार तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। अन्त में ग्रन्थकार महानुभाव एवं अनुवादक महोदय के परम पावन-पुनीत पाद-पद्मों में सश्रृद्धा कोटि-कोटि नमन् सहित –

श्री हितप्रिया किंकरी

श्रीहित अचल बिहार, रमणरेती

परिक्रमा मार्ग, बृन्दावन धाम

॥ श्रीहितं वन्दे ॥

'श्रीहित ध्रुवदास जी कृत ब्यालीस लीला'

आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व वंशी स्वरूप प्रेमावतार श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने श्रीश्यामाश्याम के प्रेम रस धाम श्रीबृन्दावन में 'श्रीराधा चरण प्राधान्य' नित्य बिहार की उपासना का प्रवर्तन किया। उनके द्वारा स्थापित प्रेमा रस भक्ति सिद्धान्त का विवेचन विशद रूप में श्री सेवक जी महाराज ने 'सेवक बाणी' में, तथा श्री ध्रुवदास जी ने 'ब्यालीस लीला' में किया है। इसीलिए नित्य बिहार की उपासना एवं रस पद्धति को समझने के लिए 'सेवक बाणी' एवं 'श्री ब्यालीस लीला' का ज्ञान (पठन -पाठन) अनिवार्य माना जाता है, यह दोनों रस ग्रन्थ एक दूसरे के परिपूरक हैं।

'श्री ब्यालीस लीला' नाम से ही सुस्पष्ट है कि यह मुख्यतः लीला रस ग्रन्थ है। इसकी लीला में 'प्रेमा रस भक्ति' सिद्धान्त का विशद एवं मार्मिक विवेचन विशिष्ट एवं अनुकरणीय शैली में किया गया है, जिससे उन लीलाओं में आचरित प्रेम का स्वरूप और उसकी सामर्थ्यता स्पष्ट होते चलते हैं और लीला के प्रवाह में कोई अन्तर नहीं पड़ने पाता। श्रीश्यामाश्याम की प्रेम लीला वर्णन करते-करते प्रेम-सौन्दर्य छटा के दर्शन से श्री ध्रुवदास जी का प्रेमी मन जब चकित एवं विभोर हो जाता है, तब उनकी बाणी की विशेषता विलक्षणता, उज्ज्वलता, परिपूर्णता, दुर्लभता, नित्य-नूतनता, सरसता, स्वच्छन्दता, मादकता, अनाद्यनन्तता की ओर संकेत कर देती है। इन संकेतों से उस लीला में प्रकाशित प्रेम के स्वरूप पर अत्यधिक प्रकाश पड़ जाता है और रसिक पाठक को लीला का मर्म समझने में देर नहीं लगती।

श्री ध्रुवदास जी से पूर्व एवं समकालीन प्रायः सभी श्रीराधा कृष्णोपासक महानुभावों ने फुटकर पदों में लीला गान किया था। ये पद अपने

आप में पूर्ण होते हैं, किन्तु उनमें लीला के किसी एक अंग की पूर्णता होती है, अन्य अंगों की अभिव्यक्ति के लिए दूसरे पदों की रचना करनी होती है। श्रीध्रुवदास जी ने नित्य-बिहार लीला को एक अखण्डित रस धारा बताया है।

नित्य-बिहार अखण्डित धारा, एक बैस रस जुगल बिहारा।

इसकी धारा वाहिकता का निर्वाह करने के लिए ध्रुवदास जी ने पद शैली का आश्रय न लेकर दोहा-चौपाइयों में बड़ी सफलता पूर्वक लीला वर्णन किया है।

इनकी लीलाओं में प्रेम की विभिन्न दशायें समुद्र में तरंगों की भाँति उन्मज्जन-निमज्जन करती रहती है। जिससे लीला की अखण्डता की सहज ब्यञ्जना होती चलती है। श्रीध्रुवदास जी ने अपने हितोपास्य प्रेम का प्रधान लक्षण बतलाते हुए कहा है कि संसार में प्रेम की अनेक छटायें देखने में आती हैं और जिसको जो रुचिकर होती है, वह प्रेम का स्वरूप वैसा ही मान लेता है। हम तो उसी प्रेम को अद्भुत और सरस समझते हैं। जिसके उदय के साथ चित की चंचलता नष्ट हो जाती है और एक मात्र प्रेम पात्र पर केन्द्रित हो जाता है –

प्रेम की छटा बहुत बिधि आही, समुझि लई जिन जैसी चाही।
अद्भुत सरस प्रेम निज सोई, चित्त चलन की जेहि गति खोई॥

(नेह मंजरी लीला)

इसलिए ध्रुवदास जी 'प्रेम पन्थ' की रसरीतिमयी उपासना को सबसे कठिन बताते हैं। क्योंकि मन के एक राई के दाने के बराबर भी इधर-उधर चलने पर प्रीति भंग हो जाती है और उपासना में अन्तर पड़ जाता है।

सबतें कठिन उपासना, प्रेम पन्थ रस रीति।
राई सम जो चलै मन, छूटि जाइ ध्रुव प्रीति॥

इस अद्भुत प्रेम की उक्त एकाग्रतामयी सहज प्रवृत्ति के कारण प्रेमी के हृदय में अन्य किसी बात के लिए अवकाश नहीं रह जाता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिस भाग्यशाली प्रेमी के शरीर रूपी बन में यह

ग्रन्थानुक्रमणिका

क्रम		पृष्ठ
	द्वितीय संस्करण की भूमिका	
	प्रथम संस्करण की भूमिका	एक
	प्राक्कथन	नौ
	ग्रन्थकार परिचय	इक्यानवे
	अनुवादक का परिचय	तिरानवे
	श्रीहित ध्रुवदास-प्रशस्ति	पिचानवे
	सम्मतियाँ	एक सौ सात
१.	जीव-दशा	३
२.	वैद्यक-ज्ञान	११
३.	मन-शिक्षा	२१
४.	श्री वृन्दावन शत	३५
५.	ख्याल हुल्लास	५७
६.	भक्त-नामावली	६९
७.	वृहद् वामन पुराण कथा	९९
८.	सिद्धान्त-विचार	११८
९.	प्रीति-चौवनी	१५५
१०.	आनन्दाष्टक	१७०
११.	भजनाष्टक	१७३
१२.	भजन कुण्डलिया	१७६
१३.	भजन-शत	१८७
१४.	शृङ्गार-शत (प्रथम, द्वितीय एवँ तृतीय शृङ्खला)	२११
१५.	मनि-शृङ्गार	३०२
१६.	हित-शृङ्गार	३२२
१७.	सभा-मण्डल	३४२
१८.	रस-मुक्तावली	३८५
१९.	रस-हीरावली	४१३
२०.	रस-रत्नावली	४३९
२१.	प्रेमावली	४५०
२२.	श्रीप्रियाजी की नामावली	४७७
२३.	रहस्य-मञ्जरी	४८७
२४.	सुख-मञ्जरी	५०४
२५.	रति-मञ्जरी	५११
२६.	नेह-मञ्जरी	५२५
२७.	वन-विहार	५५२
२८.	रङ्ग-विहार	५६४
२९.	रस-विहार	५७७
३०.	रङ्ग-हुलास	५८२
३१.	रङ्ग-विनोद	५९३
३२.	आनन्द-दशा विनोद	६०२
३३.	रहस्य-लता	६१७
३४.	आनन्द-लता	६३२
३५.	अनुराग-लता	६४४
३६.	प्रेमलता	६५७
३७.	रसानन्द	६६८
३८.	व्रज-लीला	६९५
३९.	युगल-ध्यान	७२४
४०.	नृत्य-विलास	७२९
४१.	मान-लीला	७३७
४२.	दान-लीला	७४६
४३.	लीलानुक्रम	७५२
४४.	"पद्यावली"	७५३
४५.	परिशिष्ट	८५३

अद्भुत प्रेम रूपी सिंह गर्जना करता है, वहाँ नेम रूपी गज, मृग, बिहंग रहने नहीं पाते। जहाँ प्रेम का राज्य है, वहाँ अन्य रस रहने नहीं पाते, जिस प्रकार बाज पक्षियों के समूह को दलित कर डालता है, उसी प्रकार यह प्रेम समस्त सांसारिक सुखों को श्री हीन बना देता है। प्रेम के उदय के साथ यदि शरीर के विषय नष्ट नहीं होते और सूर्य के उदय के बाद अन्धकार बना रहता है, तो यही मानना होगा कि न तो वह प्रेमोदय है और न वह सूर्योदय।

जेहि तन बन गरजत रहै, अद्भुत केहरि प्रेम।
तामें पावै रहन क्यौं, गज, बिहंग, मृग नेम॥
रहन न पावत और रस, जहाँ प्रेम कौ राज।
सकल सुखन को दलमलै, ज्यौं पंछिन में बाज॥
मन पंछी तब लग उड़ै, विषै बासना मांहि।
प्रेम बाज की झपट में, जब लग आयौ नाहिं॥
तन बिलास जो विषय के, जो न प्रेम ते जाहिं।
भानु उदै जो तम रहै, तो वह भानुहि नांहि॥

प्रेम का उपर्युक्त लक्षण श्रीराधावल्लभीय अनन्य रसिक उपासकों द्वारा अनुभूत एवं व्याख्यात प्रेम छटा को प्रेम के अन्य प्रचलित रूपों से विलक्षण एवं सारवान बना देता है। साथ ही परम निवृत्तिमय रसानन्द की प्राप्ति के लिए साधन के रूप में प्रेम की सर्व श्रेष्टता को रेखांकित कर देता है। हम जानते हैं, कि भगवत प्राप्ति के सम्पूर्ण साधनों का प्रथम लक्ष्य मन की एकाग्रता प्राप्त कराना होता है। जिसकी सिद्धि बड़ी कठिनाई से होती है। किन्तु इस प्रेम छटा के मन में प्रकाशित होने के साथ ही वह सहज रूप से एकाग्र बन जाता है और उपासक को उसके निरोध के लिए अलग से कोई साधन नहीं करना पड़ता है।

श्री ध्रुवदास जी इस प्रेम को परिपूर्णतम मानते हैं। इस स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं, प्रेम की निज रूप, चाह चटपटी, आधीनता,

उज्ज्वलता, स्निग्धता, सरसता, नूतनता, सदा एक रस, रुचि तरंग बढ़त रहै है, सहज स्वच्छन्दता, मधुरता, मादकता, जाकौ आदि अन्त नाहि, (अनाद्यनन्तता) एवं छिन-छिन नूतनता स्वादमय है।

जहाँ लगि उज्ज्वल निर्मलताई, सरस स्निग्ध सहज मृदुताई।
मादिक मधुर माधुरी अंगा, दुर्लभता के उठत तरंगा॥
नौतन नित्य छिनहिं छिन माहिं, इक रस रहत घटत रुचि नाहिं।
अतिहि अनूपम सहज सुछन्दा, पूरन कला प्रेम वर चन्दा॥

प्रेम के इस स्वरूप का ही पल्लवन श्री ध्रुवदास जी ने अपने सम्पूर्ण रस ग्रन्थ में, कहीं रस सिद्धान्त कथन के रूप में और कहीं लीला के माध्यम से किया है।

तदुपरान्त प्रातः स्मरणीय परम पूज्य मेरे गुरुवर परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज ने 'ब्यालीस लीला' का परिमार्जित हिन्दी भषा में टीका करके अत्यन्त गहर-गम्भीर प्रेम भावों को सहज सरल रूप से सर्व सुलभ कर दिया था। आशा है इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशित हो जाने से समस्त प्रेमोपासक रसिक सन्त, भक्त जन अवश्यमेव लाभान्वित होंगे। मेरे गुरु भ्राता महान्त श्रीहित कमलदास जी ने इस द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करके सराहनीय सेवा कार्य किया है।

'श्री जी' के श्री चरणारविन्द में कोटि-कोटि नमन करते हुए प्रार्थना है कि भविष्य में भी इसी प्रकार प्रकाशन सम्बन्धी सेवा कार्य होते रहें।

रसिक सन्त-भक्त-दासानुदास
बाबा श्रीहित नागरीदास
श्रीहित अचल बिहारं, रमण रेती
परिक्रमा मार्ग, बृन्दावन धाम

कार्तिक शरद पूर्णिमा,
संवत् २०६६

प्रथम संस्करण

भूमिका

वैष्णवभक्ति-सम्प्रदायों में व्रजमण्डल का प्रमुख राधावल्लभ-सम्प्रदाय, अपनी माधुर्य मण्डित उपासना पद्धति, नित्य विहार, निकुञ्जलीला, रासलीला और रसोपासना के वैशिष्ट्य के कारण राधाकृष्ण-भक्ति को उज्जवल रस में निमज्जित कर अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है। इस सम्प्रदाय में श्रीराधा को आराध्या का पद प्राप्त है और उन्हीं के कृपा-कटाक्ष से भक्त के भव-बन्धन कटते हैं।

सम्प्रदाय-प्रवर्तक श्री हित हरिवंश महाप्रभु ने आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण की लीलास्थली वृन्दावन को अपनी भक्ति भावना के अनुसार पूज्य मानकर, अपने सिद्धांत और साहित्य के प्रचार के लिए चयन किया और इसी पावन भूमि में अपने परमाराध्य श्रीराधावल्लभ के मङ्गल विग्रह की स्थापना करके रसोपासना का प्रवर्त्तन किया। श्रीहित महाप्रभु की यह तत्सुखी भाव की उपासना उनके जीवन काल में अत्यन्त लोकप्रिय हुई और उनके निकुञ्ज-वास के बाद उनके मनीषी भक्त शिष्यों द्वारा सैद्धान्तिक एवं साहित्यिक स्तर पर इस भक्ति-पद्धति के विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थ-लेखकों में उच्च कोटि के भक्त कवि, विचारक, चिन्तक और शास्त्र-मर्मज्ञ रचनाकार उत्पन्न हुए। उनकी रससिक्त वाणी का माधुर्य विगत साढ़े चार सौ वर्षों से अद्यावधि सतत् प्रवहमान् है। इन्हीं साधक भक्त कवियों में श्री हित ध्रुवदास का नाम काव्य-सौष्ठव, पद-लालित्य, भावचारुत्व और तात्त्विक-विमर्श के कारण राधावल्लभीय वैष्णव साहित्यकारों की प्रथम पङ्क्ति में आता है।

भक्त शिरोमणि ध्रुवदास का जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद के देवबंद (प्राचीन देववन) नामक कस्बे में एक संभ्रान्त कास्थथ कुल में संवत् १६१० के आस-पास हुआ था। ध्रुवदास-रचित ग्रंथों के आधार पर यह स्पष्ट

प्रतीत होता है कि ध्रुवदास जी श्रीहित हरिवंश जी के पुत्र गोस्वामी गोपीनाथ जी के शिष्य थे। उनसे राधावल्लभीय दीक्षा लेकर ध्रुवदास जी वृन्दावन आ गये और जीवनपर्यन्त वहीं निवास करते रहे। "जेतिक द्यौस जिये जगमाहीं, ते वितवै वृंदावन छाहीं"। वृंदावन वास करते हुए उन्होंने भागवत पुराण आदि के साथ नाना शास्त्रों का अध्ययन किया और अपनी रचनाओं में उनका प्रभूत प्रभाव अङ्कित किया। ध्रुवदास जी के अपने बयालीस ग्रन्थों में जिन विषयों का समावेश किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है कि साम्प्रदायिक भक्त कवि होते हुए भी उनकी रचनाओं में ऐसे विषयों का केवल उल्लेख ही नहीं, वरन् उनकी मीमांसापरक व्याख्या भी है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी उनकी कृतियों में अद्‌भुत सौष्ठव, भाषा में प्राञ्जलता, भावों में गम्भीरता और व्यञ्जना का चारुत्व सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है। श्री ध्रुवदास जी साम्प्रदायिक रसोपासना के मर्मज्ञ एवं माधुर्यभाव की निकुञ्जलीला के उच्चकोटि के गायक थे। उन्होंने युगल के रस विषयक ग्रन्थों की रचना के अतिरिक्त नीति, सदाचार, ज्ञान-वैराग्य, वैद्यक ज्ञान, जीवदशा, मन-शिक्षा, भजनाष्टक, वृहद्‌वामन पुराण की भाषा आदि जैसे ग्रन्थों की रचना की। इस कोटि के ग्रन्थ उनके प्रारम्भिक जीवन के हैं, जिनमें व्यावहारिक ज्ञान की बातों का निर्देश किया गया है।

श्री ध्रुवदास जी रचित ग्रम्थों का प्रतिपाद्य राधावल्लभ-सम्प्रदाय का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करना है। निकुञ्जलीला (नित्य-विहार) वर्णन करने के लिए लीला के विधायक अन्य उपादानों का वर्णन आवश्यक होता है, श्री ध्रुवदास जी ने अपनी मुक्तक रचनाओ में भी इस बात का निरन्तर ध्यान रखा है कि प्रेमलक्षणा मधुरा भक्ति का जैसा रूप राधावल्लभीय मत में गृहीत हुआ है, उसका ही साङ्गोपाङ्ग विवेचन-विश्लेषण अपनी वाणी द्वारा किया जाय। इसी कारण सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को हृदयङ्गम करने के लिए इनकी वाणी से अधिक स्पष्ट और गम्भीर किसी अन्य महानुभाव की वाणी नहीं है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्याख्यापरक दृष्टि से तत्त्वबोध का इतना

व्यापक प्रयत्न अद्यावधि इस सम्प्रदाय में, इनको छोड़कर, किसी और ने नहीं किया। जटिल और दुर्बोध तत्त्वों को समझाने के लिए इन्होंने वचनिका (गद्यवार्ता) का भी प्रयोग किया और अनेक दुरूह प्रश्नों को उसमें बड़ी सरल और सुबोध शैली से सुलझाया है।

"बयालीस लीला" में प्रतिपादित विषयों को हम पन्द्रह शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं :–

१. वृन्दावन-माहात्म्य और धाम का राधावल्लभ-सम्प्रदाय में स्थान।
२. भक्त महानुभावों का संक्षिप्त परिचय।
३. प्रेम और काम की स्थिति (सैद्धान्तिक विवेचन)।
४. प्रेम और नेम की स्थिति, प्रेम और मान की स्थिति, प्रेम और विरह की स्थिति।
५. निकुञ्जलीला और नित्यविहार (जो व्यापक रूप से आद्योपान्त वर्णित है)।
६. निकुञ्जलीला में सखियों का स्थान, और सखियों का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन।
७. युगल ध्यान का महत्त्व और राधावल्लभीय रूप।
८. विविध लीलाओं का रसपरक वर्णन (दानलीला, मानलीला, वनविहार आदि)
९. राधा-कृष्ण के प्रेम की विभिन्न दशाओं का माधुर्यपरक वर्णन (शृङ्गारपूर्ण)।
१०. श्री राधा का स्वरूप और नामावली।
११. रसोपासना के विविध उपादान और उनकी स्वरूप-स्थापना।
१२. रसोपासना में विधि-निषेध की स्थिति।
१३. रसभक्ति में नख-शिख, ऋतु-वर्णन और नायक-नायिका वर्णन की अनिवार्यता। (शृङ्गार का भक्ति में पर्यवसान)
१४. इष्टाराधना और अनन्य भक्ति का रूप (राधावल्लभय सिद्धान्त-दृष्टि)।
१५. नैतिक आचार, मर्यादा और जीवन का व्यवहार-पक्ष (व्यापक जीवन-दृष्टि)

उपर्युक्त शीर्षकों के भीतर ही अन्य छोटी-मोटी अनेक बातों का अन्तर्भाव

हो जाता है। यदि इन उपर्युक्त शीर्षकों का विस्तार किया जाय, तो राधावल्लभ-सम्प्रदाय का समस्त तात्त्विक विवेचन सम्भव है एवं इन्हीं शीर्षकों के आधार पर ही ध्रुवदास जी की रचनाओं के प्रतिपाद्य विषय का संक्षेप में अनुशीलन भी सम्भव है।

निकुञ्जलीला सम्बन्धी पदों में ध्रुवदास जी ने शृङ्गार के माध्यम से जिस संयोग भाव की स्थापना की है, वह राधावल्लभीय नित्यविहार का पोषक भाव है। "भजन शृङ्गार सत लीला" में इस लीला का वर्णन करने वाले १२५ कवित्त और सवैया तथा २५ दोहे मिलाकर १५० पद हैं। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से पूर्ण "भजन शृङ्गार सत लीला" बहुत ही उच्चकोटि की रचना है। निकुञ्ज-लीला प्रारम्भ करने से पूर्व श्रीकृष्ण और श्री राधा के स्वाभाविक रूप तथा कृत्रिम वेश-विन्यास और प्राकृतिक वैभव का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण के नीलाम्बर और राधा के सीसफूल की ओर भक्त का ध्यान आकृष्ट करते हुए निकुञ्जलीला का उपक्रम हुआ है। इसके उपरान्त राधा के वेश-विन्यास का वर्णन बड़े विस्तार के साथ पूरी भव्यता से हुआ है। यदि इन कवित्त-सवैयों में अन्तर्निहित विहार-भाव का मर्म हृदयङ्गम न किया जाये तो बाह्य रूप से संयोग शृङ्गार का वर्णनमात्र ही व्यक्त होगा। रीतिकालीन कवियों के समान अभिव्यञ्जना देखकर सामान्य शृङ्गार-वर्णन का भ्रम होना स्वाभाविक है।

प्रेम का स्वरूप राधावल्लभ-सम्प्रदाय में विलक्षण है। यथार्थ में प्रेम के ऊपर ही यह सम्प्रदाय स्थिर है। श्री राधावल्लभ लाल और प्रेम तत्त्व इन दोनों में कोई भेद नहीं है। ध्रुवदास जी ने अपनी सिद्धान्त सम्बन्धी वचनिका (गद्यवार्ता) में तथा प्रेमावली लीला में प्रेमतत्त्व का बड़े सूक्ष्म रूप से विवेचन किया है। प्रेम को ही सृष्टि का आदि, मध्य और अवसान मानकर उसी पर समस्त सृष्टि को निर्भर माना है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता यही है कि विशुद्ध वैष्णव भावना के पोषक होने पर भी इस सम्प्रदाय में अनेक रूढ़िगत विधि-निषेधों को ग्रहण नहीं किया गया। एकादशीव्रत, तीर्थाटन, तिलक-कण्ठी आदि वाह्याधारों की

ओर इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक का मोह नहीं था। भुजमूल पर तिलक-त्रिपुण्ड बनाने वाले ढ़ोंगी भक्तों का स्वयं हित हरिवंश जी ने उपहास किया है। ध्रुवदास जी ने इस विषय में अपने आचार्य का ही अनुगमन किया है। "जीव दशा लीला" में नाम-महात्म्य वर्णन करते हुए अन्य सब कर्मकाण्डों को व्यर्थ कह दिया है—

"व्रत तप निगम नेम यम संजम, करहु कलेश कोटि किन भारी।
इनमें पहुँच नाहिं काहू की, परे रहत ज्यौं द्वार भिखारी।।
जोग यज्ञ फल मैंड़ करत हैं, तीरथ सब कर लीनें झारी।
धर्म मोक्ष कोउ पूछत नाहीं, इन मग सिद्धैं कौन विचारी।।"

"मन शिक्षा लीला" में अनेक व्यावहारिक नीतिपरक बातों का वर्णन करते हुए ध्रुवदास जी ने रूढ़ियों को त्यागने का स्पष्ट सङ्केत किया है—

कह अचार अपरस कहा, कहा संयम व्रत नेम।
कहा भजन विधि सौं बिध्यौ, जो नहिं परस्यौ प्रेम।।

ध्रुवदास जी की वाणी राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उद्‌घाटन करने वाली सबसे समर्थ और व्यापक वाणी है। परवर्ती महानुभावों ने इनकी वाणी के अनुशीलन द्वारा ही सैद्धान्तिक मर्म को हृदयङ्गम किया। श्री हित हरिवंश के भाष्यकार और व्याख्याकार के रूप में ध्रुवदास जी का स्थान मूर्द्धा पर है।

ध्रुवदास जी की वाणी में काव्य-सौष्ठव इतनी प्रचुर मात्रा में हैं कि कहीं-कहीं रीतिकालीन शृंगारी कवियों का साम्य परिलक्षित होता है। हितशृङ्गार लीला आदि ग्रन्थों में जो कवित्त और सवैये लिखे हैं, उनका बाह्य-अभिधेयार्थ रीतिकाल के कवियों के समकक्ष ही है। शब्द-शक्ति, अलङ्कार, काव्य-गुण और भाषा का प्रवाह यह बताता है कि ध्रुवदास जी ने साहित्यशास्त्र का विधिवत् पारायण किया था। काव्य-रूढ़ियों का भी इनकी वाणी में निर्वाह है। नायिका-भेद, नखशिख, ऋतुवर्णन आदि रूढ़ि-परम्परा में भी लिखे गये हैं। दोहा, कवित, सवैया, अरिल्ल, कुण्डलिया, गेय पद-रचना पर इनका असाधारण अधिकार परिलक्षित होता है।

इनकी गद्यवार्ता (वचनिका) तो अपूर्व रचना है। इस रचना में एक ओर जहाँ सैद्धान्तिक गूढ़ तत्त्वों पर सरल भाषा में प्रकाश पड़ा है, वहीं दूसरी ओर गद्य-साहित्य का भी प्राचीन रूप देखने में आता है। इस गद्य का ऐतिहासिक महत्त्व अभी तक अज्ञात रहा है।

माधुर्य भक्ति की तल्लीनता और रस-व्यञ्जक पदावली की रोचकता जैसी ध्रुवदास जी में है, वैसी मध्ययुगीन भक्तों में कम ही देखी जाती है। यदि छन्द, भाषा और शैली-वैविध्य की दृष्टि से इनकी रचना पर विचार किया जाए तो निस्सन्देह ये रीतिकालीन और भक्तिकालीन कवियों की शृङ्खला जोड़ने वाले रससिद्ध कवि माने जायेंगे।

प्रस्तुत भावानुवाद :-

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सिद्धान्त-मर्मज्ञ स्वामी श्री हितदास जी ने अपने जीवन का अमूल्य समय श्रीहित ध्रुवदास रचित साहित्य के गम्भीर अध्ययन, पर्यालोचन तथा चिन्तन में व्यतीत कर "बयालीस ग्रन्थों" का भावानुवाद तैयार किया है। यह भावानुवाद मात्र शब्दानुवाद न होकर गूढ़ एवं जटिल सन्दर्भो की व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। श्री ध्रुवदास जी राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तकवियों में, साम्प्रदायिक सिद्धान्त विमर्श की दृष्टि से, मूर्द्धन्य कोटि के विचारक भक्त हैं। 'वृन्दावन-रस' का काव्य के शृङ्गार आदि रसों से भिन्न रूप है। इस मौलिक तत्त्व का विवेचन जिस शैली से श्री ध्रुवदास जी के ग्रन्थों में हुआ है, उसे स्वामी श्री हितदास जी ने अपने भावानुवाद में सामान्य भक्त के लिए पठनीय शैली में प्रस्तुत कर आस्वाद्य बना दिया है।

स्वामी श्री हितदास जी की अभिव्यञ्जना शैली की यह विशेषता है कि वे अपने शब्द प्रयोग में पाठक के बौद्धिक विवेक का पूरी तरह ध्यान रखते हैं। व्रजभाषा में प्रयुक्त शब्दों के तो वे ज्ञाता हैं ही, खड़ी बोली गद्य में वाक्य विन्यास के व्याकरण की रक्षा में भी उनकी दृष्टि सतत जागरूक रही है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री हितदास जी ने एक लम्बा प्राक्कथन भी लिखा है। यह प्राक्कथन केवल ग्रन्थ की प्रस्तावना न होकर श्री ध्रुवदास रचित

साहित्य के अध्ययनार्थ प्रकाश की किरण है। इसे पढ़कर पाठक श्री ध्रुवंदास रचित समस्त साहित्य का मर्म सार रूप में ग्रहण कर सकता है। राधावल्लभीय प्रेम का स्वरूप, नित्य विहार के विधायक तत्त्व, श्री राधा, श्रीकृष्ण, हित वृन्दावन और सहचरी की स्थिति पर सोदाहरण प्रकाश डालकर उन्होंने सभी गूढ़, गम्भीर एवं मार्मिक रहस्यों को सरल भाषा में उद्‌घाटित किया है। रसिकाचार्य श्री हित हरिवंश गोस्वामी, हितोपासना, वृन्दावन रस आदि विषयों पर उन्होंने संक्षेप में जो लिखा है, वह मूल विषय के प्रति ध्यानाकर्षण की टिप्पणियाँ हैं।

मैंने आज से लगभग अढ़तालीस वर्ष पूर्व राधावल्लभ-सम्प्रदाय के साहित्य को पढ़ने और समझने की दिशा में प्रयास प्रारम्भ किया था, उसमें मेरी सहायता करने वालों में स्वामी श्री हितदास जी भी थे। मैंने उनसे साहित्य के साथ सिद्धान्त पक्ष पर भी विचार-विमर्श किया और अनेक जटिल समस्याओं का समाधान प्राप्त किया था। उस समय भी उनकी दृष्टि गम्भीर प्रश्नों के हल करने में अधिक सजग रहती थी। उनकी चेतना में आचार्य हित हरिवंश गोस्वामी की वाणी भीतर ही भीतर गूँजती रहती थी। उसी गूँज की अनुगूँज उनके इस भावानुवाद में ध्वनित होकर श्रवण गोचर होती प्रतीत होती है। इस भावानुवाद को पढ़कर पाठक केवल भक्त कवि ध्रुवदास रचित साहित्य से ही परिचित नहीं होगा वरन् वह माधुर्यभक्ति, उज्ज्वलरस, रसोपासना के गम्भीर एवं सूक्ष्म रूप से भी परिचित हो सकेगा। मैं श्री जी से विनयावनत होकर स्वामी श्री हितदास जी के स्वस्थ एवं प्रसन्न दीर्घायुष्य की प्रार्थना करता हूँ।

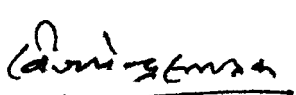

(प्रो॰ डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक)

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली

मोहन-वेश

रसिक रँगीले मन हर्‌यौ, श्री राधावल्लभ लाल।
सखी री ! जुगल जूथिका की बनी, उर बैजंती माल।।१।।
भीने रंग सुरंग में, दोऊ नवल-किसोर।
खेलत नवल निकुंज में, चोरत चित चख-कोर।।२।।
सखी री ! नील पीत पट अति बने, सोभित भूषन अंग।
लसत सीस पर चंद्रिका, दमकत मोतिनु मंग।।३।।
कुंडल खुभी विराजहीं, स्रवननि अति छवि देत।
झलकत ओप कपोल की, सुंदर अलक समेत।।४।।
बेसरि उभय सुभग बनी, झलकत जलज सुदेस।
नैंन तृपिति नहिं मानहीं, निरखत मोहन-वेस।।५।।
झलकत कटि तट किंकिनी, मोहत मृदु गति चाल।
हँसनि मंद मन बसि रही, चितवनि चपल रसाल।।६।।
मृदुल अंग वर सुंदरी, गहैं कुँवर भुज मूल।
विहरत अति अनुराग सौं, दिन-मनि-तनया कूल।।७।।
मधुर चारु स्वर गावही, सुंदर वर सुकुँवार।
खग कुरंग सब मोहियै, ढरत नैंन जलधार।।८।।
नवल सखी सब सोहईं, प्रेम मत्त रस लीन।
मिथुन रूप रस सिंधु में, रहतिं दिनहिं ज्यौं मीन।।९।।
अति अपार छवि अंग की, बरनत बनै न बैंन।
'हित ध्रुव' सुख मुख-कंज कौ, जानत हैं अलि नैंन।।१०।।

प्राक्कथन

विद्याध्ययन काल में ही मेरे मन में श्री कृष्ण-भक्ति परक साहित्य, जिसमें विशेषतया ब्रज-साहित्य के स्रष्टा सन्त महानुभावों के पद एवं कवित्त आदि हैं, उनके गान, श्रवण, पठन-पाठन आदि की रुचि उत्पन्न हो गयी थी। संस्कृत-साहित्य से यत्किञ्चित् लगाव होने के कारण श्रीमद्-भागवत, श्री कृष्ण-लीला सम्बन्धी ग्रन्थ समुदाय एवं प्रकीर्णक स्तोत्र आदि में मेरा मन एक विलक्षण सुखानुभूति का अनुभव करने लगा था। फलतः बिहारी की 'सतसई' और सूरदास का 'सूरसागर' मेरी अन्तरात्मा को व्रज-रस-भक्ति से संसिक्त करने में विलक्षण साधन बने। मेरी आत्मा अतृप्त भाव से व्रज-साहित्य के मूर्द्धन्य रस श्री राधा-श्यामसुन्दर की रसमयी उज्ज्वल भक्ति के लिए तड़प रही थी। उन्हीं दिनों सौभाग्य से मुझे एक व्रज-साहित्य की लघुकाय पुस्तिका उपलब्ध हुई। "स्फुट-वाणी" नामक इस पुस्तिका में रसिकाचार्य शिरोमणि गोस्वामी श्री हित हरिवंश कृत कुल मिलाकर तेईस पद और चार दोहे अङ्कित थे। इस ग्रन्थ पर निकुञ्जवासी रसिक-भक्त श्री भोलानाथ जी "हित-भोरी" की सिद्धान्तपरक टीका थी। ग्रन्थ का पद-साहित्य जिस सुकोमल, सुष्ठु एवं प्राञ्जल भाषा में रस-वर्षण कर रहा था, वह सब नितान्त हृदयहारी था। किन्तु इस ग्रन्थ के एक पद ने मेरे हृदय को अपनी रस ब्यञ्जना से विथकित कर दिया। पद में सहचरी के द्वारा प्रिया को प्रियतम के समीप तक ले जाने का वर्णन जिस कुशलता से प्रस्तुत किया गया है, अभूतपूर्व है। पद इस प्रकार है—

तेरौई ध्यान राधिका प्यारी, गोवर्धनधर लालहि।
कनक लता सी क्यौं न विराजति, अरुझी स्याम-तमालहि।।
गौरी गान सु तान ताल गहि, रिझवति क्यौं न गुपालहि।
यह जौवन कंचन तन ग्वालिनि, सुफल होत इहि कालहि।।
मेरे कहैं विलंब न करि सखि, भूरि भाग तव भालहि।
(जै श्री) हित हरिवंश उचित हौं चाहति, स्याम कंठ की मालहि।।

— गो॰ श्री हित हरिवंश चन्द्र

इस पद के भाव, भाषा एवं रस प्रक्रिया किम्वा लीला-विलास के मार्दव प्रकार ने मुझे श्री वृन्दावन की रस-कामधेनु रज का आश्रय लेने के लिए विह्वल बना दिया। फलतः मैं श्री हित राधावल्लभीय सम्प्रदाय के समूचे साहित्य से जुड़ा ही नहीं अपितु इस साहित्य की सेवा के लिए समर्पित हो गया। किन्तु **"तेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और"** इस न्याय से मैं मन्दिर-देवालय, स्थान-आश्रम, बाग-बगीचा आदि लोक-सेवा के कार्यों में भटक सा गया। मेरी साहित्य-सेवा का अङ्ग प्रमुखता से हटकर गौण हो गया। फिर भी किशोरी श्री राधा की कृपा से मेरे द्वारा बीच-बीव में सम्प्रदाय के साहित्य की सेवा होती रही। इसी क्रम में श्रीमद् राधा-रस-सुधा-निधि का (खड़ी बोली में) गद्यात्मक अनुवाद, श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल का अनुवाद, हित-चौरासी एवँ सेवक-वाणी की सिद्धान्त परक टीका एवं व्याख्या (अनूदित), हित-वाणी मासिक-पत्र का सञ्चालन और ऐसे अनेक कार्य होते रहे।

गोस्वामी श्री हित हरिवंश की जन्मस्थली 'व्यास-भवन' बाद ग्राम में मन्दिर के प्रबन्धक का भार मुझे मिला। तभी अपने मित्र बाबा श्री वंशीदास के सहयोग से सम्प्रदाय के विशिष्ट ग्रन्थों पर कार्य करने की योजना बनी। उस योजना के अन्तर्गत 'ब्यालीस-लीला' पर सिद्धान्तपरक टीका एवं व्याख्या किये जाने का कार्य विशेष महत्त्व का था। तब भी कुछ नहीं हो सका और जब मैं बाद ग्राम के सेवा-कार्य से विरत होकर श्री वृन्दावन आ गया और सन् १९५५ में श्री हिताश्रम सत्सङ्ग भूमि का निर्माण प्रारम्भ हुआ, तो उसमें फिर उलझ गया। श्रीजी की कृपा से मेरी चेतना जाग्रत हुई और मैंने सन् १९५७ मे 'बयालीस-लीला पर लेखन कार्य प्रारम्भ किया और ग्रन्थ की प्रारम्भिक बाईस (२२) लीलाओं तक का लेखन कार्य सम्पन्न तो हुआ किन्तु दुर्भाग्य-वश वह पाण्डु-लिपि मेरे हाथ से निकल गयी। कहाँ गयी ? कुछ मालूम नहीं, जो आज तक नहीं मिली। मेरा उत्साह ठण्डा हो गया।

सन् १९९४ बारह जून को मेरे प्रिय शिष्य श्री ओम विहारी माथुर 'बटुक' का हृदयगति रुक जाने से अकस्मात् देहावसान हो गया। उसकी पत्नी श्रीमती

राजेश कुमारी माथुर ने अपने पतिदेव की पुण्य-स्मृति में "बयालीस-लीला"—मूल के प्रकाशन का प्रस्ताव निवेदित किया किन्तु मेरे प्रशिष्य श्यामसुन्दर दास "भक्तमाली" ने इस ग्रन्थ की टीका और व्याख्या करने का आग्रह किया। फलतः मैं इसका अनुवाद करने में प्रवृत्त हुआ। ग्रन्थ के कलेवर-विस्तार के भय से मैंने तत्-तत् स्थलों में ग्रन्थान्तर्गत सैद्धान्तिक व्याख्या करना उचिन न मान कर दोहे, सोरठे, कवित्त आदि समूचे ग्रन्थ का यथामति अनुवाद करने का कार्य किया।

अस्तु, श्री हित ध्रुवदास जी महाराज, श्री राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकाचार्य वंशी स्वरूप रसावतार गोस्वामी अनन्त श्री हित हरिवंश चन्द्र जी महाराज के सुपुत्र यशोमूर्ति गो॰ श्री गोपीनाथ जी महाराज के कृपापात्र हैं। अतएव श्री हित राधावल्लभीय सम्प्रदाय के अनुगामी और पूर्ववर्त्ती उन महापुरुषों में इनकी गणना की जाती है, जिन्होंने परमाचार्य गो॰ श्री हित हरिवंश के रसोपासना सिद्धान्त को विशद एवं व्यापक रूप से व्याख्यायित किया है। इन महापुरुषों में सम्प्रदाय के दो सिद्ध सन्तों के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्रथम श्री हित नादकुलभूषण श्री दामोदर दास जी महाराज "सेवक जी" ने श्री हरिवंशजी की वाणी—"श्री हित चौरासी" को प्रमाण कोटि में रखकर हित-स्वरूप की सैद्धान्तिक व्याख्या की है, जिसे सम्प्रदाय की भाषा-भावना में हितोपासना का आद्य-भाष्य ग्रन्थ कहा जाता है। द्वितीयतः श्री हित के रस-विलास का वर्णन निभृत-निकुञ्ज-केलि के रूप में प्रस्तुत करने वाले आचार्य हैं—रसिकभूषण सन्त श्री हित ध्रुवदास जी महाराज। इन्होंने बयालीस-लीला नाम से जो ग्रन्थ समुच्चय प्रस्तुत किया है, उसे समझने के पूर्व यहाँ पाठकों के लिए हित धर्म का रस-दर्शन प्रस्तुत करना नितान्त रूप से अनिवार्य है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय विशाल वैष्णव धर्म का एक विशिष्ट एवं अतिशय महत्त्वशील साम्प्रदायिक अङ्ग है। वैष्णव धर्म भारत वर्ष के धर्मों में एक प्राचीनतम धर्म है, जो वैदिक काल से लेकर अब तक अनेक रूपान्तर ग्रहण करता हुआ

चला आ रहा है। 'वैष्णव' शब्द विष्णु का अपत्यवाची है, जिसका अर्थ है कि विष्णु ही इस विशाल वैष्णव धर्म के परम दैवत हैं और वहीं विष्णु काल क्रम से अनेक रूपों में प्रगट होते रहे हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को तीन पगों में नापने वाले 'विष्णु-गोपाः' ऋग्वेद (१/२२/१७-१८) में वर्णित हैं। वहीं ऋग्वेद में (ब्राह्मण-खण्ड) विष्णु को यज्ञ स्वरूप बताया गया है किन्तु इस वैदिक विष्णु की सगुण परक उपासना का विशद वर्णन कहीं नहीं मिलता।

उपासना के इस अङ्ग की पूर्ति वैष्णव-आगम ने की। छान्दोग्य उपनिषद् में एकायन-विद्या का उल्लेख तो है किन्तु उसके प्रतिपाद्य विषय का कोई सङ्केत नहीं है। पश्चात् 'शतपथ-ब्राह्मण' और 'पांच-रात्र' में एकायन-विद्या का वर्णन मिलता है।

इन आगमों के द्वारा प्रथमतः वेदों के हिंसा बहुल यज्ञों का निवारण और द्वितीयतः विष्णु किंवा नारायण को परम तत्त्व बता कर सरस और समृद्ध भक्ति-उपासना पद्धति का कार्य विकास करना आगम (शास्त्रों) का प्रधान कार्य है। इन आगमों में आध्यात्मिक रहस्यों का स्वतन्त्रतः विचार हुआ है, जिसमें वैष्णव-धर्म के इस महान् अभियान में प्रत्येक युग में वर्वर जातियों और अन्य धर्मावलम्वियों के बहुत बड़े और कड़े प्रहार हुए किन्तु परम सहिष्णु वैष्णव-धर्म ने उन आक्रमणकारी धर्मों को अपनी विशद आध्यात्मिकता के द्वारा अपने में आत्मसात कर लिया। फलतः यह वैष्णव धर्म आगे चल कर भारत वर्ष का राज-धर्म बन गया। गुप्त सम्राट् और उनके परवर्त्ती राजा अपने आपको 'परम भागवत' की उपाधि से विभूषित करके गौरवान्वित हुए। इतिहास साक्षी है कि तब से कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक वैष्णव धर्म का प्रचुर प्रचार हुआ। यहाँ तक कि बौद्धों ने भी भागवत-धर्म में से अनेक तथ्य ग्रहण किये और वैष्णव धर्म की अच्छाईयों का आश्रय लेकर बौद्ध-गण अपने अवैदिक सम्प्रदाय धर्म को प्रसारित करने में काफी सफल हुए।

उसी समय ईसा की आठवीं शताब्दी में श्री शंकराचार्य का भारत के दक्षिण-देश केरल में प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने उपनिषद्, ब्रह्म-सूत्र और श्रीमद्-

भागवत् गीता को प्रस्थानत्रयी बनाकर एक दार्शनिक-सिद्धान्त की स्थापना की और बौद्धों के मत का खण्डन करके वेद-वाद की स्थापना की। किन्तु इससे वैष्णव-धर्म की सुकर और सरल आगम परम्परा को कोई विशेष लाभ नहीं मिला, लगभग कुछ आघात ही पहुँचा। हाँ, बौद्धों के शून्य-वाद के स्थान पर वैदिक ईश्वर-वाद की सत्ता स्थापित हुई, अद्वैतवाद का विस्तार हुआ किन्तु आगमोक्त वैष्णव-धर्म की प्रबलता के अभाव में राष्ट्र का जन-मानस लगभग उद्वेलित ही बना रहा।

अस्तु, शंकराचार्य के जन्म से पूर्व प्रगट हुए बारह आलवर सन्तों ने भक्ति का जो आन्दोलन प्रारम्भ किया था, जन-मानस ने उसकी महत्ता को समझा और तभी शंकराचार्य के वेदान्तदर्शन के प्रतिद्वन्दी विशुद्ध भागवत धर्म के सुदृढ़ दार्शनिक सूत्रों की स्थापना की प्रवल आवश्यकता प्रतीत हुई और तब श्री रामानुज स्वामी के नेतृत्व में वैष्णव आगम और नारद पांचरात्र के आधार पर विविध वैष्णव-ग्रन्थों की रचनाऐं हुईं। तत्पश्चात् विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में श्री मद्वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने श्री शंकराचार्य के "केवलाद्वैत" के विरुद्ध "शुद्धाद्वैत" सिद्धान्त की स्थापना की। उद्भट विद्वान् श्रीमद्वल्लभाचार्य ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके अनन्य श्री कृष्ण भक्ति का प्रचार ही नहीं किया, अपितु भक्ति के सुदृढ़ दुर्ग द्रविड़-देश में कनकाभिषेक के द्वारा सम्मान भी प्राप्त किया।

दक्षिण-भारत के उत्थान काल में ही उत्तर भारत मुसलमानों द्वारा पदाक्रान्त होने लगा था। सोलहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा भारतीय धर्म-समाज एवं संस्कृति पराजित होते हुए डगमगा उठी। हिन्दुओं का दैनन्दिन-जीवन भयाक्रान्त होने लगा। निराश्रित जनता भयान्वित भाव से अपनी रक्षा के लिए किसी समर्थ आश्रय की खोज करने लगी, जो उसे सुख-शान्ति का मार्ग दिखा सके। तभी भगवत्-कृपा से भारत के अनेक भागों में सन्त-भक्त और आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने प्रेमभक्ति को ही परम-धर्म बता कर मानव-जीवन के साथ जुड़ी हुई कर्म-काण्ड,

बहु देववाद और विविध दार्शनिक विडम्बनाओं से बचा कर अपनी सहज स्वाभाविक स्थिति में स्थित कर दिया।

सोलहवीं शताब्दी में समय के थोड़े-थोड़े अन्तर से क्रमशः प्रकट होने वाले समर्थ सन्त श्री वल्लभाचार्य, श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु एवं गो॰ श्री हित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु ने श्री मद्भागवत का प्रकट या अप्रकट आधार लेकर मानव-मात्र को समर्थ आश्रय दिया। श्री वल्लभ के अनुयायी आठ सुकवि भक्तों ने व्रज-भाषा के माध्यम से श्री कृष्ण के प्रति सख्य, वात्सल्य और गोपियों की प्रणय परिपाटी का गान करके एक समृद्ध प्रेम-मार्ग की स्थापना की। इसी प्रकार श्री चैतन्य ने श्री मद्भागवत को वेदों का सार बता कर प्रेमलक्षणा भक्ति का विस्तार किया। श्री चैतन्य के जीवन में संन्यास के पश्चात् अठारह वर्ष प्रेम उन्माद-दशा में बीते, जिससे प्रेमा-भक्ति का एक व्यापक आन्दोलन पैदा हुआ। श्री चैतन्य के सम्बन्ध में भक्तमाल में श्री नाभा स्वामी ने लिखा है—

नित्यानन्द कृष्ण चैतन्य की भक्ति दसौं दिसि विस्तरी।
गौड़ देस पाखंड मेटि कियौ भजन परायन।।
करुणा सिंधु कृतज्ञ भये अगतिनु गति-दायन।
दसधा रस आक्रांन्त महज्जन चरन उपासे।।
नाम लेत निष्पाप दुरित अघ तिनके नासे।
अवतार विदित पूरव मही उभय महत देहीं धरी।।
(श्री) नित्यानन्द कृष्ण चैतन्य.....।।

यद्यपि रचना के नाम से श्री चैतन्य के आठ श्लोक मात्र हैं, जिनमें दैन्य और विरह के अतिरिक्त कोई दार्शनिक सूत्र नहीं हैं किन्तु उनके प्रेममय चरित्र से भारत के पूर्वी भाग उत्कल, बङ्ग, गौड़ और असम निवासियों को भक्ति का वरदान मिला। पश्चात् श्री चैतन्य के अनुयायियों ने श्री मद्भागवत को सर्वोपरि प्रमाण मानकर दार्शनिक मत की स्थापना की जिसे "अचिन्त्य भेदाभेद वाद" कहा जाता है।

गो॰ श्री हित हरिवंश ने भी श्री चैतन्य की भाँति किसी दर्शन सिद्धान्त का अपने व्रज एवं संस्कृत वाङ्मय में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। उनका

जीवन शुद्ध प्रेममय था एवँ दार्शनिक सिद्धान्तों की ऊहापोह से रहित था। विवाद में तो दार्शनिक मतों की प्रतिष्ठा है परन्तु प्रेम-सिद्धान्त में नहीं। प्रेम-सिद्धान्त के परिपालन के लिए तो प्रेमपूर्ण निश्छल मन, कर्म एवं वाणी की मात्र आवश्यकता है। ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि ओरछा के राजपंडित भक्त-कवि श्री हरिराम व्यास गोस्वामी श्री हित हरिवंश के एक पद को सुनकर ही श्री वृदावन आये थे और श्री हित जी से शास्त्र-चर्चा करके अपने संशयों को मिटाना चाहा था, किन्तु शास्त्र-चर्चा से पूर्व श्री हित जी महाराज ने स्वरचित एक पद के द्वारा श्री व्यास जी के समस्त संशयों का विच्छेदन कर, उनका प्रेम-पथ प्रशस्त किया और उसी समय से श्री हरिराम व्यास सुदृढ़ वृन्दावन -वास करके पूर्ण समर्पण भाव से सन्तों की सेवा में लीन हो गये। वह पद इस प्रकार है—

यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि, कौनैं सचु पायौ।
जहँ-तहँ विपत्ति जार जुवती लौं, प्रगट पिंगला गायौ।।
द्वै तुरंग पर जोरि चढ़त हठि, परत कौन पै धायौ।
कहि धौं कौन अंक पर राखै, जौ गनिका सुत जायौ।।
(जै श्री) 'हित हरिवंश' प्रपंच बंच सब, काल-व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा पद, कमल-संगि सिर नायौ।।

(श्रीहित चौरासी, ५९)

गो॰ श्री हित हरिवंश बत्तीस वर्ष की आयु में विक्रम संवत् पन्द्रह सौ इक्यानवे (१५९१) में देवबन्द से वृन्दावन आये और अपने महाप्रयाण पर्यन्त व्रज-भूमि से बाहर नहीं गये। उनकी प्रेमपूर्ण जीवनचर्य्या और प्रेम-रस से ओतप्रोत अनुभव- पूर्ण वाणी-पदों के माध्यम से एक विशाल प्रेम-भक्ति के सम्प्रदाय का स्थापन हुआ। इन पदों में श्री हित जी के नित्य नूतन अनुभव पूर्ण प्रेम का अद्भुत स्वरूप चित्रित है। इन प्रेमासिक्त पदों की शक्ति अद्भुत रूप से इन्हीं पदों में विद्यमान है, जिसके श्रवण मात्र से जीवन में परिवर्त्तन होने की अनेक घटनाऐं सम्प्रदाय के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। रसिकाचार्य

गो॰ श्री हित हरिवंश की यह वाणी सम्प्रदाय में सर्वोपरि रूप से प्रमाण कोटि में स्वीकृत है। निर्भ्रान्त अनुभवपूर्ण होने के कारण वेद-वाणी की भाँति स्वतः प्रामाण्य है। इस सम्बन्ध में श्री सेवक जी के वचन द्रष्टव्य है—

समुझौ श्री हरिवंश सुबानी। रसद मनोहर सब जग जानी।।
कौंमल ललित मधुर पद श्रैंनी। रसिकन कौं जु परम सुख दैंनी।।
श्री हरिवंश नाम उच्चारा। नित्य विहार रस कह्यौ अपारा।।
श्री वृंदावन भूमि बखानौं। श्री हरिवंश कहे तें जानौं।।

(श्री सेवक वाणी-चतुर्थ प्रकरण, १)

श्री हरिवंश जु श्री मुख भाखी। सो बन भूमि चित्त में राखी।।
हौं लघु-मति नहिं लहौं प्रमाना। जानत श्री हरिवंश सुजाना।।

(श्री सेवक वाणी-चतुर्थ प्रकरण, २)

रास रस रचित बानी जु प्रगटित जगत,
सुद्ध अविरुद्ध परसिद्ध जानी।
स्यामा-स्याम प्रगट-प्रगट अक्षर निकट,
प्रगट रस श्रवत अति मधुर बानी।।
सो जु बानी रसिक नित्य निसि-दिन रटत,
कहत अरु सुनत रस-रीति जानी।
ताहि तजि और गाऊँ न कबहूँ कछू,
प्रान रमि रही हरिवंश-बानी।।

(श्री सेवक वाणी-चतुर्थ प्रकरण, ४)

जाति-पाँति कुल कर्म-धर्म व्रत, संसृति हेतु अविद्या नासी।
सेवक-रीति प्रतीति प्रीति हित, विधि निषेध शृंखला विनासी।।
अब जोई कही करैं हम सोई, आयसु लियैं चलैं निजु-दासी।
मन-क्रम वचन त्रिशुद्ध सकल मत, हम श्री हित हरिवंश उपासी।।

(श्री सेवक वाणी-अष्टम प्रकरण, २)

गोस्वामी श्री हित हरिवंश की वाणी अन्तः साक्ष्य किंवा वेद के समकक्ष मानकर सम्प्रदाय के अनुयायी रसिकों ने हित हरिवंश के द्वारा प्रगटित प्रेम-लक्षणा-भक्तिमय नित्य-विहार को सारे भारत में प्रसारित किया। श्रीहितजी के कतिपय पदों में पुरातन भक्ति परम्परा का स्वीकार्य सहज रूप से इस प्रकार वर्णित है—

आरती मदन गोपाल की कीजियै।
देव रिषि, व्यास, शुक दास सब कहत निजु,
क्यौं न बिनु कष्ट रस सिंधु कौं पीजिये।।

(स्फुट वाणी पद १८)

इस पद में श्री हित जी के मदन गोपाल नव किशोर की प्रपत्ति-आर्ति को देवर्षि नारद, वेद-व्यास, कृष्ण द्वैपायन, शुकदेव एवं अन्यान्य सभी पूर्ववर्त्ती आचार्यों ने अपना वेद-सम्मत उपासनीय पथ बताया है, जिसका आशय है कि श्रीहित सम्प्रदाय श्रुति-मार्ग का अनुगत एवं वेद-शास्त्र सम्मत है।

इसी प्रकार "हित चौरासी" के पद में श्री राधा के स्वरूप का निर्देश करते हुए उन्होंने श्रीराधा क्रो श्रीकृष्ण की आराध्या बताया है, जो श्रीकृष्ण श्रुति प्रतिपाद्य ब्रह्म तो हैं ही, ब्रह्मा और शिव के लिये भी वन्दनीय चरण हैं।

सुनि मेरौ वचन छबीली राधा।
तैं पायौ रस सिंधु अगाधा।।
तू वृषभानु गोप की बेटी।
मोहन लाल रसिक हँसि भेटी।।
जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापै तैं बनफूल बिनाये।।
जो रस नेति-नेति श्रुति भाष्यौ।
ताकौ तैं अधर-सुधा रस चाख्यौ।।

तेरौ रूप कहत नहिं आवै।
(जै श्री) 'हित हरिवंश' कछुक जस गावै।।

(श्री हित चौरासी पद १८)

श्री हित हरिवंश की वाणी का वर्ण्य विषय केवल श्री राधा-कृष्ण की विशुद्ध प्रेम काममयी क्रीड़ा है, जिसे केवल रस-दृष्टि से ही देखा समझा जा सकता है। सम्प्रदाय के प्रथम भाष्यकार श्री सेवक जी ने बताया है कि वृन्दावन की नित्य-केलि यह वाणी ही है। इस वाणी में युगल के कुञ्ज प्रति कुञ्ज में विहार का वर्णन है। जब युगल सघन वन-वीथियों में गल-बहियाँ देकर चलते हैं, तब इतने प्रेम-विह्वल हो जाते हैं कि वे देह का भान भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में वृन्दावन प्रशस्त-पथ प्रदान करता है और इस परमानन्दमय हित रस का अवलोकन-आस्वादन रसिक-जन करते हैं। श्री हित हरिवंश की वाणी का आश्रय लिये बिना इस प्रेम की अनुभूति असम्भव है। वैष्णव सिद्धान्त में नाम और नामी का जिस प्रकार अभेद है, उसी प्रकार श्रीहित सम्प्रदाय में वाणी और उसके वर्ण्य युगल-विलास का तादात्म्य है। सम्प्रदाय के अनुगत महानुभावों ने वाणी को युगल का तनु माना है। वाणी का आधार लिये विना श्रीवृन्दावन का नित्य-विहार देख और समझ पाना असम्भव है।

इस प्रकार वाणी को वेद-प्रामाण्य की भाँति रस-प्रामाण्य माना है। वेद तो उस परम तत्त्व को रस कह कर (रसो वै सः) चुप हो जाता है किन्तु "वाणी" उस रस को आस्वाद्य रूप में प्रत्यक्ष कर देती है। इसीलिए वाणी में प्रत्यक्ष किये गये रस-विलास के लिए वाणी ही अन्तिम प्रमाण है।

गो॰ हित हरिवंश की वाणी में से प्रकाशित होने वाला उपास्य तत्त्व (प्रमेय तत्त्व) "हित" है। हित एक भाव है, जो श्रोत्रिय ज्ञान के समकक्ष और अन्याश्रय से मुक्त है। श्रुतियों के ज्ञान द्वारा अनुभव होने वाला परतत्त्व-ब्रह्म है और भाव द्वारा अनुभव होने वाला परतत्त्व सगुण साकार ब्रह्म है। यद्यपि दोनों एक हैं, तथापि अनुभूति के मार्ग दो हैं। इस पर भक्ति-मार्गीय आचार्यों द्वारा विस्तृत विवेचन हमें आचार्यों के परवर्त्ती सन्दर्भ-ग्रन्थों में मिलता है।

श्रुतियों में जिस परतत्त्व को निर्गुण निराकार बताया है, वहीं उन्हीं श्रुतियों में उसे सगुण साकार और रस-स्वरूप भी कहा गया है। शंकराचार्य ने बताया है कि जो ब्रह्म माया के स्पर्श से रहित है, वही माया सम्वलित होकर सगुण है। वैष्णवाचार्यों ने पुराणों एवं आगम शास्त्रों के आधार पर ब्रह्म को अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस आदि की स्वीकारिता पूर्वक उस (पर-तत्त्व ब्रह्म) को सगुण, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस बताया है। अतः भाव के उद्दीपन के लिए सगुण साकार विषय रूप ब्रह्म की आवश्यकता है। तात्पर्य ज्ञान-मार्ग में परमात्मा की एकमेकता को अन्तिम उपलब्धि माना जाता है, किन्तु भाव-मार्ग में सेवक -सेव्य भाव के सम्मुख "परमात्मा की एकमेकता, को अत्यन्त तुच्छ बताया गया है।" इस सम्बन्ध में भगवान् कपिल की यह उक्ति प्रख्यात है—

"सालौक्य सार्ष्टि सामीप्य सायुज्येक त्वमप्युत।
दीयमानं न गृहणन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।"

(श्रीमद्भागवत ३।२९।१३)

अर्थात् परमात्मा के साथ एकत्त्व होने की चार प्रकार की मुक्तियाँ मेरे भक्तगण स्वीकार नहीं करते और केवल मेरा सेवन चाहते हैं।

और इसीलिए भी श्रीमद् रूप गोस्वामी ने उत्तमा भक्ति का लक्षण किया है कि अन्य अभिलाषाओं से शून्य, ज्ञान-कर्मादि से अनावृत अनुकूलता पूर्वक भगवान श्री कृष्ण का अनुशीलन ही शुद्ध और उत्तमा भक्ति है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मात्मैक्य की अपेक्षा भेदभाव से भगवान् का सेवक अधिक आनन्दमय है। अतः आगम-शास्त्रों के प्रामाण्य में भाव-मार्ग का आश्रय लेने वाले भक्त जनों का अनुभव ही अन्तिम प्रमाण है।

अस्तु तत्त्व की संक्षिप्त वार्त्ता के उपरान्त अब हम प्रमेय (उपास्य) तत्त्व के सम्बन्ध में हितसम्प्रदाय के पूर्ववर्त्ती आचार्यों, वाणीकारों और सन्त-भक्तों के अनुभवों एवँ सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे।

प्रमेय तत्त्व

आचार्य श्री हित हरिवंश की वाणी किंवा रचनाओं से सिद्ध होने वाला प्रमेय (उपास्य) तत्त्व "हित" किंवा "प्रेम" है। प्रेम का महत्त्व सर्वत्र सबको स्वीकार है। भगवद्-प्राप्ति का यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। आगम, निगम और पुराणों में प्रेम को भगवद् प्राप्ति का श्रेष्ठतम साधन बताया है। वैष्णवागमों, पुराणों से लेकर राम, कृष्ण, विष्णु के उपासक सम्प्रदायों में सर्वत्र ही प्रेम की महिमा गायी गयी है। इसे कहीं-कहीं तो भगवान् का ही स्वरूप बताया गया है। इस प्रकार प्रेम ही एक ऐसा तत्त्व सिद्ध होता है, जिसके आधीन भगवान् और भक्त दोनों ही रहे आते हैं। श्री हित हरिवंश ने बताया है कि प्रेम अथवा हित ही एक-मात्र स्वतन्त्र और अन्तिम सत्ता है एवँ भगवान्, भक्ति, भक्त ये सभी इसी के विभिन्न रूप हैं। यह सम्पूर्ण विश्व प्रपञ्च प्रेम रूपी पर तत्त्व का अखण्ड और अनन्त विलास है। प्रेम परमाराध्य भगवत्तत्त्व है। प्रेम ही आत्मा है, प्रेम ही परमात्मा है। जीवन के समस्त व्यापार प्रेम के लिए हैं।[१] राधावल्लभीय सम्प्रदाय में प्रेम के लिए 'हित' शब्द का वहुधा प्रयोग है। श्री हित हरिवंश की इष्ट एवं गुरु प्रेम-स्वरूपिणी श्रीराधा हैं इसलिए हित ही गुरु है और वे ही इष्ट हैं। इष्ट और गुरु का तात्त्विक अभेद सभी वैष्णव सम्प्रदायों को अभीष्ट है। अपने स्वरचित ग्रन्थ "श्री राधा-रस-सुधा-निधि" में गो॰ हित हरिवंश ने गुरु के भजन का निर्देश किया है। वहीं उन्होंने अपनी परमाराध्या श्रीराधा का स्मरण 'घनानन्दमूर्त्ति' एवं 'अमन्द प्रेम लक्ष्मी'[२] के रूप में भी किया है।

श्रीहित सम्प्रदाय में प्रेम भोक्ता, भोग्य एवँ प्रेरक के रूप में स्वीकार्य है। सामान्यतया भोक्ता, भोग्य और प्रेरक क्रमशः जीव, जगत् और ईश्वर को लक्षित कराते हैं परन्तु इन तीनों के सम्बन्धों की एकता 'प्रेम तत्व' में ही प्रका-

१. आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति (वृहदारण्यक ५०२-४-५)
२. रा॰ र॰ सु॰ नि॰ – श्लोक सं. ८१ एवँ १२६

शित होती है। भोक्ता और भोग्य स्वतन्त्र होते हुए भी एक दूसरे के अधीन हैं। प्रेरिता–'प्रेम' भोक्ता, भोग्य की रति का स्वरूप है। इस कारण उसे दास, सखा किंवा सखी के समान भोक्ता, भोग्य का प्रेरक कहा जा सकता है। भोक्ता-प्रेम अभिलाषामय है, अतएव उसका वर्ण श्याम है। भोग्य-प्रेम स्वभावतः उदार एवं प्रसन्न है अतएव उसका वर्ण गौर है। पृथ्वी पर अवतार लेने वाले प्रेम रूपी समस्त अवतारों में सर्वोत्कृष्ट प्रेम का उत्कर्ष श्री राधा-कृष्ण के अवतार में हुआ है। इन नन्दनन्दन – वृषभानु नन्दिनी के प्रेम-विलास को प्रेरणा देने वाली सखियाँ हितसन्धि हैं। प्रेम-रस की जड़िमा का स्वरूप श्री वृन्दावन है। तात्पर्य यह है कि एक हित ही श्री नन्दनन्दन, श्री वृषभानु -नन्दिनी, श्री वृन्दावन एवं सहचरीगण के रूप में नित्य प्रकट है। इस हित की उज्ज्वल रसमयी प्रेम-क्रीड़ा का नाम ही 'नित्य-विहार' है और यह नित्य-विहार रस हितमय अभिलाषा का वैभव है। यही खेल है और यही खिलाड़ी है। यही साध्य है, यही साधना। यथा—

श्री राधा हितरूपा हि, श्री कृष्णो हितरूपकः।
ललिताद्या हितरूपा हि, श्रीमद् धाम च हितमयम्।।
यमुना हित रूपा च, निकुञ्ज हित रूपकम्।
शय्या हित रूपा वै, विहारं हितमयं विदुः।।
हितेन प्राप्यते राधा, हितेन सखि यूथयाः।
हितेन प्राप्यते धाम, हितनैव रसज्ञता।।
यत्किञ्चित् दृष्यते सृष्टौ, सर्वं हितमयं विदुः।
तस्मात् विवेक निपुणै, रुपास्यो हित-चन्द्रमा।।

अर्थात् श्री राधा और श्री कृष्ण हित के ही रूप हैं। इसी प्रकार ललिता-दिक सहचरी श्री धाम वृन्दावन, यमुना, निकुञ्ज, शय्या और समस्त लीला रसमय विहार हित है और हितमय है। हित से ही श्री राधा, सखी समुदाय शिरोमणि हित-सजनी एवं हितमय श्री वृन्दावन एवं हित-विहार की रसज्ञता

आदि सभी कुछ "हित" है। सारांश यह है कि जो कुछ दृश्य-अदृश्य सृष्टि है, सब हितमय है। इसलिए विवेक निपुण उपासक का उपास्य-तत्त्व 'हित-चन्द्रमा' ही है।

श्री हित हरिवंश की वाणी में सर्वत्र इसी नित्य-विहार का प्रगट गान है, जो यत्र-तत्र पदों में "आजु" (वर्तमान कालवाची) शब्द से प्रारम्भ होती है। यथा—

आजु प्रभात लता मंदिर में.....
आजु निकुंज मंजु में खेलत.....
आजु मेरे कहैं चलौ मृग-नैंनी.....
आजु गोपाल रास-रस खेलत.....
आजु नीकी बनी राधिका नागरी.....इत्यादि।

हित की नित्य आरम्भ होने वाली यह नित्य-विहार लीला परम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, जो नित्य नूतन बनकर नित्य रमणीय बनी रहती है। श्री ध्रुवदास जी के शब्दों में—

न आदि न अन्त विहार करैं दोउ, लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।
नई-नई भाँति नई छवि कांति, नई नवला नव-नेह विहारी।।
रहे मुख चाहि दियैं चित आहि, परे रस-प्रीति सु सर्वसु हारी।
रहैं इक पास करैं मृदु हाँसि सुनौ 'ध्रुव' प्रेम अकत्थ कथारी।।

हित किंवा प्रेम का यह नित्य-नूतन आरम्भ अद्वय युगल के बिना असम्भव है। युगल का एक हो जाना ही प्रेमानुभव है। अतएव यह हित ही अद्वय हित है। यह अद्वय युगल प्रेमानुभव के लिए सदा व्याकुल रहता है। कभी विवश होता है, कभी चैतन्य होता है यथा—

इक हित द्वै बिनु होत नहिं, दोऊ मिलि इक होइ।
विवस एक हित जानियैं, चेतन इक तें दोइ।।

जब हित व्याकुल होत फिर, आवत सुधि तन माँहि।
यह परगट नित होत जहाँ, एकहि द्वै दरसाहिं।।

(केलि-कल्लोल)

हित के सहज भोक्ता-भोग्य श्री राधामाधव नित्य प्रगट हैं। इनके नित्य-विहार की भाँति इनका जन्म भी नित्य नित्य वर्तमान है। यह दोनों नित्य-किशोर रूप में नित्य जन्म ग्रहण करते हैं, अतएव यह सिद्धान्तः निश्चित है कि श्री हित हरिवंश का उपास्य-तत्त्व 'हित' नित्य है, तथापि उन्होंने राधा-कृष्ण के पौराणिक रूप को उतने ही अंश में स्वीकार कियाहै जहाँ तक युगल की कैशोर लीला है, क्योंकि किशोरावस्था में ही प्रेम का नित्य नूतन उत्कर्ष है; जो रासलीला पर केन्द्रित है। सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार राधा-कृष्ण, सखी और वृन्दावन की समस्त प्रकट और अप्रकट लीलाएँ प्रेम किंवा हित की ही लीलाएँ हैं। उपासना की दृष्टि से हित की इन विभिन्न लीलाओं का प्राकट्य 'हित' नाम से ही माना गया है, जैसे नामी से नाम का। ऐसे ही नाम में नामी प्रकट है। राधावल्लभीय सिद्धान्त में श्यामा-श्याम के नाम- गुण का प्रकट रहना उनकी लीला का प्रकट रहना है। सेवक जी कहते हैं—

नाम वानी निकट स्याम-स्यामा प्रगट
रहत निसिदिन परम प्रीति जानी।

नाम और नामी का वृक्ष-बीज जैसा सम्बन्ध है। परमानन्दमय गौर-श्याम, सहचरी और विपिन चारों ही "हित-रस-सिन्धु" के चार चन्द्रमा हैं। इन चारों से हित नाम प्रकट हुआ है, यथा वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष। यह हित नाम ही श्री हरिवंश नाम है। अतएव हित स्वरूप हरिवंश ही चार रूपों में प्रकट हैं। श्री हरिवंश की वाणी में उनके स्वरूपगत प्रीति-वैभव का ही वर्णन है, जिसके वे द्रष्टा हैं और वही उनका स्वरूप भी है। इस प्रकार उपास्य और उपासक दोनों का रूप हित में प्रकाशित है। हित ही भोक्ता एवं भोग्य है, उपासक और उपास्य है एवं आश्रित और आश्रय है। इसलिए हित स्वरूप

श्री हरिवंश, श्री राधा नाम की आराधना करते हैं। वे संसार में आराधक रूप में प्रकट हैं और वे अपने ही आराध्य रूप की आराधना करते देखे जाते हैं। इसीलिए श्री हरिराम 'व्यास' ने उन्हें रस और रसिकों का आधार बताया एवं सेवक जी ने उन्हें पूर्ण हित का स्वरूप माना तथा उनके रस-सिद्धान्त की व्याख्या की और यह भी बताया की हित का यह धर्म वहाँ स्थित है, जहाँ प्रेम का समुद्र सतत प्रवहमान् है। ऐसा प्रेमस्वरूप श्री वृन्दावन नित्य प्रकट है। सम्पूर्ण भक्ति इसका साधन है। श्री सेवक जी ने अपनी सम्पूर्ण वाणी में श्यामा-श्याम की केलि को ही हित-स्वरूप श्री हरिवंश की केलि बताया और उनके लोक-लीला चरित का पृथक् रूप से कहीं कोई वर्णन नहीं किया। यथा—

जनम करम गुन रूप अपार, बाढ़ै कथा कहत विस्तार।
बार-बार सुमिरन करौं, हौं लघु मति जु अंत नहिं लहौं।।

(श्रीसेवक वाणी-प्रथम प्रकरण, ३)

सब हरि सम गुन रूप अपार, महापुरुष प्रगटे संसार।
मार विमोहन तनु धरौ, ...।।

(सेवक वाणी-प्रथम प्रकरण, १०)

अस्तु उपर्युक्त सिद्धान्त के प्रमुख तथ्यों का संक्षिप्त परिगणन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. राधावल्लभीय सिद्धान्त में हित ही सर्वोपरि परात्पर तत्त्व है, जो सहज रूप से तत्सुखमय है और वही 'हित' प्रेमभक्ति का आलम्बन है।

२. प्रेम को ही सर्वोपरि भगवद् स्वरूप मानने वाले राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सिद्धान्त का विकास और विस्तार प्रेम के मनोवैज्ञानिक स्वरूप के आधार पर किया गया है।

३. प्रेम दो व्यष्टियों के बीच का एक मधुर सम्बन्ध है, जिसकी रचना प्रेम, प्रेमी और प्रेम-पात्र के योग से होती है।

४. सम्प्रदाय में प्रेमी को भोक्ता, प्रेमपात्र को भोग्य और प्रेम को प्रेरक कहा गया है।

५. श्री नन्दनन्दन एवं श्री वृषभानु-नन्दिनी परात्पर प्रेमतत्त्व के सहज नाम एवं सहज रूप हैं।

६. परात्पर हित तत्त्व दो रूपों में ध्येय एवँ ज्ञेय नाम से परिलक्षित है। ज्ञेय (ज्ञान का विषय) अनन्त नाम एवं भावों से चराचर व्यापी एवं ध्येय रूप से नन्दनन्दन, वृषभानु-नन्दिनी, सहचरीगण एवं वृन्दावन के रूप में नित्य प्रकट है।

७. श्री श्यामा-श्याम की क्रीड़ा नित्य वर्तमान मानी गयी है। हित चौरासी का बार-बार प्रयुक्त "आजु" शब्द इसका सूचक है।

८. पुराण-वर्णित राधाकृष्ण की लीलाएँ ब्रज-लीला है। हित चौरासी और उसके अनुगत साहित्य का लीला वर्णन निकुञ्ज-लीला है। इन दोनों प्रकार की लीलाओं में प्रेम के दो रूप प्रकट रूप से परिलक्षित होते हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, जो रसिक सन्तों की वाणियों में निर्भ्रान्त भाव से उल्लि- खित हैं। राधावल्लभीय सिद्धान्त में प्रेम तत्त्व के चार स्वरूप श्री राधा, श्री श्यामसुन्दर, सहचरीगण और वृन्दावन नित्य प्रकट माने गये हैं। चारों का एकीभूत रूप 'श्री हरिवंश' है। अतः चारों की पारस्परिक-केलि श्री हरिवंश की केलि मानी गयी है।

९. सम्प्रदाय में इष्ट और गुरु एक दूसरे से सर्वथा ओत-प्रोत हैं यथा—

श्री हरिवंश नित्य वर केलि। बाढ़त सरस प्रेम रस वेलि।
मेलि कंठ भुज खेलहीं .....।।

(श्रीसेवक वाणी २-१)

हित तत्त्व का रस रूपत्व

"हित" नित्य निरन्तर क्रीड़ा-परायण तत्त्व है। इसकी क्रीड़ाएँ अनन्त

भावों और रूपों में विलसित होती रहती है, जिससे क्रीड़ा वैचित्र्यी का प्राकट्य होता रहता है। वात्सल्य, सख्य आदि की रस लीलाएँ हित की ही लीलाएँ हैं किन्तु उनमें हित के पूर्ण स्वरूप की अभिव्यक्ति न होने के कारण मर्मज्ञ रसिकों ने उज्ज्वल रस को ही सर्वोपरि सुन्दर और समृद्ध हित की क्रीड़ा माना है। अलङ्कार शास्त्रियों ने भी काव्य-रसों में शृङ्गार-रस को रस-राज का पद दिया है। शृङ्गार-रस का स्थाई भाव 'रति' है। यह 'रति' विभिन्न कारण और कार्यों के योग से विभिन्न रसों के रूप में आस्वादित होती है, तब इस की संज्ञा 'प्रेम' हो जाती है।

रस अथवा भाव प्रायः तीन स्थानों में देखा जाता है लोक में, काव्य में और भगवद्भक्तों में। लोक का लौकिक काम भाव ही कवि प्रतिभा से अलौकिक व्यवहार—व्यापार का योग पाकर रसिक जनों का संवेद्य होकर शृङ्गार-रस कहलाता है। लोक के जुगुप्सित कर्म ही कवि-प्रतिभा से अलङ्कृत होकर आनन्द विधायक रस बन जाते हैं; अतएव काव्य में क्रमशः यह विभाव, अनुभाव एवं संचारी-भाव कहलाते हैं। काव्य-क्षेत्र में इस लोक-रस-प्रेम को ब्रह्मानन्द के समतुल्य भी बताया गया है किन्तु सत्य तो यह है कि यह काव्य-रस नित्य नहीं, अनित्य है। यह नित्य इसलिए नहीं है क्योंकि यह लोक के कृत्रिम कार्य—व्यवहारों से सम्पन्न होता है। इस काव्य रस से एकदम विलोम भक्ति-रस है। तैत्तिरीय-उपनिषद् अपने प्रतिपाद्य परम तत्त्व को रस-स्वरूप बताती है (रसो वै सः)। रस-स्वरूप होने के कारण उसमें आनन्द की अवि-च्छिन्न स्थिति है। वहीं पर श्रुति पुनः निर्देश करती है **''रसं ह्यो वायं लब्ध्वानंदी भवति''**। इसलिए भगवद्भक्त-गण अपने भगवान् को 'निखिल रसामृत मूर्ति' मानते हैं।

राधावल्लभीय रसिकों ने काव्य-रस एवं उसकी परिपाटी को किसी अंश में भी स्वीकार न करके रति किंवा प्रेम को ही आस्वाद्य-रस स्वीकार किया है। सम्प्रदाय के सिद्धान्त अनुसार यह प्रेम अद्वय युगल स्वरूप है और वे

अद्वय युगल श्री श्यामा-श्याम हैं। वे प्रेम के कारण ही हैं और कार्य भी। वे शृङ्गार-रस के आलम्बन विभाव हैं और प्रयोजक भी। इसीलिए श्री ध्रुवदास जी ने कहा है कि इस रस में नायक-नायिका न होकर स्वयं रस ही केलि का प्रयोजक है।

नायक तहाँ न नायिका, रस करवावत केलि।

श्री हित हरिवंश के आराध्य प्रेमस्वरूप श्री श्यामा-श्याम जल-तरङ्गवत् एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। इनकी क्रीड़ा अनादि और अनन्त है, साथ ही प्रेम मदनमयी है। आशय यह है कि उनके हृदय में "प्रेम" एवं "मदन" के दो समुद्र सदा प्रवाहमान् रहते हैं, जिससे वे कभी विवश और कभी चैतन्य होते रहते हैं। इस प्रकार दोनों प्रतिक्षण मधुर-रस का उपभोग करते रहते हैं, इनका प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म है।

प्रेम मदन के सिंधु द्वै बहत रहत दिन हीय।
कबहुँ बिबस चेतत कबहुँ छिन-छिन प्यारी पीय।।
छिन-छिन प्यारी पीय मधुर रस बिलसत ऐसे।
सूक्षम प्रेम की बात कहौ कोऊ बरनै कैसे।।

(भजन कुंडलिया)

श्यामा-श्याम का यह प्रेम पारस्परिक काम-केलि के योग से नित्य निरन्तर हरा-भरा और आस्वाद्य बना रहता है, उसी प्रकार रसिक उपासक का प्रेम युगल-केलि के चिन्तन योग से रस-रूप बना रहता है। गो॰ हित हरिवंश ने युगल-केलि-रसपान को ही अपना चरम एवं परम सुख बताया है। वे कहते हैं—

उभय संगम सिंधु सुरत पूषन बंधु,
द्रवत मकरंद (श्री) हरिवंश अलि पावै।

इसी प्रकार अन्यत्र श्री हिताचार्य ने कहा है कि मेरे द्वारा वर्णित श्री कृष्ण का आस्वाद्य रसामृत-सार श्री राधा के सुकुमार चरणों में रति-प्राप्त

कराने वाला है। इस रस को श्री हित हरिवंश के अनुयायी रसिक सन्तों ने "वृन्दावन-रस" की संज्ञा दी है। यह वृन्दावन-रस नित्य-विहार की सखियों का उपास्य एवं आस्वाद्य-भाव है। श्री ध्रुवदास ने अपने भजनाष्टक नामक ग्रन्थ में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं शृङ्गार से भी विलक्षण इसे महा "मधुर-रस" कहा है। इसलिए कि इसमें प्रेमोल्लास कभी मिटता ही नहीं। प्रेम के सामान्य सिद्धान्त विरह-मिलन, संयोग-वियोग आदि द्वन्द्वों से विलक्षण यह 'मधुर-रस' अथवा 'वृन्दावन-रस' भक्ति-रसों के शृङ्गार किंवा उज्ज्वल-रस से भिन्न है। सम्प्रदाय के रस ग्रन्थों में इसको कहीं-कहीं अद्भुत-रस, रसिक रस, मंगल-रस आदि नामों से भी प्रकट किया गया है। श्री हित हरिवंश का प्राकट्य इसी वृन्दावन-रस-गान के लिए हुआ था। इनकी "हित चौरासी" वृन्दावन रस का गान है—

करुनानिधि अरु कृपानिधि, श्री हरिवंश उदार।
"वृंदावन-रस" कहन कौं, प्रगट धर्‌यौ अवतार।।

(श्री ध्रुवदास-रस-मञ्जरी)

श्री हरिराम 'व्यास' ने भी स्वाभाविक पक्षपात पूर्वक अन्य सब रसों से विलक्षण इस रस को 'वृन्दावन-रस' कहा है—

वृंदावन-रस मोहि भावै हो।
ताकी हौ बलि जाऊँ सखी री, जो मोहि आन सुनावै हो।।
वेद पुरान और भारत भाखै सो मोहि कछु न सुहावै हो।
मन वच क्रम स्मृति हूँ कहत है मेरे मन नहिं आवै हो।।
कृष्ण-कृपा तब ही भलै जानौं रसिक अनन्य मिलावै हो।
'व्यास दास' तेई बड़भागी जिनके हिय यह आवै हो।।

('व्यास-वाणी', पृष्ठ ७३-७६)

श्री ध्रुवदास ने 'प्रेमावली' में बताया है कि कृपा के अतिरिक्त इस रस की प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है—

यह रस समुझनि कौं कछू , नाहिंन आन उपाइ।
प्रेम दरीची जो कबहुँ, सहज कृपा खुलि जाइ।।

उपरोक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि राधावल्लभ-सम्प्रदाय शुद्ध रसोपासक सम्प्रदाय है और इसके उपास्य-रस का नाम 'वृन्दावन-रस' है, जो वस्तुतः वह प्रेम रस है, जिसका श्री श्यामा-श्याम अहर्निश उपभोग करते हैं। रसिकों की वाणी में इसी प्रेम के उपभोग और उसकी प्रक्रिया का बड़ा ही मार्मिक गान और विवेचन है। इस प्रेम-रस की मुख्य आस्वादिका नित्य-विहार की तत्सुख भावापन्न सखियाँ हैं। इन सखियों की कृपा से उपासकों के चित में उपरोक्त 'वृन्दावन-रस' सहज रूप से अनुभव में आत' है।

द्विदल सिद्धान्त

प्रेम उपासकों ने एवं काव्य-शास्त्रियों ने भी शृङ्गार के दो भेद माने हैं— एक संयोग, दूसरा वियोग। कुछ आचार्य वियोग में रस की पूर्ण पुष्टि मानते हैं और कुछ संयोग में। श्री हिताचार्य ने चकई और सारस के दृष्टान्त से संयोग-वियोग दोनों को अपूर्ण स्थिति बताया है। प्रकृत्या सारस नित्य संयोग का प्रतीक है और चकई वियोग का। सारस-पत्नी लक्ष्मणा अपने प्रिय से वियुक्त होने पर जीवित नहीं रहती और चकई प्रत्येक रात्रि में वियोग-ज्वाला का पान करती रहती है। इस पर सारस की उक्ति है कि प्रियतम से वियुक्त होकर चकई का जीवित रहना एक विडम्बना ही है और तब जब कि दोनों के बीच सरोवर के दोनों तटों का अन्तर, अन्धकार- पूर्ण रात्रि, विद्युत् का चाकचिक्य और घन का गर्जन हो और सबसे बड़ी बात प्रातः काल प्रेम जलहीन नेत्रों से प्रियतम चक्रवाक के प्रति प्रेम का प्रदर्शन। श्री हित हरिवंश कहते हैं कि बुद्धिमानों को सारस की इस उक्ति पर विचार करना चाहिये कि प्रेमी चकई का प्राण इस भयानक वियोग की स्थिति में कैसे रह जाता है—

चकई प्रान जु घट रहैं, पिय विछुरंत निकज्ज।
सर अंतर अरु काल निसि, तरफ तेज घन गज्ज।।

तरफ तेज घन गज्ज, लज्ज तुवि वदन न आवै।
जल विहूँन करि नैंन, भोर किहि भाइ दिखावै।।
(जय श्री) हित हरिवंश विचारि, वाद अस कौंन जु बकई।
सारस यह संदेह, प्रान घट रहैं जु चकई।।

(स्फुट-वाणी, ५)

सारस सर बिछुरंत कौ, जौ पलु सहै सरीर।
अगिन अनंग जु तिय भखै, तौ जानै पर-पीर।।
तौ जानै पर पीर, धीर धरि सकै वज्र-तन।
मरत सारसहि फूटि[१], पुनि न परचौ जु लहत मन।।
(जय श्री) हित हरिवंश विचारि, प्रेम विरहा बिनु वा रस।
निकट कंत नित रहत, मरम कहा जानैं सारस।।

(स्फुट-वाणी, ६)

वियोग रस में निमग्न रहने वाली चकई सारस की उक्ति का खण्डन करते हुए कहती है कि हे सारसी! तूने यदि अपने प्रियतम के वियोग में कामाग्नि का पान किया होता तो सम्भव है तू मेरी प्रेम-पीड़ा को समझ सकती। इस प्रेम-पीड़ा को अनुभव में लेने वाला मेरे जैसा कोई वज्र-तनु धारी ही हो सकता है। सारसी, तू तो प्रियतम से वियुक्त होते ही तत्क्षण अपना प्राण विसर्जित कर देती है, जिससे कहा जा सकता है कि तेरा मन प्रेम के वियोग पक्ष का अनुभव-शून्य है, अतएव इस पर श्री हित हरिवंश कहते हैं कि प्रेम-विरह के अभाव में शृङ्गार-रस की स्थिति शोचनीय है। तात्पर्य यह कि निरन्तर प्रियतम के पास रहने वाली संयोगात्मक प्रेम की अनुभवी लक्ष्मणा (सारसी) प्रेम के पूर्ण मर्म से वञ्चित है। इस प्रकार संयोग और वियोग, प्रेम के दोनों रूप अपूर्ण हैं। इन दोनों से विलक्षण 'वृन्दावन-रस' संयोग और वियोग दोनों प्रेम-धर्मों को सूक्ष्म रूप से धारण किये रहने के कारण प्रेम का पूर्ण रूप है।

१. पाठान्तर – "मरत सारस हिय फूटि"।

संयोग की परावधि तो यह है कि दोनों (प्रिया-प्रियतम) एक क्षण के लिए भी वियुक्त नहीं होते और वियोग की सीमा यह है कि नित्य संयुक्त रहने पर भी अपने को अनमिले मानते हैं और अकुलाते हैं। जहाँ संयोग ही विरह रूप हो उसका वर्णन असम्भव है।

देखिबौ जहाँ विरह सम होई, तहाँ कौ प्रेम कहा कहै कोई।

(रहस्य-मंजरी)

प्रेमी बिछुरत नाहिं कहु, मिल्यौ न सो पुनि आहि।
कौन एक रस प्रेम कौ, कहि न सकत 'ध्रुव' ताहि।।

(प्रेमावली)

संयोग और वियोग की स्थिति "वृन्दावन-रस" में अत्यन्त सूक्ष्म है। संयोग और वियोग का जहाँ स्थूल रूप होता है, वहाँ प्रेम भी स्थूल होता है। श्री हित हरिवंश की वाणी में स्थूल प्रेम के भी वर्णन हैं। (देखिये—रा॰ र॰ सु॰ नि॰ श्लोक ४८)

निश्चित है कि देश-काल का अन्तर जितना कम होगा, वहाँ विरह भी उतना ही सूक्ष्म होगा। विजातीय पदार्थों का अन्तर शून्य होने पर प्रेम अत्यन्त तीव्र बनकर सूक्ष्म विरह के रूप में बदल जाता है। इसका भी वर्णन श्री हित महाप्रभु की वाणी में है। (देखिये—रा॰ र॰ सु॰ नि॰ श्लोक ७३) इससे भी सूक्ष्म विरह का उदाहरण चतुरासी की पद संख्या ६० में वर्णित है—

कहा कहौं इन नैंननि की बात।
ये अलि प्रिया बदन अंबुज रस, अटके अनत न जात।।
जब-जब रुकत पलक संपुट लट, अति आतुर अकुलात।
लंपट लव निमेष अतंर ते, अलप कलप सत-सात।।

.....इत्यादि

एवं

तन सौं तन मन सौं जु मन, मिले प्रान अरु नैंन।
तीव्र प्रेम कौ रूप यह, तऊ हिये नहिं चैन।।

इस तीव्र प्रेम की स्थिति में स्थूल मान के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेमाधिक्य के कारण प्रेम-वैचित्र्यी ही मानवत् प्रतीत होती है। यथा—

अतिसय प्रीति हुती अतंरगत,
हित हरिवंश चली मुकुलित मन।
निविड़ निकुंज मिले रस-सागर,
जीते सत रतिराज सुरत रन।।

(हित चौरासी, ४४)

वृन्दावन-रस की विलक्षण रस स्थिति यह है कि रस-सिद्धान्त में भोक्ता और भोग्य अर्थात् नायक और नायिका समान हैं। हित हरिवंश कहते हैं— "दंपति रस समतूल" तथा "बनी श्री हित हरिवंश जोरी उभय गुन गन मात" अर्थात् युगल दम्पति एक दूसरे के गुणों से प्रभावित, पराजित और रस-समतुल्य हैं। इसी प्रकार ध्रुवदास जी ने युगल को समान "आश्रय" और "विषय" के रूप में वर्णन किया है—

प्रेम-रासि दोउ रसिक वर, एक वैस रस एक।
निमिष न छूटत अंग-अँग, यहै दुहुँनि कै टेक।।
अद्‌भुत रुचि सखि प्रेम की, सहज परस्पर होइ।
जैसै एकहि रंग सौं, भरियै सीसी दोइ।।
स्याम रंग स्यामा रँगी, स्यामा के रँग स्याम।
एक प्रान तन-मन सहज, कहिबे कौं दो नाम।।
कबहुँ लाड़िली होत पिय, लाल प्रिया ह्वै जात।
नहिं जानत यह प्रेम रस, निसि दिन कहाँ विहात।।

(श्री ध्रुवदास-रङ्ग-विहार)

श्रीहित महाप्रभु ने श्री राधा-माधव को जल तरङ्गवत् ओतप्रोत बताया

है। इनमें तारतम्य करने से उज्ज्वलतम प्रेम की निष्पन्नता समाप्त हो जाती है। ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री श्यामा-श्याम की रुचि, वय, प्रीति, शील और स्वभाव सब एक ही है, केवल रस-विलास के लिए दो देह हैं—

एक रंग, रुचि, एक वय, एकै भाँति सनेह।
एकै सील, सुभाव मृदु, रस कै हित द्वै देह।।

(श्री ध्रुवदास-रति-मंजरी)

राधावल्लभीय सिद्धान्त में दम्पति "रस-समतुल्य" हैं, तथापि श्री कृष्ण सर्वथा श्री राधा के अधीन हैं। हित-सम्प्रदाय में श्री राधा को अपूर्वत्तम और सहज प्रधानता प्राप्त है। वे रस-दात्री हैं, इसीलिए श्री नाभा स्वामी ने श्री हित हरिवंश की उपासना को श्री राधा-चरण-प्रधान बताया है। अन्य महानुभावों का भी मत है—

जद्यपि दोउन की लगन, सब मिलि कहैं समान।
पै प्यारी महबूब है, प्यारौ आशिक जान।।

श्रीवल्लभ-रसिक (बारह बाट अठारह पैंड़े)

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन से यह निष्पादित होता है कि शृङ्गार-रस के दो-पक्ष संयोग और वियोग दोनों ही काव्य-रसिक जनों के लिए रुचियों की भिन्नता के कारण अलग-अलग रूप से महत्त्वशील हैं। इसी प्रकार भक्ति-रस के क्षेत्र में स्वकीया एवं परकीया, संयोग एवं विरह अपने-अपने रस-स्तर पर महत्वशील हैं किन्तु राधावल्लभीय सिद्धान्त में संयोग और वियोग स्वकीया और परकीया चारों ही अलग-अलग रसानुभूति के भेद प्रकार से प्रेम के एक-रस स्फुरण में बाधक बन जाते हैं। हित-सम्प्रदाय ने संयोग और विरह को स्थूल और सूक्ष्म रूप में स्वीकार किया है। देश-काल के सुदीर्घ अन्तर से संयोग एवं वियोग स्थूल बन जाते हैं, इससे अवतार की नैमित्तिक लीला बनती है। राधावल्लभीय सिद्धान्त में वृन्दावन की नित्य एवं प्रकट लीलाओं में, जिनमें न कहीं जाना है और न कहीं से आना है, प्रेम अपने अत्यन्त सूक्ष्म रूप में वर्तमान रहता है। और ऐसे ही संयोग एवं विरह भी सूक्ष्म बनकर एक ही

काल में उदित रह कर रस के अनुभव को पुष्ट करते रहते हैं। वियोगात्मक मान के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है अपितु मान प्रेम-वैचित्य का अद्भुत प्रेम-मय स्वरूप है।

राधावल्लभीय प्रेम का विशुद्ध स्वरूप

राधावल्लभीय सम्प्रदाय का उपासनीय विशुद्ध प्रेम, अतिशय उज्ज्वल एवं पूर्ण निष्काम है। इसकी प्रकृति और प्रताप विशुद्ध है। यह अङ्ग-विहीन कौतुक और अनिर्वचनीय पदार्थ है। इसके उदय होने पर उपासक के हृदय में आनन्द की अनेक तरङ्गें उठती हैं और यह मन, प्राण, इन्द्रिय, आत्मा सब को सुखमय बना देता है।

पल-पल औरै और विधि, उपजत नाना रंग।
सब अंगनि कौं देत सुख, यह कौतुक बिनु अंग।।

(श्रीध्रुवदास)

श्री ध्रुवदास जी के मत से विशुद्ध प्रेम का स्वरूप, उज्ज्वलता (निष्कामता), निर्मलता विषय-वासना रहित, सरसता, स्निग्धता एवं मृदुता के संयोग से बनता है। इसमें माधुर्य और मादकता सदैव प्रकाशित रहते हैं। यह नित्य-नूतन रुचि से संयुक्त होकर अनुपम, सहज, स्वच्छन्द और सरस बना रहता है। विशुद्ध-प्रेम के उदय होने पर मन को सहज एकाग्रता प्राप्त हो जाती है। इस विशुद्ध प्रेम के वियोग रूपी दुःख की समता विश्व का कोई सुख नहीं कर सकता। तब इसके संयोग सुख की गति का वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ?

जहाँ लगि उज्ज्वल निर्मलताई, सरस सनिग्ध सहज मृदुताई।
अद्‌भुत सरस प्रेम निज सोई, चित चलनि की जिहिं गति खोई।।
जिहि दुख सम नहिं और सुख, सुख की गति कहौं कौन।
वारि डारि 'ध्रुव' प्रेम पर, राज चतुर्दस भौंन।।

(श्रीध्रुवदास—नेह-मंजरी)

प्रेम को विशुद्ध रूप देने वाली प्रथम वृत्ति तत्सुख-सुखित्व है। स्वसुख की कामना प्रेम की अशुद्ध वृत्ति है। रास के मध्य गोपियों को उनके अपने मन में अभिमान एवं सकामता के उदय से श्रीकृष्ण के वियोग का दुःख सहना पड़ा था। श्री हित हरिवंश के द्वारा प्रकाशित नित्य-विहार के प्रेम में श्री राधा-माधव, सहचरी- गण एवं वृन्दावन निरन्तर और सहज ढङ्ग से परस्पर एक दूसरे के सुख से सुखी होने की चेष्टा में रत हैं। श्री हित हरिवंश महाप्रभु ने 'हित चौरासी' के प्रथम पद में ही तत्सुख-सुखित्व का गान किया है—

जोई-जोई प्यारौ करै, सोई मोहिं भावै।
भावै मोहिं जोई-जोई, सोई करैं प्यारे।।

सहचरी-गण तो शुद्ध रति की साक्षात्-मूर्ति हैं। वे युगल को सुख देने की चेष्टा में सदा सलंग्न रहती हैं और उनको सुखी देखकर सुखी होती रहती हैं। हित महाप्रभु कहते हैं—

हित हरिवंश लाल-ललना मिलि हियौ सिरावत मोर।

एवं

हित चिंतक निजु चेरिनु, उर आनँद न समात।
निरखि निपट नैंननि सुख, तृन तोरतिं बलि जात।।

इस प्रेम की गति अति सूक्ष्म है। इस तत्सुखमय प्रेम विधान में खाता कोई अन्य है एवं तृप्त होता कोई और। इसी प्रकार नित्य चिद्घन हितमय वृन्दावन धाम युगल किशोर की रुचि के अनुसार नये-नये परिवेश में ऋतु-काल की दिव्य-छटाओं से युक्त होकर युगल और समस्त परिकर को सुख विलसा कर सम्पूर्ण सार्थकता का अनुभव करते हैं।

विशुद्ध प्रेम की तत्सुखमयी वृत्ति से आगे दूसरी वृत्ति यह है कि प्रेमी, प्रेम-पात्र के प्रति सम्पूर्ण रूपेण अधीन बना रहता है और यह वृत्ति स्वाभाविक है। यह अधीनता प्रेम की शोभा होने के साथ प्रेम-वृद्धि की हेतु भी है। यथा—

सहजहि जल और प्रेम कौ, एक सुभावहिं जानि।
चलत अधिक तिहि ठाँव कौ, पावत जहाँ निवानि।।

(श्री ध्रुवदास-भजन-सत)

यह परवशता प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों में समान रूप से नित्य प्रकाशित रहती है। 'वृन्दावन रस' के सिद्धान्त में माधुर्य मूर्ति श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, अतएव वे अधीनता और दीनता की साक्षात् मूर्ति हैं। उनके इस स्वरूप को इङ्गित करते हुए श्री हित महाप्रभु ने बताया है—

प्रीति की रीति रँगीलौई जानैं।
जद्यपि सकल लोक चूड़ामनि, दीन अपनपौ मानैं।।
जमुना-पुलिन निकुंज भवन में, मान मानिनि ठानैं।
निकट नवीन कोटि कामिनि कुल, धीरज मनहिं न आनैं।।
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यौं, आन-आन सौं बानैं।
(जै श्री) 'हित हरिवंश' चतुर सोई, लालहि छाँड़ि मैंड़ पहिचानैं।।

(श्रीहित चौरासी—४१)

निःसन्देह व्रज-लीला के नायक मधुकर-वृत्तिमय रसिक गोपीजन वल्लभ "वृन्दावन-रस" के क्षेत्र में अनन्य-गति अधीन और मोहित मृग की भाँति श्री राधा के नेत्र-कटाक्ष से बिंध कर अविचल और अनन्य प्रेमी बने हुए हैं। यहाँ श्री राधा जल हैं और वे मीन, श्री राधा अद्भुत रस-पुष्प हैं और वे उसके मधुकर। वृन्दावन-रस में मधुकर और मीन की एकत्र वृत्तियों द्वारा रसास्वाद किया जाता है। महाप्रेम में रँग कर यदि प्रियतम ने दीनता का आश्रय ले रखा है, तो अपने ऐसे प्रियतम को देखकर श्री प्रिया भी कभी अघाती नहीं हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं—

प्रेम फूल प्यारी प्रिया, सुरँग सरूप सुवास।
इक जीवन आसक्त पुनि, मधुप लाल रहैं पास।।
प्रेम-रीति निजु आहि जो, तामें लाल प्रवीन।
अंग-अंग सब हारि कैं, रहे आप ह्वै दीन।।

लियैं दीनता एकरस, महा प्रेम रँग-रात।
प्यारी ऐसे पीय कौं देखत हूँ न अघात।।

(श्रीध्रुवदास जी—प्रेमावली)

प्रेम का यह स्वभाव भक्ति-मार्ग की अनन्यता तत्सुखिता और रसास्वाद का विलक्षण गौरव है। जिनके हृदय में इसका निवास है, वही धन्य हैं।

प्रेम और रूप

प्रेम यदि अनिर्वचनीय है, तो सौन्दर्य (रूप) भी अनिर्देश्य है। सौन्दर्य रस का एक अङ्ग हैं। सौन्दर्य की एक परिभाषा है—"तदेव रूपं रमणीयतायाः, क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति।"

प्रतिक्षण जो नया होता रहता है, वही रमणीय रूप है। सौन्दर्य का कोई दर्शन-शास्त्र नहीं है। उसकी आकर्षण-शक्ति अर्थात् रमणीयता ही रूप की परिभाषा है। हित चौरासी के एक पद में श्रीराधा के अनुपम रूप-सौन्दर्य दर्शन से श्यामसुन्दर पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन इस प्रकार है—

देखौ माई अबला कैं बल रासि।
अति गज मत्त निरकुंस मोहन, निरखि बँधे लट-पासि।।
अबही पंगु भई मन की गति, बिनु उद्दिम अनियास।
तब की कहा कहौं जब पिय प्रति, चाहति भृकुटि-विलास।।
कच संजमन ब्याज भुज दरसति, मुसकनि वदन विकास।
हा 'हरिवंश' अनीति रीति हित, कत डारति मन त्रास।।

(श्री हित चौरासी, ५३)

काव्य-शास्त्रियों और पाश्चात्य मनीषियों ने सौन्दर्य पर विस्तृत विचार किया है, किन्तु वे रूप किंवा सौन्दर्य की सुदृढ़ एवं सुनिश्चित व्याख्या करने में प्रायः असफल ही रहे हैं। भारतीय आध्यात्मिक विचारकों ने भगवान् और सौन्दर्य को अभिन्न माना है, किन्तु मात्र इतने से जिज्ञासा शान्त नहीं होती।

प्रश्न बना ही रहता है कि भगवान् ही यदि सम्पूर्ण सौन्दर्य का अधिष्ठान है और सम्पूर्ण विश्व उनकी सौन्दर्य किरणों से आलोकित है, तो सब लोगों को समान रूप से उस सौन्दर्य की प्रतीति क्यों नहीं होती। सौन्दर्य-दर्शन से जहाँ एक व्यक्ति रस-विभोर हो जाता है, वहीं दूसरे के चित्त में उस सौन्दर्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अपितु घृणा भी उत्पन्न हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सौन्दर्य की प्रतीति द्रष्टा के अन्तःकरण पर आधारित है।

इस सम्बन्ध में राधावल्लभीय विचारकों का सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण यह है कि सौन्दर्य का बोध सरस चित्त में ही होता है, नीरस में नहीं और यह भी कि प्रेमवान् चित्त सरस होता है, अतएव प्रेमी-व्यक्ति ही सौन्दर्य का सम्यक् आस्वादन कर सकता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि प्रेम और सौन्दर्य का कोई सहज सम्बन्ध है। प्रेम के बिना यदि सौन्दर्य की प्रतीति नहीं, तो सौन्दर्य के बिना प्रेम की अनुभूति भी नहीं हो सकती। श्री नन्ददास जी ने कहा है—

प्रेम जु कोउ वस्तु रूप देखत लौ लागै।
वस्तु-दृष्टि बिनु कहा कहौ प्रेमी अनुरागे।।

(रास-पञ्चाध्यायी)

मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम को काम-वृत्ति-विशेष माना है किन्तु सौन्दर्य को काम-वृत्ति से नहीं जोड़ा है। सौन्दर्य का ग्रहण सहृदय व्यक्ति ही करता है। इस तरह प्रेम और सौन्दर्य के सहज साहचर्य्य को राधावल्लभीय विचारकों ने एक ही तत्त्व की दो अभिव्यक्तियाँ मानी हैं और वह तत्त्व परात्पर प्रेम अथवा हित है। एक ही तत्त्व के दो रूप होने के कारण ये परस्पर सम्बन्धित हैं। प्रेम भोक्ता है और सौन्दर्य भोग्य, दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं। प्रेम और सौन्दर्य की शाश्वत स्थिति नित्य-विहार में है, जहाँ पहुँचकर प्रेम और सौन्दर्य 'एक-रस' बन जाते हैं। एक-रस शब्द का कोश-लब्ध अर्थ है एक भाव, एक रुचि, एक स्वाद। ध्रुवदास जी ने प्रेम और सौन्दर्य की एक-रस स्थिति श्री वृन्दावन के नव-निकुञ्जों में बताई है, त्रिलोकी में नहीं।

ढूँढ़ि फिरै त्रैलोक में, बसत कहूँ 'ध्रुव' नाहिं।
प्रेम रूप दोऊ एक रस, बसत निकुंजनि माहिं।।

(श्रीध्रुवदास जी,—प्रेमावली)

उन्होंने यह भी बताया है कि सौन्दर्य का अत्यन्त उन्नत और उज्जवल रूप-पुष्प श्री राधा हैं और प्रेम-पुष्प हैं श्री श्याम सुन्दर और ये दोनों ही अनुराग के बाग श्री वृन्दावन में विकसित हैं—

रूप कौ फूल रँगीली बिहारिनि प्रेम कौ फूल रसीलौ बिहारी।
फूलि रहे अनुराग के बाग में राग कौ रंग बढ़्यौ रुचिकारी।।

(श्रीध्रुवदास जी,—आनन्द-लता)

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य है कि प्रेम की भाँति सौन्दर्य भी अनिर्वचनीय तत्व है। प्रेम और सौन्दर्य का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय की उपासना में इनके विकास की चरम स्थिति को लक्षित किया गया है।

हित वृन्दावन

उपास्य तत्त्व के साथ उसके परम पद की योजना हमें वेदों में प्राप्त होती है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में गोप-विष्णु और वहाँ रहने वाली बड़े-बड़े सींगों की गायों का वर्णन मिलता है।

यत्र गावो भूरि शृंगा अयासः।।

(वृहदाः उप॰ ६-२-१६)

तत् विष्णोः परमं पदं यत्र गच्छन्ति सूरयः।।

ऐसे ही अग्नि, वायु, वरुण, आदित्य आदि देवताओं के लोकों का वर्णन वेदों में मिलता है। वैष्णवों के वैकुण्ठ, साकेत और गो-लोक का भी वर्णन वेदों में है। ऐसे ही भू-लोक का भी वर्णन पुराण और संहिताओं में मिलता है। भगवान् की सन्धिनी-शक्ति का चिन्मय रूप और विलास भू-वृन्दावन है।

राधावल्लभीय सिद्धान्त में प्रेम के चार रूपों—श्री राधा, श्री श्यामसुन्दर, सहचरी गण एवं वृन्दावन शुद्ध प्रेम की परिणिति हैं। जिनमें राधा रूप की, श्याम-सुन्दर लावण्य की, सहचरी-गण स्नेह की एवं वृन्दावन आसक्ति की प्रधानता से युक्त हैं। श्रीमद् प्रबोधानन्द सरस्वती ने 'श्री वृन्दावन महिमामृतम्' में वृन्दावन के तीन रूपों का वर्णन कियाहै। प्रथम गोष्ठ वृन्दावन, दूसरा गोपियों का रस-क्रीड़ामय वृन्दावन और तीसरा श्री राधिका की कुञ्ज-वाटिका, जो अत्यन्त सुन्दर सहज, शुद्ध, समृद्ध और पूर्ण है। श्री हिताचार्य ने अपने सेव्य श्री राधा-वल्लभ के नित्य चिन्मय क्रीड़ा-स्थल वृन्दावन को सर्वोपरि और पूर्णतम बताया है। यथा—

प्रथम यथामति प्रनवऊँ, श्री वृंदावन अति रम्य।
श्री राधिका कृपा बिनु, सबके मननि अगम्य।।

और उन्होंने यह भी बताया है कि मेरी आराध्या सर्वेश्वरी श्री राधा केवल वृन्दावन में गोचर हैं। जो रस-तत्व उपनिषद्, शिव, शुकदेव आदि के लिए भी ध्याना-गम्य है। वह मधुरता के रस से पूर्ण और नित्य किशोरावस्था से युक्त है। उनके अनुसार यह वृन्दावन श्री श्यामा-श्याम की पारस्परिक आसक्ति का ही स्वरूप है। सम्प्रदाय के वाणी-साहित्य में श्री वृन्दावन का अत्यन्त आकर्षक वर्णन आसक्ति का ही स्वरूप है। सम्प्रदाय के वाणी साहित्य में श्री वृन्दावन का अत्यन्त आकर्षक वर्णन भी आसक्ति के रूप में रूपायित है। वृन्दावन की भूमि मण्डलाकार रस-प्रवाहिनी यमुना से परिवेष्टित है। यहाँ शरद और वसन्त ऋतुऐं अपने विचित्र वैभव के साथ सदैव उपस्थित रहती हैं। वृन्दावन के प्रेममत्त पक्षि-गण लता-द्रुमों पर विराजित रह करके मधुर-मधुर स्वर-ताल से राग-रागनियों की भाँति कूँजते रहते हैं, यथा—

मधुर-मधुर गति ताल सौं, गावत विविधि विहंग।
मनौं द्रुमनि चढ़ि रागिनी, गावतिं तान तरंग।।

(श्रीध्रुवदास जी—सभा-मण्डल)

वृन्दावन सदैव नव-नव सुगन्धित एवं सुरभित नव-नव पुष्पों से प्रफुल्लित बना रहता है और वहाँ का समस्त परिकर उल्लासमय (फूलन से युक्त) बना रहता है। श्री वृन्दावनका स्वच्छ यमुना-पुलिन विविध कुञ्जों से परिवेष्टित हुआ प्रेम के द्वारा युगल का प्रेम और रस संवर्द्धन करता रहता है। वृन्दावन के रस-क्षेत्र में यमुना-पुलिन का अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुलिन रस-क्रीड़ा भूमि है, विलास-भूमि है, परम पावन है और युगल की शृङ्गार-केलि का वन्दनीय और चिन्तनीय स्थल है। वह नित्य नूतन, एक-रस सौन्दर्य एवं प्रेम का धाम है तथा दिव्य और कमनीय कोटि काम-सेवित है।

अति कमनीय विराजित मंदिर नवल निकुंज।
सेवत सगन प्रीति जुत दिन मीनध्वज पुंज।।

(श्री हि॰ चौ॰ सं॰ ५७)

इस नित्य वृन्दावन रूपी आनन्द-समुद्र में रस की तरङ्गें उठती रहती हैं। सघन अनुराग का वर्षण होता रहता है। छवि के युगल पुष्प सदैव खिले रहते हैं। वृन्दावन रूपी जलाशय गम्भीर प्रेम-वारि से पूरित है, जिसमें रसिक युगल पलक रूपी वस्त्रों को उतार कर मानो निर्वस्त्र हुए निमज्जन करते रहते हैं। इसीलिए हित महाप्रभु ने अपनी कोटि जन्मान्तारों की मधुर आशा को श्री वृन्दावन में अविचल-भाव से स्थापित किया है। वे कहते हें कि हमको सुन्दर शास्त्रों के प्रवर्तित और महज्जन गृहीत मार्गों से कोई प्रयोजन नहीं है जिनमें प्रेममूर्ति श्रीराधा की न महिमा सुधा है, न उनका भाव। इसी प्रकार न हमें वैकुण्ठ-लक्ष्मी चाहिये, न वैकुण्ठ ही, जहाँ हमारी श्रीराधा नहीं हैं। हम चाहते हैं कि हमारी मधुराशा कोटि-कोटि जन्म पर्यन्त श्री वृन्दावन से लगी रहे—

किंवा नस्तैः सुशास्त्रैः किमथ तदुदितैर्वर्त्मभिः सद्गृहीत—
र्यत्रास्ति प्रेममूर्तेर्नहि महिमसुधा नापि भावस्तदीयः।।

किंवा वैकुण्ठ लक्ष्माप्यहह परमया यत्र मे नास्ति राधा।
किन्त्वाशाप्यस्तु वृन्दावन-भुविमधुरा कोटि जन्मान्तरेऽपि।।

(श्री रा० र० सु० निधि २१६)

श्री हित प्रभु ने प्रेम-स्वरूप श्री वृन्दावन को इस भूतल पर ही नित्य स्थित माना है।

(जै श्री) हित हरिवंश विपिन भूतल पर संतत अविचल जोरी।

(हि० चौ० सं० ७०)

उन्होंने अपने वाणी समुदाय में अन्य किसी गो-लोकस्थ वृन्दावन का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। उनके मत से प्रगट वृन्दावन ही नित्य वृन्दावन है। इसी बात को प्रकारान्तर से ध्रुवदास जी ने भी कहा है—

जद्यपि राजत अवनि पर, सबते ऊँचौ आहि।
ताकी सम कहियै कहा, श्री पति बंदत ताहि।।
प्रगट जगत में जगमगै, वृंदा-विपिन अनूप।
नैंन अछत दीसत नहीं, ये माया कौ रूप।।

(श्री ध्रुवदास जी—वृंदावन सत)

श्री हरिराम व्यास ने वृन्दावन के वृक्षों को दर्शन-मात्र से कामना-विहीन बनाने वाला बताया है। इन्होंने वृन्दावन माया-काल से रहित और दुःखों की सरिता को सुखाने वाला बताया है। वृन्दावन रसिकों की राजधानी है, जिसके राजा हैं रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर और रानी है नव तरुणिमणि श्री राधिका। पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक सब लोक इसके थाने हैं। छियानवे कोटि मेघ वृन्दावन की वाटिकाओं को सींचते रहते हैं। चारों प्रकार की मुक्तियाँ यहाँ पनिहारिन हैं। सूर्य, चन्द्र पहरेदार हैं और पवन खिदमतगार, लक्ष्मी चरण-दासी है और वेद-वाणी भाट। धर्मराज कोतवाल है और सनकादिक चारों ज्ञानी भ्राता गुप्तचर हैं। सतोगुण द्वारपाल है और काल-देवता वंदी (गुणगायक), कर्म है दण्ड-दाता और "काम-रति" चरम सुख की ध्वजा है। वृन्दावन की

कनक-मरकत-मणिमय भूमि में कुसुमित कुञ्ज-महल है, जहाँ नित्य कमनीय शय्या की रचना होती रहती है। यह स्थल प्रायः सबके लिए अगम्य है। यहाँ के राजा-रानी नित्य-निरन्तर मिले हुए प्रेम-केलि में रत हैं। जहाँ व्यास-रूपा महल-टहलनी (खवासिन) पीकदानी लिए हुए सेवा में उपस्थित रहती है।

नव कुँवर चक्र चूड़ानृपति मनि साँवरौ, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी।
शेष गृह आदि वैकुंठ पर्यंत सब, लोक थानैंत बन राजधानी।।
मेघ छयानवैं कोटि बाग सींचत जहाँ, मुक्ति चार्‌यौं जहाँ भरत पानी।
सूर ससि पाहरु पवन जन इंदिरा, चरन-दासी भाट निगम-बानी।।
धर्म कुतवाल सुक सूत नारद चारु, फिरत चर चार सनकादि ग्यानी।
सतोगुन पौरिया काल बँधुआ कर्म, डाँडियै काम-रति सुख निसानी।।
कनक मरकत धरनि कुंज कुसुमित महल, मध्य कमनीय शयनीय ठानी।
पल न बिछुरत दोऊ तहाँ नहिं जात कोऊ, 'व्यास' महलिनि लियैं पीकदानी।।

(श्री व्यास-वाणी–४६)

उपरोक्त सम्पूर्ण कथन का सारांश यह है कि राधावल्लभीय सम्प्रदाय की रसोपासना का मूलाधार वृन्दावन प्रेम का एक विशिष्ट भाव है, जो श्यामा-श्याम की पारस्परिक आसक्ति का प्रकट रूप है। हित चौरासी एवं प्राचीन रसिक वाणियों में वृन्दावन के जो चमत्कारिक एवं अलौकिक वर्णन मिलते हैं, वे सभी श्रीश्यामा-श्याम के अनुपम प्रेम को ध्वनित करते हैं। उपासक का कामना-शून्य विमल-भाव जब श्यमा-श्याम के दिव्यातिदिव्य रति-भाव से आसक्त हो जाता है, तब उसका सुखानुभव असीम हो जाता है। वृन्दावन सम्पूर्णतया चिन्मय तत्त्व है और श्यामा-श्याम की लीलाओं का विधायक है। प्रकट वृन्दावन की दृश्यमान् जड़ता वृन्दावन-रसिक के लिए प्रेम की वह गम्भीर स्थिति है, जहाँ उपासक स्वयं प्रेम-जाड्यमय हो जाता है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में भूतल स्थित वृन्दावन को शुद्ध भाव रूप माना गया है और 'वृन्दावन-रस' की प्राप्ति में उसे अनिवार्य सेव्य स्वीकार किया गया है। वस्तुतः राधा वल्लभीय रसोपासना वृन्दावन-रस की उपासना है, जिसका स्थायी-भाव 'राधा-रति' है।

हित युगल

उज्ज्वल रस की उपासना के लिए 'युगल' का होना अनिवार्य है। आचार्य भरत ने प्रमदायुक्त पुरुष को ही शृङ्गार कहा है—पुरुषः प्रमदायुक्तः शृङ्गार इति संज्ञितः। श्री हित महाप्रभु ने अपनी वाणी में बताया है कि श्री श्यामा-श्याम के सङ्गम रूपी सिन्धु में (शृङ्गारिक) प्रेम का जो कमल विकसित है, उसमें भ्रमर की भाँति मकरन्द का पान करता रहता हूँ। इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं कि हित महाप्रभु शृङ्गारिक-प्रेम के उपासक हैं और उनकी उपासना में युगल अनिवार्य हैं।

उभै संगम-सिंधु स्रवत पूषन-बंधु द्रवल मकरंद हरिवंश अलि पावै।

(हित चौरासी पद ८१)

श्री कृष्ण-भक्ति के क्षेत्र में युगल उपासक अनेक सम्प्रदाय हैं, किन्तु उन सबके दृष्टिकोण लगभग एक दूसरे से भिन्न हैं – यथा शक्ति-शक्तिमान् सम्बन्ध, प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध, माया-ब्रह्म सम्बन्ध इत्यादि। राधावल्लभीय दृष्टि में उपरोक्त ये सभी सम्बन्ध प्रेम के विजातीय हैं। ये सम्बन्ध श्यामा-श्याम के विशुद्ध प्रेम-स्वरूप को विकृत करते हैं, निर्मल नहीं रहने देते। कुछ आचार्यों की मान्यता है कि रसानुभव के क्षेत्र में वियोग की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि वह संयोग-सुख को नूतन और समृद्ध बनाता है। विरह के अभाव में नित्य संयोग, प्रेम सुख को शिथिल बना कर निस्वाद बना देता है किन्तु यह मान्यता लौकिक प्रेम तक ही सीमित प्रतीत होती है। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में उच्चतम कोटि पर पहुँचे हुए शुद्धतम प्रेम के कण-कण में व्याप्त रहने वाली और कभी न बुझने वाली रूप-तृषा—प्रेमी के अनुभव को संयोग- काल में भी क्षण-क्षण में नूतन बनाती रहती है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय की मान्यता में युगल के पारस्परिक प्रेम और उनके प्रेम से आसक्त सखियों के प्रेम की यही सबसे बड़ी विलक्षणता है। सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि युगल प्रेम-खेल के दो खिलौने हैं। ये प्रेम-रूप दोनों खिलौने प्रेम का ही खेल खेलते रहते हैं—

प्रेम के खिलौना दोऊ खेलत हैं प्रेम खेल।

(श्री ध्रुवदास)

परात्पर हित तत्त्व प्रेम और सौन्दर्य के दो रूपों में नित्य प्रकट रह कर अनादि और अनन्त प्रेम क्रीड़ा में प्रवृत्त है। इन दोनों में भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध है। प्रेम भोक्ता है और रूप भोग्य। प्रेममूर्ति श्री श्यामसुन्दर प्रियतम हैं और रूपमूर्ति श्रीराधा प्रिया। स्वाभाविक रूप से प्रेम और सौन्दर्य में वियुक्ति सम्भव नहीं है। इसीलिए प्रेम को सदैव प्रेम की प्यास बनी रहती है और रूप, प्रेम की पिपासा को शान्त करने के लिए सदा तत्पर रहता है।

अंसनि पर भुज दिये विलोकत इंदु वदन विवि ओर।
करत पान रस मत्त परस्पर लोचन तृषित चकोर।।

(श्री हित-चौरासी, ३१)

नियमतः प्रेम की तृषा "रूप-जल" से सिञ्चित होकर शान्त हो जानी चाहिए, किन्तु यदि रूप-दर्शन से प्रेम की प्यास वृद्धि को प्राप्त होने लगे तो उसकी शान्ति का कोई समाधान नहीं है। ऐसे ही श्री राधा-श्यामसुन्दर की प्रेम-तृषा पारस्परिक रूप-दर्शन से अनन्त और नित्य वर्द्धित है। युगल की रसिकता का आधार भी यही तृषा है। यह तृषा रसिकता को परिष्कृत करके गम्भीर बनाती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि दोनों के मन और हृदय एक हैं, एक ही वय है, एक से भूषण पट हैं; दोनों के रङ्ग में दोनों भींग रहे रहे हैं, दोनों ने अपने नेत्रों को चकोर बना रखा है, दोनों-दोनों के रूप-जल में मीन की भाँति लीन हो जाना चाहते हैं। इनको देखकर सखियाँ परस्पर में कहती हैं कि रसिक शिरोमणि युगल के बिना कौन एक-रस प्रेम-व्रत का निर्वाह कर सकता है?

'हित ध्रुव' रसिक सिरोमनि जुगल बिनु,
आली को निबाहै एकरस प्रेम-पन कौं।।

(श्री ध्रुवदास जी, शृङ्गार शत)

वृन्दावन-रस के रसिकों ने इसीलिए युगल को अपनी वाणियों में एक साथ चित्रित किया है मानो प्रेम और रूप एक दूसरे के प्रतिबिम्ब हैं। इससे "रूपमय प्रेम" और प्रेममय रूप" की सृष्टि होती रहती है। इस वर्णन में रूप और प्रेम ओतप्रोत होकर एक हैं और यह भी सिद्ध होता है कि यद्यपि नित्य वर्द्धमान् और समान प्रेम की तृषा ने युगल को एक-दूसरे में ओतप्रोत कर दिया है किन्तु प्रेम-क्रीड़ा के लिए दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व आवश्यक है और तभी उनके स्वतन्त्र अस्तित्व में रस की क्रीड़ा सम्भव है। श्री हित महाप्रभु कहते हैं—

एकं काञ्चन चंपकच्छवि परं नीलाम्बुदश्यामलं,
कंदर्पोत्तरलं तथैकमपरं नैवानुकूलं वहिः।
किंचैकं बहुमानभङ्गि रसवच्चाटूनि कुर्वत्परं,
वीक्षे क्रीडानिकुंज सीम्नि तदहो द्वन्द्वं महामोहनम्।।

(श्री रा॰ र॰ सु॰ निधि, १६९)

अर्थात् इन युगल में एक की छवि स्वर्ण-चम्पकवत् है, दूसरा नील मेघ-वत् श्यामल है, एक काम-चञ्चल है, तो दूसरा बाह्य-रूपेण प्रतिकूल है। एक मान की भङ्गिमाओं से युक्त है और दूसरा नील मेघ चाटुकारी पूर्ण भाषा बोल रहा है। निकुञ्ज की सीमा में क्रीड़ा-परायण यह महामोहन युगल मेरी नेत्र-तृषा का विषय है। इस प्रकार प्रेम के ये दो खिलौने तत्वतः एक होते हुए भी लीला में दो हैं और परस्पर भिन्न हैं। दोनों की प्रेम-रूपी वेगवती जल-धारा निगम और लोक की समस्त मर्यादाओं को ढहाती हुई निरन्तर धावित है। इनमें एक सौन्दर्य रूपी प्रेम-धारा अपने आपको स्वस्वरूप में सँभाले रखती है और दूसरी प्रेम रूप धारा उत्ताल तरङ्गों से उच्छलित रहती है।

जद्यपि प्यारे पीय कौं, रहत है प्रेम अवेस।
कुँवरि प्रेम गंभीर तहाँ, नाहिंन वचन प्रवेस।।

प्रिया-प्रेम सागर अमल, लहरिनु लेत समाइ।
उमड़ै जौ मर्जाद तजि, कापै रोक्यौ जाइ।।

(श्री ध्रुवदास जी,–हित शृङ्गार)

युगल-केलि

सामान्यतया रस-सिद्धान्तों में वियोग को संयोग का पोषक माना गया है। वियोग से प्रेम की समृद्धि होकर वह नूतन बनता है। राधावल्लभ रस-सिद्धान्त में शुद्धतम प्रेम ही सहज रूप से प्रेम-तृषा बन कर युगल को नित्य नूतन अनुभूति कराता है। प्रेम-तृषा का सिञ्चन रूप-जल से होता है। रूप-सौन्दर्य का पूर्ण और विशद प्रकाश शृङ्गार-केलि में है अतएव यह शृङ्गार-केलि मदन-रस है। प्रेम में प्यास है और रूप में केलि। हित महाप्रभु ने राधा को काम-केलि की रसिक बताया है। प्रेम-केलि का प्रारम्भ रूप-दर्शन से होता है। यद्यपि श्री श्यामसुन्दर अनन्त सौन्दर्य धाम हैं, जिन्हें देखकर कोटि-कोटि काम लज्जित होते हैं किन्तु वे भी रूप और सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति श्री राधा की प्रेममयी चितवन और रसमयी भृकुटि-नर्तन से मोहित हो जाते हैं। उनमें कम्प उत्पन्न हो जाता है। वे सुध-बुध भूल कर प्रेम-समुद्र में डूबने लगते हैं। तब उन्हें श्रीराधा अपनी बाहु-लताओं में आबद्ध कर अधरामृत- पान द्वारा प्रेम-भँवर से निकाल लेती हैं। इस प्रकार दोनों ओर से सिञ्चन प्राप्त करके केलि की लता बढ़ने लगती है। इस प्रेम-विहार में प्रियतम द्वारा प्रिया का अङ्ग-स्पर्श, प्रिया द्वारा अङ्ग-सङ्गोपनं पूर्ण कुटिल भृकुटि अवलोकन, आलिङ्गन, नीवी बन्धन मोचन, कपट पूर्ण कोप प्रदर्शन, रस-पूर्ण 'नेति-नेति' कथन, परिरम्भण, विपरीत रति वितरण आदि प्रेम प्रसङ्गों द्वारा प्रेम और रूप की अनादि और अनन्त क्रीड़ा नित्य नये प्रकार से सम्पादित होती रहती है।

इस प्रेम-विहार में नृत्य, सङ्गीत और शृङ्गार की कलाओं का क्षण-क्षण में प्रकाश होता रहता है। रास-क्रीड़ा में युगल की कटि-किङ्किणी और चरण-

नूपुरों से सङ्गीत की तरङ्गें उठती हैं, जिसे सुनकर यमुना तटवर्ती मयूर कुहकने लगते हैं, जिसे देखकर तारागण चकित हो जाते हैं और शशि-मण्डल विथकित हो जाता है, कोटि-कोटि कामों के मन लुट जाते हैं—

उडगन चकित थकित ससि मंडल
कोटि मदन मन लूटे।

(श्री हित-चौरासी, ६३)

श्री हित हरिवंश के रति-कुशल युगल परस्पर प्रेम और सौन्दर्य का आस्वाद बड़ी नागरता से करते हैं यथा—

नवल नागरि नवल नागर किसोर मिलि,
कुंज कोमल कमल दलनि सिज्जा रची।
गौर साँवल अंग रुचिर तापर मिले,
सरस मनि-नील मनौं मृदुल कंचन खची।।
सुरत नीवी निबंध हेत प्रिय मानिनी,
प्रिया की भुजनि में कलह मोहन मची।
सुभग श्री फल उरज पानि परसत रोष,
हुंकार गर्व दृग-भंग भामिनि लची।।

(श्री हित-चौरासी, ५०)

नृत्य, सङ्गीत और अभिनय का सहज संयोग प्राप्त करके युगल का अद्भुत सौन्दर्य और प्रेम अनन्त गुणित होकर वृन्दावन की कुञ्ज-कुञ्ज में व्याप्त हो जाता है। इस अद्भुत-विहार में नाना मदों से उन्मत्त हुए युगल, विनोद करते रहते हैं यथा—

जौवन मद नव नेह मद, रूप मदन मद मोद।
रस मद रति मद चाह मद, उन्मद करत विनोद।।

(श्री ध्रुवदास)

अस्तु, इस युगल-विहार में सखियों का बहुत बड़ा योगदान है। वे युगल की रुचि लेकर उनकी सेवा करती हैं। वृन्दावन में सब ऋतुएँ मूर्त्तिमान् रह-कर युगल को सुख-भोग कराती रहती हैं। श्री राधा-मोहन नित्य उन्नत किशोर हैं, नित्य दम्पति हैं, नित्य दूलह हैं, नित्य दुलहिनी हैं। सखियाँ उन्हें षोडश शृङ्गारों से सुसज्जित कराती हैं। विवाह की लौकिक रीतियों का आचरण करती हुईं अञ्चल-पसार कर उन्हें आसीस देती हैं कि तुम दोनों का सुहाग प्रतिपल बढ़ता रहे। अन्यत्र श्री हरिराम व्यास एवं श्री हित महाप्रभु ने दूलह-दुलहिनी के वैवाहिक रास-विलास का वर्णन किया है और "सहज प्रेमोत्सव" की संज्ञा दी है।

श्री सेवक जी ने श्री हित हरिवंश द्वारा दर्शित कराये गये इस विहार का वर्णन करते हुए कहा है—

नवल-नवल सुख चैन ऐंन आपुने आपु बस।
निगम लोक मर्याद भंजि क्रीड़ंत रंग रस।।
सुरत प्रसंग निसंक करत जोइ-जोइ भावत मन।
ललित अंग चलि भंगि भाइ लज्जित सु कोक गन।।
अद्भुत विहार हरिवंश हित निरखि दास 'सेवक' जियत।
विस्तरत सुनत गावत रसिक सु नित-नित लीला रस पियत।।

(श्री सेवक—वाणी)

इस अद्भुत-विहार से महा-अनङ्ग मोहित और लज्जित हो जाता है। सिर ऊँचा नहीं कर सकता। श्री श्यामा-श्याम के बीच जो काम है, वह प्रेम-काम है अर्थात् शुद्ध-प्रेम है। श्यामा-श्याम की यह काम-केलि की परिपाटी अत्यन्त विलक्षण है। प्रिया का सम्पूर्ण हास्य ही सम्पूर्ण विलासों का सार है। अत्यन्त आसक्त प्रियतम, प्रिया के हास्य का दर्शन करके आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। सुकुमारी प्रिया पर रीझ कर उनके चरणों की वन्दना करते रहते हैं—

नेकुहि कौ हास सखी सार है विलासनि कौ,
जाके हेरैं और सब सुख बिसरत हैं।

अति ही आसक्त ताकी 'हित-ध्रुव' यहै गति,
रीझि-रीझि दूरही तें पाइनिं परत हैं।।

रसिकों का मत है कि अनुभवहीन लोग काम वैभवमयी इस प्रेम-काम-केलि को लौकिक रसों से सानते हैं, किन्तु वस्तुतः गौर-श्याम के अनोखे प्रेम-विलास को विरले रसिक ही पहचान पाते हैं।

हित प्रभु ने इस अनोखी शृङ्गार-रस सरिता को 'जगत-पावनी' एवं 'जगत वन्दिनी' बताया है।

श्री लाल जी

श्री मद्भागवत पुराण एवं अन्य भक्ति सम्प्रदाओं में श्रीकृष्ण को लीला पुरुषोत्तम और साक्षात् कामदेवों का भी कामदेव स्वीकार किया है और वह सबका प्रेमास्पद है किन्तु वृन्दावन रस के रसिकों ने श्यामसुन्दर श्री कृष्ण को प्रेम-तृषा पूर्ण प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। श्री राधा के प्रेमी होने के साथ ही वह प्रेमाधीन हैं। प्रेम की एकमात्र सीमा और मधुर-रस सुधा-सिन्धु सार की अगाध रसमूर्त्ति श्री राधा के प्रेम में डूब कर भी श्यामसुन्दर सब कुछ विस्मृत करके इतने सिमिट गये हैं कि वे सृष्टि-रचना और पालन की बात तो दूर अपने नारदादि भक्तों को भी भूल गये हैं। श्रीदामादिक सखाओं से नहीं मिलते। माता-पिता (नन्द-यशोदा) के वात्सल्यमय स्नेह की भी वृद्धि करना भूल गये हैं। वे केवल श्रीराधा को ही जानते हैं, मानते हैं और अहर्निश कुञ्ज-वीथियों में ही उपासीन रहते हैं। इसका अर्थ है कि वे भगवत्ता को विस्मृत करके शुद्ध प्रेम-स्वरूप बन गये हैं। रसिक-जन उनका स्वरूप निर्धारण करते हैं।

भये दीन यौं तजी बड़ाई, पुनि ताकी बातैं न सुहाई।
मानत हैं धनि भाग बड़ाई, ऐसी कुँवरि किसोरी पाई।।
अब मोकौं कछु और न चहियै, नैंननि में अंजन ह्वै रहियै।

(श्री ध्रुवदास,—नेह मंजरी)

श्री राधा के प्रेम-सौन्दर्य से वे इतने अधीर बन गये हैं कि कोटि कामिनी -समूह से घिरे रहकर भी अधैर्यवान् बने रहते हैं।

निकट नवीन कोटि कामिनि कुल धीरज मनहिं न आनै।

(श्री हित-चौरासी)

श्री हित महाप्रभु ने बताया है कि श्री राधा के रूपासक्त प्रियतम के नेत्र प्रिया वदन-अम्बुज रस में अटक कर अपनी गति-मति भूल गये हैं तथा वे अपने अस्तित्व को राधा में लीन कर लेना चाहते हैं। (हित चौरासी, पद-६०)

श्री हित ध्रुवदास जी ने प्रेम चक्र में फँसे हुए श्री श्याम-सुन्दर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि जब श्री लाल जी अपनी प्रिया का आलिङ्गन करते हैं, तब रूप दर्शन के अभाव में उनके नेत्र विरही हो जाते हैं और जब वे छवि निहारने लगते हैं, तब अङ्ग-स्पर्श के अभाव में वही विरह उनके अङ्गों में छा जाता है। इतने तृषातुर, दीन एवं अधीन प्रेमी के लिए अपने प्रेमपात्र के पूजन-आराधन के अतिरिक्त अन्य कुछ शेष नहीं रह जाता। श्रीश्यामसुन्दर की प्रेम-तृषा श्रीराधा के प्रेम-सौन्दर्य से अभिभूत हो जाती है। जिस प्रेम में प्रेमास्पद का पूर्ण गौरव प्रकाशित होता है और रूप आदि की गरिमा के कारण आराध्यभाव बन जाता है, वही "प्रेम-लक्षणा भक्ति" है। और तब प्रेमी के द्वारा प्रेम-पात्र का दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन, पाद-सेवन, अर्चन आदि सब कुछ होने लगता है। वह अपना हृदय अपने प्रेमास्पद के चरण-कमलों का सहज मन्दिर मानने लगता है।

तव पद-पंकज कौ निजु मंदिर, पात्नय सखि मम देह।

(हित-चौरासी, पद ६६)

प्रेमी अपने प्रेमास्पद के प्रिय नाम का श्रवण जप और गान करके परम-सुख का अनुभव करता है। यथा—

प्रेम्णाऽऽकर्णयते जपत्यथ मुदा गायत्यथाऽलिष्वयं।
जल्पत्यश्रु मुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम्।।

(श्री रा० र० सु० नि०—९६)

श्री राधे के सुकुमार चरणों पर चित्र-रचना करने की पाद-सेवन और अर्चन-भक्ति का "द्वादश-यश" में सुन्दर वर्णन है—

जावक रचि चरननि जु बनाइ। नूपुर माल रुचिर पहिराइ।।
श्री राधा सु प्रताप जस।।
मृगमद तिलक देत रचि भाल। पहिरावत पुहपनि की माल।।

वन्दन, दास्य और आत्म-निवेदन का स्पष्ट वर्णन है—

वंदत चरन सीस कर जोरि,
दासंतन सब विधि करत।
तन-मन-प्रान समर्पन कियौ।।
मीन नीर ज्यौं त्यौं पन लियौ।

(श्री चतुर्भजराम, द्वादश-यश)

प्रीति का स्वभाव है कि प्रेमास्पद से सम्बन्धित समस्त जड़-चेतन के प्रति प्रेमी का प्रेम, संवेग पूर्वक आगे बढ़ चलता है। कहीं-कहीं तो प्रेम-पात्र से भी अधिक प्रेम-पात्र की वस्तुओं से प्रीति बढ़ जाती है। ऐसा प्रेम-उल्लास विरह की अवस्था में भी देखा जाता है किन्तु नित्य-विहार में जहाँ यह देखना भी विरह के समान हो, उसका तो कहना ही क्या—

जहाँ प्रीतम तिहि देस की, प्यारी लागत पौन।
प्रेम-छटा जाने बिना, यह सुख समुझै कौन।।

(श्री ध्रुवदासजी,—ख्याल-हुलास)

एवं

धरति भाँवती पग जहाँ, रहत देखि तिहि ठौर।
को समुझै यह सुख सखी, बिना रसिक-सिरमौर।।
नैंननि छ्वावति फिरत पिय, पत्र-फूल बन जेत।
प्रान-प्रिया दृग-छटा जल, सींचे सखी यह हेत।।

(श्री ध्रुवदासजी,—प्रेमावली)

प्रेमपात्र से सम्बन्धित वस्तुओं के असाधारण महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए श्रीहित महाप्रभु ने श्रीराधा-रस-सुधा-निधि के प्रथम श्लोक में ही श्री वृषभानु नन्दिनी की दिशा को नमस्कार करके, दूसरे और तीसरे श्लोक में श्री राधा-चरण-रेणु को "रस कामधेनु" बताते हुए नमन किया है। श्री ध्रुवदास जी तो कहते हैं प्रियतम श्याम, श्री राधा की चरण-दासियों की भी वन्दना करते हैं और उनके दास बने हुए हैं।

प्रिय की प्रीति की बात सुनि, हिय में होत हुलास।
दासी जहाँ लगि प्रिया की, ह्वै रहे तिनके दास।।

(बयालीस-लीला)

श्री प्रिया के पट-भूषणों के प्रति श्री लाल जी का आकर्षण अमित है। वे उन पट-भूषणों को धारण कर सहचरी वेष में श्री राधा को 'कुसुम बीजना' से बयार का सुख देते हैं।

अस्तु, अन्य रसिक भक्तों ने गोपियों की भाँति श्री कृष्ण को अपना कान्त माना है। उन रसिकों के विचार में नैमित्तिक लीला के क्षेत्र व्रज में श्रीराधा भी गोपी-गणों की भाँति श्री कृष्ण की कान्ता अर्थात् रागानुगामिनी हैं किन्तु श्री हिताचार्य का 'वृन्दावन-रस' प्रकार उपरोक्त दोनों भावों से भिन्न है। उनकी "प्राण-नाथ" श्री राधा के नेह-नाते से श्री श्याम-सुन्दर लाल जी उनको प्रिय हैं। वस्तुतः श्री राधा चरणों में घनश्याम लाल की अत्यन्त आसक्ति को देख कर ही श्री व्यासनन्दन हित महाप्रभु उन पर रीझे हुए हैं, मुग्ध हैं तथा उन्होंने इस अविचल जोरी को अपना हृदय-हार बनाया है—

व्यास नंद के प्रान धन, गौर वर्ण निजु नाम।
ताके नाते नेह सौं, प्यारौ प्रीतम स्याम।।
अति आसक्ति लखि लाल की, रीझे व्यास-कुमार।
यह जोरी अविचल सदा, कीनी निजु उर हार।।

(सुधर्म बोधिनी)

श्रीराधा

श्रीमद्भागवत में भगवान् श्री कृष्ण और व्रज-गोपियों के नृत्य सङ्गीतमय रास-क्रीड़ा विलास का वर्णन है। वहीं अन्य मानवती गोपियों के बीच से एक किसी श्रेष्ठ गोपी को लेकर श्री कृष्ण के अन्तर्धान होने का भी वर्णन है। पश्चात् अन्य गोपियों के द्वारा उस गोपी की प्रशंसा में—

"अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः" वाक्य में आराधन शब्द से विद्वान् भाष्यकारों के द्वारा "राधा" शब्द का अनुमान लगाया गया है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी श्री राधा का नाम आता है। 'ब्रह्म वैवर्तपुराण' में तो श्रीराधा के दिव्य जन्म, कर्म और लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। श्रीजयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' में श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रिय सखी के रूप में श्रीराधा का वर्णन है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में गौड़ीय सम्प्रदाय में श्रीराधा को श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति और महाभाव रूपा आराधिका माना गया है। उसी काल में राधावल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीराधा को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया और उन्हें श्रीकृष्ण की भी 'आराध्या' माना गया। प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास के पदों में भी श्रीराधा को नन्द-नन्दन की आसक्ति का केन्द्र बताया गया है —

धनि धनि धनि हो कुँवरि राधिका,
नन्द-नन्दन जासौं रति मानी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री राधा के तात्त्विक विकास का एक विशिष्ट क्रम है और अन्त में यह फलितार्थ भी निकलता है कि श्रीराधा स्वरूप के उत्कर्ष के पश्चात् प्रायः सभी प्राचीन और अर्वाचीन सम्प्रदायों में श्रीराधा सम्बन्धित विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है। इस राधा सम्बन्धी साहित्य का तटस्थता पूर्वक सतर्क भाव से साहस के साथ अध्ययन करने से सत्य की उपलब्धि होती है ।

श्री राधावल्लभीय सम्प्रदाय के साहित्य में श्री हरिराम 'व्यास' ने वृन्दावन के रसमय वैभव का प्रथम गायक श्री जयदेव कवि को माना है—

वृंदावन कौ रसमय वैभव पहिलैं सबनि सुनायौ।
ता पाछैं औरनि कछु पायौ सो रस सबनि चखायौ।।

(व्यास-वाणी, साधुनि की स्तुति)

श्री जयदेव के सम्बन्ध में उनकी उक्तियों को अखण्डित, रस-मण्डित और विविध विलास कलापूर्ण बताते हुए उन्होंने पुनः कहा है—

जाकी जुगति अखंडित मंडित सब ही के मन भायौ।
विविध विलास कला कवि मंडन जीवनि भागनि आयौ।।

अस्तु, विक्रम की सोलहवीं शताब्दी या उससे पूर्व के समस्त राधा-कृष्ण उपासकों में गोस्वामी श्री हित हरिवंश ही एक ऐसे महानुभाव हैं, जिन्होंने शपथ-पूर्वक श्रीराधा को अपना प्राण-नाथ घोषित किया और अपने इस सर्वोत्कृष्ट सुदृढ़ निर्णय के लिए किसी के साक्ष्य और स्वीकृति की किञ्चित् भी अपेक्षा नहीं रखी। उनकी स्पष्ट घोषणा है—

रहौ कोउ काहू मनहि दियैं।
मेरे प्रान नाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियैं।।
जे अवतार कदंब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हियैं।
तेऊ उमगि तजत मर्जादा, वन-विहार रस पियैं।।
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौन काज ऐसै जियैं।
(जय श्री) हित हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहि लियैं।।

(स्फुट-वाणी)

श्री हित महाप्रभु ने ही सर्वप्रथम संस्कृत में श्री राधा-रस-सुधा-निधि के नाम से श्री राधा से सम्बन्धित एक स्त्रोत-काव्य की रचना की और पूर्ण निर्भीकता पूर्वक अपनी श्री राधा-निष्ठा का उद्घोष किया। उन्होंने कहा कोटि नरकों जैसी वीभत्स विषय-वार्ता तो दूर रही, श्रुति-कथा भी मेरे लिए व्यर्थ

श्रम है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मुझे कैवल्य से भी भय लगता है। परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के भजन में उन्मत्त शुकादिक भक्तगण से भी मेरा क्या प्रयोजन ? मैं तो मात्र यही चाहता हूँ कि मेरा मन केवल श्री राधा चरण-कमलों के रस में ही मग्न रहे।

अलं विषयवार्त्तया नरककोटि वीभत्सया,
वृथाश्रुति-कथाश्रमो वत विभेमि कैवल्यतः।
परेशभजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः,
परं तु मम राधिका-पद-रसे मनो मज्जतु।।

(श्री रा॰ र॰ सु॰ नि॰ ८३)

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के इतिहास ग्रन्थों में गोस्वामी हित हरिवंश को उनके बाल्यकाल से ही श्री राधा पक्षपाती कहा गया है। राधावल्लभीय उपासना और रस-रीति का बीज माना जाने वाला 'निजु मन्त्र' संज्ञक द्वादशाक्षर मन्त्र उन्हें बाल्यकाल में ही श्री राधा से प्राप्त हुआ था। श्री हित महाप्रभु ने अपने गुरु श्री राधा की पूजा-प्रतिष्ठा और उनके द्वारा स्थापित "गुरु-मार्ग" का उल्लेख अपने पत्र[1] में भी किया है। परवर्त्ती-काल में "रसकुल्या" टीकाकार पण्डित प्रवर श्री हरिलाल व्यास ने अपने ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में लिखा है कि मैं श्री राधाचरण-प्रधान उन श्री हित हरिवंश की वन्दना करता हूँ ,जिनकी इष्ट श्री राधा हैं। राधा ही सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आचार्य और मन्त्र-दाता सद्गुरु हैं और राधा नाम ही जिनका सर्वस्व है।

राधैवेष्टः सम्प्रदायैककर्ताचार्यो मन्त्रदः सद्गुरुश्च,
मन्त्रो राधा यस्य सर्वात्मनैवं वन्दे राधा पाद-पद्मप्रधानम्।

श्रीहित हरिवंश के सम्पूर्ण जीवन का एकमात्र लक्ष्य श्री राधा के असमोर्ध्व (सर्वोपरि) स्वरूप की प्रतिष्ठा करना ही रहा है। उन्होंने सेवाकुञ्ज को राधिका-आचार्य पीठ के रूप में स्थापित किया। आज भी देखा जा सकता है कि सेवाकुञ्ज के मन्दिर में जो चित्रपट विराजमान् है, उसमें श्री कृष्ण, श्रीराधा

१. श्री हित जी ने प्रिय बीठलदास को दो पत्र लिखे थे, जब बीठलदास जूनागढ़ में रहते थे।

के चरणों का संवाहन कर रहे हैं। बहुत सम्भव है कि भक्त रसखान ने इस चित्र का दर्शन करके ही यह प्रसद्धि सवैया कहा हो—

ब्रह्म में ढूँढ्यौ पुराननि-गाननि, वेद-रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कहूँ, वह कैसौ सरूप औ कैसौ सुभायन।।
टेरत हेरत हारि परयौ, 'रसखान' बतायौ न लोग लुगायन।
देख्यौ दुरयौ वह कुंज-कुटीर में, बैठ्यौ पलोटत राधिका-पाँयन।।

श्रीहित महाप्रभु ने अपने इष्ट श्रीराधा की मूर्त्ति विराजमान् न करके शास्त्रीय विधान के अनुसार गुरु-गादी की स्थापना की। आज भी ठाकुर श्री बाँके-बिहारी जी एवं श्री राधा-रमण जी के मन्दिरों में श्रीहित जी की पद्धति के अनुसार ही श्री राधा की गादी स्थापित है। श्री हिताचार्य के सिद्धान्त से श्री राधा अद्भुत रूप, सौन्दर्य, गुण, माधुर्य आदि की सर्वोपरिता के कारण श्री कृष्णाराध्या एवं गुरु-रूपा हैं। ये दोनों विशेषतायें श्री हरिवंशोदित नित्य-विहार और सेवा-पद्धति में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हैं।

नित्य प्रेम-विहार में अपनी सहचरियों को सङ्गीत, नृत्य, माला-ग्रन्थन, चन्दन-निर्घर्षण, मोदक-निर्माण आदि की शिक्षा देने के कारण वे सखियों की शिक्षा गुरु हैं। (देखिये श्री रा० र० सु० नि० श्लोक सं. ११२ एवं १४२) अपने प्रियतम श्रीलाल जी की भी वे शिक्षा-गुरु हैं। स्वामी हरिदास जी एवं श्री हरिराम व्यास ने अपने अनेक पदों में इस रूप के वर्णन उपस्थित किये हैं। श्री स्वामी जी के शब्दों में—

कुंज विहारी नाचत नीके लाड़िली नचावत नीके।
औघर ताल धरैं श्री स्यामा ताता थेई ताता थेई बोलत संग पी के।।
तांडव लास्य और अंग कौ गनै जे जे रुचि उपजत जी के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ मेरु सरस भयौ और गुनी परे फीके।।

(केलिमाल-६०)

और श्री व्यास जी का एक प्रसिद्ध पद देखिये—

पिय कौं नचवन सिखवति प्यारी।
वृंदावन मैं रास रच्यौ है, सरद चंद उजियारी।।
ताल मृदंग उपंग बजावत, प्रफुलित ह्वै सखि सारी।
बनी बैंनु धुनि नूपुर ठुमकत खग-मृग दसा बिसारी।।
मान-गुमान लकुट लियैं ठाढ़ी, डरपत कुंज-विहारी।
"व्यास" स्वामिनी की छवि निरखत, हँसि-हँसि दै कर-तारी।।

हित महाप्रभु की आराध्या श्री राधा सम्पूर्णतया भाव-स्वरूपा हैं। श्री राधा-रस-सुधा-निधि में उन्हें "परम-रहस्य", "पुंजीभूत रसामृत", "प्रेमानन्द घनाकृति", "निखिल निगमागम अगोचर" आदि कहने के साथ "वृषभानु-कुलमणि" एवं "व्रजेन्द्र गृहिणी यशोदा की गोविन्दवत् एकमात्र प्रेमपात्र" बताया गया है। ऐसी अद्भुत श्री राधा को "प्रेमोल्लास की सीमा", "परम-रस चमत्कार की विचित्र सीमा", "सौन्दर्य-सीमा", नव-नव रूप लावण्य-सीमा", "लीला-माधुर्य-सीमा", "वात्सल्य-सीमा", "सुख-सीमा" और "रति-केलि कला चातुर्य सीमा" बताया गया है। इनकी स्वरूप निर्मिति "लावण्य-सार", "सुख-सार", मधुर छवि रूप सार", "चातुर्य सार", "रति केलि-विलास सार" और सम्पूर्ण सारातिसार से हुई है। (श्री रा० र० सु० नि० १३०,२५)

ऐसी असाधारण श्री वृषभानु-नन्दिनी का परिचय देते हुए श्री सेवक जी ने बताया है कि वे सुभग सुन्दरी हैं, उनका सर्वाङ्ग सहज शोभा से मण्डित है, उनका रूप सहज है, वे सहज आनन्द की पुञ्ज हैं और सहज रूप वृन्दावन की नित्य उदित चन्द्रिका हैं। उनकी नित्य नवल-केलि सहज और उनकी प्रीति एवं सुख चैंन सब सहज है। उनका प्रत्येक अङ्ग सहज सौन्दर्य से पूरित है, जो मेरे लिये वर्णनाशक्य है।

सुभग सुंदरी सहज सिंगार।
सहज सोभा सर्वांग प्रति, सहज रूप वृषभान-नंदिनी।
सहजानंद-कादंबिनी सहज विपिन वर उदित चंदिनी।।

सहज केलि नित-नित नवल, सहज रंग सुख चैन।
सहज माधुरी अंग प्रति, मो पै कहत बनै न।।

(सेवक-वाणी, सप्रम प्रकरण)

सहज सौन्दर्य-माधुर्य, शोभा, रूप आनन्द केलि, रङ्ग सभी कुछ सर्वथा अवर्णनीय है। श्री हित महाप्रभु ने कहा है कि श्री राधा के अङ्गों के सहज माधुर्य का वर्णन करने में देवलोक, भू-लोक और रसातल की कविकुल मण्डली इसलिए दहल जाती है कि हम इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सहज माधुर्य की उपमा कैसे और किससे दें ?

(श्री हित चौरासी, ५२)

श्री ध्रुवदास ने इस राधा रूप के वर्णन में अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाकर इसकी कुछ निशानियाँ बताने की चेष्टा की है। वे कहते हैं कि रति-मात्र स्वर्ण को देखकर स्वर्ण-गिरि सुमेरु की कल्पना की जा सकती है।

जहाँ लगि दुति अरु कांति बखानी। कुँवरि-अंग देखत सकुचानी।।
छबि ठाढ़ी आगैं कर जोरैं। गुन की कला चौंरि सिर ढोरै।।
चित्र भई तिहि ठाँ चतुराई। पंगु भई चितवत चपलाई।।
छै न सकति अंगनि मृदुताई। अति सुकुँवार कुँवरि तन माई।।
याते उपमा कछु उर आई। बात खोज बिनु जाति न पाई।।
रति इक हेम छबिहि उर आनैं। ताहि समुझि सुमेरु पहिचानैं।।

ऐसौ रूप प्रकास तहाँ, नख की सम नहिं भान।
तेहि ठाँ उपमा दीप की, धरिबौ बड़ौ अयान।।

(रस-हीरावली)

श्री राधा के रूप-वैभव को समझने में श्री हित महाप्रभु ने एक तुलनात्मक पद्धति अपनाई है। उन्होंने कहा है कि श्री श्याम-सुन्दर रस के सागर हैं और अपने रूप, गुण, प्रताप, वय, बल और विक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं किन्तु वह भी श्री राधा के अत्यल्प भ्रू-विलास से मोहित एवँ विथकित मृग की भाँति नाचते रहते हैं।

(जय श्री) हित हरिवंश प्रताप, रूप, गुन, वय-वल स्याम उजागर।
जाकी भ्रू-विलास वस पसु रिव दिन विथकित रस सागर।।

(श्री हित-चौरासी, ५२)

श्रीराधा मात्र रूप, सौन्दर्य, माधुर्य, दुति, कान्ति आदि की ही सीमा नहीं है अपितु मृदुता, दयालुता और कृपालुता आदि कोमल भावों की भी प्रतिमूर्त्ति है। क्रोध तो उनको स्पर्श भी नहीं करता, उनका हृदय सदा प्रफुल्ल रहता है। उनके मुख पर सदा प्रसन्नता का मृदु-मृदु स्मित छाया रहता है। प्रियतम श्यामसुन्दर की ऐसी सुकुमारी प्राण-प्रिया के जो उपासक हैं वे धन्यातिधन्य हैं; क्योंकि विश्व-ब्रह्माण्ड के सुने देखे जाने वाले जितने भी सुख हैं; वे सब श्री राधा के चरण-दास्य के सम्मुख दुःख एवं बन्धन स्वरूप हैं।

सहज सुभाव पर्‌यौ नवल किसोरी जू कौ,
मृदुता दयालुता कृपालुता की रासि हैं।
नैंकहूँ न रिस केहूँ भूले हू न होत सखि,
रहत प्रसन्न सदा हियैं मुख हासि हैं।।
ऐसी सुकुमारी प्यारे लाल जू की प्रान प्यारी,
धन्य-धन्य धन्य तेई जे इनके उपासि हैं।
'हित ध्रुव' और सुख देखियत जहाँ लगि,
सुनियत तहाँ लगि सबै दुख पासि हैं।।

(श्री ध्रुवदास शृंगार-शत)

सहचरी

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में सखियाँ श्यामा-श्याम युगल के पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध की मूर्त्ति स्वरूपा हैं। युगल में उनकी सहज आसक्ति है किन्तु प्रेम-मार्ग में भोग्य की प्रधानता होती है, अतएव ये सब सखियाँ श्रीराधा चरण-प्रधान हैं। इस समप्रदाय में 'हित' किंवा 'प्रेम-रस' परात्पर तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है और उसके सभी अङ्ग भोक्ता, भोग्य और प्रेम-सम्बन्ध उसी के

सहज रूप हैं। यहाँ सखियाँ राधा-किङ्करी हैं। इन सब सखियों की आसक्ति प्रमुख रूप से श्री राधा में और श्री राधा के प्राण-नाथ होने के कारण श्री श्यामसुन्दर में भी है। सखियों की प्राण-नाथ श्री श्यामा हैं और श्री श्यामा के प्राण-नाथ हैं श्री श्याम-सुन्दर अथवा यों भी कह सकते हैं कि श्याम-सुन्दर सब सखियों के प्राणों के प्राण हैं। गौड़ीया सिद्धान्त की भाँति इस सम्प्रदाय में सखियों का "सम-स्नेहा", "श्री कृष्ण स्नेहाधिका" और "श्रीराधा स्नेहा-धिका" जैसा कोई विभाजन नहीं है। यहाँ सखियों के हृदय में दोनों का प्रेम एकसा झलकता है किन्तु फिर भी प्रेम के क्षेत्र में भोग्य की प्रधानता होती है। गौड़ीया सम्प्रदाय में पुराणों की मान्यता के अनुसार ब्रह्मा ने भाण्डीर-वन में श्री राधा- कृष्ण का विवाह कराया था किन्तु हित-सम्प्रदाय के अनुसार ये नित्य सखियाँ नित्य श्रीश्यामा-श्याम का प्रथम मिलन-सुख प्राप्त करने के लिए युगल का नित्य-विवाह करती रहती हैं। यह विवाहोत्सव उनका मनोरथ होता है—

सखियनि के उर ऐसी आई। ब्याह विनोद रचैं सुखदाई।।
यहै बात सबके मन भाई .....।।

ये सब सखियाँ पुराणोक्त सखियों से नाम, वर्ण, सेवा, वस्त्र, आभूषण आदि में सम-वर्णित होने पर भी पुराणों की सखियों से इस बात में भिन्न हैं कि पुराणों की सखियाँ साधन-सिद्धा हैं और नित्य-विहार की सखियाँ 'प्रेरक-प्रेम' की मूर्तियाँ है अर्थात् भोक्ता और भोग्य की पारस्परिक रति ही सखियों के रूप में प्रकट है। भोक्ता की अनन्त प्रेम-तृषा तथा भोग्य का परम उदार प्रीति-संभार अपने हृदय में रखकर ये सखियाँ शुद्ध तत्सुखमयी सेवा में प्रवृत्त रहती हैं। युगल के दो प्रीति प्रकारों का सङ्गम-स्थल होने के कारण ये सखियाँ—"हित-संधि" कहलाती हैं। प्रेम के क्षेत्र में 'हित-संधि' का स्वरूप उदाहरण सहित श्री हित मोहन जी समझाते हैं—यह प्रेम अद्‌भुत तो है ही और इसका प्रकाश भी अनेक प्रकारों से होता है, एक शरीर की दो छाया किसी ने नहीं सुनी होंगी किन्तु युगल की सखी नामक यह छाया दो तनों

की एक परछाँई है, जैसे दो नेत्रों की एक दृष्टि है, ऐसे ही युगल के बीच यह सखी है। जैसे रात और दिन के बीच संध्या है, ऋतुओं के बीच शरद और वसन्त हैं, जैसे मिश्री और जल के मिलन में शरबत है ऐसे ही युगल के प्रेम-प्रकारों के बीच संधि-रूपा सखियों को समझना चाहिए।

अद्‌भुत गति या प्रेम की, यामें रीति अनेक।
दुँहुँ जन की काहू सुनी, परछाँही है एक।।

दुहुँवन बीच सखी यह नाहीं। दुँहुँ तन की एकै परछाँहीं।।
त्यौं दुँहुँ बीच सखी सुखदाई। दुहुँ नैंननि ज्यौं दीठि रहाई।।
साँझ संधि ज्यौं निशि-दिन माँही। सरद वसंत रितुनि में आहि।।
मिश्री-पानी शरबत ज्यौं कै। संधि सहेली समुझौ त्यौं कै।।

(केलि-कल्लोल)

सखियों का प्रेम असीम तो है ही, श्यामा-श्याम के प्रेम से भी अधिक सरस बताया गया है; क्योंकि युगल के प्रीति संभोग में प्रेम और नेम (काम चेष्टाएँ आदि) ताने-बाने की तरह सम्बद्ध हैं पर सखियों का प्रेम दोनों के प्रेम के साध सम्बद्ध है। अतः उनमें नेम का स्पर्श भी नहीं है। इसलिए–

लाल-लाड़िली प्रेम ते, सरस सखियनु कौ प्रेम।
अटकी हैं निज प्रेम-रस, तिनहिं न परसत नेम।।

(श्री ध्रुवदास-प्रेमलता)

इस प्रकार वृन्दावन रस-रीति में सखियों का स्वरूप काव्य जगत् के सामाजिक (काव्य के आस्वादी) से मिलता जुलता है। वे सामाजिक की भाँति एकात्म भाव से युगल के प्रेम का आस्वाद करती हैं, किन्तु सामाजिक और सखियों में बहुत बड़ा भेद यह है कि सखियाँ प्रेम-लीला की प्रयोजिका भी हैं। वे युगल की रुचि के साथ अभिन्न हैं, इसलिए श्री हित ध्रुवदास जी ने सखियों को युगल की इच्छा शक्ति कहा है। स्वभावतः युगल सखियों की इच्छा के अधीन हैं और इधर इच्छा-शक्ति रूपा सखीगण समस्त क्रीड़ाओं

की प्रयोजिका हैं तथा वही परिकर के हृदय में क्रीड़ा के अनुरूप भावों की सृष्टि करती हैं।

करवावत सब ख्याल, इच्छा शक्ति सखी तहाँ।
उपजावत तिहि काल, भाव सबिनु के तैसोइ।।

(श्री ध्रुवदासजी,-सभा मंडल)

सखियों का सुख सम्पूर्णतया युगल के साथ बँधा हुआ है, इसलिए हित महाप्रभु ने उन्हें 'हित चिन्तक' भी कहा है। वे सदा युगल के हित का ही चिन्तन करती रहती हैं। यह हित चिन्तन ही उन्हें सावधान किए रखता है । उनके सामने ही जब उनके जीवनाधार, युगल प्रीति-विवश होकर अपनी सुध-बुध खो देते हैं , तब ये हित-चिन्तक सखियाँ व्याकुल होकर भी सावधान बनी रहती हैं, पश्चात जब युगल सावधान होकर मदन-केलि परायण बनते हैं, तब ये सखियाँ मदन की लहर उठाने की चेष्टा करती हैं—

होत विवस तबही पिय पियारी। सावधान तहाँ सखी हितकारी।।
कुँवर अधर पिय अधरनि लावैं। रूप वदन नैंननि दरसावैं।।
पिय के कर लै उरज छुवावैं। मनौं मैन के खेल खिलावैं।।
उर सौं उर मिलि भुजनि भरावैं। चरन पलोटि सेज पौढ़ावैं।।
ऐसी भाँति नित लाड़ लड़ावैं। ताही सौं अपनौं जिय ज्यावैं।।

(श्री ध्रुवदास,-रति-मंजरी)

किन्तु कभी-कभी युगल के उन्मत्त प्रेम-विहार का प्रखर प्रभाव सखियों के ऊपर ऐसा भी पड़ता है कि सखियाँ विथकित होकर प्रेम-मूर्छा वशात् भूमि पर गिर पड़ती हैं । सखियों की गति देखकर युगल राधा-मोहन उनके पास आकर करुणापूर्ण नेत्रों से देखते हैं, मानो अमृत सिञ्चन के द्वारा उन्हें प्रेम-सिन्धु सुख के भँवर से बल पूर्वक निकाल लेते हैं। तब से युगल को चारों ओरसे घेर कर चकोरी की भाँति उनके मुख मण्डल को निहारने लगती हैं और यही खेल वृन्दावन में अहर्निश होता रहता है।

सखियों के जीवन का एकमात्र सुख युगल को सुख देना है। ये सखियाँ स्वसुख से सर्वथा शून्य और सेवा की साक्षात् मूर्त्ति हैं। इनके मन में सेवा का अपार चाव भरा हरता है। वे सेवा के भाव-चाव में मग्न चतुर्दिक चकडोरी सी घूमती रहती हैं। युगल के लिए नयी-नयी सामग्रियों का निर्माण उनका सहज सुख है। थकन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सेवा से अतिरिक्त अन्य सभी सुख-स्वाद उनके लिए फीके हो गये हैं—

सखी चहुँ ओर फिरैं चकडोरी सी सेवा कौ चाव बढ्यौ मनमाहीं।
सौंज सिंगार नई-नई आनत, बानत नैकहुँ हारत नाहीं।।
प्रेम पगी तिहि रंग रँगी, निरखैं तिनकौं तनकौ न अघाहीं।
और सवाद लगैं 'ध्रुव' फीके, रहैं विवि रूप के छत्र की छाँही।।

(रस-मुक्तावली)

सुधर्म-बोधिनीकार ने अपने ग्रन्थ में बताया कि सखियाँ प्रीति के सभी भावों से भावित हुई युगल का लाड़-दुलार करती रहती हैं —

निसि दिन लाड़ लड़ावहीं, अति माधुर्य सुरीति।
पुत्र मित्र पति आत्मवत्, उज्ज्वल तत्सुख प्रीति।।

(सुधर्म बोधिनी)

प्रतिदिन प्रातः काल वात्सल्य भाव से अनुरञ्जित होकर युगल को शय्या से उठाकर मुख प्राक्षलन कराके मधुर-मधुर मिष्ठान, पक्वान्न-माखन-मिश्री का भोग आरोगाती हैं। वन में भ्रमण कराती हैं, फिर स्नान कराती हैं, शृङ्गार करके आरती उतारती हैं, बीच-बीच में सुस्वादु व्यञ्जनों, फलों आदि को अर्पित करती रहती हैं, नृत्य-गान करती हैं, राज-भोग कराती हैं और मध्याह्न में शय्या पर पौढ़ा कर उनके चरण पलोटती हैं। इसी प्रकार उत्थापन से लेकर शयन पर्यन्त की सभी सेवाएँ करती रहती है।

यदि लीला-विकास के क्रम में प्रिया मानवती हो जाती हैं तो उनका मान-भञ्जन कराके प्रियतम के समीप ले जाती हैं और सुख विलसाती हैं।

सखियाँ युगल की आसक्ति-रूपा हैं, युगल की आसक्ति का उपभोग ही इनका प्रेमोपभोग है। सीधे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सखियों की आसक्ति ही युगल का मूर्त रूप है।

राधा-माधव के हृदयों में प्रेम-प्रीति का परमोज्ज्वल समुद्र प्रवाहित है, जिसमें अनन्त तरङ्गें उठती रहती हैं, जिन्हें गिना नहीं जा सकता। इसी प्रकार सखियों की संख्या भी अनगिनत है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं—

रज-कन, उड़गन, बूँद घन, आवत गिनती माहिं।
कहत जोइ थोरी सोई, सखियनि संख्या नाहिं।।

(सभा-मंडल)

इन सब सखियों में आठ सखियाँ प्रधान हैं जिनके नाम हैं—ललिता, विशाखा, रङ्गदेवी, चित्रलेखा, तुङ्गविद्या, चम्पकलता, इन्दुलेखा एवं सुदेवी। ये आठों यूथेश्वरी हैं। इनके नीचे प्रत्येक के साथ आठ-आठ सखियाँ हैं और आठों के नीचे आठ-आठ सखियाँ हैं। इस प्रकार सखियों की संख्या अनगिनत है। इनके शरीरों के वर्ण, वस्तु, इनकी सेवाओं आदि का वर्णन आगम-शास्त्रों में विस्तार से किया गया है। इन सखियों के साथ राग-रागिनी और ऋतुएँ भी सखी-रूप में युगल के सम्मुख कर-बद्ध खड़ी रहती है और समय-समय पर अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करती रहती हैं। रसिकों ने सखियों को युगल के प्रेम-रस कोष की अधिकारिणी बताया है।

श्री ध्रुवदास जी ने कहा है कि जब प्रेमरस लोक और वेद की मर्यादाओं को छिन्न-विछिन्न करके बह चलता है और स्वयं श्यामा-श्याम आत्म-विस्मृत होकर उस रस समुद्र में डूब जाते हैं, तब रस की एक मात्र धारक सखियाँ उस रस-प्रवाह को अपने नेत्रों और हृदयों में अनवरत रूप से समाती रहती हैं और उसी रस के अवलम्ब रूप से आनन्द-रङ्ग में भरी हुई युगल की सेवा में सदैव सन्नद्ध रहती हैं। सखियों के भाव को अपने चित्त में धारण करके यदि कोई उपासक-रसिक सखियों की शरण ग्रहण करता है तो वह इस रस के स्वाद का अधिकार प्राप्त कर सकता है—

मैंड तोरि रस चल्यौ अपारा। रही न तन-मन कछू सँभारा।।
सो रस कहौ कहाँ ठहरानौ। सखियनि के उर नैंन समानौ।।
तिहिं अवलंब सबै सहचरी। मत्त रहत ठाड़ी रँग भरी।।
सखियनि सरन भाव धरि आवै। सो या रस के स्वादहि पावै।।

(रति-मंजरी)

रसिकाचार्य गो॰ श्री हित हरिवंश

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में "हित" शब्द एक विशेष भाव-पुञ्ज का व्यञ्जक है। वैसे सामान्यतया 'हित' शब्द का अर्थ है 'प्रेम'। दूसरे अर्थों में परोपकार एवं सबके कल्याण की भावना भी हित ही है। श्रीमद्भागवत के वेद-स्तुति प्रसंग में परात्पर तत्त्व को 'हित' शब्द से प्रगट किया गया है—"त्वयि प्रिय हितं आत्मनि च"। उसी हित का मूर्त रूप हित हरिवंश हैं। हित का समस्त वैभव (ऐश्वर्य) हित हरिवंश का ही 'यश-विलास' है।

श्रृद्धा मयोऽयं पुरुषो यो यच्छृद्धः स एव सः" के न्याय से श्री हिताचार्य ही परात्पर-तत्त्व हित हैं। हित रूप नित्य-विहार श्री हित हरिवंश का ही वैभव है। वे अङ्गी हैं और नित्य-विहार उनका अङ्ग है।

हितमय 'नित्य-विहार' के चार अङ्गों में एक अङ्ग 'वंशी' है। वंशी प्रेम स्वरूपिणी है, वंशी के अवतार होने के कारण हित हरिवंश प्रेमावतार हैं। नैमित्तिक रास-विहार में भगवान् श्री कृष्ण की रमण सम्बन्धी इच्छा-पूर्ति का एकमात्र साधन वंशी ही है, इसलिए वह रास-रस की गायिका, प्रकाशिका और विधायिका है। श्रीकृष्ण ने द्वापरान्त में वेणु-नाद के माध्यम से रस- वर्षण किया और श्री हित हरिवंश ने कलियुग में अवतरित होकर अपनी मधुर वाणी के द्वारा रस की वृष्टि की। वंशी की इन दोनों अभिव्यक्तियों की तुलना भक्त-कवि चाचा श्री हित वृन्दावन दास ने इस प्रकार प्रकट की है—

मुरलिका यह जुग बहुत करी।
तब कुल–कृत गोपीनु तजे अब सबनि काम निदरी।।

तब रस पान दियौ जुवतिनु अब सब उर सुभर भरी।
तब हरि पुनि वंशी मोहीं अब एकै देह धरी।।
तब व्रत-कर्म-धर्म सब टारे बरबस हियहिं अरी।
अब बिनु श्रम भए सहज विदा जब प्रेम सुढार ढ़री।।
तब हरि-वदन-विधुहिं चढ़ि गाजी त्रिभुवन रौर परी।
अब रस-रीति गुपत रस-स्वादिनु दै बन में बिचरी।।
तब मोहन सौं मिलि स्यामा गुन गाए रंग ररी।
अब अतिधीर आपु राधा रस रूप अगाध झरी।।
जे-जे तिहि समए न अनुसरीं हरि इच्छा बिसरी।
वृंदावन हित द्विज कुल वपु धरि अब सब सूल हरी।।

इस सम्प्रदाय में श्री हरिवंश की वाणी वेणु-नाद तुल्य सम्मानित है यथा—

श्री हरिवंश सुनाद सुरीति, सुगान मिलै बन-माधुरी गाई।
श्री हरिवंश बचन्न रचन्न, सुनित्य किसोर किसोरी लड़ाई।।

(श्री से॰ वा॰ ८-९)

द्वापरान्त में वेणुनाद की अपेक्षा श्री हरिवंश के 'वाणी-नाद' की विलक्षणता इस बात में है कि श्रीकृष्ण का वेणु-नाद गोपियों को कान्त-रति की प्रेरणा देता है और श्री हित हरिवंश का वेणु-नाद रसोपासक को श्री राधा-चरणों की दासी-भाव का सन्देश देकर उसे निष्काम और तत्सुखमय रति प्रदान करता है।

हित-सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक पृष्ठ-भूमि में श्री 'हित हरिवंश' का स्थान धर्म-संस्थापक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इनका प्रादुर्भाव एक नवीन धर्म के प्रवर्तन के लिए हुआ था, किन्तु इस धर्म-प्रवर्त्तन में इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने अन्यान्य धर्म-संस्थापक आचार्यों की भाँति खण्डनात्मक शैली को स्पर्श भी न करते हुए अपने हित-धर्म की मण्डनात्मक विधि को

ही अपनाया। (देखिये–सेवक-वाणी १-११,१२,१३) इस प्रकार हित हरिवंश महाप्रभु का सम्पूर्ण जीवन विरोध-शून्य है। हित प्रभु ने अपने व्यक्तित्व में स्वयं के उस महान् रसिक स्वरूप को प्रत्यक्ष प्रकट किया, जिसका वर्णन उन्होंने अपनी रचनाओं में आदर पूर्वक किय, है। 'श्री राधा-रस-सुधा-निधि' में उन्होंने उन महापुरुषों की वन्दना की है, जो नित्य नव कैशोर माधुरी समूह से अत्यन्त रमणीय अङ्गच्छवि युक्त प्रेमोल्लासमयी श्री राधिका का तद्गत-भाव से अपने चित्त में निरन्तर ध्यान करते हैं, जिनको कर्मों ने स्वयं ही त्याग दिया है और जो भगवद्धर्मों के प्रति ममता-रहित हुए सर्वाश्चर्यपूर्ण रसमयी गति को प्राप्त हो चुके हैं–

कैशोराद्भुत माधुरीभरधुरीणाङ्गच्छविं राधिकां,
प्रेमोल्लासभराधिकां निरवधि ध्यायन्ति ये तद्धियः।।
त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्मेप्यहो निर्ममाः,
सर्वाश्चर्यगतिं गता रसमयीं तेभ्योमहद्भ्यो नमः।।

(श्री रा॰ र॰ सु॰ नि॰ ८०)

श्री हित-सम्प्रदाय के प्रथम भाष्यकार श्री सेवक दामोदरदास जी ने पूर्वोक्त चार रूपों में व्यक्त होने वाले श्री हित हरिवंश को परात्पर तत्त्व घोषित किया है। हित की परात्पर सत्ता को सर्वोपरि रूप से स्वीकार करते हुए उन्होंने अन्य सत्ताओं का कहीं भी समर्थन नहीं किया है। अपनी वाणी के पंचम प्रकरण "श्री हित रूप गुण-ध्यान" में उन्होंने बताया है कि श्री हित हरिवंश ही सुन्दरतम ध्येय और ध्यान हैं, वही विशद विज्ञान हैं, जो अपने निज स्वरूप से सदा-सर्वथा अभिन्न हैं। श्री हरिवंश ही प्रेम-रस रूप हैं, वही परम परमाक्षर हैं और कृपा के आगार हैं, श्री हरिवंश आत्मा हैं और प्रगट परमानन्द हैं, वही जीवन हैं और विपुल सुख-सम्पत्ति हैं। श्री हरिवंश ही गोत्र, देव, कुल और जाति हैं। वे मूर्त्तिमान् हित स्वरूप हैं, रिद्धि हैं, सिद्धि हैं। हरिवंश ही वेद विख्यात कर्म-विधि हैं और वही उपनिषद् प्रतिपाद्य अद्वय-ब्रह्म तत्त्व हैं। श्री हरिवंश

पातञ्जल योग शास्त्र प्रतिपादित अष्टाङ्ग-योग हैं और वही पुराण प्रतिपादित पुण्यों के भोग हैं। श्री हरिवंश ही न्याय वैशेषिक द्वारा प्रतिपादित प्रमाण परम्परा हैं और वही रस-शास्त्र द्वारा पल्लवित "प्रियता" हैं। श्री हरिवंश ही साहित्य, संगीत एवं चौंसठ कलाओं द्वारा गोचर पदार्थ हैं और वही जगन्मङ्गल- स्वरूप हैं। इस प्रकार राधावल्लभ-सम्प्रदाय में हितस्वरूप श्री हरिवंश ही उक्त परात्परता के कारण हित किंवा प्रेम के मूर्त्त रूप आचार्य हैं।

हितोपासना

सम्प्रदाय में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं कान्त-रस की उपासना का तारतम्य दिखाते हुए युगल किशोर के नित्य-विहार विलास रस को इन से सर्वोपरि बताया गया है। इस रस विलास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रेमोल्लास कभी घटता नहीं अपितु बढ़ता ही रहता है। इसलिए इस रस-भजन से परे न तो कोई भजन है, न सुख—

सर्वोपरि है मधुर रस, जुगल किसोर विलास।
ललितादिक सेवति तिनहिं, मिटत न कबहुँ हुलास।।
या पर नाहिंन भजन कछु, नाहिंन सुख कछु और।
प्रेम-मगन बिलसत दोऊ, परम रसिक सिरमौर।।

(श्री ध्रुवदास जी,—भजनाष्टक)

नित्य-विहार की सखियों की उपासना शुद्ध प्रेम की उपासना है। वस्तुतः प्रेम की उपासना प्रेमी की उपासना है। नित्य-विहार में युगल परस्पर में एक-रस अनुपम प्रेमी और प्रेमास्पद हैं—

एकै प्रेमी एक रस, श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कहै कोउ और ठाँ, झूठौ जानों ताहि।।

(श्री ध्रुवदास जी—प्रेमावली)

सखियों के उपासना-भाव को ग्रहण करने के लिये उक्त केन्द्रीय भाव

को ग्रहण करना चाहिये। यह केन्द्रीय-भाव रसिक प्रेमियों के सङ्ग से मिलता है। यह सङ्ग और यह रस श्रीराधा-कृपा-लब्ध है। रसिक वह है, जो रस का सार ग्राही है और श्यामा-श्याम का नित्य प्रेम-विहार-रस ही रस का सार है, जो वृन्दावन की निभृत-निकुञ्जों में विलसित है। जिसके हृदय में प्रतिक्षण श्यामा-श्याम की अद्भुत प्रीति झलकती रहती है, वही रसिक है। इस रससार का गान श्री हिताचार्य ने अपनी वाणी में किया है। इसलिए श्रीसेवक जी ने कहा है कि जो हित हरिवंश की वाणी से पक्षपात पूर्वक सन्नद्ध है, वही निपट-रसिक हैं—

रसिक बिनु कहैं सबही जु मानत बुरौ, कहौ रसिकई कैसैं जु जानी।
आपु आपुनी ठौर जेई तहाँ, आपनी बुद्धि के होत मानी।।
निपट करि रसिक जौ होहु तैसी कहौ, अब जु यह सुनौ मेरी कहानी।
जौरु तुम 'रसिक' रस-रीति के चाड़िले, तौरु मन देहु हरिवंश-वानी।।

(श्री सेवक वाणी, प्र॰ ४, छन्द १५)

अतः श्री हित हरिवंश की 'रस-रीति' को समझ सकने वाला वह कोई विरला ही व्यक्ति होगा, जो व्यासनन्दन श्री हित हरिवंश के उपासना-पथ का, मन-वचन-कर्म पूर्वक अनुसरण करेगा—

श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै, सोई भलैं पहिचानि है।
हरिवंश गुसाँई भजन की, रीति सकृत कोउ जानि है।।

(श्री नाभा स्वामी, भक्तमाल सं॰ ६०)

इसीलिए श्री हरिवंश के धर्म को समझने के लिए हित-धर्मियों का सङ्ग ही सर्वोपरि धर्म बताया गया है और उन धर्मियों की उपासना-सेवा-भक्ति को भी अनिवार्य कर्म बताया गया है, क्योंकि धर्म की धारणा के बिना कोई धर्मी नहीं और धर्मी के बिना धर्म का प्रकाश नहीं। इसीलिए सेवक जी कहते हैं कि हरिवंश नाम के धर्मियों से प्रेम करो और निरन्तर उनकी शरण में

रहो एवं उन धर्मियों से मिलकर ही श्री हरिवंश का सुयश गान करते रहो; क्योंकि भगवान् का भजन करने वाले अनेक प्रकार के भक्त हैं और उन भक्तों में भी बहुत भेद हैं। अपनी उपासना को ध्यान में रखे बिना जो 'उपासक सब प्रकार के भक्तों का सङ्ग करता है। अन्ततः खेद को ही प्राप्त होता है। सर्वत्र एकसा भाव रखना ज्ञानमार्गीय साधकों की रीति है और खूब सोच समझ कर विवेक पूर्वक अपने अनुकूल भाव की उपासना करने वाले से मिलना, उनका सङ्ग करना यह प्रेमी-उपासक की रीति है।

इष्ट मिलै अरु मन मिलैं, मिलैं भजन रस-रीति।
मिलिए तहाँ निसंक ह्वै, कीजै तिन सौं प्रीति।।
भक्त आहिं बहु भाँति के, तिनमें बहुतक भेद।
बिनु विवेक मिलिबौ तहाँ, मन पावै अति खेद।।
सब ठाँ मिलिबौ एक सो, ज्ञानी की यह रीति।
भजनी सोई विवेक सौं, करै समुझि कै प्रीति।।
बहुत मिलै सो संग नहिं, न्यारी-न्यारी भाँति।
जुगल प्रेम रस मगन जे, तेही अपनी जाति।।
संग सोई जाके मिलैं, छूटै गृह-व्यौहार।
तिहि छिन आवै हिये में, अद्भुत जुगल-विहार।।

(मन-शिक्षा—श्रीध्रुवदास)

अस्तु , उपासक को चाहिए कि अपनी रस-रीति के प्रति माधुर्यमयी ममता रखते हुए सजातीय धर्मी रसिकों की मण्डली में ही खान-पान सम्बन्ध रखे, अन्य से नहीं। रसिक अनन्यों की ही जूँठन-प्रसादी ग्रहण करना चाहिए। जहाँ- तहाँ भोजन करने से भजन का तेज कम हो जाता है।

ध्यान रहे कि उपासना की शुद्धता के लिए ही यह मर्यादा बाँधी गयी है, ईर्ष्या, द्वेष और घृणा के लिए नहीं। स्वभावतः प्रेम एक उदार भाव है , जिसका प्रभाव मन और नेत्रों पर एक साथ पड़ता है। मन यदि प्रेममय है,

तो दृष्टि भी प्रेममय बनेगी और प्रेमी-दृष्टि से सर्वत्र प्रेम ही दिखाई देगा। अतः सङ्कीर्णता और विरोध के लिए इस हितोपासना में कहीं कोई स्थान नहीं है। सेवक जी ने कहा है—

सब जीवनि सौं प्रीति, रीति निबाहत अपनी।
श्रवन कथन परतीति, यह जु कृपा हरिवंश की।।

रसिकों ने साधक के मन की प्रायः दो स्थितियाँ बताई हैं एक साधारण, दूसरी असाधारण। साधारण स्थिति में मन विषय-सम्बन्धी रसों का ग्रहण करता है और असाधारण स्थिति में वह अप्राकृत-रस का आस्वादन करता है, इसलिए रसिकों का मत है कि विषय रस के आस्वादी मन का वध करके उसे सर्वथा नये रूप में जिलाना चाहिए। यह नव-जीवन प्राप्त मन ही रसिक कहलाकर रसिक-नरेश श्री हरिवंश के रस-मार्ग पर चल सकता है और जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हृदय में युगल प्रेम का अङ्कुर नहीं उगता। प्रेम-बीज के उदय होने से ही समस्त हृद्गत विषय-वासनाओं का सर्वथा विनाश हो जाता है।

प्रेम-बीज उपजै मन माहीं। तब सब विषै-वासना जाहीं।।
जग तें भयौ फिरै वैरागी। वृंदावन-रस में अनुरागी।।

(अनुराग लता)

और उपासक का मन वृन्दावन रस में अनुरक्त होकर संसार से विरक्त हो जाता है। प्रेम-रसासव को चखते ही उसकी गति प्रेम-रस में तल्लीन होकर मीन-नीर की सी हो जाती है। चित्त में प्रेम-रस का स्पर्श होने पर प्रेम का प्रभाव उसकी देह पर भी पड़ने लगता है, उसे हँसना, खेलना, खान-पान सब भूल से जाते हैं; वाणी विथकित हो जाती है। हृदय में रूप की चोट लगते ही उसके सब अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। उसके हृदय में केवल चाह का कमल फूला रहता है। प्रेम रूप हरिवंश से आत्मसात् होकर वह अपने को दैन्य-वशात् तृण से भी अधिक नीचा मानने लगता है, अमानी रहकर मान-दान

करता है और वृक्ष की भाँति सहनशील हो जाता है। समस्त चिन्ताओं से मुक्त हुआ वह हरिवंश के प्रेम-विहार में लीन रहा आता है और इस प्रेम-तन्मयता के कारण लोक की रूढ़ियों और वेद की कर्म-विधाओं का निर्वाह करने में असमर्थ हो जाता है। शुभा-शुभ और अन्य सभी द्वन्द्वों से ऊपर उठा हुआ वह प्रेमी प्रेम-रसानुभव में मग्न बना रहता है।

'प्रेम की उपासना स्वभावतः अनन्य उपासना है; क्योंकि इस प्रेमोपासना में फल, माहात्म्य और विषय-वासनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। अनन्य कहलाना तो सरल है परन्तु अनन्य बनना बहुत कठिन है; क्योंकि अनन्यता की स्थिति में अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों एवं वासनाओं को इष्ट के भजन में लीन करना होता है।

तन अनन्य निजु धर्म दृढ़, रस अनन्य दृढ़ चित्त।
बुधि अनन्य सिद्धांत रस, अहं सु सेवक नित्त।।

(सुधर्म-बोधिनी)

अस्तु, व्यवहार-सिद्धि के लिए अनन्य प्रेमी उपासक को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस विषय में गो॰ श्री ब्रजलाल जी ने स्वरचित ग्रन्थ 'सेवा-विचार' में बड़े ही उचित निर्णय दिये हैं। उन्होंने कहा है कि अनन्य रसिक को अपने इष्ट के अतिरिक्त अन्य किसी का भी आश्रय ग्रहण नहीं करना चाहिये। वे कहते हैं कि पुत्र आदि की कामना से शीतला देवी की उपासना नहीं करनी चाहिए। प्रताप-वृद्धि, वैभव-लाभ और व्यापार-सिद्धि के लिए क्षुद्र-देवताओं का आश्रय नहीं लेना चाहिए। इसी प्रकार अपनी आजीविका के लिए हरिभक्ति शून्य मनुष्यों की सेवा नहीं करनी चाहिए और यह विश्वास रखना चहिए कि अनन्याश्रयी साधु पुरुषों का योग-क्षेम का निर्वाह करने वाले श्रीहरि ही सर्वोत्कृष्ट रूप से विराजमान् हैं।

नो पुत्रादि निमित्त यत्र सुकृती सम्पूजयेत् शीतलां ,
नान्यान् क्षुद्रसुरान्प्रताप विभव व्यापारणार्थं यजेत्।।

नो वा जीवन हेतवेऽपि विमुखान्मर्त्यांश्च संसेवये,
योग-क्षेमकरो हरिर्विजयतेऽनन्याश्रयाणां सताम्।।

(सेवा-विचार–६३)

विधिपूर्वक किये गये योग, यज्ञ, तप, व्रत, नियम, संयम, तीर्थ-यात्रा, तीर्थ-स्नान, अनन्त-दान आदि से आत्मा वैसा शुद्ध नहीं होता जैसा वृन्दावनांतर्गत यमुना-तट के कुञ्ज प्रदेश में विराजमान् श्री राधावल्लभ के चरण-कमल के भजनानन्द से होता है। इसी प्रकार रसिक अनन्य प्रेमी को संध्या-वन्दन, तर्पण आदि नित्य कर्म करने से कोई लाभ नहीं है ओर न करने से कोई हानि नहीं है क्योंकि वह प्रातः, मध्याह्न और सायं सभी काल में श्रीहरि की परिचर्य्या में लगा रहने के कारण प्रत्यवाय दोष का भोगी नहीं होता। श्राद्ध आदि कर्म न करने पर भी उस के पितृ-गण उस की भक्ति प्रभाव से सहज ही तर जाते हैं। श्रीमद्भागवत में नरसिंह भगवान् ने भक्त प्रह्लाद से कहा था कि तुम्हारे भक्ति-प्रताप से तुम्हारी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार हो जायेगा।

श्री हित हरिवंश महाप्रभु वैदिक, स्मार्त्त और विविध सम्प्रदायों के सिद्धान्त-वाद के ज्ञाता सर्वज्ञ महापुरुष थे, इसीलिए वे अनन्य रसिक धर्म की सुदृढ़ स्थापना के लिए समस्त वैदिक, स्मार्त्त और फलाकाङ्क्षी सम्प्रदाय धर्मों का कोई भी आग्रह न मानते हुए अपनी आराध्य श्री राधा के चरण-दास्य धर्म में ही सदा एक-रस अवस्थित रहे। यहाँ तक कि उन्होंने पौराणिक व्रत एकादशी का भी त्याग करके अपने सेव्य का उच्छिष्ट-भुक्त प्रसाद ग्रहण किया। श्री नाभा जी ने श्री हित महाप्रभु का परिचय देते हुए भक्तमाल में लिखा है—

सर्वस महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी,
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।

(भक्तमाल, छप्पय ९०)

श्री हित हरिवंश के परवर्त्ती सन्त महानुभावों ने भी इस बात का समर्थन और पालन किया।

रे मन लागे भोग जब, कीजै तब न विचार।
सब प्रसाद लै पाईयै, ब्यौरौ भेद निवार।।

(श्री ध्रुवदास जी)

भोग लगै हित लाड़िले, पुनि पवाइ हितदास।
सो प्रसाद लै पाइयै, यह अपने उपवास।।

(सुधर्म-बोधनी)

श्री हरिराम 'व्यास' ने तो करोड़ो एकादशी व्रतों को भगवद्-भुक्त महाप्रसाद के एक कण के तुल्य माना है—

कोटि-कोटि एकादशी, महाप्रसाद कौ अंस।
व्यासहि यह परतीति है, जिनके गुरु हरिवंश।।

(श्री हरिराम व्यास)

हित महाप्रभु का प्रादुर्भाव उस काल में हुआ था, जब आस्तिक सनातनी समाज देवी-देवताओं, मन्त्र-तन्त्रों, तीर्थ-व्रतों, श्राद्ध, नवग्रह और ऐसी अनेक भ्रम-भ्रान्तियों से जकड़ा सा हुआ था। श्री हित जी के पिता राज-सम्मानित प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य थे। श्री हित जी ने बाल्यकाल में ज्योतिष की शिक्षा पायी थी किन्तु उन्होंने अल्प वयस् में ही यह समझ लिया था कि यह सनातनी रुढ़िवाद विशुद्ध भगद्भक्ति का विरोधी है। जैसा कि उन्होंने अपनी वाणी के स्थलों पर स्पष्ट कहा है—

जौ पै कृष्ण चरन मन अर्पित तौ कहा करि हैं नवग्रह रंक।

नारद ने भक्ति सूत्र में कहा है—सा त्वस्मिन् फल रूपत्वात् अर्थात् अनन्य प्रेम फलाकाङ्क्षा शून्य होता है, क्योंकि वह स्वयं फल स्वरूप होता है। इसलिए सकामी मन से इस अनन्य प्रेम का ग्रहण नहीं हो सकता। इन सकामियों की मूढ़ता पर तरस खाते हुए श्री हित ध्रुवदास जी ने कहा है—

वृंदाविपिन निमित्त गहि, तिथि विधि मानै आन।
भजन तहाँ कैसैं रहै, खोयौ अपने पान।।

खोयौ अपने पानि, मूढ़ कछु समुझत नाहीं।
चंद्र मनिहिं लै गुहै, काँच के मनियन माहीं।।
जमुना पुलिन निकुंज घन, अद्‌भुत है सुख कौ सदन।
खेलत लाड़िली-लाल जहाँ, ऐसौ है वृंदाविपिन।।

(भजन कुंडलियाँ)

श्री सेवक जी ने बताया है कि श्री हरिवंश ने श्रीश्यामा-श्याम का सुरस प्रकट किया है उस उपासना-रस में न तो विधि-निषेध का झगड़ा है, न सुदिन-कुदिन, न शुभ-अशुभ है, न मान-अपमान ना ही इस में असत्य, भ्रम, कपट, मिथ्या, चातुर्य्य, स्नान-क्रिया, जप-तप आदि कुछ भी नहीं है। उसमें ज्ञान और ध्यान तो व्यर्थ का श्रम हैं।

(श्री सेवक-वाणी २-४)

श्री सेवक जी ने यह भी बताया है कि "वेद-शास्त्र, पुराण आदि में जितने भी साधनों का विधान किया गया है, वे सब सकाम-मति से प्रेरित होने के कारण स्वार्थमय एवं अनीतिपूर्ण हैं। ज्ञान, ध्यान, व्रत और कर्मादिक साधनों पर मेरा मन आश्वस्त नहीं होता। रसिकानन्य नृपति श्री हित हरिवंश ने श्यामा-श्याम की अनन्य-प्रीति का जो डिण्म-डिमघोष किया है, मैंने उसका ही आश्रय लिया है।"

साधन विविध सकाम मति सब स्वारथ सकल सबै जु अनीति।
ज्ञान, ध्यान, व्रत, कर्म जिते सब, काहू में नहिं मोहि प्रतीति।।
रसिक अनन्य निसान बजायौ, एक स्याम-स्यामा पद-प्रीति।
श्री हरिवंश चरन निजु सेवक, बिचलै नाहिं छाँड़ि रस रीति।।

(श्री सेवक-वाणी–१३-१)

सारांश यह है कि श्री हरिवंश के चरण-कमलों का अनन्याश्रयी सेवक तदुपदिष्ट रस-रीति को छोड़कर कभी विचलित नहीं होता।

अस्तु , इस समग्र विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि राधावल्लभीय सम्प्रदाय की उपासना-विधि उपनिषद्, पुराण और आगम शास्त्रों से अविरुद्ध होकर भी शास्त्रों की सकाम और मोक्ष-परायण लीक का परित्याग करके रस प्रवर्त्तकाचार्य श्री हित हरिवंश की वाणी के प्रामाण्य में गतिमान् है। अतएव इस सम्प्रदाय का रस-दर्शन परात्पर तत्त्व हित के उज्ज्वलतम निष्काम, तत्सुख एवं अनन्यता की विशाल और विशद लीला अर्थात् नित्य-विहार के रूप में स्थित है।

अस्तु, रसिक-भूषण सन्त श्री हित ध्रुवदास जी ने अपनी वाणी में सम्प्रदाय के रस-दर्शन का जो पल्लवन किया है, अब हम उस पर भी एक दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

विक्रम सम्वत् की सोलहवीं शताब्दी के मध्य छठे दशक में अवतरित हुए प्रेमावतार वंशी स्वरूप रसिकाचार्य गोस्वामी श्री हित हरिवंश ने प्रेम धाम श्री वृन्दावन में व्रज-विहार की नैमित्तिक लीलाओं से परे विशुद्ध नित्य-विहार की उपासना का प्रवर्त्तन किया, जिसे राधावल्लभीय सम्प्रदाय किंवा श्री हित सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। इस नित्य-विहार की विशुद्ध रसमयी उपासना के "रस-सिद्धान्त" एवं "लीला-दर्शन" को समझने के लिए सेवक- वाणी एवं बयालीस-लीला का ज्ञान अनिवार्य माना जाता है। "सेवक-वाणी" सिद्धान्त ग्रन्थ है, जिसमें मुख्यतः हित-चौरासी के पदों में निहित वृन्दावन-रस-रीति के सूत्रों को गूँथ कर सुनिश्चित "प्रेम-सिद्धान्त" की रचना की गयी है। किन्तु श्री हित ध्रुवदास कृत "बयालीस-लीला" नामक समुचित ग्रन्थ में प्रेमाभक्ति के सिद्धान्त का विशद और मार्मिक विवेचन किया गया है। 'लीला' शब्द एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोजित है। इस ग्रन्थ की वर्णन शैली कुछ ऐसी है, जिससे ग्रन्थान्तर्गत वर्णित लीलाओं में आचरित प्रेम का स्वरूप और उसका सामर्थ्य सहज रूप से स्पष्ट होता चलता है, किन्तु वर्णित लीलाओं के रस-प्रवाह में कोई अन्तर नहीं आता अपितु श्री श्यामा-श्याम की प्रेम लीलाओं का वर्णन करते और उन लीलाओं से भावित होते ग्रन्थकार का मन चकित

और विभोर हो उठता है और तब उनकी वाणी में प्रेम (हित) की विलक्षणता, उज्ज्वलता, महत्ता एवं दुर्लभता आदि का सहज सङ्केत होने लगता है, जिससे लीला का मर्म समझने में रसिक पाठक को कोई कठिनाई नहीं होती। हम पहले कह आयें हैं कि श्री सेवक (श्री हित दामोदर दास) जी एवं श्री हित ध्रुवदास जी श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के दो ऐसे प्रारम्भिक महानुभाव हैं, जिन्होंने श्री हिताचार्य की रचनाओं के आधार पर हित-सम्प्रदाय के "प्रेम-सिद्धान्त" और "रस-विलास पद्धति" के दो सुदृढ़ स्तम्भ स्थापित किए।

श्री हित ध्रुवदास जी सहारनपुर जनपद के देवबन्द नामक नगर के निवासी थे। इनका जन्म एक ऐसे कायस्थ परिवार में हुआ था, जो प्रारम्भ से ही श्री हिताचार्य का कृपा-भाजन था। श्री ध्रुवदास जी के पिता श्यामदास श्री हित हरिवंश महाप्रभु के शिष्य थे और ये स्वयं श्री हित प्रभु के तृतीय पुत्र गोस्वामी श्री गोपीनाथ जी के शिष्य थे। इसीलिए रसिक अनन्य मालकार गौड़ीया महात्मा श्री भगवत मुदित जी ने इनको "परम्पराइ अनन्य उपासी" लिखा है। विविध ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं सम्प्रदाय की सन्त-वाणियों में प्रामाणिक रूप से लिखा गया है कि श्रीध्रुवदास जी, श्रीहित हरिवंश जी की कृपा से अभिषिक्त होकर अल्पवयस्[१] (मात्र दस वर्ष की आयु) में ही विरक्त होकर श्री वृन्दावन वास करने लगे थे। यथा—

---

१. "श्री हित ध्रुवदास और उनका साहित्य" नामक शोध प्रबन्ध के प्रणेता डा॰ श्री केदारनाथ द्विवेदी ने अपने शोध प्रबन्ध में एक लम्बा सा वंशवृक्ष प्रस्तुत करते हुए बताया है कि किसी सुन्दर लाल भटनागर कायस्थ की चौथी पीढ़ी में ध्रुवदास नामक व्यक्ति हुए हैं, जिनके दो पुत्र मोदिनी राय और महताब राय थे। इन दोनों पुत्रों का विशाल परिवार बढ़ा, जिस की वर्तमान पीढ़ी में विश्वम्भर दयाल और रामेश्वर दयाल आदि अभी भी जीवित है।

किन्तु सम्प्रदाय के साहित्य एवं इतिहास ग्रन्थों में ऐसा कोई भी विवरण हमें प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त डा॰ विजयेन्द्र स्नातक ने अपने शोध-प्रबन्ध "राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य" एवं डा॰ शीला ग्रोवर ने भी अपने शोध-प्रबन्ध "भक्तकवि ध्रुवदास, सिद्धान्त और साहित्य" में कहीं कोई ऐसा सुपुष्ट विवरण नहीं प्रस्तुत किया, जिससे यह सिद्ध हो कि श्री हित ध्रुवदास जी गृहस्थ आश्रम भोग कर पुत्रवान् होने के पश्चात् संसार से विरत होकर बहुत बड़ी आयु में श्री वृन्दावन आए थे। अतएव श्री हित ध्रुवदास जी के अल्पवयस् (दस वर्ष की आयु) में श्री वृन्दावन आने की धारणा ही अधिक सुपुष्ट एवं बलवती प्रतीत होती है।

परम पुरातन धर्म मर्म आरज हित गाये।
ताही मग रस ढरे धाम वृंदावन आये।।
हित मंडल अभिराम स्याम-स्यामा जहँ राजै।
तिन मुख आयसु पाइ भने बहु ग्रंथ समाजै।।
उमर बरस दस हृदय में बाढ्यौ प्रेम प्रकास की।
कलि सुगम सेतु भव तरन कौं गाथ विमल ध्रुवदास की।।

(श्री गोबिन्द अलि,–भक्तमाल)

श्री हित ध्रुवदास जी पूर्व संस्कार सम्पन्न भक्त एवं सुकवि थे। वे प्रतिभा के भी धनी एवं अध्ययनशील मनीषी थे। उन्होंने आगम-निगम पुराणादि भक्ति शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। कहा जाता है कि श्रीवन आने पर उन्होंने गुरु कृपा से नित्य-विहारिणी श्री राधा का साक्षात् दर्शन भी प्राप्त किया। उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि मैं वृन्दावन विलासी हित-स्वरूप श्री श्यामा-स्याम के अद्भुत एवं अखण्ड प्रेम विलासमय नित्य-विहार का अपनी वाणी द्वारा गान-वर्णन करूँ। इस अभिलाषा से भावित होकर वे निराहार व्रत पूर्वक दो दिन तक श्री हित रास-मण्डल में पड़े रह कर अश्रुपात करते रहे। उनकी प्रीति और लगन को देखकर मृदुल-मना श्री किशोरी राधा का हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने तीसरे दिन मध्य रात्रि में अपने चरण-कमल का ध्रुवदास जी के मस्तक पर स्पर्श किया, जिससे उनके नूपुर क्वणित हो उठे। उस दिव्य-ध्वनि को श्रवण कर ध्रुवदास जी आनन्द-पूरित हो गये। उन्हें वाणी सुनाई दी–

वाणी भई जू चाहत कियौ, उठि सो वर तोकौं सब दियौ।

इस अलौकिक कृपा पूर्ण–घटना के फल-स्वरूप अपनी कृत-कृत्यता का अनुभव करते हुए श्री ध्रुवदास जी ने वृन्दावन विलासी श्यामा-श्याम की नित्य लीला का अनुभवपूर्ण गान मुक्त कण्ठ से आरम्भ कर दिया, जिससे विशाल प्रेम-वैभवपूर्ण दीर्घकाय वाणी की रचना हुई, जो अल्प-काल में ही

समुद्र पर्यन्त चारों दिशाओं में प्रसरित हो गयी। उसके श्रवण, मनन, पठन-पाठन से अनेक भक्त-भावुक श्री वृन्दावन आकर निवास करने लगे। रसिक अनन्य मालकार महात्मा श्री भगवत मुदित जी ने लिखा है कि—

वानी श्री ध्रुवदास की, सुनि जोरी मुसिकाति।
"भगवत" अद्‌भुत रीति कछु, भाव-भावना पाँति।।

अस्तु श्री ध्रुवदास जी के समकालीन एवं पूर्ववर्ती राधावल्लभीय रसिक महानुभावों ने किसी विशिष्ट प्रबन्ध ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया था। उन्होंने लगभग प्रकीर्णक पदों का ही गान किया था। श्री ध्रुवदास जी ने वृन्दावनीय नित्य- विहार को प्रेम-विलास की अखण्ड धारा बताते हुए छोटे बड़े बयालीस प्रबन्ध ग्रन्थों में हित के विलास का साङ्गोपाङ्ग रस-दर्शन प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में पद-रचना की परम्परा को शैथिल्य देकर अपने सारे ग्रन्थ दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, अरिल्ल, छप्पय और सोरठा आदि में लिखे हैं। इस शैली में उन्हें अद्‌भुत सफलता तो मिली ही, अपितु उनकी काव्य-धारा में प्रेम की विभिन्न दशाओं एवं स्थितिओं का उन्मज्जन-निमज्जन करती हुई लीला-रस की अखण्ड और सहज व्यञ्जना झलक उठी है। श्री ध्रुवदास जी के सरस-काव्य गायन में एक रचना ब्रज-भाषा-गद्य की भी है, जिसे :सिद्धान्त-विचार' नाम से जाना जाता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि उस काल में विविध भक्त, सुकवियों द्वारा जो भी साहित्य-सृजन हुआ, वह सब पद्यात्मक ही हुआ। इन्होंने अपने गद्यात्मक-ग्रन्थ 'सिद्धान्त-विचार' में जिस सुष्ठु, परिमार्जित, भाव- ग्राही और सारार्थ प्रदायनी गद्य-वार्त्ता का लेखन किया, वह अपने युग की बड़ी ही उत्कृष्ट रचना है।

श्री हित ध्रुवदास ने अपने समस्त ग्रन्थों में जिस प्रेम-रस विलास की विविध भाँति से उपपत्ति की है, उसका सार-सर्वस्व उनके 'सिद्धान्त-विचार' नामक भाषा—गद्यात्मक ग्रन्थ में सङ्कलित है। 'प्रेम' उनका ध्येय है, ध्यान है, उपास्य तत्त्व है। वह प्रेम अपने विशुद्ध एवं सर्वोपरि स्वरूप में वृन्दावन की

निभृत निकुञ्जों में श्री श्यामा-श्याम युगल-किशोर के मूर्त्तभाव में क्रीड़ारत है। युगल श्री श्यामा-श्याम की क्रीड़ा प्रेम-नेम ओत-प्रोत है। प्रेम उज्ज्वल रस की अलोल समाधि है। नेम तत्सुखमय क्रीड़ा-विलास है। प्रेम अनादि और अनन्त है। नेम सादि और सान्त है। प्रेम और नेम दोनों ही अनेक रूपमय हैं। वृन्दावन की समग्र कैशोर-केलि प्रेम-नेममय है। प्रेम-नेम वस्तुतः एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं, मात्र अवबोधन के लिये इसका विभाजन करके कहा जाता है।

वृन्दावन-विलासी श्री किशोरी-किशोर युगल का सर्वोपरि आस्वाद्य रस केवल प्रेम है, यही विशुद्ध केलिमय प्रेम रसिकों का भी आस्वाद्य होना चाहिये।

रसिक उन्हें कहना चहिये, जो केवल श्री किशोर-युगल के रस-विहार से अतिरिक्त अन्य भक्ति-रसों का भी स्पर्श नहीं करते। जो भक्ति के दास्यादि भावों-रसों के आस्वादी है, वे भक्त हैं। भक्तगण समस्त अवतार लीला एवं ऐश्वर्य-माधुर्य-मण्डित भगवान् के माहात्म्य ज्ञानादि का समभाव से आस्वादन करके आनन्दित होते हैं। विदेह राज जनक, उद्धव आदि सभी भक्त इसी कोटि में आते हैं।

भक्तों से भी श्रेष्ठ कोटि उन सनेही उपासकों की है, जो व्रज-देवी गण के भाव से भावान्वित हैं। जिनकी उपासना अनुरागमय है अतः आसक्ति प्रधान है। इस कोटि के भक्तगण ब्रह्मादिक ऐश्वर्य-प्रधान भक्तों के भी वन्दनीय हैं।

इस समग्र भक्ति भावों से ऊपर और ज्ञान-कर्मादि मोक्ष-साधनों से भी अत्यन्त परे, अति दुर्लभ नित्य-किशोर वृन्दावन-चन्द्र युगल का नित्य-विहार है, जो नित्य सखी श्री ललिता-विशाखादि का नित्य-सेव्य है।

वृन्दावनीय नित्य विहार तत्सुख भाव से ओत-प्रोत है। श्री राधा श्याम सुन्दर युगल पारस्परिक तत्सुख की परम अवधि है, तो सखीगण उनसे भी परे युगल के प्रति तत्सुखमय प्रेम की अन्तिम एवं चरम सीमा हैं। सखियों का प्रेम-प्रकार अनिर्वचनीय है। कृपा-साध्य है।

रसिक-उपासकों का यही साध्य लक्ष्य है। अतः अनन्य, निर्भ्रम, निष्कपट रीति-पूर्वक रस-रीति की उपासना में स्थित होना चाहिये।

प्रेम एवं नेम के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'नेम' क्रिया प्रधान तत्त्व है अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि प्रेमी में प्रेम की महादशा प्रकट होने पर 'नेम' अवशेष रहता है, या प्रेम-लीन हो जाता है ?

इसका उत्तर देते हुए श्री ध्रुवदास जी ने बताया है कि जो नेम प्रेम से विजातीय हैं वे भले ही चले जायँ, पर जो नेम, प्रेम-यन्त्रित है, उनका पृथकत्व कैसे सम्भव है। उदाहरणार्थ रँगे हुए वस्त्र से उसके विजातीय रङ्ग का पृथकत्व सम्भव है, पर वस्त्र का अभाव कैसे सम्भव होगा। अतः प्रेम एक-रस है और नेम आवागमनशील है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि प्रेम की उत्पत्ति होने पर प्रेमी उपासक के चित्त में प्रेम के सजातीय धर्म रह जाते हैं और विजातीय कर्म-धर्मादि स्वाभाविक रूप से विसर्जित हो जाते हैं।

नवधा भक्ति सजातीय धर्म है, इसीलिये वह प्रेमास्पद युगल के प्रति प्रेम प्रधान लाड़-प्यार बनकर नित्य-विहारी युगल की सेवा के रूप में तत्सुखमयी सखियों में सदा विद्यमान् रही आती है।

प्रेम का एक धर्म यह भी है कि प्रेमी की अपनी सारी रुचि एवं प्रवृत्तियाँ उसके अपने प्रेमास्पद में विलीन हो जाती हैं, इसलिये प्रेम धर्म में उचित अनुचित आदि द्वन्द्वों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

श्री हित ध्रुवदास जी काम और प्रेम का भेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि इन्द्रियों द्वारा भोगे जाने वाले विषय-सुखों में 'काम' का स्थान सर्वोपरि है, 'काम-सुख' अनन्त न होकर आदि-अन्त युक्त होने से नश्वर है , अतः सामान्य इन्द्रिय धर्म है किन्तु प्रेम और प्रेम-जन्य सुखानुभूति अनैमित्तिक होने के कारण शाश्वत एवं अतीन्द्रिय है। जिस प्रेम ने युगल किशोर को भी वशवर्त्ती बना रखा है, वह अद्‌भुत एवं अवर्णनीय है। इस अद्‌भुत प्रेम की निमेष-मात्र सुखानुभूति पर कोटि-कोटि कल्पान्त-सुख न्यौछावर हैं।

कोक-शास्त्रानुसार नायक-नायिका की काम-केलि, प्रेम-केलिवत् प्रतीत होकर भी स्व-सुखानुसन्धानमय होने के कारण प्रेम न होकर सामान्य सुख-भोग मात्र है, क्योंकि भोक्ता-भोग्य के अहंजन्य द्वैत के रहते प्रेम की स्थिति नहीं बन पाती। प्रेम तो 'अद्वैत' है और वह अद्वय-युगल श्री श्यामा-श्याम में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं।

श्री श्यामा-श्याम की काम-केलि के सम्बन्ध में श्री ध्रुवदास जी का कथन है कि दिव्य-दम्पति की केलि अप्राकृत सहज एवं विशुद्ध प्रेम है—मूर्त्तिमान् प्रेम है। अप्राकृत इसलिये कि तत्सुखमय है। कोटि-कोटि कन्दर्प-मान-मर्दन कारी श्री श्यामसुन्दर प्रेम-वशवर्त्ती होकर श्री किशोरी के असमोर्द्ध्व रूप-लावण्य एवं अचिन्त्य प्रेम पर न्यौछावर हुए आज्ञाकारी सेवक बन गये हैं। यह केवल प्रेम का स्वरूप है; क्योंकि श्रीलाल जी ही प्रेम और प्रेमी के स्वरूप के सम्यक् ज्ञाता हैं।

सखियों की प्रीति-रीति का वर्णन करते हुए श्री ध्रुवदास जी ने बताया है कि उनकी प्रीति अनैमित्तिक है और युगल की तत्सुख प्रीति से आसक्त है। गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी के रसोपासना सिद्धान्त में वृन्दावन का समस्त परिकर परस्पर प्रेमासक्ति से आबद्ध है। आसक्ति के देश में सर्वोपरि स्थान सखियों का है। उपासक के मन की चञ्चलता मिटने पर ही वह विशुद्ध प्रेमासक्ति के रस में अटक सकता है। श्रीलाल जी स्वयं लाड़िली के प्रति आसक्त हैं; सखियाँ युगल की आसक्ति से आसक्त हैं। वृन्दावन का नित्य-विहार प्रेम-नेम के आसक्ति रूप तन्तुओं का ताना-बाना है। युगल प्रेम-नेम से ओत-प्रोत हुए अहर्निश विहार-परायण हैं। इस रस की अधिकारिणी सखी हैं किंवा सखी भावापन्न रसिक भक्त-जन। ऐश्वर्य, ज्ञान, माहात्म्य और विषय वृन्दावन रस माधुरी के आवरण हैं। उपासक को चाहिए इन आवरणों से मुक्त होकर वृन्दावनीय आसक्ति-रस में अपने आप को लीन करे। प्रेम देश की इस दिव्यासक्ति को कोई सरस हृदय भक्त ही समझ सकता है।

वृन्दावन के इस आसक्ति देश में मान विरह कुञ्जान्तर प्रवास आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। नैमित्तिक लीलाओं में मान आदि के लिए अवकाश है; क्योंकि वहाँ प्रेम का स्वरूप स्थूल है। नित्य-विहार देश में प्रेम सूक्ष्म है। युगल की स्थिति चन्द्र-चकोरवत् है, नयन-पलक का अन्तर भी कलपान्त विरह बन जाता है यथा—

श्रुति पर कंज दृगंजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात।
जै श्री हित हरिवंश नाभि सर जल चर जाचत साँवल गात।।

(श्रीहित चौरासी पद-६०)

एवं— **ऐसी जिय होत जो जिय सौं जिय मिलै,**
तन सौं तन समाय लेऊँ तो देखो कहा ह्वै हो प्यारी।

— स्वामी श्री हरिदास

तात्पर्य है कि सूक्ष्म एवं अति तीव्र प्रेम में किसी भी भाँति के विरह, मान, भ्रम आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। यह प्रेम स्वयं भी विरह स्वरूप है। नित्य-विहार गायक अथवा प्राकट्य-कर्ता रसिकाचार्य महानुभावों की वाणियों में मान आदि का वर्णन केवल शिक्षण अथवा सदाचार के लिए है। उपासकों के प्रति उपदेश करते हुए ध्रुवदास जी महाराज ने बताया है कि गोस्वामी श्री हित हरिवंश ने भूतल पर अवतरित होकर सारातिसार अद्भुत एवं महारस प्रेम की उपासना प्राणिमात्र के कल्याणार्थ प्रकट की। इस उपासना की गति लोक-विलक्षण है। जिन किन्हीं अन्यान्य रसों के उपासकों से सत्सङ्ग आदि करके अपनी उपासना में मेल-मिलाप जैसा अन्तराय नहीं डालना चाहिए। यह नित्य-विहार रस समस्त भागवत धर्मों से विलक्षण है। रसिक उपासक सजातीय रसिकों का सङ्ग करे, विजातीय सङ्ग न करे। यह उपासना क्रिया-प्रधान न होकर भाव-प्रधान है। अतएव अधिक आचार, अपरस, क्रिया-कलाप से बचकर भाव को प्रधानता दे। आचार-धर्म कठोर है, प्रेम-धर्म अत्यन्त कोमल है, अतएव कोमल और कठोर का सङ्ग नहीं बनता।

एक और सावधानी की बात यह है कि रस-सिद्ध महापुरुषों के अलौकिक क्रिया-कलापों का दर्शन कर अपने मन में अश्रद्धा और अप्रेम की उत्पत्ति न करें। अनन्त भगवान् के अनन्त लीला अवतारों के अनन्त नाम रूपधारी भक्तसन्तों के प्रति श्रृद्धा-भक्ति बनाए रखें और उनका सम्यक् आराधन करें। भक्तापराध अक्षम्य है, इसका ध्यान रखते हुए श्री लाड़िली-लाल के श्री चरणों की दुर्लभ, दुर्घट प्रीति-भक्ति की प्राप्ति के लिए रसिक भक्तों का मनसा-वाचा-कर्मणा निरन्तर सङ्ग एवं सेवन करे। कायक्लेश साधनों से बचें। रसिक-भक्तों की चरण धूलि की वन्दना करते रहें। प्रतिपल युगल की रूप-माधुरी का चिन्तन और रसिक-भक्तों का सेवन करने से हृदय में निःसन्देह प्रेमाङ्कुर उदय होता है। इस प्रेमाङ्कुर का प्रेम-जल से सिञ्चन करें। सत्सङ्ग की बाड़ लगावें तो अवश्य ही उपासक के हृदय में प्रेम की लता लहलहा उठेगी। उपासक को चाहिये ज्ञान-माहात्म्य, वैराग्य की भटकन से ऊपर उठकर निस्पृह हुआ साङ्गोंपाङ्ग उपासना में लीन हो जाये। गुरु, इष्ट, मन्त्र एवं रसिकों का सङ्ग ये ही सब उपासना के अङ्ग हैं। रस-माधुरी के उन अङ्गों के मिलने पर ही उपासना की सिद्धि है। श्री वृन्दावन-धाम स्वयं नित्य एवं शाश्वत धर्म है, अतएव इसमें तिथि, विधि एवं नैमित्त धर्मों के लिए कोई स्थान नहीं। यही सब श्रीध्रुवदास जी का सैद्धान्तिक तात्पर्य है।

अस्तु जब मैंने अनुवाद कार्य का प्रारंभ करना चाहा तो 'बयालीस-लीला' के अनुवाद लेखन के लिए मुझे लिपिक की आवश्यकता पड़ी। कठिन प्रयासों के उपरान्त एक राधावल्लभीय भक्त मिले, उन्होंने अनुवाद लेखन कार्य के मङ्गलाचरण का पृष्ठ तो लिखा किन्तु फिर दूसरे दिन उनका अदर्शन हो गया, फलतः लेखन-कार्य स्थगित हो गया।

लेखन कार्य स्थगित होने की बात चलते-चलते श्री उषा जी के कानों में पड़ी और उन्होंने सन्देश भेजा कि "महाराज जी चिन्ता न करें। लिपिक का कार्य मैं करूँगी।" और दूसरे दिन प्रातः वे स्वयं आश्रम पर आयीं और लेखन का सारा कार्य सँभाल लिया। अब तो प्रातः-सायं नित्य नियमानुसार

अनुवाद-लेखन का कार्य चल निकला। अथक परिश्रम विचार-विमर्श एवं तथ्य-निर्णय की विविध वार्त्ताओं के साथ हम लोग बहुत शीघ्रता-पूर्वक ग्रन्थ की आधी से अधिक लीलाओं का अनुवाद कर गये। संयोग से उन्हीं दिनों दीपावली के शीघ्र पश्चात् कुमारी नीलम रानी ग्रोवर श्रीवृन्दावन-वास पूर्वक भजन की प्रवल आकाङ्क्षा के साथ अध्यापिका पद का परित्याग करके श्रीवन आयीं। शिक्षित और सुयोग्य सेवाधिकारी पात्र को प्राप्त करके लेखन कार्य को अच्छी प्रगति मिली। मैं अतिरिक्त समय में अनुवाद का शोधन करता और प्रिय नीलम शुद्ध पाण्डुलिपि लेखन का कार्य करती। ये सब मेरे अपने वे आत्मीयजन हैं, जिनका आभार-मानना उचित नहीं। ये तो आशीष के पात्र है। होली-पर्व के दिन समीप आये तो प्रिय उषा जी ने लगभग एक मास के लिये लेखन कार्य को विराम देने का प्रस्ताव किया और इस निश्चय के साथ कि श्रीरङ्ग-पञ्चमी के उपरान्त पुनः शेष कार्य पूर्ण करेंगे। कार्य वसन्त-पञ्चमी से एक दिंन पूर्व स्थगित हो गया।

काल की गति बड़ी विचित्र है। होली के दिन आ लगे। 'तेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और'। दि॰ ९-३-९६ की रात्रि में प्रिय उषा जी हृदय रोग से सहसा अस्वस्थ हुईं। प्रयास करने-कराने के पश्चात् भी डाक्टरों का सहयोग नहीं मिल पाया और वे दि॰ १०-३-९६ को ३ बजे रात्रि में पार्थिव-देह का परित्याग करके दिव्य धाम वासी हो गयीं। प्रातः ६ बजे सन्देश मिला। संसार की अनित्यता का विचार करके आश्चर्य तो कुछ नहीं, किन्तु खेद और दुःख की सीमा नहीं रही। शोक का जैसे पहाड़ टूट पड़ा हो। उन्होंने ग्रन्थ के मुद्रण-प्रकाशन की बड़ी सुष्ठु योजना बनायी थी। वह सब धरी-धरायी रह गयी। विधि के विधान को स्वीकार करना पड़ा। उनके हार्दिक सहयोग के हम अभारी रहेंगे। शेष कार्य प्रिय नीलम रानी ग्रोवर के सहयोग से सम्पन्न हुआ। इन्होंने पाण्डु लिपि तैयार करने का वृहद् कार्य बड़े उत्साह और कौशल पूर्वक सम्पन्न करके मुझे निश्चिन्त बना दिया। प्रूफ संशोधन तथा तत्सम्बन्धी अनेक कार्यों में इनका प्रशंसनीय सहयोग सेवा सदा स्मरण रहेगी।

श्री राधा प्रेस दिल्ली के संस्थापक स्वर्गीय श्री हितशरण जी शर्मा के सुपुत्र श्री वंशीवल्लभ शर्मा ने ग्रन्थ का मुद्रण कार्य स्वीकार करके हमारे प्रकाशन संस्थान को उपकृत तो किया किन्तु वृन्दावन और दिल्ली की दूरी के कारण मुद्रण कार्य में अधिक असुविधाएँ और कठिनाइयाँ आयीं, जिससे लगभग एक वर्ष का समय व्यर्थ हो गया। इसी क्रम में पूर्व प्रोफेसर श्री माधव जाउलकर (भोपाल) एवं मेरे प्रिय प्रशिष्य श्यामसुन्दरदास "भक्तमाली" ने मुद्रण प्रकाशन की उलझी हुई समस्याओं को अपनी सहज सूझ-बूझ से सुलझा कर मुद्रण-कार्य को दिशा देकर गति प्रदान की। अतः धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में श्री राधा प्रेस के मालिक एवं श्री हितशरण जी शर्मा के प्रिय अनुज श्री व्यासनन्दन जी शर्मा ने मुद्रण कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व सँभाला और अथक परिश्रम एवं लगन के साथ शीघ्र ही सम्पूर्ण ग्रन्थ को छाप दिया।

श्री शर्मा जी के परिवार से मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध रहें हैं। यह सम्पूर्ण परिवार मेरा आत्मीय रहा है। अतः मैं इस परिवार को धन्यवाद तो क्या मंगलमय आशीर्वाद देता हूँ कि यह सुख-समृद्धि से लाभान्वित होता रहे।

इस कार्य में प्रूफ-संशोधन के साथ ग्रन्थ की भाषा और भाव-व्यञ्जना तथा सब प्रकार से ग्रन्थ को शुद्ध और सुन्दर बनाने का कार्य किया, हमारे प्रिय प्रो॰ श्री गोविन्द शर्मा ने। श्री शर्मा जी के सहयोगी आचार्य श्री राधामोहनदास गुप्त, जिन्होंने प्रूफ-संशोधन-सहयोग के साथ-साथ ग्रन्थ के यथा-शीघ्र प्रकाशन में दौड़-धूप के भी कार्य किये। हम उनके और शर्मा जी के विशेष रूप से आभारी हैं।

डॉ॰ श्री विजयेन्द्र स्नातक हिन्दी जगत् के लब्धप्रतिष्ठ एवं सुविख्यात विद्वान् मनीषी हैं। आपने "श्री राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य" शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत करके साहित्यिक क्षेत्र में केवल सम्मान नहीं प्राप्त किया अपितु हिन्दी भाषा के भण्डार को एक अपूर्व निधि के दान से समृद्ध कर दिया, जिसकी प्रशंसा में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा कि "श्री स्नातक जी ने राधावल्लभ-सम्प्रदाय की रसोपासना रूपी सिंहनी का दुग्ध-

दोहन किया; जिसका हमने पान किया।" डॉ॰ स्नातक जी से मेरा परिचय और प्रेम-सद्भाव सन् १९४९ ई॰ से ही है, जब आपने राधावल्लभ-सम्प्रदाय पर अपना शोध-कार्य आरम्भ किया था। तभी आपने मुझसे और आश्रम के विशिष्ट सदस्यों से अपने मिलनसार, सहृदय स्वभाव वशात सघन प्रीति और सद्भावना स्थापित कर ली थी, जो आज भी यथावत् विद्यमान है। डॉ॰ स्नातक ने मेरे निवेदन को सहर्ष स्वीकार करके 'बयालीस-लीला' के नव-प्रकाशन के लिए भूमिका लिखकर आश्रम के प्रकाशन-विभाग को और हमें जो सम्मान दिया है, उसके लिए हम उनके चिर आभारी ही नहीं चिर कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनकी सुदृष्टि हम पर बनी रहेगी।

मैंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में विक्रम संवत् १८६० की हस्त-लिखित प्रति का मूल पाठ स्वीकार किया है। इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका में न तो किसी लिपिक का नाम है और न ही यह सूचना दी गयी है कि लिपिक ने इसे किस प्रति से उद्धृत किया है। दूसरी बात यह कि इस प्रति में जो लीला अङ्कित हैं, उनका अपना कोई क्रम नहीं है अर्थात् सम्प्रति उपलब्ध मुद्रित संस्करणों में जैसा कि 'जीव-दशा' से 'दान-लीला' पर्यन्त बयालीस ग्रन्थों या लीलाओं का एक सुनिश्चित क्रम है, उनमें से चार ग्रन्थों या लीलाओं में उनकी रचना का सम्वत् और मासादि दिया हुआ है। इस प्रति में ऐसा कुछ न होकर लगभग सभी लीलाएँ अक्रम से ही अङ्कित हैं।

मेरा विचार था कि इस प्रकाशन में श्री ध्रुवदास जी की उस रचना को प्रथम स्थान दिया जाय, जिसका रचना काल प्रथम या पूर्व का हो। इस न्याय से "रसानन्द" नामक ग्रन्थ विक्रम सम्वत् १६५० की रचना होने के कारण प्रथम स्थान में रखा जाना उचित था। तत्पश्चात् अन्यान्य ग्रन्थों की अनुक्रमणिका बनायी जाती, किन्तु ऐसा करने से मेरे हितैषी बन्धुओं ने यह कारण बताते हुए परामर्श दिया कि इससे रूढ़िवादी साम्प्रदायिक समाज

आपके इस उचित उलट-फेर को अनुचित कार्य बताकर ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार में बाधक भी बन सकता है। अतः ग्रन्थ-"बयालीस-लीला" को यथावत् पूर्व प्रकाशनों के अनुसार ही मुद्रित किया जाना सर्व हित में है। इसे मैंने स्वीकार कर लिया।

श्री हित ध्रुवदास जी की सभी रचनाएँ शुद्ध सरल व्रज-भाषा में होने के कारण मनीषी विद्वानों के लिये तात्पर्य ग्रहण करने में अत्यन्त सुगम हैं किन्तु भाव-गाम्भीर्य के कारण सर्वसाधारण के लिये अवश्य अगम्य हैं। इसीलिये व्याख्या करने की भावना बनी और श्री राधावल्लभ लाल की परमानु-कम्पा से ग्रन्थ मुद्रित होकर आपके कर-कमलों में है। मैं एक सामान्य मानव हूँ। मानव का प्रयास लगभग भूल और त्रुटियों से भरा होता है। इस न्याय से इस कृति में भी यह सब कुछ सम्भव है, अतएव मैं आप सभी से अपने अपराध एवं त्रुटियों के लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ। मेरे इस सेवा कार्य से रसज्ञ पाठकों, को यदि किञ्चित भी सुख सन्तोष किंवा रसास्वाद मिला तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानूँगा।

— स्वामी हितदास

'रसिक-पद-रेणु'

ग्रन्थकार-परिचय

श्रीहित राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रसिकाचार्य शिरोमणि गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र जी महाराज ने जिस वृन्दावन निकुञ्जस्थ "नित्य-विहार" की रसोपासना का प्रवर्त्तन किया, उसके रससिद्ध अनुभवी गायकों (वाणी-कारों) की परम्परा में रसिक संत श्रीहित ध्रुवदासजी की वाणी "बयालीस-लीला" का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ गोस्वामी श्रीहित हरिवंश कृत "हित चौरासी" का रस-दर्शन-परक भाष्य है। प्रामाण्य है कि अपने बाल्यकाल में नित्य-किशोरी श्रीराधा के प्रेम-पुलकित आशीर्वाद को प्राप्त करके श्री ध्रुवदासजी ने जिस अनुभव पूर्ण वाणी का गान किया, उसमें छोटी-बड़ी बयालीस लीलाओं का संग्रह ही यह "बयालीस-लीला" है। इस वाणी में सहज सरल व्रज-भाषा के माध्यम से प्रेम की विलक्षण एवं सर्वोपरि अनुभूति/अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गयी है। ध्रुवदास जी के काव्य में हृदय को रसपुष्ट करने वाले अनुभवों का सुरम्य संयोजन है, यथा—

मंद-मंद हँसि कहै, कछू रंग-भीनी बात,
बेसरि के मोती दोउ, छबि सौं थरहरैं।
'हित ध्रुव' रीझि-रीझि, रहे रति-रस भींजि,
अंचलनि सुधि भूलि, परे सुख गहरैं।।

श्री ध्रुवदास जी के काव्य में युगल के प्रति सहचरी-निष्ठ प्रेम की व्यापक व्याख्या सन्निहित है, जिसका लक्ष्य है श्री राधाकृष्ण के मोहक और दिव्य निकुञ्ज-केलि-विलास को हृदयङ्गम करना और यही सहृदय रसिक-भक्तों का संवेद्य-रस है। इस काव्य में प्रेम के सात्त्विक भाव यथा-स्तम्भ, अश्रु, प्रस्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य और प्रलय आदि के पदे-पदे दर्शन होते हैं। राग की अभिव्यक्ति, छवि, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, औदार्य आदि का प्रकाश अपनी छटा सर्वत्र बिखेरता दिखायी देता है। पिङ्गल-शास्त्र के स्वभावज

अलङ्कार विव्वोक, कुट्टमित, किलकिञ्चित्, विहृत, सञ्चारी, हर्ष, मद, विषाद, चिन्ता, चपलता, स्मृति, उत्सुकता, जड़ता आदि का सर्वत्र ही सहज दर्शन होता है।

इस काव्य-ग्रन्थ में व्रज के स्वकीया, परकीया, वियोग, विरह, स्वसुख आदि से अतीत; भक्ति के पाँच भावों—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा शृङ्गार (कान्ता-भाव) से विलक्षण, नैमित्तक लीला-विलास से परे तत्सुखमय चतुर्व्यूहात्मक नित्य-विहार का अनादि एवं अनन्त रस-गान है यथा—

ज्ञान सांत रस ते अधिक, अद्‌भुत पदवी दास।
सखा-भाव तिनतें अधिक, जिनके प्रीति-प्रकास।।
सर्वोपरि है मधुर रस, अद्‌भुत जुगल-विलास।
ललितादिक सेवतिं तिनहिं, मिटत न कबहुँ हुलास।।
या पर नाहिंन और सुख नाहिंन है रस और।.....इत्यादि

अस्तु, इन बयालीस लीलाओं के समुच्चय से अतिरिक्त 'पद्यावली' नामक इनकी एक कृति और भी है, जिसमें श्री प्रिया-प्रियतम की अष्टयाम सेवा-विलास का सरस गान है। किमधिकं व्रज-साहित्य के विशाल भण्डार में श्री ध्रुवदास की वाणी दिव्य-मणि की भाँति जाज्वल्यमान् है, जो प्रत्येक साहित्यानुरागी एवं रसिक भक्त के लिये पठनीय है।

— स्वामी हितदास
'रसिक-पद-रेणु'

श्रीमद् भूमानन्द तत्त्व शाश्वत स्वामी श्री शिवदास जी महाराज

अनुवादक का परिचय

श्रीहित राधावल्लभीय रसिक सन्त परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज "रसिक-पद-रेणु" व्रज वृन्दावन की विशिष्ट विभूति हैं। आपका जन्म मध्य प्रदेश के नर्मदा-तटवासी पवित्र ब्राह्मण परिवार में हुआ। वाल्यकाल में ही श्रीकृष्ण भक्ति के भाव आप में प्रकट होने लगे थे। विद्याध्ययन की समाप्ति के तत्काल पश्चात् ही आपने वृन्दावन की परम-पावन धूलि का, आश्रय ग्रहण कर लिया तथा श्रीहित हरिवंश गोस्वामी द्वारा प्रवर्तित श्रीहित राधावल्ल-भीय सम्प्रदाय में दीक्षित हो युवावस्था के पदार्पण काल में ही विरक्त-दीक्षा ग्रहण करके अखण्ड वृन्दावन-वास का व्रत धारण किया।

बाल्यकाल से ही ब्रज-साहित्य के प्रति आपकी सहज स्वाभाविक रुचि एवं रति थी। अतः वृन्दावनवासी होने के पश्चात् आपने व्रज के कृष्ण- भक्ति उपासक सम्प्रदायों के विपुल साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन किया। आपके द्वारा अनेक साम्प्रदायिक वाणी-ग्रन्थों का अनुवाद हुआ, जिसकी सराहना मनीषी विद्वानों ने की। रसिकाचार्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश प्रणीत संस्कृत स्तोत्र काव्य "श्रीराधा-रस-सुधानिधि", "श्रीहित-चौरासी", "श्री सेवक-वाणी", गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्र कृत "श्रीराधा-उपसुधानिधि" (संस्कृत लघु स्तोत्र काव्य) एवं श्री भक्तमाल (गोस्वामी श्री नारायण दास "नाभा" कृत) जैसे महान् ग्रन्थों का सुष्ठु हिन्दी अनुवाद आपकी अमर कृतियाँ हैं। सम्प्रति "बयालीस-लीला" का हिन्दी अनुवाद जो आपके कर-कमलों में है, वृद्धावस्था में किया गया दुष्कर कार्य साम्प्रदायिक साहित्य के प्रचार-प्रसार की दिशा में एक सफल एवं सराहनीय प्रयास है।

श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् स्वामी श्री हितदास जी ने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार एवं सेवा कार्यों में अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किया। गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभु की प्राकट्य स्थली

"बाद" गाँव के मन्दिर व्यास-भवन का जीर्णोद्धार पूर्वक उसकी सेवा-व्यवस्था स्वामी जी का साहसिक कार्य था। इसी प्रकार वृन्दावन में 'श्री हिताश्रम सत्सङ्ग भूमि' नाम से विशाल आश्रम की स्थापन के साथ ही व्यवस्थित सन्त-सेवा, श्री जी की सेवा, दरिद्र-नारायण सेवा, गो-सेवा, उद्यान-सेवा और विविध उत्सवों का आयोजन तथा सत्सङ्ग, प्रवचन, लेखन, प्रकाशन के महान् कार्यों का सम्पादन श्री स्वामी जी की पवित्र लोक-कल्याणकारी एवं रस-रञ्जनकारी भावनाओं का द्योतक है। हम श्री स्वामी हितदास जी के स्वस्थ, प्रसन्न एवँ धर्म सेवा-रत सुदीर्घ जीवन की मङ्गल कामना करते हैं।

प्रोफेसर माधव जाउलकर एम. ए.
प्राचार्य (सेवा-निवृत्त) उच्च शिक्षा
मध्य प्रदेश शासन

'मधु कुञ्ज'
ई-७/एल-बी २५७
अवन्तिका हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
अरेरा कालोनी, भोपाल-४६२०१६ (म. प्र.)
दूरभाष – (०७५५) – ५६५४७०

श्रीहित ध्रुवदास-प्रशस्ति

कथा रसिक 'ध्रुवदास' की, सुनत रसिकता होइ।
तिनके पूरन प्रेम की, सरवर करै न कोइ।।

कायथ-कुल देवन के वासी। परंपराइ अनन्य-उपासी।।
श्री गोपीनाथ के सिष्य सु श्रेष्ठ। सेवत राधावल्लभ इष्ट।।
श्री हरिवंश-कृपा अति भई। वन बसिवे की रति-मति दई।।
तब श्री वृंदावन में आये। जमुना-कुंज निरखि सरसाये।।
निसि-दिन जुगल-केलि उर माहै। वानी करि कछु वरन्यौ चाहै।।
सिव-विधि-सेस प्रवेस न मन कौ। कैसैं कह्यौ जात गुन तिनकौ।।
देख्यौ चाहै एक टक रढ़ै। उर आवै सो मुख नहिं कढ़ै।।
स्वान-पान तजि मंडल पर्‌यौ। देख्यौ गुन वरनौं हठ कर्‌यौ।।
दिन द्वै गये तीसरौ आयौ। तब राधे कौ हिय अकुलायौ।।
आधी रात लात सिर दई। चौंकि पर्‌यौ नूपुर-धुनि भई।।
वानी भई जु चाहत कियौ। उठि सो वर तोकौं सब दियौ।।
ऐसैं कहि अंतरहित भई। ध्रुव कौं रति मति वानी दई।।
निरखी दंपति संपति सिगरी। है वैकुंठ कोटि तें अगरी।।
आरष-पौरुष ग्रन्थ निहारत। कुंजनि नित्य-विहार विचारत।।
श्रुति-स्मृति पुरान-मत भाषा। करि उपजाई जन अभिलाषा।।
केलि रहसि दंपति की वरनी। कही जु रसिक अनन्यनि करनी।।
प्रेम-नेम सिद्धांत जु कीनौ। व्रज-विनोद न्यारौ करि दीनौं।।
कुंज-महल पिय प्यारी सखी। अद्‌भुत केलि कही सो लखी।।
नव-नव लीला हिय में भासी। ते रसिकनि-हित सबै प्रकासी।।
'सत-सिंगार' आदि रचि ग्रंथ। दरसायौ जीवनि हित-पंथ।।
नाम वरन पट टहल सखिनु की। तंत्र पुराननि मत जु लिखन की।।
कोमल वानी सब कौं भावै। अक्षर पढ़त अर्थ दरसावै।।
दिसि-दिसि घर-घर प्रगटी वानी। रसिकनि अपनी निधि करि जानी।।

चारि दिसानि समुद्र प्रयंत। वानी पढ़ैं सुनैं सब संत।।
वानी सुनि-सुनि भये उपासक। कर्म-ज्ञान तजि भये वन-वासिक।।
गुरु गुरुकुल सब भये प्रसन्न। प्रीति-रीति लखि कहैं धनि धन्य।।
वन-विहार कौं जब प्रभु जाते। इनकी कुटी तहाँ ठहराते।।
भोग आरती भेंट जु करते। तब निजु इष्ट भवन अनुसरते।।
सुद्ध पाक करि भोग लगावैं। संतनि सहित प्रसादहिं पावैं।।
हरिवासर के भेद न मानैं। सर्वसु महाप्रसादहिं जानैं।।
जो गुरुजन कछु चरचा ठानैं। वाद न करैं कहैं सो मानैं।।
महा नम्रता सौं मन मोहै। सहनसील कौं ध्रुव सम को है।।

वानी हित ध्रुवदास की, सुनि जोरी मुसिकाति।
'भगवत' अद्‌भुत रीति कछु, भाव-भावना पाँति।।

—श्री भगवतमुदित जी

कायथ कुल देववन वासी ध्रुवदास हैं।
पग सिर दियौ उठाइ लाड़िली पास हैं।।
वर दीनौं वानी रस केलि जु ही करौ।
(हरि हाँ) वन विहार उत्सव विलास सुख हिय भरौ।।
श्री हित जी के धर्म में, दृढ़ कीनौं विश्वास।
सुनत रसिक मोदित हिये, कथा रसिक ध्रुवदास।।
कायथ कुल उत्पन्न, रहत देवन के माँहीं।
महा अनन्य उदार, जुगल हीये हुलसाहीं।।
गुरु श्री गोपीनाथ, करी निजु कृपा दयाकर।
गह्यौ श्री हित हरिवंश धर्म हू वे जु उजागर।।
वन बसिवौ मन में चह्यौ श्रीगुरु सौं आज्ञा लई।
आये वृन्दाविपिन में शोभा लखि आनंद भई।।

वरन्यौं चाहत जुगल केलि मन उठत जु लहरैं।
मुख तें नहीं प्रकास होत वानी छवि गहरैं।।
खान-पान तजि दियौ परयौ हठि कैं मंडल पर।
दिन द्वै बीति जु गये तीसरौ आयौ लगि कर।।
श्रीराधे अकुलाइकैं अर्द्धरात्रि प्रगट जु भई।
पग सौं दियौ हलाइ कैं नूपुर की धुनि सुनि लई।।
उठि क्यौं सोयौ इहाँ, सकल वर वानी दीयौ।
ऐसैं कहिकैं प्रिया स्वरूप जु अंतर कीयौ।।
वानी भई उदोत देखि संपति दंपति किय।
बैकुंठहु ते अधिक जुगल सोभा जानी जिय।।
वानी हित जू की निरखि, नित्य-विहार जु मन धरयौ।
वरनौ दंपति केलि रस-रीति आपनी लियैं करयौ।।

प्रेम-नेम सिद्धान्त कह्यौ हित-धर्म बखान्यौं।
कुंज-महल की सखी हेत पिय प्यारी जान्यौं।।
निरखै जो नव-केलि कहै सोई मन-हरनी।
सत सिंगार जु आदि ग्रंथ रसमय सुख-करनी।।
नाम वरन पट टहल सब, कही सखिनि की देखि सब।
तंत्र-पुराननि खोजिकैं, लिखी रसिक ध्रुवदास तब।।

कोमल वानी पढ़त जे, दंपति होत प्रकास।
देस-देस में प्रगट भई, धर्मी सुनत हुलास।।
वानी पढ़ि-पढ़ि दृढ़ भये, जानी हित की रीति।
ग्यान धर्म विसराइकैं, भई विपिन सौं प्रीति।।
गुरु गुरुकुल वानी सुनैं, भए जु बहुत प्रसन्न।
भक्ति देखि सब कोउ कहै, हैं ध्रुवदास जु धन्न।।

वन-बिहार कौं चलैं प्रभू, तब इतकौं आवैं।
इनकी कुटी जु देखि, तहाँ आपुन ठहरावैं।।
भोग आरती भेंट होइ, तब भवन पधारैं।
गहैं अनन्य जु धर्म, एक निहचैं मन धारैं।।
सर्वसु महा प्रसाद व्रत, और न कछु जिनकै मनैं।
श्री गुरु गोपीनाथ बल, दंपति सुख हिय में सनैं।।
जतनलाल हित लाड़िली, सरन आपनी राखि।
कृपा करी ध्रुवदास पै, पूजी मन-अभिलाष।।

—गोस्वामी श्री जतन लाल जी

वानी श्री ध्रुवदास की, मधुर प्रेम-रस-सार।
श्री हित जू के सेव्य कौ, जामें नित्यविहार।।१।।
वानी है मन-मोहनी, सुनत न और सुहाइ।
जो गावै मन लाइकैं, दंपति-संपति पाइ।।२।।
अति मंजुल अद्‌भुत महा, परम अलौकिक रीति।
वानी की उपमा नहीं, सर्वोपरि यह गीत।।३।।
वानी श्री ध्रुवदास की, अद्‌भुत प्रेमानंद।
मन दै कैं नित निरखहीं, श्री वृंदावन-चंद।।४।।
पोथी कौ यह हेत है, रहै विचारत नित्त।
श्री वृंदावन ध्याइकैं, अनत न चलि है चित्त।।५।।
श्री हित जू की अति कृपा, श्री ध्रुवदास सुख रूप।
तिनकी वानी अति सरस, प्रगट प्रेम रस रूप।।६।।
यह वानी जाके हियैं, बसत लसत विवि-चंद।
दरस परस प्रेमा बढ़ै, महा प्रेम रस-कंद।।७।।
अति उज्ज्वल हिय होइ जो, पढ़ै-सुनै सुखरासि।
जोरी जू ताके हिये, पूरन प्रेम प्रकासि।।८।।

प्रेम भक्ति बाढ़ै सरस, सुनत हिये अनुराग।
गदगद सुर नैना सजल, महा मधुर रस पाग।। ९ ।।
धन्य-धन्य जे रसिकजन, वानी करैं विचार।
निरखि जुगल छवि-माधुरी, अद्‌भुत नित्यविहार।।१० ।।
अनन्यअली हित सौं लिखी, सकल अंग मन लाइ।
निसि-दिन तौ जाँचत यहै, यह वानी कब गाइ।।११ ।।
संवत् सत सत्रह परे, चौरासी पर चार।
सावन झूलनि त्र्योदसी, शुक्ल पक्ष शुभ वार।।१२।।
इहि रस में मन सानियै, और छाँडि सब रीति।
अनन्यअली हित कृपा बिनु, आनैं नहिं परतीति।।१३।।
यह रस मंजुल मधुर वर, अतिहि अनूप रसाल।
अनन्यअली के उर बसौ, लसौ रसौ सब काल।।१४।।

—श्री अनन्यअली जी

कुंज महल की सहचरी, प्रगट भई है आनि।
सोई तन धरि ध्रुव कही, वानी रसद वखानि।।

आगम निगम ते अगोचर कल कुंज केलि,
लीला रसीली ध्रुव देखिकैं वखानी है।।
गनी हैं बयालिस ये आली कौ स्वरूप धरि,
न्यारी-न्यारी नामनि जुत प्रगटी जू जानी है।।
गाई है इकौनी जामें एकौ न मिलौनी और,
एकै रस-रीति प्रीति शुद्ध सदा सानी है।।
श्री पदि विलास कौन वरनैं 'कृष्णदास हित',
सुनि वर वानी राधारानी मुसिकानी है।।

लाल लड़ैती रहसि केलि-निधि प्रगटी वानी।
एक इकौनी रीति सौन ज्यौं बारहबानी।।
गुह्यौ गोप्य रस-सार बिना कछु और न गायौ।
देस-देस जिन सुनी दौरि वृंदावन आयौ।।
ए हो! रसिक मन दै सुनौं, वानी प्रेम-प्रकास की।
'हित कृष्णदास' मन रमि रही, वानी हित ध्रुवदास की।।

— श्री कृष्णदास जी भावुक

प्रथम सुमिरि हित-नाम धाम-धामी सु वखाने।
रसिकजननि के हेत जुगल-परिकर-गुन गाने।।
वरनी लीला ललित रूप-रस गति-मति पागी।
सुनि-सुनि गिरा गंभीर बहुत, भये वन-अनुरागी।।
महा गोप्य रस निगम जो, गुरु-प्रसाद-बल विस्तर्‌यौ।
बलि जाउँ देस कुल धाम जहाँ, श्री ध्रुवदास सो औतर्‌यौ।।

—चाचा श्री वृन्दावनदास जी

हित हरिवंश गिरा अति ही निगूढ़ ताकौ,
आसै जो गम्भीर कैसे आवत कहानी में।
परम अगाध रस सागर के भँवर माँझ,
मन रसिकन कौ कलोलत सु जानी में।।
'वृन्दावनरानी' में अनन्य भाव पावै जब,
मन कौं लगावै ध्रुवदास जू की वानी में।
पचि-पचि हारे जोर पंडिताई वारे किते,
अनअधिकारी न्यारे रहैं पहिचानी में।।

— श्री वृन्दावनदास जी (द्वितीय)

जै जै सेवक ध्रुवदास स्याम वीठल सुत जाये।
जै जै सेवक ध्रुवदास गुरु गोपीनाथ जु पाये।।
जै जै सेवक ध्रुवदास हित जू तुम कृपा कीनी।
जै जै सेवक ध्रुवदास लीला ब्यालीस दीनी।।
जै जै सेवक ध्रुवदास तुम्हारी शरणैं आयौ।
जै सेवक ध्रुवदास आरतजन कौ अपनायौ।।

– श्रीहित किशोरी जी

परम पुरातन धर्म मर्म आरज हित गाये।
ताही मग रस ढरे धाम वृंदावन आये।।
हित मंडल अभिराम स्याम-स्यामा जहँ राजैं।
तिन मुख आयसु पाइ भने बहु ग्रंथ समाजैं।।
उमर बरस दस हृदय में बाढ़्यौ प्रेम प्रकास की।
कलि सुगम सेतु भव तरन कौं गाथ विमल ध्रुवदास की।।

– श्री गोविन्दअलि जी

'जीव दसा' अविवेक बस, विसरयौ कृष्ण गुन नाम।
मोह मत्त अति विषय रस, क्यौं पावै सुख धाम।। १ ।।
रोग वृद्ध अति विषय लखि, ता हित 'वैदक ज्ञान'।
भक्ति वैराग रस कल्पतरु, सेवत पथ सुखखान।। २ ।।
त्यागौ विष सम विषय सुख, 'मन-सिक्षा' सुनौ मीत।
सतसंगति भजि रसिकजन, हरि-पद प्रेम प्रतीत।। ३ ।।
'वृंदावन-सत' वास दृढ़, जुगल चरन चित धार।
निरखि विपिन छवि नैन भरि, तन-मन रहिये हारि।। ४ ।।
'ख्याल हुलास' रस मगन मन, प्रेम-माधुरी रूप।
अनुपम छवि दंपति चरन, विलसत विमल स्वरूप।। ५ ।।

प्रेमी 'भक्त नामावली', गाई हरषि हुलास।
भजन सरोवर रस भरे, लह्यौ सुजस सुखरास।। ६ ।।
'वावन वृहद् पुरान जस', सब पर जुगल-किसोर।
क्रीडत नवल निकुंज रस, आनँदमय निसि-भोर।। ७ ।।
'सिद्धांत विचार' आसक्तता, ग्रथित प्रेम रस नेम।
मधुर मोद आनंदमय, जंत्रित रतन जु हेम।। ८ ।।
प्रेम-नेम ब्यौरौ कियौ, 'प्रीति चौवनी' गाइ।
रूप तरंग झकोर रस, माते सहज सुभाइ।। ९ ।।
'आनँद अष्टक' प्रेम रँग, फूले फूल अनूप।
सखी भाव छवि माधुरी, सौरभ दंपति रूप।।१०।।
'भजन अष्टक' सांतादि गुन, जिन्हें भक्ति बहु भाइ।
सर्वोपरि है मधुर रस, दरसायौ चित चाइ।।११।।
आनँद मदन विलास लखि, 'भजन कुंडली' रूप।
करि सत्संग मन क्रम वचन, रसिकनि सभा अनूप।।१२ ।।
'भजन सत' भजि जुगल वर, रूप निधान रँग राचि।
संगति भक्तनि चरन रज, सुख संपति उर साँचि।।१३ ।।
'शृंगार सत' अति विसद जस, करी शृंखला तीन।
दिन दूलहु अरु दुलहिनी, तहाँ प्रेम रस लीन।।१४।।
'मणि शृंगार' अनूप है, रूप रंग रस सार।
प्रेम छके विवि लाड़िले, करत विलास ज्यौनार।।१५।।
'हित शृंगार' रस रीति सौं, गायौ प्रेम अनंग।
फुलवारी आनंद की, षट रितु मालिन संग।।१६।।
'मंडल सभा' विचित्र रस, बहु सखियन के नाम।
निज इच्छा शक्ति केलि कल, पगे प्रेम सुख धाम।।१७।।
जोजन पंच मुक्तावली, कह्यौ विहार अस्थान।
द्यौस-रैन क्रीड़ा करत, रसमय प्रेम निधान।।१८।।

षट रितु के सुख सब विविध, 'रस हीरावलि' देखि।
विलसत दंपति नवल रस, जिहि ठाँ प्रेम विसेषि।।१९।।
'रस रत्नावलि' रतन सब, अंग-अंग विवि जानि।
तेइ शृंगार कल केलि-मय, भूषित रस की खानि।।२०।।
प्रेम मई 'प्रेमावली', प्रेम मत्त दोउ लाल।
नौतन रस छिन-छिन बढ़त, अद्‌भुत विसद विसाल।। २१।।
'नामावलि सुभ प्रिया की', कहे विचित्र सु नाम।
जो गावै निज प्रीति सौं, लहै प्रेम-रस-धाम।।२२।।
'रहस्य-मंजरी' मंजु रस, पल-पल सुख कौ रंग।
तन-मन फूले कुसुम छवि, बरषत प्रेम अनंग।।२३।।
'सुख-मंजरी' विवस प्रिय, लये लाल उर लाइ।
दई सँजीवन औषधी, अंग मृगांग सु भाइ।।२४।।
सुख सरिता बाढ़ी अधिक, 'रति-मंजरी' विचार।
प्रफुलित कंज अनंग रस, अतिसै विमल विहार।।२५।।
'नेह-मंजरी' सरस रस, लता भवन सुख रूप।
राजत तरुण किशोर विवि, फूले फूल अनूप।।२६।।
'वन-विहार' विहरत जुगल, रचत व्याह कल केलि।
सखी सबै सो छबि छटा, झेलैं प्रेम नवेलि।।२७।।
'रंग-विहार' अति रस बढ्यौ, सहज माधुरी दोइ।
नदी चढ़ी आनंद की, नव सनेह रहे भोइ।।२८।।
'रस-विहार' अति वन सघन, सरिता सुन्दर श्याम।
नौका चढ़ि विहरत जुगल, सखी संग अभिराम।।२९।।
'रँग-हुलास' अति प्रेम रस, पीय तिया वपु धारि।
नख-सिख भूषन रचि रुचिर, सो छवि सखी निहारि।। ३०।।
'रँग-विनोद' रस कल्पतरु, नव रस सहज सुभाइ।
प्रेम मदन मद सौं छके, कुंज लतनि सखि चाइ।। ३१।।

'आनँद-दशा-विनोद' में, नायिका तीन प्रकार।
नायक सुंदर स्याम मृदु, विलसत विमल विहार।।३२।।
'रहस्य-लता' रस फूल विवि, नेह-बेलि लपटानि।
रँगे कोक की केलि कल, सुंदर परम सुजानि।।३३।।
'आनँद-लता' फूले सरस, रूप मैन के फूल।
नेह सेज राजत दोउ, दिये अंस भुज मूल।।३४।।
'अनुराग-लता' अनुरागमय, नवल प्रेम रस रूप।
ललितादिक तिहि रस छकीं, निरखैं छवि सु अनूप।।३५।।
'प्रेम-लता' कुसमित सुरँग, गौर-श्याम रस सार।
वृंदावन घन कुंज में, अद्‌भुत विशद विहार।।३६।।
'रसानंद' छकि रसिक पिय, निजकर करत सिंगार।
नवल नवेली प्रिया कौ, नख-सिख सुख निधि सार।।३७।।
'व्रज-लीला' संकेत कल, प्रथम निरखि छवि ऐंन।
हरे दुहुँनु मन परस्पर, सो सुख कहत बनै न।।३८।।
'जुगल-ध्यान' धरि हिये में, नख-सिख करि सिंगार।
दंपति पद छवि माधुरी, मन वच क्रम चित धार।।३९।।
'निर्त्त-विलास' सु रास रस, करत विचित्र कल गान।
कौतुक मृदु नागरि नवल, सुभग प्रेम की खान।।४०।।
'मान-लीला' लखि मान छवि, रूप अनूप अपार।
पगनि परत अति नेह बस, नागर नव सुकुमार।।४१।।
'दान-लीला' दानी भये, पिय माँगत यह दान।
अहो लड़ैती लाड़िली, भूलि करौ जिन मान।।४२।।
श्री गोपालसुदास प्रभु, श्री ध्रुवदास उदार।
तिन मुख सौं आज्ञा भई, राधादास विचार।।४३।।

—श्री राधादास जी

गोपीनाथहि जी के शिष ध्रुवदास नाम विख्याता।
जिन लीला व्यालीस बनाईं अति नवीन जग ख्याता।।

— श्री गोपाल कवि

पून्यौ अगहन मास दूनौ फल होत जाकौ,
जे-जे उनमान ते-ते रस में सनाये हैं।
अक्षर मधुर वनराज कौ सुजश तामें,
राधिका विहारी के विनोद दरसाये हैं।।
इन्द्रथल जानिकैं पुनीत दुतिया के दिन,
टीका करी पूरन अनंद उर छाये हैं।
सोलह सत छयासिया में ध्रुवदास गाये गुन,
तापै बलदेव कवि कवित बनाये हैं।।

— श्री बल्देव कवि

बन्दौं हित ध्रुवदास रसिकवर। केलि गाय रिझिये यु जुगलवर।।
प्यारी-पीय विहार जु निसि-दिन। गायौ हित ध्रुवदास जु छिन-छिन।।
ऐसी वानी ब्यालिस लीला। वरनन नित्य-विहार रसीला।।
गावत सुनत प्रेम उपजत है। हित-रस सकल जु हाथ परत है।।
तिनका सम जु जगत भासत है। ऐसौ कोउ सुख परकासत है।।
याके पढ़े मिटैं जंजाला। दुख-सुख सब बिसरैं ततकाला।।
अपनौ और परायौ भाई। देखन मिटै एक ह्वै जाई।।
सर्वोपरि जानै हित रस है। हित रस बिनु सब महा विरस है।।
रस-कन आस लियें तिहि बंदौं। बंदि-बंदि तिहि अति आनंदौ।।

—श्री मदनमोहनदास

श्री हित ध्रुवदास जी फलस्तुति परक उपर्युक्त छन्द रस भारती संस्थान, वृन्दावन के सौजन्य से

सहायक ग्रन्थों की सूची

१.	**श्री हित चौरासी**	गो॰ हित हरिवंश चन्द्र जी
२.	**श्री सेवक-वाणी**	श्री दामोदर दास 'सेवक जी'
३.	**श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य,**	डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक
४.	**हित हरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य,**	गोस्वामी ललिताचरण
५.	**भक्तकवि श्री ध्रुवदास : सिद्धान्त-साहित्य,**	डॉ॰ शीला ग्रोवर
६.	**श्री हित ध्रुवदास और उनका साहित्य**	डॉ॰ केदारनाथ द्विवेदी
७.	**गोस्वामी ललिताचरण स्मृति ग्रन्थ**	प्रधान सम्पादक डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक
८.	**श्री राधा-रस-सुधा-निधि**	गो॰ हित हरिवंश चन्द्र जी
९.	**बयालीस लीला**	हस्तलिखित वि॰ १८६०. सं॰
१०.	**बयालीस लीला**	हस्तलिखित वि॰ १८९० सं॰
११.	**श्रीमद्भागवत महापुराण**	श्री वेदव्यास (गीता प्रेस)
१२.	**श्री हरिभक्ति रसामृत-सिन्धु**	श्री रूप गोस्वामी
१३.	**श्री व्यास-वाणी**	श्री हरिराम व्यास जी
१४.	**शिक्षाष्टक**	श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु
१५.	**केलिमाल**	स्वामी श्री हरिदास जी महाराज
१६.	**श्री वल्लभ रसिक की वाणी**	श्री वल्लभ रसिक जी
१७.	**रास पंचाध्यायी**	श्री नन्ददास जी
१८.	**वृहदारण्य उपनिषद्**	गीता प्रेस
१९.	**द्वादश-यश**	स्वामी चतुर्भुज दास
२०.	**सुधर्म बोधिनी**	महात्मा श्री लाड़िली दास

●

सम्मतियाँ

सन्त श्री ध्रुवदास जी के सम्बन्ध में विद्वानों की सम्मतियाँ–

व्रज-माधुरी सार — श्रीवियोगी हरि

(श्री) राधाकृष्ण निकुंज-केलि सुख-पुंज विलासी।
प्रेम-रसासव मत्त मधुप सहृदय गुन-रासी।।
रचि अनेक पद छंद भजन-पद्धति विस्तारी।
लीला अनुभव भक्त-नाम-माला उर धारी।।
हित-मंत्र स्वप्न में मानिकैं व्रत अनन्य कीनौं अटल।
(श्री) हित हरिवंश प्रताप की, हित ध्रुवदास धुजा धवल।।

हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल

ध्रुवदास जी हित हरिवंश के स्वप्न में शिष्य हुए थे। वे वृन्दावन में ही रहा करते थे। इनकी रचना बहुत ही विस्तृत है और इन्होंने पदों के अतिरिक्त दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि अनेक छन्दों में भक्ति और प्रेम तत्त्व का वर्णन किया है।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डॉ॰ रामकुमार वर्मा

ध्रुवदास हित हरिवंश जी के शिष्य कहे जाते हैं। इनका निवास स्थान वृन्दावन था। इन्होंने अनेक शैलियों में अपनी रचना की। गीत तथा दोहे-चौपाई के अतिरिक्त इन्होंने कवित्त-सवैयों में भी अपनी रचना की। श्रीकृष्ण लीला के साथ-साथ इन्होंने प्रेम और भक्ति पर भी बहुत लिखा है....। "सिद्धान्त-विचार" में भक्ति के सिद्धान्त लिखे हैं। ध्रुवदास प्रकाण्ड पण्डित, लेखक और भक्त थे। धार्मिक क्षेत्र में इनके ग्रन्थ अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

नाथसिद्धों की वाणियाँ (भूमिका) डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के धार्मिक व्याख्याता श्री ध्रुवदास ब्रजभाषा-गद्य के मौलिक लेखक हैं।

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय डॉ॰ दीनदयाल गुप्त

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के एक और परम भक्त और कवि श्री ध्रुवदास जी हुए हैं, जिन्होंने बयालीस ग्रन्थों की रचना की थी। इन्होंने अपने ग्रन्थों द्वारा हित-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का वास्तव में स्पष्टीकरण किया था। ''भक्त-नामावली'' में इन्होंने भक्तों की भक्ति का संक्षेप में परिचय दिया है। ध्रुवदास जी का प्रादुर्भाव अष्टछाप कवियों के समय में हुआ था।

ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास डॉ॰ प्रभुदयाल मीतल

राधावल्लभीय भक्तों की वृहद् परम्परा में साम्प्रदायिक महत्त्व की दृष्टि से श्री सेवक जी के पश्चात् श्री ध्रुवदास जी का ही सर्वोपरि स्थान माना गया है। इन्होंने श्री राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं से सम्बन्धित विशद वाणी-साहित्य का सृजन किया है। श्री ध्रुवदास जी की रचनाएँ सम्प्रदाय और साहित्य दोनों दृष्टियों से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका साम्प्रदायिक महत्त्व इसलिए है कि इनमें श्री हित जी के भक्ति-सिद्धान्त और उनकी उपासना-पद्धति का सांगोपांग विशद विवेचन हुआ है। इसके साथ ही इन रचनाओं का साहित्यिक महत्व भी अत्यधिक है। इनकी रचनाओं में इतिहास की दृष्टि से ''भक्त-नामावली'' और शैली की दृष्टि से ''सिद्धान्त-विचार'' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ''सिद्धान्त-विचार'' ब्रज-भाषा गद्य रचना है। इसमें अब से प्रायः तीन शताब्दी पूर्व के गद्य का रूप दिखलाई देता है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ॰ नगेन्द्र

श्री ध्रुवदास जी का लक्ष्य राधावल्लभ-सम्प्रदाय का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करना है। इस सम्प्रदाय में निकुञ्ज-लीला (नित्य-विहार) वर्णन है। श्री ध्रुवदास जी ने अपनी मुक्तक रचना में प्रेम लक्षणा—मधुरा भक्ति का जैसा रूप राधावल्लभीय मत में गृहीत हुआ हैं, उसका ही सांगोपांग विवेचन विश्लेषण अपनी वाणी द्वारा किया। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को हृदयंगम करने के लिए इनकी वाणी से अधिक स्पष्ट और गंभीर किसी अन्य महानुभाव की वाणी नहीं है। व्याख्यापरक दृष्टि से तत्त्वबोध का इतना व्यापक प्रयत्न अद्यावधि इस सम्प्रदाय में किसी और ने नहीं किया। जटिल और दुर्बोध तत्त्वों को समझने के लिए उन्होंने वचनिका (गद्यवार्ता) का भी प्रयोग किया है और अनेक दुरूह प्रश्नों को उसमें बड़ी सरल और सुबोध शैली में सुलझाया है।

इनकी वाणी ''राधावल्लभ-सम्प्रदाय'' के सिद्धान्तों का उद्‌घाटन करने वाली सबसे समर्थ और व्यापक वाणी है। श्री हित हरिवंश जी के भाष्यकार और व्याख्याकार के रूप में इनका स्थान मूर्द्धा पर है। नित्य-विहार के मर्म को विशद विस्तार के साथ सर्व प्रथम इन्होंने ही प्रस्फुटित किया।

राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त कवियों में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का जैसा सर्वांगपूर्ण विवेचन ध्रुवदास जी की वाणी में उपलब्ध होता है, वैसा किसी अन्य महानुभाव की वाणी में नहीं है। ध्रुवदास जी ने राधावल्लभीय भक्ति तत्त्व को जितनी समग्रता और व्यापकता के साथ अपनी वाणी में पल्लवित किया वह इस बात का प्रमाण है कि वे श्री हित हरिवंश जी की भक्ति-पद्धति के भाष्यकार व्याख्याता थे। श्री सेवक जी ने वृत्तिकार का

कार्य किया था, तो श्री ध्रुवदास जी ने स्वतन्त्र रूप से व्याख्या और भाष्य प्रस्तुत किया। राधावल्लभीय भक्ति-तत्त्व को हृदयंगम करने के लिए आपकी वाणी का अध्ययन, अनुशीलन अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

श्री हित हरिवंश गोस्वामी-सम्प्रदाय और साहित्य — गो॰ ललिता चरण

श्री ध्रुवदास जी का प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म और सुकुमार है और उसकी अभिव्यक्ति भी अत्यन्त कोमल और व्यञ्जनापूर्ण हुई है। उनकी भाषा शुद्ध और प्रवाहयुक्त व्रजभाषा है और उसमें प्रान्तीय शब्दों की मिलौनी बहुत कम है। उनकी वाणी में सस्ती भावुकता को व्यक्त करने वाले हल्के और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बिल्कुल नहीं है, जो कुछ भी है, वह प्रसन्न और गम्भीर है। उनके नित्य-विहार के वर्णन तो कोमल हैं ही, उनका उपदेश देने का ढंग मृदु और संयत है। उनके उपदेशों में अकुलाहट और अक्खड़पन कहीं दिखलाई नहीं देता। राधावल्लभीय सिद्धान्त का प्रेम तत्त्व हित है, जो मांगलिक और रहस्यमय है। वही प्रेम और सौन्दर्य का अद्वय युगल स्वरूप श्री राधावल्लभ नाम से अभिहित है और इसका सबसे सुन्दर वर्णन-प्रकाशन श्री हित ध्रुवदास जी की वाणी में हुआ है।

भक्त कवि ध्रुवदास सिद्धान्त और साहित्य — डॉ॰ शीला ग्रोवर

ब्रज-भाषा गद्य-पद्य को समृद्ध और सम्पन्न करने की दृष्टि से ध्रुवदासजी का योगदान उल्लेखनीय है। वे ब्रज-भाषा गद्य के प्रारम्भिक लेखकों में हैं। "सिद्धान्त विचार" उनकी एक प्रौढ़ और प्रामाणिक गद्यात्मक कृति है। व्याकरण की दृष्टि से साढ़े तीनसौ वर्ष पूर्व भाषा के इतने सुसंस्कृत रूप को देखकर भक्तकवि के भाषाधिकार का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित न होने के कारण तथा शोध के अभाव में ब्रज-भाषा गद्य का इतिहास भी अपूर्ण है। गद्य-साहित्य के इतिहास में ध्रुवदास जी के गद्य का मूल्यांकन अपेक्षित है ।

जहाँ तक ध्रुवदास जी के काव्य-शिल्प का प्रश्न है वह मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य के एक महान् शिल्पी हैं। काव्य की आत्मा रस है और ध्रुवदास जी की वाणी का मूलाधर भी रस है। उनकी समस्त कृतियाँ भक्ति-रस से अनुप्राणित हैं। निकुंज रस की अन्तर्धारा का अजस्र स्रोत उनके समस्त साहित्य में प्रवहमान है। वस्तुतः निकुञ्ज लीला ही उनके काव्य का मूल प्रतिपाद्य है-यही ध्याता, ध्यान और ध्येय की अन्तिम सिद्धि है। इस भक्त कवि की रससिद्ध वाणी "सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्" से सम्पन्न है। सौन्दर्योपासक कवि की कला-वीथी में सुन्दर रूप, सुन्दर शृंगार, बसंत, वर्षा जैसी मोहक सुन्दर ऋतुओं के चित्र सर्वत्र अंकित हैं।

श्री हित ध्रुवदास और उनका साहित्य — डॉ॰ केदारनाथ द्विवेदी

सच्चाई यह है कि जिस प्रकार गगन में एक ही ध्रुव तारा है, पुराणों में एक ही भक्त ध्रुव है। ठीक उसी प्रकार हिन्दी-साहित्य में भी यह "ध्रुवदास" अकेला है, यह जो कुछ भी है स्पष्ट है। इसका नाम भी एक ही है। इसके साथ अन्य किसी भी नाम की भ्रान्ति चल नहीं सकती।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपने नाम के, अपने राधावल्लभ-सम्प्रदाय के तथा हिन्दी-साहित्य के ऐसे प्रसिद्ध एवं स्पष्ट भक्त कवि हैं, जिनमें कोई अन्य नाम-रूप समा नहीं पाता। उसका मूल नाम "ध्रुव" है, तथा दास, रसिक, हित, वरदास एवं सेवक आदि उनकी उपाधियाँ हैं, छाप हैं।

❐

श्री हित ध्रुवदास जी कृत ''बयालीस-लीला'' राधावल्लभीय सम्प्रदाय का भाष्य ग्रन्थ है। राधावल्लभीय रसिकों में तो इस ग्रन्थ-रत्न का सम्मान है ही, अन्य सम्प्रदायों के रसिक भी इसे श्रद्धा से देखते हैं। इस ग्रन्थ में श्री ध्रुवदास जी ने वृन्दावन की रसरीति पर अपनी जिस मौलिक रस-दृष्टि को प्रगट किया है, वह अपने आप में अद्‌भुत है। देवर्षि नारद ने जिस प्रेम को अनिर्वचनीय कह कर सबके लिए अगम्य बताया, उसी प्रेम की जो सांगोपांग मनोवैज्ञानिक अभिव्यञ्जना श्री ध्रुवदास जी ने की, वह अपने आप में अनूठी है। उन्होंने हित-धर्म के हार्द को प्रगट करके समस्त रसिकों के लिए उपासना का मार्ग प्रशस्त किया है। इस ग्रन्थ में श्री हित राधावल्लभ-सम्प्रदाय के रस सिद्धान्त को जिस सहजता से प्रस्तुत किया गया है, वह मनोहारी होने के साथ-साथ हृदय-ग्राही भी है।

रसिक-जनों की अभिलाषा थी कि इस वाणी की एक विस्तृत टीका प्रकाशित हो, जिससे भावुक भक्तों को 'बयालीस-लीला' में वर्णित रस एवं सिद्धान्तों को समझने में सुगमता हो। श्री जी की असीम अनुकम्पा से श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय के साम्प्रत मूर्धन्य सन्त परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज 'रसिक-पद-रेणु' के अथक परिश्रम से रसिकों की यह चिर मनोकामना पूर्ण हुई। स्वामी हितदास केवल गम्भीर विद्वान् ही नहीं अपितु सहृदय भावुक रसिक हैं और साठ-वासठ वर्षों से निरन्तर श्री जी की उपासना में रत रहकर हित-धर्म की विमल ध्वजा को फहरा रहे हैं। आपके द्वारा सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है, जिससे रसिकों को अत्यन्त लाभ हुआ है। स्वामी जी के द्वारा हो रही सेवा सम्प्रदाय के विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है। आज बयासी वर्ष की आयु में युवकोचित उत्साह के साथ वाणियों के लेखन-प्रकाशन एवं सारगर्भित रसमय प्रवचनों के द्वारा सम्प्रदाय के उपासनीय सिद्धान्तों का जो प्रचार-प्रसार आपके द्वारा जन-जन में हो रहा है, वह अन्य धर्मियों के लिए प्रेरक

है। स्वामी हितदास जी द्वारा स्थापित श्री हिताश्रम सत्संग-भूमि न केवल राधावल्लभीय रसिकों के लिए अपितु अन्य साम्प्रदायिक जनों के लिए भी प्रेरणा का केन्द्र है। सम्प्रति स्वामी जी श्री वृन्दावनीय सन्त समाज के भूषण हैं। आपने 'बयालीस लीला' की टीका करके सम्प्रदाय की जो सेवा की है, वह सम्प्रदाय की अमूल्य निधि रहेगी। इसके लिए मैं हृदय से अपनी शुभ-कामना एवं बधाई देता हूँ। श्री जी से प्रार्थना है कि श्री हितदास जी महाराज को स्वस्थ रखते हुए शतायु करें, जिससे वे इसी प्रकार सम्प्रदाय की सेवा करते हुए मार्ग- दर्शन करते रहें।

— हित जीवन लाल गोस्वामी, 'छोटी सरकार'

रसिक समाजेन्दु श्री हित ध्रुवदास जी की वाणी रसावतार गोस्वामी श्री हित हरिवंश चन्द्र मुखोक्त रस सूत्रों का भाष्य है। यह वाणी रसमर्मी रसिकों की दृष्टि में विविध महत्त्वशालिनी तो है ही किन्तु उसका सर्वाधिक और अप्रतिम महत्त्व यह है कि वह रस-रसिकेश्वरी श्री प्रिया-प्रदत्त है। रसात्मा किंवा रसमूर्ति श्री राधा की दिव्य देन रूप यह रस-गिरा सर्वात्म-तोषिणी और रसिकजन-पोषिणी सिद्ध हुई है। उसका यह एकान्त और अन्यतम चमत्कार उसका स्वरूपगत वैभव है।

रस सर्वगम्य होते हुए भी सर्वागम्य है। यह तथ्य हित ध्रुववाणी के अध्ययन से भली-भाँति हृदयंगम हो जाता है। इस तथ्य का यथार्थ बोध स्वामी हितदास जी को हुआ है। अतः उन्होंने इस वाणी का सरलतम अनुवाद करके ''सन्त हृदय नवनीत समाना'' इस सन्तोक्ति को प्राणवान् बनाया है।

— किशोरीशरण 'अलि'
संस्थापक, रस भारती संस्थान, वृन्दावन

श्री ध्रुवदास जी से मेरा परिचय बाल्यकाल में ही हो गया था। मेरे पिताजी स्नान करते समय अत्यन्त मधुर स्वर में श्री हित महाप्रभु के यमुनाष्टक का पाठ करके श्री ध्रुवदास जी का सवैया गाते—

ऐसी करौ नवलाल रँगीले जू चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे दुख-सुःख रहे लागि देह सौं ते मिटि जाँय औ लोक बड़ाई।।

वृन्दावन से बाहर सरकारी नौकरी में इस सवैया ने बड़ा सन्तोष और आत्मबल प्रदान किया। शोधकार्य में बयालीस लीला के आध्यात्मिक एवं साहित्यिक गुण-वैभव का यत्किञ्चित् परिज्ञान हुआ। श्रेष्ठ सुन्दरी के पदाघात से जैसे अशोक में कलियाँ फूट पड़ती हैं, वैसे ही श्रीराधा के चरण-स्पर्श से ध्रुवदास जी के काव्य कुसुम प्रस्फुटित हुए थे। अतः उनके वर्ण, सौरभ और रस का तो कहना ही क्या ? उनके 'सिद्धान्त विचार' ने निकुञ्ज रसोपासना का मर्म समझाया। उन्होंने ही नित्य को निमित्त से अलग किया। ''अरु महापुरुषनु अनेक भाँति के रस कहे हैं। एपै इतनौ समुझनौ कै उनकौ हियौ कहाँ ठहरानो है, सोई गहनौ।'' इन वाक्यों ने तो हिये की आँखें ही खोल दीं। दृढ़ अनन्य उपासक होते हुए भी अन्य महानुभावों के प्रति उनके आदर और श्रद्धा भावना ने हृदय की संकुचित सीमाओं को विस्तार दिया। ''सिद्धान्त-विचार'' में स्वामी हरिदास जी और स्वामी बिहारिन दास जी के उद्धरण, भक्त-नामावली आदि इसके प्रमाण हैं। श्री ध्रुवदास की ब्रज-भाषा भी एकदम टकसाली है। विशेषकर श्री हित जी और सेवक जी की ब्रज-भाषा के कुछ काल पश्चात् ही उनकी भाव-भाषा प्रौढ़ता श्री राधावल्लभीय-साहित्य में अद्वितीय है।

खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार से आज ब्रज-भाषा ब्रजवासियों को भी दुरुह एवं अबोधगम्य होती जा रही है। उसमें भी गूढ़ सिद्धान्त परक वाणियों की तो चर्चा ही क्या करनी। ऐसे में खड़ी बोली के सुललित गद्य में श्री ध्रुवदास जी की सम्पूर्ण वाणी की व्याख्या एक स्तुत्य कार्य है, यद्यपि स्वामी

श्री हितदास जी ''रसिक-पद-रेणु'' इसे अनुवाद ही कहते हैं। वाणी के साहित्यिक गुणों का विश्लेषण तो कोई विद्यार्थी भी कर सकता है, किन्तु निकुञ्ज-उपासना के सिद्धान्तों के साथ-साथ उपासनीय रस के मर्म का उद्‌घाटन स्वामी श्री हितदास जी जैसे रसिक प्रवर का ही कार्य है, जिनका समस्त जीवन रस-साहित्य सागर के अवगाहन और वाणी-रत्नों के परिचयन में ही व्यतीत हो रहा है। इस महत् रचनात्मक कार्य के लिए भक्ति-साहित्य के प्रेमी उनके चिर-कृतज्ञ रहेंगे। उनका सश्रद्ध हार्दिक अभिनन्दन।

— प्रो॰ गोविन्द शर्मा

संतकवि श्रीध्रुवदास जी के जन्म और देहावसान का यथार्थ काल अज्ञात है। उनका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। उनकी कुछ कृतियों में रचनाकाल का उल्लेख मिलता है। ऐसी कृतियाँ सं॰ १६५० से १६९८ वि॰ तक ही हैं। यद्यपि उन्हीं को निश्चय पूर्वक आरम्भिक और अंतिम रचनाएँ नहीं माना जा सकता है, तथापि वे उनके उपस्थिति काल के निर्णय में सहायक हो सकती हैं। उसके आधार पर उनका जन्म सं॰ १६३० के कुछ पूर्व का और देहावसान सं॰ १७०० वि॰ के कुछ बाद का ज्ञात होता है। श्री प्रियादास जी ने अपने ग्रंथ ''श्रीराधावल्लभ-भक्तमाल'' में उनका जन्म सं॰ १६२२ वि॰ लिखा है। यद्यपि उन्होंने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया, फिर भी यह कथन ठीक ही मालूम होता है। डॉ॰ शीला ग्रोवर ने अपने शोध प्रबन्ध 'भक्तकवि श्रीध्रुवदासः सिद्धान्त और साहित्य' नामक ग्रंथ में श्री ध्रुवदास जी का जन्म सम्वत् १६१० और निधन सम्वत् १७०० वि॰ के लगभग निश्चित किया है। अतः सम्वत् १६४० से १७०० विक्रमी तक उनका रचनाकाल माना जा सकता है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उद्‌घाटन करने वाली सबसे समर्थ और व्यापक वाणी श्री ध्रुवदास जी की है। ऐसी रसमयी भावपूर्ण श्री प्रिया-लाल की रतिकेलियुक्त वाणी की व्याख्या स्वनामधन्य 'रसिक-पद-रेणु' स्वामी श्री हितदास जी महाराज ने लिखकर हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है। आशा है कि उसके प्रकाशन से अनेक रसिकों और साहित्य-शोधकों को लाभ होगा।

— आचार्य राधामोहनदास गुप्त
संस्थापक/अध्यक्ष, स्वामी श्रीहरिदास शोध संस्थान, कानपुर–१

बयालीस-लीला

।। श्रीहितहरिवंशचन्द्रो जयति ।।
।। श्रीहितराधावल्लभो जयति ।।

मङ्गलाचरण

प्रेमानन्दोत्पुलकितगात्रौ,
विद्युद्धाराधरसमकान्तिः ।
राधाकृष्णौ मनसि दधानं,
वन्देऽहं श्रीहितहरिवंशम् ।।

नमो नमो जय श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य बैनु कुल मंडन लीला मानसरोवर हंस।।
नमो जयति श्री वृंदावन सहज माधुरी रास-विलास प्रशंस।
आगम-निगम अगोचर राधे चरन-सरोज 'व्यास' अवतंस।।

१
जीव-दशा

'जीव-दशा लीला' नामक स्वरचित काव्य प्रकरण में राधावल्लभीय रसिक-भूषण भक्त-कवि श्री हित ध्रुवदास जी महाराज संसार में आसक्त, मोहग्रस्त एवम् भगवद्विमुख जीव की पतित अवस्था का निरूपण करते हुए अन्यान्य मनुष्यों को श्री हरि के सम्मुख होकर परम सुख, परम शान्ति प्राप्ति का उपदेश देते हैं –

चौपाई

जीव दसा कछु इक सुनि भाई। हरि-जस अमृत तजि विष खाई।। १।।
छिन भंगुर यह देह न जानी। उलटी समुझि अमर ही मानी।। २।।
घर-घरनी के रँग यौं राच्यौ। छिन-छिन में कपि नट लौं नाच्यौ।। ३।।
करी न कबहूँ भजन सँभारी। ऐसैं मगन रह्यौ व्यौहारी।। ४।।
वय गई बीति जात नहिं जानी। ज्यौं सावन-सरिता कौ पानी।। ५।।

हे भाई ! श्री हरि के अमृत रूपी यश (चरित्र) का त्याग करके विषय रूपी विष का भक्षण करने वाले इस अज्ञानी जीव की दशा तो देखो।।१।। इसने इस क्षण भर में विनष्ट हो जाने वाले देह की क्षण-भङ्गुरता का भान ही भुला दिया है और इस विनाशी शरीर को अजर-अमर मान रखा है। कैसी उल्टी समझ है इसकी ?।।२।। मिट्टी से बने घर और (गृह-स्वामिनी) पत्नी के मोह-राग रङ्ग में ऐसा रँग गया है कि क्षण-क्षण में पालतू वानर-पशु की भाँति (पत्नी के इशारे पर) नाचता रहता है।।३।। जगत् के व्यवहार में मग्न होकर इसने कभी हरि-भजन की चिन्ता नहीं की।।४।। इस प्रकार जगत् के गोरखधन्धों में अपनी समस्त आयु खो दी, जैसे श्रावण मास की प्रवाहमयी सरिता (नदी) का जल देखते-देखते आगे सरक जाता है।।५।।

द्वै स्वाँसा या घट में चलैं। जो बिछुरैं तो फेरि न मिलैं।। ६ ।।
माया-सुख में यौं लपटानौं। विषै स्वाद सर्वसु ही जानौं।। ७ ।।
कृष्ण भजन सौं कबहुँ न राच्यौ। महामूढ़ बड़े सुख ते बाँच्यौ।। ८ ।।
काल समै जब आइ तुलानी। तन मन की सुधि सबै भुलानी।। ९ ।।
रसना थकी न बोल्यौ जाई। बार-बार मन मे पछिताई।।१०।।
जम किंकर जब दई दिखाई। महा भयानक अति दुखदाई।। ११।।
रंच न स्याम भक्ति उर आई। या दुख में अब कौन सहाई।। १२।।
रोम-रोम पीड़ा दुख पावै। हरि केहरि बिनु कौन छुड़ावै।। १३।।
ताकौ नाम न लियौ अभागे। कबहूँ सोवत सुपन न जागे।। १४।।

सर्व विदित है कि मनुष्य शरीर आवागमनमयी दो श्वासों का चक्र है। इसके विखण्डित होने में एक पल का समय भी नहीं लगता।।६।। बड़े दुःख की बात है कि यह अज्ञानी जीव विषय-सुख-स्वाद को ही सर्वस्व मानकर माया-सुख में बुरी तरह लिप्त हो गया है।।७।। परम सुख स्वरूप श्री कृष्ण-भक्ति से कभी जुड़ा ही नहीं। अपनी महा मूढ़ता के कारण शाश्वत सुख (आनन्द) से वञ्चित रह गया।।८।। जब मृत्यु का क्षण आया तो समस्त चेतना विलुप्त हो गयी।।९।। वाणी अवरुद्ध हो गयी फिर तो पछताने के सिवाय और कुछ वश का नहीं रहा।।।१०।। उसी समय अत्यन्त भयानक यम-दूतों ने उसकी अन्तरात्मा को घेर लिया। यह दुःख में दुःख आ पड़ा।।११।। यदि कभी जीवन में श्याम-सुन्दर श्री कृष्ण की थोड़ी सी भी भक्ति की होती, तो वह आज जीवन के अन्तिम क्षणों में सहायक होती परन्तु भक्ति के अभाव में अब उस भक्ति-विमुख जीव की सहायता कौन करेगा?।।१२।। उसका रोम-रोम पीड़ा से व्यथित हो गया है किन्तु हरि रूपी सिंह के अतिरिक्त किसका सामर्थ्य है, जो उसका दुःख विमोचन कर सके?।।१३।। जिन श्री हरि का इसने कभी सोते-जागते तथा स्वप्न में नाम तक नहीं लिया है।।१४।।

अब मुख नहिं निसरत हरिबानी। पित्त वायु कफ घेरयौ आनी।। १५।।

नाम-महिमा चौपाई

एक नाम त्रैलोकहि तारै। जो न लेहि सो जनमहिं हारै।। १६।।

दोहा

कैसेहूँ हरिनाम लै, खेलत हँसत अजान।
ऐसेंहू कौं देत हैं, उत्तम गति भगवान।। १७।।
जो कोउ साँची प्रीति सौं, 'हरि-हरि' कहत लड़ाइ।
तिनकौं 'ध्रुव' कहा दैंहिगे, यह जानी नहिं जाइ।। १८।।

प्राणान्त काल में जब कफ, वात और पित्त से घिर जाता है तब तो वाणी से "हरि" शब्द भी नहीं बोला जा सकता है। हाय-हाय! बड़े कष्ट की बात है।।१५।।

श्री हरि-नाम अमित कल्याणकारी है, इसकी शक्ति अमित है। एक बार के उच्चारण मात्र से यह अनन्त लाभ से परिपूरित कर देने वाला है। श्री हरि का केवल एक नाम त्रिलोकी के समस्त जीवधारियों को तारने में समर्थ है, फिर भी यदि कोई भाग्यहीन ऐसे नाम के उच्चारण-गान से वञ्चित है, तो निश्चय ही वह अपने जीवन को व्यर्थ खो रहा है।।१६।। अतएव हे मानव! तू येन-केन प्रकारेण, जैसे बने वैसे भाव-कुभाव से भी, खेलते-हँसते अथवा उपेक्षा-पूर्वक ही सही, दयामय श्री हरि का नामोच्चारण तो कर। विश्वास रख कि वे दयालु प्रभु उस नाम का गान करने वाले को भी उत्तमोत्तम गति प्रदान करते हैं।।१७।। यदि कोई व्यक्ति परम प्रीति पूर्वक, लाड़-चाव से उनके नामों का गान करता है, तो उस प्रेमी को क्या दे डालेंगे, इसका अनुमान लगा सकना कठिन है।।१८।।

सब धर्मनि पर जगमगै, कृष्ण नाम सिरताज।
जैसैं वन के मृगनि में, गाजत है मृगराज।।१९।।

चौपाई

पापी एक अजामिल भयौ। अधम बीज तिन तरु निर्मयौ।।२०।।
सुत हित नाम नरायन लयौ। सो पापी बैकुंठहि गयौ।।२१।।
ऐसैं बहुत पातकी तरे। हरि हरि कहत पाप सब जरे।।२२।।

दोहा

कृष्ण नाम लीन्हौं न जिनि, कीन्हौं बड़ौ अकाज।
धर्म-मृगनि पाछैं लग्यौ, छाँड़ि नाम मृगराज।।२३।।

सब धर्मों का शिरोमणि श्री कृष्ण नाम है। जैसे वन के समस्त पशुओं में मृगराज (सिंह) सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही सब धर्मों में भगवन्नाम रूपी भागवत धर्म सर्वोपरि धर्म है।।१९।। उदाहरणतः देखिये (पुराण कथाओं में) अजामिल नामक एक पापी की कथा, जिसने अधर्माचरण रूपी बीज का वपन करके एक विशाल पाप-वृक्ष खड़ा कर लिया था।।२०।। किन्तु उसने मरते समय पुत्र के व्याज से 'नारायण' नाम का उच्चारण किया तो वह पापी भी वैकुण्ठ का अधिकारी हो गया।।२१।। अजामिल जैसे और भी बहुत से पापी पूर्वकाल में हो गए हैं (जिनकी कथाएँ पुराणादि में वर्णित हैं), वे भी श्री हरिनाम का गान करने से पाप-मुक्त हो गये।।२२।। जिन किन्हीं लोगों ने स्वर्गादि फलों की आकांक्षा से अन्यान्य दान, व्रत, यज्ञादि धर्म रूपी पशुओं का आश्रय लेकर कृष्ण नाम रूपी सिंह-मृगराज का आश्रय नहीं लिया, उन्होंने अपनी बड़ी हानि कर डाली। वे परम-पद प्राप्ति जैसे लाभ से वञ्चित रह गये।।२३।।

चौपाई

दान पुन्य नृग नृप बड़ कियौ। सो लै अंध-कूप में दियौ।।२४।।
धर्मनि में अरुझाइ भुलाने। विधि परपंच सबै जग जाने।।२५।।

दोहा

कोटि धर्म व्रत निगम रटि, विधि सौं करै बनाइ।
एक नाम बिनु कृष्ण के, सबै अबिधि ह्वै जाइ।।२६।।

चौपाई

कोटि धर्म जो कोउ करि आवै। कृष्ण नाम बिनु गति नहिं पावै।।२७।।
नामहिं सौं जिनि बाँध्यौ नातौ। जग के सुख सौं सो भयौ हाँतौ।।२८।।

दोहा

मिथ्या लालच जगत सुख, सबहि दुःख कौ धाम।
इक रस नित आनंदमय, सत्य श्याम कौ नाम।।२९।।

राजा नृग बड़ा दानी था। उसने बड़े-बड़े यज्ञ, दानादि किये थे किन्तु केवल एक त्रुटि के कारण उसे अन्ध कूप में गिरना पड़ा था।।२४।। अतएव सामान्य धर्मों में उलझना, विधि-प्रपञ्च में उलझना है। यह न तो मुक्ति का मार्ग है और न ही भक्ति का।।२५।। कोई व्यक्ति वेदों को रटते हुए कोटि-कोटि धर्मों का विधि-पूर्वक अनुष्ठान-आचरण क्यों न करता रहे, श्री कृष्ण नाम के उच्चारण के बिना उसका सब कुछ किया कराया व्यर्थ हो जायेगा।।२६।। अतएव यह निश्चित है कि कोटि-कोटि स्मार्त धर्मों का आचरण करने वाला भी श्री कृष्ण नामाश्रय के विना-सद्गति अथवा मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता।।२७।। जिस किसी भाग्यशाली ने श्री हरि के नाम से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है, वह विषय-सुख रूपी संसार से सर्वथा मुक्त होकर परम-पद का अधिकारी बन जाता है।।२८।। अतः निश्चित है कि सामान्य धर्माचरणों से मिलने वाले संसार और उसके विषय-सुख केवल जीव की तृष्णा मात्र हैं एवं दुःखालय हैं। नित्य आनन्दमय शाश्वत सुख तो केवल श्री कृष्ण नाम ही है।।२९।।

कवित्त

हेम कौ सुमेर दान, रतन अनेक दान,
गज दान, अन्नदान, भूमि दान करहीं।
मोतिनु के तुलादान, मकर प्रयाग-न्हान,
ग्रहन में कासी दान, चित्त सुद्ध धरहीं।।
सेजदान, कन्या दान, कुरुक्षेत्र गऊ दान,
इतने में पापनिं कौं नेकहूँ न हरहीं।
कृष्ण केसरी कौ नाग, एक बार लीन्हें 'ध्रुव',
पापी तिहुँ लोकनि के छिन माँहि तरहीं।।३०।।

दोहा

भक्ति-छत्र जिहि सिर फिरै, ताकौ राज प्रमान।
कर्म-धर्म किंकर भये, सेवत रहैं सुजान।।३१।।
सुरपति, पसुपति, प्रजापति, वैभव रहे निहारि।
ऐसौ तेज-प्रताप तहाँ, सकत न कोऊ सँभारि।।३२।।

दान, धर्म श्रेयस्कर हैं, इस विश्वास से कोई सुमेरु तुल्य स्वर्ण-राशि का दान करे, मणि-माणिक, रत्नों के दान, गज-दान, अन्नदान और भूमिदान तथा मुक्ताराशि से अनेक तुलादान करे, प्रयाग जैसे तीर्थ में स्नान और काशी में जाकर ग्रहण के अवसर पर चित्त-शुद्धि के निमित्त बहुत दान करे, शय्यादान, कन्यादान भी करे एवं कुरुक्षेत्र में जाकर शुभ पर्व पर गो-दान करे, तो भी इन सारे दानों के पश्चात् भी वह सर्वथा पाप-मुक्त नहीं हो पाता। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री कृष्ण-केसरी का नाम एक बार लेने मात्र से त्रैलोक्य के सारे पापी एक क्षण में संसारी आवागमन से छूट कर परम-गति के अधिकारी हो जाते हैं।।३०।। जिसके सिर पर भक्ति रूपी छत्र तना हो, वही सब धर्मों का राजा है, ऐसा मानना चाहिये। कर्म-धर्मादि सभी उस भक्ति रूपी राजाधिराज के दास हैं, जो अपने सम्राट् की सेवा किया करते हैं।।३१।। सुरपति इन्द्र, पशुपति शिव और प्रजापति ब्रह्मा भी भक्तिवैभव का दर्शन करके ठगे से रह जाते हैं। भक्ति का विलक्षण तेज एवं प्रताप अक्षुण्ण है, जिसे धारण करने की अथवा समता करने की सामर्थ्य इन सब में से किसी में भी नहीं है।।३२।।

सवैया

व्रत, तप, निगम, नेम, यम, संजम, करहु कलेस कोटि किन भारी।
इनमें पहुँच नाहिं काहू की, परे रहत ज्यौं द्वार भिखारी।।
जोग जज्ञ फल मैंड़ करत हैं, तीरथ सब कर लीनें झारी।
धर्म मोक्ष कोउ पूँछत नाहीं, इन मग सिद्धैं कौन बिचारी।।३३।।

दोहा

सांख्य धर्म संन्यास जे, कहे पुराननि माहिं।
भये अधीन सब नाम के, भक्तिहि देखि लजाहिं।।३४।।

भागवत धर्म की श्रेष्ठता

सवैया

भजन-महल में निकसत नाहिंन, हरि-पद प्रीति रही उर लागि।
कामरु क्रोध, लोभ मद मत्सर, ये सब गये रसातल भागि।।

भक्ति रहित जो भी व्रत, तप, वेद-पाठ, नियम, यम, संयम आदि बड़े-बड़े साधन हैं, कष्ट साध्य एवं क्लेशदायक हैं तथा इनका प्रवेश भक्ति-देवी के द्वार तक नहीं है। ये सभी याचकों की भाँति भक्ति-देवी की कृपा की आकाङ्क्षा लिये उनके द्वार पर पड़े रहते हैं। इनसे इतर जो योग यज्ञ एवं तीर्थ-आदि साधन हैं, वे भी अनुचर हुए भक्ति-देवी के पाद-प्रक्षालनार्थ हाथों में जल की झारी लिये हुए सेवा में उपस्थित रहते हैं। अधिक क्या कहें ! यहाँ तो सर्वश्रेष्ठ धर्म, मोक्ष पर्यन्त सुखों की भी उपेक्षा हो जाती है। तब क्षुद्र सिद्धियों के लिये तो स्थान ही कहाँ है ?।।३३।। पुराण ग्रन्थों में जिस सांख्य धर्म और संन्यास धर्म की भूरि-भूरि महिमा गायी गयी है, वे तथाकथित महामहिम धर्म भी भगवन्नाम के अधीन हैं और भक्ति-देवी के सामने लज्जित हैं। सारांश यह है कि भगवद्-भक्ति ही सर्वोपरि धर्म है।।३४।।

भागवत धर्म की श्रेष्ठता यह है कि भगवान् का भजन करने वाला भक्त भजन रूपी महल में ही रहता है। उसे वहाँ से निकलने की न इच्छा होती है और न ही उसे अवकाश है। उसके हृदय में तो श्री हरि-चरणों की अचल प्रीति

इक छत राज न भय काहू कौ, नित आनंद रह्यौ उर छाइ।
अर्थ कामना और वासना ये सब मन ते गये नसाइ।।३५।।

दोहा

सर्वोपरि श्री भागवत, परम धर्म स्वच्छंद।
जाके उर आवै नहीं, सोई अति मति मंद।।३६।।
सब धर्मनि में भ्रमै जिनि, जुगल चरन चितलाइ।
जैसे दुख परदेस कौ, घर आये तें जाइ।।३७।।
जौ चाहत है नित्त सुख, अरु मन कौ विश्राम।
'हित ध्रुव' हित सौं भजत रहि, पलु-पलु श्यामा श्याम।।३८।।

निवास करती है। ऐसे भजनानन्दी भक्त के हृदय से काम, क्रोध, लोभ, मद और मत्सर निकल कर न जाने कहाँ रसातल में पलायन कर जाते हैं, सामने आने का साहस नहीं कर पाते हैं। ऐसे वैष्णव भक्त का ही सब ओर एकछत्र राज्य हो जाता है और उसके हृदय में निरन्तर भक्ति-जन्य आनन्द छाया रहता है। उस आनन्द के समक्ष धन-मान सम्बन्धी समस्त कामनाएँ और वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं।।३५।। इस प्रकार श्री कृष्ण की भक्ति का मार्ग याने भागवत धर्म सब धर्मों से सर्वोपरि श्रेष्ठ है तथा परम स्वतन्त्र है अर्थात् कर्म-ज्ञानादि के अधीन नहीं है। अज्ञानी-जीव यदि इस भागवत-धर्म की श्रेष्ठता को न समझ पाये तो यह उसका बड़ा ही दुर्भाग्य है।।३६।। अतएव अन्यान्य सारे धर्मों की भटकन छोड़कर श्री हरि के युगल चरणारविन्दों को ही हृदय में धारण करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति परम सुख-शान्ति का अनुभव करेगा जैसे कोई अपने घर आने पर सुखी हो जाता है।।३७।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं यदि तुम सदैव सुख शान्ति चाहते हो तो प्रतिपल प्रीतिपूर्वक श्री श्यामा-श्याम का भजन करते रहो।।३८।।

❑

२

वैद्यक-ज्ञान

संत रूपी वैद्य का आह्वान चौपाई

वैद एक पंडित अति भारी। ठाढ़ौ सबसौं कहत पुकारी।। १।।
जैसौ रोग होइहै जाकौ। तैसी औषध दैहौं ताकौ।।२।।

रोगी का निवेदन चौपाई

यह सुनि एक गयौ तेहि नेरैं। ऐसौ बल औषध को तेरैं।।३।।
मेरैं बिथा बढ़ी अति भारी। कहि मोसौं कछु सोच विचारी।।४।।
तेरैं रोग कहा है भाई। ताकी औषध देऊँ बताई।।५।।

जगत् का कल्याण करने वाले पर-हितकारी सन्त रूपी वैद्य के रूपक से एक आख्यान प्रस्तुत करके रसिक सन्त श्री ध्रुवदास किसी संसार-रोग से ग्रस्त देहधारी की स्थिति और संसार-रोग से मुक्त होने का औषध ज्ञान वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अपनी विद्या में अत्यन्त निपुण और परोपकारी एक वैद्यराज किसी ग्राम में आकर वहाँ के जन समाज से पुकार-पुकार कर कहने लगे कि भाई ! मैं रोगों का हर्त्ता वैद्य हूँ। जिस किसी व्यक्ति का जो भी रोग होगा, मैं उसको उस रोग के विनाश करने की दवा दूँगा। मेरे पास सभी रोगों की अचूक दवाएँ हैं।।१-२।। वैद्यराज की घोषणा सुनकर एक रोगी व्यक्ति उनके पास जाकर बोला कि वैद्यराज जी ! आपके पास क्या ऐसी कोई औषधि है, जो मेरी व्यथा (बीमारियों) का उपचार करके मुझे स्वस्थ कर दे। मैं बहुत व्यथित हूँ।।३-४।। उसकी बात सुनकर श्री वैद्यराज ने कहा–तुम पहले अपनी व्यथा का ब्यौरा दो कि तुम्हें बीमारी क्या है तब मैं उस रोग की औषधि बताऊँगा ?।।५।।

पापहि-कर्म अधिक मैं कीने। महा दुखी तिहि रोग के लीने।। ६ ।।
विषै विषम विष तन रह्यौ छाई। भव-भुवंग तें लेहु छुड़ाई।। ७ ।।
धरि यह देह कछू नहिं कीन्हौं। कृष्न चरन चित कबहुँ न दीन्हौं।। ८ ।।
विषै स्वाद में रह्यौ लुभाई। झूँठे सुख में आयु बिताई।। ९ ।।
दुख पायौ जहाँ-जहाँ चित दीयौ। अब हौं पावत अपनौ कीयौ।।१० ।।
ऐसैं मोह जाल में पर्‌यौ। यह माया ने सर्बसु हर्‌यौ।।११ ।।
जिनकौं हौं समुझत हो अपने। ते तौ भये रैंनि के सपने।।१२ ।।
गज तुरंग सेवक सुत नाती। जागि परे तें दिया न बाती।।१३ ।।

वैद्यराज की बात सुनकर रोगी कहने लगा—प्रथमतः मैंने अपने जीवन में बहुत से पापमय कर्म किये हैं, इसलिये पाप रोग से ग्रस्त होकर अपार दुःखी हो गया हूँ।।६।। पापों का भयानक विषय रूपी विष मेरे तन में व्याप्त है। मैं संसार रूपी सर्प से ग्रसित हूँ। मुझे आप इस जन्म-मरण रूपी संसार सर्प की लपेट से छुड़ाइये।।७।। बड़े दुःख की बात यह है कि मैंने ऐसा उत्तम मानव-देह पाकर भी कोई पुण्य कार्य नहीं किये और कभी भूलकर भी भगवान् श्री कृष्ण के पतित-पावन चरणारविन्दों में मन नहीं दिया।।८।। विषयों के स्वाद-सुखों में भूला रहकर आयु समाप्त कर दी और भगवद्भक्ति रूपी सच्चे सुख से वञ्चित् रह गया।।९।। मैंने संसार में जहाँ-जहाँ मन लगाया वहाँ-वहाँ दुःख ही पाया। मैं अपने किये का फल भोग रहा हूँ।।१०।। मोह जाल में फँस मरा। इस ठगिनी माया ने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया।।११।। आश्चर्य है, मैंने इस संसार में जिसे अपना माना, वही मेरे लिए रात्रि का झूठा स्वप्न बनकर रह गया।।१२।। ये हाथी, घोड़े, सेवक-सेविकाएँ, पुत्र-पौत्र सभी तो स्वप्न-संसार के लोग हैं। वस्तुतः जागने (ज्ञान होने) पर न दीपक है, न वर्त्तिका। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा है।।१३।।

दोहा

एते पर समुझा रह्यौ, समुझत नहिं मन-मोर।
देखि-देखि नाचत मुदित, विषै बादरनि ओर।।१४।।

चौपाई

बूड़त मोह-सिंधु की धारा। काढ़ि दया करि करि मोहिं पारा।।१५।।
हौं अति दीन महा दुख पावत। लोक कुटुँब कोऊ न मुँह लावत।।१६।।
जे जे मुख जोवत हे मेरौ। तिनमें कोऊ न आवत नेरौ।।१७।।
मेरी बात सुहाति न काहू। तातें उपजत है उर-दाहू।।१८।।
भयौ बलहीन बुद्धि हू नाठी। तहाँ सहाइ भई कछु लाठी।।१९।।

इन सब बातों को समझ कर भी मेरा अज्ञानी मन समझता नहीं है। यह मेरा मन रूपी मोर विषय रूपी बादलों की ओर देख-देख कर प्रसन्न हुआ नाचता है।।१४।। अर्थात् सब प्रकार से सांसारिक यातनाओं को भोगकर भी इसे विषयों से उपरति नहीं हो रही है, इसलिए हे करुणामय सन्त रूप वैद्यराज जी ! संसार-समुद्र के मोह-प्रवाह में डूबते हुए मुझ अज्ञानी को उबार लीजिये और इस संसार से पार कर दीजिये।।१५।। मैं अत्यन्त दीन-दशा को प्राप्त हो चुका हूँ। बड़ा दुःख पा रहा हूँ। संसार और कुटुम्ब के अपने कहे जाने वाले लोग अब मेरी ओर देखना भी नहीं चाहते।।१६।। जो कभी मेरा मुँह ताकते रहते थे, वही अब मेरे पास तक आना पसन्द नहीं करते।।१७।। मेरी बात अब किसी को सुहाती तक नहीं है। इस कारण मुझे बड़ी मार्मिक पीड़ा हो रही है।।१८।। मैं शरीर-शक्ति से रहित बलहीन हो गया हूँ। मेरी बुद्धि नष्ट सी हो गयी है। इस बुढ़ापे में यदि कोई सहायक है तो केवल वह एक सूखी लाठी ही है।।१९।।

झूँठ कुटुंबहि के रँग भीनौं। साँचे प्रभु सौं चित नहिं दीनौं।।२०।।
कहाँ लगि कहौं मूढ़ता अपनी। ढाँपि लियौ माया की चपनी।।२१।।

दोहा

नैंन गये अरु श्रवन हूँ, और गये मुख दंत।
बुद्धि घटी तन गति लटी, तृष्ना कौ नहिं अंत।।२२।।

चौपाई

टूटी खाट न छाँड़ी भावै। सुत के सुत नातीनु खिलावै।।२३।।
यहै रुचै मुख नाम न आवै। जैवौ जमके द्वारैं भावै।।२४।।

खेद है कि मैं जीवन भर झूठे कुटुम्ब के मोह रङ्ग में रँगा रहा। मुझ अभागे ने कभी अपने सच्चे साथी-प्रभु श्री हरि को अपना चित्त (मन) समर्पित नहीं किया।।२०।। वैद्य जी ! मैं अपनी मूढ़ता का क्या बखान करूँ ? मुझे तो माया के ढक्कन ने सब ओर से ढाँक लिया।।२१।। मेरे नेत्र, श्रवण तो गये ही मुख के दाँत भी चले गये। बुद्धि क्षीण हो गयी, शरीर शक्ति भी समाप्त है किन्तु हाय ! हाय !! तृष्णा का अन्त नहीं हो रहा है वरन् वह बढ़ती ही बढ़ती जा रही है।।२२।। मैं पुत्र-पौत्रादि के मोह में डूबा हुआ, उन्हीं के बीच पड़ा सड़ता रहना चाहता हूँ। मुझे शयन करने के लिए एक टूटी पुरानी झिलँगी खाट मिली है, जो टूट भी रही है पर मैं उसमें पड़ा रहकर आनन्द मग्न हूँ, मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। पुत्रों को गोद में खिलाकर तृप्ति नहीं हुई अब पुत्रों के पुत्र-नातियों को खिला-दुलरा कर आनन्दित होता हूँ।।२३।। मजे की बात यह है कि मुझे यही सब अच्छा लगता है। यमराज के द्वार में जाना ही रुचिकर लगता है।।२४।।

दोहा

मन लाग्यौ अति झूँठ सौं, तजि साँचहि सुख-मूल।
छाँड़ि सुधा के सुख फलहिं, गही जाइ विष-सूल।।२५।।

चौपाई

ज्यौं-ज्यौं तन अति जीरन भयौ। त्यौं-त्यौं लोभ रोग बढ़ि गयौ।।२६।।
अब तुम जतन करौ चित लाई। जातें कछु इक हियौ सिराई।।२७।।

रोग निदान एवँ पथ्यपूर्ण उपचार चौपाई

तबहिं बैद तासौं यौं कही। करौ जतन दुख जैहै सही।।२८।।
इंद्री निग्रह जौ पथ करही। तिय इमली ते मन परिहरही।।२९।।
लोभ खटाई मोह मिठाई। दही क्रोध के निकट न जाई।।३०।।

सारे सुखों के मूल सत्य का त्याग करके मेरा दुष्ट मन झूठ अथवा झूठे संसार से ही अधिकाधिक चिपटता है। यह अभागा, अमृतमय सुख स्वरूप फल का त्याग करके विषमय शूल (काँटों) को ही पकड़ना चाहता है।।२५।। देखिये यह मेरा शरीर जितना-जितना जर्जर याने बूढ़ा हो रहा है, उतना-उतना ही लोभ रूपी रोग बढ़ता जा रहा है।।२६।। यही सब मेरी दुर्दशा है, इसलिए हे करुणामय वैद्यराज जी! आप सावधानी पूर्वक कुछ ऐसा यत्न कीजिये, जिससे मुझे कुछ तो शान्ति रूपी शीतलता प्राप्त हो।।२७।।

रोगी के रोग का निदान करके उससे वैद्यराज ने कहा—देखो तुम्हारा रोग साध्य है। औषध-उपचार का यत्न करने से रोग की निवृत्ति सम्भव है।।२८।। तुम इन्द्रियों का संयम रूपी पथ्य करो। स्त्री रूपी इमली से अपने मन को रोको अर्थात् स्त्री का उपभोग मत करो।२९।। लोभ रूपी खटाई, मोह रूपी मिठाई एवं क्रोध रूपी दही के तो समीप भी मत जाना।।३०।।

इतनी कहि जु अनुग्रह कीन्हौं। ताकौ कर आपुन गहि लीन्हौं।।३१।।
नारी देखत सीस डुलायौ। रह्यौ अपथ्य कियौ मन भायौ।।३२।।
रंग-मनोरथ करन विचार्‌यौ। हरि सो मीत न कबहुँ सँभार्‌यौ।।३३।।

दोहा

विषै जूप खेलत रह्यौ, कबहुँ न मानी हार।
पियौ जु मदिरा मोह की, सब सुधि दई विसार।।३४।।

चौपाई

मत्त भयौ अपु-वपु न सँभारत। छिन-छिन विषै धूरि सिर डारत।।३५।।
त्रिगुन मोह की लगी तोहिं बाता। तातें उपज्यौ है सनिपाता।।३६।।
तिनमें दोइ अधिक बढ़े तन में। तम-रज बसत निरंतर मन में।।३७।।

इतना संयम बताने के पश्चात् कृपालु वैद्यराज ने अनुग्रहपूर्वक रोगी का हाथ स्वयमेव पकड़ लिया।।३१।। नाड़ी-परीक्षण किया तो पश्चात्ताप मुद्रा में सिर हिलाते हुए वे कहने लगे, हाय हाय ! तुमने तो मन-माना अपथ्य किया है।।३२।। सम्पूर्ण जीवन एवं तन, मन, प्राण, विषयानन्द में निमग्न कर दिये। कभी करुणामय श्री हरि जैसे सच्चे मित्र एवं हितैषी को तनिक भी स्मरण नहीं किया।।३३।। जीवन-भर विषय-रस से ही द्यूत-क्रीड़ा (जुआ का खेल) करता रहा। कभी हार नहीं मानी। मोह-मदिरा का पान करके लोक-परलोक सबकी सुध-बुध खो बैठा।।३४।। तू इतना उन्मत्त हो गया कि तुझे अपने शरीर की भी परवाह नहीं रही। मदोन्मत्त हाथी की भाँति क्षण-क्षण विषय-पदार्थों की घृणित धूल अपने सिर पर डालता रहा।।३५।। तुझे त्रिगुण (सत, रज और तम) की हवा लग गयी है और अब तो तुझे सन्निपात हो गया है।।३६।। तम और रज-इन दो गुणों की तेरे मन में अतिशय वृद्धि है। शरीर पर भी इन्हीं दोनों का प्रभाव है।।३७।।

तिनकौ और जतन नहिं कोई। श्री सुकदेव कह्यौ है सोई।।३८।।
करि विस्वास वचन सुनि मेरौ। रोग रहै तौ गुन ही तेरौ।।३९।।

भवरोगी द्वारा कृतज्ञता ज्ञापन चौपाई

तब रोगी बोल्यौ सुनि भाई। तैं तो मेरी वेदन पाई।।४०।।
अब मैं सरन गही है तेरी। तोहिं लाज सब बात की मेरी।।४१।।
तुम अति गुनी दुनी सब जानै। करि उपाइ जोई मन मानै।।४२।।

संसार दुःख से छूटने की औषधि दोहा

पंडित सोच-विचार कै, करनि लग्यौ उपचार।
जैसे वेगहिं जाइ नसि, भव दुस्तर संसार।।४३।।

इस प्रकार तेरी इस रोग-वृद्धि की स्थिति में अन्य किसी उपाय अथवा औषध से काम नहीं चलेगा। कोई अन्य प्रकार के यत्न काम नहीं देंगे। केवल एक ही उपाय है तेरे स्वस्थ होने का, जो श्री शुकदेव मुनि ने (श्रीमद्भागवत में) बताया है।।३८।। भाई, तू विश्वास रख, मेरी आज्ञा का पालन कर, निश्चित ही तू निरोग हो जायगा और यदि रोग नहीं जाता, अवशेष रह जाता है तो तेरी असावधानी किंवा असंयम ही इसका कारण होगा।।३९।।

श्री वैद्यराज की सारी बातें सुन-समझकर रोगी कहने लगा—वैद्यराज जी, आपने तो मेरी समग्र व्याधि वेदना का पता लगा लिया।।४०।। आप सर्वज्ञ और सर्वविध समर्थ हैं। मैंने आपकी शरण ग्रहण की है, मेरी लज्जा रखना आपके हाथ है।।४१।। आप-विश्व विख्यात पुरुष हैं। अपने स्वधर्म-(गुण) के निष्णात हैं, अतएव अब आपके मन में जो आवे, सो करें। मुझे स्वीकार होगा।।४२।।

गुणज्ञ वैद्यराज ने रोगी के हित में गम्भीर चिन्तन पूर्वक वह उपचार प्रारम्भ किया, जिससे दुस्तर जन्म मरणमय संसार शीघ्रातिशीघ्र पार किया जा सके।।४३।।

जड़ वैराग वृक्ष की लावहु। सौंठ संतोषहि आनि मिलावहु।।४४।।
मिरचि तितीच्छन करुना चीता। निस्पृह पीपर मिलवहु मीता।।४५।।
कौंमलता सब सौंज गिलोई। मधुबानी सौं लेहु समोई।।४६।।
हरर आमरे सुचि अरु दाया। तातें निर्मल ह्वै है काया।।४७।।
असगँध आसन दृढ़ कै करौ। चिंतामनि चिंता परिहरौ।।४८।।
मुसलि सौंफ अजवाइन जीरा। ग्यान ध्यान जप जोग में धीरा।।४९।।
सांत मृगांग बिना सुख नाहीं। साँच लौंग मिलवहु ता माहीं।।५०।।
भगवत धर्म धातु सम लीजै। नाम सुधा रस की पुट दीजै।।५१।।

वैद्यराज ने कहा—भाई, प्रथमतः तुम वैराग्य वृक्ष की जड़ लाओ और उसमें संतोष रूपी सौंठ मिला दो।।४४।। साथ ही तितिक्षा रूपी मिर्चे, करुणा रूपी चीता की लकड़ी एवं निस्पृहता (इच्छाहीनता) रूपी पिप्पली भी उसमें मिला दो।।४५।। चित्त की कोमलता जैसी अन्य हार्दिक भाव रूपी गिलोय को मीठी वचनावली रूपी शहद से मिला दो।।४६।। पवित्रता एवम् दया रूपी हरड व आँवले का सेवन करो, जिससे तुम्हारे शरीर में निर्मलता आवेगी।।४७।। आसन की दृढ़ता ही अश्वगन्धा नामक जड़ी (औषध) है। श्री हरि चिन्तामणि स्वरूप हैं, अतएव उनका विश्वास करके चित्त की समस्त चिंताओं का परित्याग कर दो।।४८।। मूसली, सौंफ, अजवायन एवं जीरा औषधियों का तात्पर्य है—विवेक, श्री हरि का स्वरूप ध्यान, भगवन्नाम जप और प्रेम योग की निपुणता। चित्त की शान्ति ही मृगाङ्ग नामक महौषधि है। जिसके बिना चित्त कभी सुखी नहीं हो सकता। शान्ति का योग सत्य से है, अतएव मृगाङ्ग के साथ सत्य रूपी लवङ्ग का संयोग परम आवश्यक है।।४९-५०।। श्रीभगवान् की भक्ति का धर्म ही भागवत धर्म है। यह भागवत धर्म समस्त धर्मों का शिरोमणि है। औषधि के विचार से भागवत धर्म सर्वोपरि रसायन है। उसके साथ भगवान् के नाम रूपी अमृत रस का पुट दीजिए।।५१।।

ए औषधि सब आनि मिलावौ। ग्यान ओखली माँहि कुटावौ।।५२।।
हिय हाँड़ी में आनि चढ़ावौ। चेतन वह्नी करि औटावौ।।५३।।
निर्मत्सर चपनी ढँकि लैयै। श्रृद्धा करछी फेरत जैयै।।५४।।
हस्त-क्रिया जबहीं बनि आवै। जौ कबहूँ सत संगति पावै।।५५।।
पुनि लै प्रेम चषक में करै। भूमि गरीबी में लै धरै।।५६।।
प्रात कृपा बल जल सौं पीवै। रोग जाइ अरु जुग-जुग जीवै।।५७।।

उपसंहार

दोहा

नारदादि प्रहलाद ध्रुव, कीनौ यहै विचार।
या जुग में या रोग को, सिद्ध यहै उपचार।।५८।।

इस प्रकार उपरोक्त सभी औषधियों को मिलाकर ज्ञान रूपी ओखली में कूटकर हृदय रूपी पात्र में डाल दीजिए। चेतना की अग्नि की आँच देकर उसे औटाइए।।५२-५३।। पात्र को निर्मत्सरता के ढक्कन से ढाँकना चाहिए। बीच-बीच में श्रृद्धा रूपी करछुली से उपरोक्त क्वाथ को फेरते भी रहना चाहिए।।५४।। औषधि निर्माण की यह समस्त क्रिया तभी पूर्ण मानी जायेगी, याने विधिवत् सम्पन्न होगी, जब कभी सत्पुरुषों का सङ्ग लाभ होगा।।५५।। उपासक को चाहिए कि निर्मित औषधि को प्रेम लगन के पान-पात्र में पीने के लिए डाले। दैन्य की मानसिक स्थिति रूपी भूमि में इस पात्र की स्थापना करे।।५६।। प्रतिदिन प्रातः काल भगवत् कृपा रूपी जल मिलाकर इस औषधि का पान करे, तो संसार रूपी रोग से ग्रसित रोगी के समस्त रोगों का विनाश होकर उसे अखण्ड सुखी और शांत जीवन प्राप्त होगा।।५७।।

(तात्पर्य यह है कि संसार रोग से मुक्त होने के लिए वैराग्य की धारणा अनिवार्य है, तत्पश्चात् संतोष, तितीक्षा, करुणा, निस्पृहता, कोमलता, वाणी का माधुर्य, शरीर और मन की पवित्रता, आसन की दृढ़ता, दया और क्षमा, भगवद्विश्वास, नित्यानित्य विवेक, हरि के स्वरूप का ध्यान, हरि-नाम का

अवतरिहै केतिक तरे, याही औषधि खाइ।
ताते बिलम्ब न कीजियै, बेगहि करौ उपाइ।।५९।।
मन के समुझन कौं कह्यौ, अद्‌भुत वैद्यक ज्ञान।
जन मन के सब रोग ध्रुव, सुनतहि करैं पयान।।६०।।

अखण्ड जप, भक्ति योग में स्थिरता, शान्ति, सत्य, भागवत धर्माचरण, हरि नामानुराग, निर्मत्सरता और श्रृद्धा-इन सब गुणों के साथ सत्सङ्ग सेवन यही सब जीव के लिए संसार से मुक्त होने के हेतु हैं। यदि उपासक के हृदय में तीव्रतम लगन का भाव है और दैन्य का प्रकाश है तो वह अवश्यमेव कृपा का अधिकारी है। संसार रूपी रोग से मुक्त होने का यह सिद्ध उपचार है अर्थात् अचूक उपाय है।) देवर्षि नारद, सनकादिक ऋषि, महाभागवत दैत्यराज प्रह्लाद और भक्त ध्रुव आदि सन्त भक्तों ने दीर्घ चिन्तन पूर्वक इस युग में भव-रोग के विनाश का एक मात्र यही उपचार बताया है।।५८।। इस महान्तम भागवत धर्म का आश्रय ग्रहण करके न जाने कितने ही अधमाधम प्राणी इस घोर आवागमनमय संसार से सहज ही पार हो गये हैं, इसलिए कल्याणकामी बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविलम्ब इस भागवत धर्म का आश्रय ग्रहण करे।।५९।। अस्तु, वैद्यक-ज्ञान प्रकरण का उपसंहार करते हुए श्री हित ध्रुवदास जी महाराज कहते हैं कि मैंने इस वैद्यक ज्ञान नामक अद्भुत रूपक का इसलिए वर्णन किया है कि इसका श्रवण करते ही जन्म जन्मान्तर के समस्त मानसिक रोगों का विनाश हो जाता है।।६०।।

●

३

मन-शिक्षा

श्री गुरु-स्मरण — दोहा

रे मन (श्री) हित हरिवंश भजि, जौ चाहत विश्राम।
जिहिं रस बस व्रज सुंदरिनु, छाँड़ि दिये सुख-धाम।।१।।
निगम नीर मिलि इक भयौ, भजन-दूध सम सेत।
(श्री) हरिवंश हंस न्यारौ कियौ, प्रकट जगत के हेत।।२।।

पश्चात्ताप — दोहा

एक सोच मन में रह्यौ, अरु आवत जिय लाज।
अद्भुत मानुष देह धरि, कियौ न कछुवै काज।।३।।

हे मेरे मन ! यदि तू शाश्वत सुख चाहता है, तो श्री हित हरिवंश का भजन कर। श्री हित हरिवंश द्वारा प्रकटित इसी प्रेम-लक्षणा भक्ति से भावित होकर व्रज की गोप-वधुओं ने अपने सुखमय गृह-कुटुम्ब का त्याग कर दिया था।।१।। वेद का निर्गुण-निराकार-परक ज्ञान-जल एवं शुद्ध सगुण-साकार श्री हरि की लीलारसमयी प्रेम-लक्षणा भक्ति, रूपी दूध जब कालक्रम प्रभाव से मिलकर श्वेत मिश्रण मात्र रह गयी, तब जगत् के हित के लिए श्री हित हरिवंश रूपी हंस का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने नीर-क्षीर विवेक द्वारा आस्वादनीय शुद्ध रसमय भजन का प्राकट्य किया।।२।।

मेरे मन में अधिक पश्चात्ताप है और लज्जा का भी अनुभव होता है कि सर्वश्रेष्ठ मानव-देह प्राप्त करके भी मैंने अपना परम हित नहीं पहचाना।।३।।

मनोपदेश दोहा

रे मन चंचल तजि विषै, ढरौ भजन की ओर।
छाँड़ि कुमति अब सुमति गहि, भजि लै नवल किसोर।।४।।
अब लगि मन कीन्हौ सोई, जो जो कह्यौ तैं मोहि।
अब तू मेरौ कह्यौ करि, जुगल चरन छबि जोहि।।५।।
मन गज तजि कै विषै मग, चलहु भजन रस माहिं।
श्री राधावल्लभ लाल बिनु, तेरौ कोऊ नाहिं।।६।।
रे मन अरु सब छाँडि कै, जो अटकै इक ठौर।
वृंदावन घन कुंज में, जहाँ रसिक सिरमौर।।७।।
रे मन अलि सुनि छुवै जिन, विषय सुमन सठ मंद।
जुगल चरन अरविंद कौ, करहि पान मकरंद।।८।।

हे मेरे चञ्चल मन! तू विषयों का परित्याग करके भजन में संलग्न हो, दुर्बुद्धि को छोड़ सद्बुद्धि धारण कर और नवल किशोर के भजन में तत्पर हो जा ।।४।। हे मेरे मन! आज तक तो मैंने सर्वथा तेरी ही रुचि का पालन किया है किन्तु अब तू मेरी एक ही बात स्वीकार कर कि तू युगल किशोर नव दम्पति के चरणों का ध्यान-दर्शन करता रहेगा।।५।। हे मेरे मन मतङ्ग! अब तू विषय-भोगों का मार्ग छोड़ कर युगल किशोर के रसमय भजन-पथ का अनुसरण कर; क्योंकि उन श्री राधावल्लभ लाल के अतिरिक्त तेरा आत्मीय एवं हितैषी अन्य कोई नहीं है।।६।। हे मन! यदि तू सब ओर से सिमट कर कहीं अटकना चाहता है अथवा स्वयं को स्थिर करना चाहता है, तो वह रम्य स्थल है श्री वृन्दावन की सघन कुञ्ज, जहाँ रसिक शिरोमणि श्यामा-श्याम नित्य विहार परायण हैं।।७।। अरे मेरे मूर्ख एवं हठी भ्रमरवत् चञ्चल मन! तू विषय रूपी पुष्प का स्पर्श मत कर। श्री युगल किशोर के

मन पंछी अब परहि जिनि, जगत मोह के जाल।
तब तोकौं ह्वै है कठिन, बढ़िहै दुःख विसाल।।९।।
विषै चुगा जिनि चुगै मन, चुगत कछुक सुख होइ।
फिरि फाँसी ऐसी परै, तिहिं सम दुःख न कोइ।।१०।।
रे मन कबहूँ जाइ जिनि, भूलि विषै वन रंग।
मनमथ ठग मारत तहाँ, लिये बहुत ठग संग।।११।।

भजन के लिए प्रेरणा दोहा

जब लगि मन छाँड़त नहीं, सब बातनि कौ लोभ।
तब लगि हिय उपजति नहीं, जुगल प्रेम की गोभ।।१२।।
सब पापनि कौ छत्र यह, लोभ तें मनहिं घटाइ।
निस्प्रेही संतोष करि, रहै भजन चित लाइ।।१३।।

हे मन रूपी पक्षी ! तू संसार के मोह-जाल में क्यों फँसना चाहता है ? यह स्मरण रख कि बन्धन में पड़ जाने के पश्चात् तुझे क्लेश तो अपार होगा ही और उस जाल के बन्धन से मुक्त होना और भी कठिन हो जायेगा।।९।। रे मन ! तू विषय रूपी चुग्गा का आहार मत कर। इसको चुगते समय तो किञ्चित् सुखानुभूति होती है परन्तु अन्ततोगत्वा वह विषय-सेवन ऐसा दृढ़ फन्दा बन जाता है कि जिसके समान अन्य कोई दुःख नहीं है।।१०।। हे मेरे मन ! तू भूल कर भी विषयानन्द के बीहड़ वन में प्रवेश मत कर, स्मरण रख कि वहाँ नाना ठगों को साथ लिये काम-कामना रूपी वञ्चक तुझे मारने को उद्यत बैठा है।।११।।

जब तक मन लौकिक-पारलौकिक समस्त कामनाओं के लोभ का परित्याग नहीं कर देता, तब तक उसके हृदय में श्री श्यामा-श्याम का प्रेमाङ्कुर अङ्कुरित नहीं होता।।१२।। यह लोभ ही तो सर्व पापों का जनक है, जिसकी छाया में छोटे-बड़े समस्त पाप आश्रय पाते हैं, अतएव, निस्पृह एवं संतोषी

मन तो चंचल सबनि तें, कीजै कौन उपाइ।
साधन कौं हरि भजन है, कै सतसंग सहाइ।।१४।।
काम कामना वासना, मन तें करि सब दूरि।
राधावल्लभ लाल भजि, रसिकनि जीवन मूरि।।१५।।
रस बल छुटै न जौ विषय, सुख नहिं पावै कोइ।
तन छाँड़े मन गहि रहै, दूनौं दुख तहाँ होइ।।१६।।
रस बल छूटै जौ विषै, तबहिं लहै सुख मूल।
जैसैं आतप कौ तप्यौ, पावै सरिता कूल।।१७।।
विषै करत वय बीत गई, तृपित भयौ तउ नाहिं।
नैन अछत द्वै दीप करि, परत कूप तम माहिं।।१८।।

मन अत्यधिक चञ्चल है। इसकी चञ्चलता के निवारण का कोई अन्य उपाय नहीं है। इसको वशवर्ती करने के दो ही साधन हैं—या तो श्री हरि-भजन अथवा रसिक भक्तों का सङ्ग।।१४।। अतएव विषय भोगों की इच्छा एवं समस्त अन्तर्वासनाओं का चित्त से निवारण करके रसिकों के जीवन-धन श्रीराधावल्लभ लाल का भजन करना चाहिये।।१५।। यदि चित्त में विषयों की आसक्ति न्यून नहीं हुई है तो, स्थूलतः शरीर से विषय सेवन छोड़ देने पर भी व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर से तो उसने अपने विषय का त्याग किया है परन्तु मन से तो पकड़े हुए है। इस स्थिति में दुविधा में पड़ा वह व्यक्ति दूना दुःख पाता है।।१६।। किन्तु यदि भगवद्भजन सम्बन्धी रसास्वादन होने पर विषय वासनाओं की निवृत्ति होती है, तो उसे सुख का मूल उद्गम-केन्द्र प्राप्त हो जाता है। जैसे भीषण सूर्य ताप-तप्त मनुष्य को शीतल वारि-वाहिनी सरिता का तट प्राप्त हो गया हो।।१७।। मोहान्ध मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन विषयों को भोगते हुए समाप्त हो जाता है किन्तु उसे तृप्ति नहीं होती। वह नेत्र रूपी दो प्रज्ज्वलित दीपों को लिये हुए भी घोर अन्धकार-मय कूप में गिर रहा है।।१८।।

जद्यपि तन जीरन भयौ, छुटी न मन की रीति।
बिखरि परयौ सिमटतौ नहीं, इन्द्रिन लीन्हौं जीति।।१९।।
परनिंदा के किये ते, आवत नहिं कछु हाथ।
मूरख परवत पाप कौ, लै चल्यौ अपने साथ।।२०।।
भक्तनि-निंदा अति बुरी, भूलि करौ जिनि कोइ।
किये सुकृत सब जनम के, छिन में डारत धोइ।।२१।।
मत्सर क्रोध भर्‌यौ रहै, अरु सहाइ अभिमान।
बिनु पावक जरिबौ करै, महा-मूढ अग्यान।।२२।।

श्री हरि-भजन की रीति दोहा

अब सुनि भजन की रीति कछु, होइ महादृढ़ धीर।
कोऊ थाह न पावही, जहाँ नीर गंभीर।।२३।।

यद्यपि वृद्धावस्था के कारण शरीर अशक्त एवं दुर्बल हो जाता है, तो भी विषयी मन की कुटेव त्यागी नहीं जाती; क्योंकि उसका विषयी मन बिखर जाता है और वह इन्द्रियों से पराजित हो चुका होता है।।१९।। दूसरों की निन्दा करने से कभी कोई लाभ नहीं होता वरन् निंदा करने वाला मूर्ख व्यक्ति निंदा रूपी पाप का पर्वत सिर पर लाद कर परलोक तक ले जाता है अर्थात् परनिन्दा रूपी पापों का फल परलोक में भी उसे भोगना पड़ता है।।२०।। स्मरण रहे कि हरि-भक्त की निन्दा अक्षम्य अपराध है अतएव यह दुष्कर्म भूलकर भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस महत् अपराध से समस्त विगत जन्मों के पुण्य नष्ट हो जाते हैं।।२१।। अल्पज्ञ जीव ईर्ष्या द्वेष एवं क्रोध से परिपूरित तो रहता ही है, साथ ही इन सबका सहयोगी अभिमान उसे और मिल जाता है, फिर तो वह महामूर्ख अग्नि के बिना ही दिन-रात जलता रहता है।।२२।।

श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि हे मेरे मन! स्थिर एवं गम्भीर मननशील हो कर रस-भजन की परिपाटी का श्रवण कर, क्योंकि यह रसमय अनन्य-भजन अगाध जल-राशि के समान है, जिसकी थाह पाना सर्व सामान्य के लिये कठिन है।।२३।।

जाकौ जैसौ भाव है, मन में धरि विस्वास।
कर्म धर्म अरु लोक कुल, तोरै सब की आस।।२४।।
भक्त आहिं बहु भाँति के, तिनमें बहुतक भेद।
बिनु विवेक मिलिबौ तहाँ, मन पावै अति खेद।।२५।।
सब ठाँ मिलिबौ एक सो, यह ग्यानी की रीति।
भजनी सोइ विवेक सौं, करै समुझि कै प्रीति।।२६।।
खान पान तो कीजियै, रसिक मंडली माहिं।
जिनिकैं और उपासना, तहाँ उचित "ध्रुव" नाहिं।।२७।।
रसिक रँगे जे जुगल रँग, तिनकी जूँठनि खाइ।
जहाँ तहाँ के पावने, भजन तेज घटि जाइ।।२८।।

उपासक अपने मन के भावानुसार इष्ट के प्रति परिनिष्ठित होकर कर्म, धर्म, लोक एवं कुल की आशा, परम्परा तथा विश्वास से सर्वथा मुक्त हो जाय। उपास्य के प्रति निष्काम भाव से समर्पित हो जाय, तभी वह रसिक-भक्त कहलायेगा।।२४।। भगवान् के भक्त बहुत प्रकार के होते हैं और उन भक्तों में भी दास्य, सख्यादि भेदों के विचार से अनेक प्रकार हैं, अतएव भक्तों के इस तारतम्य भेद को जाने-समझे बिना उनका सङ्ग करने से रसिक भक्त को निराशा ही हाथ पड़ेगी।।२५।। सर्वत्र सम भाव से ईश्वर दर्शन करना ज्ञानी भक्त का लक्षण है, किन्तु रसमय भजन करने वाले भक्त को चाहिये कि वह विवेक पूर्वक समझ बूझ कर अपने भजन-सजातीय भक्त से ही प्रेम करें।।२६।। रसिक भक्त को चाहिये वह अपने सजातीय रसिक भक्तों की मण्डली में ही खान-पान सम्बन्धी व्यवहार करे और जिनके भगवद्उपासना के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की उपासना है, वहाँ यह व्यवहार उचित नहीं है।।२७।। जो रसिक भक्त श्री युगल किशोर श्यामा-श्याम के प्रेम रङ्ग में रँगे हुए हैं उनका ही उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। मनमुखी रीति

इष्ट मिलै अरु मन मिलै, मिलै भजन रस रीति।
मिलियै तहाँ निसंक ह्वै, कीजै तिनसौं प्रीति।।२९।।
जुगल प्रेम रस मगन जे, तेई अपनैं जानि।
सब बिधि अंतर खोलि कै, तिनिहीं सौं रुचि मानि।।३०।।
इहि रस परस्यौ नाहिं जिनि, तू जिनि परसै ताहि।
तासौं नातौ नाहिं कछु, यह रस रुचै न जाहि।।३१।।
संग सोई जाके मिले, भूलै गृह व्यौहार।
तिहिं छिन आवै हिये में, अद्भुत जुगल बिहार।।३२।।
जिनके देखै पुलक तन, रोमांचित ह्वै जाहि।
सुनत मधुर तिनके बचन, नैन भरे जल आहि।।३३।।

रसिक उपासक का उपास्य तत्त्व, उसका स्वभाव एवम् उसके भजन की रसरीति का जहाँ सामञ्जस्य हो, ऐसे रसिक भक्त से निःशङ्क भाव से मिलना चाहिये। उससे ही प्रेम रखना चाहिये।।२९।। नव दम्पति श्री श्यामा-श्याम के अनुराग रस से रञ्जित जिनके हृदय हैं, ऐसे रसिक ही अपने आत्मीय हैं, अतएव सब प्रकार के भेद-भावों को मिटा कर उनसे अपनत्व मानना चाहिये।।३०।। जिनका इस रस भजन से कोई सम्बन्ध नहीं है और जिनकी इस उपासना के प्रति रुचि भी नहीं है, वह रसिक भक्तों के स्पर्श योग्य नहीं है।।३१।। अब श्री ध्रुवदास जी यह बताना चाहते हैं कि रसिक भक्तों को किसका सङ्ग करना चाहिये। जिनका सङ्ग प्राप्त कर के जागतिक व्यवहार विस्मृत हो जाय तथा उपासक के हृदय में उसी क्षण अद्भुत युगल विहार की स्फूर्ति होने लगे, वास्तव में वही सङ्ग है।।३२।। जिन रसिक भक्तों के दर्शनमात्र से तन-मन-प्राण प्रफुल्लित हो जायँ, जिनकी मधुर वचनावली श्रवण करके नेत्र जल परित हो जायँ।।३३।।

जिनकौ सहज सुभाव परयौ, जुगल रंग की बात।
निसि दिन बीतै भजन में, और न कछू सुहात।।३४।।
ऐसै भक्तनि के मिले, हिय अरु नैंन सिरात।
मन दै नीके समुझि कै, सुनियै तिन की बात।।३५।।
जिनके जुगल बिहार की, बात चलै दिन रैंन।
तिनहीं कौ सँग कीजियै, छाँडि और सब गैन।।३६।।
बहुत मिलै सो संग नहिं, न्यारी न्यारी भाँति।
जुगल प्रेम रस मगन जे, तेई अपनी पाँति।।३७।।
बहुत भाँति के मत जहाँ, तिनहिं न समुझै संग।
नव किसोरता माधुरी, बिना न अपुनौ रंग।।३८।।

युगल श्री श्यामा-श्याम के प्रेम-विलास की वार्त्ता ही जिनका सहज स्वभाव बन गया हो एवं जिनके जीवन का प्रतिपल भजन में ही व्यतीत होता हो तथा श्री श्यामा-श्याम की वार्त्ता के अतिरिक्त जिन्हें कुछ सुहाता नहीं हो।।३४।। ऐसे भक्तों के दर्शन से हृदय एवं नेत्र शीतल हो जाते हैं। अतः तत्पर-भाव से सावधानी पूर्वक उनके श्री मुख की वार्त्ता का श्रवण करना चाहिये।।३५।। जो अहर्निश युगल विहार की वार्त्ता में ही रमे रहते हैं, रसिक उपासक को चाहिये कि अन्य सब सङ्गों को त्याग कर उन्हीं का सङ्ग करे।।३६।। भिन्न-भिन्न मतवादी उपासकों का सङ्ग रसिक उपासकों के लिए हितकर नहीं है। उन्हें तो अपने सजातीय युगल प्रेम रस मग्न रसिक भक्तों का ही सङ्ग करना चाहिये।।३७।। जहाँ विविध प्रकार के मतावलम्बियों का समुदाय है, उस सङ्ग को अपना न समझे। ध्यान रखे कि युगल के नव कैशोर-माधुर्य के बिना उसका अपना आस्वादनीय रस अन्य कुछ नहीं है।।३८।।

सोरठा

देखौ प्रेम बिलास, वृंदावन घन कुंज में।
जिनकै यहै उपास, ऐसौ संग जु कीजियै।।३९।।

दोहा

नव किसोर सुकुँवार तन, रँगे प्रेम के रंग।
जिनकै हिय में बसत ध्रुव, तिन सों करि ध्रुव संग।।४०।।
कठिन है रसिक अनन्यता, रहत न मन इक ठौर।
राई के सम चलत ही, होत और की और।।४१।।
भजन न होई संग बिनु, बिना भजन नहिं प्रेम।
छिनहू भजन न छाँडियै, धरिये ध्रुव यह नेम।।४२।।
महा मधुर रस प्रेम कौ, जिनकै लाग्यौ रंग।
ऐसे रसिक अनन्य जे, कीजै तिनकौ संग।।४३।।

वृन्दावन की सघन कुञ्जों में सम्पन्न होने वाला श्री श्यामा-श्याम का प्रेम-विलास ही जिनका ध्येय ध्यान है, उन्हीं का सङ्ग करना चाहिये।। ३९।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिनके हृदय में नित्य निरन्तर प्रेम रङ्ग रञ्जित नवल किशोर सुकुमार वपु श्री श्यामा-श्याम निवास करते हैं, उपासक को उन्हीं का सङ्ग करना चाहिये।।४०।। रसिक अनन्यों का उपासना-मार्ग अत्यन्त कठिन है; क्योंकि इसमें मन की एकाग्रता अनिवार्य है। मन की चंचलता से राई जैसा तुच्छ विचलन भी कुछ से कुछ कर देता है; अतएव इस भजन में मन की स्थिरता पर ध्यान रखना चाहिये।।४१।। रसिक भक्तों के सङ्ग के बिना भजन नहीं बनता और भजन के बिना अनुराग उत्पन्न नहीं होता, अतः एक पल के लिए भी भजन नहीं छोड़ना चाहिये। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि भजन के लिए नियम की दृढ़ता अनिवार्य है।।४२।। महा मधुर प्रेम रस का जिन्हें स्वाद लग गया है, ऐसे अनन्य रसिकों का ही सङ्ग करना चाहिये।।४३।।

और भाव जिनकै नहीं, युगल विहार उपास।
सुनि ध्रुव मन वच कर्म कै, ह्वै रहु तिनकौ दास।।४४।।
धर्मी ऐसौ चाहिये, जैसैं सूर रन माहिं।
खंड खंड ह्वै जाइ तन, फिरि कै चितवै नाहिं।।४५।।
कबहूँ तौ थोरौ भजन, कबहूँ होत बिसाल।
मन कौ धीरज छुटै नहिं, गहै न दूजी चाल।।४६।।
कहा अचार अपरस कहा, कहा संजम व्रत नेम।
कहा भजन विधि सौं विंध्यौ, जो नहिं परस्यौ प्रेम।।४७।।
भजन न करै निमित्त लै, परै सहज रस ढार।
जैसे रोकी रुकत नहिं, प्रबल नदी की धार।।४८।।

युगल विहार की रसमयी उपासना के अतिरिक्त अन्य भाव जिनके हृदय में स्थान नहीं पाता, मनसा-वाचा-कर्मणा उनका दास हो रहना ही श्री ध्रुवदास का अभीष्ट है।।४४।। जैसे युद्ध क्षेत्र में शूरवीर शरीर के खण्ड विखण्ड होने पर भी रणभूमि को पीठ नहीं देता, तद्वत् ही उपासक धर्मी को अपने लक्ष्य के प्रति अडिग होना चाहिये।।४५।। परिस्थितिवशात् कभी भजन कम हो, कभी अधिक हो जाय तो भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिये एवं भजन की विधा में परिवर्तन करने की भी आवश्यकता नहीं है।।४६।। यदि उपासक के चित्त को प्रेम ने स्पर्श तक नहीं किया है तो नाना आचार, विचार, अपरस (अस्पर्श), संयम, व्रत, नियम और भजन के विधि-विधानों में बिंधे रहने से भी क्या लाभ होगा, अर्थात् प्रेमानुभव के अभाव में सारे कर्म-विधान विडम्बना मात्र हैं।।४७।। प्रेमी रसिक उपासक को नैमित्तिक भजन नहीं करना चाहिये। प्रेम की सहज रसधारा में प्रवाहित रहना चाहिये। जैसे वेगवती सरिता का अखण्ड प्रवाह नाना प्रयत्नों के पश्चात् भी अवरुद्ध नहीं किया जा सकता।।४८।।

प्रेमी भक्त उपासक का स्वरूप दोहा

भक्त न ऐसौ चाहिये, मन धीरज छुटि जाइ।
सुख पाये फूलै अधिक, दुख पाये विललाइ।।४९।।
रहै धीर रस भजन में, व्यापै नहिं कछु और।
होत पवन झकझोर बहु, गिरि नहिं छाँड़ै ठौर।।५०।।
सूर सोइ रन भूमि कौं, तजै न जब लगि प्रान।
धर्मी ऐसौ चाहिये, उर नहिं आनै आन।।५१।।
महा मधुर रस प्रेम बिनु, परसत नहिं कछु और।
ऐसै रसिक अनन्य जे, तेई मम सिरमौर।।५२।।

सत्संग और प्रेम की महिमा दोहा

कहा न होइ सतसंग तें, देखौ तिल अरु तेल।
मोल तोल सब फिरि गयौ, पायौ नाम फुलेल।।५३।।

भक्त ऐसा होना चाहिये, जो धैर्य का त्याग न करे। सुख की प्राप्ति में अधिक प्रसन्न न हो एवं दुःख मिलने पर विकल न हो।।४९।। अन्यान्य प्रभावों से प्रभावित न होकर अपने रसमय भजन में जो धैर्य-पूर्वक तत्पर रहे, वही भक्त है। यथा, वायु के भयंकर झंझावात में भी पर्वत अपना स्थान नहीं छोड़ता।।५०।। शूरवीर वास्तव में वही है, जो प्राणान्त पर्यन्त रणभूमि का त्याग नहीं करता। इसी प्रकार धर्मी को भी अपने लक्ष्य-रसमय भजन के प्रति दृढ़ निष्ठावान् होना चाहिये।।५१।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे वही शिरोमणि रसिक अनन्य हैं, जो महामधुर प्रेम-रस युगल-विलास के अतिरिक्त अन्य किसी रस का स्पर्श तक नहीं करते।।५२।।

सत्संग के प्रभाव से क्या सम्भव नहीं है ? तिल और तेल का ही उदाहरण देखें दोनों का संयोग होने पर उनके मोल-तोल दोनों ही परिवर्तित हो कर उनकी संज्ञा फुलेल हो गई अर्थात् उनके गुण, धर्म एवं प्रभाव बदल गये।।५३।।

और धरम साधन भजन, फीके बिनु अनुराग।
जैसै बागौ बनत नहिं, जौ न होइ सिर पाग।।५४।।
प्रेम बिना जो कछु करै, सो नहिं लागै नीक।
विविध भाँति बिंजन करौ, लौन बिना सब फीक।।५५।।

युगल किशोर का कृपामय स्वभाव दोहा

नवल किसोरी कुँवरि की, सहजहि ऐसी बानि।
ताकौ संग नहिं छाँड़ही, नैकु सरन गहै आनि।।५६।।
प्रीतम हू कैं प्रन इहै, प्रीति के बस ह्वै जाहिं।
कोटि धर्म किन करौ कोउ, तिन तन चितवत नाहिं।।५७।।
एक प्रान मन दोइ तन, अँखियनि की सी प्रीति।
जद्यपि न्यारी रहत हैं, देखति एकहि रीति।।५८।।

अन्य प्रकार के धर्माचरण साधन और भजन भी, हरि चरणानुराग के बिना निःस्वाद हैं, यथा नख-शिख सुन्दर वेषभूषा भी पाग के अभाव में अपूर्ण एवम् अशोभन लगती है।।५४।। प्रेम के अभाव में समस्त चेष्टाएँ, अशोभनीय एवम् औपचारिक प्रतीत होती हैं, जैसे कि विविध प्रकार के उत्तमोत्तम व्यञ्जन-पक्वान्न लवण के बिना स्वादहीन एवं व्यर्थ लगते हैं।।५५।।

नवल किशोरी लाड़िली श्री राधा का सहज स्वभावगत विरद है कि वह किञ्चित् शरणापन्न जीव का कभी भी परित्याग नहीं करतीं।।५६।। प्रियतम श्री लाल जी की भी यह प्रतिज्ञा है कि वे प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं; किन्तु कोटि-कोटि धर्माचरण करनेवालों की ओर दृष्टि उठा कर भी नहीं देखते।।५७।। श्री वृन्दावन में नित्य-विहार परायण श्री लाड़िली-लाल युगल दो तन हो कर भी एक मन एक प्राण हैं, युग नयनों की प्रीति की भाँति यद्यपि दोनों नेत्रों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है तो भी दृष्टि एक ही है।।५८।।

बाहाँ जोरी चलत दोउ, रसिक लाड़िली लाल।
देखौ ऐसी भाँति छबि, चितवनि नैन विसाल।।५९।।
औगुन करै समुद्र सम, गनत न अपनौं जान।
राई के सम भजन कौं, मानत मेरु समान।।६०।।

उद्‌बोधन एवं पश्चात्ताप दोहा

ऐसै प्रभु त्रैलोक मनि, जिन न भजे चितलाइ।
पसु पंछी ताकौं सबै, मानत अपनौं राइ।।६१।।
तिय सुत नाती नातिनी, तिनहीं तन चित दीय।
(श्री) राधावल्लभलाल जू, नेकु न आने हीय।।६२।।
परयौ विषै के स्वाद में, ऐसौ रह्यौ लुभाइ।
तिहिं रस में वै बीति गई, गह्यौ काल नें आइ।।६३।।

विशाल नयन वाले रसिक युगल ललित लाड़िली लाल परस्पर गलबहियाँ दिये हुए वृन्दावन की कुञ्ज-वीथियों में विचरण कर रहे हैं, ऐसा ध्यान करना चाहिये।।५९।। समुद्रवत् अथाह एवम् अपार दोष युक्त अपने जन का किञ्चित् भी अपराध न देखना और उसके राई के समान अत्यल्प भजन को भी विशाल सुमेरु पर्वत की भाँति मानना रसिक युगल श्री श्यामा-श्याम का सहज मृदुल स्वभाव है।।६०।।

ऐसे उदार त्रिलोकीनाथ श्री हरि का जिन्होंने मनोयोग पूर्वक स्मरण भजन नहीं किया, उनकी स्थिति कोटि पशु-पक्षियों के राजा जैसी ही है।।६१।। पत्नी, पुत्र, नाती-नातिनों आदि में ही जिनका चित्त आसक्त रहता है, उनके हृदय में श्री राधावल्लभ लालजी तनिक भी नहीं आ पाते।।६२।। अज्ञानीजन विषय-रस के स्वाद में ऐसे लुब्ध रहे आते हैं कि उनकी सम्पूर्ण आयु विषय सेवन में ही व्यतीत हो जाती है और वे काल का ग्रास बन जाते हैं।।६३।।

मनुष्यों का अवश्य कर्त्तव्य धर्म दोहा

अद्भुत जुगल बिहार कौ, जिनकै रहै विचार।
सुनि ध्रुव तिनकी चरन रज, लै लै सिर पर धार।।६४।।
मन सिच्छा के कहे 'ध्रुव', दोहा साठ रु चारि।
जुगल चंद अरविंद पद, पलु पलु प्रतिहिं सँभारि।।६५।।
हरि जस सुनत न पुलक तन, ढर्‌यौ न नैननिं नीर।
पाठ भजन सब यौं भयौ, जैसे पढ़त है कीर।।६६।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो रसिक श्री श्यामा-श्याम के अलौकिक युगल विहार के चिन्तन-मनन में लीन रहते हैं, उनकी पावन चरणरेणु को बारम्बार मस्तक पर धारण करते रहना चाहिये।।६४।। इस प्रकार इस प्रकरण में श्री ध्रुवदास जी ने "मन-शिक्षा" नामक चौंसठ दोहे कहे हैं, जिनका तात्पर्य है कि युगल चन्द श्री प्रिया-प्रियतम के चरण कमलों को ही प्रतिपल अपनी परम निधि की भाँति सम्भालते रहना चाहिये।।६५।। श्री हरि का सरस यश सुनते हुए यदि शरीर पुलकित नहीं हुआ तथा नेत्र अश्रुपूरित नहीं हुए तो समस्त भजन-पाठ शुष्क तोता-रटन्त जैसा ही मानना चाहिये।।६६।।

४

श्री वृन्दावन शत

दोहा

प्रथम नाम हरिवंश हित, रटि रसना दिन रैंन।
प्रीति रीति तब पाइयै, अरु वृंदावन ऐंन।।१।।
चरन सरन हरिवंश की, जब लगि आयौ नाहिं।
नव निकुंज निजु माधुरी, क्यौं परसै मन माहिं।।२।।
वृंदावन सत करन कौं, कीन्हौं मन उतसाह।
नवल राधिका कृपा बिनु, कैसैं होत निबाह।।३।।
यह आसा धरि चित्त में, कहत जथा-मति मोर।
वृंदावन सुख रंग कौ, काहु न पायौ ओर।।४।।

हे मेरी जिह्वे ! सर्वप्रथम तू दिन-रात रस स्वरूप श्री हित हरिवंश नाम का गुण-गान कर, जिसके फलस्वरूप तुझे युगल प्रीति-रीति एवं वृन्दावन धाम का वास प्राप्त होगा।।१।। श्री हित ध्रुवदास कहते हैं कि जब तक उपासक श्री हित हरिवंश के चरणों की शरण में नहीं आएगा तब तक श्री वृन्दावन के नित्य निकुञ्ज की सहज माधुरी उसके मन को स्पर्श नहीं करेगी।।२।। श्री हित ध्रुवदास कहते हैं कि मेरे मन ने "श्री वृन्दावन शत" ग्रन्थ की रचना करने का उत्साह तो किया है किन्तु नवल किशोरी श्री राधिका की कृपा के बिना इस उत्साह का निर्वाह कैसे सम्भव होगा ?।।३।। अतएव मैं अपने चित्त में उनकी कृपा की आशा धारण करके, वृन्दावन का यथामति वर्णन करने का प्रयास करूँगा; क्योंकि वृन्दावन का माधुर्य विलास अनन्त है, जिसका आज तक किसी ने अन्त नहीं पाया है।।४।।

दुर्लभ दुर्घट सबनि तैं, वृंदावन निजु भौन।
नवल राधिका कृपा बिनु, कहि धौं पावै कौन।।५।।
सबै अंग गुनहीन हौं, ताकौ जतन न कोइ।
एक किसोरी कृपा तैं, जो कछु होइ सु होइ।।६।।
सोउ कृपा अति सुगम नहिं, ताकौ कौन उपाव।
चरन सरन हरिवंश की, सहजहिं बन्यौ बनाव।।७।।
हरिवंश चरन उर धरनि धरि, मन वच कै विस्वास।
कुँवरि कृपा ह्वै है तबहिं, अरु वृंदावन वास।।८।।
प्रिया चरन बल जानि कै, बाढ़्यौ हियैं हुलास।
तेई उर में आनि हैं, वृंदाविपिन प्रकास।।९।।

नवल किशोरी श्री राधिका स्वामिनी का निज धाम वृन्दावन अन्य सब के लिए दुर्लभ एवं दुर्घट है, अतः नवल किशोरी श्री राधिका की कृपा के बिना इसकी प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।।५।। और इधर मैं सर्वप्रकार से गुण-कला रहित हूँ एवं असमर्थ हूँ, तब तो केवल कृपालु किशोरी-कृपा से ही जो कुछ होना है सो होगा।।६।। किन्तु वह कृपा भी तो सहज सुगम नहीं है और उस कृपा को भी प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है, तब श्री हित हरिवंश की चरण-शरण ही मेरे लिए सर्वोपरि सौभाग्य सुयोग है।।७।। अतएव मनसा-वाचा दृढ़ विश्वास पूर्वक अपनी हृदय भूमि में श्री हित हरिवंश के चरणों को धारण करने से किशोरी श्री राधिका की निश्चित ही कृपा होगी एवं श्री वृन्दावन का वास मिलेगा।।८।। श्री प्रिया जी के चरणों के बल का विश्वास प्राप्त करके मेरे मन में उत्साह हो रहा है कि निश्चित ही वे मेरे हृदय में श्री वृन्दावन का स्वरूप प्रकाशित करेंगी।।९।।

कुँवरि किसोरी लाड़िली, करुनानिधि सुकुँवारि।
बरनौं वृंदाविपिन कौं, तिनके चरन सँभारि।।१०।।
हेममयी अवनी सहज, रतन खचित बहु रंग।
चित्रित चित्र विचित्र गति, छबि की उठति तरंग।।११।।
वृंदावन झलकनि झमक, फूले नैंन निहारि।
रवि ससि दुतिधर जहाँ लगि, ते सब डारे वारि।।१२।।
वृंदावन दुति पत्र की, उपमा कौं कछु नाहिं।
कोटि कोटि बैकुंठ हू, तिहिं सम कहे न जाहिं।।१३।।
लता लता सब कलपतरु, पारिजात सब फूल।
सहज एक रस रहत हैं, झलकत जमुना कूल।।१४।।
कुंज कुंज अति प्रेम सौं, कोटि-कोटि रति मैन।
दिनहिं सँवारत रहत हैं, श्री वृंदावन ऐंन।।१५।।

अतः अब मैं करुणानिधि सुकुँवारी कुँवरि किशोरी लाड़िली श्री राधा के चरणारविन्दों का स्मरण करते हुए श्री वृन्दावन धाम का वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ।।१०।। श्री वृन्दावन की भूमि स्वरूपतः स्वर्णमयी एवं रङ्ग विरङ्गे रत्नों से खचित है, जो आश्चर्यमय एवँ विलक्षण निसर्ग से पूरित है और जहाँ छबि-सौन्दर्य की तरङ्गें उठती रहती हैं।।११।। वृन्दावन की इस अलौकिक चमक-दमक को उल्लासपूर्ण नेत्रों से देखने पर अनुभव होगा कि सूर्य-चन्द्रमादि जितने भी ज्योतिर्मय लोक हैं, उन सब की द्युति वृन्दावन पर न्यौछावर है।।१२।। वृन्दावन के वृक्षों की पत्र-द्युति की उपमा के लिए समस्त विश्व में कहीं कुछ नहीं है, और तो और कोटि-कोटि वैकुण्ठ भी जिसके समतुल्य नहीं कहे जा सकते।।१३।। यहाँ की प्रत्येक लता कल्पवृक्ष है, प्रत्येक पुष्प पारिजात है, जो नित्य निरन्तर सहज रूप से यमुना-तट पर झलमलाते रहते हैं।।१४।। कोटि-कोटि रति एवं कामदेव अत्यन्त प्रेमपूर्वक श्री वृन्दावन धाम की कुञ्जों को सदैव सजाते-सँवारते रहते हैं।।१५।।

विपिन राज राजत दिनहिं, बरसत आनँद पुंज।
लुब्ध सुगंध पराग रस, मधुप करत मधु गुंज।।१६।।
अरुन नील सित कमल कुल, रहे फूलि बहुरंग।
वृंदावन पहिरैं मनौं, बहुविधि बसन सुरंग।।१७।।
हित सौं त्रिविध समीर बहै, जैसी रुचि जिहिं काल।
मधुर मधुर कल कोकिला, कूजत मोर मराल।।१८।।
मंडित जमुना वारि यौं, राजति परम रसाल।
अति सुदेस सोभित मनौं, नील मनिनु की माल।।१९।।
विपिन धाम आनंद कौ, चतुरइ चित्रित ताहि।
मदन केलि संपति सदा, तिहि करि पूरन आहि।।२०।।

समस्त वनों में श्रेष्ठ श्री वृन्दावन अहर्निश अपनी स्वरूप शोभा में पूर्ण है। वहाँ अनवरत आनन्द समूह की वर्षा होती रहती है, जहाँ सौरभ एवं मकरन्द के लोभी भ्रमरगण मधुर-मधुर गुञ्जार करते रहते हैं।।१६।। वृन्दावन में लाल, नीले एवं श्वेत वर्ण के कमल समूह और विविध रंगों के अनेक पुष्प विकसित हैं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो श्री वृन्दावन नाना प्रकार के रङ्ग-विरङ्गे वस्त्र धारण किये हुए है।।१७।। जिस काल में जैसी श्री युगल की रुचि होती है, वृन्दावन धाम का त्रिविध पवन यथासमय श्री युगल की रुचि के अनुसार प्रीतिपूर्वक प्रवाहित होता रहता है। इसी प्रकार सुन्दर कोकिला, मयूर एवं मराल गण मधुर-मधुर स्वर से कूजते रहते हैं।।१८।। जहाँ रसमयी नील-वारि मण्डित यमुना ऐसी शोभित हैं, जैसे उन्होंने नील-मणियों की माला धारण कर रखी हो।।१९।। श्री वृन्दावन धाम आनन्द धाम है, जिसे मूर्तिमान् चातुर्य ने स्वयं शृङ्गारित किया है और जो उज्ज्वल शृङ्गार-केलि-सम्पत्ति से सदा परिपूरित है।।२०।।

देवी वृंदा-विपिन की, वृंदा सखी सरूप।
जिहिं विधि रुचि है दुहुँनि की, तिहिं विधि करति अनूप।।२१।।
छिन छिन बन की छबि नई, नवल जुगल के हेत।
समुझि बात सब जीय की, सखि वृंदा सुख देत।।२२।।
गावत वृंदा-विपिन गुन, नवल लाड़िली-लाल।
सुखद लता फल फूल द्रुम, अद्भुत परम रसाल।।२३।।
उपमा वृंदा विपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
अति अभूत अद्भुत सरस, श्री मुख बरनत ताहि।।२४।।
आदि अंत जाकौ नहीं, नित्त सुखद बन आहि।
माया त्रिगुन प्रपंच की, पवन न परसत ताहि।।२५।।

वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी वृन्दा सखी मूर्तिमान् वृन्दावन-स्वरूप हैं। श्री युगल के मन में जब जिस प्रकार की रुचि उत्पन्न होती है, तब वह वृन्दावन के स्वरूप की वैसी ही रचना करती रहती हैं।।२१।। अतएव नवल युगल की प्रीति के लिए वह श्री वन की छबि को प्रतिक्षण नये-नये रूप में सजाती रहती हैं। इस प्रकार श्री युगल के हृदय के मर्म को जानने वाली वृन्दा सखी उन्हें सुखी करती रहती हैं।।२२।। फल-फूलों से आच्छादित सुखद लता द्रुममय अद्भुत रसयुक्त वृन्दावन का गुणगान नवल लाड़िली-लाल भी करते रहते हैं।।२३।। ऐसे अति अद्भुत एवं सरस वृन्दावन की उपमा किससे दी जाय, जिसका रस वैभव अपूर्व एवं अद्भुत है और स्वयं श्री कृष्ण भी अपने श्रीमुख से जिसका यशोगान करते हैं?।।२४।। वृन्दावन का न आदि है, न अन्त है अर्थात् जो अनादि-अनन्त है और नित्य सुखद है, जिसको त्रिगुणात्मिक माया प्रपञ्च का पवन भी स्पर्श नहीं कर सकता है।।२५।।

वृंदा विपिन सुहावनौं, रहत एक रस नित्त।
प्रेम सुरंग रँगे तहाँ, एक प्रान द्वै मित्त।।२६।।
अति सरूप सुकुँवार तन, नव किसोर सुखरासि।
हरत प्रान सब सखिनि के, करत मंद मृदु हासि।।२७।।
न्यारौ है सब लोक तें, वृंदावन निज गेह।
खेलत लाड़िली लाल जहाँ, भींजे सरस सनेह।।२८।।
गौर स्याम तन मन रँगे, प्रेम स्वाद रस सार।
निकसत नहिं तिहिं ऐंन तें, अटके सरस विहार।।२९।।
बन है बाग सुहाग कौ, राख्यौ रस में पागि।
रूप रंग के फूल दोउ, प्रीति लता रहि लागि।।३०।।
मदन सुधा के रस भरे, फूलि रहे दिन रैंन।
चहुँदिसि भ्रमत न तजत छिन, भृंग सखिनि के नैंन। ।३१।।

श्री वृन्दावन नित्य निरन्तर एक सा शोभावान् है, जहाँ राग-रञ्जित एक-प्राण युगल मित्र नित्य क्रीड़ा परायण हैं।।२६।। नित्य वृन्दावन में अति सुन्दर सुकुमार तनुधारी सुखराशि नव किशोर युगल अपनी मन्द मृदुल मुस्कान से सब सखियों के मन एवं प्राणों को मोहित करते रहते हैं।।२७।। लोक-विलक्षण श्री वृन्दावन, श्री लाड़िली-लाल का निज धाम है, जहाँ वे सरस प्रेम में भीगे हुए सदा खेलते रहते हैं।।२८।। रससार प्रेम के आस्वादन में तन-मन रँगे और सरस विहार में ही अटके गौर-श्याम युगल श्री वृन्दावन धाम से कभी बाहर निकलते ही नहीं हैं।।२९।। इसीलिए तो यह वृन्दावन सुहाग का बाग है, जिसने युगल को प्रेम रस में पाग रक्खा है। जहाँ रूप एवं रङ्ग के मूर्त्त रूप युगल कुसुम वृन्दावन रूपी प्रीति-लता में सदा खिले रहते हैं।।३०।। युगल के प्रेम सुधा-रस से पूरित सखियों के प्रफुल्ल नैन-भृङ्ग निरन्तर श्री युगल छबि-रस का पान करते रहते हैं।।३१।।

कानन में रहे झलकि कै, आनन विवि विधु काँति।
सहज चकोरी सखिनि की, अखियाँ निरखि सिराँति।।३२।।
ऐसै रस में दिन मगन, नहिं जानत निसि भोर।
वृंदावन में प्रेम की, नदी बहै चहुँ ओर।।३३।।
महिमा वृंदाविपिन की, कैसैं कै कहि जाइ।
ऐसै रसिक किसोर दोउ, जामें रहे लुभाइ।।३४।।
विपिन अलौकिक लोक में, अति अभूत रसकंद।
नव किसोर इक वैस द्रुम, फूले रहत सुछंद।।३५।।
पत्र फूल फल लता प्रति, रहत रसिक पिय चाहि।
नवल कुँवरि दृग छटा जल, तिहि करि सींचे आहि।।३६।।
कुँवरि चरन अंकित धरनि, देखत जिहि-जिहि ठौर।
प्रिया चरन रज जानि कैं, लुठत रसिक सिरमौर।।३७।।

श्री वृन्दावन में युगल किशोर की मुख-चन्द्र-कान्ति सदैव झलकती रहती है, जिसे निरख कर चकोरी सखियों के नेत्र शीतल होते रहते हैं।।३२।। निरन्तर प्रेमरस में मग्न रहने वाला वृन्दावन का रसिक परिकर दिन एवं रात्रि के काल-बोध से शून्य बना रहता है, कारण कि वृन्दावन में प्रेम-सरिता चारों दिशाओं में सतत् प्रवाहित रहती है।।३३।। अनुपम रसमय युगल किशोर जिस वृन्दावन में सदा लुब्ध हैं, उस वृन्दावन की महिमा कैसे वर्णन की जा सकती है ?।।३४।। वृन्दावन अलौकिक है, अति अपूर्व है एवं रस का मूल है, तो भी संसार में प्रकट है। इसमें सम वयस् नव युगल किशोर, युगल पुष्प की भाँति स्वच्छन्द रूप से सदा विकसित हैं।।३५।। वृन्दावन के पत्र, पुष्प और लताओं को रसिक प्रियतम निर्निमेष भाव से निहारते ही रह जाते हैं, क्योंकि ये सब नवल किशोरी के कृपाकटाक्ष जल से सिञ्चित हैं।।३६।। श्री स्वामिनी के चरण-चिह्नों को प्रियतम जहाँ-जहाँ पृथ्वी पर अङ्कित देखते हैं, वहाँ-वहाँ वे रसिक सिरमौर प्राणप्रिया की पदधूलि जान कर उन पर विलुण्ठित होने लगते हैं।।३७।।

वृंदावन प्यारौ अधिक, यातें प्रेम अपार।
जामें खेलति लाड़िली, सर्वसु प्रान अधार।।३८।।
सबै सखी सब सौंज लै, रँगी जुगल ध्रुव रंग।
समै समै की जानि रुचि, लियै रहति हैं संग।।३९।।
वृंदावन वैभव जितौ, तितौ कह्यौ नहिं जात।
देखत संपति विपिन की, कमला हू ललचात।।४०।।
वृंदावन की लता सम, कोटि कलप तरु नाहिं।
रज की तुल बैकुंठ नहिं, और लोक किहिं माहिं।।४१।।
श्रीपति श्री मुख कमल कह्यौ, नारद सौं समुझाइ।
वृंदावन रस सबनि तें, राख्यौ दूर दुराइ।।४२।।
अंसकला अवतार जे, ते सेवत हैं ताहि।
ऐसै वृंदाविपिन कौं, मन वच कै अवगाहि।।४३।।

प्रियतम को वृन्दावन अत्यन्त प्रिय है। उनके इस अपार प्रेम का कारण है कि उनकी सर्वस्व प्राणाधार श्री लाड़िली जू इस वृन्दावन में नित्य क्रीड़ा करती रहती हैं।।३८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल प्रीति में रँगी हुई सखियाँ समय-समय की रुचि के अनुसार सब सेवा-सामग्री लिये निरन्तर युगल की सेवा में साथ बनी रहती हैं।।३९।। श्री वृन्दावन का जितना कुछ वैभव है, वह सम्पूर्णतया वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता तथा श्री वृन्दावन की अतुल प्रेम सम्पदा को देख कर साक्षात् लक्ष्मी भी ललचाती है।।४०।। कोटि-कोटि कल्पवृक्ष भी श्री वृन्दावन की लता की समता नहीं कर सकते एवं श्री वृन्दावन के रज-कण के तुल्य वैकुण्ठ भी नहीं है, तब अन्य लोकों की तो चर्चा ही क्या है ?।।४१।। लक्ष्मीपति भगवान् नारायण ने अपने श्री मुख-कमल से नारद के प्रति कहा है कि मैंने "श्री वृन्दावन-रस" को सभी से छिपा कर गोपनीय रक्खा है।।४२।। भगवान् के जितने भी अंशकला अवतार हैं, वे सभी इष्ट भाव से श्री वृन्दावन का सेवन करते हैं। ऐसे श्री वृन्दावन का मनसा, वाचा अवगाहन ही अभीष्ट है।।४३।।

सिव बिधि उद्धव सबनि कैं, यह आसा रहै चित्त।
गुल्म लता ह्वै सिर धरैं, वृंदावन रज नित्त।।४४।।
चतुरानन देख्यौ कछुक, वृंदाविपिन प्रभाव।
द्रुम द्रुम प्रति अरु लता प्रति औरै बन्यौ बनाव।।४५।।
आप सहित सब चत्रभुज, सब ठाँ रह्यौ निहारि।
प्रभुता अपनी भूलि गयौ, तन मन कै रह्यौ हारि।।४६।।
लोक चतुर्दश ठकुरई, संपति सकल समेत।
सब तजि बसि वृंदाविपिन, रसिकन कौ रस खेत।।४७।।
सकहि तौ वृंदाविपिन बसि, छिन छिन आयु बिहात।
ऐसौ समै न पाइहै, भली बनी है बात।।४८।।
छाँड़ि स्वाद सुख देह के, और जगत की लाज।
मनहिं मारि तन हारि कै, वृंदावन में गाज।।४९।।

भगवान् शिव, ब्रह्मा और उद्धव के भी मन में निरन्तर यह आशा लगी रहती है कि हम सब लता वीरुध हो कर श्री वृन्दावन की रज को सदैव शिरोधार्य करें।।४४।। चतुर्मुख ब्रह्मा ने वृन्दावन की विलक्षणता का किञ्चित् अनुभव किया कि यहाँ प्रत्येक द्रुमलता का स्वरूप कुछ और ही है।।४५।। ब्रह्मा ने अपने सहित वृन्दावन में सर्वत्र ही सब को चतुर्भुज रूप में देखा। तब तो वह अपनी प्रभुता, महत्ता को भी भूल गया और उसका अहङ्कार नष्ट हो गया।।४६।। अतएव चौदह भुवनों का स्वामित्व और समस्त सम्पत्ति का भी परित्याग करके, रसिकों के रस क्षेत्र श्री वृन्दावन में वास करना चाहिये।।४७।। यदि संभव हो तो वृन्दावन-वास करना चाहिये क्योंकि आयु प्रतिक्षण समाप्त हो रही है, पुनः ऐसा सुअवसर फिर नहीं प्राप्त होने वाला है।।४८।। दैहिक सुख-सुविधा की आसक्ति एवं जागतिक लज्जा के परित्यागपूर्वक मन को मार कर, तन को हार कर वृन्दावन में निर्भयता पूर्वक विचरण करना चाहिये।।४९।।

वृंदावन के बसत ही, अंतर जो करै आनि।
तिहि सम सत्रु न और कोउ, मन वच कै यह जानि।।५०।।
वृंदावन के वास कौ, जिनकैं नाहिं हुलास।
माता मित्र सुतादि तिय, तजि ध्रुव तिनकौ पास।।५१।।
और देस के बसत ही, अधिक भजन जौ होइ।
इहि सम नहिं पूजत तऊ, वृंदावन रहै सोइ।।५२।।
वृंदावन में जो कबहुँ, भजन कछू नहिं होइ।
रज तौ उड़ि लागै तनहिं, पीवै जमुना तोइ।।५३।।
वृंदाविपिन प्रभाव सुनि, अपनौ ही गुन देत।
जैसैं बालक मलिन कौं, मातु गोद भरि लेत।।५४।।

वृन्दावन-वास करने में जो भी कोई व्यवधान डालने वाला हो, उसके जैसा अन्य कोई शत्रु ही नहीं है। उपासक के मन में ऐसा निश्चय होना चाहिये।।५०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री वृन्दावन-वास के लिए जिनके मन में उत्साह नहीं है, वे माता, पिता, पुत्र एवं पत्नी आदि ही क्यों न हों, उनका भी सामीप्य त्याग देना चाहिये।।५१।। अन्य देशों के निवास में भले ही अधिक भजन होता हो, किन्तु वह भजन वृन्दावन में सोते रहने के बराबर भी नहीं है।।५२।। वृन्दावन में निवास करके भी यदि कुछ भजन नहीं होता हो तो भी यहाँ की रज उड़-उड़ कर शरीर का स्पर्श करती ही रहेगी एवं पीने के लिए यमुना जल तो प्राप्त होगा ही।।५३।। श्री वृन्दावन की अहैतुकी कृपा का स्वभाव एवं प्रभाव तो देखो कि श्री वृन्दावन इस जीव की कर्म-मलिनता को विचारे बिना ही इसे अपना लेता है, जिस प्रकार मैले-कुचैले बालक को भी वात्सल्यमयी माता स्नेहपूर्वक गोद में भर लेती है।।५४।।

और ठाँव जो जतन करै, होत भजन तउ नाहिं।
ह्याँ फिरै स्वारथ आपनैं, भजन गहैं फिरै बाँहिं।।५५।।
और देस के बसत ही, घटत भजन की बात।
वृंदावन में स्वारथौ, उलटि भजन ह्वै जात।।५६।।
जद्यपि सब औगुन भर्‌यौ, तदपि करत तुव ईठ।
हितमय वृंदाविपिन कौं, कैसैं दीजै पीठ।।५७।।
वृंदावन तें अनत ही, जेतिक द्यौस विहात।
ते दिन लेखे जिनि गनौ, वृथा अकारथ जात।।५८।।
भजन रसमयी विपिन धर, समुझि बसै जौ कोइ।
प्रेम बीज तिहिं खेत तें, तब ही अंकुर होइ।।५९।।

वृन्दावन से बाहर अन्य देश में कहीं भी यत्न करने पर भी भजन नहीं सधता किन्तु वृन्दावन में तो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए भटकने वाले का भी भजन हाथ पकड़े रहता है, उससे भजन करा लेता है।।५५।। अन्य देशों में बसने से भजन की बात घटती है किन्तु वृन्दावन में लौकिक स्वार्थ भी पलट कर भजन हो जाता है।।५६।। यद्यपि यह जीव अघ-अवगुणों से भरा हुआ है, तो भी श्री वृन्दावन अपने में निवास करने वाले उस अधमाधम प्राणी को भी प्यार-दुलार करता है। ऐसे हितमय वृन्दावन को कैसे पीठ दी जाय अर्थात् उसका त्याग क्यों कर किया जाय?।।५७।। वृन्दावन से अन्यत्र जीवन के जो भी दिन व्यतीत होते हैं, उन्हें आयु के अन्तर्गत नहीं गिनना चाहिये, वे व्यर्थ एवं निष्फल जा रहे हैं।।५८।। श्री वृन्दावन की भूमि भजन-रसमयी है, ऐसा समझ कर जो यहाँ निवास करता है, उसके हृदय-क्षेत्र में प्रेम का बीज तत्काल ही अङ्कुरित हो जाता है।।५९।।

जद्यपि धावत विषै कौं, भजन गहत बिच पानि।
ऐसै वृंदाविपिन की, सरन गही "ध्रुव" आनि।।६०।।
बसिबौ वृंदाविपिन कौ, जिहिं तिहिं विधि दृढ़ होइ।
नहिं चूकै ऐसौ समै, जतन कीजियै सोइ।।६१।।
कहाँ तू कहाँ वृंदाविपिन, आनि बन्यौ भल बान।
यहै बात जिय समुझि कै, अपनौं छाँड़ि सयान।।६२।।
छिन भंगुर तन जात यह, छाँड़हि विषै अलोल।
कौड़ी बदले लेहि तू, अद्भुत रतन अमोल।।६३।।
कोटि कोटि हीरा रतन, अरु मनि विविध अनेक।
मिथ्या लालच छाँड़ि कै, गहि वृंदावन एक।।६४।।

यद्यपि चञ्चल मन विषयों की ओर दौड़ता है, तथापि वृन्दावन का भजन-रस उसे बीच में ही हाथ पकड़ कर सँभाल लेता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने ऐसे कृपामय श्री वृन्दावन का दृढ़ता पूर्वक आश्रय लिया है।।६०।। श्री वृन्दावन का वास जिस-तिस प्रकार से भी दृढ़ हो वैसा ही यत्न करना चाहिये। जीवन में यह अवसर हाथ से नहीं खोना चाहिये।।६१।। हे मानव! कहाँ तू तुच्छ प्राणी और कहाँ दिव्य वृन्दावन का वास। क्या ही अच्छा सुयोग बना है, इस बात को मन में विचार कर अपनी चतुराई छोड़ दे एवं वृन्दावन-वास कर।।६२।। देख, क्षणभङ्गुर शरीर जा रहा है, तू धैर्यपूर्वक विषयों का त्याग कर दे और विषय-सुख रूपी कौड़ी के बदले अमोल रत्न रूपी वृन्दावन को प्राप्त कर।।६३।। कोटि-कोटि हीरा, रत्न और विविध प्रकार की मूल्यवान् मणियों का झूठा लोभ छोड़ कर वृन्दावन रूपी अमूल्य मणि को ग्रहण कर।।६४।।

नहिं सो माता पिता नहिं, मित्र पुत्र कोउ नाहिं।
इनमें जो अंतर करै, बसत बृँदावन माँहि।।६५।।
नाते जेते जगत के, ते सब मिथ्या मानि।
सत्य नित्य आनंदमय, वृंदावन पहिचानि।।६६।।
बसि कै वृंदाविपिन में, ऐसी मन में राख।
प्रान तजौं बन ना तजौं, कहौ बात कोउ लाख।।६७।।
चलत फिरत सुनियत यहै, श्री राधावल्लभ लाल।
ऐसे वृंदाविपिन में, बसत रहौ सब काल।।६८।।
बसिबौ वृंदाविपिन कौ, यह मन में धरि लेहु।
कीजै ऐसौ नैंम दृढ़, या रज में परै देह।।६९।।
खंड खंड ह्वै जाइ तन, अंग अंग सत टूक।
वृंदावन नहिं छाँड़ियै, छाँड़िबौ है बड़ी चूक।।७०।।

वह माता, माता नहीं है, पिता, पिता नहीं है, मित्र और पुत्र भी कोई अपने नहीं हैं, जो श्री वृन्दावन-वास करने में अन्तराय उत्पन्न करते हैं।।६५।। जगत् के जितने भी नाते हैं, सब को मिथ्या मान कर सत्य, नित्य और आनन्दमय वृन्दावन को पहचानना चाहिये।।६६।। श्री वृन्दावन में वास करके मन में ऐसी दृढ़ता रखनी चाहिये कि कोई लाख बात क्यों न कहे– समझावे, मैं प्राण तो त्याग दूँगा पर श्री वृन्दावन के वास का परित्याग नहीं करूँगा।।६७।। हे प्राणी ! जहाँ चलते-फिरते श्री राधावल्लभ लाल के मधुर नामों का श्रवण होता रहता है, ऐसे हितमय वृन्दाविपिन में तू सदा-सर्वदा निवास कर।।६८।। वृन्दावन-वास के लिए मन में दृढ़ धारणा रख और दृढ़ नियम धारण कर कि इस वृन्दावन की पावन रज में ही यह देह विलीन करना है।।६९।। यह शरीर चाहे टुकड़े-टुकड़े ही क्यों न हो जाय एवं इसका प्रत्येक अङ्ग शत-शत प्रकार से खण्ड-विखण्ड ही क्यों न हो जाय किन्तु वृन्दावन का त्याग नहीं करना है। वृन्दावन का त्याग जीवन की सब से बड़ी भूल होगी।।७०।।

पटतर वृंदाविपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
जिहिं रज की ध्रुव रैंनु में, मरिबौउ मंगल आहि।।७१।।
वृंदावन के गुननि सुनि, हित सौं रज में लोटि।
जेहि सुख कौं पूजत नहीं, मुक्ति आदि सत कोटि।।७२।।
सुरपति पसुपति प्रजापति, रहे भूलि तिहिं ठौर।
वृंदावन वैभव कहौ, कौन जानि है और।।७३।।
जद्यपि राजत अवनि पर, सब तें ऊँचौ आहि।
ताकी सम कहियै कहा, श्रीपति वंदत ताहि।।७४।।
वृंदावन वृंदाविपिन, वृंदा-कानन ऐन।
छिन छिन रसना रट्यौ करि, वृंदावन सुखदैन।।७५।।
वृंदावन आनंदघन, तो तन नस्वर आहि।
पसु ज्यौं खोवत विषै रस, काहि न चिंतत ताहि।।७६।।

वृन्दावन की उपमा किससे दी जाय, जिसकी भूमि में मृत्यु भी मङ्गलमयी है ?।।७१।। वृन्दावन के गुणों को सुनो, प्रेमपूर्वक इसकी रज में लोटो, इस सुख की समता शत कोटि मुक्तियाँ भी नहीं कर सकतीं।।७२।। श्री वृन्दावन के वैभव का दर्शन करके इन्द्र, शिव, ब्रह्मा भी चकित हैं, तब इनसे बड़ा कौन है, जो वृन्दावन के मर्म को जान सकेगा ?।।७३।। सर्वोपरि धाम श्री वृन्दावन यद्यपि पृथ्वी पर विराजमान है और श्रीपति भी जिसकी चरण-वन्दना करते हैं, उसकी समता भला किससे की जाय ?।।७४।। वृन्दावन, वृन्दाविपिन, श्री धाम वृन्दाकानन एवं सुखदायक वृन्दावन ! हे मेरी रसना ! तू क्षण-क्षण इन मधुर नामों की ही रटन किंवा गान करती रह।।७५।। हे मानव ! वृन्दावन आनन्द-राशि है और तेरा यह देह नाशवान् है। इसे विषय की आसक्ति में पशु की भाँति व्यर्थ क्यों खो रहा है ? श्री वृन्दावन का चिंतन क्यों नहीं करता ?।।७६।।

वृंदावन वृंदा कहत, दुरित वृंद दुरि जाहिं।
नेह बेलि रस भजन की, तब उपजै हिय माहिं।।७७।।
वृंदावन श्रवननि सुनहि, वृंदावन कौ गान।
मन वच कै अति हेत सौं, वृंदावन उर आन।।७८।।
वृंदावन कौ नाम रटि, वृंदावन कौं देखि।
वृंदावन सौं प्रीति करि, वृंदावन उर लेखि।।७९।।
वृंदाविपिन प्रनाम करि, वृंदावन सुख खानि।
जो चाहत विश्राम ध्रुव, वृंदावन पहिचानि।।८०।।
तजि कैं वृंदाविपिन को, और तीर्थ जे जात।
छाँड़ि विमल चिंतामनी, कौड़ी कौं ललचात।।८१।।
पाइ रतन चीन्ह्यौं नहीं, दीन्हौ कर तैं डारि।
यह माया श्री कृष्न की, मोह्यौ सब संसार।।८२।।

'वृन्दावन, वृन्दावन, वृन्दावन' ऐसे उच्चारण मात्र से पापों का समूह न जाने कहाँ विलीन हो जाता है और हृदय में उसी क्षण रस भजन की प्रेम-लता लहलहा उठती है।।७७।। हे मानव ! इसलिए कानों से श्री वृन्दावन का यश-श्रवण कर,जिह्वा से वृन्दावन का यशोगान कर एवं मनसा, वाचा प्रीति पूर्वक वृन्दावन को हृदय में धारण कर।।७८।। हे भाई ! तू वृन्दावन के नामों की रटन कर, वृन्दावन का दर्शन कर, वृन्दावन से प्रीतिकर और वृन्दावन के महत्त्व को समझ।।७९।। वृन्दाकानन की नित्य प्रति वन्दना कर; क्योंकि श्री वृन्दावन समस्त सुख-सम्पत्ति की खानि है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि यदि तू अटल विश्राम चाहता है तो वृन्दावन को पहचान।।८०।। जो लोग वृन्दावन का त्याग करके पुण्य बटोरने के लिए अन्यान्य तीर्थों की ओर भागते हैं, वे निर्मल चिंतामणि को छोड़ कर कौड़ी के लिए ललचाते हैं।।८१।। वे ऐसे मूर्ख हैं कि हाथ में आए रत्न को बिना पहचाने फेक रहे हैं। यही तो श्री कृष्ण की माया है, जिसने सारे संसार को मोहित कर रक्खा है।।८२।।

प्रगट जगत में जगमगै, वृंदाविपिन अनूप।
नैन अछत दीसत नहीं, यह माया कौ रूप।।८३।।
वृंदावन कौ जस अमल, जिहि पुरान में नाहिं।
ताकी बानी परौ जिनि, कबहूँ श्रवननि माँहि।।८४।।
वृंदावन कौ जस सुनत, जिनकैं नाहिं हुलास।
तिनकौ परस न कीजिये, तजि ध्रुव तिनकौ पास।।८५।।
भुवन चतुर्दस आदि दै, ह्वै है सब कौ नास।
इकछत वृंदाविपिन घन, सुख कौ सहज निवास।।८६।।

वृंदावन की रहनी दोहा

वृंदावन इहि विधि बसै, तजि कैं सब अभिमान।
तृन तैं नीचौ आपकौं, जानै सोई जान।।८७।।

अनुपम वृन्दावन भूतल पर प्रकट रूप से जगमगा रहा है। ऐसे देदीप्यमान वृन्दावन को नेत्रवान् होकर भी मनुष्य नहीं देख, समझ पाता। यह भी माया का ही स्वरूप है।।८३।। श्री वृन्दावन का निर्मल यश जिन किन्हीं पुराण आदि ग्रन्थों में नहीं है, उनके वचन कभी मेरे कानों में न पड़ें।।८४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री वृन्दावन का यश श्रवण करके जिनके चित्त में प्रसन्नता नहीं होती, उनका तो स्पर्श भी नहीं करना चाहिये और निश्चित ही उनका सङ्ग त्याग देना चाहिये।।८५।। चौदह भुवनों से लेकर अन्यान्य सभी लोक नाशवान् हैं, केवल नित्य निरन्तर, अविनाशी एवं घनीभूत सुख का यदि कोई आगार है, तो वह एकमात्र श्री वृन्दावन धाम ही है।।८६।।

जो कोई भी अपने आप को तृण से भी अधिक तुच्छ मानकर समस्त मानाभिमान के परित्याग पूर्वक वृन्दावन-वास करेगा, वही श्री वृन्दावन का मर्म जान पाएगा।।८७।।

कोमल चित सब सौं मिलै, कबहुँ कठोर न होइ।
निस्नेही निर्वैरता, ताकौ सत्रु न कोइ।।८८।।
दूजै तीजै जो जुरै, साक पत्र कछु आइ।
ताही सौं संतोष करि, रहै अधिक सुख पाइ।।८९।।
देह स्वाद छुटि जाइँ सब, कछु होइ छीन सरीर।
प्रेम रंग उर में बढ़ै, बिहरै जमुना तीर।।९०।।
जुगल रूप की झलक उर, नैननिं रहै झलकाइ।
ऐसे सुख के रंग में, राखै मनहि रँगाइ।।९१।।
आवै छबि की झलक उर, झलकै नैननि वारि।
चिंतत स्यामल गौर तन, सकहि न तनहि सँभारि।।९२।।

वृन्दावन-वास करने वाला उपासक सब से विनम्र भाव से मिले, कभी अपने में कठोरता न लावे। जो व्यक्ति इच्छा-रहित एवं वैर-भाव से रहित होगा, उसका कहीं कोई शत्रु नहीं होगा।।८८।। वृन्दावन-वास करने वाले को चाहिये कि उसे दूसरे तीसरे दिन अनायास शाक-पत्रादि जो कुछ प्राप्त हो, उससे ही निर्वाह कर ले एवं मन में सुख-संतोष धारण करे।।८९।। देह के सुख-स्वाद सब छूट जाएँ और शरीर यदि कुछ दुर्बल भी हो जाय, तो भी इसकी चिन्ता न करके प्रेम का आनन्द लेते हुए यमुना-तट पर विचरण करते रहना चाहिये।।९०।। उपास्य युगल रूप की झलक सदैव उपासक के हृदय और नेत्रों में झलकती रहे। इस प्रकार के आनन्द-रङ्ग में मन को रँगा दे।।९१।। हृदय में श्याम-गौर युगल की छबि की झलक निरन्तर छाई रहे, नेत्रों से प्रेम-जल छलकता रहे और देह का अनुसन्धान भी न रहे।।९२।।

जीरन पट अति दीन लट, हियैं सरस अनुराग।
विवस सघन वन में फिरै, गावत जुगल सुहाग।।९३।।
रसमय देखत फिरै वन, नैननि बन रहै आइ।
कहुँ-कहुँ आनँद रंग भरि, परै धरनि थहराइ।।९४।।
ऐसी गति ह्वै है कबहुँ, मुख निसरत नहिं बैन।
देखि-देखि वृंदाविपिन, भरि-भरि ढारै नैन।।९५।।
वृंदावन तरु-तरु तरै, ढरै नैन सुख नीर।
चिंतत फिरै आवेस बस, स्यामल गौर सरीर।।९६।।
परम सच्चिदानंदघन, वृंदाविपिन सुदेस।
जामें कबहूँ होत नहिं, माया काल प्रवेस।।९७।।

वृन्दावन-रसिक के शरीर पर भले ही फटे पुराने चीथड़े वस्त्र हों, शरीर भी दुबला-पतला लटपटाता सा हो, किन्तु हृदय सरस अनुराग रञ्जित रहना चाहिये। वह युगल सुहाग का चिन्तन गान करता हुआ, वृन्दावन के सघन कुञ्जों में प्रेम-विवश भाव से विचरण करे।।९३।। प्रेमी उपासक श्री वृन्दावन को रसमय रूप में देखे, उसके नेत्रों में श्री वृन्दावन बसा रहे। कभी-कभी प्रेमानन्द से भरा वह काँपता हुआ प्रेमविवश अवस्था में पृथ्वी पर गिरता पड़ता सौभाग्यवान् कहलायेगा।।९४।। श्री वृन्दावन का अवलोकन कर वाणी अवरुद्ध हो जाय, नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगे, क्या कभी मेरी भी ऐसी प्रेम-विभोर दशा होगी ?।।९५।। गौर-श्याम का चिंतन करते हुए, भावावेश विवश, वृन्दावन-विटप-लताओं के नीचे नेत्रों से आनन्दाश्रु ढलते रहें—क्या कभी मेरा ऐसा सौभाग्य होगा ?।।९६।। यह अति सुन्दर वृन्दावन परम सच्चिदानन्दघन स्वरूप है, जिसमें कभी माया और काल का प्रवेश नहीं है।।९७।।

सारद जो सत कोटि मिलि, कलपन करैं विचार।
वृंदावन सुख रंग कौ, कबहुँ न पावैं पार।।९८।।
वृंदावन आनंद घन, सब तें उत्तम आहि।
मो ते नीच न और कोउ, कैसे पैहों ताहि।।९९।।
इत बौना आकास फल, चाहत है मन माहिं।
ताकौ एक कृपा बिना, और जतन कछु नाहिं।।१००।।

उपसंहार दोहा

कुँवरि किसोरी नाम सौं, उपज्यौ दृढ़ विस्वास।
करुनानिधि मृदु चित्त अति, तातैं बढ़ी जिय आस।।१०१।।
जिनकौ वृंदाविपिन है, कृपा तिनहिं की होइ।
वृंदावन में तबहि तौ, रहन पाइहै सोइ।।१०२।।

यदि कोटि-कोटि शत शारदा अनेक कल्पों तक वृन्दावन की महिमा का लेखा-जोखा लगाती रहें, तो भी वृन्दावन के आनन्द-स्वरूप की थाह नहीं लगा पायेंगी।।९८।। आनन्दघन श्री वृन्दावन समस्त धामादिकों में सर्वोत्तम है और मुझ से अधिक कोई तुच्छ नहीं है, फिर भला मैं ऐसे वृन्दावन को कैसे प्राप्त कर सकूँगा?।।९९।। मेरे जैसा लघुकाय व्यक्ति (बौना) अपने मन में आकाशोपरि फल की इच्छा करता है, किन्तु यह निश्चित है कि उसकी प्राप्ति श्री राधा-कृपा बिना असम्भव है।।१००।।

मेरे हृदय में कुँवरि किशोरी श्री राधा के नाम के प्रति दृढ़ विश्वास प्रकट है। वे करुणानिधि एवं अत्यन्त कोमल चित्त हैं, ऐसा जान कर हृदय में वृन्दावनवास की आशा बढ़ चली है।।१०१।। श्री वृन्दावन जिनका अपना निज धाम है, उन श्री राधा किशोरी की कृपा होगी, तभी कोई वृन्दावन में रह सकेगा।।१०२।।

वृंदावन सत रतन की, माला गुही बनाइ।
भाल भाग जाके लिखी, सोई पहिरै आइ।।१०३।।
वृंदावन सुख रंग की, आसा जौ चित होइ।
निसि दिन कंठ धरे रहै, छिन नहिं टारै सोइ।।१०४।।
वृंदावन सत जो कहै, सुनिहै नीकी भाँति।
निसि दिन तिहिं उर जगमगै, वृंदावन की काँति।।१०५।।
वृंदावन कौ चिंतवन, यहै दीप उर बारि।
कोटि जनम के तम अघहिं, काटि करै उजियारि।।१०६।।
बसि कै वृंदाविपिन में, इतनौ बड़ौ सयान।
जुगल चरन के भजन बिन, निमिष न दीजै जान।।१०७।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने 'श्री वृन्दावन शत' नामक रत्नों की माला गूँथ कर तैयार की है, जिसके भाग्यशाली ललाट पर इस माला के धारण करने का सौभाग्य अङ्कित होगा, वही इस माला को अपने कण्ठ-देश में धारण करेगा।।१०३।। भाइयो ! यदि तुम्हारे चित्त में श्री वृन्दावन के सुखरङ्ग की आशा-अभिलाषा है, तो इस माला को अपने कण्ठ में अहर्निश धारण किये रहो, क्षणमात्र के लिए भी इसे मत उतारो।।१०४।। जो कोई इस "वृन्दावन शत" का भली प्रकार श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक गान करेगा और श्रवण करेगा, उसके हृदय में वृन्दावन का प्रकाश दिन-रात जगमगाता रहेगा।।१०५।। वृन्दावन-चिंतन रूपी दीपक हृदय देश में जगाओ, तो कोटि-कोटि जन्मों के पापान्धकारों को निरस्त करके यह दीप तुम्हारे हृदय देश को आलोकित कर देगा।।१०६।। वृन्दावन में वास करने वाले की सब से बड़ी चतुराई यह है कि वह युगल चरणारविन्द के भजन बिना एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे।।१०७।।

सहज विराजत एक रस, वृंदावन निज धाम।
ललितादिक सखियन सहित, क्रीड़त स्यामा स्याम।।१०८।।
प्रेम सिंधु वृंदाविपिन, जाकौ अंत न आदि।
जहाँ कलोलत रहत नित, युगल किसोर अनादि।।१०९।।
न्यारौ चौदह लोक तें, वृंदावन निजु भौन।
तहाँ न कबहूँ लगत है, महाप्रलय की पौन।।११०।।
महिमा वृंदा विपिन की, कहि न सकत मम जीह।
जाके रसना द्वै सहस, तिन हूँ काढ़ी लीह।।१११।।
एती मति मोपै कहाँ, सोभा निधि वनराज।
ढीठौ कै कछु कहत हौं, आवत नहिं जिय लाज।।११२।।

युगल किशोर का निज धाम श्री वृन्दावन नैसर्गिक रूप से सदा एक सा विद्यमान है, जहाँ अपनी ललितादिक सखियों के साथ श्री श्यामा-श्याम निरन्तर क्रीड़ापरायण हैं।।१०८।। श्री वृन्दाविपिन अनादि अनन्त प्रेम का सागर है, जहाँ अनादि काल से युगल किशोर कल्लोल-रत हैं।।१०९।। प्रिया-प्रियतम का निज धाम श्री वृन्दावन चतुर्दश लोकों से विलक्षण है, जहाँ कभी भी महाप्रलय का पवन तक नहीं पहुँचता।।११०।। वृन्दावन के माहात्म्य का वर्णन कर सकने में मेरी जिह्वा असमर्थ है। मैं तो क्या, जिसकी दो हजार जिह्वाएँ हैं, उसने भी वर्णन में अपनी हार मान ली है।।१११।। श्री वनराज वृन्दावन शोभा-निधि है, जिसका वर्णन करने के लिए मुझ में पर्याप्त बुद्धि नहीं है, फिर भी निर्लज्ज की भाँति, धृष्टता पूर्वक कुछ कहने का साहस करता हूँ।।११२।।

मति प्रमान चाहत कह्यौ, सोऊ कहत लजात।
सिंधु अगम जिहिं पार नहिं, कैसैं सीप समात।।११३।।
या मन के अबलंब हित, कीन्हौ आहि उपाइ।
वृंदावन रस कहन में, मति कबहूँ उरझाइ।।११४।।
सोलह सै धुव छ्यासिया, पून्यौ अगहन मास।
यह प्रबंध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास।।११५।।
दोहा वृंदाविपिन के, इकसत षोडस आहि।
जौ चाहत रस रीति फल, छिन-छिन धुव अवगाहि।।११६।।

मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कह तो रहा हूँ, परन्तु कहते हुए सङ्कुचित भी हो रहा हूँ ; क्योंकि अगम्य अपार सागर लघु सीप में कैसे समा सकता है ?।।११३।। मैंने तो अपने मन के अबलम्ब के लिए वृन्दावन-यशोगान का यह उपाय किया है, इसलिए कि वृन्दावन के रस के वर्णन-कथन में मेरी बुद्धि किसी भाँति उलझकर तन्मय हो।।११४।। श्री धुवदास जी कहते हैं कि विक्रम संवत् सोलह सौ छ्यासी की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को "वृन्दावनशत" नामक यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ, जिसके श्रवणमात्र से समस्त कल्मष दूर हो जाते हैं।।११५।। श्री वृन्दावन यशोगान के यह एक सौ सोलह दोहे हैं। यदि आप रस-रीति का फल चाहते हैं तो प्रतिक्षण इसका अवगाहन करें।।११६।।

❑

५

ख्याल हुल्लास

प्रेम की व्याख्या — दोहा

दोहा ख्याल हुलास मन, कछु इक कीनें आहि।
प्रेम-छटा जिहिं उर चढ़ी, सो 'ध्रुव' समुझै ताहि।।१।।
प्रीति समान न और सुख, दुखहू होत अपार।
मिलिबौ सुख दुख बिछुरिबौ, यह कीनौं निरधार।।२।।
बिनु देखैं तलफत रहै, क्यौं पावै चित चैन।
वदन रूप जलपान कौं, प्यासे हैं दोउ नैन।।३।।
अब सुनि इक-इक घरी तौ, कलपन की सम होत।
तिहिं दुख लिखिबे कौं कहूँ, नहिं कागद नहिं दोत।।४।।
कठिन पीर पिय विरह की, लगे प्रेम के बान।
अब तौ चाहत है चल्यौ, रहि न सकत इहि प्रान।।५।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेमियों की उल्लासमय मनःस्थिति के कतिपय दोहे लिख रहा हूँ, इन्हें वही समझेगा, जिसका हृदय प्रेम-छटा से पूरित होगा।।१।। प्रेम के समान कोई सुख नहीं है और प्रेम राज्य में दुख भी अपार है। यह भी निर्णीत है कि संयोग सुख है और वियोग दुःख।।२।। वियोग काल में प्रेमी अपने प्रेमास्पद के दर्शन के बिना विकल रहता है, उसका मन किसी प्रकार भी चैन नहीं पाता। प्रियतम के मुख-माधुर्य रूपी जलपान के लिए उसके नेत्र सदैव प्यासे रहते हैं।।३।। विरह के जीवन की प्रत्येक घड़ी कल्पवत् होती है। उस वियोग के दुःख का लेखा-जोखा लिखने के लिए न कहीं कागज है और न कहीं दवात ही है।।४।। प्रियतम के वियोग की पीड़ा असह्य होती है, प्रेम-वाणों से बिंध जाने के पश्चात् प्रेमी के शरीर में प्राणों का रहना कठिन हो जाता है, उसके प्राण निकलने को आतुर रहते हैं।।५।।

महा प्रेम निजु मधुर अति, सब तें न्यारौ आहि।
तहाँ न मिलिबौ बिछुरिबौ, जीवत रूपहिं चाहि।।६।।
यह रस नित्य-विहार बिनु, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
एक प्रीति वय रूप दोउ, बिलसत इक रस मैन।।७।।
नैंना तौ अटके जहाँ, तहाँ न बिछुरन होइ।
इक रस अद्‌भुत प्रेम के, सुखहि लहै दिन सोइ।।८।।
नवल विमल रस प्रेम कौ, जिनकैं सहजहिं ढार।
तिनके हियैं चलत रहै, सुख प्रवाह की धार।।९।।

प्रेम का अन्तराय, विषय-रस दोहा

युगल प्रेम रसमाधुरी, तहाँ न अटकै चित्त।
चखत फिरै माया फलनि, तहाँ रहै दुःख नित्त।।१०।।

इससे भिन्न प्रेम की एक और स्थिति है, जो सहज महान् एवं अति मधुर है, जहाँ न मिलन है और न वियोग ही केवल परस्पर रूप दर्शन ही जीवन है।।६।। ऐसा यह प्रेम रस "नित्य-विहार" के बिना न कहीं देखा गया है न सुना ही गया। इस नित्य-विहार में प्रेमी-प्रेमास्पद की प्रीति, रूप और वयस् सदा समान हैं और वे युगल निरन्तर संयोग-वियोग रहित प्रेम-विलास में निमग्न हैं।।७।। जहाँ प्रेमी-प्रेमास्पद के नेत्र चन्द्र-चकोरवत् रूपासक्त हैं; वहाँ वियोग की सम्भावना ही नहीं है। वही प्रेमी, युगल के इस अद्भुत प्रेमरस के अक्षुण्ण आनन्द का मर्म जानते हैं।।८।। ऐसा नवनवायमान् उज्ज्वल प्रेम-रस सहज रूप से जिनके हृदय में विराजमान है, वहीं सहज प्रेम की धारा प्रवाहित है।।९।।

आश्चर्य तो यह है, कि विषयों में आसक्त जीव नित्य दुःखमय मायिक फलों को चखता फिरता है, किन्तु नित्य सुखमय युगल प्रेम-रस-माधुरी में अपने मन को नहीं अटकाता है।।१०।।

जहाँ-जहाँ चित लागि है, तहाँ तहाँ दुख रासि।
जब लगि मन परि है नहीं, युगल प्रेम की पासि।।११।।
जुगल रूप तन विपिन जहँ, तहाँ न अटकै जाइ।
देखि विषै विष छिनक सुख, तिहि ठाँ रह्यौ लुभाइ।।१२।।
मूरख मन समुझत नहीं, नवल रूप निधि पाइ।
फीकौ छिल्लर विषै कौ, तहाँ धँसत है धाइ।।१३।।
सोऊ कर आवत नहीं, बनत न एकौ बात।
बिचहीं दुख पावत फिरत, दुहूँ ओर तें जात।।१४।।
जहाँ-जहाँ चित्त दीजियै, तहाँ तहाँ दुख मूल।
तहाँ न अरुझै जाइ कै, सदा रहै सुख फूल।।१५।।

यह निश्चित है कि संसार में जहाँ-जहाँ मन लगेगा, वहाँ-वहाँ दुःख-राशि ही मिलेगी। जब तक मन युगल के प्रेम-बन्धन में नहीं बँधेगा, तब तक दुःख ही पाता रहेगा।।११। यह अज्ञानी मन विष रूपी विषयों के क्षणिक सुख को देख कर लुभाता है परन्तु युगल किशोर के नख-शिख सौन्दर्यमय तनरूपी विपिन में जा कर नहीं अटकता।।१२।। यह अज्ञानी मन श्री प्रिया-प्रियतम की नित्य नव-नवायमान् रूप-निधि को प्राप्त करके भी उसका मूल्य नहीं समझ पाता, वरन् विषय के नीरस दलदल में ही बरबस धँसता जाता है।।१३।। किन्तु वह विषय सुख भी उसके हाथ में नहीं आता और उन विषयों को प्राप्त करने का कोई उपाय भी सूझता नहीं, फलतः अज्ञानी जीव प्रेम परमार्थ से विमुख, सांसारिक सुख भोगों से भी वञ्चित हुआ उभय भ्रष्ट होकर दुःख ही दुःख पाता है।।१४।। संसार में जहाँ-जहाँ मन आसक्त होता है, वहीं-वहीं दुख का मूल है और सर्वाधिक खेद का विषय तो यह है कि जहाँ सर्वदा सुख ही सुख है, उस प्रेमरस माधुरी में अज्ञानी अटकता नहीं।।१५।।

अनत अटक नाहिंन भली, यह समुझै सब कोइ।
लहै न मन कौं जो रुचै, फिरि फिरि दुख ही होइ।।१६।।
और विषै रस पाइयै, सोऊ दुख करि जानि।
तहाँ न दीजै चित्त 'ध्रुव', यह कह्यौ मेरौ मानि।।१७।।

उद्‌बोधन दोहा

अब तो ऐसी चित्त धरि, जुगल चरन रँग राँचि।
महामाधुरी केलि गुन, छिन छिन गाय (ऽ) रु नाचि।।१८।।
सुनि 'ध्रुव' ऐसी चाहियै, छाँड़ि जगत की रीति।
जुगल चरन कोमल सुरँग, तिनहीं सौं करि प्रीति।।१९।।
अब तौ आहि यहै भली, सबतैं मोह मिटाइ।
रसिक अनन्यनि संग गहि, स्यामा-स्याम लड़ाइ।।२०।।

यह बात सर्व-विदित है कि भगवत् प्रेम के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं चित्त लगाना हितकर नहीं है और अन्यत्र चित्त लगाने पर भी उसका रुचिकर विषय उसे अप्राप्त ही रहता है, फलतः बारम्बार दुःख ही देता है।।१६।। मान लीजिये कि विषयों में रस है, तो भी अन्ततः वह दुःखरूप ही है। अतः श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरा कहा मानो और विषयों में आसक्त मत होओ।।१७।।

रे मन! तू ऐसा निश्चय कर कि मुझे अब श्री प्रिया-प्रियतम के चरणों के प्रेम में ही रँग जाना है। तत्पश्चात् तू प्रतिपल उन प्रिया-प्रियतम की अतिशय मधुर लीलाओं और गुणावली का प्रतिक्षण गान कर तथा प्रेम-पूर्वक नृत्य कर।।१८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं जगत् के व्यवहार को छोड़ कर युगल के कोमल और सुन्दर चरणारविन्दों से ही प्रीति कर।।१९।। अच्छी बात तो यह है कि संसार में सब से मोह मिटा कर रसिक अनन्य भक्तों का सङ्ग कर और श्री श्यामा-श्याम का लाड़-प्यार कर।।२०।।

अब तौ करनी है यहै, वृंदावन करि बास।
जुगल चरन छबि रंग रँगि, सब तें होइ उदास।।२१।।
तन मन कै बन सेइयै, या पर नहिं मत और।
विहरत जहाँ सुकुमार दोउ, अद्भुत स्यामल गौर।।२२।।

सोरठा

सुनि लै मेरी बात, जुगल चरन चित लाइयै।
जौ चूक्यौ यह घात, फिरि पाछैं पछिताइहै।।२३।।

दोहा

अब तो वय सब बीति गइ, अरु जु रही सोउ जाति।
द्यौस न कछुवै करि सक्यौ, अब जिनि खोवै राति।।२४।।
पंगु होइ सब ओर ते, अटकै विवि छबि माँहि।
तबही तौ पावै सुखहिं, और विषै छुटि जाहिं।।२५।।

अब तो यही अत्युत्तम है कि श्री श्यामा-श्याम के युगल चरणों की छबि एवं उनके प्रेम रङ्ग में रँग कर तू सब से निर्मम हो कर श्री वृन्दावन में वास कर।।२१।। जिस वृन्दावन में विलक्षण गौर-श्याम सुकुमार विहार करते हैं, उसका सदैव तन-मन के समर्पण पूर्वक सेवन करना चाहिये, यही सर्वोपरि सिद्धान्त है।।२२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं अपने हृदय की गुह्यतम बात बताता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो—श्री श्यामा-श्याम के चरणों में ही चित्त को लगाओ। यह जो अवसर हाथ आया है, इसे निकलने मत दो अन्यथा पीछे पछताना पड़ेगा।।२३।। जीवन की लगभग सारी आयु क्षीण हो चुकी है और जो कुछ थोड़ी सी शेष है, वह भी जा रही है। यदि तू दिवस काल में कुछ नहीं कर सका है, तो अब रात्रि को तो व्यर्थ मत जाने दे अर्थात् जीवन का जो भी समय बचा है, उसे भजन में लगा।।२४।। सांसारिक व्यवहार प्रपञ्च से उपरत होकर युगल छबि में मन को अटकाने से ही परम सुख की प्राप्ति होगी और सारी विषय-वासनाएँ निरस्त हो जायेंगी।।२५।।

अब की देही मनुज की, पाई है किहुँ भाग।
जुगल चंद पद कमल सौं, कीजै 'ध्रुव' अनुराग।।२६।।
समुझत नहिं देखत सुनत, घटति नाहिं ललचानि।
जैसे खोटे तुरँग की, मिटत न मन की बानि।।२७।।
सुख तौ सोई जानिबौ, इक रस रहै दिन साथ।
सो सुख दुख सम जानियै, (जो) होइ पराये हाथ।।२८।।
नख-सिख लौं भूषन जिते, अंगनि छबिहि निहारि।
सुख सीवाँ माधुर्य रस, छिन-छिन यहै विचारि।।२९।।
जाकै यह संपति सदा, सोइ धनी जग माहिं।
ताकौ माया काल की, पवनहुँ परसत नाहिं।।३०।।

नाना योनियों में भटकने के पश्चात् न जाने किस भाग्योदय के फलस्वरूप इस बार यह मनुष्य देह प्राप्त हुआ है, अतएव युगल किशोर के चरण कमलों से ध्रुव (अटल) अनुराग ही करना चाहिए।।२६।। यह मन अत्यन्त चञ्चल है। इसका जगत् सम्बन्धी लालच देखते, सुनते एवँ समझते हुए भी कम नहीं होता, जैसे कुचाली घोड़े की अड़ने की टेव (आदत) नाना प्रयासों के पश्चात् भी नहीं जाती।।२७।। जो निरन्तर अपने हाथ में हो वही सुख, सुख है। जो पराधीन हो, वह सुख नहीं दुःख ही है, ऐसा समझना चाहिए।।२८।। (श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री प्रिया-प्रियतम के चरणों में अनुराग करने के लिए स्वस्थ मन की परम आवश्यकता है और उसी स्वस्थ मन में परम प्रेम का सुखास्वादन होता है, ऐसा मन ही श्री युगल के स्वरूप चिन्तन का अधिकारी होता है।) श्री श्यामा-श्याम के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में नख-शिख पर्यन्त जितने भूषण धारण हैं, उन भूषणों से अलङ्कृत छबि-छटा का चिन्तन करो, क्योंकि यह छबि ही माधुर्य रसमय शाश्वत सुख की चरम सीमा है, अतएव प्रतिपल इसका ही चिन्तन करते रहना चाहिए।।२९।। यह चिन्तन-सम्पत्ति जिसकी थाती है, वही जगत् में धनी है, उसे माया-काल का पवन भी स्पर्श नहीं कर सकता।।३०।।

कुंज भवन रचना रुचिर, सेज सुरंग अनूप।
ता पर बैठे देखि 'ध्रुव' अद्‌भुत सहज सरूप।।३१।।

सफल जीवन दोहा

जाके नैननिं झलकि रहे, गौर-स्याम अभिराम।
तिनहीं 'ध्रुव' यह देह धरि, पायौ है विश्राम।।३२।।

प्रेम भजन की सर्वोपरि श्रेष्ठता दोहा

रूप सिंधु में पैठि 'ध्रुव', जौ मन सकहिं सँभारि।
प्रेम रतन तब कर परै, विषया-विष दै डारि।।३३।।
ग्यान भजन जो करहु बहु, कौन करै बकवाद।
विविध भाँति विंजन करौ, लौन बिना नहिं स्वाद।।३४।।
प्यार बिना नहिं सोहई, करौ भजन बहु ग्यान।
दीपक बहु इकठौर ह्वै, होत न भान समान।।३५।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि कुञ्ज-भवन की रचना अपार शोभामय है; जहाँ अनुपम सुरङ्ग शय्या बिछी है, जिस पर अद्भुत एवं सहज रूप लावण्य-मय युगल विराजमान हैं, ऐसा देखना चाहिये।।३१।।

जिनके नेत्रों में परम सुन्दर गौर-श्याम की छबि छटा निरन्तर प्रतिबिम्बित रहती है, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मानव-देह धारण कर उन्होंने ही परम विश्रान्ति का अनुभव किया है।।३२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रूप-समुद्र के अन्तर्देश में प्रवेश कर यदि तू मन को संयत रख सकता है, तो अवश्यमेव विषयरूपी विष का त्याग हो कर तुझे प्रेम-रत्न की उपलब्धि होगी।।३३।। व्यर्थ वाद-विवाद से क्या प्रयोजन ? अद्वैत ब्रह्म का विचार चाहे कितना ही करते रहो, प्रेम-रस का स्वाद नहीं मिलता। यथा विविध प्रकार के उत्तमोत्तम व्यञ्जन भी लवण के बिना स्वादहीन ही लगते हैं।।३४।। ज्ञान-भजन (अद्वैतवाद) की चाहे जितनी ही बातें करो, प्रेम के बिना सब नीरस हैं ; जैसे बहुत से प्रज्वलित दीपक भी एकत्र हो कर प्रकाशमान सूर्य की समता नहीं कर सकते।।३५।।

बहुत भाँति लै चतुरई, करौ भजन की बात।
रंच प्रेम की छटा बिनु, सब नीरस ह्वै जात।।३६।।
पानिप मोती की जथा, ऐसौ भजन सनेह।
जाके उर झलकत रहै, तिनहिं धरी 'ध्रुव' देह।।३७।।
करत भजन विधि सौं बिंध्यौ, अरु अचार बहुतेर।
प्रेम छटा की झलक बिनु, होत है सब अंधेर।।३८।।
प्रेम छटा रंचक नहीं, विधि कौ भजन अपार।
स्वादी स्वाद न पावही, घृत बिनु ज्यौं ज्यौनार।।३९।।
प्रेम आँच के लगत ही, ढरकि चलत मन मैन।
हियौ छकै तन पुलकि ह्वै, भरि-भरि ढारैं नैन।।४०।।

कोई भी बुद्धिवादी युक्तियों के द्वारा ज्ञान-कर्मादिक प्रधान भजन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन क्यों न करे, किन्तु प्रेम की किञ्चित् छटा के अभाव में वे सारी बातें निःसार हैं।।३६।। प्रेममय भजन तो दमकते हुए मुक्ता के समान है, जिस हृदय में यह प्रेम-भजन झलकता रहता है, वस्तुतः उन्हीं का देह धारण करना सार्थक है।।३७।। शास्त्रीय विधि-विधान से बँध कर और बहुत से आचार-विचारों से घिर कर किया जाने वाला भजन प्रेम-छटा के अभाव में विडम्बना मात्र है।।३८।। जिस भजन में विधि-विधान तो अपार हैं किन्तु हृदय में रञ्चमात्र भी प्रेम का प्रकाश नहीं है, वह भजन ऐसा ही है, जैसे घृत-रहित ज्यौनार में आस्वादक को कोई रसास्वाद प्राप्त नहीं होता।।३९।। प्रेम-ऊष्मा के स्पर्शमात्र से मन रूपी मोम द्रवित होकर प्रवाहित होने लगता है। हृदय रस-मत्त हो जाता है, तन रोमाञ्चित हो उठता है, नेत्र भर-भर आते हैं और प्रेमाश्रु ढलने लगते हैं।।४०।।

अपरस ग्यान समान जम, भजन धर्म आचार।
पाहन कबहुँ न होइ मृदु, परयौ रहै जलधार।।४१।।
बहु रँग माया विपिन घन, तहाँ फिरै सुख मानि।
ऐंचि खैंचि या मन मृगहि, गहि सतसंगहि आनि।।४२।।
मन तें चंचल नाहिं कछु, नैंकु न कहुँ ठहरात।
तब ही तौ 'ध्रुव' होत बस, परै प्रेम की घात।।४३।।
बिचल्यौ फिरै भली नहीं, प्रेम गली छुटि जाइ।
रहै एक ही ठौर लगि, जुगल चरन चित लाइ।।४४।।
प्रेम रंग सौं रँगे जे, नहिं आनत उर आन।
अद्भुत जुगल विहार रस, तेई करिहैं पान।।४५।।

अस्पर्श (छुआछूत) सम्बन्धी ज्ञान, आचारपूर्ण धर्माचरण, मन के संयम, ये सब मन को कठोर बनानेवाले धर्म हैं, यथा अनन्तकाल से जल में निमग्न रहनेवाला पाषाण-खण्ड कठोर ही बना रहता है, जो कभी मृदुल होता ही नहीं ।।४१।। बहुरङ्गी माया के घनीभूत अरण्य में सुख मानकर यह मनरूपी मृग भटक रहा है, इसे खींच पकड़ कर जैसे बने वैसे सन्तों की सन्निधि में लाना चाहिये इसी में इसका कल्याण है।।४२।। मन अत्यन्त चञ्चल है, जो कहीं स्थिर ही नहीं होता, प्रेम के बन्धन में आकर ही वश में होता है।।४३।। ज्ञान-कर्म प्रधान आचार-धर्मों में भटकना श्रेयस्कर नहीं है; क्योंकि इस भटकन से उपासक प्रेम-पथ से च्युत हो जाता है; अतएव एकमात्र श्री युगल चरणों में ही चित्त को स्थिर कर देना चाहिये।।४४।। जिनके चित्त युगल किशोर के प्रेमानुराग-रञ्जित हैं और जो इस रस के अतिरिक्त हृदय में किसी अन्य साधन-भजन को स्थान नहीं देते, एकमात्र वही अत्यद्भुत वृन्दावनीय युगल- विहार रस-पान के अधिकारी हैं।।४५।।

घाइल कबहूँ नहिं भयौ, नवल नेह के तीर।
अटक बिना ध्रुव खटक नहिं, कहा जानै पर पीर।।४६।।

प्रेम-मार्ग का काठिन्य दोहा

चढ़ि कै मैन तुरंग पर, चलिबौ पावक माँहि।
प्रेम-पंथ ऐसौ कठिन[१], सब कोउ निबहत नाहिं।।४७।।
परयौ न रूप प्रवाह में, परस्यौ नहिं उर नेह।
सुनि 'ध्रुव' तिनि या जगत में, धरी बाद ही देह।।४८।।
प्रेम प्रकार अनेक विधि, तिनमें उत्तम भाँति।
अद्भुत चरित दुहूँनि के, जिनके उर झलकाँति।।४९।।
प्रेम भानु के उदै तें, मिटत है भ्रम सब केर।
खंड-खंड ह्वै जाइ 'ध्रुव', माया-मोह अँधेर।।५०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, जो कभी नित्य नव प्रेम के वाणों से आहत नहीं हुआ एवं जिसका चित्त कभी किसी रूपराशि में अटका ही नहीं, वह प्रेम-पीड़ा और हृदय की प्रेम-विकलता को क्या समझ पायेगा ?।।४६।।

मोम के अश्व पर बैठ कर धधकती हुई अग्नि ज्वाला में से होकर निकल जाना जितना कठिन है, उतना ही कठिन है, प्रेम-मार्ग पर चलना। प्रायः इस पथ का निर्वाह सब से नहीं हो पाता।।४७।। जो रूप-तरङ्गों में नहीं बहा और जिसके हृदय में प्रेम का स्पर्श नहीं हुआ, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उसने संसार में वृथा ही देह धारण की अर्थात् उसका जन्म-जीवन निरर्थक है।।४८।। जिनके हृदय में युगलप्रिया-प्रियतमका अद्भुत चरित्र झलकता है, उनका प्रेम विविध प्रेम-प्रकारों में सर्वोत्तम है।।४९।। प्रेम सूर्य के उदय होते ही सब की, सब प्रकार की भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं; और माया-मोह का अन्धकार छिन्न-भिन्न हो जाता है।।५०।।

---

१ पाठान्तर ऐसौ कठिन है प्रैम मग,

जहाँ प्रीतम तिहिं देस की, प्यारी लागत पौन।
प्रेम छटा जाने बिना, यह सुख समुझै कौन।।५१।।
नव किसोरता माधुरी, दंपति रूप निहारि।
तिहिं सुख के 'ध्रुव' निमिष पर, ज्ञान मुक्ति सब वारि।।५२।।

नीरसता पर खेद दोहा

जाकौ हीयौ सरस नहिं, क्यौं समुझै रस रीति।
बिन अनुभव जानैं कहा, कैसी होति है प्रीति।।५३।।
मन न मिल्यौ तन निकट है, तहाँ कहा सुख होइ।
बिनु गुन मन-मनियाँ कहौ, कैसैं लीजै पोइ।।५४।।
ग्यान बिना पसु हू कछू, समुझत प्रीति कौ रंग।
मोह बँध्यौ पाछै फिरै, तजै न कबहूँ संग।।५५।।

प्रियतम के देश से आनेवाला समीर भी प्रेमी को प्रिय लगता है किन्तु प्रेम-छटा की अनुभूति के बिना इस सुख को कौन समझ सकता है।।५१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं—"हे भाई,! दम्पति की नव कैशोर रूप-माधुरी का अवगाहन कर, जिस सुख के एक निमेष पर ज्ञान और मुक्ति सब न्यौछावर हैं।।५२।।

जो व्यक्ति रस-भावना युक्त नहीं है, वह प्रीति की मर्म- विधाओं को कैसे समझ पाएगा; क्योंकि वह प्रेम के अनुभवों से रहित है।।५३।। दो शरीरों की निकटता होने पर भी यदि मन की निकटता नहीं है, तो वहाँ क्या सुख-स्वाद होगा। बिना धागे के मन रूपी मणियाँ कैसे पिरोई जा सकती हैं ?।।५४।। पशु यद्यपि ज्ञानहीन होता है, तो भी वह प्रेम का बोध रखता है; तभी तो अपने पालक के मोह में बँधा उसके पीछे-पीछे फिरता है, और कभी साथ नहीं छोड़ता।।५५।।

ग्यान सहित नर देह वर, भरत-खंड में होइ।
जो नहिं समुझ्यौ प्रेम रस, ताकौं रहियै रोइ।।५६।।
प्रेमी मलिन न होइ 'ध्रुव' जाकौ उज्जल हीय।
इक रस जाके उर बसैं, रसिक लाड़िली-पीय।।५७।।

उपसंहार दोहा

अब ध्रुव ऐसी चाहिये, सबही तें मन फेरि।
कै रसिकन कौ संग गहि, जुगल चंद छबि हेरि।।५८।।
दोहा ख्याल हुलास के, तहाँ प्रबंध कछु नाहिं।
आगैं पाछैं हैं भये, जो आये उर माँहिं।।५९।।
उलटौ पंथ है प्रेम कौ, तहाँ रह्यौ मन हारि।
जसहू सुनि लागत बुरौ, मीठी लागति गारि।।६०।।

भारतवर्ष जैसे पावन देश में ज्ञानयुक्त श्रेष्ठतम मानव देह प्राप्त करके भी जिसने प्रेम-रस को नहीं जाना, वह वास्तव में पश्चात्ताप के योग्य ही है।।५६।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उज्ज्वल हृदयवाला प्रेमी निष्कपट एवं वासना रहित होता है, क्योंकि उसके हृदय में निरन्तर रसिक लाड़िली-लाल विराजते हैं।।५७।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब तो यही कर्त्तव्य है कि समस्त जागतिक सम्बन्धों से मन मोड़ कर रसिक सन्तों का सङ्ग प्राप्त करना चाहिये एवं युगल चन्द्र प्रिया-प्रियतम की मुख-छबि का ही ध्यान करना चाहिये।।५८।। "ख्याल हुलास" के दोहों में कोई क्रम विशेष नहीं है, अतएव पूर्वापर का इनमें कोई तारतम्य नहीं है। जैसा कुछ जब चित्त में स्फूर्त हुआ वैसा आगे-पीछे लिखा गया।।५९।। क्योंकि प्रेम-पन्थ ही उल्टा है, जहाँ मन की गति खो जाती है। तभी तो इस प्रेम-पन्थ में अपनी प्रशंसा बुरी लगती है और प्रेमियों की ओर से आने वाली गाली भी मीठी लगती है।।६०।।

●

६

भक्त-नामावली

श्री गुरु परम्परा-स्मरण

दोहा

(श्री) हरिवंश[1] नाम ध्रुव' कहत ही, बाढ़ै आनँद-बेलि।
प्रेम-रंग उर जगमगै, जुगल नवल रस-केलि।।१।।
निगम ब्रह्म परसत नहीं, जो रस सब तें दूरि।
कियौ प्रकट हरिवंश जू, रसिकनि जीवन-मूरि।।२।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिकाचार्य शिरोमणि श्री हित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु का मङ्गलमय नामोच्चारण करते ही आनन्द की लता लहलहा उठती है एवं युगल किशोर की नित्य नवल रस-क्रीड़ा का प्रेम-विलास मेरे हृदय में जगमगाने लगता है।।१।। जो नित्य-विहार-रस, वेद एवं वेद प्रतिपाद्य ब्रह्म के स्पर्श से अतीत तथा सभी से दूरातिदूर अवस्थित है, रसिक-जनों के जीवन-प्राण उस गुह्याति-गुह्य रस का प्रादुर्भाव आचार्य श्री हित हरिवंशचन्द्र ने (विश्व के हित में) किया है।।२।।

परिचयात्मक विवरण –

१. गोस्वामी श्री हित हरिवंश–श्री हित राधावल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक एवं हितोपासना सिद्धान्त के प्रवर्त्तकाचार्य हैं। इनका जन्म विक्रम संवत् १५५९, वैशाख शुक्ल एकादशी को मथुरा मण्डलान्तर्गत 'बाद' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम श्री व्यास मिश्र और माता का नाम श्री तारा रानी था। ये व्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे। सम्प्रदाय में साक्षात् प्रेम (हित) के अवतार माने जाते हैं।

(श्री) वनचंद्र[१] चरन अबुंज भजहि, मन क्रम बचन प्रतीति।
वृंदावन निज प्रेम की, तब पावै रस-रीति।।३।।
(श्री) कृष्णचंद[२] के कहत ही, मन कौ भ्रम मिटि जाइ।
विमल भजन सुख सिंधु में, रहै चित्त ठहराइ।।४।।
(श्री) गोपीनाथ[३] पद उर धरैं, महा गोप्य रस-सार।
बिनु विलंब आवै हियैं, अद्भुत जुगल-विहार।।५।।
पति, कुटुंब देखत सबै, घूँघट-पट दिये डारि।
देह गेह बिसर्‌यौ तिनहिं, (श्री) मोहन[४] रूप निहारि।।६।।

मनसा वाचा कर्मणा विश्वासपूर्वक श्री वनचन्द्र जी के चरण-कमलों का भजन करने से वृन्दावन रस-रीति के सहज प्रेम की प्राप्ति होती है।।३।। श्री कृष्णचन्द्र का नामोच्चारण करते ही मन का संशय मिट जाता है और निर्मल (निष्काम) प्रेम-भजन के सुख-समुद्र में मन स्थिर हो जाता है।।४।। श्री गोपीनाथ जी के चरणों को हृदय में धारण करने से अत्यन्त गोपनीय रस का भी सार अद्भुत युगल-विहार शीघ्र हृदय में आ जाता है।।५।। श्री मोहनचन्द्र का रूप-दर्शन करते ही नारियों ने देह-गेह की विस्मृति पूर्वक पति एवं कुटुम्बादि की परवाह किये बिना अपनी लज्जा का परित्याग कर दिया था।।६।।

---

१. गोस्वामी श्री वनचन्द्र जी अपने पिता श्री हित हरिवंश जी के नित्य लीला-लीन होने के पश्चात् श्री वनमालीदास नाम से श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य-पीठ के अधिकारी हुए। सम्प्रदाय में इन्हें वृन्दावन-धाम का अवतार-स्वरूप माना जाता है। जन्म सम्वत् १५८५ वि॰ और निकुञ्जगमन १६६५ वि॰।

२,३,४. श्री कृष्णचन्द्र, श्री गोपीनाथ एवं श्री मोहनचन्द्र-तीनों ही गो॰ श्री हित हरिवंश के पुत्र हैं।

धीर गँभीर समुद्र सम, सील सुभाव अनूप।
सब अँग सुंदर[१] हँसत मुख, अद्भुत सुखद सरूप।।७।।

पुराण-कालीन भक्त दोहा

शुक, नारद, उद्धव, जनक, प्रह्लादिक, सनकादि।
ज्यौं हरि आपुन नित्य हैं, त्यौं ये भक्त अनादि।।८।।

मध्य-कालीन भक्त दोहा

प्रकट भयौ जयदेव[२] मुख, अद्भुत गीत गोविंद।
कह्यौ महा सिंगार रस, सहित प्रेम-मकरंद।।९।।

श्री सुन्दरवर अनुपम शील, स्वभाव युक्त एवं समुद्रवत् धीर, वीर, गम्भीर और सभी अङ्गों में सुन्दर हैं। उनके मुख-मण्डल पर मधुर मुस्कान खेलती रहती है।।७।।

जिस प्रकार श्री हरि स्वयं नित्य, अनादि और अनन्त हैं, उसी प्रकार श्री शुकदेव, देवर्षि नारद, श्री कृष्ण-सखा उद्धव, विदेहराज जनक, महा-भागवत प्रह्लाद एवं सनक, सनन्दन आदि भक्त भी अनादि हैं।।८।।

रसिक भक्त श्री जयदेव कविराज के श्री मुख से महान् शृङ्गार-रस पूर्ण अद्भुत काव्य गीत-'गोविन्द का' प्रादुर्भाव हुआ; जिसमें प्रेम रूपी पराग का विस्तार हुआ है।।९।।

---

१. श्री सुन्दरवर जी गोस्वामी श्री वनचन्द्र जी के ज्येष्ठ पुत्र थे, जिन्होंने सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा का क्रम-निर्वाह किया।

२. श्री जयदेव कविराज का जन्म किन्दुविल्व ग्राम में हुआ था, इनके पिता का नाम भोजदेव था, ये बाल्यावस्था में ही नीलाञ्चल धाम जगन्नाथपुरी में आकर बस गये थे। ये परम विरक्त थे, फिर भी भगवान् श्री जगन्नाथ देव की आज्ञा से श्री पद्मावती से इनका विवाह हुआ। इन्होंने गीत-गोविन्द नामक शृङ्गारपूर्ण काव्य की रचना की, जिसमें श्री श्यामा-श्याम की कुञ्ज-केलि वर्णित है। ये श्री जयदेव कविराज, भक्त विल्वमंगल के समकालीन हैं। (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-४४)

अरिल्ल

पद्मावति जयदेव, प्रेम बस कीने मोहन।
अष्ट पदी जो कहै, सुनत फिरैं ताके गोहन।।१०।।

दोहा

श्रीधर[१] स्वामी तौ मनौं, श्रीधर प्रकटे आनि।
तिलक भागवत कियौ रचि, सब तिलकनि परवानि।।११।।
रसिक अनन्य हरिदास[२] जू, गायौ नित्य विहार।
सेवा हू में दूरि किए, विधि-निषेध जंजार।।१२।।

श्री पद्मावती एवं श्री जयदेव भक्त ने मोहन लाल श्री कृष्ण को अपनी प्रेमाभक्ति से वशवर्ती बना लिया। यदि कोई भी जयदेव-रचित गीत-गोविन्द की अष्ट-पदियों का गान करता सुनाई दे, तो रिझवार श्यामसुन्दर सुनते हुए उसके पीछे-पीछे फिरने लगते हैं।।१०।। श्री श्रीधर स्वामी तो मानो साक्षात् श्रीधर अर्थात् भगवान् लक्ष्मीनाथ ही पृथ्वीतल पर प्रकट हो गये, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण की टीका लिखी। यह टीका अन्य समस्त टीकाओं से श्रेष्ठ है।।११।। रसिक-अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास जी ने श्री श्यामा-कुञ्ज-विहारी के नित्य-विहार का अपनी वाणी में गान किया है। प्रेम के रस में डूबकर उन्होंने अपने आराध्य की प्रकट सेवा-पूजा में वैदिक विधि-निषेध जञ्जाल को दूर हटा फैंका था।।१२।।

परिचयात्मक विवरण –

१. श्रीधर स्वामी–श्रीमद्भागवत के सर्वश्रेष्ठ टीकाकार हैं। (देखिये श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-४५)

२. स्वामी श्री हरिदास जी–इन्हें श्रीनाभाजी ने 'आसुधीर उद्योतकर' बताया है। सखीभाव के आचार्यों में अग्रगण्य थे और श्रेष्ठ संगीतज्ञ। (देखिये भक्तमाल, छप्पय संख्या-९१) सम्प्रदायकी मान्यता है कि श्रीहरिदासजी महाराज श्री ललिता सखी के अवतार थे।

सघन निकुंजनि रहत दिन, बाढ़्यौ अधिक सनेह।
एक बिहारी हेत लगि छाँड़ि दिये सुख-गेह।।१३।।
रंक छत्र-पति काहु की, धरी न मन परवाह।
रहे भींजि रस भजन में, लीने कर करुवाह।।१४।।
बल्लभ-सुत विठ्ठल[1] भये, अति प्रसिद्ध संसार।
सेवा विधि जिहिं समय की, कीनी तिहि व्यौहार।।१५।।
राग-भोग अद्‌भुत विविध, जो चहियै जिहि काल।
दिनहिं लड़ाये हेत सौं गिरधर श्री गोपाल।।१६।।

स्वामी जी का श्री वृन्दावन से अधिक प्रेम बढ़ गया था अतएव वे अहर्निश सघन निकुञ्जों में ही निवास करते थे।।।१३।। उन्होंने श्री विहारी जी की अनन्य प्रीति के लिए देह-गेहादि की समस्त सुख-सम्पत्तियों को त्याग दिया था। केवल व्रज-रज निर्मित जलपात्र करुवा ही जिनका सग्रंह था, वे परम अकिञ्चन से लेकर छत्रधारी किसी राजाधिराज की भी कोई अपेक्षा नहीं रखते थे। तात्पर्य यह कि परम विरागी एवं रससिक्त परम रसिक सन्त थे।।१४।। श्रीमद्‌वल्लभाचार्य महाप्रभु के सुपुत्र श्री विठ्ठलनाथ जी विश्व-विख्यात महापुरुष हुए, जिन्होंने अपने आराध्य की अष्टयाम सेवा-विधि का, पूर्ण रीति एवं समय के अनुसार परिपालन किया।।१५।। उत्तमोत्तम प्रकार के विविध व्यञ्जन एवं राग-भोग जब जैसे और जिस समय अर्पित करने चाहिये, वह सब उन्होंने किये और इस प्रकार अपने आराध्य श्री गिरिधर गोपाल को जीवन पर्यन्त बड़े प्रेम से दुलराया।।१६।।

---

१. श्री विठ्ठलनाथ—विष्णु स्वामी सम्प्रदायान्तर्गत पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्री वल्लभ कुल के आचार्य थे। (देखिए श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय सं-७६)

गौड़ देस सब उद्धरयौ, प्रकट कृष्ण चैतन्य[१]।
तैसेहि नित्यानंदहू, रस में भये अनन्य।।१७।।
पावत ही तिनकौ दरस, उपजै भजनानंद।
बिनु ही श्रम छुटि जाहिं सब, जे माया के फंद।।१८।।
रूप-सनातन[२] मन बढ्यौ, राधा-कृष्ण अनुराग।
जानि विश्व नश्वर सबै, तब उपज्यौ बैराग।।१९।।
विष समान तजि विषै-सुख, देस सहित परिवार।
वृंदावन कौं यौं चले ज्यौं सावन जल-धार।।२०।।

महाप्रभु श्री कृष्ण चैतन्य ने प्रकट होकर हरिनाम के बल से सम्पूर्ण गौड़ देश का उद्धार किया। उन्हीं के समान श्री नित्यानन्द प्रभु भी प्रेम-लक्षणा भक्ति के अनन्य रसिक भक्त हुए।।१७।। उनका दर्शन करते ही दर्शन करने वाले के मन में हरि-भजन का आनन्द प्रकट हो जाता था एवं उनके दर्शन मात्र से ही समस्त मायिक-बन्धन अपने आप छूट जाते थे।।१८।। जब श्री रूप एवं सनातन जी के मन में श्री राधा-कृष्ण के अनुराग की वृद्धि हुई एवं संसार की विनश्वरता की प्रतीति हुई, तब उनको संसार से निर्वेद (वैराग्य) हुआ।।१९।। उन्होंने सांसारिक सुख-भोग, जन्म-भूमि, परिवार एवं समस्त धन-धान्य को विषवत् त्याग दिया और वेगवती श्रावण-सरिता की भाँति वृन्दावन के लिए चल दिये।।२०।।

---

१. श्री कृष्ण चैतन्य—अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य, पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र, माता का नाम शची, बंगदेश नवद्वीप निवासी, जन्म सं॰ १५४२, फाल्गुन पूर्णिमा। (देखिये श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-७२)

२. रूप-सनातन—श्रीमन्महाप्रभु चैतन्य देव के अन्तरङ्ग पार्षद, श्रीमद् भागवत की वैष्णव तोषिणी टीका एवं अनेक गौडीय भक्ति-ग्रन्थों के रचयिता। (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-८९)

तृन तैं नीचौ आपकौं, जानि बसे बन माहिं।
मोह छाँड़ि ऐसैं रहे, मनौं चिन्हारिहु नाहिं।।२१।।

अरिल्ल

रघुनंदन सारंग जीव[1], तिन पाछैं आये।
कृष्ण कृपा करि सबै, आनि निज धाम बसाये।।२२।।

दोहा

भजन रसिक रघुनाथजी[2], राधा-कुण्ड स्थान।
लौंन तक्र ब्रज कौ लियौ, परस्यौ नहिं कछु आन।।२३।।

श्रीवन आकर अत्यन्त दैन्य-पूर्ण रहनी में रहकर अपने आपको तृण से भी अत्यन्त तुच्छ समझ कर उन्होंने श्रीवन का वास किया। यद्यपि श्री रूप एवं सनातन सहोदर भ्राता थे, तथापि सांसारिक मोह से ऊपर उठकर ऐसे श्रीवन-वास किया मानो दोनों की पारस्परिक कोई पहचान ही न हो।।२१।। श्री रघुनन्दन, सारङ्ग एवं श्री जीव गोस्वामी, श्री रूप-सनातन के पश्चात् श्री वृन्दावन आये। वृन्दावन-विहारी श्री कृष्ण ने कृपा करके उन्हें अपने धाम में बुलाकर बसा लिया।।२२।। भजन-रस के रसिक श्री रघुनाथदास गोस्वामी ने राधा-कुण्ड में निवास किया। उन्होंने अपने जीवन में व्रजवासियों के घरों से मठ्ठा (छाछ) एवं थोड़ा सा नमक मात्र ही ग्रहण किया। उन्होंने अपनी इस दैनिक-चर्या में केवल इस आहार के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का स्पर्श तक नहीं किया।।२३।। व्रज एवं गिरिराज को वन्दन

---

१. जीव–श्री सनातन गोस्वामी के शिष्य–षट्संदर्भ, हरिनामामृत, व्याकरण आदि के रचयिता, उद्भट विद्वान्। (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-९३)

२. श्री रघुनाथदास गोस्वामी–बङ्ग देश निवासी श्री गोवर्धनदास के इकलौते पुत्र थे। इन्होंने १६ वर्षों तक नीलाञ्चल में निवास करके अनन्यभाव से श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा की। उनके तिरोधान के बाद विरहव्यथित होकर व्रज में आ गये और लगभग ४८ वर्षों तक वहाँ रहकर निकुंजवास प्राप्त किया।

वंदन करिकै चिंतवन, गौर-श्याम अभिराम।
सोवतहू रसना रटै, राधा-कृष्ण सुनाम।।२४।।
श्री बिलास, ब्रजनाथ अरु, श्री चँद, मुकुंद प्रवीन।
मदन-मोहन पद-कमल सौं, अधिक प्रीति तिन कीन।।२५।।
महा पुरुष नंदन भये, करि तनु सकल सिंगार।
सखी-रूप चिंतत फिरैं, गौर-श्याम सुकुँवार।।२६।।
नैंन सजल तिहिं रंग में, चित पायौ विश्राम।
विवस वेगि ह्वै जात सुनि, लाल-लाड़िली नाम।।२७।।
श्रीकृष्णदास हुते जंगली, तेऊ तैसी भाँति।
तिनके उर झलकत रहे, हेम नील-मनि काँति।।२८।।

(दण्डवत्) प्रणाम करके अहर्निश गौर-श्याम श्री लाड़िली-लाल के चिन्तन में मग्न रहते थे। उनकी जिह्वा निद्राकाल में भी श्री राधा-कृष्ण के मधुर नामों की रटन करती रहती थी।।२४।। श्री विलास, व्रजनाथ, श्रीचन्द एवं परम चतुर मुकुन्द नामक भक्तों ने ठाकुर श्री मदनमोहन के श्री चरण-कमलों से अधिकाधिक प्रीति की।।२५।। श्री नन्दन नाम के एक महापुरुष हो गये, जो अपने शरीर का नख से शिख तक सखी-रूप का शृङ्गार करके परम सुकुमार श्री गौर-श्याम युगल का चिन्तन करते हुए रसमग्न श्री वृन्दावन-वीथियों में विचरण करते थे।।२६।। युगल चिन्तन के आनन्द में उनके नेत्र सजल बने रहते थे, उन्होंने श्री श्याम-श्यामा की चरण- भक्ति में परम विश्राम का अनुभव किया। श्री नन्दन जी बड़े भावुक थे, वे श्री लाड़िली-लाल का नाम श्रवण करते ही भाव-विभोर एवं प्रेम-विवश हो जाया करते थे।।२७।। कुरु-जांगल देश के निवासी श्री कृष्णदास जी श्री नन्दन जी की तरह भावुक थे, उनके हृदय में हेमनील-मणि की भाँति गौर-श्याम निरन्तर झलमलाते रहते थे।।२८।।

जुगल प्रेम-रस अवधि में परयौ प्रबोध[1] मन जाइ।
वृंदावन-रस माधुरी, गाई अधिक लड़ाइ।।२९।।
अति विरक्त संसार ते, बसे विपिन तजि भौन।
प्रीति सहित गोपाल भट[2], सेये राधा-रौन।।३०।।
घमंडी रस में घमड़ि रहयौ, वृंदावन निज धाम।
बंशीवट-तट वास किय, गाये स्यामा-स्याम।।३१।।
भट्ट नरायन[3] अति सरस, ब्रज मंडल सौं हेत।
ठौर-ठौर रचना करी, प्रकट कियौ संकेत।।३२।।

श्रीमद् प्रबोधानन्द का मन युगल प्रेम-रस की चरम-सीमा (नित्य-विहार) में जा फँसा। अतएव उन्होंने अधिक लाड़-प्यार पूर्वक श्री वृन्दावन-रस-माधुरी का काव्यरूप में गान किया।।२९।। श्री गोपाल भट्ट संसार से विरक्त होकर प्रिया-प्रियतम के धाम श्री वृन्दावन में आकर बस गये और उन्होंने ठाकुर श्री राधारमण की आजीवन प्रीति पूर्वक सेवा की।।३०।। घमण्डी अर्थात् घमण्डदेवाचार्य वृन्दावन-रस में रम गये थे, उन्होंने श्री श्यामा-श्याम का भजन, गान, चिन्तन करते हुए श्री वृन्दावन धाम में वंशीवट के समीप यमुनातट पर वास किया।।३१।। श्री नारायण भट्ट जी अत्यन्त सरस भक्त थे। व्रज-मण्डल से उनका अत्यधिक प्रेम था। उन्होंने व्रज में श्री कृष्ण के विविध लीला-स्थलों में तत्तत स्थल के अनुरूप लीलाओं की रचना की एवं बरसाना और नन्दगाँव के मध्य में सङ्केत-वट नामक लीला-स्थली का प्राकट्य किया।।३२।।

---

१. श्री प्रबोधानन्द सरस्वती—प्रथम श्री कृष्ण चैतन्य के अनुगत दण्डी संन्यासी, पश्चात् श्रीहित हरिवंशचन्द्र जी के शरणागत, 'श्रीवृन्दावन महिमामृतम्' आदि ग्रन्थों के रचयिता।

२. श्री गोपाल भट्ट – श्री राधारमण जी के प्राकट्यकर्ता थे। (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-९४)

३. श्री नारायण भट्ट – माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के अनुयायी एवं व्रज-भक्ति विलास के रचयिता।

अरिल्ल

वर्द्धमान[1] श्रीभट्ट[2] अरु गंगल ब्रज बृंदावन गायौ।
करि प्रतीति सर्वोपरि जान्यौ, तातें चित्त लगायौ।।३३।।

दोहा

भट्ट गदाधर[3] नाथ भट्ट, विद्या-भजन प्रवीन।
सरस कथा बानी मधुर, सुनि रुचि होत नवीन।।३४।।
गोविंद स्वामी[4] गंग अरु, बिष्नु विचित्र बनाइ।
पिय-प्यारी कौ जस कहयौ, राग रंग सौं छाइ।।३५।।

श्री वर्द्धमान जी, श्री भट्ट जी और श्री गङ्गल जी नामक भक्तों ने अपनी वाणी में व्रज एवं वृन्दावन का लीला-रस-गान किया और बड़े विस्वास के साथ व्रज-वृन्दावन को ही सर्वोपरि जान-मानकर उससे चित्त की प्रीति जोड़ी।।३३।। श्री गदाधर भट्ट जी, श्री नाथ भट्ट नामक भक्त विद्या और भजन में अतिशय निपुण थे। दोनों ही अपनी मधुर वाणी से श्रीमद्भागवत की सरस कथा का गान करते थे, जिसे सुनकर भक्तों के मन में भगवान् के प्रति रुचि बढ़ती थी।।३४।। श्री गोविन्द स्वामी एवं श्री गङ्ग कवि ने रसपूर्ण विचित्र पदों की रचना करके एवं राग-रङ्ग से भरकर श्री प्रिया-प्रियतम राधा-श्यामसुन्दर का यशोगान किया।।३५।।

---

१. श्री वर्द्धमान, श्री गङ्गल श्रीमद्भागवत के प्रख्यात प्रवक्ता (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-८२)
२. श्रीभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य, युगल शतक के रचयिता (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-७६)
३. श्री गदाधर भट्ट—माध्व गौडेश्वर सम्प्रदाय के एक विशिष्ट आचार्य, ब्रज भाषा के उत्कृष्ट कवि। (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-१३८)
४. गोविन्द स्वामी—अष्टछाप के संस्थापक, श्री विठ्ठलनाथ गोस्वामी के शिष्य, संगीत के महापण्डित (देखिये श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-१०२)

मन मोहन सेवा अधिक, कीनी हे रघुनाथ।
न्यारीयै रस-भजन की, बात परी तिहि हाथ।।३६।।
गिरिधर स्वामी पर कृपा, बहुत भई दई कुंज।
रसिक-रसिकनी कौ सुजस, गायौ तिहि सुख पुंज।।३७।।
विठ्ठल विपुल[1] विनोद रस, गाई अद्भुत केलि।
बिलसत लाड़िली-लाल सुख, अंसनि पर भुज मेलि।।३८।।
बिहारीदास[2] निजु एक रस, ज्यौं स्वामी की रीति।
निर्वाही पाछैं भली तोरी सब सौं प्रीति।।३९।।

श्री रघुनाथ जी ने ठाकुर श्री मनमोहन जी की अधिकाधिक सेवा की, फलतः रसमय भजन की एक अनोखी ही निधि उनके हाथ लगी।।३६।। श्री गिरिधर स्वामी पर श्री जी की बहुत कृपा हुई कि उन्हें कुञ्ज धाम की प्राप्ति हो गयी; क्योंकि उन्होंने युगल रसिक श्री श्यामा-श्याम के सुख पुञ्ज सुयश का गान किया।।३७।। श्री विठ्ठल विपुल जी ने ठाकुर श्री कुञ्ज-विहारी की विनोद रसपूर्ण केलि का गान किया। उनके काव्य में स्पष्ट है कि श्री लाड़िली-लाल (युगल) परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, श्री वृन्दावन के सुख-रस का विलास कर रहे हैं।।३८।। रसिक सन्त श्री बिहारीदास जी ने अपने आचार्य स्वामी श्री हरिदास जी की रस-प्रणाली का स्वाभाविक और एक रस-पद्धति से जीवन पर्यन्त निर्वाह किया।।३९।।

---

१. श्री विठ्ठल विपुल—स्वामी हरिदास जी के प्रधान शिष्य। (देखिये श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-९४)

२. बिहारीदास—सखी भाव के परमाचार्य स्वामी श्री हरिदास जी के प्रशिष्य रसिक अनन्य, नित्य-विहार के परम उपासक।

मत्त भयौ रस रंग में, करी न दूजी बात।
बिनु बिहार निजु एक रस, और न कछू सुहात।।४०।।
भर किसोर दोउ लाड़िले, नवल-प्रिया नव-पीय।
प्रकट देखियत जगमगे, रसिक व्यास[१] के हीय।।४१।।
कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास[२] इहि काल।
लोक वेद तजि कै भजे, (श्री) राधावल्लभ लाल।।४२।।
प्रेम मगन नहि गन्यौ कछु, वरनावरन बिचार।
सबनिं मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस सार।।४३।।

और उन्होंने संसार के सभी लोगों से अपने सारे प्रेम सम्बन्ध छिन्न-भिन्न कर दिये थे। वे वृन्दावन के आनन्द-रङ्ग में मतवाले से हो गये थे। सिवाय वृन्दावन आनन्द रङ्ग के उन्होंने दूसरी चर्चा तक नहीं की। उन्हें नित्य-विहार रस के सिवाय अन्य कुछ अच्छा ही नहीं लगता था।।४०।। रसिक-भक्त श्री हरिराम व्यास के हृदय में उन्नत नव-किशोर नव-नव रूप-लावण्य-धाम श्री प्रिया-प्रियतम निरन्तर जगमगाते रहते थे।।४१।। श्री हरिराम व्यास ही ऐसे एक विलक्षण महापुरुष थे, जिन्होंने कराल कलिकाल में अपनी कहनी और करनी को जीवन पर्यन्त एक रस निभाया एवं लौकिक एवं वैदिक परम्परा को भी छोड़ कर अनन्य-भाव से श्री राधावल्लभ लाल का भजन किया।।४२।। प्रेम-रस में मग्न होने के पश्चात् उन्होंने वर्ण एवं आश्रम की अपेक्षा किये बिना सब (ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि) के समक्ष श्री राधावल्लभ लाल का रस-सार प्रसाद ग्रहण किया।।४३।।

---

१. श्री हरिराम व्यास–ओरछा के राजा मधुकरशाह के राजगुरु, राजपण्डित, श्रीहित हरिवंश जी महाराज के कृपा-पात्र साधक शिष्य, भक्त कवि,सन्त-सेवी (देखिये श्री नाभाजी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या-९२)

२. अन्यत्र ग्रन्थों में वर्णन है कि श्री हरिराम व्यास ने किसी श्वपच के हाथों से स्पर्श किया हुआ प्रसाद (पकौड़ी) ग्रहण कर लिया था।

सेवक[1] की सर कौ करै, भजन-सरोवर हंस।
मन, बच कै धरि एक व्रत, गाये श्री हरिवंश।।४४।।
वंश बिना हरिनाम हूँ, लियौ न जाकैं टेक।
पावै सोई वस्तु कौं, जाकैं है व्रत एक।।४५।।
कहा कहौं नहिं कहि सकत, नरवाहन[2] कौ भाग।
श्री मुख जाकौ नाम धर्‌यौ, निजु बानी अनुराग।।४६।।

भजन रूपी सरोवर (तड़ाग) के हंस स्वरूप श्री दामोदर दास (सेवक जी) की समता कौन कर सकता है, जिन्होंने मनसा, वाचा, कर्मणा अनन्य व्रत धारण करके गुरुदेव श्री हित हरिवंश के नाम, रूप, गुण लीलादि का गान किया।।४४।। जिन्होंने 'वंश' रहित 'हरि' नाम का भी उच्चारण नहीं किया अर्थात् 'हरिवंश' शब्द का ही उच्चारण किया। निश्चित है कि अनन्य एवं दृढ़व्रती ही परम-वस्तु परमात्म तत्त्व की प्राप्ति कर सकता है, अन्य नहीं।।४५।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मुझमें श्री नरवाहन भक्त के भाग्य की महिमा कह सकने का सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि जिनके अनुराग से रीझ कर आचार्य श्री गुरुदेव हित हरिवंश जी महाराज ने अपनी वाणी (पदावली) में शिष्य नरवाहन का नाम पद रचयिता के रूप में स्वयमेव लिख दिया।।४६।।

---

१. श्रीसेवक जी– पूर्ण नाम दामोदरदास। 'सेवक' जी का जन्म गढ़ा, जबलपुर मध्य-प्रदेश के ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिता का नाम श्री कृष्णदास था। श्री सेवक जी श्री हित हरिवंश महाप्रभु के तिरोधान के पश्चात् उनके शिष्य हुए थे। (देखिये-रसिक अनन्य माल, भगवत मुदित कृत।)

२. नरवाहन– यमुना तटवर्ती भैगाँव के जमींदार क्षत्रिय थे। समस्त व्रज-मण्डल पर अपने बाहुबल से अधिकार रखते थे। घटना विशेष से प्रभावित होकर श्री हित हरिवंश जी के शिष्य हो गये। बड़े ही गुरुनिष्ठ भक्त थे। इनकी निष्ठा-भक्ति से रीझ कर गुरुदेव श्री हित हरिवंश जी ने अपने स्वरचित दो पदों में इनकी छाप दी है। (देखिये-हित चौरासी, पद संख्या ११-१२)

अति अनन्य निजु धर्म में, नाइक रसिक मुकुंद।
बसे विपिन रस भजन कै, छाँड़ि जगत दुख-द्वंद।।४७।।
परम भागवत अति भये, भजन माँहि दृढ़ धीर।
चत्रभुज[१] वैष्णव दास की, बानी अति गंभीर।।४८।।
सकल देश पावन कियौ, भगवत-जसहिं बढ़ाइ।
जहाँ-तहाँ निजु एक रस, गाई भक्ति लड़ाइ।।४९।।
परमानंद किसोर दोउ, संत मनोहर खेम।
निर्वाह्यौ नीकैं सबनि, सुंदर भजन को नेम।।५०।।

श्री नायक रसिक मुकुन्द जी वृन्दावन निज धर्म में अतिशय अनन्य निष्ठावान् भक्त थे। उन्होंने संसार के समस्त दुःख-द्वन्द्वों का परित्याग करके, नित्य-विहार रस-भजन के निमित्त श्री वृन्दावन में आजीवन निवास किया।।४७।। स्वामी श्री चतुर्भुज दास जी वैष्णव सन्तों के दास एवं परम भागवत, विद्वान् सन्त थे। वे भगवद्भजन में अतिशय दृढ़ और भाव-भावना में बड़े गंभीर थे।।४८।। उनकी 'द्वादश-यश' नामक वाणी भागवत धर्म की प्रतिपादक, पोषक प्रामाणिक एवं सम्मान्य वाणी है। श्री स्वामी जी ने यत्र-तत्र सर्वत्र श्री हरि के यशोगान द्वारा भगवद्-भक्ति का प्रचार-प्रसार करके अपावन देशों को पवित्र कर दिया था।।४९।। श्री परमानन्द, श्री किशोर नाम के दोनों भक्त एवं सन्तदास, मनोहरदास, खेमदास इन सब भक्तों ने भजन का सुन्दर नियम भली प्रकार से निभाया।।५०।।

---

१. स्वामी चतुर्भुजदास—गोस्वामी श्री हित हरिवंश महाप्रभु के ज्येष्ठ-पुत्र श्री वनमालीदास जी के कृपा पात्र विरक्त विद्वान् सन्त थे। इनके द्वारा रचित 'द्वादश-यश' नामक ग्रन्थ वैष्णव धर्म का महान् प्रामाणिक ग्रन्थ है। (देखिये—भक्तमाल श्री नाभा स्वामी कृत, छप्पय संख्या-१२३)

छाँड़ि मोह, अभिमान सब, भक्तन सौं अति दीन।
वृंदावन बसिकै तिनहिं, फिरि मन अनत न कीन।।५१।।
लालदास[1] स्वामी सरस, जाकैं भजन अनूप।
बरन्यौ अति दृढ़ अक्षरनि, लाल-लाड़िली रूप।।५२।।
अधिक प्यार है भजन सौं, और न कछू सुहात।
कहत सुनत भगवत जसहि, निसि दिन जाहि विहात।।५३।।
बालकृष्ण-गति कहा कहौं, कैसेहुँ कहत बनैन।
रूप लाड़िली-लाल कौ, झलमलात तिहि नैन।।५४।।

ये सभी भक्त अन्यान्य भक्तों के प्रति बड़ा ही दीन भाव रखते थे। मोह, अभिमान आदि दोषों को इन्होंने त्याग दिया था। श्री वृन्दावन आकर बसने के पश्चात् इनका बाहर कहीं जाने का मन नहीं किया।।५१।। स्वामी श्री लाल दास जी सरस हृदय और विलक्षण भजनानन्दी सन्त थे। उन्होंने बड़े ही प्रामाणिक शब्दों में श्री लाड़िली-लाल जू के रूप का अद्भुत वर्णन किया है।।५२।। भगवत्-भजन से उनका अत्यधिक प्रेम था। भजन के अतिरिक्त उन्हें और कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उनका सारा समय भगवान् के मधुर-मधुर यशोगान करते-सुनते ही व्यतीत होता था।।५३।। स्वामी श्री बालकृष्ण जी की प्रेम-स्थिति का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उनके नेत्रों में श्री लाड़िली-लाल जू का रूप निरन्तर प्रतिबिम्बित होता रहता था।।५४।। वे बड़े ही प्रवीन पण्डित होते हुए भी सर्वथा अभिमान

---

१. स्वामी लालदास जी गो॰ श्री हित हरिवंश जी के तृतीय पुत्र श्री गोपीनाथ जी के कृपामात्र थे। इनके द्वारा रचित वाणी बड़ी ही गम्भीर एवं रहस्यपूर्ण है। ये राधावल्लभीय सम्प्रदाय के विद्वान् और भजनानन्दी विरक्त सन्त थे। (देखिये—भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्य माल', श्री लाल दास की परचई)

अति प्रवीन पंडित अधिक, लेस गर्व कौ नाहिं।
कीनी सेवा मानसी, निसि-दिन मन तेहि माहिं।।५५।।
ग्यानू नाहरमल्ल[1] की, देखी अदभुत रीति।
हरिवंश चंद पद कमल सौं, बाढ़ी दिन-दिन प्रीति।।५६।।
कहा कहौं मोहनदास[2]-रति, ताकी गति भई आन।
व्यासनंद अंतर सुनत, तजे तिही छिन प्रान।।५७।।
बीट्ठलदास[3] मुरली धरनि, चरण सेये सब काल।
तैसेहि लाल गोपाल जी, गाये ललना लाल।।५८।।

रहित थे। उनका मन अपने आराध्य की मानसिक सेवा में दिन-रात मग्न रहता था।।५५।। भक्त ग्यानू एवं नाहरमल की भक्ति विषयक विलक्षण रीति यह थी कि श्री हित हरिवंश चन्द्र के चरण-कमलों से उनकी हार्दिक प्रीति प्रतिदिन बढ़ती ही रही, कभी कम नहीं हुई।।५६।। भक्त मोहनदास की प्रीति अकथनीय थी, जिसकी विलक्षण गति यह देखी गई कि व्यासनन्दन श्री हित हरिवंश चन्द्र का स्वधामगमन सम्वाद सुनते ही उन्होंने उसी क्षण अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।।५७।। भक्त श्री विट्ठलदास एवं मुरलीधर दास ने जीवन पर्यन्त श्री हित हरिवंश जी के चरण-कमलों का सेवन किया। इसी प्रकार श्री गोपाल दास जी ने भी श्री लाड़िली-लाल का लीला चरित्र गान किया।।५८।।

---

१. नाहरमल—श्री हित हरिवंश जी महाराज के शिष्य, देववन निवासी भटनागर कायस्थ, राजनीति के ज्ञाता। (देखिये—भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्य माल', नाहरमल की परचई।)
२. मोहनदास—श्री हित हरिवंशचन्द्र जी महाराज के कृपा-पात्र शिष्य।
३. बीट्ठलदास—श्री हरिवंश जी महाराज के आज्ञाकारी शिष्य। (देखिये भ॰ मु॰ कृत रसिक अनन्य माल।)

सुंदर[1] मंदिर की टहल, कीनी अति रुचि मानि।
सफल करी संपति सकल, लगी ठिकाने आनि।।५९।।
अंगीकृत ताकौं कियौ, परम रसिक सिरमौर।
करुणा निधि बहु कृपा करि, दीनी सनमुख ठौर।।६०।।
बड़ौ उपासक गौड़िया, नाम गोसाईं दास।
एक चरन बनचंद बिनु, जाकैं और न आस।।६१।।
नेही नागरीदास[2] अति, जानत नेह की रीति।
दिन दुलराई लाड़िली, लाल रँगीली प्रीति।।६२।।

भक्त श्री सुन्दरदास जी ने ठाकुर श्री राधावल्लभ लाल के मन्दिर निर्माण की सेवा बड़ी रुचि के साथ सम्पन्न की और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को उचित स्थल में लगाकर सफल कर दिया।।५९।। फलतः परम रसिक शिरोमणि ठाकुर श्री राधावल्लभलाल जी महाराज ने सुन्दर दास एवं उनकी समर्पित सम्पूर्ण सम्पत्ति को सहर्ष स्वीकार करके अपने मन्दिर के सम्मुख उन्हें निवास-स्थल दिया। करुणा-निधान श्री जी की यह बहुत बड़ी कृपा हुई।।६०।। श्री गोसाईं दास नाम के उपासक भक्त गौड़ीय होते हुए भी गोस्वामी श्री वनचन्द्र जी के चरणों में अपार निष्ठावान् भक्त थे। उन्हें अपने गुरुदेव के चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी की न आशा थी, न विश्वास ही था।।६१।। श्री नेही नागरीदास जी प्रेम की रीति के अतिशय ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी रङ्ग-रँगीली प्रीति-रीति से अपने आराध्य श्री लाड़िली-लाल जी का अहर्निश लाड़-दुलार किया।।६२।।

---

१. सुन्दरदास—गोस्वामी श्री वनचन्द्र जी के कृपापात्र, शहंशाह अकबर के खञ्जाची थे, जिन्होंने सम्वत् १६२९ विक्रमी में श्री राधावल्लभ लाल जी के लाल पत्थर का मन्दिर निर्माण किया।

२. नेही नागरीदास—गोस्वामी श्री वनचन्द्र जी के कृपापात्र, राधावल्लभीय विरक्त सन्त थे, जिन्होंने बरसाने में निवास करके श्री वृषभानु नन्दिनी जू के जन्मोत्सव का प्रवर्त्तन किया। इनकी वाणी अत्यन्त गूढ़ एवं मार्मिक है।

व्यासनंद पद कमल सौं, जाके दृढ़ विस्वास।
जेहि प्रताप यह रस कह्यौ, अरु वृंदावन बास।।६३।।
भली भाँति सेयौ विपिन, तजि बंधुनि सौं हेत।
सूर भजन में एक-रस, छाँड़्यौ नाहिंन खेत।।६४।।
बिहारी दास दंपति जुगल, माधौ परमानंद।
वृंदावन नीके रहे, काटि लाज कौ फंद।।६५।।
नीकी भाँति मुकुंद की, कैसेहुँ कहत बनै न।
बात लाड़िली-लाल की, सुनि भरि आवैं नैन।।६६।।
मन-बच करि विस्वास धरि, मारि हिये के काम।
मात, पिता, तिय छाँड़ि कै, बस्यौ वृंदावन धाम।।६७।।

श्री नागरी दास जी का व्यासनन्दन श्री हित हरिवंश जी के चरण-कमलों के प्रति दृढ़-विश्वास और प्रेम था, अतएव उसी विश्वास के प्रताप से उन्होंने वृन्दावन के गूढ़ रस का गान किया एवं वृन्दावन का वास किया।।६३।। श्री नागरीदास जी ने अपने कुटुम्बी बन्धुओं से प्रेम का परित्याग करके भली प्रकार श्री वृन्दावन का सेवन किया। वे अपने भजन में एकरस जुटने वाले शूरवीर सन्त थे; जिन्होंने कभी भजन रूपी युद्ध-भूमि का त्याग नहीं किया।।६४।। भक्त श्री विहारी दास, दम्पति दास, जुगल दास, माधव दास, एवं परमानंद दास ने जगत् की लज्जा का फन्दा काट कर निर्भीक भाव से श्री वृन्दावन का वास किया।।६५।। भक्त मुकुन्द दास की सदाचारपूर्ण रीति एवं प्रीति का वर्णन असम्भव है। वे श्री लाड़िली लाल जू की वार्त्ता सुनते ही सजल नयन हो जाया करते थे।।६६।। श्री मुकुन्द दास जी ने अपने हृदय की वासनाओं को मार कर एवं माता-पिता तथा पत्नी का परित्याग करके मनसा, वाचा, कर्मणा विश्वासपूर्वक श्री वृन्दावन का वास किया।।६७।।

अंतकाल गति कह कहौं, कैसेहुँ कही न जाति।
चतुरदास वृंदाविपिन, पायौ आछी भाँति।।६८।
चिंतामनि बातनि सरस, सेवा माहिं प्रवीन।
कहत सुनत भगवत जसहि, छिन-छिन उपज नवीन।।६९।।
नागर अरु हरिदास मिलि, सेये नित हरि-दास।
वृंदावन पायौ दुहुँनि, पूजी मन की आस।।७०।।
नवल कल्यानी सखिनु के, मन में अति अनुराग।
लाल-लड़ैती कुँवरि कौ, गायौ भाग-सुहाग।।७१।।
भली भाँति वृंदा अली, अति कोमल सु सुभाव।
कृपा लड़ैंती कुँवरि की, उपज्यौ अद्‌भुत चाव।।७२।।

भक्त श्री चतुरदास ने भली भाँति से श्री वृन्दावन धाम की प्राप्ति की, जिन्होंने देह-त्याग के समय अपने आराध्य से तन्मयता प्राप्त करली थी। अतएव उनकी अद्‌भुत प्रेमस्थिति का वर्णन असम्भव है।।६८।। श्री चिन्तामणि दास भगवत-यश के बड़े सरस गायक एवं प्रवीण सेवाधिकारी थे। भगवत-यश गान करते समय उनकी वाणी से विलक्षण भावों का स्फुरण होता रहता था।।६९।। श्री नागरीदास एवं हरिदास जी ने मिलकर निरन्तर जीवन पर्यन्त श्री हरि के भक्तों (दासों) का प्रीतिपूर्वक सेवन किया और दोनों ने वृन्दावन में देह का परित्याग करके नित्य-वृन्दावन की प्राप्ति की। इस प्रकार उनकी वृन्दावन रज-प्राप्ति विषयक इच्छा पूर्ण हुई।।७०।। श्री नवल सखी, श्री कल्याणी सखी दोनों के मन में अत्यन्त अनुराग भाव था, उन्होंने श्री लाड़िली-लाल जू युगल किशोर के क्रीड़ा-केलि भाग्य- सौभाग्य का बहुत सुन्दर रीति से गान किया।।७१।। भक्तिमती श्री वृन्दाअलि अत्यन्त कोमल और मधुर स्वभाव की थीं। उन पर लाड़िली कुँवरि श्री राधा की कृपा थी। श्री वृन्दाअलि का आचार-व्यवहार बहुत अच्छा था। उनके हृदय में सेवा का अद्‌भुत भाव-चाव था।।७२।।

कीने रास विलास बहु, सुख बरसत संकेत।
रचना रची कल्यान रुचि, मंडनी दास समेत।।७३।।
सेवा राधारमन की, भक्तनि कौ सनमान।
साँते बास जमुना कियौ, तिहि सम नहिं कोउ आन।।७४।।
हुते उपासक अधिक ही, या रस में हरिदास।
निसिदिन बीतै भजन में, राधाकुंड निवास।।७५।।
बरसाने गिरिधर सुहृद, जाकै ऐसौ हेत।
भोजन हूँ भक्तनि बिना, धर्‌यौ रहत नहिं लेत।।७६।।
नंददास[1] जो कछु कह्यौ, राग रंग सौं पागि।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत स्रवन उठै जागि।।७७।।

भक्त श्री कल्याण दास एवं मण्डनी दास ने संकेत-वट नामक स्थान में उत्तम साज-सज्जा की रचना करके रास-विलास की अनेक लीलाएँ कीं और सुख की वर्षा की।।७३।। श्री जमुनादासी नामक भक्ता ने सांते (सतोया, शान्तनु कुण्ड) में निवास करके ठाकुर श्री राधारमन की सेवा एवं भक्तों का सम्मान किया। श्री जमुना जी अनुपम भक्ता थीं।।७४।। वृन्दावन रस के रसिक श्री हरिदास जी बड़े उत्कृष्ट उपासक थे। श्री राधाकुण्ड में निवास करते हुए दिन-रात भजन में लीन रहते थे।।७५।। बरसाने में निवास करने वाले भक्त गिरिधर जी सहृदय एवं सन्तों के अनुरागी थे। सन्तों के बिना वे भोजन नहीं करते थे। यदि उनके यहाँ भक्त न आवें तो बना बनाया भोजन रखा का रखा रह जाता था, वे उसे ग्रहण नहीं करते थे।।७६।। पुष्टि मार्गीय भक्त श्री नन्ददास जी ने राग-रागिनी एवं प्रेम के रङ्ग से सम्वलित काव्य में सरस एवं प्रेममय शब्दों में जो कुछ भी कहा है, उसे सुनकर श्रोता के कान भाव से भरकर खड़े हो जाते हैं अर्थात् श्रवण करने की रुचि बढ़ जाती है।।७७।।

---

१. नन्ददास–गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य अष्टछाप के भक्त कवि थे। (देखिये नाभास्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या–११०)

रमनदास अद्‌भुत हुते, करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटत नैन जलधार।।७८।।
बावरो सो रस में फिरै, खोजत नेह की बात।
आछे रस के बचन सुनि, बेगि बिवस ह्वै जात।।७९।।
कहा कहौं मृदुल सुभाव अति, सरस नागरी दास[1]।
बिहारी बिहारिन को सुजस, गायौ हरषि हुलास।।८०।।
परमानंद माधौ मुदित[2], नव-किसोर कल केलि।
कही रसीली भाँति सौं, तिहि रस में रहे झेलि।।८१।।

श्री रमनदास जी अद्भुत भक्त थे। उनका काव्य बड़ा प्रवाहमय था, चित्त भी सरस था। प्रेम की बात सुनते ही उनके नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगती थीं।।७८।। वे प्रेम की कथा-वार्ता श्रवण करने के लिए बावले की तरह रस में डूबे हुए, जहाँ-तहाँ खोजते ही रहते थे। मधुर रस की प्रेम-वार्त्ता सुनते ही भाव-विभोर एवं प्रेम-विवश हो जाया करते थे।।७९।। रसिक सन्त श्री सरसदास एवँ नागरी दास दोनों वर्णनातीत अतिशय मृदुल स्वभाव के सन्त थे। उन्होंने अपने आराध्य श्री विहारी-विहारिणि युगल का एकान्तिक लीला-यश-सुयश हर्षोलास के साथ गान किया है।।८०।। भक्त श्री परमानन्द दास एवं श्री माधो मुदित जी ने नवल-किशोर वृन्दावन विलासी प्रिया-प्रियतम की सुन्दर कुञ्ज-केलि का अपने शब्दों में बड़ी रसमय रीति से वर्णन किया है एवं वे इसी रस में निरन्तर मग्न रहते थे।।८१।।

---

१. सरसदास, नागरी दास—स्वामी श्रीहरिदास जी की परम्परा में शिष्य, अष्टाचार्यों में तृतीय एवं चतुर्थ आचार्य।

२. माधोमुदित—आगरा निवासी रसिक भक्त। (देखिये नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय १९८ की टीका)

सेयौ नीकी भाँति सौं, श्री संकेत स्थान।
रह्यौ बड़ाई छाँडिकै, सूरज द्विज कल्यान।।८२।।
खरगसेन[1] के प्रेम की, बात कही नहिं जात।
लिखत ललित लीला करत, गये प्राण तजि गात।।८३।।
तैसेहि राघौदास की, बात सुनी यह कान।
गावत करत धमारि हरि, गये छूटि तन प्रान।।८४।।
इहि बरन भक्त अद्‌भुत भयौ, और न कछू सुहात।
अंगनि की छवि माधुरी, चिंतत ताहि बिहात।।८५।।

श्री सूरज एवं श्री कल्याण जी द्विजद्वय ने आत्म-प्रशंसा का त्याग करके भक्ति-काव्य की रचना की। उन्होंने संकेत-वट नामक स्थान में निवास किया एवं वहाँ की भली प्रकार से सेवा की।।८२।। भक्त खरगसेन के भगवत-प्रेम की बात तो कहने में इसलिए नहीं आती कि वह अतिशय विशद है। श्री राधावल्लभ लाल के रास सम्बन्धी लीला-काव्य की रचना करते समय प्रेम तन्मयता में उनके प्राण, देह को त्याग कर परमाराध्य प्रभु से जा मिले।।८३।। इसी प्रकार सुना गया कि श्री राघवदास जी के प्राण भी राधामाधव के वसन्तोत्सव लीलावर्णन में धमार पद की रचना करते समय देह को त्याग कर प्रेमास्पद आनन्द कन्द नन्दनन्दन से जा मिले।।८४।। श्री वरन नामक भक्त बड़े अद्भुत थे, जो अहर्निश श्री किशोर-किशोरी के अङ्गों की छवि-छटा माधुरी का चिन्तन करते रहते थे। इस चिन्तन के अतिरिक्त उन्हें कुछ अन्य अच्छा ही नहीं लगता था।।८५।।

---

१. खरगसेन—ग्वालियर निवासी राधावल्लभीय वैष्णव, उत्कृष्ट कवि। (देखिये श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या १५१)

रोमांचित तन पुलकि है, नैन रहे जल पूरि।
जाके आसा एक ही, (श्री) वृंदावन की धूरि।।८६।।
कहा कहौं महिमा भाग की, भई कृपा सब अंग।
वृंदावन दासी गह्यौ, जाइ सखिनु कौ संग।।८७।।
लाज छाँडि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कान।
सोई मीराँ[१] जग विदित, प्रगट भक्ति की खान।।८८।।
ललितहु लाई बोलि कै, तासौं हो अति हेत।
आनँद सौं निरखत फिरै, वृंदावन रस-खेत।।८९।।

वह पुलकित, रोमाञ्चित एवं अश्रुपूरित नेत्रों से प्रेम-मग्न दशा में विचरण करते रहते थे। उनमें श्री वृन्दावन की धूलि के प्रति अपार निष्ठा एवं प्रीति थी।।८६।। श्री वृन्दावन दासी के भाग्य की महिमा अकथनीय है, जिन पर श्री किशोरी जी की पूर्ण कृपा थी, जिसके प्रताप से उन्होंने नित्य-निकुञ्ज में सखियों का सङ्ग प्राप्त कर लिया।।८७।। विश्व-विख्यात भक्ता एवँ भक्ति की प्रकट निधि श्री मीरा जी ने लोक और कुल की मर्यादाओं एवं लज्जा का परित्याग करके अपने प्रियतम श्री गिरिधर लाल का भजन किया।।८८।। श्री मीरा जी ने चित्तौड़ का त्याग करके श्री वृन्दावन आते समय अपनी ननद ऊदा बाई (ललिता) को भी साथ ले लिया था। श्री वृन्दावन आने पर वे आनन्द मग्न होकर युगल रस-क्रीड़ा-क्षेत्र श्री वृन्दावन धाम का वर्णन करती फिरती रहीं।।८९।।

---

१. श्री मीरा—मेड़ता के राजा रत्नसिंह की पुत्री, मेवाड़ के राणा कुल की कुलवधू, विश्व विख्यात भक्ता एवं कवियित्री। (देखिये-श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या ११५)

निर्तति नूपुर बाँधि कै, गावति लै करतार।
बिमल हियौ भक्तनि मिली, त्रिन सम गनि संसार।।९०।।
बंधुनि विष ताकौं दियौ, करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछतान।।९१।।
गंगा जमुना[1] तियनि में, परम भागवत जानि।
तिनकी बानी सुनत ही, वढ़ै भक्ति उर आनि।।९२।।
कुंभन कृष्णदास गिरिधरनि सौं, कीनी साँची प्रीति।
कर्म धर्म पथ छाँडिकै, गाई निजु रस रीति।।९३।।

श्री मीरा जी अपने चरणों में नूपुर बाँधकर हाथों में करताल लेकर नृत्य-गान करके अपने प्रियतम श्री गिरिधर लाल को रिझाती थीं। उन्होंने संसार एवं सांसारिक लोगों को तृण की भाँति त्याग दिया था। वे निर्मल एवं निष्कपट हृदय से भक्तों से मिलती थीं।।९०।। भक्त सन्तों से मीरा जी का मिलना राजा आनन्द सिंह को स्वीकार नहीं था और वे मीरा पर चरित्र सम्बन्धी संशय भी रखते थे, इसलिए उन्होंने मीरा जी को विष देकर मार डालना चाहा, किन्तु जब उन पर विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब राजा तथा उनके बन्धु वर्ग पश्चाताप करने लगे।।९१।। श्री गङ्गा और जमुना दोनों भक्ताएँ नारी-समाज की भूषण रूपा, परम भागवत देवियाँ थीं, जिनकी वाणी (पद-रचना) सुनते ही श्रोता के हृदय में भक्ति की बाढ़ सी आ जाती थी।।९२।। श्री कुम्भनदास एवं श्रीकृष्णदास ने ठाकुर श्रीनाथ जी अर्थात् श्री गिरिधर लाल जी से सत्य प्रीति का निर्वाह किया, जिन्होंने कर्म और अन्यान्य धर्मों के मार्ग की उपेक्षा करके अपनी पुष्टिमार्गीय रसरीति-पद्धति का गान किया।।९३।।

---

१. श्री गंगा जमुना—गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी की शिष्या (देखिये-भगवत मुदित कृत रसिक अनन्य माल)

पूरनमल जसवंत[1] जी, भूपति गोविंद दास[2]।
हरीदास[3] इनि सबनि मिलि, सेये नित हरि दास।।९४।।
परमानँद[4] अरु सूर मिलि, गाई सब ब्रज-रीति।
भूलि जात विधि भजन की, सुनि गोपिनु की प्रीति।।९५।।
माधौ रामदास बरसानियाँ, ब्रज-विहार की केलि।
गाये नीकी भाँति सौं, तेहि रस में रहे झेलि।।९६।।

भक्त श्री पूरनमल जी, श्री जसवंत सिंह जी, राजा गोविन्द दास एवं श्री हरीदास-इन सब राज पुरुषों ने हरि के दास वैष्णव सन्तों का प्रेम और आदर के साथ सेवन किया।।९४।। स्वामी परमानन्द दास एवं श्री सूरदास दोनों ने श्यामसुन्दर श्री कृष्ण की समस्त व्रज-लीलाओं का अपनी वाणी में गान किया। इनके द्वारा वर्णित पदों में गोपियों की प्रीति का वर्णन पढ़ने-सुनने पर विधि-मार्गीय भजन की बात विस्मृत होकर गोपियों का प्रेम-रङ्ग मन में छा जाता है।।९५।। श्री माधव दास एवं श्री रामदास , बरसाना के निवासी सन्त थे, जिन्होंने श्री ठाकुर जी की ब्रज-लीला विहार के क्रीड़ा-कौतुकों का उत्तम रीति से गान किया है और वे उसी रस में मग्न रहते थे।।९६।।

---

१. जसवंत जी—गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी के शिष्य, राठौर क्षत्रिय, सन्त-सेवी। (देखिये-भक्तमाल नाभा स्वामी कृत छप्पय संख्या १५५, देखिये-रसिक अनन्य माल श्री भगवत मुदित कृत)

२. भूपति गोविन्द दास—हरीदास तूमर के छोटे भ्राता, राधावल्लभीय वैष्णव। (देखिये-भक्तमाल नाभा स्वामी कृत टीका हरीदास तूमर की)

३. श्री हरिदास तूमर—काशी निवासी, श्री हित हरिवंश जी महाराज के शिष्य, सन्त सेवी। (देखिये-भक्तमाल नाभा स्वामी कृत, छप्पय संख्या १७९ तथा देखिये-रसिक अनन्य माल हरीदास की परचई)

४. स्वामी परमानंद दास एवं सूरदास—श्रीमद् वल्लभाचार्य जी के शिष्य, अष्टछाप के महाकवि। (देखिये-भक्तमाल नाभा स्वामी कृत छप्पय संख्या ७३ एवं ७४)

सूरदास[१] अति प्रीति सौं, कवित रीति भल कीन।
मदन-मोहन अपनाइ कैं, अंगीकृत करि लीन।।९७।।
जिन-जिन भक्तन प्रीति किय, ताके बस भये आनि।
सेन[२] हेत नृप टहल किय, नामा[३] की छाई छाँनि।।९८।।
जगत विदित पीपा[४] धना,[५] अरु रैदास कबीर[६]।
महा धीर दृढ़ एक रस, भरे भक्ति गंभीर।।९९।।

रसिक भक्त श्री मदन मोहन सूरदास जी (सूरध्वज) ने अतिशय प्रीति पूर्वक श्रेष्ठ भक्ति-काव्य की रचना की। इनको ठाकुर श्री मदन मोहन महाराज ने अपनाकर परिकर में अङ्गीकार कर लिया।।९७।। इसी प्रकार पहले भी जिन-जिन भक्तों ने श्री ठाकुर जी से प्रीति की, भक्त वत्सल प्रभु सहज ही उनके वशवर्ती हो गये। उन्होंने सेनभक्त के लिए बांधवगढ़ के राजा की टहल (परिचर्या-क्षौर, तैल-मर्दन आदि) की और नामदेव भक्त का छप्पर छाया।। ९८।। सन्त श्री पीपा जी, श्री धन्ना जी जाट, श्री रैदास एवं श्री कबीर दास जी, ये सभी भक्त बड़े गम्भीर, दृढ़ व्रती एवं समत्व को प्राप्त भक्त थे। इन सब का हृदय भी हरि की भक्ति में बहुत गम्भीर रूप से रँगा हुआ था।।९९।।

---

१. सूरदास–इनका सम्पूर्ण नाम सूरध्वज था। ये श्री सनातन गोस्वामी की परम्परा में शिष्य थे। (देखिये-भक्तमाल नाभा स्वामी कृत, छप्पय संख्या १२६)
२. सेनदास–श्री रामानन्द स्वामी के शिष्य। (देखिये- नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या ६३)
३. नामदेव–विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के शिष्य पण्ढरपुर निवासी, भक्ति प्रचारक सन्त। (देखिये- नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या ४३)
४. पीपा जी–श्री रामानन्द स्वामी के शिष्य। (देखिये-नाभा स्वामी कृत भक्तमाल, छप्पय संख्या ६१)
५. धन्ना जी–श्री रामानन्द स्वामी के कृपापात्र। (देखिये- नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या ६२)
६. रैदास एवं कबीर–श्री रामानन्द स्वामी के कृपापात्र।(देखिये-नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या ५९, ६०)

जगन्नाथ वत्सल भगत, कीनौं जस विस्तार।
माधौ[1] भूखौ जानि कैं, लाये भोजन थार।।१००।।
एक समै निसि सीत सौं, काँपन लाग्यौ गात।
आनि उढ़ाई तेहि समै, अपनैं कर सकलात।।१०१।।
बिलु-मंगल[2] जब अंध भयौ, आपनु कर गहे आइ।
भक्तनि पाछैं फिरत यौं, ज्यौं बछरा सँग गाइ।।१०२।।

भक्त श्री माधवदास को क्षुधित जानकर भगवान् श्री जगन्नाथ देव ने राजभोग में अपने भोजन का थाल उनके पास भेज दिया और इस प्रकार उन्होंने अपनी भक्तवत्सलता का परिचय दिया।।१००।। एक बार रात्रि-काल में श्री माधवदास जी का शरीर जब अतिशय ठण्ड से काँपने लगा तो भक्तवत्सल श्री जगन्नाथ देव ने अपने ओढ़ने की रजाई लाकर स्वयं अपने हाथों से श्री माधव दास जी को ओढ़ा दी।।१०१।। भक्त श्री बिल्वमङ्गल ने अपने नेत्रों को स्वयमेव फोड़ लिया था और नेत्रहीन होकर वृन्दावन जा रहे थे, तब भक्तवत्सल भगवान् श्री कृष्ण ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें श्रीवन पहुँचाया। इस प्रकार भगवान् भक्तों के पीछे ऐसे फिरते रहते हैं, जैसे वात्सल्य-स्नेहमयी गौ अपने वत्स के पीछे फिरती है।।१०२।।

---

१. श्री माधवदास—माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के विद्वान् विरक्त सन्त। (देखिये- नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या ७०)

२. विल्व मंगल—कृष्ण कर्णामृत काव्य के रचयिता। (देखिये- नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-४६)

रामानँद[१] अंगद[२] सोभू, हरीव्यास[३] अरु छीत।
एक एक के नाम सौं, सब जग होत पुनीत।।१०३।।
राँका बाँका भक्त द्वै, महा भजन-रस लीन।
इंद्रासन के सुखनि कौं, मानत त्रिन ते हीन।।१०४।।
नरसी[४] हू अति सरस हिय, कहा देऊँ समतूल।
कह्यौ महा सिंगार रस, जानि सुखनि कौ मूल।।१०५।।
दीनी ताकौं रीझि कैं, माला नंद-कुमार।
राखि लियौ अपनी सरन, विमुखनि मुख दै छार।।१०६।।

स्वामी रामानन्द, भक्त अंगद सिंह, श्री सोभूरामदेव जी, श्री हरिव्यास जी एवं छीत स्वामी जी इन प्रत्येक भक्त के नाम-स्मरण मात्र से सारा संसार पवित्र हो जाता है।।१०३।। दक्षिण देश में राँका-बाँका नाम के भक्त दम्पति महान्तम भजन में मग्न रहने वाले विरागी भक्त थे, जो इन्द्र पदवी के सुखों को भी तृण से अधिक तुच्छ मानते थे।।१०४।। श्री नरसी महता जी बड़े सरस हृदय के भक्त थे, जिनकी समता किसी अन्य से नहीं दी जा सकती, जिन्होंने समस्त सुखों का सार जानकर ही महाशृङ्गार-रस (वृन्दावन विलासी प्रिया-प्रियतम की कुञ्ज लीलाओं) का गान किया है।।१०५।। ठाकुर श्री नन्द-कुमार ने श्री नरसी जी के विमल विश्वास एवं भक्ति भाव पर रीझ कर अपने कण्ठ का हार उतार कर स्वयमेव उन्हें पहनाया और अपने शरणागत भक्त की रक्षा की, प्रतिष्ठा रखी और भगवद्-विमुख एवं भक्ति-विरोधी लोगों के मुख पर मानो धूल झोंक दी।।१०६।।

---

१. श्री रामानंद–रामावत सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य (देखिये-नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या ३६)
२. श्री अंगद सिंह–(देखिये-नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या-११३)
३. श्री हरिव्यास–श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य। (देखिये-श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या ७७)
४. श्री नरसी महता–(देखिये-नाभा स्वामी कृत भक्तमाल छप्पय संख्या–१०८)

जहाँ जहाँ भक्तनि कौं कछू, परत है संकट आनि।
तहाँ तहाँ आपुन बीच है, धरत अभै कौ पानि।।१०७।।
भक्त नरायन[1] भक्त सब, धरैं हियैं दृढ़ प्रीति।
बरनी आछी भाँति सौं, जैसी जाकी रीति।।१०८।।
रसिक भक्त भूतल घने, लघु मति क्यौं कहे जाहिं।
बुधि प्रमान गाये कछू, जो आये उर माहिं।।१०९।।

भक्त-महिमा दोहा

हरि कौं निजु जस तें अधिक, भक्तनि-जस पर प्यार।
तातैं यह माला रची, करि 'ध्रुव' कंठ-सिंगार।।११०।।

इस प्रकार भक्तवत्सल श्री हरि जहाँ कहीं भक्तों पर सङ्कट आ पड़ता है, वहाँ स्वयं आगे बढ़कर भक्त की रक्षा करते हैं। उनके सिर पर अभय का कृपामय हाथ रखते हैं।।१०७।। भक्त श्री नारायण दास (श्री नाभा स्वामी) ने अपने ग्रन्थ श्री भक्तमाल में चारों युगों के समस्त भक्तों का स्वरूप-निरूपण रूपी चरित्र गान अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति, आस्था एवं प्रीति पूर्वक सन्तुलित एवं सारगर्भित शब्दों में अच्छी प्रकार वर्णन किया तथा जिस सन्त का जो स्वरूप है, उसका भी यथार्थ वर्णन किया है।।१०८।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि पृथ्वीतल पर रसिक भक्त बहुत हैं। उन सबका मुझे परिचय नहीं है। मैंने अपनी लघुबुद्धि के अनुसार ही उन थोड़े से भक्तों का यशोगान किया है, जो मेरी बुद्धि में अवतरित हुए हैं।।१०९।।

भक्तवत्सल श्री हरि को तो अपने यश से भी अधिक अपने प्रिय भक्तों के रसमय यश से प्रेम है, ऐसा जानकर ही मैंने यह "भक्त-नामावली" नामक भक्तों की चरित्र-माला की रचना की है। इसलिये भक्तजनों को चाहिए कि निश्चय ही इस भक्त-नामावली रूपी माला को अपना कण्ठ-हार बनावें।।११०।।

---

१. श्री नारायनदास—उपनाम श्री नाभा जी, स्वामी अग्रदास के शिष्य, भक्तमाल के रचयिता। (देखिये-श्री नाभा स्वामी कृत भक्तमाल कवित्त संख्या ७, ११, १२, १३)

फल-स्तुति दोहा

भक्तनि की नामावली, जो सुनि है चित लाइ।
ताके भक्ति बढ़ै घनी, अरु हरि होइ सहाइ।।१११।।

उपसंहार दोहा

एक बार जिनि नाम लिये, हित सौं ह्वै अति दीन।
ताकौ संग न छाँड़िही, 'ध्रुव' अपनौ करि लीन।।११२।।
ऐसै प्रभु जिन नहिं भजे, सोई अति मति हीन।
देखि समुझि या जगत में, बुरौ आपुनौं कीन।।११३।।
अजहूँ सोचि बिचारि कैं, गहि भक्तनि-पद ओट।
हरि कृपालु सब पाछिली, छमि हैं तेरी खोट।।११४।।

भक्तों की इस नामावली को जो कोई चित्त लगाकर सुनेगा, उसकी भक्ति बढ़ेगी और श्री हरि उसकी सब प्रकार से सहायता करेंगे।।१११।।

जिस किसी ने एक बार प्रीति-पूर्वक श्री हरि का नामोच्चारण कर लिया दयालु श्रीहरि उसका कभी साथ नहीं छोड़ते, सदा उसके साथ रहते हैं और उस (अधमाधम) जीव को अपना बना लेते हैं।।११२।। ऐसे दयामय प्रभु का जिन्होंने भजन नहीं किया, संसार में वे बड़े मतिमन्द हैं। वे इस विनश्वर एवं त्रितापमय संसार की गतिस्थिति को देखते-समझते हुए भी भूल-भटक में ही पड़े रह गये। उन्होंने जान-बूझकर मानो अपना ही अनिष्ट किया है।।११३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते है कि अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। हे अज्ञानी मनुष्य ! तू विवेक से काम ले, श्रीहरि के (भक्त) दासों के श्री चरणों का आश्रय ग्रहण कर। श्री हरि बड़े कृपालु हैं, वे तेरे समस्त दोष-अपराधों को क्षमा कर तुझे कृत-कृत्य कर देंगे।।११४।।

□

७
वृहद् वामन पुराण की भाषा

बामन बृहद् पुरान की, कछु इक कथा बनाइ।
भक्तनि हित भाषा करी, जैसैं समुझी जाइ।।१।।

श्री ब्रह्मा जी से महर्षि भृगु का प्रश्न

दोहा

एक समै भृगु पिता सौं, प्रश्न करी यह आनि।
करि प्रनाम ठाढ़ौ भयौ, आगैं जोरे पानि।।२।।
एक असंका उर बढ़ी, चित्त रह्यौ विस्माइ।
सर्वोपरि सर्वग्य तुम, हमहिं देहु समुझाइ।।३।।
नारदादि शुक से जिते, किये भक्त सब गौन।
जाची रज ब्रज-तियनि की, यह धौं कारन कौन।।४।।

श्री हित ध्रुवदास जी महाराज कहते हैं कि मैंने श्री वृहद् वामन पुराण के कतिपय अध्यायों की कथा का भक्तों के लिए अथवा अपने समझने के लिए यथामति भाषान्तर किया है।।१।।

एक समय ब्रह्मा जी के सुपुत्र महर्षि भृगु अपने पिता जी के सम्मुख आ उपस्थित हुए एवं प्रणाम करके कर-बद्ध भाव से उनसे पूछने लगे।।२।। पिताजी मेरे मन में एक आशङ्का प्रवल रूप से जागृत है और उसके कारण मेरा चित्त विस्मित (विभ्रमित) है। आप सर्वोपरि सर्वज्ञ हैं। आप समस्त ज्ञान के धारक हैं।।३।। मुझे बताइये कि आपने नारद, शुकदेव जैसे भक्तों की उपेक्षा करके ब्रज मण्डल की सामान्य गोप-नारियों की चरण-धूलि की याचना किंवा वाञ्छा की, इसका क्या कारण है?।।४।।

सुनहु पुत्र समुझी न तैं, रह्यौ भूलि ब्रह्म-ग्यान।
सर्वोपरि ये हरि-प्रिया, इनकी कौन समान।।५।।
बहुत बरष हम तप कियौ, इनकी पद-रज हेत।
सो रज दुर्लभ सबनि कौं, हम हूँ बनी न लेत।।६।।
और तियनि में गनहु जिनि, ये श्रुति-कन्या आहिं।
कियौ अधीन पिय साँवरौ, प्रेम चितवनी चाहिं।।७।।
अब लगि तैं समुझ्यौ नहीं, ब्रज कौ रंग रसाल।
जो दिन बीते रस बिना, वादि गयौ सब काल।।८।।
ब्रह्म-ग्यान में रह्यौ भ्रमि, और न कछू सुहात।
छाँड़ि रसमयी अमृत फल, जाचत सूखे पात।।९।।

महर्षि भृगु का प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी ने उत्तर देते हुए कहा—पुत्र ! ब्रह्म ज्ञान में भूले रहने के कारण तुमने भक्ति की महिमा अभी नहीं जानी है। मैंने ब्रज बालाओं की चरण-धूलि इसीलिए चाही, क्योंकि ये श्रीकृष्ण-प्रिया-ब्रज बालाएँ नारदादि भक्तों से भी श्रेष्ठ भक्ता हैं, अतएव सर्वोपरि हैं। इनकी समता कोई नहीं कर सकता। ।।५।। मैंने इनकी चरण-धूलि को प्राप्त करने के लिए बहुत वर्षों तक तपस्या की, किन्तु यह दुर्लभ चरण-रेणु मुझे नहीं मिली। मैं इससे वञ्चित् रह गया। ।।६।। हे भुगु ! तुम इन ब्रज-रमणियों की सामान्य स्त्रियों में गणना मत करो। ये ज्ञान-स्वरूपा श्रुतिकन्या हैं, अर्थात् वेदों की ऋचाएँ हैं। इन्होंने अपनी प्रेमरस भरी चितवन से परम प्रेमास्पद परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को प्रियतम भाव से वशवर्ती कर लिया है। ।।७।। अभी तक तुमने ब्रजमण्डल के रसमय उपासना-भाव को नहीं जाना समझा है और तुम्हारे जीवन में जो भी दिन इस रस के अपरिचय में बीत गये, वह व्यर्थ ही गये।।।८।। ब्रह्म ज्ञान में भूले भटके रहने के कारण भले ही तुमको ज्ञान से अतिरिक्त कुछ भी अच्छा न लगता हो, किन्तु वस्तुतः तुम रसमय अमृतफल का त्याग करके सूखे पत्ते चबाने वाले से अधिक कुछ नहीं हो। ।।९।।

ग्यानी खोजत ग्यान में, भजनी भक्ति[१] अपार।
ते हरि ठाढ़े रहत हैं, ब्रज-देविनु के द्वार।।१०।।
एक भक्त वंदन करत, नहिं चितवत तिनि ओर।
ब्रज बनितनि के पगनि सौं, लावत मुकुट किसोर।।११।।
निगमनि अस्तुति रुचति नहिं, करत हैं तत्त्व-बिचारि।
जैसी भावत हेत सौं, ब्रजवासिनु की गारि।।१२।।
अजहूँ खोजत लहत नहिं, रिषि मुनि-जन की पाँति।
द्वार-द्वार ब्रज सुन्दरिनु, फिरत चक्र की भाँति।।१३।।

जिस परात्पर ब्रह्म का ज्ञानमार्गीय लोग, ज्ञान (विचार) में अनुसन्धान करते हैं और सगुणवादी-भजनानन्दी जिसे अपनी अपार भजन-साधना में खोजते हैं, वही श्री हरि इन व्रज देवियों के द्वार पर सेवा-तत्पर भाव से खड़े रहते हैं। उनके दर्शन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ।।१०।। अन्य भक्तजन जिन श्री हरि की निरन्तर चरण-वन्दना करते हैं और श्री हरि उनकी ओर दृष्टि-निक्षेप भी नहीं करते, वही श्री हरि इन ब्रजबालाओं के चरणों से अपना मयूरमुकुट स्पर्श कराते हैं, अर्थात् उनकी अहर्निश वन्दना करते रहते हैं।।।११।। इन श्रीकृष्ण को वेद-वाक्यों द्वारा की गयी अपनी स्तुति तनिक भी नहीं सुहाती है, क्योंकि वेद केवल तत्त्व विचार ही तो करते हैं, उन्हें तो व्रजदेवियों के द्वारा प्रीति-भाव पूर्ण दी गयी गालियाँ अच्छी लगती हैं। ।।१२।। आज भी ऋषि-मुनि-जनों का समूह जिन्हें खोजता हुआ जीवन का बहुत सा समय साधना में लगाकर भी प्राप्त नहीं कर पाता, वही श्री हरि इन व्रजसुन्दरियों के द्वारों पर चक्र की भाँति घूमते रहते हैं। ।।१३।।

---

१. पाठान्तर–भजन

सब भक्तनि के सिरनि पर, हरि ईश्वर नँदलाल।
ब्रज में सेवक ह्वै रहे, अद्‌भुत प्रेम की चाल।।१४।।
एक भजन विधि सौं करत, नीके मानत नाहिं।
जैसैं ब्रज-जुवती तिंनहिं, ठेलि पगनि सौं जाहिं।।१५।।

श्रीराधा महिमा दोहा

फिरत किसोर चकोर ज्यौं, बरसाने की ओर।
घर-घर प्यारौ लगत है, परे प्रेम की डोर।।१६।।
चित्र-सारी चितवत रहत, जैसैं घन तन मोर।
चहूँ ओर ग्रीवा फिरति, ज्यौं प्रति चंद चकोर।।१७।।

यह सुनिश्चित है कि आनन्दकन्द नन्दनन्दन साक्षात् परमेश्वर हैं, पापों के विनाशक हैं और समस्त भक्तों के शिरोभूषण हैं, आराध्य हैं, वन्दनीय हैं, किन्तु प्रेम की इस अद्‌भुत गति को तो देखो कि वही सर्वोपरि प्रभु व्रज में इन प्रेममयी गोपियों के सेवक अथवा दास बने हुए हैं। ।।१४।। यदि कोई भक्त बड़े विधि-विधान से इन श्री हरि का भजन करता है, तो भी श्री हरि उस कर्मानुष्ठानमय भजन को विशेष महत्व नहीं देते, अपितु व्रज की प्रेमवती बालाओं द्वारा प्राप्त अनादर को अपना प्रेमपूर्ण सम्मान मानते हैं। ।।१५।।

प्रेम-बन्धन से आबद्ध प्रियतम श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण बरसाने की दिशा को चकोर की भाँति निरखते रहते हैं और उन्हें बरसाने का प्रत्येक घर, गली, कूचा अपने प्रेमास्पद का धाम जानकर प्रिय लगता है। ।।१६। श्रीवृषभानु-नन्दिनी कुँवरि किशोरी की चित्रशाला का दर्शन करके उनकी दृष्टि स्थिर हो जाती है। वे ऐसे देखते रह जाते हैं, जैसे मयूर सघन जलधर को देखकर आनन्द से पुलकित हो जाता है। उनकी गति चन्द्र-चकोर की सी हो जाती है। ग्रीवा चतुर्दिक चित्रों को देखते-देखते चक्र की भाँति घूमती रह जाती है।।।१७।।

जबहिं द्वार वृषभानु के, आए नंद-कुमार।
तिहिं छिन गति औरे भई, रही न देह सँभार।।१८।।
हाय-हाय सब कोउ करैं, अद्‌भुत रूप निहारि।
कहा भयौ या कुँवर कौं, देत प्रान सब वारि।।१९।।
तनक-भनक श्रवननि परी, रहि न सकी अकुलाइ।
झाँकी सखियनि संग तजि, कुँवरि झरोखा आइ।।२०।।
लाज छाँड़ि अति प्यार सौं, चितई कछु मुसकाइ।
सैननि में अति चतुर पिय, रहे चरन सिर नाइ।।२१।।

जब नन्दकुमार श्रीवृषभानु राय की सिंहपौर पर पहुँचे, तो प्रेम के आवेश के कारण उनकी गति कुछ से कुछ हो गई, उन्हें अपने देह की कुछ भी सुधि-बुधि न रही। ।।१८।। अद्‌भुत रूप लावण्य धाम नन्दनन्दन को उद्‌भ्रान्त सी अवस्था में देखकर सभी नगरवासीगण विह्वल होकर हाहाकार करने लगे और प्राणों को न्यौछावर करने लगे, कहने लगे हाय-हाय! इस कुमार को अकस्मात् क्या हो गया ? ।।१९।। नगरवासियों के हा-हाकार पूर्ण शब्दों की एक भनक नवल किशोरी वृषभानु-नन्दिनी के कानों में पड़ी और वे आकुल हो उठीं, अपने सुखासन पर स्थिर नहीं रह सकीं। तत्काल ही अपनी प्रिय सहेलियों का सङ्ग त्यागकर महल के झरोखे पर आईं एवं उन्होंने प्रियतम की ओर झाँका। ।।२०।। लोक-लाज का परित्याग करके अतिशय प्रेम-पूर्ण दृष्टि से मधुर मुस्कान के साथ प्रियतम पर दृष्टि-निक्षेप किया और इधर रसिक शिरोमणि परम नागर प्रियतम ने नेत्र सङ्केत से श्री किशोरी के चरणों में अपना सिर झुकाया अर्थात् अभिवादन किया। ।।२१।।

अंग अंग प्रति फूल भई, आनँद उर न समाइ।
भाग मानि पहिचानि करि, चले लाल सिर नाइ।।२२।।
सर्वोपरि राधा कुँवरि, पिय प्राननि के प्रान।
ललितादिक सेवतिं तिनहिं, अति प्रवीन रस जानि।।२३।।

ब्रज का लीला-स्वरूप एवं गोपी-महिमा दोहा

पहिली पैरी प्रेम की, कीन्ही ब्रज विस्तार।
भक्तनि हित लीला धरी, करूना निधि सुकुँवार।।२४।।
रच्यौ रास कियौ बचन हो[1], आइ मिलीं ब्रजनारि।
प्रेम फाग खेलीं तहाँ, सब संकोच निबारि।।२५।।

स्वामिनी श्रीवृषभानु-नन्दिनी के दर्शन से श्रीनन्दलाल के अङ्ग-अङ्ग में प्रसन्नता छा गयी। उनका हृदय आनन्द से भरकर छलकने लगा, उन्होंने आज अपने आपको भाग्यशाली अनुभव किया, क्योंकि आज प्रथम मिलन में ही प्रेम-परिचय का सुअवसर प्राप्त हुआ। पश्चात् श्री लालजी किशोरी जी के चरणों में दूर से ही मानसिक अभिनन्दन करके नन्दगाँव की ओर चले गये। ।।२२।। ब्रह्माजी कहने लगे—हे भृगु ! व्रज-वृन्दावन के प्रेम-देश में वृषभानुनन्दिनी श्री राधा प्रियतम नन्द-नन्दन की प्राणाधिक प्रिया हैं, प्राण स्वरूपा हैं। अतएव समस्त व्रज युवतियों में सर्वोपरि श्रेष्ठ हैं। प्रेमरस साम्राज्य की सर्वोपरि ज्ञाता, रस प्रवीणा ललितादिक सहचरियाँ श्री वृषभानु-नन्दिनी का सर्वात्म-भाव से अहर्निश सेवन करती रहती हैं। ।।२३।।

श्री ब्रह्माजी ने कहा-करुणानिधान सुकुमार हृदय व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण ने भक्तों के लिए जिस प्रेम-लीला का विस्तार किया, उसका प्रथम सोपान व्रज की प्रेम-लीला है। ।।२४।। जब उन्होंने महारास की रचना की तो उसमें समस्त व्रजबालाएँ उनसे आ मिलीं। वहीं प्रेम का सङ्कोच रहित निरावरण वसन्तोत्सव सम्पन्न हुआ। ।।२५।।

---

१. पाठान्तर—कोउ बची नहिं,

रिषि मुनि जोगिनु के लियै[1], कबहुँ न लसे ब्रज-चंद।
गहि लीन्हें ब्रज-सुन्दरिन, डारि प्रेम कौ फंद।।२६।।
जोइ जोइ ब्रज वनिता कहैं, सोइ सोइ लेत हैं मानि।
नाचत ज्यौं कठपूतरी, तिनके आगैं आनि।।२७।।
बहुत भाँति लीला चरित,तैसेई भक्त अपार।
अपनी-अपनी रुचि लिए, करत भक्ति-विस्तार।।२८।।
और चरित बहु भाँति के, कीन्हे हैं जग केत।
दूजौ कारन नाहिं कछू, ते सब भक्तनि हेत।।२९।।
अर्जुन पूछ्यौ कृष्ण सौं, मेरे एक सँदेहु।
कौन भक्त प्यारौ तुम्हैं, यह मोसौं कहि देहु।।३०।।

इस प्रकार का उन्मुक्त लीला-विलास व्रजचन्द्र श्रीकृष्ण के द्वारा किसी महामहिम ऋषि-मुनि और योगी के लिए भी प्रयुक्त नहीं हुआ, जैसे प्रेम का बन्धन डालकर व्रज-सुन्दरियों ने सर्वथा बन्धन-रहित भगवान श्रीकृष्ण को प्रेमपाश में बाँध लिया। ।।२६।। आश्चर्य तो यह है कि सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर भी भगवान् श्रीकृष्ण व्रज-वनिताओं के आज्ञावर्ती ही नहीं बने अपितु, काठ की पुतली की भाँति उनके आगे नाचने लगे। ।।२७।। भगवान् के अनेक प्रकार के भक्त हैं, और उन भक्तों की भक्ति के अनुरूप भगवान् के चरित्र भी बहुत प्रकार के हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् भक्तों की रुचि के अनुसार ही भक्ति का विस्तार करते हैं। ।।२८।। ऐश्वर्य, वैभव और माधुर्य आदि दृष्टि से भगवान् के नाना अवतारों में अनन्त चरित्र हैं। इन सब अवतार-चरित्रों में अन्य कोई कारण नहीं, कारण केवल एक ही है कि भगवान् भक्तों की भक्ति के वशीभूत हैं। ।।२९।। ऐसे भक्तिवश भगवान् श्रीकृष्ण से एक बार अर्जुन ने पूछा—हे श्याम सुन्दर! तुम्हारे समस्त भक्तों में तुम्हें सबसे अधिक प्यारा भक्त कौन है? ।।३०।।

---

१. पाठान्तर—हियैं

भक्त जगत में बहुत हैं, तिनकौं नाहिं प्रमान।
हौं गोपिनु के हिय बसौं, गोपी मेरे प्रान।।३१।।
बैकुंठहु ते अधिक है, मथुरा-मंडल जान।
तामें ताहू ते अधिक, ब्रज-मंडल सुख खान।।३२।।
अति सुदेस माया रहित, इकइस जोजन भूमि।
जहाँ सहाइ ब्रजबास की, रहत कृष्न दिन झूमि।।३३।।

वृन्दावन नित्य-विहार का सङ्केत दोहा

मधि राजत ज्यौं मुकुट मनि, बृंदावन रसकंद।
रसमय सुखमय तेजमय, झलकत कोटिक चंद।।३४।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, अर्जुन ! संसार में मेरे अनन्त भक्त हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, किन्तु मैं केवल गोपियों के हृदय में बसता हूँ और गोपियाँ मेरी प्राण हैं। इससे अधिक मेरी आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं है। ।।३१।। मथुरा मण्डल वैकुण्ठ से भी अधिक श्रेष्ठ है और मथुरा मण्डल से भी अधिक श्रेष्ठ है, समस्त सुखों का भण्डार व्रज-मण्डल। ।।३२।। यह व्रज-मण्डल अप्राकृत एवं दिव्य निसर्ग है, माया रहित है। इसका विस्तार इक्कीस योजन अर्थात् चौरासी कोस है। इस व्रज-मण्डल में सगुण साकार रूप से श्रीकृष्ण नित्य, निरन्तर निवास करते हैं। व्रज की धूलि उपासक को व्रजवास की वरदान-रूपिणी है। यह व्रज भूमि व व्रज-रज आनन्द कन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को भी अत्यन्त प्रिय है। ।।३३।।

ब्रह्माजी ने कहा—हे भृगु ! उपरि कथित ब्रजमण्डल के मध्य में घनीभूत रस स्वरूप श्री वृन्दावन धाम सबके मुकुट-मणि की भाँति शोभित है। कोटि-कोटि चन्द्रमाओं के प्रकाश को भी निरस्त करता हुआ तेजोमय, सुखमय और प्रेममय श्रीवृन्दावन धाम जाज्ज्वल्यमान् रूप से प्रकाशित है। ।।३४।।

एक रंग रुचि एक रस, अद्‌भुत नित्य-बिहार।
जहाँ किसोरी लाड़िली, करी लाल उर-हार।।३५।।
निसदिन तो पहिरे रहैं, रूप की मनि उजियार।
रस[1] में लटकि छके रहैं, अधर सुधा आधार।।३६।।
अंग-अंग मन-मन मिले, नैननि-नैन विसाल।
रूप-बेलि प्यारी बनी, छबि के लाल तमाल।।३७।।
जोरी दूलहु-दुलहिनी, मोहन-मोहिनी आहि।
परम न अंतर निमिष कौ, जीवत रूपहि चाहि।।३८।।

जहाँ एक ही रुचि, रस और आनन्द रङ्ग से उल्लसित युगल किशोर का नित्य विहार सम्पन्न होता है। जहाँ नित्य नव किशोरी लाड़िली श्रीराधा ने नित्य किशोर श्रीलालजी को अपना हृदय-हार बना रखा है। ।।३५।। रसिक युगल-किशोर नित्य-निरन्तर प्रेम के आलिङ्गन से आबद्ध ऐसे लगते हैं, जैसे दोनों ने दोनों के रूप की जाज्ज्वल्यमान् मणि माला धारण कर रखी हो और उसी रूप में लटके और छके रहते हैं। अधर-सुधा-पान ही जिनका जीवनाधार है। ।।३६।। युगल के अङ्ग से अङ्ग, मन से मन और विशाल नेत्रों से नेत्र सदा मिले रहते हैं। मानो किशोरी प्यारी रूप की लता है और श्रीलालजी छवि के तमाल वृक्ष हैं एवं दोनों प्रेम से आलिङ्गित होकर एक हो गये हैं। ।।३७।। दूलह मोहन लाल-मोहिनी नव वरवधू श्रीराधा परस्पर रूप दर्शन-पान से ही जीवित हैं। इनमें एक निमेष काल का भी विरह-वियोग एवं अन्तराय नहीं होता। ।।३८।।

---

१. पाठान्तर–ता रस में लटके छके रहत अधिक रससार।

महा मधुर रस-माधुरी, नव-नव वैस किसोर।
अद्‌भुत रस में मगन रहि, नहिं जानत निसि भोर।।३९।।
नव किसोरता-माधुरी, सब गुन लीन्हें संग।
जुगल चरन सेवत रहै, रँगी प्रेम के रंग।।४०।।
नित्य लाड़िली लाल दोउ, नित वृंदावन धाम।
नित्य सखी ललितादि निजु, सेवत स्यामा-स्याम।।४१।।
ब्रज में जो लीला चरित, भयौ जु बहुत प्रकार।
सबकौ सार बिहार है, रसिकनि कियौ निरधार।।४२।।

नित्य नव नवायमान् किशोरावस्था की महा मधुर रस माधुरी में निमग्न युगल किशोर अद्‌भुत प्रणय-केलि रस में ऐसे डूबे रहते हैं कि उन्हें रात्रि-दिवस का भी बोध नहीं होता, सदा कालातीत विहार में मग्न रहते हैं। ।।३९।। स्वयमेव नव किशोरता-माधुरी अपने समस्त गुण-कला वैभवादि को साथ लिये हुए प्रेम के रङ्ग में रँगी हुई ललित लाड़ली-लाल युगल के श्री चरणों का नित्य-निरन्तर सेवन करती रहती है। ।।४०।। माया एवं काल के प्रभाव से रहित श्री वृन्दावन धाम में नित्य किशोर लाड़िली-लाल युगल अपनी नित्य सखी ललिता, विशाखादि द्वारा अखण्ड रूप से सेवित हैं। ।।४१।। ब्रह्माजी ने कहा-मर्मज्ञ रसिकों का निर्धारण है कि व्रज मण्डल में रसिक शेखर श्रीकृष्ण का सम्पन्न होने वाला लीला-चरित्र ऐश्वर्य-माधुर्य एवं विविध भावों की स्थिति के अनुसार, बहुत प्रकार का है। इन सब लीला-चरित्रों का सार सर्वस्व है—युगल किशोर का नित्य विहार।।४२।।

श्री वृन्दावन महिमा दोहा

वृंदावन-महिमा कछुक, कहत हौं सो सुनि लेहु।
द्रुम-द्रुम प्रति अरु लता प्रति, लपट्यौ सहज सनेहु।।४३।।
महा प्रलय जबही भयौ, रह्यौ न कछुवै आँन।
गिरि, वन, व्यौम न भूमि रहि, नहिं नछत्र ससि भाँन।।४४।।
सर-सरिता सागर मिले, अमित मेघ की धार।
तीन लोक जल चढ़ि गयौ, बूढ़्यौ सब संसार।।४५।।
कोटि-कोटि उतपति प्रलय, होति रहति इहि भाँति।
जैसैं अरहट की घरी, भरि-भरि, ढरि-ढरि जातिं।।४६।।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं आपको यत्किञ्चित् श्री वृन्दावन की महिमा बताता हूँ, जिसे आप श्रवण करें। यह वृन्दावन प्रेम-धाम है। यहाँ का प्रत्येक रज कण प्रेम स्वरूप है। श्री वृन्दावन धाम का प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता, तृण व वीरुध सभी प्रेम से ओत-प्रोत हैं। ।।४३।। श्री वृन्दावन धाम नित्य धाम है, इसका महा प्रलय में भी विनाश नहीं होता। विगत कल्प में जब महा प्रलय हुआ, तब पर्वत, वन, आकाश, भूमि, नक्षत्र गण, सूर्य और चन्द्रमा सभी महाप्रलय के जल में लीन हो गये। ।।४४।। समस्त सरोवर, सरिताएँ और समुद्र महा प्रलय कालीन मेघ से बरसे हुए जल के साथ एकमेक हो गये। उस अपार जल राशि ने तीनों लोकों को और समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में लीन कर लिया। ।।४५।। परब्रह्म परमात्मा की अचिन्त्य लीला शक्ति के द्वारा ऐसे कोटि-कोटि प्रलय एवं उत्पत्तियाँ निरन्तर होती रहती हैं। जैसे रहट की बाल्टियाँ रहट-चक्र में चलती हुईं भरती और ढलती रहती हैं। ।।४६।।

लोक-पाल लीला-रचित, अब कछु दीसति नाँहि।
निगम रिचा भूली भ्रमतिं तिरति फिरैं तिहिं माँहिं।।४७।।
सहज विराजत एक रस, वृंदावन निजु भौंन।
माया-जल परसत नहीं, अरु माया की पौंन।।४८।।
न्यारौ चौदह लोक तें, वृंदावन निजु धाम।
इक रस विलसत रहत नित, सहजहिं स्यामा-स्याम।।४९।।
चहूँ ओर वृंदा विपिन, सेवत सब औतार।
विहारी विहारिनि करत तहँ, आनँद रंग-विहार[1]।।५०।।

भृगु ! मैंने देखा प्रलय के उस जलार्णव में लोकपालों के द्वारा रक्षित लोक-समूह और उन लोकों के निवासियों का जीवन सब कुछ दृष्टि से ओझल हो गया। वेद की ज्ञान-रूपा ऋचाएँ उस महान् जलार्णव में इधर-उधर थपेड़े खाती हुईं भूली-भटकी सी उतरा रही थीं।।।४७।। और मैंने यह भी देखा कि श्री श्यामा-श्याम का निज धाम वृन्दावन सहज एकरस उस जलार्णव पर पूर्ववत् विराजमान था। उस माया-जल ने वृन्दावन का स्पर्श तक नहीं किया। माया के वायु-प्रवाह ने भी स्पर्श नहीं किया और न कभी कर सकता है।।।४८।। निज धाम श्री वृन्दावन चौदह लोकों से सर्वथा पृथक् होने के कारण अलौकिक है, जहाँ नित्य-किशोर श्री श्यामा-श्याम अनादि और अनन्त रूप से नित्य-निरन्तर प्रेम-विलास करते रहते हैं।।।४९।। नित्य-विहारी युगल के नित्य रङ्ग-विहार मय श्री वृन्दावन के चतुर्दिक श्री हरि के समस्त अवतार उसका (श्री वृन्दावन का) दर्शन एवं सेवन करते रहते हैं। ।।५०।।

---

१. पाठान्तर – करत बिहारि बिहार तहाँ, आनँद रंग बिहार।।

श्रुतियों का निर्णय दोहा

निगमनि सोच-विचारि कैं, यह ठहराई चित्त।
भजन ताहि कौ कीजियै, इक-छत रहै जु नित्त।।५१।।
तब लागे अस्तुति करन, बाढ़्यौ उर आनंद।
जाने पूरन सबनि पर, श्री वृंदावन-चंद।।५२।।
एकै पुरुष किसोर वर, दूजौ नाहिंन कोइ।
जाकी इच्छा सहज ही, यह कौतिक सब होइ।।५३।।

ब्रह्माजी कहने लगे कि महाप्रलय के जलार्णव में भटकती हुई वेद की ज्ञान स्वरूपा ऋचाएँ सोच-विचार में पड़ गयीं। उन्हें परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण-निरन्तर व्यापक सत्तात्मक ब्रह्म स्वरूप में परत्त्व स्थिति के विषय में भ्रान्ति होने लगी, क्योंकि उन्होंने महाप्रलय के जल में तैरते समय दिव्य माया-काल प्रपञ्च से अतीत शुद्ध-बुद्ध, चिन्मय, शाश्वत् और नित्य एक-रस विद्यमान आनन्दमय श्री वृन्दावन का दर्शन किया था उसके प्रति उनकी आस्था वृद्धि को प्राप्त हो गयी, अतः उन्होंने निश्चय किया कि भजन सेवन तो उसी का करना चाहिये, जो त्रिकाल में एक-रस नित्य विद्यमान् रहता है। ।।५१।। तब वे आनन्द से भरे हुए पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ श्री वृन्दावन की स्तुति करने लगीं। वेद की ऋचाओं ने कहा कि आज हमने जाना कि श्री वृन्दावन विलासी युगल-चन्द्र ही परिपूर्णतम अवतारी तत्त्व हैं, अतएव सर्वोपरि हैं। ।।५२।। वही परम पुरुष हैं, जो आज वृन्दावन में नित्य-किशोर के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। इसके सिवाय अन्य कोई पुरुष नहीं है। इन्हीं नित्य-किशोर पुरुष की इच्छा से (सङ्कल्पमात्र से) अनन्त लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति होती है, यही अनन्त सृष्टि के पालक व संहारक हैं, अखिल विश्व प्रपञ्च के कर्त्ता, धर्त्ता एवं विधाता हैं। ।।५३।।

गावत जाकौ सुजस रस, आनँद बढ़्यौ अपार।
देखी कछु छबि की छटा, वृंदा-विपिन बिहार।।५४।।
रूप-माधुरी देखि कछु, विवस भये मुरिझाइ।
बाढ़ी रुचि की चाह अति, रहे ललचाइ-लुभाइ।।५५।।
काम-कामना बढ़ी उर, यह उपजी अति आइ।
खेलैं ऐसै रूप सँग, बनिता कौ तनु पाइ।।५६।।

श्रुतियों के प्रति आकाश-वाणी दोहा

तिनि प्रति तब बानी भई, यह लीनी प्रभु मानि।
प्रगट होहु ब्रज जाइ तुम, हमहूँ प्रगटैं आनि।।५७।।

इस प्रकार वेद की ऋचाएँ श्री वृन्दावन का सुयश-रस गान करते-करते अपार आनन्द में मग्न हो गयीं। उन्होंने वृन्दावन युगल-विहार की छवि-छटा का साक्षात्कार किया। ।।५४।। रूप माधुरी के आस्वादन से वे ज्ञान ऋचाएँ प्रेम-विवश हो गयीं। उनके मन में श्री वृन्दावन के प्रति रुचि उत्पन्न होकर रस की लालसा बढ़ चली। ।।५५।। ज्ञान स्वरुपा ऋचाएँ जो सम्यकतया निष्काम थीं, अब सकाम हो गयीं, उनके मन में एक विलक्षण कामना उदय हुई कि हम सब नव किशोर सुन्दरी वनिता का (नारी का) तनु प्राप्त करके इन श्री वृन्दावन-विलासी नित्य नव-किशोर पुरुष के साथ क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त करें। ।।५६।।

ब्रह्माजी ने कहा—स्तुति के परिणाम स्वरूप वेदों को अज्ञात आकाशवाणी ने सम्बोधित करते हुए आश्वस्त किया कि—हे देवगण ! तुम्हारी प्रार्थना प्रभु ने स्वीकार कर ली है। अब प्रभु की आज्ञा है कि तुम सब ज्ञान रूपी ऋचाओ व्रज में जाकर गोपी रूप से जन्म ग्रहण करो। समय आने पर मैं भी वहाँ प्रकट हो जाऊँगा। ।।५७।।

तहाँ सबै सुख पाइहौ, जो-जो करी मन-आस।
हम तुम एकहि संग मिलि, करिहैं रास-विलास।।५८।।

सखी का प्राकट्य और उससे वेदों का प्रश्न दोहा

जाकी बानी भई ही, सो सखि प्रगटी आइ।
वेदनि के आनँद भयौ, अद्भुत दरसन पाइ।।५९।।
एक असंका बढ़ी उर, चित्त रह्यौ विस्माइ।
कछु इक नित्य बिहार रस, हमहिं देहु समुझाइ।।६०।।
प्रभु आग्याँ जो भई है, सो पहिलैं करि लेहुँ।
ता पाछैं जो पूछि हौ, ताकौ उत्तर देहुँ।।६१।।

तुमने अपने मन में जो अभिलाषाएँ की हैं, वे सब वहाँ पूर्ण होंगी। हम और तुम सब मिलकर एक साथ रास-विलास करेंगे। ।।५८।।

तदनन्तर जिस सखी ने श्री वृन्दावन-विहारी के आदेश से वेद की ऋचाओं को आश्वस्त किया था, वह सखी स्वयं वेदों के समक्ष प्रकट हो गयी। सखी के दर्शन से वेद अति आनन्दित हो उठे। ।।५९।। वेदों ने सखी से निवेदन किया कि हमारे मन में एक आशङ्का है, जिससे हमारा मन विस्मित हो रहा है। कृपा-पूर्वक हमें संक्षेप से ही, नित्य विहार रस का कुछ उद्बोधन कराइये और हमारी आशङ्का का निवारण कीजिये। ।।६०।। वेदों की प्रार्थना सुनकर, सखी ने कहा—वेदो ! तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य यह है कि आकाशवाणी के माध्यम से प्रभु की जो आज्ञा हुई है, सर्वप्रथम हम एवँ तुम उसका पालन करें, तत्पश्चात् तुम जो कुछ पूछोगे, मैं उसका उत्तर दूँगी।।६१।।

सृष्टि विस्तार की आज्ञा और वेदों का समाधान दोहा

सखी कियौ जब चिंतवन, श्री पति प्रगटे आइ।
प्रभु आग्या तिन सौं कही, सृष्टि रचावहु जाइ।।६२।।
ऐसैं ही अवतार सब, लीन्हे तहाँ बुलाइ।
अपनौं-अपनौं काज तुम, कीजौं समयौ पाइ।।६३।।
धर्मराज सौं कही तहाँ, मेरौ वचन सुनि लेहु।
जाकैं रंचक भक्ति है, ताहि कष्ट जिनि देहु।।६४।।
भक्तनि छाँड़े सबनि कौं, तेरे आगैं न्याउ।
हरि-हरिजन तैं विमुख जे, तिनकौं तू समुझाउ।।६५।।

सखी के आदेशात्मक चिन्तन के तत्काल पश्चात् श्रीपति नारायण भगवान् वहाँ प्रकट हो गये। सखी ने श्री नित्य-विहारी लाल सर्वेश्वर प्रभु की आज्ञा सुनाते हुए भगवान् श्रीनारायण से कहा—कि अब आप शीघ्र ही सृष्टि की रचना कीजिये और उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था बनाइये। ।।६२।। इसी प्रकार उस सखी ने सब भगवद् अवतारों को बुला-बुलाकर आदेश दिया कि आप सब समय-समय पर अपने-अपने अवतार-ग्रहण का दायित्त्व पूर्ण करने का ध्यान रखियेगा। ।।६३।। धर्मराज को बुलाकर कहा कि आप मेरी इस बात का पूर्ण ध्यान रखियेगा कि जिसके हृदय में भगवान् की थोड़ी सी भक्ति है, उसे कभी भूलकर भी कष्ट मत दीजियेगा। ।।६४।। भगवद्-भक्तों के सिवाय अन्य सब जीवों के धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यादि के अनुसार उनका न्याय एवं फलभोग देने-दिलाने का आपको अधिकार है और जो जीव श्री हरि की भक्ति से विमुख हैं; साम-दान-दण्ड और भेद से आप उन्हें समझाइये एवं उन्हें श्री हरि के सम्मुख कीजिये। ।।६५।।

पुनि फिरि वेदनि सौं कही, जो पूछ्यौ सुनि लेहु।
नित ही नित्य बिहार करैं, यामें कछु न संदेहु।।६६।।
नित्य सहज वृंदा विपिन, नित्य सखी ललितादि।
नित ही विलसत एक रस, जुगल किसोर अनादि।।६७।।
नवल प्रेम सौं रँगे दोउ, नित ही नवल किसोर।
होत रहत उत्पति प्रलय, नहि जानत निसि भोर।।६८।।
वेदहु जानैं अंश सब, मिट्यौ भरम तिहिंकाल।
समुझे पूरन सबनि पर, नित्य बिहारी लाल।।६९।।

तत्पश्चात् पुनः सखी ने वेदों से कहा—आपने प्रथम नित्य-विहार सम्बन्ध जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर यह है कि नित्य-विहारी लाल युगल-किशो नित्य-निरन्तर अनादि-अनन्त रूप से श्री वृन्दावन-धाम में विहार करते रहत हैं। इस विषय में सन्देह का कोई स्थान नहीं है। ।।६६।। युगल-किशो का निज-धाम श्री वृन्दावन नित्य, अविनाशी एवं दिव्य निसर्गमय है। युगल की केलि-सहयोगी ललितादिक सखियाँ भी जरा-मरणादि प्राकृत-धर्मों से रहित, नित्य, शाश्वत् और दिव्य तनुधारिणी हैं और श्री युगल-किशोर क तो कहना ही क्या है ? वे तो सर्वथा ही अवाङ्मनसाऽगोचर, शुद्ध-बुद्ध प्रेम तत्त्व हैं ही।।।६७।। नित्य नव-किशोर युगल नव नवायमान् प्रेम रस से रँग हुए सदा-सर्वदा प्रेम विहार में ही मग्न रहते हैं। वे विश्व-सृष्टि की उत्पत्ति पालन एवं प्रलय के सञ्चालन-ज्ञान तथा दायित्त्व-बोध से भी उन्मुक्त रहकर कालातीत प्रेम-विहार में निमग्न रहते हैं। उन्हें दिन-रात्रि के आवागमन क भी बोध नहीं होता। ।।६८।। सखी के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने प वेदों का सारा भ्रम-संशय निवृत्त हो गया। उन्हें ज्ञात हुआ कि ये नित्य विहारी ललित लाड़िली-लाल ही अवतारी और परिपूर्णतम सर्वोपरि प्र हैं। सारे अवतार इनकी अंश-कलायें हैं। ।।६९।।

अपनैं-अपनैं सदन कौं, कीन्हौं सबनि पयान।
ता पाछैं सोई सखी, भई जु अन्तरध्यान।।७०।।

सृष्टि-विस्तार दोहा

श्री पति चितयौ आपु ही, प्रकृति पुरुष की कोद।
तेही छिन उपजी हियैं, कीजै जगत-विनोद।।७१।।
प्रथमहिं माया ते भये महत्तत्त्व अहँकार।
अहंकार त्रै रूप भयौ, तातें जग-विस्तार।।७२।।
त्रय गुन प्रकटे तीन वपु, ब्रह्मा बिष्नु महेस।
ता पाछैं सुर असुर नर, लोक-पाल सर्वेस।।७३।।
दोइ मुहूरत में रचे, चौदह लोक बनाइ।
बाढ़ी प्रभुता पुरुषता, कापै बरनी जाइ।।७४।।

इसके पश्चात् वह सम्पूर्ण समुदाय अपने-अपने धाम के लिये प्रस्थान कर गया एवं सखी भी अन्तर्धान हो गयी। ।।७०।।

श्रीपति ने प्रकृति एवं पुरुष की दिशा में अपनी दृष्टि का निक्षेप किया तो उसी क्षण 'प्रकृति एवं पुरुष' में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसमें संकल्प हुआ कि हमें अब सृष्टि-विस्तार करना चाहिए। ।।७१।। उसी क्षण इच्छा-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई और महत्तत्त्व से अहंकार का जन्म हुआ। ।।७२।। अहंकार त्रिगुण, (सत रज एवं तम) रूप बन गया, जिससे क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिव का सगुण-साकार रूप प्रकट हुआ। तत्पश्चात् देवता, राक्षस, मनुष्य और समस्त लोकपालों की उत्पत्ति हुई। ।७३।। केवल दो मुहूर्त्त काल में चौदह लोकों की रचना सम्पन्न हो गयी। इस प्रकार सृष्टि-विस्तार पूर्वक नित्य-विहारीलाल की प्रभुता एवं पुरुषार्थ का अवर्णनीय विस्तार हो गया। श्री हरि के नाना अवतारों के अपार लीला-चरित्रों का अपार विस्तार हो गया, जिसका वर्णन असम्भव है।।।७४।।

बहुत भाँति लीला चरित, तिनकौ नाहिंन पार।
सोई भूल्यौ भ्रम्यौ फिरै, कियौ चहै निरधार।।७५।।

उपसंहार दोहा

सब तजि जुगल-किसोर भजि, जौ चाहत विश्राम।
'हित ध्रुव' मन बच हेत सौं, सेवहु स्यामा-स्याम।।७६।।

जो कोई स्वाभिमानी इसका वर्णन करने का दम भरेगा, वही भूला हुआ भटकता फिरेगा, पर इस अपार सृष्टि का पार नहीं पा सकेगा। ।।७५।।

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यदि तुम परम शान्ति चाहते हो तो सब कुछ त्यागकर श्री श्यामा-श्याम का भजन करो और मन-वचन से प्रीति पूर्वक युगल-किशोर का ही सेवन करते रहो। ।।७६।।

❐

८
सिद्धान्त-विचार

प्रस्तावना

प्रेम की बात कुछ इक लाड़िली लाल जू जैसी उर में उपजाई, तैसी कही। रसिक भक्तनि सौं यह विनती है, जो कहुँ घटि बढ़ि भूलि कही गई होइ, तौ कृपा करि समुझाइ दैनी।

जिहि प्रेम माधुरी श्री जुगलचंद, आनंदकंद, नित्यानंद, उन्नत नित्य केसोर श्री वृंदावन-निकुंज-बिहार रसमत्त विलास करत हैं। जथामति किंचित् डीठ्यौ कै कही, जैसैं सिंधु तैं सीप भरि लीजै।

प्रेम-नेम के लच्छन कहा। प्रेम कहा, नेम कहा।

प्रेम कौ निज रूप चाह, चटपटी, अधीनता, उज्जलता, एकरस, कोमलता, स्निग्धता, सरसता, नौतनता, सदा एकरस, रुचि-तरंग बढ़त रहै, सहज स्वच्छंद, मधुरिता, मादिकता, जाकौ आदि अंत नाहीं, छिन-छिन नौतन स्वाद।

श्री हित ध्रुवदास जी रसोपासना के सिद्धान्त-सूत्रों का निरूपण करने से पूर्व अपना दैन्य-भाव प्रकाश करते हुए वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण करते हैं कि श्री हित लाड़िली-लाल जू ने मेरे हृदय में प्रेम का स्वरूप जैसा कुछ प्रकट किया है, मैं उसे यथावत् कहने का प्रयास कर रहा हूँ।

वे कहते हैं कि रसिक भक्तों से मेरी यह प्रार्थना है कि यदि मुझ से अपने कथन में प्रेम-रस सम्बन्धी कोई बात न्यूनाधिक अथवा त्रुटिपूर्ण कह दी गयी हो, तो मुझे समझाने की वे कृपा करें।

आनन्दकन्द नित्यानन्द नवनवायमान् उन्नत मिथुन किशोर श्री श्यामाश्याम युगल चन्द्र वृन्दावन के निकुञ्ज-विहार की जिस प्रेम-माधुरी में रसमत्त बने रहते हैं, उसका मैंने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार वर्णन करने की धृष्टता की है। मेरा यह कथन ऐसा ही है जैसे कि अपार अथाह समुद्र में से एक लघु-पात्र सुक्ति मात्र भर लिया गया हो।

यह वृन्दावन का युगल विहार निर्हैतुक शुद्ध प्रेम-विलास है, किन्तु यह विलास प्रेम-नेम ओतप्रोत है, अतएव सहज प्रश्न बनता है कि प्रेम एवं नेम के क्या लक्षण हैं, अर्थात् किसे प्रेम कहते हैं, किसे नेम ?

प्रेम की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं कि प्रेम का सहज स्वरूप चाह (हार्दिक उत्कण्ठा) चटपटी (आतुरता) उज्ज्वलता (निष्कामता) कोमलता (मृदुता) स्निग्धता (सचिक्कणता) सरसता (रसमयता) नूतनता (नित्य नवीनता) सदा एकरस (व्यवधान रहित अविच्छिन्नता) रुचि तरङ्ग की नित्य वर्धमान्-दशा (प्रेमी के हृदय में प्रेमास्वादन के लिए तत्सुखिता की उमङ्ग नित्य वृद्धि को प्राप्त होती रहें) सहज स्वच्छन्द-मधुरता (लोक वेद के समस्त बन्धनों से मुक्त एवं विक्षेप रहित सहज माधुर्य रस का प्रवाह) आदि, मादिकता (प्रेम की छकन) आदि-अन्त-रहित प्रेम-रस की स्थिति एवं क्षण-क्षण प्रति नित्य नवीनता का आस्वादन, यह सब प्रेम के लक्षण हैं।

अरु नेम अनेक भाँति हैं। कछु इक कहैं ; देखिबौ, हँसिबौ, बोलिबौ, मान, निकुंजांतर किंवा निकट होइ, कोक के विलासादि सब प्रेम के नेम हैं। जाकौ आदि-अंत होइ सो सब नेम जानिबौ।।

अब 'नेम' का लक्षण करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नेम अनेक प्रकार के हैं यथा देखना, हँसना, बोलना, मान करना, निकुञ्जान्तर अथवा सामीप्य युक्त और कोक सम्बन्धी समस्त विलास आदि नेम के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु यह सब नेम, प्रेम से ही ओत-प्रोत हैं। तात्पर्य यह कि प्रेम सम्बन्धी

समस्त क्रियाएँ नेम के नाम से कही जाती हैं जिस क्रिया का आरम्भ है और समाप्ति भी उनकी है वे सब क्रियाएँ एवं लीलाएँ नेम के अन्तर्गत परिभाषित की जानी चाहियें।

जहाँ संजोग में देखत-देखत बिरह रहै तहाँ स्थूल विरह की समाई नाहीं। सब रस, सब सिंगार, सब प्रेम, सब नेम, मूर्त्ति धरैं श्री किसोरी-किसोर जू कौं सर्वदा सेवत रहत हैं। जिन भक्तनि जैसौ भाव धरि भजै, तिनकौं तहाँ पूरन सुख देत हैं।

प्रेम नेम के रूप अनेक हैं, कहाँ ताईं कहे जाहिं। प्रेम मई रस कौ सार लाड़िली-लाल कौ बिहार है। स्वाद विसेष के लियैं इतनौ ब्यौरौ कियौ। श्री किसोरी-किसोर जू कैं प्रेम ही को नेम है और कछू रुचत नाहीं। ताही रस में मन दीजै सदा, कै उनके रसिक उपासिकनि सौं चित्त लावै, सदा संग करै।

रसिकाचार्य श्री हित हरिवंशचन्द्र द्वारा प्रकटित वृन्दावनीय नित्य-विहार रसोपासना का आराध्य तत्त्व श्री श्यामा-श्याम युगल है, जो नित्य संयोग में स्थित है। दोनों परस्पर रूपासक्त हैं। जिनके लिए रूप-दर्शन में अर्ध निमेष का भी अन्तराय असह्य है, जहाँ इनका दो होना भी विरह रूप है वहाँ कुञ्जान्तर किंवा प्रवासादि एवं विरह-वियोग का प्रश्न ही नहीं बनता। ऐसे एकात्म युगल की सेवा में सब रस, सब शृङ्गार, प्रेम के समस्त स्वरूप तथा प्रेम के भी भेद-विभेद मूर्त्तिमान् होकर श्री वृन्दावन धाम में सदा-सर्वदा उनका सेवन करते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त भगवदैश्वर्यमय अनेक भक्तों के आराध्य भगवान् हैं, जो अपने समस्त भक्तों के विविध भावों का पोषण करते हुए उन भक्तों को पूर्ण सुख प्रदान करते हैं। जिनका स्वरूप इस माधुर्यमय रूप से भिन्न है।

यह फिर भी एक प्रकार का प्रेम और नेममय भक्तों का आराध्य स्वरूप है, जिसमें नेम की प्रधानता है और उस नेम के साथ प्रेम का श्लेष है। इस

प्रकार प्रेम प्रधान वृन्दावन के आराध्य तत्त्व में और नेम प्रधान प्रेम-मिश्रित भक्तों के आराध्य सर्ववाञ्छाकल्पतरु भगवान् में भगवत्ता की एकता होते हुए भी प्रेम रसास्वाद का भेद है।

उपरोक्त विवेचन में प्रेम प्रधान नेम और नेम प्रधान प्रेम के उदाहरण प्रस्तुत करके श्री ध्रुवदास जी यह स्पष्ट करते हैं कि प्रेम और नेम के अनेक रूप हैं, जो वर्णन में नहीं आ सकते, किन्तु उन सब का सार और शुद्ध रूप श्री वृन्दावन का युगल विलास है; क्योंकि यह विलास शुद्ध प्रेम-विलास है। इसीलिए श्री किशोरी-किशोर जू के लीला-विलास में प्रेम ही नेम स्वरूप है। प्रेम से अतिरिक्त उनकी अन्य कोई रुचि नहीं है। अतएव रसिक उपासकों को चाहिए कि श्री श्यामाश्याम के नित्य आस्वाद्य एवं रुचिकर प्रेम प्रधान रस में मन दिये रहें, उनसे अथवा उनके रसिक उपासकों से अपना मन लगावें और उनका ही सदा सङ्ग करें।

वृन्दावन–रस के रसिकों का स्वरूप

ते रसिक भक्त कैसे हैं ? छाँड़ि रसिक रसिकिनी जू के प्रेम रस-विहार बिनु और कछु रुचत नाहीं। तिनि की दृष्टि में और रस कछु न आवै, तिहिं रस के बल सब तें बेपरवाह रहत हैं। और जहाँ ताई औतार लीला तहाँ तैसीयै भाँति के भक्त हैं। एक भक्त ऐसै हैं, सब औतार लीला गावत हैं कछू भेद नाहीं, ते ऐश्वर्य महातम ज्ञान लिये हैं। एकनि के इष्ट धर्म है, ते उनतें सरस कहियै। काहे ते जु इहाँ सनेह पाइयतु हैं। इष्ट कहियै सनेही सौं तातें सनेही कौं छाँड़ि दूसरी ठौर मन न चलै। जौ चलै तौ सनेही नाहीं। अनन्यता याकौं कहियै छाँडि अपनौ इष्ट और न जानै न मन चलै। जौ चलै तो अनन्यता नाहीं। रसिक तासौं कहियै, जो रस कौ सार गहै।

रसिकों के स्वरूप-निरूपण में श्री ध्रुवदास जी का अभिमत है कि वृन्दावनीय रसिकों को अपने आराध्य रसिक शेखर श्री श्यामा-श्याम के

विशुद्ध प्रेम-रस-विहार के बिना अन्य कुछ भी रुचिकर नहीं है, यहाँ तक कि इन रसिकों की दृष्टि में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्यादि रस के आस्वादन भी गौण हैं, अर्थात् उनका युगल रस-चिन्तन इतना उत्कृष्ट है कि उसके समक्ष अन्य प्रकार के रस-चिन्तन उनके अपने उज्ज्वल रस-चिन्तन में प्रविष्ट हो सकने में असमर्थ हैं, इसीलिए वे रसिक जन अपने चिन्तनीय रस-बल के आधार पर सब ओर से निरपेक्ष बने रहते हैं।

भगवान् के अनेक ऐश्वर्य माधुर्यमय अवतार हैं। उनकी अनेक लीलाएँ और अनेक भाँति के भक्त हैं, जिनमें कुछ भक्त ऐसे हैं जो भगवान् के सब अवतारों की लीलाएँ भेद रहित भाव से श्रवण-गान करते हैं। ये सब भगवान् के ऐश्वर्य-माहात्म्य और ज्ञान में निष्ठा रखने वाले भक्त हैं। इनकी भक्ति प्रेम-प्रधान न होकर फलाकाङ्क्षी है। इन भक्तों से भिन्न कुछ और भक्त भी हैं, जो धर्म-निष्ठ हैं वे ऐश्वर्य-माहात्म्य एवं ज्ञानवादी भक्तों से अधिक सरस हैं, क्योंकि इनकी उपासना में प्रेम का लगाव है।

प्रेम देश में प्रेमास्पद को इष्ट कहते हैं और इष्ट का अर्थ होता है—जो अपनी हार्दिक प्रीति का मूर्तिमान् स्वरूप हो। अतएव प्रेमी (सनेही) का धर्म बनता है कि अपने प्रेमास्पद को छोड़ कर उसका मन स्वाभाविक रूप से कहीं न जाय, प्रेमास्पद में ही अटका रहे। और यदि दुर्भाग्यवश प्रेमास्पद से हट कर एक पल के लिए भी कहीं अन्यत्र जाता है तो वह प्रेमी नहीं है।

अनन्यता उसे कहते हैं कि अपने इष्ट के अतिरिक्त उपासक अन्य कुछ न जाने और न ही कहीं अन्यत्र उसका मन जाय। यदि अपनी प्रीति के केन्द्र से वह फिसलता है अथवा विचलित होता है तो वह अनन्य उपासक नहीं है। अनन्यता का स्पष्ट अर्थ तो यह है कि अनन्य उपासक की दृष्टि में अपने इष्ट को छोड़कर अन्य समस्त सत्ताओं का सर्वथा अभाव। रसिक उसे कहते हैं जो समस्त रसों का सार सर्वस्व ग्रहण करने वाला हो।

और जहाँ ताईं भक्त उद्धव, जनक, सनकादिक अरु लीला, द्वारिका, मथुरा आदि तिन सबनि पर अति गरिष्ट सर्वोपरि ब्रजदेविनु कौ प्रेम है। ब्रह्मादिक जिनकी पदरज वांछत हैं। तिनके रस पर महारस, अति दुर्लभ, श्री वृन्दावन चंद आनंदघन उन्नत नित्य किसोर सबके चूड़ामणि तिन प्रेममयी निकुंज माधुरी विलास ललिता विसाखा आदि। इन सखियनि कै प्रान अधार अहार यहै हैं। इनि सखियनि कौ सुख सर्वोपरि जानियै। या पर न और रस न और सुख। श्री रसिकानंद किसोर प्रेम की सीवाँ ललिता बिसाखादि सखियन कौ प्रेम बिना सीवाँ जु कह्यौ न जाइ। सदा नौतन तें नौतन एकरस रहै। इनकौ प्रेम समुझनौ अति कठिन है। जिनि पर उनकी कृपा होइ तब ही उर में आवै। सखियनि कौ प्रेम सर्वोपरि विराजमान है, काहे तैं जु लाड़िली लाल जू कै मननि कौ कोई एक सुख है, तासौं आसक्त अवलम्बि रही हैं। इनकौ भाव धरि याही रस की उपासना में कपट छाँड़ि भ्रम छाँड़ि निसिदिन मन दै इहै विचार में रहै। अनन्य होइ ताकौ भाग कहिबे कौं कोऊ समर्थ नाहीं, इति।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि विदेह राज जनक, उद्धव, श्री सनकादिक एवं और भी अनेक प्रेमी भक्त हुए हैं। तथैव द्वारका मथुरा आदि धामों में भगवान् की ऐश्वर्य माधुर्य मण्डित अनेक लीलाएँ हुई हैं। इन सब भक्तों और भगवान् की विविध लीलाओं से अत्यन्त गम्भीर एवं सर्वोपरि प्रेम व्रज-सीमन्तिनियों का है, जिनकी पावन चरण-रेणु की वाञ्छा ब्रह्मादिक भी करते रहते हैं।

ऐश्वर्य प्रधान भगवान् के जनकादि भक्तों की ऐश्वर्य-माधुर्य-मण्डित भक्ति से अति श्रेष्ठ व्रज गोपियों का माधुर्य प्रधान प्रेम-रस है, जो सर्व सामान्य के लिए दुर्लभ है। किन्तु इन व्रज-देवियों के आस्वाद्य प्रेम-रस से भी अत्यन्त श्रेष्ठ प्रेम-रस है, उन्नत नित्य-किशोर अखिल लोक मुकुटमणि वृन्दावनेश्वरी एवं श्री वृन्दावन चन्द्र श्री श्यामा-श्याम युगल का निकुञ्जगत प्रेममय माधुर्य-विलास।

युगल का यह माधुर्य-विलास ही ललिता, विशाखा आदि सखियों के प्राणों का एकमात्र अवलम्ब एवं निरतिशय आस्वाद्य रस है। निकुञ्ज-रस-विलास में निरन्तर मग्न रहने वाली इन नित्य सहचरियों का युगल-प्रेम समस्त भक्तों एवं व्रजदेवियों के प्रेम-रस से भी विलक्षण एवं उत्कृष्ट है। इस प्रेम किंवा रस से परे न कोई सुख है और न रस ही है।

रसिक शेखर श्री युगल किशोर का दाम्पत्य प्रेम, प्रेमोपासना की समस्त विधाओं में सर्वोपरि है, अतएव प्रेग की चरग सीगा है, किन्तु युगल के तत्सुखमय प्रेम में रँगी श्री ललिता, विशाखा आदि सहचरियों का प्रेम असीम एवं अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह नित्य नूतन है एवं कभी घटता नहीं। स्वसुख भाव से रहित एवं श्री युगल के सुख में ही निरन्तर तत्पर रहने वाली सखियों की अगाध प्रीति-रीति की गहनता के मर्म को समझना कठिन है। इन सखियों की कृपा से ही इस रस का अधिकार कोई प्राप्त कर पायगा; (क्योंकि यह प्रेम-रस-विलास साधन-साध्य नहीं है) सखियों का प्रेम सर्वोत्कृष्ट एवं महान् है; क्योंकि श्री लाड़िली-लाल जी की अनिर्वचनीय अनुभवगम्य आभ्यन्तर जो एक विलक्षण सुखानुभूति है, उसके प्रति सखियों की परमासक्ति है, अर्थात् सखियों का लक्ष्य है जुगल का पारस्परिक तत्सुखानन्द। रसिक-उपासक को चाहिये कि सखियों के इस भाव की धारणा करके रस की उपासना में निरन्तर अपने मन को लगाए रखे और कपट एवं भ्रम रहित होकर इस चिन्तन में लीन रहा आए। अनन्यता ही इस रसोपासना का मर्म है, अतएव जो उपासक अनन्य हो गया है, उसकी भाग्य-महिमा अपार है। अनन्यता का अर्थ है विश्व प्रपञ्च की विस्मृति पूर्वक तैल-धारावत् अपने प्रेमास्पद का चिन्तन।

एक नें कही कि जब प्रेम उपजै तब नेम रहै कि जाइ ? जे नेम, प्रेम तें न्यारे हैं ते जाँइ, अरु जे नेम, प्रेम सौं जंत्रित हैं ते कैसे जाँइ ? नौधा भक्ति हूँ नेम है, जब प्रेम-लक्षना उपजै ताही प्रेम में लीन ह्वै रहै। ताकौ दृष्टांत— जैसे स्वेत वस्त्र लाल रँग्यौ, तब वह लाल भयौ, वस्त्र कहूँ नाहीं गयौ अरु

जैसे भरिया पात्र कौ आकार नेम, पात्र प्रेम, जो करिये अरु निबरै सो सब नेम। अरु सदा एक रस रहै सो सब प्रेम। अद्‌भुत प्रेम की गति ऐसी है, जो देह के सुख जहाँ ताईं हैं ते सब भूलि जाहिं। एक जासौं प्रेम है ताही रंग में रँगै। अरु ताके अंग-संग की जेती बातैं हैं, ते सब प्यारी लागैं, ताके नातैं। अरु ताकौ भावै सोइ जाकौ रुचै।

किसी ने प्रश्न किया कि जब उपासक के हृदय में प्रेम का उदय हो जाता है, तब नेम अर्थात् क्रियाएँ उस प्रेमी के साथ रहती हैं अथवा छूट जाती हैं ? इसका उत्तर देते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं जो क्रियाएँ प्रेम से सम्बन्धित नहीं हैं, वे छूट जाती हैं और जो क्रियाएँ प्रेम से जुड़ी हुई हैं, उन्हें कैसे पृथक् किया जा सकता है? नवधा भक्ति भी एक क्रिया ही है, तथापि उसका आचरण करते-करते कालान्तर में जब प्रेम-लक्षणा का उदय होता है तब नवधा भक्ति की समस्त क्रियाएँ प्रेम में लीन होकर प्रेम-लक्षणा-भक्ति का अङ्ग बन जाती हैं, यथा श्वेत वस्त्र को लाल रङ्ग से रँगा जाता है, तब वह लाल वर्ण का हो जाता है। रँगने से पूर्व वह वस्त्र था एवं रँगने के पश्चात् भी वस्त्र रहता है अर्थात् वस्त्र के अस्तित्व का सर्वथा अभाव तो होता ही नहीं, केवल रङ्ग बदल जाता है। इस दृष्टान्त के द्वारा यह बताया गया है कि वस्त्र प्रेम है और लाल रङ्ग नेम है, जो वस्त्र के साथ एकमेक हो जाता है। वस्त्र से रङ्ग को अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार नेम, प्रेम से यन्त्रित होने के कारण प्रेम से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत जल से भरा हुआ कोई पात्र हो, तो पात्र का आकार प्रेम है और जल नेम है। निरन्तर एक रस भरा रहने वाला 'पात्र' प्रेम है और भरा-निकाले जाने वाला 'जल' नेम है। यहाँ यह बताया गया है कि जल रूपी नेम, प्रेम-पात्र से संयुक्त न होने के कारण निवारण किया जा सकता है, अतएव यह सिद्ध हुआ कि जो क्रियाएँ प्रेम से अनुरञ्जित नहीं हो सकतीं, उनका स्वयमेव त्याग हो जाता है।

अब प्रेम के स्वरूप का निरूपण करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की गति अद्‌भुत है। हृदय में प्रेम का उदय होने पर देह के समस्त सुखों की स्वभावतः विस्मृति हो जाती है और केवल प्रेमास्पद के प्रेम-रङ्ग में रँगा हुआ प्रेमी उसकी विलासादिक चेष्टाओं की प्रेमपूर्ण स्मृति में खोया रहता है। उस प्रेमी को वह सब कुछ प्रिय लगता है, जो उसके प्रेमास्पद को रुचिकर है।

एक ने कही प्रेम में अरु काम में कहा भेद है सो कहौ, समुझाइ देउ ? तातें जैसी जथामति उपजी तैसी कही। और जहाँ ताईं सुख हैं तिन पर काम-रस अधिक है या पर और नाहिं। तहाँ व्यास जू ने कही, उहाँ के सुख की निसानी। पद में-"काम रति सुख की निसानी।" या प्रेम के सुख रस आगे सो काम लज्जित होइ रहै। तातें सबनि काम सुख नेंम में राखे। प्रेम कौ सुख निमित्य रहित सदा एक रस है। ताते प्रेम नेम के लच्छन ऊपर कहि आये हैं। जाकौ आदि-अंत होइ सो सब नेम जानिबौ। जाकौ अंत नाहीं सो प्रेम। सर्वदा एक रस रहै सो अद्‌भुत प्रेम है। जुगल किसोर जू कौ रूप जानिबौ, जिहिं प्रेम नें ये बस किये हैं, सो प्रेम महा अद्‌भुत है। ता प्रेम के एक निमेष पर और सुख कोटि कलपनि के वारि डारियै। स्वाद विसेष के लिये भयौ सुद्ध प्रेम है। जैसे खाँड़ अरु जल एकत्र कियौ तब खाँड़ न जल सरबत भयौ। खाँड़, जल हू वाही में है। ऐसे महामधुर रस स्वाद कौं सुद्ध प्रेम है प्रगट कियौ।

किसी ने प्रश्न किया कि प्रेम और काम में क्या अन्तर है, इसे स्पष्ट करके समझाइये। (श्री ध्रुवदास जी कहते हैं) जैसा कुछ मेरी बुद्धि में आया, मैं उसे व्यक्त कर रहा हूँ। जहाँ तक इन्द्रियों से भोगे जाने वाले सुख हैं, उनमें सर्वोपरि सुख "काम-रस" है। इस "काम-रस" नामक स्पर्श-सुख से अधिक कोई अन्य ऐन्द्रिय सुख नहीं है। श्री हरिराम व्यास जी ने भी कहा है "काम-रति सुख की निसानी" अर्थात् नायक-नायिका का प्रणयपूर्ण स्पर्श सुख ही समस्त ऐन्द्रिय सुखों की परावधि है।

उपरि कथित लौकिक काम-रस किंवा ऐन्द्रिय स्पर्श-सुख वृन्दावन-विलासी श्री श्यामा-श्याम की दिव्य प्रेम-केलि के सम्मुख नत-मस्तक एवं पराजित है। अतएव रसिकाचार्य्यों ने लौकिक काम-सुख को नेम के अन्तर्गत स्वीकार किया है। कारण कि यह काम-सुख आदि-अन्त युक्त है। इस काम-सुख से बहुत परे है, सदा एकरस रहने वाला प्रेम का अक्षुण्ण सुख।

पूर्व प्रसङ्ग में जहाँ प्रेम और नेम के लक्षण कहे गये हैं, वहाँ स्पष्ट है कि जिसका आरम्भ और अन्त होता है, वह नेम है और जिसका अन्त नहीं है, वह सर्वदा एक रस रहने वाला ही प्रेम है, अतएव यह प्रेम सब से विलक्षण है।

प्रेम को अद्‌भुत कहने का आशय यह है कि जो श्री युगल किशोर अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड के सर्वोपरि नायक हैं, उन्हें भी इस प्रेम ने अपने अधीन कर रक्खा है, इसलिये यह प्रेम अद्‌भुत ही नहीं महाद्‌भुत है। इस महाद्‌भुत प्रेम-रस की एक निमेष की सुखानुभूति पर अनन्त कोटि कल्पों के सुख न्यौछावर हैं। यह विशुद्ध प्रेम ही अपने आप में एक विशेष आस्वादन है। इस विशुद्ध प्रेम में जो काम-केलि रूपी नेम का योग है, वह निमित्त रहित होने के कारण प्रेम ही है। यथा जल में शर्करा का योग शर्बत कहा जाता है, जिसमें जल और शर्करा दोनों का अस्तित्त्व रहते हुए भी अस्तित्व-दर्शन का अभाव हो जाता है। इस महामधुर रसमय शुद्ध प्रेम का रूप श्री लाड़िली-लाल की लीलाओं में प्रकट है।

जहाँ नाइक नाइका बरनन कियौ है। नाइक अपनौ सुख चाहै नाइका अपनौ रस चाहै। सो यह प्रेम न होइ, साधारन सुखभोग है। जब ताईं अपनौं अपनौं सुख चाहियै तब ताईं प्रेम कहाँ पाइयै ? दोइ सुख, दोइ मन, दोइ रूचि जब ताईं प्रेम कहाँ ? कामादिक सुख जहाँ स्वारथ भये हैं तौ और सुखनि की कौन चलावै, निमित्य रहित, नित्य प्रेम सहज एकरस श्री किसोरी-किसोर जू के है और कहूँ नाहीं।

शृंगार शास्त्रों में नायक-नायिका भेद एवं उनके विलासादि का वर्णन किया गया है, वहाँ स्पष्ट है कि नायक अपने सुख की आकाङ्क्षा में लुब्ध रहता है एवं नायिका स्व-रसाभिलाषी रहती है; अतएव अपने-अपने स्वसुखानुसन्धान -लिप्सु होने के कारण इनका विलास सामान्य सुख-भोग है, प्रेम नहीं। जब तक अपने-अपने सुख की आकाङ्क्षा है, तब तक प्रेम दुर्लभ है। जब तक नायक-नायिका में मन में, रुचि में, सुख में, भेद एवं पृथक्ता है; तब तक वहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव है।

जहाँ श्री श्यामा-श्याम के नित्य एवं विशुद्ध प्रेम के समक्ष लौकिक कामादिक सुख स्वार्थमय एवं तुच्छ हैं, तब वहाँ अन्य विशिष्ट सुखों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। तात्पर्य यह है यह विशुद्ध, कारण रहित, सहज, एकरस एवँ निरवधि प्रेम केवल श्री किशोरी-किशोर जू का ही निज धन है, अन्यत्र इसकी स्थिति कहीं नहीं है।

जो कोऊ कहै कि काम नेम में कहि आये तो उनहूँ की काम-केलि तौ गाई है। सो यह काम प्राकृत न होइ प्रेममई निज प्रेम है। नेम, रस-सिंगार पोषक के लिये न्यारे कै कहे हैं। जो बात प्रिया जू के अंग-संग ते उपजै सोई प्रीतम कौं प्यारी लागै। यह अप्राकृत प्रेम है। श्री कृष्ण काम के बस नाहीं। जिनकौ रूप देखत कोटि-कोटि मनोज रति सहित मूर्छित हौंहिं। ऐसै नवल किसोर श्री वृंदावन चंद जू मदन सहित सब के मन मोहि राखे। तेई इहाँ श्री वृन्दावनेस्वरी जू के प्रेममई अनंग चितवनि, रसमई भौहनि तें तरंग उपजै, तिन प्रेममई अनंग नें सहज ही ऐसे मनमोहन मोहि राखे। अपनें बस किये, सो साक्षात् प्रेम है। श्री प्रिया जू जित चाहैं, जित चलैं, जासौं बोलैं, जु पहिरैं, जु हाँथ करि छुवैं ते सब बात प्रीतम के प्रान ह्वै जाहिं। इहाँ कौ नेम ऐसौ है जु प्रेम सोभा पावै। एकरस समुझनो। जैसे ताना-बाना दोऊ मिलि एक पट भयौ। स्वाद के लिये नेम न्यारे कै कहे हैं। नेंम प्रेम को साधन सो एकै

जानिबो। प्रिया जू कौ अंग-संग छाँड़ि और ठौर मन न चलै प्रीति ऐसी है। तहाँ श्री जी की बानी "प्रीति की रीति रँगीलोई जानै"।

यह बात प्रेम की, बिना श्री वृंदावन चंद को जानै को समुझै ? जो बात प्रिया जू कौं भावै सोई इनकौं भावै। तहाँ श्री जी की बानी "जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहिं भावै, भावै मोहि जोई सोई-सोई करैं प्यारे।" सहज प्रेम के रस में दोऊ मत्त रहत हैं। एकरस सनेही की रीति ऐसी है जु सनेही कौ सुख चाहै अपनी चाह कछू नाँही। श्री प्रिया जू जु बिलास करैं सो सब लाल जी के हेत अरु लाल जी जामैं लाड़िली जी सुख पावैं सोई करैं, अपनी चाह कछू नाँही। तहाँ भर केलि महामदन के सुख रस में लाल जू के वचन, तहाँ श्री जी की बानी " विरमि-विरमि नाथ बदत वर विहार री"। तातें सनेही के सुख सौं आसक्त होइ सो सनेही कहियै। जैसे सखियनि की रीति दोउन के प्रेम रस सौं अवलंबि रही और निमित्त बीच कछू नाहीं।

यदि कोई यह कहे कि पूर्व प्रसङ्ग में काम का नेम के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है, साथ ही श्री प्रिया-प्रियतम की केलि को भी काम-केलि ही कहा गया है, तो उसका समाधान यह है कि श्री श्यामा-श्याम में होनेवाली काम-क्रीड़ा प्राकृत काम-केलि न होकर शुद्ध प्रेम केलि एवं विशुद्ध प्रेम स्वरूप है और यह प्रेम उनका सहज निजरूप है। स्पष्ट है कि नेम का प्रेम से पृथक् जो अस्तित्व स्थापित किया गया है उसका तात्पर्य केवल शृङ्गार रस के पोषण में है। वस्तुतः वृन्दावन-नित्य-विहार में प्रेम और नेम में कोई भेद नहीं है दोनों तद्रूप है। श्री प्रिया जू की समस्त चेष्टाएँ, गतिविधियाँ, इङ्गित आदि सभी श्री लाल जी को प्राणवत् प्रिय हैं। यह अप्राकृत प्रेम है। श्री कृष्ण प्रेम के अधीन हैं। इन्द्रिय-सुख विलासी नहीं हैं, जिनके अनन्त सौन्दर्य-लावण्यमय रूप का दर्शन कर के रति सहित कोटि-कोटि काम मूर्छित हो जाते हैं, ऐसे जो नवल किशोर श्री वृन्दावन चन्द्र अखिल विश्वविमोहन मोहन हैं, वे भी नित्य नव-नवायमान् असमोर्द्ध्व रूप लावण्य निधि श्री वृन्दावनेश्वरी की

प्रेममयी चितवन एवं रसमय कुटिल भृकुटि-विलास से उत्पन्न प्रेममय अनङ्ग से मोहित हैं, वशवर्त्ती हैं, अतएव यह अनङ्ग-विलास काम या नेम न होकर विशुद्ध प्रेम-केलि है। श्री प्रिया जू की समस्त चेष्टाएँ एवं प्रत्येक वह वस्तु जिन पर उनकी दृष्टि पड़ती है और जिसे वह स्पर्श कर लेती हैं वह सभी कुछ प्रियतम का प्राण हो रहता है। यद्यपि ये सब चेष्टाएँ नेम के अन्तर्गत मानी जाती हैं तथापि ये प्रेम को भी शृङ्गारित करती हैं, अतएव नित्य-विहार केलि में वस्त्र के तानाबाना की भाँति प्रेम और नेम तन्तु-रूप से एक हैं। विशिष्ट रसास्वादन के लिए नेम एवं प्रेम भिन्न-भिन्न रूप से वर्णित होने पर भी तत्त्वतः एक ही हैं।

श्री लाल जू की प्रीति का स्वरूप यह है कि उनका मन श्री प्रिया जू के सान्निध्य-सामीप्य के चिन्तन को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता। इस प्रसङ्ग में श्री हित हरिवंश जू की वाणी प्रमाण है। यथा–

"प्रीति की रीति रँगीलोई जानै।"
जद्यपि सकल लोक चूड़ामनि दीन अपनपौ मानैं।
जमुना पुलिन निकुंज भवन में मान मानिनी ठानै।
निकट नवीन कोटि कामिनि कुल धीरज मनहिं न आनै।
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यौं आन-आन सौं बानै।
(जै श्री) हितहरिवंश चतुर सोई लालहिं छाँड़ि मैंड़ पहिचानै।

प्रेम की इस रीझन को रसज्ञ श्री लाल के अतिरिक्त कौन जान सकता है? जिन्होंने अपनी समस्त रुचि को अपनी प्रिया श्री लाड़िली की रुचि में समाविष्ट कर दिया है। जैसा कि श्री हित-हरिवंश जू ने अपनी वाणी में कहा है–

"जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहिं भावै,
भावै मोहि जोई सोई सोई करैं प्यारे।

मोकौं तो भाँवती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैननिं के तारे।
मेरे तन मन प्रान हूँ ते प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसौं हारे।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस-हंसिनी साँवल-गौर,
कहौ कौन करै जल-तरंगनि न्यारे।।"

इस प्रकार ये युगल विशुद्ध प्रेम-रस में सदा उन्मत्त बने रहते हैं। सहज प्रेम का स्वरूप यह है कि प्रेमी सदैव अपनी समस्त इच्छाओं से शून्य होकर प्रेमास्पद के सुखों की ही अभिलाषा करता है। निभृत निकुञ्ज नित्य-विहार की तत्सुखमयी प्रीति-रीति यह है कि श्री प्रिया जू के समस्त विलास श्री लाल जी के सुख निमित्त होते हैं एवं श्री लाल जू का चिन्तन एकमात्र प्रिया के सुख हेतु होता है। उनकी अपनी कोई पृथक् इच्छा या लालसा नहीं होती। महा मदन केलि के विशद सुख रस प्रवाह में श्री प्रिया जू के प्रति श्री लाल जू के इन वचनों को श्री हित हरिवंश जी अपनी वाणी में इस प्रकार प्रकट करते हैं—"विरमि—विरमि नाथ वदत वर विहार री।"

तात्पर्य यह है कि प्रेमास्पद के सुख में निरन्तर आसक्त रहनेवाला तत्सुख -सुखी प्रेमी ही वस्तुतः प्रेमी है। इसी प्रकार निज सखियों की प्रीति भी युगल श्री श्यामा-श्याम के प्रति निमित्तादि-रहित भाव से अवलम्बित है।

श्री गुसाँई श्री हरिवंश चन्द्र जू प्रगट भये जुगल केलि रस माधुरी प्रगट करिबे कौं। और सबनि मिश्रित गाई प्रेम की आसक्तता श्री गुसाँई जू ने गाई।

आसक्त कहा ? सक्ति रहित आसक्त। जब ताईं मन की गति भौंर की सी चंचल फिरै तब ताईं आसक्त नाहीं। जब सब ठौर ते चंचलता छुटै तब आसक्ति के रस में अटकै। तहाँ श्री जू की बानी—

कहा कहौं इन नैननि की बात।

ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात।। अरु "चंचल रसिक मधुप मोहन मन राखे कनक कमल कुच कोरी" इत्यादि।

ऐसै रसिक लाड़िली लाल जू जिनकौ मूरतिवंत आसक्तता सेवत रहै है।

पद बिहारीदास "आसक्त उपासक दम्पति कौ सुख।"

दोहा पुरातन—फँद सरकावत फिरत दिन, चित चंचल जु कहंत।

फँद्यौ जु कुंतल विकट लट टक-टक मुख जोवंत।।

श्री लाड़िली-लाल जू प्रेम रसमई मूरतिवंत हैं। इनतैं उपजै सो सब प्रेम है विलासमई। तातें दोइ नाम रस स्वाद के निमित्य परे। प्रेम, नेम। जैसैं तंतु कौ तानौ-बानौ, न्यारौ कोइ नाहीं। और सोना है तातें भूषन कर्‌यौ सो नेम भयौ। सोना एक रस है सो प्रेम।

कुंडलिया

प्रेम मदन के सिंधु द्वै, बहत रहत दिन हीय।
कबहुँ बिबस चेतत कबहुँ, छिन-छिन प्यारी-पीय।।
छिन-छिन प्यारी पीय, मधुर रस विलसत ऐसैं।
सूक्षम प्रेम की बात, कहौ कोउ बरनै कैसैं।।
यह सुख सखियनि बाँट पर्‌यौ, भूले 'ध्रुव' सब नेम।
इक रस फूली फिरति सँग, पाइ माधुरी प्रेम।।

प्रेम मदन के सिंधु द्वै लाड़िली लाल जू के हिये बहत रहत हैं। जब प्रेम के तंरग छावैं तब बिवस होहिं। जब मदन के सिंधु की तरंग छावै तब

चैतन्य होहिं। विलास-रंग में परे ऐसैं प्रेम-नेम ओत-प्रोत हैं। प्रेम की क्रिया विवसता। नेम की क्रिया सावधानता। यातें एक कहियै स्वाद कौं दोइ। कबहूँ खिलारी खेल बस और कबहूँ खिलारी बस खेल।। ऐसी भाँति कौ विहार निसि-दिन करत हैं। या रस की अधिकारिनी सखी हैं कै जिन रसिक भक्तनि कैं सखियनि कौ भाव है, ते या रस सुख के अधिकारी हैं। धन्य तेई भक्त रसिक।

गोस्वामी श्री हित हरिवंश जू का प्रादुर्भाव विशुद्ध युगल-केलि रस माधुरी के प्राकट्य के लिए हुआ। तत्कालीन अन्यान्य रसिकाचार्य्यों ने श्री युगल केलि का गान तो किया, किन्तु उनके सिद्धान्त प्रेमासक्ति प्रधान न होकर ऐश्वर्य ज्ञान माहात्म्य फलादिक से युक्त थे। प्रेमासक्ति का विशुद्ध सिद्धान्त तो केवल श्री हित हरिवंश जू ने ही गाया है।

कोई प्रश्न करे कि आसक्त किसे कहते हैं तो उसका समाधान यह है कि प्रेमास्पद के प्रति प्रेमी की सर्वतोभावेन विवशता। जब तक प्रेमी का मन अन्यान्य स्थलों में भ्रमर की भाँति चञ्चल बना रहता है, तब तक उसे आसक्त नहीं कहा जा सकता। आसक्त तो तब कहा जायगा, जब सब ओर से मन टूट कर आसक्ति के रस में विवश भाव से स्थिर हो जायगा। यथा श्री हित हरिवंश जू की वाणी प्रमाण—

"कहा कहौं इन नैननि की बात

ये अलि प्रिया बदन अंबुज रस अटके अनत न जात''। (हित चौरासी–६०)

एवं

चंचल रसिक मधुप मोहन मन राखे कनक कमल कुच कोरी। (हित चौरासी–८२)

उपरोक्त दोनों पदों में यह स्पष्ट है कि रसिक शेखर श्री लाड़िली लाल जू की इतनी सघन प्रेमासक्ति है कि मूर्तिमान् आसक्ति भी उनका सेवन करती रहती है।

रसिक सन्त श्री बिहारीदास जी ने इसी प्रमाण की पुष्टि में कहा है कि "आसक्त उपासक दम्पति कौ सुख" तथैव पूर्व प्रचलित एक दोहा भी है "फँद सरकावत फिरत दिन चित्त चंचल जु कहंत फँद्यौ जु कुंतल विकट लट टक-टक मुख जोवंत।" अर्थात् व्रज के केलि विलास में जो श्री कृष्ण व्रजवल्लवीगण के बहुनायक थे वही निकुञ्जदेश में स्वामिनी की एक कुन्तल लट-पाश में ऐसे बँध गये हैं कि निर्निमेष नयनों से श्री प्रिया-मुख-माधुरी का निरन्तर रसपान ही करते रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि श्री लाड़िली-लाल जी मूर्त्तिमान् प्रेम-रस हैं। अतः इनकी समस्त चेष्टाएँ प्रेम के ही विलास हैं। इनके विहार में एक ही वस्तु के दो नाम हैं--प्रेम और नेम; जो कि विशिष्ट रसास्वादन के लिये दो हैं। जिस प्रकार ताने और बानें में तन्तु भेद नहीं है, स्वर्ण और आभूषण में केवल नाम का भेद है, वस्तुतः दोनों में स्वर्ण तत्त्व एक ही है। स्वर्ण के द्वारा निर्मित आभूषण नेम स्वरूप हैं और उनमें एक रस रहनेवाला स्थायी तत्त्व धातुरूप स्वर्ण, प्रेम है।

श्री लाड़िली-लाल जू के हृदय में प्रेम एवं मदन के दो सागर निरन्तर प्रवाहित रहते हैं, जब मदन (नेम) रूपी सिन्धु तरङ्गायित होता है तब श्री युगल चैतन्य होते हैं और जब प्रेम सिन्धु उमड़ता है तब गम्भीर प्रेम में निमग्न हो जाते हैं। इस प्रकार विलास के रङ्ग में तन्मय हुए प्रेम और नेम से ओत-प्रोत रहते हैं। प्रेम की स्थिति विवशता और नेम की क्रिया सावधानी। प्रेम एवं नेम कथन मात्र के लिए दो हैं ; वस्तुतः परस्पर एक हैं। श्री युगल कभी प्रेमाधीन होते हैं और कभी लीलाधीन, अहर्निश एतज्जातीय विहार में तल्लीन रहते हैं। इस रस-विलास की अधिकारिणी सखियाँ हैं। अथवा सखी भावापन्न रसिक भक्तगण। ऐसे रसिक उपासक ही परम धन्य हैं।

श्री वृंदावन निकुंज धाम में श्री वृंदावन चंद उन्नत नित्य किसोर प्रेममई विलास करत हैं। तामें प्रेम ही कौ नेंम नित्य है एक रस है कबहूँ न छूटै तहाँ की आसंका कोऊ जिनि करौ। निमित्य रहित विहार में दोऊ मगन रहत

हैं, इहाँ प्रेम-नेम में कछु भेद नाहीं स्वाद विशेष के लिए कहे हैं। जैसैं रसमई फल। बिनु गुठली बिनु बकला होइ। तातें इन के रस-विहार में दोइ रस नाहीं एक प्रेम सौं आसक्त हैं। निश्चै मन क्रम वचन कै जानिबौ।

ऐश्वर्यता, ज्ञान, महातम विषय या रसमाधुरी कौं आवरन हैं। इनतें चित्त काढ़ि माधुर्य रस में दैनौं। तन-मन की वृत्ति जब प्रेम रस में थकै तब आसक्त कहियै। तहाँ श्री जू की बानी "बिंध्यौ मोहन-मृग सकत चलि न ी।"

अद्‌भुत प्रेम की आसक्तता समुझनी अति कठिन है। जिन के मन अति सरस हौंहि तिनके उर आवै।। जा प्रेम रस में मान हूँ नेम है। दुहूँनि के तन मन सहज प्रेम रस में भरे हैं। नेम कहाँ रहै ठौर नाहीं।। श्री प्रिया जू कौ सहज स्वभाव प्रेम, रस, रूप, जोबन रस की गरूरता देखि लाल जी व्याकुल ह्वै जात हैं। यह अवस्था देखि लाड़िली जू अपनौ सुभाव भूलि जात हैं। महा प्यार सौं अंक भरि लेहिं। जौ कबहूँ प्रिया जू अपने रस में लाल जी तन न चितवैं, न बोलैं तौ उनकी गति मीन जल की सी होइ है। इहै जहाँ मान सहज कौ है।

नव निकुञ्ज धाम श्री वृन्दावन में नित्य-किशोर श्री युगल जिस प्रेममय विलास में रत हैं, उसमें नित्य-निरन्तर प्रेम का ही नेम है, इस निमित्त-रहित युगल-केलि में किसी आशङ्का के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेम-नेम एक ही वस्तु के दो नाम हैं, यथा गुठली, छिलका आदि त्याज्यांश-रहित रसमय फल। अतः श्री युगल के प्रेम-विहार में नेम-प्रेम नामक दो पृथक् रस न होकर विशुद्ध प्रेमासक्ति ही प्रधान है। उपासक को इस सिद्धान्त पर पूर्ण आस्था रखनी चाहिये।

ऐश्वर्य, ज्ञान, माहात्म्य और विषय (भोग) ये सब वृन्दावन-रस माधुरी की उपलब्धि में आवरण हैं, अतएव इन सब से चित्त को निकाल कर वृन्दावन नित्य-विहार रसमाधुरी में लीन करना चाहिये।

तन-मन की समस्त वृत्तियों का प्रेम-रस में स्थिर हो जाना ही आसक्ति का स्वरूप है। यथा श्री हित हरिवंश जू की वाणी –

"बिंध्यौ मोहन-मृग सकत चलि न री।"

जिनके हृदय सरस हैं, वे ही प्रेमासक्ति के स्वरूप को हृदयङ्गम कर सकेंगे। प्रेमासक्ति की उत्कृष्ट स्थिति में मान आदि का कोई स्थान नहीं है, कारण कि श्री श्यामा-श्याम के तन-मन सहज स्वाभाविक रूप से प्रेम रस में सराबोर रहते हैं। यदि कोई इस विलक्षण प्रेमासक्ति के विलास मे मान को अनिवार्य रूप से स्थापित देखना ही चाहता है तो यहाँ मान का स्वरूप कुछ अद्‌भुत है। जब श्री प्रिया, स्वभावतः रूप, रस, यौवन की गरूरता में विभोर हो जाती हैं, तब उनकी स्थिति को देखकर लाल जी को उनके मानवती होने का सम्भ्रम हो जाता है और वे परम व्याकुल एवं अधीर हो जाते हैं। प्रियतम की इस अवस्था को देखकर परम उदार श्री लाड़िली जी सब कुछ भूल कर लाल को अङ्क में भर लेती हैं। यदि कभी प्रिया जी अपनी रसलीनता के कारण लाल जी की ओर न देखें, उनसे न बोलें तो श्री लाल जी की गति जल से विलग की गई मीन की भाँति हो जाती है। नित्य विहार-केलि में मान का यह स्वरूप है।

जो कोऊ कहै कि मान तो रस कौ पोषक है अरु रुचि बढ़ावै, सो यह प्रेम साधारन जानिबौ। इहाँ यौं नाहिं। नित्य छिन ही छिन प्रीति-रस सिंधु तें तंरग रुचि के उठत रहत हैं नये-नये, तहाँ श्री स्वामी जी कौ पद–

"जब जब देखौं प्यारी तेरौ मुख तब-तब नयौ-नयौ लागत"

अरु श्री जू की बानी "करत पान रसमत्त परस्पर लोचन तृषित चकोर" तातें प्रेम, बिरह अनेक भाँति के हैं। जैसौ जहाँ प्रेम तैसौ तहाँ बिरह है। जहाँ स्थूल प्रेम तहाँ स्थूल विरह। जहाँ सूक्षम प्रेम तहाँ सूक्षम, विरह।

यदि किसी का यह मत है कि मान रस का पोषक एवं रुचिवर्धक है, तो यह सामान्य प्रेम की स्थिति है। श्री हित हरिवंश जू द्वारा उद्धरित प्रेम-रस-सिद्धान्त में सामान्य मान का महत्त्व नहीं है। इनकी मान्यता है कि श्री श्यामा-श्याम के हृदय में प्रतिक्षण प्रेम रस-समुद्र की नयी-नयी रुचि एवं तरङ्गें उठती रहती हैं। यथा श्री स्वामी जी का पद "जब-जब देखौं प्यारी तेरौ मुख तब-तब नयौ-नयौ लागत"। श्री लाल जू कहते हैं कि "हे प्यारी जू! मैं जब-जब तुम्हारा मुख देखता हूँ, तब-तब वह नित्य नूतन ही दिखाई पड़ता है एवं श्री हित हरिवंश जू की वाणी में भी यही भाव व्यक्त है।

"करत पान रस मत्त परस्पर लोचन तृषित चकोर" अर्थात् श्री लाड़िली-लाल परस्पर चकोरवत् रूपमाधुरी का पान करते हुए भी तृप्त नहीं होते।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्री लाड़िली-लाल के प्रेम में एक महती तृषा है, जिसमें इति-मिति एवं तृप्ति नहीं है। यह प्रेम की नित्य वर्द्धमान् स्थिति है। नित्य-विहार में युगल की पारस्परिक प्रेम-तृषा ही विरह रूप है अतएव जहाँ स्थूल प्रेम है, वहीं निकुञ्जान्तर किंवा प्रवासादि स्थूल विरह है एवं जहाँ सूक्ष्म प्रेम है, वहाँ सूक्ष्म विरह रूपी अतृप्ति की स्थिति है।

जो कोऊ कहै कि स्थूल कहा सूक्षम कहा ? सूक्षम प्रेम यासौं कहियै जु एक सेज पर रूप देखत चंद-चकोर ज्यौं नैनांचल ओट भये महा कठिन दसा होइ। अरु देह हूँ अपनी न्यारी नाँहीं सहि सकत, यह भी विरह मानत हैं, तहाँ की बात गुसांई जी गाई। तहाँ श्री जू की बानी "श्रुति पर कंज दृगंजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात। जै श्री हित हरिवंश नाभि सर जलचर जाँचत साँवल गात।" अरु श्री स्वामी जू कौ पद "ऐसी जिय होत जु जिय सौं जिय मिलै तन सौं तन समाइ लैऊँ तौ देखौ कहा होइ हो प्यारी।"

यह प्रेम अति तीव्र है, जा पर श्री जू के रसिक भक्तनि की कृपा होइ तब उर में आवै। ऐसै अद्‌भुत प्रेम में और भाँति कौ विरह न संभवै। जो फूलनि

की माला देखे कुम्हिलाइ ताकौ असिवर कौ दिखाइबौ अनीत है। भ्रमहूँ कौ बिरह कहत डर आवै। या प्रेम में म स्थूल प्रेम की समाई न स्थूल विरह की समाई न मान की। एकरस यह प्रेम ही विरह रूप है। या रस की जिनकै उपासना है तिनके हिये ठहराइ।

अब यदि कोई शङ्का करे कि प्रेम में स्थूल सूक्ष्म क्या है तो उसे जानना चाहिये कि सूक्ष्म प्रेम वह है, जहाँ प्रिया-प्रियतम एक शय्या पर विराजमान् होकर भी परस्पर चन्द्र-चकोर की भाँति रूपदर्शन करते हुए एक पलक का अन्तराय भी सहन नहीं कर सकते। पलक का गिरना भी जिनके लिए अराह्य वेदनामय विरह बन जाता है एवं जिनके लिये देह का द्वैत भी विरह रूप है। श्री हित हरिवंश जी ने अपनी वाणी में कहा है "श्रुति पर कंज दृगंजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात। जै श्री हित हरिवंश नाभि सर जलचर जाँचत साँवल गात।।" अर्थात् श्री लाल जी को प्रिया से पृथक् अपना अस्तित्व भी असह्य है।

स्वामी श्री हरिदास जी ने भी यही बात अपने पद में कही है—"ऐसी जीय होत जो जीय सौं ज्यौ मिलै तन सौं तन समाइ लैऊँ तो देखौं कहा होइ हो प्यारी।" भाव यह है कि श्री लाल जी अपना तन-मन-प्राण अपनी प्रिया से एक कर लेना चाहते हैं, उनको अपना पृथक् अस्तित्व प्रेम में बाधक प्रतीत होता है।

सूक्ष्म प्रेम की यह तीव्रतम स्थिति अवाङ्मनस्गोचर है। श्री हित जू के चरण-चञ्चरीक रसिक भक्तों की कृपा से ही इस प्रेम का हृदय में आविर्भाव सम्भव है। उपरिवर्णित अद्भुत प्रेम में अन्य भाँति का विरह प्रकार, असम्भव है। श्री ध्रुवदास जी दृष्टान्त द्वारा उपरि-कथित सूक्ष्म-प्रेम के प्रकार का बोध कराते हैं कि, जो इतना सुकुमार है कि फूलमाला मात्र के प्रहार का प्रदर्शन भी न सह सके, उसे तीखी तलवार दिखाना घोर अन्याय होगा। विरह तो विरह है किन्तु इस प्रेम में विरह का विभ्रम भी भयदायक है। अतएव इस

प्रेम में स्थूल प्रेम, स्थूल विरह एवं मान के लिए कोई अवकाश नहीं है। प्रेम-तृषातुर श्री युगल श्यामा-श्याम के लिए यह सूक्ष्म प्रेम ही विरह रूप है। जिनके हृदय में इस रसोपासना के प्रति निष्ठा है, वे ही इसके अधिकारी होने योग्य हैं।

जो कोऊ कहै कि मान विरह तो महापुरुषन हू गायौ है। सो सदाचार के लिये गायौ है। औरनि के समुझाइबे कौं कह्यौ है, पहिले स्थूल प्रेम समुझै तब मन आगै चलै। जैसे श्री भागवत की बानी, पहिलै नवधा-भक्ति करै तब प्रेम लच्छना आवै। अरु महापुरुषन अनेक भाँति के रस कहे हैं। ए पर इतनी समुझनी कै उनकौ हियौ कहाँ ठहरानौ है, सोई गहनी। तहाँ श्री बिहारिनदासि कौ पद—

"तहाँ कछु न श्रम, तम न गम, विरह, भ्रम, मान लवलेश न प्रवेस न प्रसंगी।"

और सब प्रेम नेम या नित्य महाप्रेम रस के आगे साधन हैं, यह निर्धार जानिबौ। नित्य अखंडित एक रस सहज निमित्य रहित महामाधुरी निकुंज-केलि अद्‌भुत रसिकानंद दोऊ विलसत हैं या पर न और रस न और सुख न और प्रेम। ए पर तहाँ कौ जु रससार है, तामें सखी ललिता-विसाखादिक आसक्त हैं। सार कौ सार प्रेम सुख। यह अद्‌भुत महारस प्रेम की उपासना श्री जू प्रकट करि दई है, निहसंक ह्वै सबके कल्याणार्थ, पै जो उर में आवै, ठहराइ।

यदि कोई यह शङ्का उठावे कि मान-विरह का गान एवं समर्थन अपनी वाणी में निकुञ्ज-केलि परक सूक्ष्म प्रेम-विलास के प्रवर्त्तक रसिकाचार्य श्री हित हरिवंश जू ने तथा अन्यान्य रसिक महापुरुषों ने भी किया है, तो इसका समाधान करते हुए श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिकाचार्यों ने अन्य रसिक सन्तों के सिद्धान्त को समाहित करने के लिए तथा उपासकों के हित में इस स्थूल प्रेम-विरह-मान आदि के समर्थन एवँ समाधान के लिए विरह मानादि का वर्णन किया है, क्योंकि स्थूल प्रेम का स्वरूप जाने बिना सूक्ष्म प्रेम में मन की गति नहीं है। यथा श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि पहले

नवधा भक्ति करे तब प्रेम-लक्षणा का उदय होगा। वैसे तो महापुरुषों ने अनेक प्रकार के उपदेश किये हैं, किन्तु समझना यह है कि उनका हार्द कहाँ है और जहाँ उनका हार्द है, वही अनन्य-रसिकों का ग्राह्य लक्ष्य है। उसका स्वरूप निरूपण करते हुए श्री बिहारिनदास जी ने कहा है—"तहाँ कछु न श्रम, तम न गम विरह भ्रम मान लवलेश न प्रवेश न प्रसंगी।'' अर्थात् इस निभृत निकुञ्ज विहार के सूक्ष्म प्रेम-विलास में प्रेम की स्थिति सहज सुखमयी है। वहाँ किसी प्रकार का परिश्रम, अज्ञान, क्लेश, विरह-वियोग का दुःख, सम्भ्रम एवं मान आदि के लिए कोई अवकाश नहीं है। अर्थात् सूक्ष्म प्रेम सब से अछूता है। अन्यान्य प्रकार के प्रेम और नेम इस नित्य एवं महान् प्रेम-रस की साधन भूमिका के अन्तर्गत हैं एवं यही निर्विवाद यथार्थ भी है।

जिस नित्य अभङ्ग, कारण रहित, सहज एक रस महा-माधुर्यमयी अद्‌भुत निकुञ्ज-केलि का रसिक-शेखर युगल-किशोर श्री लाड़िली-लाल विलास करते हैं, उससे परे (श्रेष्ठ) न कोई अन्य रस है, न सुख और न ही प्रेम है। श्री ललिता- विशाखा आदि श्री युगल की नित्य सहचरियों का यही रस जीवन-प्राण है। यह अद्‌भुत महारस-कन्द प्रेम समस्त रसों का सारातिसार है। रसिकाचार्य्य शिरोमणि श्री हित हरिवंश चन्द्र ने निःशंक भाव से सब के हित में इस उपासना का डिंडिम घोष किया है। परम सौभाग्य तो जीव का तब है, जब यह उपासना उसके हृदय में स्फुरित एवं स्थिर हो।

या प्रेम की सूक्षम गति है खाइ और तृपित होइ और। तहाँ श्री जी की बानी '' (जै श्री) हित-हरिवंश लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर।'' यह सार कौ सार। बिरलौ कोइ इक जानै, समुझै। साधारन प्रेम, साधारन विरह सब के मन में आवै, भगवत-भजन की विधि-महातम और जहाँ ताईं ऐश्वर्य लीला तिनमें समाई है। इहाँ श्री जी जो रस प्रगट कियौ ता रस-उपासना में कछु न मिलै। अद्‌भुत उपासना सबनि ते न्यारी गति ताकी है।

यह महामाधुरी रस जाके उर न आवै तासौं संग न करै। तिनकौ संग

करनौ बड़ी अज्ञानता है। और सब भजन में गोष्ठी है, सनेह में गोष्ठी कहा ? समस्त भागवत धर्मनि ऊपर निकुंज माधुरी श्री जुगल चंद जू विलास करत हैं; जिनि यह समुझ्यौ नाहीं तासौं रस की बात करनी उचित नाहीं। जो कहै तौ आप तें जाइ, अंतर परै निःसंदेह। तातें मौन होइ रहनौ बहुत भलौ है। विजाती सौं मिलिबौ भलौ नाहीं। बिनु सजाती सौं मिलि बात न चलाइए।

अनेक भाँति भजन भक्ति के भेद तैसेइ भक्त हैं ! जैसौ जाकौ भाव है तैसीयै सिद्धि होइ। तातें औरनि सौं प्रयोजन नाहीं। तहाँ पखानौ है "तोहि बिरानी कहा परी तू अपनी निरवेर।" आपकौं यौं चाहिये औरनि सौं मत्सरता छाँड़ि अपुनौ रस लिये रहै और याही रस के उपासिकनि सौं अंतर खोलि संग करै।

श्री व्यास जी के वचन-"व्यास विवेकी भगत सों, दृढ़ कर कीजै प्रीति। अविवेकी कौ संग तजि, इहै भक्ति की रीति।।" तो विवेकी कहा ? विवेकी तासौं कहियै जो भली गहै, बुरी छाँड़ै। अविवेकी भली बुरी कछु न समुझै सब गहै सब छाँड़ै, तातें सजाती सौं मिलि बात जुगल बिहार की करै, बिचारै। तिनकी जूँठन लेइ, चरनोदक पीवै, बिजाती कौ परस हू न करै। और वृंदावन-चंद एक प्रीति ही मानैं। कोटि भाँति भावै अपरस रहौ, भावै सपरस रहौ, अनेक आचार करौ, उनकौ एक प्रीति की सचाई सौं काम है।

निभृत निकुञ्ज-केलि के प्रेम की स्थिति अत्यन्त सूक्ष्म है, कारण कि वह पूर्णतया तत्सुखमयी है। इस प्रेम राज्य का अद्‌भुत खेल है कि खाता कोई अन्य है और तृप्ति का अनुभव कोई अन्य करता है। इस सम्बन्ध में श्री हित हरिवंश जू की वाणी द्रष्टव्य है—"जै श्री हित-हरिवंश लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर।।" अर्थात् मिलन लाल-ललना का और तृप्ति सखी की। यह तत्सुखिता है और यही प्रेम-रस का सारातिसार है। सहज प्रेम के इस रहस्य को कोई विरला सहृदय व्यक्ति ही हृदयङ्गम कर पायेगा। यों तो

साधारण विरह, साधारण प्रेम सभी समझते-बूझते हैं। सामान्य प्रेम में ऐश्वर्य लीला सब प्रकार के भगवद् भजन, उपासना-विधि एवं माहात्म्य फलादिक के लिए अवकाश है, किन्तु श्री हित हरिवंश जी महाराज ने जो रसोपासना प्रकट की है, उस तत्सुख-रति में अन्य किसी भाव का समावेश नहीं है। इस अद्‌भुत उपासना की गति सब से विलक्षण है।

रसोपासक के लिए यह अनिवार्य है कि इस महामधुर रस ने जिसके हृदय का स्पर्श नहीं किया है, उसका सङ्ग नहीं करना चाहिये। ऐसे नीरस व्यक्ति से सम्पर्क रखना बड़ी मूर्खता होगी और जितनी भी अन्य प्रकार की भजन-विधियाँ है, उन सब में सत्सङ्ग, सम्मेलन, गोष्ठी, विचार-विमर्श आदिक क्रियाओं की प्रचुरता है और इनकी वहाँ आवश्यकता एवं महत्ता भी है किन्तु ऐकान्तिक प्रेम में गोष्ठी के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि प्रेमी के लिए अपने प्रेमास्पद के प्रेम-चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कुछ अभीष्ट है ही नहीं। जिस निकुञ्ज-माधुरी का सुख-विलास युगल-किशोर का जीवन है, वह समस्त भागवत-धर्मों से अतीत किंवा श्रेष्ठ है। जिन्होंने इस रस-माधुरी को नहीं समझा, उनसे रस की चर्चा करना उचित नहीं है। यदि कोई ऐसा करता है तो निश्चित ही अपना स्वाद-सुख खोता है और रस भजन में अन्तराय उत्पन्न करता है, अतएव अपनी रस-परम्परा के उपासक सजातीय रसिकों से भिन्न अन्य प्रकार के भजन करने वाले विजातीय भक्तों से अधिक सम्पर्क एवं वार्त्ता करने की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर तो मौन ही रहना है।

शास्त्रों में भक्ति और भक्तों के अनेक भेद वर्णित हैं, जिस भक्त का जैसा भाव है वैसी ही उसकी उपलब्धि है। अतएव रसिक भक्तों का सब से कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें तो अपना ही परिष्कार-सुधार करना चाहिये। कहा है कि "तोहिं विरानी कहा परी तू अपनी निर्वेर'' अर्थात् तुझे दूसरों से क्या प्रयोजन, तू अपना सुधार कर। अतः अपने आप को यह चाहिये कि अन्य उपासकों से ईर्ष्या-द्वेष रहित हो कर अपने उपास्य रस में संलग्न रहे एवं अपने सजातीय रसिक-उपासकों का निष्कपट, निश्छल भाव से सङ्ग करे।

यथा श्री हरिराम व्यास जी ने अपनी साखी में कहा है–"व्यास विवेकी भगत सौं दृढ़ करि कीजै प्रीति। अविवेकी कौ संग तजि, इहै भक्ति की रीति।।" अर्थात् वृन्दावन-रस के मर्मज्ञ विचारवान् भक्त से आस्थावान् बनकर प्रेम करना चाहिये एवँ इसके विपरीत जो अविवेकी अथवा हीन आस्थावान् हैं, उनसे तटस्थ रहना ही भक्ति का यथार्थ आचरण है। तो प्रश्न उठता है कि यहाँ विवेकी से क्या अभिप्राय है? उत्तर है कि विवेकी उसे समझना चाहिये जो सार वस्तु का ग्रहण करे एवं सारहीन की उपेक्षा कर दे। अविवेकी भक्त से तात्पर्य है कि ऐसा भक्त, जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है एवं जिसके पास यथार्थ निर्णय लेने की क्षमता नहीं है, अतः वह सार-असार समझे बिना ग्रहण करता है एवं इसी प्रकार सब का त्याग भी एक क्षण में कर देता है। सारांश यह कि सावधान रसोपासक, सुलझे हुए सजातीय रसिक भक्त का सङ्ग करके युगल विहार की वार्त्ता सुने एवं विचारे। श्रद्धापूर्वक उनकी उच्छिष्ट सीथ-प्रसादी ले एवं चरणोदक पान करे। विजातीय का तो स्पर्श भी न करे, क्योंकि वह अहितकर है।

इस प्रेम-रस की उपासना में अपरस (अस्पर्श), सपरस (संस्पर्श) आचार आदि कर्म-काण्ड की कोई विशेष अपेक्षा नहीं है। वृन्दावनचन्द्र श्री राधावल्लभलाल को केवल एक प्रीति से ही प्रयोजन है एवं उन्हें तो निष्कपट भाव ही प्रिय है।

तब एक ने कही आचार न करै? थोरौ बहुत करै सदाचार के लिये। जब श्री जी की सेवा-पाक करै तहाँ आचार करै, जैसौ संभवै। अपने प्रसाद पाइबे कौं बहुत आचार न करै। प्रसाद ही कोटि आचार कौ स्वरूप रूप है। भोग लागे पाछैं बहुत आचार उचित नाहीं। शास्त्र हू में कही है, अति आचार अनाचार समान है। राँधे अन्न विषै कछू न मानै। जो भोग श्री जू कौ न लाग्यौ, तौ कहा काचौ, कहा पाकौ। वैष्णव सदाचार के लिये आचार करै। मन में विश्वास न धरै कि याही तें कारज होइगौ। सुद्धता के लिये करै। श्री जी की टहल कोटि आचार कौ रूप है। बहुत आचार तें हियौ अति कठोर होइ जाइ है। यह भजन अति कोमल है, कोमल कठोर एक संग न बनै।

किसी ने कहा कि तो फिर आचार नहीं करना चाहिये ? इसके समाधान में श्री हित ध्रुवदास जी का कथन है कि थोड़ा बहुत आचार तो करना चाहिये, क्योंकि वह शिष्टता का अङ्ग है। श्री लाड़िली-लाल जू की रसोई पाक में यथासम्भव आचार (शुद्धता एवं पवित्रता) आवश्यक है, किन्तु अपने प्रसाद ग्रहण करने के लिए अधिक आचार करना अनावश्यक है, कारण कि श्री जी का प्रसाद ही कोटि-कोटि आचार का स्वरूप है। श्री श्यामा-श्याम के नैवेद्य अर्पित हो जाने के पश्चात् आचार-विचार का महत्त्व ही क्या है ? शास्त्रों में भी इस बात का अनुमोदन है कि अति आचार अनाचार के समान है। रन्धित सामग्री पक्वान्न हो अथवा कच्ची रसोई, जो श्री जी को अर्पित नहीं हुई, वह सभी प्रकार से हेय ही है। वैष्णव सदाचार किंवा शिष्टाचार के हेतु आचार आदि का पालन करे किन्तु यह विश्वास न करे कि आचार से ही रसोपासना सिद्ध होगी। आचार का तात्पर्य केवल पवित्रता में है, इसलिये श्री जी की प्रकट सेवा परिचर्या स्वयमेव कोटि-कोटि आचार का स्वरूप है। एक बात और है कि अत्यधिक आचारादिक क्रियाओं के जाल में पड़ जाने से हृदय की सरसता केवल नष्ट ही नहीं हो जाती, अपितु हृदय कठोर भी हो जाता है। यह रसोपासना अत्यन्त सुकोमल है एवम् आचारादिक कर्म कठोरता का सञ्चार करते हैं, अतएव कोमलता एवं कठोरता का एक साथ रहना असम्भव है।

जे सनेही भजनीक हैं, तिनकी घटि-बढ़ि क्रिया में मन न देइ। आपकौं बड़ी हानि है, बड़ौ अपराध है। कोटि-कोटि आचार उनके एक निमेष के रस भजन पर वारि डारियै। ब्रह्मादिक, सनकादिक या बात में भूले हैं। औरनि की कौन चलावै। जो यह बात मन में न आनै तिन सब अनाचार किये। जे सनेही भक्त हैं, तिनकी पदरज कोटि आचार है, साधन-सिद्ध तीरथ है।

श्री गुसाँई कृष्णदास जी कौ पद–

साधु-चरन-रज सब सुख साधन, यह मेरैं मत काज सुधी कौ।

श्री व्यास जी कौ पद–

साधु चरन रज माँझ व्यास से, कोटिक पतित समात। इत्यादि।

जो अनुरागी भजनानन्दी हैं, उनकी आचार सम्बन्धी चेष्टाओं के क्रम-व्यतिक्रम पर अधिक विचार नहीं करना चाहिये, कारण कि प्रेम-भाव की विभोरता में क्रियाओं का अव्यवस्थित हो जाना स्वाभाविक है। ऐसे प्रेमी भक्तों के प्रति दोष-दृष्टि करना हानिकर तो है ही, अपराध भी है। ऐसे प्रेमी भक्तों का एक पल का भी रसमय भजन अतिशय गम्भीर है, जिसके समक्ष आचारादिक स्थूल क्रियाओं का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। कर्मप्रधान विधि-विधानों को महत्त्व तो ब्रह्मा-सनकादिक भी देते हैं, किन्तु प्रेम की तन्मयता को समझना तो विरलों के ही भाग्य में है। रसमय चिंतन एवं क्रिया वैशिष्ट्य के तारतम्य को जिन्होंने नहीं समझा, उनका सारा आचार अनाचार जैसा ही है। जो प्रेमी-रसिक भक्त हैं, उनकी चरण-रेणु ही कोटि-कोटि आचार है एवं साधन-सिद्ध तीर्थ है। गोस्वामी श्री कृष्णदास जी ने अपने पद में कहा है कि–

"साधु-चरन-रज सब सुख-साधन
यह मेरे मत काज सुधी कौ।"

अर्थात् रसिक भक्तों की चरण-रेणु समस्त सुखों का साधन है, अतएव उसे प्राप्त करना मनीषियों का ध्येय होना चाहिये, ऐसा मेरा निश्चित मत है।

श्री हरिराम व्यास जी ने भी कहा है–
"साधु-चरन-रज माँझ व्यास से कोटिक पतित समात।"

अर्थात् सन्त पुरुष की चरण-धूलि में मुझ 'व्यास' जैसे कोटि-कोटि पतितों का निस्तारण है।

अनंत लीला अवतार अनेक, तिनकी ऐश्वर्यता कौ पारावार नाहीं। ऐसै ही नाना प्रकार के भक्त हैं। श्री कृष्ण-लीला तीन प्रकार की, तिनहूँ में भेद -भक्त बहुत हैं। जहाँ जाकौ मन लाग्यौ ते सब नीके हैं। घटि कोऊ नाहीं।

आपकौं यौं चाहिये औरनि की कछु घटि-बढ़ि कहै नाहीं। अपने रस में जैसी उपासना है, तहाँ मन दियै रहै। जे रसिक अनन्य श्री वृंदावन की उपासना में श्री किसोरी-किसोर जू की किसोरताई की छबि अरु निकुंज माधुरी रस जिनकें हिये बसत है, नैननि में झलकति है, तिनकी चरन-रज सीस पर धारियै अंतर न राखियै।

जो ऐसै भक्तनि सौं कछु आचार निमित्य गिलानि आनै तो तिन सब अनाचार कियौ। यह बड़ौ अंतराय है। तातैं या रस पाइबै कौं और जतन नाहीं बिनु भक्तनि की पद-रज। जो कबहूँ इह बात काहू के मन न आवै, कहै कि कहाँ कही है ताकी साखी श्रीमद्भागवत, श्लोक–

"व्रतानि यज्ञछन्दांसि, तीर्थानि नियमा यमाः।
यथाऽवरुन्धेत् सत्सङ्गः, सर्वसङ्गापहो हि माम्।।"

अरु श्री मुख कही कि हौं भक्तनि के पाछै फिरत हौं। जो एकांती भक्त हैं, तिनकी चरन रज निमित्य। और महापुरुषन यह सिद्धांत करि राख्यौ। तहाँ श्री जू की बानी –

"जै श्री हित हरिवंश प्रपंच बंच सब, काल व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पद, कमल-संगी सिर नायौ।।"

अपने रस की उपासना में सावधान रहियै। भक्तनि के अपराधनि सौं डरपत रहियै। छिन-छिन भजन ही सँभार्‌यौ करै, जैसे पुतरीन कौं पलकैं।

पलकनि के जैसैं अधिक, पुतरिनु सौं अति प्यार।
ऐसैं लाड़िली-लाल के, छिन-छिन चरन सँभार।।

अनन्त भगवान् की अनन्त लीलाएँ अनन्त अवतार हैं एवं उनका ऐश्वर्य भी अनन्त है। तदनुसार उनके भक्त भी नाना प्रकार के हैं। श्री कृष्ण की

तीन प्रकार की लीलाओं के भेद से भक्तों के स्वरूप में भी भेद हैं। जहाँ-जहाँ जिस भक्त का जिस स्वरूप-लीला में मन स्थिर हो गया, वे सब अच्छे हैं। इनमें कोई तारतम्य नहीं है। रसिक भक्त को यह चाहिये कि तत्तत् अवतारों के ऐश्वर्य प्रधान भक्तों की आलोचना न करे और अपने रसमय भजन की उपासना-रीति में एकनिष्ठ होकर अग्रसर रहे। जिन रसिक अनन्यों के हृदय और नयनों में नित्य-किशोर श्री लाड़िली-लाल की नित्य कैशोर्य-छवि माधुरी एवं निकुञ्ज-केलि-सुधा निरन्तर प्रतिबिम्बित रहती है, उनकी चरण-धूलि सिर पर धारण करना, उनका नित्य सत्सङ्ग करना, उनका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना एवं उनसे मुक्त हृदय से मिलना प्रत्येक रसिक उपासक का परम धर्म है।

यदि कदाचित् कोई इन महान् रसिक भक्तों के प्रति आचारादिक नियम प्रणालियों को लेकर ग्लानि का अनुभव करे, तो वह आचार-भ्रष्ट ही कहा जायेगा। महापुरुषों के आचरण के प्रति दोष-दृष्टि का होना रसोपासना का बहुत बड़ा अन्तराय है। कारण कि, प्रेम-रस की प्राप्ति में रसिक-भक्तों की चरण-रेणु के अतिरिक्त अन्य कोई आधार ही नहीं है। यदि कोई कुतर्की इस निष्ठा को स्वीकार न करे एवं प्रमाण माँगे तो उसके लिए श्री मद्भागवत में यह कहा है—

व्रतानि यज्ञछन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथाऽवरुन्धेत् सत्सङ्गः सर्व सङ्गापहोहि माम्।।

अर्थात् भगवान् कहते हैं कि व्रत, यज्ञ, वेदपाठ, तीर्थों का भ्रमण, यम-नियमों का पालन, यह सब मुझे अपने अधीन नहीं करता यथा समस्त आसक्तियों को निर्मूल करा देने वाला सत्पुरुषों का सङ्ग वश में कर लेता है।

तथैव श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में श्री भगवान् ने उद्धव के प्रति कहा है कि मैं अनन्य भक्तों की चरण-रेणु को शिरोधार्य करने के लिए उनके

पीछे-पीछे फिरता हूँ। "अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।''

इस कथन की पुष्टि में श्री हित हरिवंश जू की वाणी प्रमाण है—

जै श्री हित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल-व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि (श्री) स्याम-स्यामा-पद कमल संगी सिर नायौ।।

अर्थात् श्री हित हरिवंश जू कहते हैं कि यह मिथ्या विश्व-प्रपञ्च काल-व्याल-कवलित है, ऐसा समझ कर मैंने श्री श्याम-श्यामा के चरण-कमल--अनुरागी भक्तों के चरणों में अपने को समर्पित कर दिया। अतएव श्री ध्रुवदास जी रसिक-उपासकों के लिए आदेश करते हैं कि रसोपासना में सावधानी यह है कि सदैव भक्तों के अपराधों से बचता रहे एवं प्रतिक्षण अपने रसमय भजन की ऐसी सँभाल रखे, जैसे नेत्र-पुतलियों की रक्षा, पलकें किया करती हैं।

पलकनि कैं जैसैं अधिक, पुतरिनु सौं अति प्यार।
ऐसैंहि लाड़िली-लाल के, छिन-छिन चरन सँभार।।

एक नें कही कि यह लाड़िली-लाल जू कौ अद्‌भुत निकुंज माधुरी कौ रस, सबतें दुर्लभ दुर्घट है; तासौं प्रेम कैसैं उपजै कौन उपाइ, कौन साधन ?

मूल तौ कृपा रसिक भक्तनि की, जिनसौं संग मन-वच-क्रम करि करै निशि दिन। अरु रसमई भजन के अभ्यास में रहै। और कठिन कलेश साधन सौं न बनै। यह रस अति कोमल है, माखन सौं माखन मिलै कठोरता न चाहियै। कठिन साधन सौं सुद्ध भक्ति हू न पावै। सर्वोपरि साधन यह है जो रसिक भक्त हैं, तिनकी चरन-रज बंदै, तिनसौं मिलि निसि-दिन किसोरी-किसोर जू के रस की बात कहै अरु सुनै निसि दिन, अरु पलु-पलु उनकी रूप-माधुरी विचारत रहै।

यह अभ्यास छाँड़ै नहीं, आलस न करै, तो रसिक भक्तन कौ संग ऐसौ है, अवश्य प्रेम कौ अंकुर उर में उपजै। जो कुसंग पसु तें बचै। जब ताईं

अंकुर रहै, भजन जल सौं सींच्यौ करै बारंबार। अरु सत्संग की बारि दृढ़ कै करै तौ प्रेम की बेलि हिये में बढ़ै, फूलै, जड़ नीके गहै तौ चिंता कछु नाहीं, यह ही जतन है। संग तैं कृपा, कृपा तैं संग, तब भक्ति होइ। या सिद्धांत पर और कछू नाँही। यह बात अबहूँ काहू के मन न आवै तौ तासौं कछू बसात नाहीं, अपनी वह जानै।

प्रश्न है कि सर्वाधिक दुर्लभ एवं दुःसाध्य अद्भुत निकुञ्ज-रस के प्रति प्रेमोदय कैसे हो ? इसका क्या उपाय अथवा साधन होगा ? श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मुख्यतः तो रसिक-भक्तों की कृपा वाञ्छित है। उपासक को चाहिये कि सदैव रसिक भक्तों का मनसा वाचा कर्मणा सत्सङ्ग करे तथा रसमय भजन के अभ्यास में तत्पर रहे। अन्यान्य प्रकार के कठोर एवं क्लेशपूर्ण क्रिया प्रधान साधनादि का आश्रय न ले, क्योंकि यह रस अत्यन्त कोमल है, यथा नवनीत से नवनीत ही घुल मिल सकता है; क्योंकि वह सजातीय द्रव्य है। कठोर साधना, तप, व्रतादिक से तो शुद्ध भक्ति की प्राप्ति भी दुर्लभ है। अतः महा- माधुर्य रस-प्राप्ति हेतु कठोर साधनों के लिए स्थान ही कहाँ है। शुद्ध महामाधुर्य रस की प्राप्ति का एकमात्र सर्वोपरि साधन है रसिक प्रेमियों की चरण-रज वन्दना-एवं उनका सङ्ग। अतः उन रसिक भक्तों से मिलकर श्री किशोरी-किशोर जू की प्रेम रसपूर्ण वार्त्ताओं का श्रवण-कथन एवं प्रतिपल श्री युगल की रूपमाधुरी का चिन्तन करते रहना चाहिये।

उपासक, रसिक सङ्ग के अभ्यास को कभी छोड़े नहीं और ना ही इसमें किंचित् भी प्रमाद करे, तो निश्चय है कि रसिक-भक्तों के सत्सङ्ग-प्रभाव से उसके हृदय में प्रेमाङ्कुर उत्पन्न होगा। प्रेमाङ्कुर के पूर्ण विकास पर्यन्त कुसङ्ग रूपी पशु से उसकी रक्षा करते हुए भजन रूपी जल से बारम्बार उसका सिञ्चन करते रहना चाहिये, एवं सत्सङ्ग की बाड़ लगाकर उसकी रक्षा की जाय तो निश्चित ही उपासक के हृदय में प्रेम की लता पल्लवित एवं पुष्पित होगी और उसकी जड़ें गहरी एवं दृढ़ होंगी, वह प्रेमाङ्कुर प्रेम की परिपक्व दशा

को प्राप्त हो जायेगा, तत्पश्चात् उसकी सुरक्षा की चिन्ता भी समाप्त हो जायगी। भगवत् कृपा से ही रसिक सन्तों का सङ्ग प्राप्त होता है, यही भक्ति का सार-सिद्धान्त है।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इतना सब समझाने कहने पर भी उक्त सिद्धान्त के प्रति यदि किसी की आस्था-विश्वास न बन पावे तो उस पर किसी का क्या वश है? अपने दायित्व को वह स्वयं विचारे।

या रस कौ विचार अपनैं मन समुझाइबे कौं, कै जिनकौ मन या रस में होइ तिनके हेत कह्यौ। जो या विचार में रहै तौ काल वृथा न जाइ। जिन कौं यह रस रुचै नाहीं तिनके पास न बैठे, न यह प्रसंग चलावै। जो विजाती सौं गोष्ठी करै तौ या रस में अंतर परै, चित्त कठोर ह्वै जाइ। जैसे महा रंक धन कौ छिपाये फिरै, ऐसैं महा प्यार सौं उर में राखै यह भजन। अरु अभिमान छाँड़ै, मान-अपमान उर में न आनै, दीन होइ। जहाँ रसिक भक्तनि की मंडली सुनै, तहाँ जाइ, तिनकी चरन-रज सिर पर धरै, तिन सौं मिलि काल बितीत करै।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिस नित्य-विहार परक निष्काम, तत्सुख-रतिमय विलास रस की उपासना का सैद्धान्तिक विचार-विमर्श उक्त सम्पूर्ण प्रसङ्ग में प्रस्तुत किया गया है, वह मेरे आत्म-सन्तोष निमित्त एवं उन भाग्यशाली रसिक-उपासकों के हितार्थ है, जिनकी सहज अभिरुचि श्री युगल की वृन्दावनीय कुञ्ज-केलि में है। यदि कोई रसिक उपासक इस रसमय चिन्तन में सतत् लीन रहेगा, तो उसका जीवन सार्थक होगा। इस रसमय भजन में सावधानी यह होगी कि वह रसिक उपासक, उन सब लोगों का सङ्ग कदापि न करे, जिनकी इस रसोपाना में अरुचि है एवं उनके सामीप्य-सान्निध्य का सर्वथा त्याग कर दे। उनसे इस विषय में कोई चर्चा ही न करे; क्योंकि विजातीय से गोष्ठी (परिचर्चा) करने से अपने रस-भजन में निश्चित ही हानि होती है

एवं चित्त कठोर हो जाता है।

यह भजन-शैली अत्यन्त गोपनीय है, अतएव अतिशय प्रेम पूर्वक इसे अपने हृदय-सम्पुट में महा-निर्धन की निधि की भाँति गुप्त रखना चाहिये। इस रस के भजनी को चाहिये कि अभिमान शून्य एवं मानापमान-रहित होकर विनम्र बने।

रसिक अनन्य भक्तों की सत्सङ्ग-सभा में जाकर उनकी श्री मुख -निःसृत रस-कथा का श्रवण करे, उन रसिकों की चरण-धूलि अपने सिर पर धारण करे एवं सदैव इसी भाँति जीवन-यापन करे।

निमित्य रहित भजन स्वाद लिये होइ। जैसे विषई कौ अपनौं-अपनौं रस रुचै ऐसैं भजनी होइ, तब विषय-नेम कौं भसम करै, प्रेम बढ़ै। जब ताईं मन भ्रम्यौ फिरै, कबहूँ महातम, कबहूँ ज्ञान, कबहूँ विरक्तता तिनकौं या रस माधुरी सौं बहुत अंतराय है। जो निस्प्रेही भयौ ताकौं जैसी कौड़ी तैसौ रतन। और सब रस या माधुर्य रस के आवरण हैं, अन्तराय बनाये हैं। सो या बात रसिकनि की कृपा तें मन में आवै। श्री किसोरी-किसोर जू की प्रेमरस माधुरी तबहीं उर में आवै जाकैं सांगोपांग उपासना सहज की होइ।

सांग कहा ? गुरु, इष्ट, मंत्र, रसिकनि कौ संग, जब या रस के जुरैं तब उपासना सिद्ध होइ, ते उपासिक कहियै। जो मन नेकहूँ और धर्मनि में चलै तौ उपासना भंग होइ। और वृंदावन में जो कोई निमित्य, तिथि, विधि मानैं सो भली नाहीं। श्री लाड़िली--लाल जू जहाँ नित्य-विहार करत हैं ऐसौ श्री वृंदावन है, ताकौ निमित्य धर्मनि में सानैं, यह बड़ी चूक है। चंद्रमनिहिं लै ज्यौं काँच के मनियनिं में पोवै तो सोभा न पावई। जा वृंदावन की तुल वैकुंठ हू नाहीं ताकौ तुच्छ धर्मनि में मिलावै यह बड़ी अज्ञानता है। रसिक अनन्य ऐसौ चाहियै धीर, सुभट कहूँ मन न चलै या बात की समान।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसोपासक की भजन रीति, निमित्त

रहित अर्थात् निर्हैतुक स्वारस्यमय होनी चाहिये। जैसे विषयी पुरुष को अपने विषय-सुख में सहज रुचि होती है।

अपने सेव्य रस के प्रति एतज्जातीय आसक्तिवान् रसिक ही विषय रूपी नेम को भस्म करने में समर्थ होगा और तभी उसके हृदय में प्रेम की वृद्धि होगी। जब तक उपासक का मन माहात्म्य-ज्ञान एवं विरक्ति में भ्रमित होता रहेगा, तब तक उसका युगल रस माधुरी से अन्तराय बना ही रहेगा।

निःस्पृहता इस रसोपासना का शृङ्गार है। निस्पृह वह है, जो लोक-लोकान्तर की समस्त सुखेच्छाओं से सर्वथा विरत है। ऐसे निःस्पृह रसिक भक्त के लिए कौड़ी अथवा बहुमूल्य रत्न एक समान हैं। भक्ति सम्बन्धी ऐश्वर्य एवँ माधुर्यमय विविध भाव तथा रस, इस विशुद्ध वृन्दावन माधुर्य-रस के आवरण एवं अन्तराय हैं। यह सिद्धान्त अनन्य रसिक भक्तों की अनुकम्पा से ही मन में धारण होता है और तभी श्री किशोरी-किशोरी जू की प्रेम रस-माधुरी हृदय में प्रतिबिम्बित होती है। वृन्दावन रस-माधुरी का यथार्थ उपासक वही है, जिसने इस उपासना को साङ्गोपाङ्ग रूप से ग्रहण किया है।

प्रश्न है कि साङ्गोपाङ्ग उपासना का क्या स्वरूप है?

समाधान यह है कि उपासना के चार अङ्ग हैं—गुरु, इष्ट, मन्त्र एवं रसिकों का सङ्ग। जब माधुर्य रस सम्बन्धी इन चारों अङ्गों का सम्मिलित सुयोग प्राप्त हो, तभी उपासना सम्पन्न होगी, और तभी उपासक कृतकृत्य होगा।

यदि उपासक का मन किञ्चित् भी अन्यान्य धर्मों की ओर चलायमान् होगा तो अवश्य ही उसकी उपासना भङ्ग हो जायेगी, कारण कि यह रसमयी उपासना पूर्णरूपेण निष्काम एवं अनन्य है। वृन्दावन रस-उपासक के लिए तिथि-विधि एवं निमित्त धर्मों को महत्त्व देना अनुचित है, कारण कि जिस नित्य वृन्दावन में श्री लाड़िली-लाल जू नित्य निरन्तर एक रस विहार मग्न हैं; ऐसे सर्वोपरि श्री वृन्दावन को निमित्त धर्मों में संलिप्त करना बड़ी भूल

है। यथा चन्द्र-माणिक्य को तुच्छ काँच की मनियों के साथ गुम्फित करना चन्द्र-माणिक्य जैसे रत्न का अनादर है। जिस वृन्दावन के समतुल्य परम धाम वैकुण्ठ भी नहीं है, उसे साधारण नैमित्तिक धर्मों में सम्मिलित करना अत्यन्त अज्ञान है।

सारांश यह है कि रसिक अनन्य उपासक अविचलित-मना, धीर, वीर, सुभट की भाँति अपनी रसोपासना में दृढ़ रहे।

उपसंहार चौपाई

यह प्रबोध 'ध्रुव' जो मन धरै। सोई भलौ आपनौ करै।।
यह सिद्धांत सार है जानौं। और कछू जिय जिनि उरआनौं।।
छिन-छिन काल वृथा चल्यौ जाई। लाड़िली-लालहिं लेहु लड़ाई।।
छाँडि कपट मन वच चित दीजै। अलि ज्यौं चरन कमल रस पीजै।।
जिनिकै मन निश्चै यह आई। रस सुख की निधि तिनहीं पाई।।
तिनहीं देह धरी या जग में। जाकौ मन लाग्यौ इह रँग में।।

दोहा—

यह सिद्धान्त बिचार तें, चारु बुद्धि 'ध्रुव' होइ।
तन मन के सब भरम मल, पल में डारत खोइ।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई सिद्धान्त-विचार नामक प्रबोध प्रबन्ध (ग्रन्थ) को मन में धारण करेगा, निश्चित ही वह अपना परम हित करेगा।

"यह सिद्धान्त विचार" सब सिद्धान्तों का सार है, अतएव इसके आगे अन्य कुछ विचारने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती है। जीवन प्रति पल वृथा ही नष्ट हो रहा है, श्री लाड़िली-लाल जू के लाड़-दुलार में समय यापन पूर्वक इसे कृतकृत्य करना चाहिये एवं निश्छल एवं सरल भाव से मन, वचन

एवं चित्त देकर रस-लोलुप भ्रमर की भाँति श्री युगल के चरण-कमल-मकरन्द रस का निरन्तर पान करना चाहिये।

जो दृढ़तापूर्वक इस सिद्धान्त-विचार को धारण करेंगे, निश्चय ही वे नित्य-विहार रस के अधिकारी होंगे तथा जिनका मन इस आनन्द रङ्ग से सम्बद्ध हो गया है, उन्हीं का जगत् में देह धारण करना सार्थक है।

इस "सिद्धान्त-विचार" के चिन्तन-मनन से बुद्धि स्थिर एवं पवित्र होती है, तन और मन के भ्रम एवं सारी मलिनताएँ क्षण-मात्र में विनष्ट हो जाती हैं।

९
प्रीति चौवनी

प्रस्तावना दोहा

नवल रँगीले लाल बिनु, को समुझै निजु-रीति।
सब तजि बस आपुन भये, रँगे रँगीली प्रीति।।१।।
चूड़ामनि सब लोक के, लये प्रेम-रस मोहि।
जद्यपि रूप निधान पिय, प्रिया-बदन रहे जोहि।।२।।

प्रेम-परिभाषा दोहा

बरनौं ऐसै प्रेम कौं, जिहि बस कीने लाल।
सुद्ध स्वरूप अनूप 'ध्रुव', अद्भुत परम रसाल।।३।।

प्रीति के गौरवमय स्वरूप की परिभाषा करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक शेखर श्री राधावल्लभ लाल के अतिरिक्त सहज रसमयी प्रीति के धर्म और स्वरूप को समझने में अन्य कोई देवादिक एवं भगवद् अवतार भी समर्थ नहीं है, इसीलिए तो सर्वाराध्य सर्वोपरि परात्पर तत्त्व होकर भी वे अपने स्वरूप-गत समस्त धर्मों का त्याग किंवा विस्मरण करके अपनी प्राण-प्रिया नित्य निकुञ्जेश्वरी स्वामिनी श्री राधा की रसपूर्ण प्रीति में स्वयं रँग गये हैं। ।।१।। इन अखिल लोक-चूड़ामणि को प्रिया-प्रेम के रस ने सर्वतः मोहित कर रखा है। तभी तो प्रियतम श्री राधावल्लभ लाल, रूप के अनन्त भण्डार होने पर भी प्रिया श्री राधा की मुखच्छवि का आसक्त भाव से अनवरत अवलोकन करते रहते हैं। ।।२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं अब उस वलशाली प्रेम का वर्णन करना चाहता हूँ, जिसने अन्य की तो बात ही क्या, सर्वजित-अजित श्री राधावल्लभ लाल को पूर्णतया वशवर्ती बना रखा है। वह प्रेम गुण-रहित, कामना-रहित होने से शुद्ध है, भगवत् स्वरूप है, अनुपम है, अद्भुत है एवं सर्वोपरि रसरूप है। ।।३।।

आदि अन्त जाकौ नहीं, रहत एक रस रूप।
रुचि तरंग पल-पल बढ़ैं, सहजहि सुखद अनूप।।४।।
नित्य नवल मृदु मधुर वर, भीने रंग सुहाग।
जामें नाहिं निमित्त कछु, सो अभंग अनुराग।।५।।
प्रेम नेम ब्योरौ कियौ, जो आयौ उर माहिं।
याते न्यारे दुहुँनि के, लच्छन जानैं जाहिं।।६।।
जेहि तन बन गरजत रहै, अद्‌भुत केहरि प्रेम।
तामैं पावैं रहन क्यौं, गज बिहंग मृग नेम।।७।।

जो अनादि और अनन्त है अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त है, जो सदैव एक रसरूप बना रहता है, जिसमें प्रतिपल रूचि की तरङ्गें बढ़ती ही रहती हैं, घटती नहीं, जो सहज अनुपम सुखों का प्रदायक है। ।।४।। वह प्रेम जो नित्य नूतन है , सुकोमल है, अतिशय मधुर है और जो सुहाग के आनन्द रङ्ग से भीगा हुआ है अथवा भिगो देने वाला है, जो अहैतुक एवं अभङ्ग है अर्थात् जिस शुद्ध प्रेम की उत्पत्ति और भोग में किसी निमित्त का स्थान नहीं है। सत्य प्रेम वह है जो एक बार प्रेमी के हृदय में उदित होकर घटता नहीं, टूटता नहीं। ऐसा प्रेम ही वस्तुतः प्रेम है। ।।५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब मैं प्रेम की यथामति परिभाषा करके अपने हृदय में उत्पन्न हुए विचारों के माध्यम से प्रेम और नेम का विवरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ, जिससे दोनों के पृथक्-पृथक् लक्षणों का भेद समझा जा सकेगा कि प्रेम और नेम में क्या भेद है ? ।।६।। जिस प्रेमी के हृदय रूपी (अरण्य) में अद्‌भुत प्रेम-रूपी सिंह निरन्तर अपनी गर्जना करता रहता है अर्थात् सर्वोपरि रूप से निरन्तर निवास करता है, उस वन में नेम धर्म रूपी हाथी, हिरण एवं अन्य पशु-पक्षी भला कैसे टिक सकते हैं ?।।७।।

रहन न पावत और रस, जहाँ प्रेम कौ राज।
सकल सुखनि कौं दलमलै, ज्यौं पंछिनु में बाज।।८।।
मन पंछी तब लगि उड़ै, विषय-वासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयौ नाहिं।।९।।
जहँ लगि लालच विषै कौ, सो न होइ 'ध्रुव' प्रेम।
तासौं कहा बसाइ 'ध्रुव', पीतर सौं कहै हेम।।१०।।
पलटि परत ताकी दसा, जो सनेह रँग रात।
और अंग मिटि कै सबै, नैना ही ह्वै जात।।११।।
रहन देत नहिं और रस, यहै प्रेम की टेक।
याकौ सहज सुभाव यह, करत दोइ तें एक।।१२।।

जिस हृदय में प्रेम सर्वोपरि रूप से विराजमान् रहता है, वहाँ अन्य विषय आदि रसों के लिए कोई स्थान नहीं होता, जैसे बाज (स्यान) अन्य पक्षियों को अपने बल प्रभाव से तितर-बितर कर देता है, उसी प्रकार प्रेमी का हृदयस्थ-प्रेम अन्य विषय आदि सुखों को प्रताड़ित करके दूर भगा देता है। तात्पर्य यह है कि प्रेमोदय के पश्चात् प्रेमी का हृदय निष्कलुष हो जाता है। ।।८।। मन रूपी पक्षी तभी तक विषय-वासनाओं पर मँडराता है, जब तक प्रेम रूपी बाज की झपट (पकड़) में नहीं आ जाता। ।।९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं—निश्चित है कि ऊपर से प्रेम-प्रीति जैसा दिखने वाला विषय भोगों का लालच, प्रेम नहीं है, काम है। कोई अज्ञानी यदि पीत वर्ण होने के कारण ही पीतल धातु को स्वर्ण कहता है, तो उसकी मान्यता के लिए कोई क्या कर सकता है। ।।१०।। जो भाग्यशाली श्री श्यामा-श्याम के प्रेम-रङ्ग में रँग जाता है, उसकी अन्तर्वहिः चित्त-स्थिति सर्वथा परिवर्तित हो जाती है एवं उसकी दृष्टि सब ओर से सिमिट-सुलझ कर युगल किशोर के दर्शन-चिन्तन में केन्द्रित हो जाती है। ।।११।। प्रेम का अपना एक हठ है कि वह जिस हृदय में निवास करता है, वहाँ किन्हीं अन्य रसों को रहने ही नहीं देता और यह भी उसका सहज स्वभाव है कि वह दो हृदयों को मिलाकर एक कर देता है अर्थात् प्रेम अनन्य एवं अद्वैत है। ।।१२।।

प्रेम और विषय-वासना में अन्तर दोहा

भूल्यौ नहिं अपनौ विषय, मिट्यौ न मन तें नेम।
तासौं 'ध्रुव' कैसे कहै, जानि बूझि कै प्रेम।।१३।।
तन-विलास जे विषय के, जौ न प्रेम तें जाहिं।
भानु उदै जौ तम रहै, तौ वह भानुहिं नाहिं।।१४।।
जामैं नाहिंन प्रीति कछु, जो जाकौ आहार।
हिम रितु ग्रीषमता रुचै, ग्रीषम माहिं तुषार।।१५।।
अलि, पतंग, मृग, मीन, गज, चातक, चकइ, चकोर।
ये सब झूठे नेह में, बँधे विषय की डोर।।१६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उपासक को जब तक देह आदि विषयों की विस्मृति नहीं हुई है, एवं उसके मन में नेम (कर्म) के प्रति आस्था समाप्त नहीं हुई है, तब तक उस विषय एवं कर्म-आस्थावान् व्यक्ति को प्रेमी और उसके तथाकथित प्रेम को विशुद्ध प्रेम कैसे कहा जा सकता है। ।।१३।। यदि किसी प्रेम के उदय होने पर शरीर सम्बन्धी विषय-विलासों का अन्त नहीं होता है, तो उसे भी प्रेम नहीं कहा जा सकता। यथा सूर्योदय के पश्चात् भी यदि अन्धकार का अस्तित्व है, तो वह सूर्य, सूर्य नहीं है। तात्पर्य यह कि प्रेमोदय के पश्चात् विषयासक्ति का अभाव सुनिश्चित है। ।।१४।। जैसे शीत-काल में उष्णता के प्रति रुचि होती है और ग्रीष्म-काल में शीतलता प्रिय लगती है किन्तु वास्तव में यह न रुचि है, न प्रियता, सामयिक आहार है। इस आहार-प्रियता को प्रेम की संज्ञा नहीं दी जा सकती। भ्रमर, शलभ, हरिण, मछली, हाथी, पपीहा, चक्रवाक (चकवा-चकवी) और चकोर आदि पशु-पक्षी अपने-अपने आहार्य-विषय से आबद्ध हैं, जिनके अभाव में अथवा आसक्ति में प्राण तक विसर्जन कर देते हैं, फिर भी ये शुद्ध-प्रेमी कहलाने के योग्य नहीं, क्योंकि प्रकृति-धर्म से बँधे हुए हैं। ।।१६।।

जब लगि द्वै मन बीच कछु, स्वारथ कौ हित होइ।
शुद्ध सुधा कैसैं रहै, परै जो तामें तोइ।।१७।।
आदि अन्त जाकौ भयौ, सो सब प्रेम न रूप।
आवत जात न जानियै, जैसैं छाँह ऽरु धूप।।१८।।
जब बिछुरत तब होत दुख, मिलतहि हियौ सिराइ।
याही में रस द्वै भये, प्रेम कह्यौ क्यौं जाइ।।१९।।

एकरस नित्य प्रेम का स्वरूप दोहा

तन मन कै बिछुरे नहीं, चाह बढ़ै दिन-रैन।
कबहुँ सँजोग न मानहीं, देखत भरि-भरि नैंन।।२०।।

जब तक दो हृदयों में स्वार्थपरक प्रेम होगा वह शुद्ध प्रेम नहीं कहा जा सकता, यथा अमृत-राशि में यदि एक बिन्दु भी जल मिला दिया जाय तो वह अमृत-राशि शुद्ध नहीं कही जा सकती। ।।१७।। जिसका आदि-अन्त होता है वह प्रेम का स्वरूप नहीं है। जैसे धूप आती है, छाया होती है। धूप चली जाती है, छाया मिट जाती है। यह सब प्राकृतिक धर्म हैं; किन्तु प्रेम तो आदि और अन्त-रहित एक रस एवं अक्षुण्ण है। ।।१८।। वियोग, दुःख की सृष्टि करता है और संयोग, हृदय को शीतलता का सुख प्रदान करता है। इस प्रकार जिस प्रेम-स्थिति में संयोग-वियोग दुःख-सुख के द्वन्द्व हैं, उस द्वन्द्वात्मक प्रेम को दुःख-सुख आदि की आशङ्काओं से युक्त होने के कारण शुद्ध प्रेम नहीं कहा जा सकता। ।।१९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम का शुद्ध एवं पूर्ण रूप यह है कि प्रेमी एवं प्रेमास्पद न देह से वियुक्त हों, न मन से ही। उनके हृदयों में एकात्म मिलन की लालसा अहर्निश एवँ प्रतिपल वृद्धि को प्राप्त होती रहे। प्रेमी-युगल, उपरोक्त प्रकार से मिलन पूर्वक निर्निमेष मुखावलोकन करते हुए भी दर्शनाभाव-जन्य संयोग-राहित्य का अनुभव करते रहते हैं। यही प्रेम की पूर्ण एवं चरमावधि है।।२०।।

ऐसौ प्रेम न कहूँ 'ध्रुव', है वृंदावन माहिं।
तिन बिच अंतर निमिष कौ, होत जु कबहूँ नाहिं।।२१।।
प्रेम रूप वय घटत नहिं, मिटत न कबहुँ सँजोग।
आदि अंत नाहिन जहाँ सहज प्रेम कौ भोग।।२२।।

प्रेम और प्रेमी की दुष्प्राप्यता दोहा

अंग अंग मिलि रहै सब, मन सौं मन अरुझात।
देखौ अटपटि प्रेम-गति, चित्त न कबहुँ अघात।।२३।।
प्रेम चाल बाँकी चलनि, मन पग नहिं ठहराइ।
नख-शिख अरुझे नेम तें, ते कैसे तहँ जाँइ।।२४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नित्य संयोगमय अतृप्ति रूपी विरह जातीय प्रेम की स्थिति केवल नित्य विहारमय वृन्दावन में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। श्री श्यामा-श्याम युगल में निमेष-काल का भी वियोग नहीं है, तथापि मुखावलोकन करते हुए भी उनमें अतृप्ति रूपी उत्कण्ठा किंवा विरह की व्याप्ति बनी रहती है। ।।२१।। श्री राधावल्लभ लाल के निज स्वरूप में प्रेम, रूप, लावण्य एवं आयु सदा एक सी रहती है। वे तन और मन से निरन्तर मिले रहते हैं, उनका भोग्य प्रेम आदि-अन्त रहित अर्थात् अनादि एवं अनन्त है। ।।२२।। युगल श्री श्यामा-श्याम के अङ्ग से अङ्ग एवं मन से मन उलझे रहने पर भी उनके चित्त मिलन की तृप्ति का कभी अनुभव नहीं करते। प्रेम की यह बड़ी अटपटी गति है। ।।२३।। प्रेम की गति एक टेढ़ी चाल है, जिसमें मन के भी पाँव नहीं टिक पाते, तब जो लोग आपादमस्तक नियम, धर्म, कर्म-कांड आदि में उलझे हुए हैं, वे कैसे प्रेम के पथ में प्रवेश कर पावेंगे। ।।२४।।

प्रेम-बात हूँ बात तें, सूक्षम कही न जाइ।
तन तरवर कौं छाँड़ि कै, मनहि झुलावै आइ।।२५।।
प्रेम प्रकार अनेक विधि, तिनमें उत्तम भाँति।
अद्‌भुत प्रीति दुहूँनि की, जिनके उर झलकाँति।।२६।।
नेह निवाहन कठिन है, फिर्‌यौ जगत सब जोइ।
विमल प्रीति नहिं देखियै, स्वारथ लग सब कोइ।।२७।।
प्रीति प्रीति सब कोउ कहै, कठिन तासु की रीति।
आदि अंत निबहै नहीं, बारू की सी भीति।।२८।।

प्रेम तो प्रेम है और अवर्णनीय है। प्रेम की चर्चा भी पवन से अधिक सूक्ष्म अर्थात् झीनी है। वह प्रेम की वार्त्ता शरीर रूपी वृक्ष को स्पर्श न करके मन को आन्दोलित करती है। ।।२५।। प्रेम के अनेक प्रकार हैं, अनेक विधायें हैं। वह लौकिक, पारलौकिक, अकाम, सकाम एवं सर्वकाम अनेक प्रकार का है। इनमें उत्तम कोटि का प्रेम वह है, जहाँ प्रेमी उपासक के हृदय में श्री लाड़िली लाल की पारस्परिक तत्सुखमयी प्रीति सदा झलमलाती रहती है। ।।२६।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने संसार को टटोल-टटोल कर देखा है, लगभग सभी लोग लौकिक स्वार्थ में ही रत हैं, संसार में निर्मल निष्काम प्रीति का तो कहीं दर्शन भी नहीं है। निश्चित है कि प्रेम की प्राप्ति और आद्यन्त उसका निर्वाह अत्यन्त कठिन है। ।।२७।। संसार में प्रेम-प्रीति की बात तो सब कहते हैं, किन्तु प्रेम के निर्वाह की रीति बहुत कठिन है। जैसे रेत की दिवार बनाकर उसे खड़ा रख सकना बहुत कठिन है, ऐसे ही प्रेम प्रीति का आद्यन्त निर्वाह भी अत्यन्त कठिन है। ।।२८।।

प्रीति आरसी विमल है, जौ कोउ राखै जानि।
कपट मोरचा लगत ही, होति दरस की हानि।।२९।।
जाके हिय में जगमगै, रूप-दीप उजियार।
परसे ताके जाइ नसि, दुख सुख सब अँधियार।।३०।।
वृंदावन रसके रसिक, ये तौ पइयत थोर।
जिनके हिय में बसत रहैं, रसमय मधुर किसोर।।३१।।
जौ कोऊ खोजत फिरै, आवै जग अवगाहि।
नेही दुर्लभ पावनौ, और सुलभ सब आहि।।३२।।

प्रेम-पथ की विकटता दोहा

बंकट घाटी नेह की, अतिहि दुहेली आहि।
नैन पगनि चलिबौ तहाँ, जो 'ध्रुव' बनै तौ जाहि।।३३।।

प्रेम एक निर्मल दर्पण है, ऐसा जान-समझ कर उसे कोई सावधान व्यक्ति ही सुरक्षित रख सकता है। ध्यान रहे, उस दर्पण में छल-कपट रूपी मोर्चा अथवा जंग लगते ही उपासक को अपने एवं अपने प्रेमास्पद के स्वरूप-दर्शन की हानि हो जाती है। ।।२९।। जिस प्रेमी के हृदय में प्रेमास्पद के रूप- लावण्य का प्रकाशमय दीपक प्रकाशित है, उस प्रेमी का स्पर्श करते ही, स्पर्श करने वाले के सुख-दुःखादि रूपी समस्त लौकिक-पारलौकिक क्लेश तत्काल नष्ट हो जाते हैं। ।।३०।। नित्य-विहारमय श्री वृन्दावन रस के रसास्वादी वे रसिकजन, जिनके हृदय में रसमय मधुरातिमधुर युगल किशोर श्री ललित लाड़िली-लाल सदैव बसे रहते हैं, संसार में सकृत एवं दुर्लभ है। ।।३१।। यदि कोई व्यक्ति खोजता फिरे और सारा संसार खोज डाले, तो उसे और सब कुछ मिलना तो सुलभ होगा, किन्तु सच्चे प्रेमी हृदय का मिलना दुर्लभ ही होगा। ।।३२।। प्रेम की घाटी बड़ी टेढ़ी है, साथ ही बड़ी अटपटी अर्थात् जटिल है। प्रेम के पथ पर नेत्र रूपी पाँवों (रूप दर्शन के मार्ग) से चलना होता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं यदि तुम ऐसा कर सकने में समर्थ हो, तो ही उस पथ पर चलो। ।।३३।।

चढ़िकै मैंन-तुरंग पर, चलिबौ पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसौ कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।।३४।।

प्रेम चरित्र दोहा

लोक-वेद संकल सुदृढ़, मन-गज डारी तोरि।
देखौ प्रेम-चरित्र यह, बँध्यौ फिरै बिनु डोरि।।३५।।
मन-मतंग मद रस मत्यौ, धँस्यौ प्रेम-रन धाइ।
लोक-वेद कुल कानि की, दई फौज बिचलाइ।।३६।।

मोम निर्मित अश्व पर सवार होकर धधकती ज्वाला के मध्य से पार हो जाना जितना कठिन है, उतना ही कठिन है, प्रेम-पथ पर चलना। प्रायः सर्व-सामान्य लोग इस प्रेम-पथ पर चलने में असमर्थ एवं असफल ही रहते हैं। ।।३४।।

लोक तथा समाज की मान्यताएँ एवं वेद के विधि-निषेधादि धर्म ही सुदृढ़ लौह-शृङ्खलाएँ हैं; जिनके बन्धन में समस्त संसार के लोग बँधे हुए हैं किन्तु जो मन रूपी मतवाला हाथी इन लोक-वेद शृङ्खलाओं को अपनी स्वच्छन्द वृत्तियों के कारण एक झटके में तोड़ कर फेक देता है, वही निरंकुश एवं उन्मत्त मन रूपी गजराज जब प्रेम के बन्धन में बँध जाता है (अर्थात् कहीं आसक्त किंवा समर्पित हो जाता है) तब किसी स्थूल डोरी या बन्धन से बाँधे बिना स्वयमेव अपने प्रेमास्पद के पीछे-पीछे फिरता है। प्रेम देवता का यह चरित्र सहृदयों के लिए दर्शनीय है। ।।३५।। प्रेम मद के रस-पान से उन्मत्त हुआ मन मतङ्ग प्रेम के रणाङ्गण में निर्भीक भाव से धावमान् होकर जब प्रवेश करता है तब लोक-मर्यादा, वेद-बन्धन एवं कुल की प्रतिष्ठा रूपी सेनाओं को अपने प्रेम के शौर्य से तितर-बितर कर देता है। ।।३६।।

जेहि उर उपज्यौ प्रेम-रस, सो नित रहत उदास।
भूल्यौ हँसिबौ, खेलिबौ, खान-पान सुख-बास।।३७।।
रूप-छटा अद्‌भुत निरखि, थकित भये मुख-बैंन।
प्रान तहाँ पहिलैं गये, रोवत छाँड़े नैंन।।३८।।
रूप-धसक हिय धँसि गयौ, सिथिल भये सब अंग।
मुख पियराई फिरि गई, बदलि पर्‌यौ तन-रंग।।३९।।
प्रेम-बेलि जेहि पर चढ़ी, गई सबै सुधि भूलि।
एक कमल 'ध्रुव' चाह कौ, ताके उर रह्यौ फूलि।।४०।।

जिस भाग्यशाली हृदय में प्रेम-रस का प्रादुर्भाव हो जाता है, वह सदैव संसार के सुख-वैभवादि से उपराम हो जाता है। वह सुस्वादु भोजन, रसमय पेय, विविध प्रकार के भौतिक सुख, वस्त्र-आभूषण, सुन्दर भवन, हास-परिहास एवं क्रीड़ा-विनोद आदि को सहज रीति से भूल जाता है। ।।३७।। प्रियतम के रमणीय रूप की अनुपम एवं अद्‌भुत छवि-छटा का अवलोकन करके उसकी वाणी प्रेम-विथकित हो जाती है तथा उसके प्राण नेत्रों को रोते-बिलखते छोड़कर प्रेमातुर-भाव से शीघ्रतापूर्वक प्रियतम से जा मिलते हैं। ।।३८।। उसका हृदय रूप-भार से भारान्वित होकर धँस जाता है। शरीर के सभी अङ्ग शैथिल्य को प्राप्त हो जाते हैं। प्रेम प्रभाव से प्रेमी का मुख-मण्डल विवर्ण हो जाता है एवं उसके शरीर का रङ्ग कृशतादि के कारण कान्तिहीन सा हो जाता है। ।।३९।। प्रेम की लता जिस पर आच्छादित हो जाती है, वह देह-गेहात्म की स्मृति से रहित हो जाता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उस प्रेमी के हृदय में केवल प्रेमोत्कण्ठा रूपी कमल ही सदैव विकसित रहा आता है। ।।४०।।

प्रेम-रस का अनधिकारी दोहा

मोह्यौ नहिं सुनि राग-धुनि, बिंध्यौ न उर छबि-बान।
तिनकौं ऐसैं समुझ तू, पाहन-चित्र समान।।४१।।
पर्‌यौ न रूप-तरंग में, अर्‌यौ न मृदु मुसिक्यान।
रम्यौ न भौंहनिं भाइ-रस, नीरस तरु सम जान।।४२।।

प्रेम-सिद्ध महापुरुषों के लक्षण दोहा

प्रेम रंग तन मन रँगे, कहँ समाइ सुख और।
रोम-रोम पिय रमि रह्यौ, बची नाहिं कहुँ ठौर।।४३।।

जो व्यक्ति कर्णमधुर राग-रागनियों का श्रवण करके भी भाव-विमुग्ध नहीं होता तथा जिसके हृदय को सौन्दर्य-छवि रूपी वाण नहीं बेध सकता अर्थात् रूप-दर्शन करके भी जो संवेदनहीन बना रहता है, ऐसे लोगों को तुम ऐसा समझो कि वे भीति-चित्र या प्रस्तर-मूर्ति हैं। ।।४१।। जो व्यक्ति रूप की लहरियों में तरङ्गायित नहीं हुआ अथवा जिसे मञ्जुल मुखमण्डल का मधुर-मृदु हास्य आन्दोलित नहीं कर सका, जो प्रत्यञ्चा-हीन धनुष जैसी भृकुटियों के भाव-रस में भी नहीं रमा, उसे उखटे हुए नीरस वृक्ष जैसा ही जानना चाहिए। ।।४२।।

श्यामा-श्याम के चरणानुरागी रसिक प्रेमी-भक्तों का तन-मन एवं प्राण अन्तर्वहिः प्रेम के रङ्ग से सदैव रँगा रहता है। इस दिव्य प्रेम में अन्य सुखों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। उनके रोम-रोम में प्रेमास्पद श्री ललित लाड़िली लाल की छवि रमी रहती है। उनके अन्तराल में प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी का स्थान शेष नहीं रहता। ।।४३।।

कुंडलिया दोहा

नैननि पिय-मूरति बसै, तेहि रस रहै समाइ।
ये लच्छन सुनि प्रेम के, और न कछू सुहाइ।।
और न कछू सुहाइ, फिरै अपनैं मदमातौ।
कुटुँब देह सौं जाइ टूटि, सबही विधि नातौ।।
जहँ-जहँ पिय की बात सुनैं, खोजत तिन गैंननिं।
छिन-छिन प्रति 'ध्रुव' लेत, प्रेम-जल भरि-भरि नैननिं।।४४।।

दोहा

कहा कहौं गति प्रेम की, बढ़ी चाह की पीर।
लोचन भूखे रूप के, भरि-भरि ढारत नीर।।४५।।

प्रेमी के नेत्रों में निरन्तर उसके प्रियतम की मञ्जुल मूर्त्ति बसी रहती है और वह प्रेमी अहर्निश प्रेम के रस में डूबा रहता है। उसे प्रेम और प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुहाता। यही प्रेम का मूल लक्षण है। सब ओर से उपरत हुआ वह रसिक प्रेमी प्रेम-मद से उन्मत्त हुआ स्वच्छन्द विचरण करता रहता है। उसके मन से कुटुम्ब, शरीर और संसार के सभी नाते-रिश्ते पूरी तरह टूट जाते हैं। वह रसोन्मत्त प्रेमी जहाँ कहीं अपने प्रियतम की बातें-चर्चा, गुण-गाथा श्रवण करता है वहीं-वहीं उन महानुभावों का अनुगमन करता-फिरता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उसका हृदय प्रेम की आँच से पिघलता रहता है, इसीलिए उसके नेत्र प्रतिक्षण बारम्बार प्रेमाश्रु-पूरित हुए ढलकते रहते हैं। ।।४४।।

प्रेम की गति और स्थिति सदा अकथनीय है, यदि कोई कुछ कहना चाहे तो क्या कहे ? प्रेमी के हृदय में प्रेमाभिलाषाओं की पीड़ा अनवरत वृद्धि को प्राप्त होती रहती है। उसके चाह-भरे नयन सदा रूप-दर्शन-क्षुधित बने रहते हैं। अतएव, वह प्रेमी बारम्बार सजल नेत्र होकर प्रेमाश्रु ढलकाता रहता है। ।।४५।।

को आवै बुलवैब को, को बकि है उठि जाहि।
प्रेम-चटपटी जासु उर, गृह, बन भूल्यौ ताहि।।४६।।
भाव बढ़्यौ तब जानियै, यह गति होइ अनूप।
भूलै भूख ऽरु सैन-सुख, नैंन भरे रहैं रूप।।४७।।
चित्त रहै द्रविभूत नित, अति कोमल रस-प्रेम।
हिय में झलकत रहैं यौं, जैसैं चाँदी-हेम।।४८।।

सदुपदेश दोहा

वृदांवन नित सहजही, आनँद कौ निजु धाम।
बिलसत है जहँ प्रेम-रस, इकछत स्यामा-स्याम।।४९।।

जिसके हृदय में प्रेम की त्वरा (चटपटी) छाई रहती है, वह घर, वन और समस्त संसार को भूल जाता है। उस विवश प्रेमी को यह भी भान नहीं रहता कि मेरे समक्ष कौन आया, कौन मुझे बुला रहा है। ।।४६।। ऐसा तब जानना चाहिए जब उसकी लोक-विलक्षण यह गति हो जाय कि उसे मानव-शरीर की आधारभूत आवश्यकताएँ जैसे क्षुधा, पिपासा और निद्रा का सुख सर्वथा विस्मृत हो जाय एवं उस भावुक के नयनों में प्रियतम का रूप छाया रहे अर्थात् विश्व-दर्शन समाप्त हो जाए। ।।४७।। उसका चित्त सदैव अतिशय मृदुल प्रेम-रस प्रभाव से प्रभावित हुआ द्रवित होता रहे तथा उसके हृदय में प्रभामय रजत एवं स्वर्ण की भाँति सौन्दर्य-राशि युगल झलकते से निरन्तर दिखते रहें। ।।४८।।

श्री वृन्दावन धाम नित्य ही सहज स्वाभाविक रूप से आनन्द का सर्वोपरि धाम है, जहाँ अनादि अनन्त रूप से श्री श्यामा-श्याम युगल, विशुद्ध प्रेम-रस का विलास करते रहते हैं। ।।४९।।

नवल किसोरी नव कुँवर, सहज प्रेम की रासि।
भीने दोउ आनंद रस, करत मंद मृदु हाँसि।।५०।।
रूप परस्पर चितैबौ, जीवनि दुहुँनि की आहि।
यह सुख समुझति हैं सखी, रहत निरंतर पाहि।।५१।।
या रस में चित दीजियै, छाँड़ि और सब आस।
धन्य-धन्य तेई जु नर, जिनकै यहै उपास।।५२।।
हित सौं जाहि चिन्हार नहिं, तासौं करि न चिन्हारि।
बिनु 'ध्रुव' नेही भाजनहिं, रंग न दीजै ढारि।।५३।।

ये नित्य नव किशोरी एवं नव किशोर युगल सहज प्रेम की राशि हैं। दोनों आनन्द के रस में सदैव सराबोर रहे आते हैं। उनके मुख-मण्डल पर मृदु, मन्द एवं मधुर हास्य-रेखा निरन्तर झलकती रहती है। ।।५०।। परस्पर रूप का निर्निमेष दर्शन ही युगल का जीवन है। युगल के इस जीवन-सुख की ज्ञाता, अनुभवी वे सब सखियाँ हैं, जो युगल के समीप रहती हैं। ।।५१।। रसिक उपासक को चाहिये कि अन्य सब आशाओं, आकाङ्क्षाओं का परित्याग करके श्री लाड़िली-लाल के नित्य संयोगमय महामधुर विशुद्ध प्रेम-रस-विलास की उपासना में अपना चित्त समर्पित करे। वे उपासक धर्मी वस्तुतः धन्यातिधन्य हैं, जो वृन्दावन नित्य-निकुञ्ज-विहार की उपासना के लिए समर्पित हैं।।।५२।। रसिक अनन्य उपासक की सावधानी यह है जिस किसी इतर उपासक ज्ञानी-ध्यानी आदि की इस हित-धर्म से जान-पहचान नहीं है, उसका सङ्ग तो दूर रहा, उससे परिचय भी नहीं करना चाहिये। इस महा-मधुर गोप्य रस का प्रेमी-पात्र के अतिरिक्त अन्य किसी को दान भी नहीं करना चाहिए।।।५३।।

फलस्तुति दोहा

प्रीति चौवनी जो सुनै, उपजैगी निजु प्रीति।
ताही तें 'ध्रुव' समुझि है, वृंदावन-रस-रीति।।५४।।
हित सौं हियैं धरे रहौ, यह माला रस-प्रेम।
'हित ध्रुव' ताके झलमलै, हिये केलि रस-क्षेम।।५५।।

प्रीति चौवनी नामक चौवन दोहों के इस लघुकाय वाणी ग्रन्थ का जो कोई श्रद्धालु पठन-श्रवण करेगा, उसके हृदय में श्री लाड़िली-लाल की ऐकान्तिक सहज प्रीति का उदय होगा। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इसी प्रीति-चौवनी के माध्यम से वह श्रद्धालु श्री वृन्दावन की युगल प्रीति विषयक रस-रीति को समझने में समर्थ होगा। ।।५४।। वे पुनः कहते हैं कि यह ग्रन्थ प्रेम-रस की माला है, जो कोई प्रीति-पूर्वक हृदय-देश पर इसे धारण करेगा, उसके हृदय में युगल की मङ्गलमयी रस-केलि निश्चित ही आविर्भूत होगी। ।।५५।।

●

१०
आनन्दाष्टक

युगल-रूप की अनूपता दोहा

सखी सबै उडगन मनौं, एक बार आनंद।
पिय चकोर 'ध्रुव' छकि रहे, निरखि कुँवरि मुखचंद।।१।।
ऐसी अद्भुत सभा बनी, इक छत सुख की रासि।
फूले फूल आनंद के, सहज परस्पर हाँसि।।२।।
देखि लाल के लालचहि, लालच हू ललचाइ।
नवल कटाक्ष तरंग रस, पीवतहू न अघाइ।।३।।

श्री वृन्दावन नित्य-विहार के नित्य नव निभृत निकुञ्ज विलासी चतुर्व्यूह परिकर का संक्षिप्त परिचयात्मक रूपक प्रस्तुत करते हुए श्रीहित ध्रुवदास जी कहते हैं कि आनन्द धाम श्रीवृन्दावन ही मानो एक निरभ्र, प्रेमाकाश है। जहाँ सखियों का समुदाय ही देदीप्यमान् तारा-मण्डल है। जिसके मध्य में नवल किशोरी निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा का छवि-धाम मुख-मण्डल अलौकिक चन्द्रमा की भाँति जगमगा रहा है। प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के रूप-पिपासु नेत्र चकोर हैं, जो निर्निमेष भाव से प्रियतमा की मुख-चन्द्र माधुरी का पान करके छके रहते हैं।।१।। वृन्दावन-प्राङ्गण में सखी जन एवं प्रिया-प्रियतम की यह मण्डली अद्भुत तो है ही, विलक्षण एवँ एकछत्र सुख की राशि भी है, जहाँ परिकर का परस्पर हास्य ही आनन्द-रूपी पुष्पों का विकास है।।२।। श्री किशोरी के विशाल नेत्रों की नव-नव कटाक्ष तरङ्गों का अनवरत रस-पान करते हुए भी प्रियतम का रूप-लालची मन तृप्त नहीं होता है। श्रीलाल जी के रूप-दर्शन लालच को देखकर ऐसा लगता है कि मूर्त्तिमान् लालच भी लाल जी के लालच को देखकर ललचा रहा है।।३।।

एकहि वय गुन प्रेम रस, रूपऽरु सील सुभाव।
अद्भुत जोरी बनी ध्रुव, देखि बढ़त चित-चाव।।४।।

रसिक-स्वरूप की विशेषता दोहा

या रस के जे रसिकजन, तिनकी कौन समान।
बिना मधुर रस-माधुरी, परसत नहिं कछु आन।।५।।
रसिक तबहिं पहिचानियै जाकैं यह रस-रीति।
छिन-छिन हिय में झलकि रहै, लाल लाड़िली प्रीति।।६।।

उपसंहार दोहा

यह रस जिन समुझ्यौ नहीं, ताके ढिंग जिनि जाहु।
तजि सतसंग सुधा रसहि, सिंधु-सुतहि जिनि खाहु।।७।।

युगल किशोर की वय (आयु), गुणावली, पारस्परिक विलास, प्रेम, नवनवायमान् रूप, शील, नम्रता, मृदुता युक्त स्वभाव, सभी कुछ समान हैं। ऐसी अद्भुत मिथुन-मूर्त्ति को देख कर देखते रहने का ही चाव चढ़ता रहता है।।४।।

वृन्दावन नित्य विहार परिकर के नाम, रूप, लीला, रसास्वादी रसिक जनों की समता कौन कर सकता है, जो इस मधुर रस की माधुरी के सिवाय अन्य किसी रस का स्पर्श भी नहीं करते।।५।। यदि भक्तों का आस्वादनीय इष्ट तत्त्व यह रस-रीति है एवं क्षण-क्षण प्रति उनके हृदय में ललित लाड़िली-लाल की प्रीति झलकती–हिलोरें लेती रहती है, वास्तव में तभी उन्हें रसिक जानना और मानना चाहिये।।६।।

जिन्होंने उपरिकथित वृन्दावन निकुञ्ज-विलास रस को जाना-पहचाना तक नहीं है, रसिक उपासक को उनके समीप जाना तक उचित नहीं है, अर्थात् उनसे सम्पर्क स्थापित करना विष-भक्षण तुल्य है, अतएव रसिक उपासक को चाहिये कि रसिक सङ्ग रूपी अमृत का त्याग करके अन्य किसी के सङ्ग रूपी सिन्धु-पुत्र विष का भक्षण न करे।।७।।

वृन्दावन-रस अति सरस, कैसैं करौं बखान।
जिहि आगैं बैकुंठ कौ, फीकौ लगतु पयान।।८।।
यह अष्टक 'ध्रुव' पढ़ै जौ, संध्या और सबार।
ताके हियैं प्रकास रहै, मिटै त्रिगुन-अँधियार।।९।।

'वृन्दावन-रस' अत्यन्त ही सरस है, जिसका वर्णन करने में वाणी असमर्थ है। जिस वृन्दावन के समक्ष वैकुण्ठ का प्रस्थान भी तुच्छ प्रतीत होता है।।८।। श्रीध्रुवदासजी कहते हैं कि जो कोई संध्या एवं प्रातः-काल इस 'आनन्दाष्टक' का पाठ करेगा, उसके हृदय में त्रिगुण जन्य अन्धकार का विनाश होकर सदा प्रेम का प्रकाश प्रकट होगा।।९।।

११

भजनाष्टक

भक्ति के पाँच भावों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता दोहा

ग्यान, सांत रस ते अधिक, अद्भुत पदवी दास।
सखा-भाव तिनतें अधिक, जिनकैं प्रीति-प्रकास।।१।।
अद्भुत बाल-चरित्र कौ, जो जसुदा सुख लेत।
तातैं अधिक किसोर-रस, व्रज-बनितनि के हेत।।२।।

(भक्ति-देश में भक्त का भगवान् से पाँच भावों में से किसी एक भाव से सम्बन्ध स्थापित होता है। क्रमशः उनके नाम हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार) श्रीहित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सर्वप्रथम स्थापित होने वाला ज्ञानमय सम्बन्ध है शान्त भाव, जिसमें जीव और ब्रह्म का अंश-अंशी सम्बन्ध ज्ञात होने से सजातीय भाव बन जाता है। इस शान्त सम्बन्ध से श्रेष्ठ है—दास्य भाव, जिसमें जीव का स्वरूप दास है और भगवान् स्वामी है। इस दास सम्बन्ध में 'शान्त' की अपेक्षा जीव, भगवान् के कुछ अधिक निकट है; क्योंकि दास, स्वामी की कृपा का विशेष अधिकारी है और भगवान् के ममत्त्व का भी। इस 'दास' भाव से भी अधिक श्रेष्ठ है, जीव का भगवान् के प्रति सखा भाव, क्योंकि इस सख्य सम्बन्ध में ऐश्वर्य बोध-रहित आत्मीय प्रीति का विकास-प्रकाश स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।।१।। इस सख्य-रस से भी उन्नत स्तर वात्सल्य-रस का है, जहाँ श्रीकृष्ण के अद्भुत मधुमय बाल-चरित्रों का वात्सल्य-मूर्त्ति नन्दरानी यशोदा सुख-सञ्चयन करती रहती हैं। इसी क्रम में देखने से ज्ञात होता है कि वात्सल्य-रस प्रधान नन्दरानी यशोदा के प्रीति-स्तर से विशेष है श्री व्रज-वल्लवीगण का प्रणय भाव, जहाँ दिव्य कैशोर-केलि के माध्यम से गोपी रूपा भक्तों के तन, मन, धन, लोक, परलोक और मोक्षादि का भी आनन्द कन्द भगवान् श्रीकृष्ण को सर्वतोभावेन सम्यक् सर्वात्म समर्पण है।।२।।

सर्वोपरि उज्ज्वल रस दोहा

सर्वोपरि है मधुर रस, जुगल-किसोर विलास।
ललितादिक सेवतिं तिनहिं, मिटत न कबहुँ हुलास।।३।।
यापर नाहिंन भजन कछु, नाहिंन है सुख और।
प्रेम मगन बिलसत दोऊ, परम रसिक सिरमौर।।४।।
वृंदावन निज सहज ही, नित्य सखी चहुँ ओर।
मध्य विराजत एक रस, रसमय मधुर किसोर।।५।।
छैल-छबीली लाड़िली, छैल-छबीलौ लाल।
छैल-छबीली सहचरी, मनौ प्रेम की माल।।६।।
पंच बान जिहि पानि हैं, देखि गयौ इहि रंग।
तेई बान तिहि फिरि लगे, जरजर भये सब अंग।।७।।

इन सर्वात्म समर्पण भावमयी भक्त-शिरोमणि गोपीजन के प्रणय रस पूर्ण भाव से भी उन्नत एवं सर्वोपरि प्रेम मधुर रस है—युगल किशोर श्रीश्यामा-श्याम का वृन्दावनीय रस-विलास, जिसका श्री ललिता-विशाखादिक सखियाँ निरन्तर सोल्लास सेवन करती रहती हैं।।३।। इस भजन-भक्ति से परे श्रेष्ठ न तो कोई अन्य भजन है और ना ही कोई सुख ही है।।४।। नित्य धाम श्रीवृन्दावन में ललितादिक नित्य सखियों के मध्य में रसमय मधुर नित्य किशोर श्रीलाड़िली-लाल सदा विराजमान् रहते हैं।।५।। जैसी छैल छबीली श्रीनवल किशोरी लाड़िली प्रिया हैं, वैसे ही छैल छबीले रूप-लावण्य-धाम श्री लाल जी हैं। इसी प्रकार छैल-छबीली रूपमयी मानो प्रेम की माला सी सब सहचरियाँ हैं।।६।। जिसके हाथों में सदैव पाँच बाण शोभित रहते हैं, वह कामदेव इस प्रेम-विलास का दर्शन कर गया है। उसने जब इस लीला- विहारमय मण्डली को अपने काम-प्रभाव से प्रभावित करना चाहा अर्थात् अपने वाणों का प्रयोग किया तो उलट कर वह वाण उसे ही जा लगे और उसके सम्पूर्ण अङ्ग जर्जर हो गये।।७।।

बिवस भयौ सुधि रही न कछु, मोह्यौ महा अनंग।
लज्जित ह्वै रह्यौ नमित अति, करत न सीस उतंग।।८।।
यह अष्टक 'ध्रुव' पढ़ै जो, जुगल चंद संजोग।
ताके हियैं प्रकास रहै, मिटै तिमिर हृदि रोग।।९।।

वह मूर्च्छित हो गया। मोहित करने की चेष्टा करने वाला वह काम स्वयं ही मोहित हो गया। लज्जा-वश होकर नत-मस्तक हो गया। तात्पर्य कि यह नित्य-विहार-केलि सदा काम-विमुक्त शुद्धातिशुद्ध प्रेम-विहार है।।८।। श्रीध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री युगल चन्द्र के नित्य-संयोग सम्बन्धी इस अष्टक का जो भक्त सदैव पाठ करेगा, उसके हृदय का अन्धकार दूर तो होगा ही, उसके हृदय-रोग, काम-विकार का भी सर्वथा नाश होकर, हृदय में प्रकाश छा जायेगा।।९।।

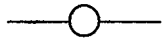

१२
भजन-कुण्डलिया

रसोपासक की रहनी — कुण्डलिया

हंस सुता तट बिहरिबौ, करि बृंदाबन बास।
कुंज-केलि मृदु मधुर रस, प्रेम विलास उपास।।
प्रेम-विलास उपास, रहै इक-रस मन माही।
तिहि सुख कौ सुख कहा कहौं, मेरी मति नाहीं।।
'हित ध्रुव' यह रस अति सरस, रसिकनि कियौ प्रसंस।
मुकतनि छाँड़े चुगत नहिं, मान-सरोवर हंस।।१।।

वृन्दावन रस के अनन्य रसिक उपासक को चाहिये कि वह प्रथमतः दृढ़तापूर्वक विरक्तभाव से वृन्दावन वास करे एवं श्री यमुना तट का सेवन करे। युगल की कुञ्ज-क्रीड़ा वा प्रेम-विलास के मृदु मधुर रस में अनन्य-भाव से तल्लीन रहे एवं प्रेम विलास-मयी रसोपासना का ही सतत चिन्तन करता रहे। इस रसोपासना के द्वारा उसे अपूर्व आनन्द एवं असीम सुख की उपलब्धि होगी, जिसका वर्णन वाणी द्वारा नहीं किया जा सकता। रसिक महानुभावों द्वारा स्तुत्य एवं अनुमोदित यह वृन्दावनीय रसोपासना यद्यपि सहज एवं अत्यन्त सरस है, तो भी सर्व सामान्य जीवों के लिए सर्वथा दुरूह है। कारण कि यह उपासना अनन्य निष्ठ, रसमर्मी भक्तों का ही सुरुचिपूर्ण ध्येय बन पाती है यथा मान-सरोवर निवासी राज-मराल मुक्ताओं का आहार छोड़ अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करते, तदवत् ही मर्मी रसिकजन इस नित्य-विहार की उपासना के अतिरिक्त अन्य कोई उपासना स्वीकार नहीं करते।।१।।

दोहा

रस भींज्यौ रस में फिरै, रसनिधि जमुना तीर।
चिंतत रस में सने दोउ, स्यामल-गौर सरीर।।२।।

रसोपासक का नित्य चिन्तनीय-तत्त्व कुण्डलिया

नवल रँगीले लाल दोउ, करत विलास-अनंग।
चितवनि-मुसकनि-छुवनि कच, परसनि उरज-उतंग।।
परसनि उरज उतंग, चाह रुचि अति ही बाढ़ी।
भई फूल अँग-अंग, भुजनि की कसकनि गाढ़ी।।
यह सुख देखत सखिनु के, रहे फूलि लोइन कमल।
'हित ध्रुव' कोक कलानि में, अति प्रवीन नागर नवल।।३।।

अतएव अनन्य रसोपासक रस-स्निग्ध भाव से प्रेम रँग-भीगे गौर-श्याम नव युगल का (अधोवर्णित) सरस चिन्तन करता हुआ रस-राशि कालिन्दी के सुभग तट पर विचरण करे।।२।।

नवल रँगीले श्री युगल नित्य नव-नव विलासों में रमण करते हुए अपार आनन्द में निमग्न रहते हैं। वे कभी तो मन्द मुसकान-मयी परस्पर की सुन्दर चितवन का दर्शन करते हैं, और कभी प्रिया की अनियारी कुन्तल राशि को सहलाते हैं, तो कभी प्रिया के उन्नत वक्षोजों के संस्पर्श पूर्वक अतिशय आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रिया के कुचों का संस्पर्श उनके हृदय में नवीन उत्साह की वृद्धि करता है और तब उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसावेश छा जाता है। वे अपनी प्रिया को सुदृढ़ प्रेमपाश में आबद्ध कर लेते हैं और तन्मय हो जाते हैं। उनकी कृपा-पात्र सखियाँ इस रस तल्लीन छवि-छटा का उत्फुल्ल नेत्र-कमलों से सतत् पान करती हुई भी कभी परितृप्ति का अनुभव नहीं करती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल नागर-नवल कोक की कलाओं में परम कोविद हैं।।३।।

दोहा

प्रेम-तृषा की बेलि कौ, केलि अदन-रस आहि।
परम रसिक नागर-नवल, पीवत जीवत ताहि।।४।।

कुण्डलिया

मदन केलि कौ खेल है, सकल सुखन कौ सार।
तेहि विहार रस मगन रहैं, और न कछू सँभार।।
और न कछू सँभार, हारि करि प्रान पियारी।
राखति उर पर लाल, नेकहूँ करति न न्यारी।।
याही रस कौ भजन तौ, नित्य रहौ 'ध्रुव' हिय-सदन।
कुंज-कुंज सुख-पुंज में करत केलि लीला-मदन।।५।।

प्रेम पिपासारूपी लता का पोषण करनेवाला रस, श्री युगल की अधरामृत-पान-केलि है, एवं यही रसिक-शिरोमणि, रस-विदग्ध युगल का जीवनाधार है।।४।।

उनका यह उज्ज्वल शृङ्गारमय-विहार समस्त सुखों का सार है, इस सुख-विलास में ही यह रसिक युगल नित्य-निरन्तर लीन रहते हुए बाह्य ज्ञान-शून्य हो जाते हैं। प्रेम-विवश प्रियतम की चेतना जब शिथिल होने लगती है, तब श्री प्रिया उन्हें लाड़ पूर्वक अपने हृदय से आलिङ्गित कर पल-मात्र को भी विलग नहीं करना चाहती हैं। इस रसमयी उपासना का भजन जो सहज रूप से वृन्दावन की सघन कुञ्जों में रस-राशि युगल की मदन-केलि के रूप में नित्य उल्लसित है, वह रसिकों का सुरुचिपूर्ण आधेय एवं उपास्य तत्त्व है। श्रीहित ध्रुवदास प्रार्थना करते हैं कि श्री युगल की यह प्रेममयी छटा नित्य मेरे हृदय में विराजमान् रहे।।५।।

दोह

केलि-बेलि फूली रहति, चितवनि, मुसकनि, फूल।
तेहि लागे छबि-फल उरज, ढ़ाँपे प्यार-दुकूल।।६।

कुण्डलिय

प्रेमहि शील सुभाव नित, सहजहि कौंमल बैन।
ऐसी तिय पिय-हीय में, बसति रहौ दिन-रैन।।
बसति रहौ दिन रैन, नैन सुख पावत अति ही।
प्रिया प्रेम-रस भरी, लाल तन चितवति जब ही।।
देखौ यह रस अति सरस, बिसरावत सब नेम ही।
''हित ध्रुव' रस की रासि दोउ, दिन बिलसत रहैं प्रेम ही।।७।

केलि लता-रूपी प्रिया में चितवन एवं मन्द मुसकान के दो पुष्प सद विकसित रहते हैं। उस लता में ही छबि-सार युग-उरोज रूपी दो फल भ शोभित हैं, जिनका प्रेमरूपी वस्त्र ही आच्छादन है।।६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम ही जिनका शील एवं स्वभाव है तथ स्नेह-स्निग्ध कोमल वाणी ही जिनकी सहज प्रकृति ह, ऐसी प्रेममर्य नवल-लाड़िली, प्रियतम के हृदय-पटल पर सदैव विराजित रहें। प्रियतम व हृदय-धाम पर सुशोभित प्रिया जब अनुराग-रञ्जित नयन-कोरों से प्रियत की ओर कटाक्षपात करती हैं, तब वह उनके लिए अपरिमित सुख-दायिन होती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रस-निधि युगल नित्य-निरन्तर जिर प्रेममय विलास का आस्वादन करते हैं, वह अतिशय सरस है तथा समस्त नियम-धर्मों को विस्मृत कराने वाला है।।७।।

दोहा

एकै सहज सुभाव बन्यौ, एकै विधि सब भाँति।
एक रंग-रुचि एक रस, एकै बात सुहाति।।८।।

कुण्डलिया

सीस-फूल झलकान छबि, चंद्रिका की फहरानि।
'ध्रुव' के हिय में बसत रहौ, बिबि चितवनि मुसकानि।।
बिबि चितवनि मुसकानि, रहौ यौं उर में छाई।
तिहिं रस केवल मनहिं, और कछुवै न सुहाई।।
या शोभा पर वारियै, कोटि-कोटि रति-ईस।
रीझि-रीझि नख-चंद्रकनि, जब लावत पिय सीस।।९।।

अद्वय युगल नवल लाड़िली-लाल का स्वभाव भी सर्वदा एक जैसा ही सम रहता है। इनके विहार की रीति एवं प्रवृत्ति भी एक ही है। रङ्ग-रुचियाँ भी एक सी ही हैं और दोनों का रसास्वादन भी अभिन्न एवम् एकसा ही है।।८।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि शीश-फूल की जगमग ज्योति, मन्द-मन्द थिरकती हुई चन्द्रिका की छबि तथा ईषद् हास्यमयी चितवन की मनोरम छटा, हृदय में सदैव झलकती रहे। युगल की चितवन एवं मुसकान हृदय-पटल पर इस प्रकार छाई रहे कि इस महामिष्ट रसास्वाद विशेष के अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ रुचिकर न लगे। कोटि-कोटि रति-काम-विनिंदक छबि तो वह होती है, जब रसिक प्रियतम, प्रिया-चरण की नख-द्युति शोभा पर मुग्धभाव से बारम्बार अपना मस्तक उन चरणों पर रखते हैं।।९।।

दोह

सीस फूल सिखि चंद्रिका, सदा बसौ मन मोर।
अरु जब चितवति लाड़िली, पिय तन नैंननि कोर।।१०।

कुण्डलिय

ऐसैं हिय में बसत रहौ, नव-किसोर रस-रासि।
चितवनि अति अनुराग की, करत मंद मृदु हाँसि।।
करत मंद मृदु हाँसि दोउ, होत जु प्रेम प्रकास।
छके रहत मदमत्त गति, आनँद मदन विलास।।
'हित ध्रुव' छबि सौं कुंज में, दै अंसनि-भुज वैसे।
मेरी मति इति नाहिं, कहौं उपमा दै ऐसे।।११।

शीश-फूल एवं मयूर-चन्द्रिका की झलक तथा उस समय की छबि ज लाड़िली प्रिया अपनी कनखियों से प्रियतम की ओर देखती हैं, सदा-सर्वद मेरे हृदय में बसी (समाई) रहे।।१०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि वह छवि मेरे हृदय में नित्य प्रतिबिम्बि रहे, जब रसनिधि नवल किशोर हास-परिहास परायण होते हैं, उस सम की उनकी चितवन सरस अनुराग-भीनी होती है। उनके उस मधुर हास्य विनो में भी हार्दिक प्रीति का प्रकाश होता है। प्रेम-छके ये किशोर नव-दम्पति अनङ्ग-क्रीड़ा के विविध विलासों में प्रेमोन्मत्त बने रहते हैं एवं निभृत-निकुञ्ज -स्थल में भुजाओं को परस्पर स्कन्धों पर न्यस्त किये हुए प्रेम-छके ये मिथु किशोर नित्य-नवीन शोभा से युक्त होते हैं। उस समय उनकी अनुपम शोभ की उपमा देने के लिए मेरी मति सर्वथा असमर्थ है।।११।।

दोहा

नव-किसोर चितचोर दोउ, परम-रसिक सिर-मौर।
ऐसैं हिय में मिलि रहौ, बचै नहीं कहुँ ठौर।।१२।।

ृष्ट परत्व कुण्डलिया

श्री राधावल्लभ लाल की, बिमल धुजा फहरंत।
भगवत धर्महुँ जीति कैं, निजु प्रेमा ठहरंत।।
निजु प्रेमा ठहरंत, नेम कछु परसत नाहीं।
अलक लड़े दोउ लाल, मुदित हँसि-हँसि लपटाहीं।।
'हित ध्रुव' यह रस मधुर है, सार कौ सार अगाधा।
आवै तबहीं हीय में, कृपा करैं वल्लभ राधा।।१३।।

पुनः श्री ध्रुवदास जी प्रार्थना करते हैं कि हे नवकिशोर चितचोर, परम सिक सिरमौर! मेरे हृदय में ऐसे आपूरित रहो कि कहीं कोई स्थान ही ोष न रहे।।१२।।

नवनिभृत निकुञ्ज विलासी नित्य विहारी अवतारी श्री राधावल्लभ लाल की तत्सुखमयी निष्काम रति विषयक उपासना रूपी परमोज्ज्वल ध्वजा, उपासना के विस्तृत आकाश में समस्त भागवत धर्मों पर विजय प्राप्त करके सहज प्रेम-लक्षणा में स्थित हुई, समुन्नत भाव से फहरा रही है। प्रेम-लक्षणा ार स्थित इस रसोपासना में आचार, नियम, जप, तप आदि कर्मानुष्ठानों का ावेश भी नहीं है; जिस प्रेम-देश में विलक्षण लाड़िले युगल मुदित भाव से ालिङ्गित हैं, वहाँ नेम-धर्मों के लिए स्थान ही कहाँ है। श्री ध्रुवदास जी कहते ि कि श्री राधावल्लभ लाल का यह मधुर-रस अत्यन्त गम्भीर तो है ही, समस्त उपासनाओं का सर्वोपरि सारातिसार भी है। उपासक के हृदय में इस रस की स्थापना कृष्ण-वल्लभा श्री राधा की कृपा से ही सम्भव है।।१३।।

दोहा

महामाधुरी प्रेम निजु, आवै जिहिं उर माहिं।
नवधा हूँ तिहि रुचै नहिं, नेम सबै मिटि जाहिं।।१४।।

प्रार्थना कुण्डलिया

श्रीराधा वल्लभ-लाड़िली, अति उदार सुकुमारि।
"ध्रुव" तौ भूल्यौ ओर ते, तुम जिनि देहु बिसारि।।
तुम जिनि देहु बिसारि, ठौर मोकौं कहुँ नाहीं।
पिय रँग-भरी कटाक्ष, नेकु चितवौ मो माहीं।।
बढ़ै प्रीति की रीति, बीच कछु होइ न बाधा।
तुम हौ परम प्रवीन, प्रान-वल्लभ श्रीराधा।।१५।।

श्री राधावल्लभ लाल के प्रेमरस-विलास की महामाधुरी जिस किसी उपासक के हृदय में स्फुरित होती है, उसकी कर्म-निष्ठाएँ समाप्त हो जाती हैं तथा उसके लिए विधि-मार्गीय नवधाभक्ति भी अरुचिकर प्राय हो जाती है।।१४।।

प्रियतम की लाड़-गहेली उदार शिरोमणि सुकुमारी हे श्री राधे ! आपका यह 'ध्रुवदास' अनादिकाल से ही आपको भूला हुआ है, किन्तु आप इसे मत भुला देना। यदि आप भी इसे भुला देंगी तो फिर इसे अन्यत्र कहीं कोई स्थान ही नहीं है, अतएव प्रियतम के प्रेम से छकी हुई रसभरी चितवन से इस दीन ध्रुवदास को अपनी कृपामयी दृष्टि द्वारा कृतार्थ कीजिए, जिससे आपके चरणों में निरन्तर प्रीति की वृद्धि होती रहे एवं समस्त बाधाएँ निवृत्त हो जायँ। किमधिकम्, हे प्रियतम प्राणवल्लभा श्री राधे ! आप तो सर्वज्ञ एवं परम विचक्षणा है।।१५।।

दोहा

अतिहि मृदुल नागर-नवल, करुनासिंधु अपार।
ऐसै सील सुभाव पर, "ध्रुव" कीन्हौं बलिहार।।१६।।

वृन्दावन-वास की विधि — कुण्डलिया

वृंदाविपिन निमित्त गहि, तिथि बिधि मानैं आन।
भजन तहाँ कैसे रहै, खोयौ अपनै पान।।
खोयौ अपनै पान, मूढ़ कछु समुझत नाहीं।
चंद्रमनिहिं लै गुहै, काँच के मनियनि माहीं।।
जमुना-पुलिन निकुंज-घन, अद्भुत है सुख कौ सदन।
खेलत लाड़िली-लाल जहँ, ऐसौ है वृंदाविपिन।।१७।।

हे नवयुगल श्री लाड़िली-लाल! आप अतिशय सुकोमल एवं अपार करुणा-वरुणालय हैं। आपके ऐसे उदार शील-स्वभाव पर ध्रुवदास ने अपने आप को न्यौछावर कर दिया है।।१६।।

यदि कोई अल्पज्ञ नित्य विहारमय श्री वृन्दावन के दिव्य स्वरूप को न पहचान कर उसे निमित्त-धर्मों में सम्मिलित करता है अथवा अन्यान्य तिथिविधियों को महत्त्व देता है, तो वह अपने ही हाथों रसमय भजन का तिरस्कार करता है। सरस भजन रूपी मणि को खोने वाला वह नासमझ इतना बुद्धिहीन है कि चन्द्रकान्त मणि रूपी वृन्दावन को काँच की सामान्य मनिकाओं (तिथि-विधि आदि) के साथ गुम्फित कर रहा है। जो श्री वृन्दावन यमुनातटवर्ती निभृत-निकुञ्ज भवन की अद्भुत प्रेम-क्रीड़ा-सुख का धाम है एवं जहाँ ललित लाड़िली-लाल निरन्तर क्रीड़ा परायण हैं, उसे निमित्त धर्मों में मिलाना बड़ी अज्ञता है।।१७।।

दोहा

है अनन्य इक-रस गहै, वृंदावन रस-रीति।
विधि-निषेध मानै न कछु, करै भजन सौं प्रीति।।१८।।

उद्‌बोधन कुण्डलिया

बार-बार तो बनत नहिं, यह संजोग अनूप।
मानुष तन, वृंदाविपिन, रसिकनि-सँग, बिबिरूप।।
रसिकनि-सँग बिबिरूप, भजन सर्वोपरि आही।
मन दै "ध्रुव" यह रंग, लेहु पल-पल अवगाही।।
जो छिनु जात सो फिरत नहिं, करहु उपाइ अपार।
सकल सयानप छाँड़ि भजु, दुर्लभ है यह बार।।१९।।

अतएव रसिक उपासक को चाहिये कि वह अनन्य-भाव से श्री वृन्दावन की रस-रीति का दृढ़तापूर्वक निर्वाह करे, एवं विधि-निषेधादिक धर्मों को कदापि स्वीकार न करे, केवल रसमय भजन से ही प्रेम रखे।।१८।।

मानव देह, वृन्दावन धाम, रसिक भक्तों का सङ्ग एवं अद्भुत रूप-लावण्य धाम ललित युगल श्री श्यामा-श्याम की इष्टता, इन चारों का एक सङ्ग प्राप्ति-संयोग जीवन में अनेक बार नहीं घटित होता। रसिकों का सङ्ग एवं युगल रूप की आराधना ही सर्वोपरि भजन है, अतएव सर्वात्म-समर्पण भाव से इस भजन-रस का निरन्तर अवगाहन करना चाहिये। जीवन का जो क्षण व्यतीत हो जाता है, वह अनेक उपाय करने पर भी लौट कर नहीं आता, अतएव समस्त चातुर्य को छोड़कर श्री श्यामाश्याम का भजन ही करना चाहिये; क्योंकि यह सुअवसर अत्यन्त दुर्लभ है।।१९।।

दोहा

भजन-रंग सतसंग मिलि, वृंदावन सो खेत।
एक कृपा तें जुरैं "ध्रुव" याकै चहियै हेत।।२०।।
दस दोहा, दस कुँडलिया, कुंडल भजन कौ आहि।
बाहर पाँव न दीजियै, छिनु-छिनु यह अवगाहि।।२१।।
भजन कुँडलिया में रहौ, पग बाहिर जिनि देहु।
एकै जुगल-किसोर सौं करि 'ध्रुव' सहज सनेहु।।२२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसमय भजन का आनन्द, रसिक सन्तों का सङ्ग एवं श्री वृन्दावन जैसे क्षेत्र में वास, केवल कृपा-साध्य है, अतएव इस सुन्दर सुयोग के महत्त्व को समझना चाहिये।।२०।। इस ग्रन्थ में दस दोहे एवं दस कुण्डलिया-छन्दों की रचना ही भजन-कुण्डल है, अतएव रसिक उपासक को चाहिये कि प्रतिक्षण इसका अवगाहन करे एवं भजन-कुण्डली के भीतर ही रहे, इसकी सीमा का उल्लङ्घन न करे।।२१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि हे उपासको ! आप भजन रूपी कुण्डली (घेरे) के भीतर ही निवास करो। कुण्डली से एक पग भी बाहर मत जाओ और स्थिर-भाव से केवल श्री लाड़िली-लाल युगल किशोर से सहज प्रीति करो।।२२।।

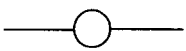

१३
भजनशत

मङ्गलाचरण — दोहा

श्री हरिवंश सरोज-पद, जो पै सेये नाहिं।
भजन रीति अरु प्रेम-रस, क्यौं आवै मन माहिं।।१।।
हरिवंश चंद अरविंद-पद, यह निज सर्वसु जानि।
'हित ध्रुव' मिथुन किसोर सौं, तिहिं बल ह्वै पहिचानि।।२।।

सेवा-अर्चा विधि — सोरठा

प्रेम सहित हुलसात, सेवा स्यामा-स्याम की।
कीजै मन इहिं भाँति, दिन-दिन अति अनुराग सौं।।३।।

दोहा

प्रथमहि मज्जन कीजियै, सौरभ अंग लगाइ।
ता पाछैं रचि-पचि करै, सुंदर तिलक बनाइ।।४।।

परात्पर प्रेम तत्त्व के प्रकाशक रसिकाचार्य गोस्वामी श्री हित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु के चरण-कमलों की प्रपत्ति के बिना रसमय-भजन की प्रीति-प्रणाली एवं उपासक के हृदय में तत्सुखमय उज्ज्वल प्रेम का उदय कदापि सम्भव नहीं है।।१।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई भाग्यशाली हित स्वरूप श्री हरिवंश चन्द्र के युग पादारविन्द को अपना परम सर्वस्व मानेगा, वही अपनी इस प्रीति-निष्ठा के सम्बल से युगल-किशोर से सम्बन्धित हो पायेगा।।२।।

श्री श्यामा-श्याम की सेवा प्रेमोल्लसित चित्त से करनी चाहिये एवं मन को निरन्तर अनुराग-पूर्ण बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।।३।। सेवक को चाहिये कि सर्वप्रथम अपने शरीर पर सुगन्धित तैलादि स्नेह-द्रव्य मर्दन करके स्वच्छ सुरभित जल से अभ्यङ्ग स्नान करे, तत्पश्चात् ललाट-पटल पर सुरुचिपूर्ण सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक की रचना करे।।४।।

दोहा

तिय के तन कौ भाव धरि, सेवा हित सिंगार।
जुगल-महल की टहल कौ, तब पावै अधिकार।।५।।
नारी किंवा पुरुष हो, जिनिकै मन इह भाव।
दिन-दिन तिनकी चरन-रज, लै-लै मस्तक लाव।।६।।
दुलहिनि-दूलहु छबि झलक, तहँ राखै दोउ नैन।
भाव तरंगनि मन रँगै, सुनत मधुर मृदु बैंन।।७।।
लाल-लड़ैंती केलि कल, अद्‌भुत प्रेम-विलास।
तिनहीं के रँग रँगि रहै, सब ते होइ उदास।।८।।
मन की दृढ़ता हेत लगि, कही भजन की रीति।
सुनै हिये के श्रवन दै, तब उपजै निजु प्रीति।।९।।

रसिक भक्त अपने आप को पञ्चभूत देह से विलग मान कर, दिव्य सहचरी भाव से भावित होकर युगल की हितमयी सेवा के लिये स्वयं को शृङ्गारित करे; तभी उसे श्री युगल किशोर के नव-निकुञ्ज महल की टहलिनी का अधिकार प्राप्त होगा।।५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार के सेवानुरागी, चाहे वे नारी शरीर किंवा पुरुष शरीरधारी हों, सभी वन्दनीय हैं। उनकी चरण-रज सदैव शिरोधार्य करनी चाहिये।।६।। उपासक को चाहिये कि वह श्री श्यामा-श्याम की सरस छबि-छटा का दर्शन करता रहे, उनकी पारस्परिक मधुमय वचनावली को श्रवण करता हुआ अपने मन को भाव-तरङ्गों से रञ्जित करे।।७।। बाह्य जगत से उपराम होकर कल केलिमय लाड़िली-लाल के प्रेम-विलास के चिन्तन में मन को रसान्वित करे।।८।। रसरीतिमय भजन की दृढ़-निष्ठा के लिये ही भजन सम्बन्धी विधि-विधानों का यहाँ निर्देश किया गया है। इसका मनोयोग पूर्वक श्रवण करने से भी हृदय में प्रीति का उदय होगा।।९।।

दोहा

(श्री) राधावल्लभ-रूप रस, करहु नैन-मग पान।
प्रेम सहित निजु-केलि गुन, करि रसना दिन गान।।१०।।
गदगद सुर नैंना सजल, दंपति-रस रहै भीन।
इहि गति वृंदा-विपिन में, फिरै प्रेम-तन-लीन।।११।।
नील-पीत अंचल झलक, नैननिं में रहौ नित्त।
जावक जुत नख-चरन-जुग, सदा बसौ "ध्रुव" चित्त।।१२।।

सोरठा

चलत रहौ दिन रैनि, प्रेम-वारि धारा नयन।
जागृत अरु सुख सैंन, चितै-चितै विवि कुँवर-छबि।।१३।।

क्रिया की अपेक्षा भाव की महत्ता दोहा

करत टहल बंदन अधिक, रंच प्रेम मन जौन।
ते तौ सब ऐसै भये ज्यौं सालन बिनु लौन।।१४।।

उपासक को श्री राधावल्लभ लाल के रूप के रस का नेत्र-मार्ग से पान करते हुए उनकी सहज लीला-केलि का वाणी द्वारा प्रीतिपूर्वक गान करते रहना चाहिये।।१०।। नव दम्पति श्री श्यामा-श्याम के प्रेम में विभोर हुआ रसिक-उपासक गद्‌गद स्वर सजल-नयन एवं प्रेमलीन दशा में वृन्दावन वीथियों में विचरण करे।।११।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री युगल के नील-पीत अञ्चल की झलक एवं उनके श्री चरणों की अलक्तक-रञ्जित-नखच्छटा सदैव उपासक के हृदय में बसी रहे।।१२।।

सोते-जागते प्रत्येक अवस्था में श्रीयुगल-किशोर की मंजुल छवि का ध्यान-दर्शन करते हुए अविरल अश्रुधारा ही प्रेमी-उपासक का जीवन होना चाहिये।।१३।।

यदि श्री लाड़िली लाल जी की अधिक सेवाएँ एवं प्रणाम नमनादि करते हुए भी मन में तनिक भी प्रेम-भाव नहीं है, तो वह सब क्रियाऐं ऐसे ही हैं, जैसे बिना लवण के शाक।।१४।।

'हित ध्रुव' निरखत नैंकु नहिं, वैभवता की ओर।
रंच प्रेम में अपुनपौ, हारत नवल-किसोर।।१५।।
साधन करत अनेक जौ, कोटि-कोटि जुग जाहिं।
तऊ न आवत प्रेम बिनु, रसिक कुँवर मन माहिं।।१६।।
एक प्रेम पैयत कुँवर, करहु जतन बहुतेर।
मन वच निश्चय जानि यह, एक ग्रंथि सौ फेर।।१७।।
नैन न झलक्यौ प्रेम जल, भई न तन-गति और।
तेहि उर कहौ कैसैं लसै, परम रसिक-सिरमौर।।१८।।
नव किसोर इक प्रेम बस, नाहिंन आन उपाइ।
अनेक चतुरई करौ किनि, बातैं कोटि बनाइ।।१९।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नवल किशोर प्रियतम श्री लाल जी किसी के ऐश्वर्य-वैभव से तनिक भी प्रभावित नहीं होते, किन्तु थोड़े से सत्य प्रेम पर रीझ कर वे अपने आप को भक्तों के हाथ बेच देते हैं।।१५।। कठोर साधनों का अनुष्ठान करते-करते चाहे कोटि युग ही क्यों न बीत जायँ किन्तु प्रेम-रहित चित्त में रसिक किशोर प्रियतम का आविर्भाव कदापि नहीं होता है।।१६।। यह बात सुनिश्चित है कि रसिक कुँवर की प्राप्ति केवल प्रेम से ही सम्भव है, प्रेम शून्य उपाय एवं साधनों से नहीं। यह सिद्धान्त सौ फेरों की एक गाँठ की भाँति मनसा-वाचा सर्वथा सत्य है।।१७।। जो हृदय कभी प्रेम में सरस न हुआ हो, जिन नेत्रों से कभी प्रेमाश्रु न ढले हों एवं प्रेमोद्रेक से जो कभी विह्वल न हुआ हो, उस हृदय में परम रसिक शिरोमणि श्री श्यामा-श्याम का प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है?।।१८।। नवल किशोर प्रियतम केवल प्रेम से ही वशीभूत हैं, अन्य उपायों से नहीं। अनेक प्रकार की कोटि-कोटि चतुराई भरी बातों से उन पर किञ्चित् भी प्रभाव नहीं पड़ता।।१९।।

दैन्य-भाव का महत्त्व दोहा

मन की गति यौं चाहियै, भयौ रहै दिन दीन।
रसिकनि की पदरज तरैं, लुठत सदा ह्वै लीन।।२०।।
सहजहिं जल अरु प्रेम कौ, एक सुभावहिं जानि।
चलत अधिक तेहि ठाँव कौं, पावत जहाँ निवानि।।२१।।
देखौ अद्‌भुत प्रेम फल, सब ते ऊँचौ आहि।
सीस करै जब चरन तर, तब पहुँचै कर ताहि।।२२।।
वैभव-सुख ध्रुव जहाँ लगि, छत्रधार सत अर्व।
प्रेम-गरीबी सहज पर, वारि डारि 'ध्रुव' सर्व।।२३।।
जब लगि मन चंचल भयौ, फिरत विषय-सुख माहिं।
तब लगि दंपति-चरन सौं, होत प्रेम छिन नाहिं।।२४।।

रसिक-उपासक की मनः स्थिति सदैव दैन्य-भाव युक्त विनम्र होनी चाहिये, वह अहङ्कार-शून्य भाव से रसिक महापुरुषों की चरण-धूलि में सदैव विलुण्ठित होता रहे।।२०।। प्रेम और जल की प्रकृति एक सी है कि वह जहाँ कहीं ढलान किंवा विनम्रता देखता है, वहीं अधिकाधिक प्रवाहित होने लगता है।।२१।। प्रेम का अद्‌भुत फल, वृक्ष की बहुत ऊँचाई पर लगा हुआ है; विलक्षण बात यह है कि अहङ्कार-शून्य भाव से अपने मस्तक को रसिक जनों के चरणों में रखने से ही वह फल हस्तगत होता है।।२२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अनेकशः चक्रवर्ती सम्राटों का जहाँ तक अटल वैभव विस्तार है, वह एक सहज प्रेम-दैन्य पर न्यौछावर है।।२३।। जब तक यह मन चञ्चल हुआ विषय-सुखों के पीछे भटकता रहेगा, तब तक उसे नवल श्री लाड़िली-लाल के चरणों में किञ्चित् भी अनुरक्ति नहीं होगी।।२४।।

रसिक-सङ्ग की महिमा दोहा

मन गति चंचल सबनि तें, उपजत छिन सतरंग।
आवत तबहीं हाथ जौ, रसिकनि कौ होइ संग।।२५।।
भयौ न रसिकन संग जौ, रँग्यौ न मन रँग प्रेम।
पारस बिन परसे कहौ, होत लोह तें हेम।।२६।।
जब लगि मन गज खुभत नहिं, प्रेम-पंक में आइ।
तब लगि पाँचौं रिषिनु के, सुख में रहत समाइ।।२७।।

सोरठा

रसिकनि के रहि संग, रे मन आन विचार तजि।
नैननिं कौ लै रंग, मिथुन-रूप-रस रंगि कै।।२८।।

यह मन अत्यन्त चपल है, इसमें प्रतिक्षण अनेक सङ्कल्प-विकल्पों का सृजन होता रहता है। इसको वशवर्ती करने का एक ही उपाय है कि प्रेमी, रसिक-भक्तों का सङ्ग करे।।२५।। रसिक भक्तों के सङ्ग के अभाव में एवं प्रेम रङ्ग में रँगे बिना मन वश में नहीं होता, जैसे पारस मणि के स्पर्श के बिना लौह-धातु कदापि स्वर्ण-रूप में परिवर्त्तित नहीं होती।।२६।। जब तक मन रूपी मत्त गयन्द, प्रेम रूपी पङ्क में खुभता नहीं है, तब तक पाँचों इन्द्रियों के ही सुखों में आसक्त रहा आता है।।२७।।

हे मेरे मन! तू अन्य प्रकार के साधनों का त्याग करके केवल रसिक सन्तों का ही सङ्ग कर, एवं उन रसिकों के नेत्रों में युगल-किशोर का जो प्रेम-रङ्ग छाया हुआ है, उस रूप-रस से तू अपने आप को रँग ले।।२८।।

दोहा

रे मन रसिकनि-संग बिनु, रंच न उपजै प्रेम।
या रस कौ साधन यहै, और करौ जिनि नेम।।२९।।
दंपति-छवि में मत्त जे, चाहत दिन इक-रंग।
हित सौं चित चाहत रहौ, निशि-दिन तिनकौ संग।।३०।।
झूलत झूमत फिरै दिन, घूमत दंपति-रंग।
भाग पाइ छिन एक जौ, पैयत तिनकौ संग।।३१।।
सेवा अरु तीरथ-भ्रमन, फलत हैं कालहि पाइ।
भक्त-संग छिन एक में, लेत भक्ति उपजाइ।।३२।।
जिनकै हियै बसत रहैं, (श्री) राधावल्लभ लाल।
तिनकी पद रज धोइ 'ध्रुव' पीवत रहु सब काल।।३३।।

हे मेरे मन! यह निश्चित है कि रसिकों के सङ्ग-बिना प्रेम-छटा का लेश भी प्राप्त नहीं हो सकता है, प्रेम-रस की प्राप्ति का एकमात्र साधन रसिक सन्तों का सत्सङ्ग ही है।।२९।। अतएव इसके अतिरिक्त अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। उपासक को नव-दम्पति की छवि में नित्य छके हुए एवं रूप में छके रहने की इच्छा वाले रसिक महानुभावों के सङ्ग की ही वाञ्छा करनी चाहिये।।३०।। जो रसिक सन्त श्री श्यामा-श्याम नव-दम्पति की प्रेम-मदिरा में छके सदैव प्रेमोन्मत्त दशा में विचरण करते रहते हैं, एक क्षण का भी उनका सङ्ग असीम भाग्योदय है।।३१।। श्री हरि के दिव्य मङ्गल-विग्रहों की सेवा एवं पावन तीर्थों का स्नान-दर्शन दीर्घ कालोपरान्त फलीभूत होता है, किन्तु रसिक-भक्तों का सङ्ग क्षणभर के दर्शन-मात्र से ही हृदय में भगवद्-भक्ति उत्पन्न करने में समर्थ है।।३२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिनके हृदय में श्रीराधावल्लभलाल का निरन्तर निवास है, उन रसिक-भक्तों की चरण-धूलि प्रक्षालित करके उसका सदैव सेवन करते रहना चाहिये।।३३।।

महा मधुर सुकुमार दोउ, जिनके उर बसे आनि।
तिनहूँ तें तिनकौं अधिक, निश्चय करि 'ध्रुव' जानि।।३४।।
जिनकै जाने जानियै, युगल-चंद-सुकुमार।
तिनकी पद-रज सीस धरि, 'ध्रुव' कै यहै अधार।।३५।।

सोरठा

तृन सम सब ह्वै जाहिं, प्रभुता सुख त्रैलोक की।
उपजै या मन माहिं, अद्‌भुत रंचक प्रेम जब।।३६।।

अनन्य रस-भजन की महिमा दोहा

मन बच धरै अनन्य व्रत, करत भजन रस-रीति।
तेई भावत स्याम-मन, 'हित ध्रुव' मानत प्रीति।।३७।।

वे पुनः कहते हैं कि मधुरातिमधुर सुकुमार युगल जिनके हृदय में स्वयं आ बसे हैं, निश्चित ही उन रसिक-भक्तों को अपने इष्ट श्री श्यामा-श्याम से भी अधिक बड़ा मानना चाहिये।।३४।। जिनके कृपा-प्रसाद से परम सुकुमार युगल-किशोर के प्रेममय स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है, उन रसिक-भक्तों की चरण-धूलि को मस्तक पर धारण करना ही रसोपासक का परम धर्म है; क्योंकि यही रसोपासना का एकमात्र अवलम्ब है।।३५।।

उपासक के हृदय में प्रेम की एक किरण के प्रकाशमात्र से त्रिलोकी का समस्त ऐश्वर्य एवं सुख सभी कुछ तृणवत् तुच्छ हो जाता है।।३६।।

जो व्यक्ति मन-वाणी से अनन्य व्रत धारण करके रसरीतिमय भजन में संलग्न होता है, वह रसिक-शेखर श्यामसुन्दर का प्रीति भाजन बन जाता है।।३७।।

पिय-प्यारी के पद-कमल, निसि-वासर करि ध्यान।
रे मन भजन-अनन्य में, मिलवहु मति कछु आन।।३८।।
(श्री) राधावल्लभ लाल से, परम रसिक-सिरमौर।
ते पद छाँड़े मूढ़ मति, खोजत फिरै कछु और।।३९।।
ज्ञान, धर्म, व्रत, कर्म में, देत है मन अज्ञान।
करत आस तंदुलनि की, कूटत है तुस-धान।।४०।।
(श्री) राधावल्लभ लाल-जस, जिहि उर नाहिं सुहात।
देखौ ते नर मंद-मति, करत आप अपघात।।४१।।
संजम, व्रत, सतमख करत, वेद-पाठ, तप, नेम।
इन करि हरि पैयत नहीं, बिनु आये उर प्रेम।।४२।।

श्री ध्रुवदास जी मन को सावधान करते हुए कहते हैं कि हे मन! तू श्री लाड़िली-लाल के चरण-कमलों का ही अहर्निश ध्यान करता रह एवं अनन्य-भजन की परिपाटी में अन्य कुछ सम्मिलित मत कर।।३८।। असमोर्द्ध रूप-लावण्य धाम श्री राधावल्लभ लाल जैसे रसिक चूड़ामणि ठाकुर का चरणाश्रय छोड़कर कोई मोह-मुग्ध मूढ़ ही होगा जो सुख की आशा लिये इतस्ततः भटकता फिरता है।।३९।। परम सुख की अभिलाषा लिये यदि कोई अज्ञानी, ज्ञान (अद्वैतवाद), धर्म, व्रत एवं कर्मादिक में मन दिये हुए है, तो उसका प्रयास उसी प्रकार निष्फल है, जिस प्रकार की तन्दुल (चावल) की आशा लिये कोई धान के छिलके को कूट रहा हो।।४०।। श्री राधावल्लभ लाल का सरस यश-रस जिसे प्रिय नहीं लगता, वह मन्द-बुद्धि मनुष्य ही आत्मघाती है।।४१।। इन्द्रिय-निग्रह, व्रत, अश्वमेधादि यज्ञ, वेदपाठ, तपश्चर्या एवं कठोर नियमादि का पालन करने पर भी उपासक के हृदय में प्रेमोदय के बिना श्री हरि की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।।४२।।

कर्म-धर्म मत अमित कै, त्याग, सांख्य-विधि, योग।
माया-उदधि प्रवाह में, दियौ बहाइ सब लोग।।४३।।
तहाँ जु नौका कर परै, भक्ति विमल-रस-सार।
तिहि पर भक्तनि-कृपा-बल, चढ़त सुलभ ह्वै पार।।४४।।
जे अनुसरत हैं ज्ञान पथ, निबटत बिरला कोइ।
तेहि साधन कौ फल यहै, मुक्ति जीव की होइ।।४५।।
कर्म-श्राद्ध में कुशल जे, पितर-लोक ते जाहिं।
भक्त गनत नहिं मुक्ति कौं, और लोक किहि माहिं।।४६।।
कर्म-धर्म में करहु जिनि, भगवत भजन मिलाइ।
सिंह-सरन गहि मूढ़ मति, स्यार-सरन कित जाइ।।४७।।
बड़ी मूढ़ता गही जिय, लई लोक की लाज।
पाछौ गर्दभ कौ गह्यौ, चढ़े बड़े गजराज।।४८।।

कर्म, धर्म, त्याग, साङ्ख्य एवं अष्टाङ्ग योगादि अनेक साधनों ने जीव को भक्ति-विमुख बना कर माया-समुद्र की उत्ताल तरङ्गों में बहा दिया है।।४३।। अपार संसार समुद्र में भटकते हुए मनुष्य के लिए रसमयी भक्ति की विमल नौका ही परमाश्रय है, जिस पर आरूढ़ होकर भक्तों के कृपा-बल से सहज ही इस भव-सागर से पार हुआ जा सकता है।।४४।। ज्ञान मार्ग का अनुसरण करने वालों में कोई विरला ही लक्ष्य की प्राप्ति कर पाता है और उस ज्ञान-साधन का फल है जीव की आत्यन्तिक मुक्ति।।४५।। श्राद्धादिक-कर्मों में निष्ठा रखने वाले की गति पितृ-लोक तक ही सीमित है, किन्तु भगवद्भक्त पितृ-लोक तो क्या, मोक्ष को भी महत्त्व नहीं देते हैं।।४६।। विशुद्ध भगवद्भजन में अन्यान्य कर्म-धर्मादिकों का समावेश भगवद्भक्ति के महत्त्व को न्यून बनाने वाला है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई मन्दमति मनुष्य मृगराजसिंह का आश्रय त्याग कर शृगाल का आश्रय ले।।४७।। जो लोग विशुद्ध भगवद्भजन का व्रत लेकर भी लोक लज्जा-वश लौकिक कर्म-धर्मादिकों का त्याग नहीं कर पाते, उनके लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि

विधि-निषेध के बंध हैं, और धर्म मृग मानि।
केहरि पुनि बिनु बंधनहि[१], भगवत धर्महि जानि।।४९।।
यदपि विषय इंद्रियन बस, भक्त अनन्य जो होइ।
कर्मठ कोटि जितेंद्रियन, तेहि सम सर नहिं कोइ।।५०।।
श्रुति, पुरान-विधि, स्मृति बहु, अलप आयु यह काल।
लेहु सार गहि हंस जिमि, बिमल भजन-नँदलाल।।५१।।
रीति भजन की यहै 'ध्रुव', छाँड़ै सब की आस।
युगल-चरन की सरन गहि, मन में धरि विश्वास।।५२।।

लौकिक-धर्मों को वरीयता देना ऐसी ही बड़ी मूढ़ता है, जैसे कोई गजराज पर सवार होकर गधे का अनुगमन करे।।४८।। अन्यान्य सभी धर्म, वैदिक विधि-निषेधादिक बन्धनों से बँधे हुए सामान्य पशुओं की भाँति हैं, किन्तु भागवतधर्म सिंह की भाँति सदा निर्बन्ध है।।४९।। यदि कोई अनन्य हरि-भक्त पूर्व संस्कार वश इन्द्रिय-सुखों में आसक्त है, तो भी वह कोरे जितेन्द्रिय एवं कर्म-निष्णात कर्मठ व्यक्ति से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वह भगवद् प्रपन्न है।।५०।। इस कठिन कलिकाल में अल्पायु मनुष्य श्रुति, स्मृति, पुराण एवं अन्यान्य विधि-विधानों में उलझ कर कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकेगा, उसे चाहिये कि वह सार-ग्राही राजहंस की भाँति आनन्द कन्द नन्दनन्दन के भजन का ही आश्रय ले। क्योंकि सर्वशास्त्रों का यही एक तात्पर्य है।।५१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि विशुद्ध भगवद्-भजन की रीति यह है कि सर्व-प्रथम युगल-किशोर श्री श्यामा-श्याम की शरण-ग्रहण करे, उनके श्री चरणों का पूर्ण विश्वास रखे और उनके सिवाय अन्य सब की आशाओं का परित्याग कर दे।।५२।।

पाठान्तर-१ केहरि पुनि निर्बन्ध है,

भक्तिहि-अंतर कौं रचै, नाना विधि के फंद।
चित्त-भ्रांति सब दूर करि, करौ भजन आनंद।।५३।।
नाना विधि सब भजन के, तिनहिं भजत सब कोइ।
जो है जाकी भावना, सिद्ध सोइ पै होइ।।५४।।
भुवन चतुर्दश नाहिं सुख, भक्तनि-पद समतूल।
माया-कौतिक जो कछू, सो है सब दुख-मूल।।५५।।

अभिलाषा दोहा

सो दिन कबहूँ आइहै, मन दुर्वासना जाहिं।
सरस चित्त अहनिस फिरौं, सघन विपिन के माहिं।।५६।।
भक्त प्रकार अनेक बिधि, मन-मन औरै बात।
जे भीजें विपिन-विहार-रस, तिनहिं न और सुहात।।५७।।

लोक एवं वेद के विविध मार्गों का आचरण भक्ति विषयक उपासना का अन्तराय है, अतएव उन सब दिशाओं से निराश होकर एवं उनकी उपेक्षा करके निर्भ्रान्त चित्त से केवल श्री हरि का ही निष्काम भजन करना चाहिये।।५३।। भजन के बहुत प्रकार हैं और भक्त भी अनेक प्रकार के हैं, जिन भक्तों की जैसी भावना है, तदनुसार उन्हें वैसे ही फल की प्राप्ति होती है।।५४।। भक्तों के श्री चरणों के समतुल्य चौदह भुवनों का सुख नहीं है। यदि कहीं किसी को कोई सुख दीखता है, तो वह सुख मांया-जन्य कौतुक एवं दुःख-मूल है।।५५।।

क्या जीवन में कभी वह शुभ दिन भी आयेगा, जब मनोगत दुर्वासनाओं का नाश हो कर मैं अहर्निश सरस चित्त से रस घन वृन्दाविपिन में विचरण करता होऊँगा।।५६।। भक्तों के अनेक प्रकार हैं और उनकी मनोगत भावनाएँ एवं लक्ष्य भी विविध भाँति के होते हैं, किन्तु जो अनन्य भक्त वृन्दावनीय युगल-केलि रस के रसिक हैं, उन्हें वृन्दावनीय युगल-विहार रस के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं सुहाता।।५७।।

जे सेवत वृंदाविपिन, युगल कुँवर रस ऐंन।
ते बैकुंठ सुखादि तन, चितवत नहिं भरि नैंन।।५८।।
नौतन वैस किसोर छबि, बसति है जिहि उर नित्त।
पौगँड बाल लीलादिहू, भावत नहिं तेहि चित्त।।५९।।
सकल भजन के माहिं है, 'हित-ध्रुव' यह रस सार।
नवल-किसोर सु नव-कुँवरि, करत हैं विपिन-विहार।।६०।।
नवल-प्रिया छवि बसत रहौ, इहि बिधि नैंननि माहिं।
निकसत सघन लतानि ते, धरे कंठ पिय बांहिं।।६१।।
नीलांचल रह्यौ अरुझि कै, कनक लतनि सौं आहि।
या छबि सौं कब निरखिहौं, पिय निरवारत ताहि ।६२।।
नवल कुंज नव सहचरी, नवल खगादि कुरंग।
सब नवलनि में नवल दोउ, करत केलि सुख रंग।।६३।।

जो भक्त वृन्दावन विहारी रसमूर्त्ति युगल श्री श्यामा-श्याम के उपासक हैं, वे वैकुण्ठ के सुखों की ओर भी भर आँख नहीं देखते।।५८।। जिस रसिक भक्त के हृदय में नव किशोर वपु श्री लाड़िली-लाल सदैव विराजते हैं, उसके चित्त में तो श्री कृष्ण की पौगण्ड, बाल-लीला आदि की भी विशेष रुचि नहीं रह जाती।।५९।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि समस्त भजनों का सार है, युगल किशोर श्री श्यामा-श्याम का नित्य विहारमय भजन।।६०।। मेरे नेत्रों में नवलप्रिया श्री राधा की यह ध्यान-छवि सदैव विराजित रहे कि वे प्रियतम के कण्ठ में अपनी ललित बाहुलता अर्पित किये हुए वृन्दावन की सघन लता-कुञ्जों से होकर निकल रही हैं।।६१।। प्रिया का नील-निचोल सघन कुञ्ज की स्वर्ण-लताओं में उलझ गया है, जिसे प्रियतम श्री लाल सुलझा रहे हैं, ऐसी छबि-छटा का दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगा।।६२।। श्री वृन्दावन की कुञ्जें नित्य नूतन हैं। सहचरी एवं खग-मृगादि भी नित्य-नवीन हैं। तहाँ इस नित्य नवीन परिकर के मध्य नवल युगल नित्य नवकेलि परायण रहते हैं।।६३।।

अद्भुत सुख रस-सार में, कब ह्वै है मन लीन।
'ध्रुव' अँखियाँ तहँ यौं रहौ, ज्यौं जल में गति मीन।।६४।।
इहि बिधि गति ह्वै है कबहुँ, और न कछू सुहाइ।
वृंदावन-सुख-रंग में, रहै चित्त ठहराइ।।६५।।
सकल बात घट तैं घटौ, मन की वृत्ति अनेक।
वृंदा-विपिन विहार रस, यहै बढ़ौ उर एक।।६६।।
बिबस दसा विहरत रहौं, अद्भुत सुखहि विचारि।
नैन सजल ह्वै कैं ढरैं, सोभा विपिन निहारि।।६७।।
जिनके मन 'ध्रुव' रचि रहे, वृंदावन सुख-रंग।
तेहि सुख कौं जानत सोइ, डोलत भए मतंग।।६८।।

इस परम विलक्षण अपरिमित आनन्द सुख में कब मेरा यह चित्त तन्मय होगा ? श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे युग नेत्र कब इस रस रूपी जल में मीन की भाँति निमग्न होंगे ?।।६४।। क्या कभी मेरे मन की स्थिति ऐसी होगी कि मुझे वृन्दावन-विहार के अतिरिक्त अन्य कुछ रुचिकर नहीं लगेगा एवं मेरा चित्त दृढ़-भाव से केवल वृन्दावन के रस में ही अचल रूप से स्थिर हो जायेगा।।६५।। मेरे हृदय की समस्त कामनाओं के साथ-साथ मन की सारी वृत्तियाँ समाप्त होकर केवल वृन्दावन-विहार रस ही वृद्धि को प्राप्त होता रहे।।६६।। मेरी अभिलाषा है कि मैं नित्य-विहार के विलक्षण सुख के चिन्तन में लीन, प्रेम-विवश दशा को प्राप्त हुआ, वृन्दावन की शोभा को निहारते हुए कुञ्ज-वीथियों में विचरण करता रहूँ।।६७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिनके मन वृन्दावन के आनन्द रङ्ग से रँगे हुए हैं एवं जो प्रेमोन्मत्त गजराज की भाँति वृन्दावन की कुञ्जों में भ्रमण करते रहते हैं, वे ही इस अपूर्व सुख के अनुभवी हैं।।६८।।

'हित ध्रुव' जब लगि प्रान हैं, आनहु जिनि कछु चित्त।
परम रसिक विवि कुँवर वर, हियैं लड़ावहु नित्त।।६९।।
ऐसै रसिक-किसोर तजि, भजत मंद-मति आन।
कौन देह खोवत वृथा, समुझत नहिं कछु हान।।७०।।

श्री वृन्दावन की महिमा एवं अनन्य-भाव दोहा

जे नर वृंदा-विपिन तजि, अनतहि मन लै जात।
कंचन तजि गहि काँच कौं, फिरि पाछैं पछितात।।७१।।
धावत वृंदा-विपिन तजि, जे जन आन विचारि।
अति ही दुर्लभ ठौर यह, तातें कढ़ियत मारि।।७२।।
दुर्लभ वृंदा-विपिन है, राख्यौ सब तें गोइ।
तेहि ठाँ पावै रहन क्यौं, भाग-हीन जो होइ।।७३।।

वे पुनः कहते हैं कि जीवन-पर्यन्त मन में अन्य किसी को स्थान दिये बिना नित्य-निरन्तर परम-रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल का ही लाड़ करना चाहिये।।६९।। जो मन्द बुद्धि लोग रसिक युगल किशोर से वञ्चित होकर अन्य किसी और का भजन करते हैं, वे इस मानव देह को तो व्यर्थ खो ही रहे हैं अपितु इस बात की कल्पना नहीं कर पाते कि वे अपनी कितनी हानि कर रहे हैं।।७०।।

जो मनुष्य वृन्दावन को छोड़कर अपना मन अन्यत्र कहीं ले जाता है, मानो वह स्वर्ण का परित्याग करके काँच के टुकड़ों का संग्रह करता है और अन्त में पश्चात्ताप करता है।।७१।। जो लोग किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर वृन्दावन-रज का परित्याग कर अन्य देशों में चले जाते हैं, मानो वे अनधिकारी होने के कारण इस अलौकिक भूमि से निष्कासित कर दिये जाते हैं।।७२।। श्री वृन्दावन धाम परम गोप्य एवं देव-दुर्लभ धाम है, अतएव भक्तिभाव-विहीन अभागा व्यक्ति यहाँ कैसे रह पायेगा?।।७३।।

करत हैं विविध-विहार तहाँ, परम रसिक सिरमौर।
वृंदावन बिनु चित्त में, आनहु जिनि कछु और।।७४।।
जे नर निंदत मंद-मति, वृंदावन कौ बास।
सुपनेहुँ परस न कीजियै, तजि 'ध्रुव' तिनकौ पास।।७५।।
दुर्लभ निधि देखत सुनत, सो आवत उर नाहिं।
जिनि धर्मनि में कष्ट बहु, हठ ठानत मन माहिं।।७६।।
पाँचौ इंद्री साधि कै, योग, मौन-व्रत लीन।
देखौ भजन-अनन्य बिनु, बाद वृथा श्रम कीन।।७७।।
ह्वै आवैं या देह तें, कैसेहुँ दोष विसाल।
जो है एक अनन्य-व्रत, तजत न ताहि गोपाल।।७८।।
ज्यौं घरनी है अति बुरी, पति नहिं छाँड़त वाहि।
देखत ही पर-पुरुष तन, तजत तिही छिन ताहि।।७९।।

जिस अलौकिक प्रेम धाम वृन्दावन में श्री प्रिया-लाल की सरस प्रेम-केलि नित्य सम्पादित है, उस वृन्दावन के अतिरिक्त अन्य कुछ चित्त में नहीं लाना चाहिये।।७४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो बुद्धिहीन व्यक्ति वृन्दावन-वास की निन्दा करते हैं, उनकी समीपता तो त्याग ही देनी चाहिये; क्योंकि वे स्पर्श के योग्य भी नहीं है।।७५।। नित्य विहारमयी वृन्दावन जैसी अगम अगोचर परम निधि की दुर्लभता, दर्शन एवं महिमा-श्रवण के पश्चात् भी जिसको हृदयङ्गम नहीं हो पाती, उसी अज्ञानी का कष्ट-साध्य धर्माचरणों के प्रति दुराग्रह होता है।।७६।। जो इन्द्रिय-निग्रह पूर्वक अष्टाङ्ग योग एवं मौन-व्रत का साधन करते हैं, वे रसमय भजन के अभाव में व्यर्थ ही श्रम कर रहे हैं।।७७।। इस मानव-देह से कैसा भी जघन्य अपराध क्यों न हो जाय, तो भी उस अनन्य-व्रती भक्त का ठाकुर श्री गोपाल लाल कभी परित्याग नहीं करते।।७८।। जैसे किसी की पत्नी बहुत बुरी होने पर भी पति उसका त्याग नहीं करता, किन्तु यदि वह पत्नी पर पुरुष की ओर दृष्टि भी डाल देती है, तो पति उसे तत्काल छोड़ देता है।।७९।।

बिनु अटके मन पद-कमल, जेहि छिन रहत हैं प्रान।
देखियत पसु विहरत मनौं, जीवत मृतक समान।।८०।।
विवि-किसोर छवि रंग जो, नैन न भींजे नेह।
अरु मन भयौ न मैन सो, तो निष्फल गई देह।।८१।।

प्रसाद-महिमा दोहा

बिन अर्पे जे जो कछू, ते लागत हैं खान।
देखौ तिहि अपराध कौ, कहँ लगि कहौं प्रमान।।८२।।
जल हूँ भूलि न पीजियै, बिनु लीन्हें निजु नाम।
ऐसी जौ उपजै मनहिं, तौ पावै सुख धाम।।८३।।
(श्री) राधावल्लभ लाल कौं, रुचि सौं जेंवाबहु नित्त।
सो जूँठन लै पाइयै, और न आनहु चित्त।।८४।।

श्री राधावल्लभ लाल के श्री चरणों की आसक्ति एवं स्मरण से रहित जीवन का प्रत्येक क्षण व्यर्थ है। वह व्यक्ति मृतक-तुल्य है तथा उसका जीवन-व्यापार पशुवत् विचरण जैसा है।।८०।। यदि युगल किशोर की छबि छटा माधुरी के रङ्ग में ये नेत्र स्नेहसिक्त नहीं हुए और मन प्रेम-ताप से द्रवीभूत नहीं हुआ तो यह मानव देह की प्राप्ति निष्फल चली गई, ऐसा मानना चाहिये।।८१।।

प्रभु को समर्पित किये बिना जो कुछ मिले, वह सब खा-पी लेना बहुत भारी अपराध है, इसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा है।।८२।। इष्ट के नाम का स्मरण किये बिना तो जल भी ग्रहण नहीं करना चाहिये, इस प्रकार की निष्ठा बन जाने पर अपूर्व सुखानुभूति होती है।।८३।। श्री राधावल्लभ लाल को नित्य प्रति रुचिपूर्वक उत्तमोत्तम व्यञ्जन भोग लगाने चाहिये एवं वही उच्छिष्ट प्रसाद भी ग्रहण करना चाहिये। प्रसाद के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं लेना चाहिये।।८४।।

सुनि 'ध्रुव' धर्मी आन सौं, कबहुँ न कीजै वाद।
सब ते दिनहि निशंक है, लीजै महा प्रसाद।।८५।।
रे मन लागत भोग जब, कीजै तब न विचार।
सब प्रसाद लै पाइयै, व्यौरौ भेद निवार।।८६।।
जौ है मन विश्वास 'ध्रुव', तब सुधरै सब बात।
नातरु माया-पंथ में, फिरत जु टक्कर खात।।८७।।

भजन की दृढ़ता के लिये प्रेरणा दोहा

ज्यौं चातक स्वाती बिना, परसत नहिं जल और।
दृढ़ता यौं मन चाहियै, फिरै न बहुतै ठौर।।८८।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रसाद के सम्बन्ध में अन्य मतावलम्बियों से कभी विवाद नहीं करना चाहिये। अपनी निष्ठा के अनुसार संशय-रहित होकर सदैव महाप्रसाद ही ग्रहण करना चाहिये।।८५।। वे कहते है, "हे मेरे मन ! श्री जी के भोग लग जाने के पश्चात् प्रत्येक वस्तु प्रसाद-रूप हो जाती है, उसमें अन्न, फलादि का भेद नहीं करना चाहिये। समस्त ऊहापोह एवं विचारों को छोड़कर महाप्रसाद को सदैव अङ्गीकार करना चाहिये।।८६।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं यदि मन में उपासना सम्बन्धी सिद्धान्तों पर निष्ठा एवं विश्वास है, तो सब दोष निवृत हो जायेंगे, अन्यथा विश्वास के अभाव में संशयात्मा जीव माया-पथ में भ्रमित होता रहेगा।।८७।।

जैसे चातक स्वाति नक्षत्र के बिना किसी अन्य जल का स्पर्श नहीं करता, तद्वत् उपासक का भी मन सुनिश्चित एवं अटल होना चाहिये। इधर-उधर भटकने वाला नहीं।।८८।।

बिच-बिच दुख-सुख देह के, है आवत अनियास।
भजन-पंथ ते डिगहु जिन, मन में राखि हुलास।।८९।।
बिपति काल ब्यौहार में, माया-मोह समीर।
डुलवत बहु बिधि चित्त कौं, टिकै सोई जो धीर।।९०।।
प्रभुता संपति के भयैं, मन इंद्रिन बस होइ।
परम धीर बिनु कैसैं हूँ , राखि सकै नहिं कोइ।।९१।।
परतहि प्रेम प्रवाह में, रहत सरस दिन चित्त।
दुख-सुख संपति-विपति के, तृन सम पैयत कित्त।।९२।।
अल्प बुद्धि कल्पत कछू , भक्तनि चरन-प्रताप।
इहि बिधि जौ मन अनुसरै, जाहिं विविध तन-ताप।।९३।।

अनायास कभी-कभी जीवन में देह सम्बन्धी सुख-दुःखादि के अवसर आ जाते हैं; उस समय उपासक का कर्त्तव्य है कि मन में उत्साह लिये अपने भजन में स्थिर रहे।।८९।। व्यवहार क्षेत्र एवं विपत्ति काल में माया-मोह रूपी पवन चित्त को अनेक प्रकार से दोलायित करता है, जो ऐसे समय में विचलित नहीं होता, वही धैर्यवान् उपासक है।।९०। धन-सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के बाहुल्य में बहुधा मन इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है, ऐसे विषम अवसरों में कोई बिरला धैर्यवान् विवेकी पुरुष ही अपने को सावधान रख पाता है।।९१।। प्रेम-प्रवाह में पड़ते ही चित्त की स्थिति सरस हो जाती है। तब सम्पत्ति-विपत्ति से उत्पन्न सुख दुःखादि तृणवत् तुच्छ हो जाते हैं एवं सुख-दुःखादि की प्रतीति ही नहीं होती।।९२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार हरि-भक्तों की महिमा का यत्किञ्चित् गान करना चाहता हूँ। यदि उपासक का मन मेरी इन बातों का अनुसरण कर सके, तो निश्चित ही उसके अन्तर्बाह्य समस्त तापों का शमन हो जायेगा।।९३।।

सोरठा

भक्तनि सौं अभिमान, प्रभुता भयैं न कीजियै।
मन बच निश्चय जान, इहि सम नहिं अपराध कछु।।९४।।

दोहा

सकल आयु सत-कर्म में, जो पै बितई होई।
भक्तनि कौ अपराध इक, डारत छिन में खोइ।।९५।।
और सकल अघ मुचन कौं, नाम उपाइ है नीक।
भक्त-द्रोह कौ जतन नहिं, होत बज्र की लीक।।९६।।
निंदा भक्तनि की करैं, सुनत हैं जे अघरासि।
वे तौ एकहिं संग दोउ, बँधत भानु-सुत पासि।।९७।।
भूलिहुँ मन दीजै नहीं, भक्तनि-निंदा ओर।
होत अधिक अपराध यह, यौं मत जानहु थोर।।९८।।

प्रभुता एवं ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर भक्तों से अहङ्कारमय व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह निश्चित् है कि इससे अधिक महत् अपराध और कोई नहीं है।।९४।। यदि किसी ने जीवन पर्यन्त शुभ कर्म ही किये हैं, तो भी भक्तों के प्रति किया हुआ छोटा सा अपराध उसके समस्त पुण्य-कर्मों को पलभर में विनष्ट कर देता है।।९५।।

समस्त पापों का मोचन एक भगवन्नाम से हो जाता है, किन्तु भक्त के प्रति किये गये अपराध का विमोचन करने में वह नाम भी समर्थ नहीं है, क्योंकि भक्तद्रोह जैसा जघन्य अपराध वज्र की रेखा के समान अमिट है।।९६।। जो पाप-राशि मनुष्य भक्तों की निन्दा करते हैं एवं श्रवण करते हैं वे दोनों ही एक साथ यमराज के हाथों बाँधे जाते हैं; अर्थात् नरकों में ही उनकी गति है।।९७।। अतएव, भूलकर भी कभी भक्तों की निन्दा में रुचि नहीं लेनी चाहिये। यह बहुत बड़ा अपराध है, ऐसा जानना चाहिये।।९८।।

सेवा करत में भक्त जन, होइ प्राप्त जौ आइ।
सो सेवा तजि बेगि ही, अरचहु तिनकौं जाइ।।९९।।
भक्तनिं देखे अधिक ही, आदर दीजै प्रीति।
यह गति जो मन की करै, जाइ सकल जग जीति।।१००।।
जाति-अभिमान न कीजियै, भक्त-जननिं सौं भूलि।
सुपच आदि दै हौंहिं जौ, मिलियै तिन सौं फूलि।।१०१।।

उद्बोधन कुण्डलिया

बहुत गई थोरी रही, सोऊ बीती जाइ।
'हित ध्रुव' बेगि बिचारि कै, बसि वृंदावन आइ।
बसि वृंदावन आइ, लाज तजि कै अभिमानै।
प्रेम लीन ह्वै दीन, आपकौं तृन सम जानै।
सकल भजन कौ सार, सार तू करि रस-रीती।
रे मन देखि बिचारि, रही कछु इक बहु बीती।।१०२।।

भक्तों की महिमा यहाँ तक है कि भगवद्-अर्चा के समय भी यदि किसी सन्त-भक्त का तुम्हारे घर पर आगमन हो जाय, तो भगवद्-अर्चा को कुछ समय के लिये स्थगित कर के आगन्तुक भक्त की अभ्यर्थना करनी चाहिये।।९९।। भक्तों के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हुए उन्हें आदर एवं प्रेम प्रदान करना चाहिये। मन की ऐसी निर्मल स्थिति बन जाने पर उसे सर्वत्र विजय-श्री प्राप्त होती है।।१००।। उच्चकुल में जन्म लेने पर भी हरि-भक्तों से भूलकर भी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्वपचादि निम्न वर्णों में जन्मे हुए भक्तों से भी हर्षोत्फुल्ल भाव से मिलना चाहिये।।१०१।।

जीवन का बहुत समय तो व्यतीत हो चुका है और शेष जो बचा है, वह भी निकला जा रहा है, अतएव आप विवेक-विचारपूर्वक शीघ्र ही वृन्दावन में आकर निवास करें। श्री वृन्दावन का वास करके लोक-लज्जा एवं अभिमान का त्याग कर दें। स्वयं को तृणवत् तुच्छ समझते हुए दीनता पूर्वक युगल के प्रेम में लीन हो जायँ। समस्त भजन-विधाओं में श्रेष्ठ वृन्दावन के भजन की रीति में अपने आपको समर्पित कर दें।।१०२।।

सोरठा

वृंदावन रस रीति, रहै विचारत चित्त 'ध्रुव'।
पुनि जैहै वय बीति, भजियै नवल-किसोर दोउ।।१०३।।

दोहा

दुर्लभ मानुष देह यह, पैयत कैसैहुँ भाँति।
सोई खोयौ कौन नग, बाद भजन बिनु जाति।।१०४।।
विषया जल में मीन ज्यौं, करत कलोल अग्यान।
नहिं जानत ढिंग काल बक, रह्यौ ताकि धरि ध्यान।।१०५।।
ज्यौं मृग मृगयिन संग में, फिरत मत्त मन बाँधि।
जानत नाहिंन पारधी, रह्यौ काल सर साँधि।।१०६।।

अरे मन ! अब तू यह समझ ले कि अब जीवन थोड़ा सा ही शेष रह गया है, अतएव इस समय भजन में लग कर इसे सार्थक कर। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उपासक, अपने मन में श्री वृन्दावन की रसमयी उपासना का सदा चिंतन करता रहे, क्योंकि आयु व्यतीत हुई जा रही है एवं उसका एक ही सदुपयोग है कि नवल लाड़िली-लाल का भजन कर लिया जाय।।१०३।।

न जाने किस पुण्य-परिपाक से यह देव-दुर्लभ मानव-देह प्राप्त होता है। इस अमूल्य मणि को अज्ञानी मनुष्य श्री हरि के भजन बिना वृथा खो देता है।।१०४।। जल में विहार करने वाले मत्स्य की भाँति अज्ञानी मनुष्य निरन्तर विषय-सुखों में लीन रहता है। वह यह नहीं जानता कि समीप काल रूपी बगुला उसे ग्रसने के लिये ध्यान लगाए बैठा है।।१०५।। जिस प्रकार हरिण अपनी हरिणियों में आसक्त एवं मत्त हुआ भटकता रहता है और उसे यह ज्ञात नहीं हो पाता कि मृत्यु रूपी बहेलिया उसका वध करने के लिये शर-सन्धान किये हुए बैठा है, माया-मुग्ध मनुष्य की भी ठीक यही स्थिति है।।१०६।।

निसि बासर कर कतरनी, लियैं काल करवाहि।
कागद सम भई आयु हो, छिन-छिन कतरत ताहि।।१०७।।
जेहि तन कौं सुर आदि दै, ईछत रहैं दिन आहि।
सो पायौ मति हीन तैं, वृथा गँवावत ताहि।।१०८।।
रे मन प्रभुता काल की, करहु जतन ह्वै ज्यौं न।
तू फिरि भजन कुठार सौं, काटत ताही क्यौं न।।१०९।।
पुरुष सोई जो पुरीष सम, छाँड़ि भजै संसार।
विपिन-भजन गहि हृदै दृढ़, तजि कुटुंब परिवार।।११०।।
सुख में सुमरै नाहिं जौ, (श्री) राधावल्लभ लाल।
तब कैसैं मुख कहि सकत, चलत प्रान जेहि काल।।१११।।

काल रूपी दर्जी हाथ में कैंची लिये जीवधारियों की आयु को कागज की भाँति प्रतिपल कतर रहा है।।१०७।। हे मानव! जिस मानवदेह प्राप्ति की वाञ्छा देवता भी करते हैं, वह तुझे सहज प्राप्त हो गया है, किन्तु तू बुद्धिहीन है, जो इस श्रेष्ठ जन्म को भगवद्भजन के बिना व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है।।१०८।। हे मन! तू यह प्रयत्न क्यों नहीं करता जिससे तुझ पर काल की महिमा का अधिक प्रभाव न पड़े। भजन रूपी कुठार ले कर काल के प्रभाव को नष्ट क्यों नहीं करता है।।१०९।। वास्तव में वही पुरुष पुरुष है, जो संसार को त्याज्य वस्तु, मल की भाँति त्याग कर दृढ़तापूर्वक श्री वृन्दावन के रसमय भजन में लग जाय एवं कुटुम्ब-परिवार की आसक्तियों का त्याग कर दे।।११०।। यदि तूने सुख के दिनों में श्री राधावल्लभ लाल का स्मरण नहीं किया, तो अन्तकाल में प्राण-त्याग के समय तेरे मुख से प्रभु का नाम कैसे निकलेगा?।।१११।।

ढीठौ (ह्वै) करि बिनती दियौ, कंचन काँच बताइ।
इन में जाके मन रुचै, सोई लेहु उठाइ।।११२।।

उपसंहार

सोरठा

तब पावै रस सार, शुद्ध भजन आवै हियैं।
यातें कह्यौ विस्तार, भजन नसैनी प्रेम की।।११३।।

दोहा

यह रस तौ अति अमल है, रहौ बिचारत नित्त।
कहत-सुनत 'ध्रुव' भजन-सत, दृढ़ता ह्वै है चित्त।।११४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने विनम्रभाव से सत्यासत्य विवेक पूर्वक कञ्चन-काँच का भेद बताने जैसी धृष्टता की है। इनमें से जो रुचिकर हो उसे आप ग्रहण कर लें।।११२।।

'भजन शत' प्रकरण के विस्तारपूर्वक वर्णन का आशय है कि रस-सार शुद्ध भजन अर्थात् वृन्दावनीय रसोपासना नित्य-विहार हृदय में प्रकट हो, क्योंकि भजन ही प्रेम-प्राप्ति का सोपान है।।११३।।

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए पुनः श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह प्रेममयी उपासना तत्सुखमयी एवं पूर्णतया निष्काम है। उपासक निरन्तर इसका चिन्तन करता रहे। इस "भजन शत" ग्रन्थ का कथन-श्रवण करने से चित्त में भजन के प्रति दृढ़ आस्था का उदय होता है।।११४।।

❐

१४

शृङ्गार-शत (प्रथम शृङ्खला)

मङ्गलाचरण एवं प्रस्तावना— दोहा

(श्री)हरिवंश नाम 'ध्रुव' चिंतवत, होत जु हियैं हुलास।
जो रस दुर्लभ सबनि कौं, सो पैयत अनियास।।१।।
व्यास-नंद-पद कमल बल, सकल सुखन कौ सार।
रचि कीन्हौं सिंगार-सत, अद्‌भुत प्रेम-विहार।।१।।
बाँधी 'ध्रुव' गुन शृंखला, प्रथम चालिस अरु तीन।
दुतिय चालिस अरु तीसरी, द्वै पर चालिस कीन।।३।।
प्रथम शृंखला माहिं कछु, कह्यौ लाड़िली रूप।
निरखि लाल सखि रहे छकि, सो छबि अतिहि अनूप।।४।।

श्री हरिवंश नाम का स्मरण हृदय में उल्लास उत्पन्न करता है एवं सब से दुर्लभ नित्य-विहार रस का सहज स्फुरण कराता है।।१।। व्यास-नन्दन श्री हित हरिवंश के चरणों का सम्बल समस्त आध्यात्मिक सुखों का सार सर्वस्व है। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि मैं श्री हरिवंश-चरणों के प्रताप से ही अद्भुत् प्रेम विहार मय 'शृङ्गार शत' नामक ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ करना चाहता हूँ।।२।। मैंने इसकी तीन शृङ्खलाएँ आबद्ध की हैं। प्रथम शृङ्खला में तैंतालिस छन्द हैं, दूसरी शृङ्खला में चालीस एवं तीसरी में बयालीस छन्द हैं।।३।। प्रथम शृङ्खला में श्री लाड़िली के अनुपम सौन्दर्य एवं लावण्य का वर्णन है, जिसका दर्शन करके श्रीलाल जी प्रेम में छक जाते हैं।।४।।

श्री प्रिया जी की रूप-माधुरी एवं शृङ्गार-छबि दोहा

छिन-छिन नेह कटाक्ष जल, सींचत पिय-हिय ऐंन।
भाग पाइ जौ कबहुँ 'ध्रुव', या सुख सौं लगै नैन।।५।।

सवैया

कैसौ फव्यौ है नीलांबर सुंदर, मोहि लिये मन-मोहन माई।
फैलि रही छवि अंगनि कांति, लसै बहु भाँति सुदेस सुहाई।।
सीस कौ फूल सुहाग कौ छत्र, सदा पिय के मन कौं सुखदाई।
और कछू न रुचै ध्रुव पीय कौं, भावै यहै सुकुमारि लड़ाई।।६।।

कवित्त

(श्री) राधिकावल्लभ प्यारी फुलवारी माँझ ठाढ़ी,
फूलकारी सारी तन सोभित बनाव की।
लोचन विशाल बाँके अनियारे कजरारे,
प्रीतम के प्रान हरै हेरनि सुभाव की।।

श्रीप्रिया प्रतिक्षण अपने प्रेम-कटाक्ष रूपी जल से प्रियतम के हृदय-धाम का अभिसिञ्चन करती रहती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उपासक के नेत्र कभी भाग्यवशात् ही इस माधुरी-सार परम सुख में संलग्न हो पाते हैं।।५।। हे सखी । श्री प्रिया के गौर अङ्ग पर नील निचोल की शोभा कैसी फबी है, जिसने मनमोहन श्री लाल जी के मन को भी मोहित कर लिया है। उनके श्री अङ्गों की दीप्तिच्छटा चारों ओर प्रकाशित हो रही है, जो सब प्रकार से सुन्दर एवं सुहावनी है। श्री प्रिया के ललाट पर विराजित शीश-फूल उनके सौभाग्य का छत्र है, जो सदैव प्रियतम के मन को आह्लादित करने वाला है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम को इस छवि से अतिरिक्त अन्य कुछ भी रुचिकर नहीं है। वे तो सदैव ऐसी सुकुमारी लाड़िली प्रिया को लाड़ लड़ाने के अभिलाषी बने रहते हैं।।६।। प्रियतम श्याम सुन्दर की प्राण-प्रिया श्री राधा, पुष्प-वाटिका में खड़ी हैं। उनके श्री अङ्ग पर फूलों के कढ़ाव वाली

चूरी मखतूल नीलमनिन की कर बनी,
बेसरि सुदेस उर अँगिया कटाव की।
कुंदन की दुलरी अरु मोतिन के हार हियैं,
'हित ध्रुव' चारु चौकी लसत जराव की।।७।।
जरकसी सारी तन जगमग रही फबि,
छबि की छलक मनौं परी है रसाल री।
उज्वल सुरंग अनियारी कोर नैननिं की,
सीस फूल बैंदी लाल सोहै वर भाल री।।
रतन जटित नीलमनि चौकी झलमलै,
'हित ध्रुव' लसै उर मोतिन की माल री।
पानिप अनूप पेखैं भूली हैं निमेषैं देखैं,
मंद-मंद बेसर के मुक्ता की हाल री।।८।।

सुन्दर साड़ी शोभित हो रही है। उनके अनियारे कजरारे बाँके विशाल नयनों की भावमयी भङ्गिमा प्रियतम के प्राणों का आकर्षण कर रही है। उनकी कोमल कलाइयों पर चमकदार नीलमणियों की रेशमी चूड़ियाँ जगमगा रही हैं। नासिका के अग्रभाग पर नासा-मौक्तिक एवं वक्षस्थल पर कटावदार कञ्चुकी शोभा दे रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के हृदय-देश पर कुन्दन की दुलरी, मुक्ताओं के हार एवं मणिजटित सुन्दर चौकी शोभा की वृद्धि कर रही है।।७।। स्वर्णतारों से निर्मित सुनहरी जरकसी साड़ी प्रिया के अङ्गों पर जगमगाती हुई ऐसी लगती है, मानों रसमयी छबि की छलक उठ रही हो। उनके नेत्रों की कोर अनियारी, रतनारी एवं शुभ्र है। उनके सुन्दर ललाट पटल पर शीशफूल एवं अरुण बैंदी शोभित है। वक्षस्थल पर नील मणि जटित पदिक एवं मुक्तामाल झलमला रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की अद्भुत रूप लावण्यमयी छवि छटा एवं बेसर की थिरकन को देख कर नेत्रों को पलकें गिराना विस्मृत हो जाता है।।८।।

फबि रही सारी मृदु केसरी सुरंग अंग,
भींजी है फुलेल स्वच्छ सौंधे मोद में सनी।
खुल रही तामें आली अँगिया जँगाली गाढ़ी,
दमकत कंठ लर मोतिनु की द्वै बनी।।
मृगमद-बैंदी लसै प्रीतम के मन बसै,
बेसरि-झलक छबि बरषत है घनी।
मुसकनि मंद सुख-रंग के तरंग उठैं,
सोहने रसीले नैन सैंन में बिके धनी।।९।।
तनसुख सारी मिहीं भींजी है फुलेल माँहि,
तामें लाल अँगिया सुदेस कसनी कसी।
सौंधे सगबगे बार बन्यौ है सादौ सिंगार,
मुख पर डारौं वारि कोटि कंज औ ससी।।

परिमल की सुगन्ध-मोद से अनुरञ्जित केसरिया सुरङ्ग शाटिका प्रिया के अङ्ग में अति सुन्दर फबी है। उस साड़ी के साथ नीले रङ्ग की गाढ़ी कसी हुई कञ्चुकी एवं कण्ठ में मोतियों की दुलड़ी माला अति अपूर्व शोभामयी है। ललाट-पटल पर कस्तूरी की बिन्दी तो प्रियतम को बड़ी सुहावनी लगती है, एवं बेसर की झलक भी अपूर्व रङ्ग ला रही है। प्रिया की मन्द-मन्द मुसकान तो सुख की तरङ्गों का उद्वेलन करती रहती है एवं श्री प्रिया जी की सुहावनी रसभरी अपाङ्गच्छवि को देखकर तो प्रियतम बिक गये हैं।।९।। इत्र से भींगी झीनी तनसुख की साड़ी के साथ अरुण वर्ण की सुहावनी कसी हुई अँगिया, सुगन्ध भीनी केशराशि, सादा शृङ्गार एवं अनुपम मुख-छबि पर कोटि-कोटि कमलों की आभा एवं चन्द्र-द्युति न्यौछावर हैं। छबिमय चञ्चल रस भरे विशाल नयनों से प्रीतम की ओर देखकर अलबेली प्रिया जब अञ्चल की ओट ले मुस्करायी तो प्रियतम उस छबि-शोभा को देख आत्मविस्मृत हो निर्निमेष

चंचल छबीले बड़े सोहने रसीले नैन,
चितै नेकु अलबेली अंचल लै मंद हँसी।
'हित ध्रुव' बस भये देखत ही रह गये,
थिरकनि बेसरि की प्रीतम के मन बसी।।१०।।
काकरेजी सारी तन गोरैं कैसी सोभियत,
पीत अतरौटा सौं दुरंग छबि न्यारी है।
मुख की पानिप अति चंचल नैननि-गति,
देखैं 'ध्रुव' भूली मति उपमा कौं हारी है।।
बैंदी लाल नथ सोहै बन्यौ मोती मन मोहै,
बस भये पिय सुधि देह की बिसारी है।
गहैं द्रुम-डारी एक रहि गये ताकी टेक,
ऐसै बेस जब ते किसोरी जू निहारी है।।११।।
सुरँग कसूँभी सारी पहिरैं रँगीली प्यारी,
आली अलबेली भाँति रंग माहिं ठाढ़ी है।
केसरी सुरंग भीनी सौंधे सगबगी कीन्ही,
सोहै उर अँगिया कसनि उर गाढ़ी है।।

दृष्टि से देखते ही रह गये हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की बेसर की लोल छबि प्रियतम के मन में घर कर गई है।।१०।। देखो सखि, प्रिया के गोरे अङ्ग पर बैंगनी रङ्ग की साड़ी कैसी सुन्दर लग रही है। पीतवर्ण के लहँगा के साथ दोहरे रङ्ग की यह छबि अपने आप में विलक्षण है। उनके मुख की कान्ति एवँ अति चञ्चल नेत्र-गोलकों की गति निरुपम है, जिसे देखकर मति विस्मृत रह जाती है। लाल बैंदी, मनमोहनी मुक्तामयी नथ का दर्शन करके प्रियतम देह-विस्मृत हो गये हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब से प्रियतम ने ऐसे सुन्दर शृङ्गार में प्रिया की अनुपम छटा का दर्शन किया है, तब से वे एक द्रुम-शाखा को पकड़े हुए स्तम्भित भाव से खड़े हैं।।११।। हे सखि! रँगीली प्रिया ने आज चटकीली पलाश-कुसुम रङ्ग की साड़ी धारण कर रखी है और वे बड़े अलबेले ढङ्ग से आनन्द रङ्ग में भरी खड़ी हैं। उनके

फैलि रही अरुनाई तैसी 'ध्रुव' तरुनाई,
मानौं अनुराग रूप में झकोर काढ़ी है।
बदन झलक पर परी है अलक आइ,
देखि पिय नैननिं ललक अति बाढ़ी है।।१२।।

सवैया

सारी सुरंग सुही अति झीनी, सुगंध सौं भींनी महा सुखदाई।
रची चुनि प्रान समान सुजान ने, फूलनि-मोदहु ते मृदु माई।।
भूलि रही मति की गति हेरत, जात नहीं उपमा 'ध्रुव' पाई।
रँगी पिय प्यारे के रंग मनौं ऐं कि, अंगनि रूप तरंगनि छाई।।१३।।
सारी हरी ने हर्‌यौ मन लाल कौ, मोहनी सोहनी के तन सोहै।
अंगिया लाल सुरंग बनी लहि, गातहि रंग खरौ मन मोहै।।

वक्षस्थल पर गाढ़ी कसी हुई केसरिया कञ्चुकी सुगन्ध से सगबगी है, जिससे सम्पूर्ण वन में उनके तारुण्य के अनुरूप अरुण आभा का प्रकाश हो रहा है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसा लगता है मानो मूर्तिमान रूप को अनुराग के रङ्ग में झकोर कर निकाला गया हो। प्रिया के लावण्यमय मुखमण्डल पर लटकी हुई झीनी अलक की शोभा ने प्रियतम के नेत्रों में दर्शनोत्कण्ठा का प्रवाह प्रवाहित कर दिया है।।१२।। हे सखि ! प्रिया की चटकीले लाल रङ्ग की झीनी एवं सुगन्ध से सनी साड़ी, जो पुष्प-पराग से भी कोमल एवं अत्यन्त सुखद है, सुजान प्रियतम ने अत्यन्त प्रीति एवं सावधानी पूर्वक प्रिया के लिये प्रस्तुत की है। उसकी सुन्दरता को देख कर बुद्धि पङ्गु हो जाती है और उसकी उपमा ढूँढ़े से भी नहीं मिलती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह साड़ी प्रियतम के अनुराग-रङ्ग में रँगी है अथवा प्रिया के अङ्गों में ही रूप की तरङ्गों का विस्तार हैं ? कुछ समझ में नहीं आता।।१३।। श्री प्रिया के तन में धारण की हुई सुन्दर हरी साड़ी ने श्री लाल के मन का हरण कर लिया है एवं चटकीले लाल रङ्ग की कञ्चुकी ने प्रिया के गौरवर्ण

रूप की रासि सबै गुन आगरि, या छबि की उपमा कहौ कोहै।
राजति है 'ध्रुव' कुंज बिहारिनि, सो छबि लाल पलौ पल जोहै।।१४।।

कवित्त

हँसनि में फूलनि की चाहनि में अमृत की,
नख-सिख रूप ही की बरषा सी होति है।
केसनि की चंद्रिका सुहाग अनुराग घटा,
दामिनी की लसनि दसन ही की दोति है।।
'हित ध्रुव' पानिप तरंग-रस छलकत,
ताकी मानौं सहज सिंगार सीवाँ पोति है।
अति अलबेली प्रिये भूषित भूषन बिनु,
छिन-छिन औरे और बदन की जोति है।।१५।।

का सामीप्य प्राप्त करके बड़ा निखार पाया है, अतः मन को मोहित कर रही है। समस्त गुण-आगरी रूपराशि नागरी श्यामा की छबि की किससे उपमा दी जाय ? श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि कुञ्जविहारिणी लाड़िली की निरुपम छबि में श्रीलालजी प्रतिपल अवगाहन करते रहते हैं।।१४।। श्री प्रिया जी का हास्य कुसुमनिर्झरण है एवं उनका अवलोकन सरस सुधा-प्रवाह है। उनके सर्वाङ्ग स्वरूप से रूप-सौन्दर्य की वर्षा होती रहती है। उनकी केश-राशि का विस्तार, सुहाग एवं अनुराग में उमड़ते मेघ के समान हैं। उनकी दसन-द्युति दामिनि की दमक के समान कान्तियुक्त है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के रूप में अद्भुत लावण्य पूर्वक रस की तरङ्गें छलकती रहती हैं एवं कण्ठ में धारण की हुई पोत की लड़ी शृङ्गार की परमावधि है। अनन्य लावण्य सौन्दर्यमयी प्रिया, भूषण-रहित होते हुए भी भूषणों से अलङ्कृत सी अधिक शोभामयी प्रतीत होती है, और उनके मुख-मण्डल की ज्योति प्रतिक्षण नित्य नवनवायमान होती रहती है।।१५।।

छबि सौं छबीली खरी प्रीतम के रसभरी,
कोटि-कोटि दामिनी न नख-छबि पावहीं।
चंद-कोटि मंद होत मोतिन की कहा जोति,
नेकु ही की चितवनि ढरे लाल आवहीं।।
देखत हैं रुचि लियैं मुख-सोभा चित दियैं,
परम प्रबीन प्यारौ रुचि लै लड़ावहीं।
'हित ध्रुव' छिन-छिन मैन के तरंग बढ़ैं,
प्रेम के हिंडोले चढ़े मदन झुलावहीं।।१६।।
गोरी मृदु अँगुरिन मैंहदी कौ रंग फब्यौ,
अतिहि सुरंग कंज दलनि लजावही।
मनिनु के बहुरंग हरित जँगाली छल्ले,
जिहि पोरी जैसै बने पिय पहिरावही।।

प्रियतम के प्रेम में रँगी, अद्भुत छबिछटा युक्त, रूप लावण्यमयी लाड़िली खड़ी हुई ऐसी शोभा को प्राप्त हैं कि उनकी नख-छबि की समता कोटि-कोटि दामिनियों की प्रभा नहीं कर पाती है। जिनके मुख-मण्डल की आभा के समक्ष अनेक चन्द्रमा भी निस्प्रभ हो जाते हैं, तब मुक्ता-द्युति की तो बात ही क्या है ? क्योंकि उनकी किञ्चिन्तमात्र रसमयी चितवन से आकृष्ट होकर प्रियतम स्वयमेव उनकी ओर ढले चले आते हैं। रूपासक्त रस-विदग्ध प्रियतम प्रिया का रुख लिये उनके सुन्दर रूप को निर्निमेष नयनों से जोहते रहते हैं तथा उनकी रुचि एवं प्रसन्नता के अनुसार उनका विविध लाड़-चाव किया करते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल में प्रतिपल मदन-रस उल्लसित होता रहता है और वही प्रेम के हिंडोले में उन्हें विराजित करके झुलाया करता है।।१६।। श्री किशोरी की गोरी-गोरी कोमल अङ्गुलियों में मेंहदी का रङ्ग अति अभिराम है, जिनकी लालिमा रक्त कमल-दलों को भी लज्जित कर रही है। नील मणियों से जटित एवं विविध रङ्गों की अङ्गुलिकाएँ यथाछबि प्रियतम

चितै छबि कर गहैं नैननि कौं छ्वाइ-छ्वाइ,
चूँमि-चूँमि माथे धरि आनि उर लावही।
'हित ध्रुव' निसि-दिन याही रस रहे पगि,
जिहि अंग मन परै तिहि सचु पावही।।१७।।
कंचन के वरन चरन मृदु प्यारीजू के,
जावक सुरंग रँगे मनहि हरत हैं।
'हित ध्रुव' रही फबि सुमिलि जेहरि-छबि,
नूपुर रतन-खचे दीप से बरत हैं।।
रीझि-रीझि सुंदर करनि पर पट धरैं,
आरसी सी लियैं लाल देखिबौ करत हैं।
नख-मनि-प्रभा प्रतिबिंब झलमलै कंज,
चंदनि के जूथ मानौं पायनि परत हैं।।१८।।

ने प्रिया की उन अङ्गुलियों में पहिना रखी हैं एवं उन कराङ्गुलियों की छबि को बारम्बार अपने ललाट एवं नेत्रों से स्पर्श करा के चूम-चूम करके हृदय पर धारण करते रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री लाल जी रात-दिन इसी रस में पगे रहते हैं। उनका मन प्रिया की जिस अङ्ग-छबि पर अटक जाता है, वहीं वे तन्मय एवं रसमग्न हो जाते हैं।।१७।। श्री प्रिया के कोमल चरण हेममयी आभा से युक्त हैं और अलक्तक रङ्ग से अनुरञ्जित होकर प्रियतम के मन को मोहते रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उन चरणों में जेहरि की छबि बड़ी सुन्दर फब रही है। रतन-खचित नूपुर दीपक की भाँति प्रकाशित हो रहे हैं। श्री लाल जी उनपर बारम्बार रीझ कर उन्हें अपने कर-कमलों पर पीताम्बर बिछा कर विराजमान् करके दर्पण की भाँति उन चरणों को निहारते ही रहते हैं। श्री प्रिया के नखमणि की उज्वल कान्ति लाल के कर-कमलों में प्रतिबिम्बित हो कर ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो किशोरी के चरणों पर चन्द्र-पुञ्ज विनत हो रहे हों।।१८।।

दोहा

अद्‌भुत पद पल्लव प्रभा, मृदु सुरंग छबि ऐंन।
छिन-छिन चूँवत प्यार सौं, रहत लाइ उर-नैन।।१९।।

प्रिया की छवि-माधुरी कवित्त

फूलि-फूलि रहे सब फूल फुलवारी में के,
रीझि-रीझि छबि आइ पाइनि में परी है।
लाड़िली नवेली अलबेली सुख सहज ही,
निकसि निकुंज तें अनूप भाँति खरी है।।
नख-सिख भूषन लावण्य ही के जगमगैं,
दीठि सौं छुवत सुकुमारताहू डरी है।
'हित ध्रुव' मुसिकनि हेरत बिकाइ रहे,
दामिनि की दुति अरु हीरनि की हरी है।।२०।।

अरुण छबि से युक्त सुकोमल चरण-पल्लवों की कान्ति अत्यद्भुत् शोभामयी है, जिन्हें श्री लाल जी प्रति पल चूमते हुए, अपने हृदय-पटल पर धारण करते हैं।।१९।।

पुष्प-वाटिका के सभी पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं। नवल लाड़िली सुकुमारी सहज प्रसन्न भाव से निकुञ्ज से निकल पर वहाँ आ कर खड़ी हुईं हैं। उनके सुष्ठु सौन्दर्य पर रीझकर मूर्तिमान छबि भी चरणों में विलुण्ठित होने लगी है। प्रिया का नख-शिख लावण्य ही भूषणों की भाँति जगमग-जगमग कर रहा है। सुकुमारी के अङ्गों का अपनी दृष्टि से स्पर्श करने में साक्षात् सुकुमारता भी सङ्कुचित हो रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि लाड़िली की मृदु मुसकान दामिनी की द्युति एवं हीरक मणियों की आभा को तिरस्कृत करने वाली है, जिसे देखकर प्रियतम बिना मोल के किङ्कर हो गये हैं।।२०।।

कुंजनि के आँगन में जहाँ-जहाँ पग धरैं,
छबि के बिछौना से बिछाये तहाँ जात हैं।
रंगभरी लाड़िली निपट अलबेली भाँति,
अलबेले लोइन न कैंहूँ ठहरात हैं।।
नई-नई माधुरी कौ सार है सुभाइनि में,
मुसकनि मानौं सुख-फूल बिगसात हैं।
सौंधे की सी बास 'ध्रुव' फैलि रही पहिलैं ही,
रूपनिधि पानिप के पुंज बरसात हैं।।२१।।
अलबेली चितवनि मुसिकनि अलबेली,
अलबेली चलनि ललन मन हर्‌यौ है।
वृंदावन-मही सब भई छबिमई आली,
पग-पग पर मानौं रूप झरि पर्‌यौ है।।

श्री वृन्दावन के विविध निकुञ्ज प्राङ्गणों में नवल लाड़िली जहाँ-जहाँ पदन्यास करती हैं, वहाँ छबि के आस्तरण से बिछाती जाती हैं। रसरङ्ग भरी लाड़िली- जिनकी लीला-गति परमाद्भुत् है, जिनके चपल नेत्र जैसे स्थिर होना जानते ही नहीं हैं, जिनके हाव-भाव में नित्य नवीन माधुर्य-सार का सञ्चार होता रहता है और जिनका मन्द स्मित मानो आनन्द-कुसुम का विकास है, जिनके आगमन के पूर्व ही श्री अङ्गों की दिव्य गन्ध प्रसरित होती चलती है, उन रूप-आगरी के आगमन पर तो लावण्य-पुञ्ज की वर्षा सी होने लगती है।।२१।। श्री लाड़िली की विलक्षण चितवन, मनमोहिनी मुसकान एवं ललित पदन्यास ने श्री लाल का मन हरण कर लिया है। उनके छबि-निर्झरण से वृन्दावन की समस्त भूमि छबिमयी बन गयी है। हे सखि ! ऐसा प्रतीत होता है मानो श्री प्रिया के अङ्गों की आभा ही कुन्दन बन कर चारों ओर प्रवाहित

कनक बरन भये पत्र-फूल द्रुमनि के,
आभा तन रही छाइ कुंदन सो ढरयौ है।
'हित ध्रुव' ऐसी भाँति झलकति तन काँति,
चितवत पिय चित नैकहूँ न टरयौ है।।२२।।
देखत छबीली जू की छबि छके छबि-निधि,
ऐसी छबि देखि आली दृग नहिं टारियै।
अलबेली चितवनि हँसनि ललन पर,
मानौं सुख पुंज रंग के प्रवाह ढारियै।।
छिन-छिन नई-नई छवि की तरंग छटा,
बिवस करत प्रान कैसै कैं सँभारियै।
'हित ध्रुव' प्यारी जू के चरन चिह्नि पर,
कोटि-कोटि रति दुति मोहनी सी वारियै।।२३।।
थिरकनि बेसरि के मोती की अनूप भाँति,
प्रीतम के नैना देखि अति ही लुभाने हैं।
तेहि छबि की समान देबैं कौं न कछू आन,
याही तें बिहारीलाल आपुही बिकाने हैं।।

हो रही हो। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की अद्भुत देह-कान्ति का दर्शन कर के प्रियतम का चित्त विस्मृत-गति हो गया है।।२२।। छबिमयी लाड़िली की मनोरम छबि का दर्शन करके सौन्दर्य-धाम प्रियतम अपलक दृष्टि से उन्हें देखते ही रह जाते हैं। तब ऐसा लगता है मानो अलबेली प्रिया अपनी चितवन एवं मृदु मुसकान के माध्यम से श्री लाल पर सुख-समूह के प्रवाह उँड़ेल रही हों। श्री लाड़िली की उज्जृम्भमाण छबि-छटा प्रियतम के प्राणों को उद्वेलित एवं प्रेम-विवश करती रहती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसी प्रिया के चरण-चिन्हों पर कोटि-कोटि रति एवं मोहनी की प्रभा न्यौछावर है।।२३।। श्री प्रिया की बेसर के मुक्ता की तरल गति अनुपम है, जिसे देखकर प्रियतम के नेत्र अतिशय लुब्ध हो रहे हैं। उस बेसर-छबि की

परे रूप-सिंधु माँझ जानत न भोर-साँझ,
'हित ध्रुव' प्रेम ही के रंग-रस साने हैं।
प्यारी जू के मिलिवे की तृपति न होत क्यौं हूँ,
कोटि-कोटि जुग एक सुख में बिहाने हैं।।२४।।

नेत्र-छबि कवित्त

बड़े बड़े उज्ज्वल सुरंग अनियारे नैना,
अंजन की रेख हेरैं हियरौ सिरात है।
चपलाई खंजन की अरुनाई कंजन की,
उजराई मोतिन की पानिप लजात है।।
सरस सलज्ज नये रहत हैं प्रेम भरे,
चंचल न अंचल में कैसैंहूँ समात हैं।।
'हित ध्रुव' चितवनि छटा जेहि कोद परै,
तेहि ओर बरसा सी रूप की ह्वै जात है।।२५।।

उपमा के लिये अन्य कुछ न पाकर श्री कुञ्जविहारी-लाल स्वयं ही बिक गये हैं। वे रूप के समुद्र में इतने निमग्न हो गये हैं कि उन्हें प्रातः -सायं काल का बोध नहीं रह गया है। कहने का आशय यह कि प्रेम के ही रङ्ग-रस में पग गये हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री प्रिया का नित्य मिलन संयोग होने पर भी उन्हें कभी तृप्ति का अनुभव नहीं होता एवं प्रिया के दर्शन-सुख में अनन्त कोटि युग का समय उनके लिये एक क्षण के समान प्रतीत होता है।।२४।।

लाड़िली के आयताकार विशाल नेत्र उज्ज्वल रतनारे एवं अनियारे हैं, जिनकी अञ्जन-रेखा को देखकर प्रियतम के नेत्रों के ताप का उपशमन हो जाता है। उन नेत्रों में खञ्जन पक्षियों की चपलता, कमल की अरुणिमा एवं मुक्ताओं के लावण्य का दर्शन कर के मूर्त्तिमान् लावण्य भी नतमस्तक हो जाता है। वे नेत्र सदैव प्रेम-रस नमित बने रहते हैं। उन नेत्रों की चञ्चलता अञ्चल पट में समाती नहीं है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की

अङ्ग-माधुरी कवित्त

कोल-पत्र सारी बनी सौंधे ही के मोद सनी,
चितै रहे स्याम धनी मानौं चित्र-ऐंन हैं।
आँगी नील रही फबि कहि न सकत छबि,
मोतिन की झलकनि अति सुख-दैन है।।
चितवनि मैन मई मुसिकनि रस मई,
कोकिला हू वारि डारी ऐसै मृदु बैन हैं।
'हित ध्रुव' अंग-अंग सबै सुखसार मई,
मन के हरन-हार बाँके दोउ नैन हैं।।२६।।

रसीली चितवन की छटा जिस ओर भी निक्षिप्त होती है, उस ओर रूप-सौन्दर्य की वर्षा सी हो जाती है।।२५।।

अरुण कमल-पत्रों की छापेदार साड़ी, जो परिमल उद्गार से सुवासित है, प्रिया ने धारण की है, जिसका दर्शन करके प्रियतम चित्रलिखित से हो जाते हैं। श्री लाड़िली के वक्षस्थल पर सुसज्जित कञ्चुकी अनुपम छबि बिखेर रही है एवं मोतीमाल की झलक भी कम अभिराम नहीं है। सहज अनुरागमयी लाड़िली की चितवन एवं उनकी सहज मुसकान परम रसमयी है। उनकी मृदु मधुर वाणी पर तो कोकिला का मधुर गान भी न्यौछावर है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि लाड़िली का प्रत्येक अङ्ग सरस सुख-सारमय है और मन का मोहन करने वाले उनके दोनों नेत्र बड़े बाँके हैं।।२६।।

रूप-छटा कवित्त

रूप जल में तरंग उठत कटाच्छनि के,
अंग-अंग भौंरनिं की अति गहराई है।
नैंननिं कौ प्रतिबिंब पर्‌यौ है कपोलनि में,
तेई भये मीन तहाँ ऐसी उर आई है।।
अरुन कमल मुसिकानि मानौं फबि रही,
थिरकनि बेसरि के मोती की सुहाई है।
भयौ है मुदित सखी लाल कौ मराल-मन,
जीवन जुगल 'ध्रुव' एक ठाँव पाई है।। २७।।

चरण-विन्यास छबि कवित्त

चलनि छबीली जू की चितवत छके पिय,
कहि न सकत कछु आज औरै भाँति है।
अलबेली रूप-पुंज कुंज ते निकसि जब,
चंद-कोटि मंद होत ऐसी तन-कांति है।।

लाड़िली का रूप मानो एक सुन्दर जलाशय है, जिसमें नेत्र-कटाक्षों की तरङ्गें उठती रहती हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की छबिमयी भँवरों से रूप -जलाशय की गम्भीरता गहन होती गयी है। कपोलों पर पड़नेवाला नयनों का प्रतिविम्ब ही रूप-जलाशय के चञ्चल मीन हैं। मुख की शोभा का मन्द स्मित ही अरुण कमल की छबि के समान है। तहाँ थिरकती बेसर की लोल गति ही मुक्ता के सदृश प्रतीत हो रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि हे सखि! श्री लाल का मराल रूपी मन अत्यन्त प्रमुदित है; क्योंकि उसने जीवन एवं जीवन की आजीविका दोनों का लाभ एक ही स्थान पर एक साथ प्राप्त कर लिया है।।२७।।

श्री प्रिया की मद-मन्थर गति जो आज कुछ विलक्षण शोभा से युक्त है, उसका अवलोकन करके प्रियतम प्रेम में छके, जके-थके से रह गये हैं। अनुपम रूप-राशि प्रिया जब कुञ्ज-भवन से बाहर आईं, तब उनकी तन-द्युति

देखैं हंसी मोरी मृगी तेई तहाँ मोहि रहीं,
झनक-झनक सुनि भूली सुधि जाति है।
'हित ध्रुव' फूलनि की माला सी सहेली सब,
ऐसैं रहि गईं मानौं चित्रनि की पाँति है।।२८।।

दोहा

अद्भुत छबि की माधुरी, चितै बिवस ह्वै जाहिं।
यहै सोच पिय-प्रेम कौ, रहत प्रिया मन माहिं।।२९।।

भूषण-शृङ्गार छबि कवित्त

छबि के छिपाइबे कौं रस के बढ़ाइबे कौं,
अंग-अंग भूषन बनाये हैं बनाइ कै।
देखैं नासापुट वेह प्रीतम भये विदेह,
याही हेत बेसरि बनाइ धरी चाई कै।।

देखकर कोटि-कोटि चन्द्र निस्प्रभ प्रतीत होने लगे। श्री वन की हंसिनी, मयूरी एवं मृगी आदि भी प्रिया की छबि-छटा को देखकर विमुग्ध हो गयीं और उनके कङ्कण-किङ्किणी के कल नाद को सुनकर आत्म-विस्मृत हो गयी हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि फूलों की माला की भाँति कोमलाङ्गी सहेलियाँ उनकी मनमोहक नयनाभिराम छबि को देखकर चित्र की सी जकी-थकी खड़ी रह गयी हैं।।२८।। श्री लाड़िली की अद्भुत छबि माधुरी को देखकर प्रियतम क्षण-क्षण में प्रेम-विवश होते हैं; जिससे प्रिया के मन में प्रियतम-प्रेम की चिन्ता व्यापती रहती है।।२९।।

सखियों ने श्री प्रिया की सहज अङ्गच्छवि के सौन्दर्य को छिपाने के लिये तथा प्रियतम के मन में रस-रुचि को बढ़ाने के लिये उन्हें सुन्दर आभूषणों से अलङ्कृत कर रखा है। प्रिया के नासापुट पर विराजित वेध (छिद्र) का अवलोकन कर जब प्रियतम देहानुसन्धान रहित होने लगते हैं, तब सखियाँ उस नैसर्गिक रूप-छटा को छिपाने हेतु बेसर लाकर धारण कराती हैं।

रोम-रोम जगमगैं रूप की पानिप अति,
सकैं न सँभारि हँसि चितई सुभाइ कै।
'हित ध्रुव' विवस लटकि जात छिन-छिन,
यातें सखी सोभा सब राखी है दुराइ कै।।३०।।

सुकुमारता कवित्त

ऐसी है ललित प्यारी लाल जू की प्रान-प्यारी,
डीठहू न ठहराति कैसैं कै निहारियै।
जाकी परछाँई पर कोटि-कोटि चंद अरु,
दामिनी भामिनि काम कोटि-कोटि वारियै।।
काजर की रेख जहाँ पाननि की पीक भारी,
और सुकुमारताई कैसैं कै विचारियै।
सहजहि अंग-अंग रूप सार मोद मई,
'हित ध्रुव' प्रान न्यौछावर करि डारियै।।३१।।

श्री प्रिया के रोम-रोम से प्रस्फुटित अगाध रूप-लावण्य, भाव भङ्गिमा पूर्ण चितवन एवं मन्द-मधुर मुस्कान छवि रसिक प्रियतम से सँभाली नहीं जाती। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम क्षण-क्षण में रूप-रस से विवश एवं चेतना शून्य-प्राय हो जाते हैं; इसलिये सखियाँ प्रिया के सहज अङ्ग-सौन्दर्य को छिपाने के प्रयत्न करती रहती हैं।।३०।।

श्री लाल जू की प्राण-प्रिया श्री राधा ऐसी अद्भुत लावण्यमयी ललित किशोरी सुकुमारी हैं कि उनके रूप पर दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती, फिसल-फिसल जाती है। तब ऐसी रूप अगाधा श्री राधा के रूप को कैसे कोई स्थिर भाव से निहार सकता है। जिनके प्रतिबिम्ब की छबि पर कोटि-कोटि चन्द्रमा, कोटि-कोटि विद्युल्लता एवं कोटि-कोटि काम-भामिनी रति का सौन्दर्य न्यौछावर है। जिनके नेत्रों को मषि-रेखा एवं श्री मुख को ताम्बूल की पीक

नेत्र-छबि कवित्त

अनियारे नैन-सर बेध्यौ मन प्रीतम कौ,
विथकित चकित रहत बल-हीने हैं।
काजर की रेख जहाँ रही फबि निसि-रैंन,
तरफि गिरत सखी अंक भरि लीने हैं।।
रसिक किसोर पिय महा सूर प्रेम रन,
नैननिं ते नैना तौहू न्यारे नहिं कीने हैं।
'हित ध्रुव' प्यारी सुकुमारी रीझि देखैं गति,
अति सुकुमार महा प्रेम रंग भीने है,।।३२।।

भी भाररूप प्रतीत होती है, तब अन्य प्रकार की सुकुमारताओं को विचारने के लिए अवकाश ही कहाँ शेष है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री प्रिया का प्रत्येक अङ्ग सहज ही रूप-सौन्दर्य का सार एवं आनन्द मोद-स्वरूप है, जिस पर बरबस प्राण न्यौछावर हो जाते हैं।।३१।।

श्री लाड़िली के नुकीले नयन-बाणों ने प्रियतम के मन को बींध दिया है, जिससे वे जके-थके से शिथिल एवं शक्ति-रहित हो गये हैं। प्रिया के नेत्र सहज कजरारे हैं, जिनकी शोभा को देखकर प्रियतम बेसुध होने लगते हैं, तब सखियाँ उन्हें अङ्क में भरकर सँभाल लेती हैं। नवल किशोर रसिक प्रियतम प्रेम रूप रणक्षेत्र के विचित्र सूरमा हैं, वे प्रिया के नैन शरों से घायल होकर भी अपने नेत्रों को उनके आगे से हटाते नहीं है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सुकुमार प्रियतम की महानतम प्रेमरङ्ग भीनी रसस्थिति का अवलोकन करके रिझवार सुकुमारी प्रिया उन पर रीझ जाती हैं।।३२।।

मुस्कान-छबि कवित्त

प्यारी जू की मुसकनि बीजुरी सी कौंधि जाति,
प्यारे जू के उर तैं न रेखा सी टरति है।
भरि-भरि आवैं नैन कैसैहूँ न पावैं चैन,
बान की सी अनी हियैं खरक्यौ करति है।।
लाड़िली नवेली अलबेली खानि माधुरी की,
सहज सुभाइनि में सर्वसु हरति है।
'हित ध्रुव' नये-नये छबि के तरंग देखैं,
रीझि सीस-चंद्रिका पगनि कौं ढरति है।।३३।।

श्री प्रिया जू की मुसकान विद्युल्लता की भाँति अत्यन्त चमत्कृतिपूर्ण है, जो प्रियतम के हृदय में रेखा की भाँति खिँच जाती है और हटाये नहीं हटती अर्थात् कभी विस्मृत नहीं हो पाती। जिसके फलस्वरूप लाल के नेत्र सदैव सजल एवं व्याकुल बने रहते हैं, उनका मन एक पल को भी कहीं विश्रान्ति का अनुभव नहीं करता है। वह सरस मुसकान ही उनके हृदय में बाण की नोक के समान निरन्तर चुभती रहती है। नित्य नव रूप लावण्यमयी अलबेली लाड़िली बाला सौन्दर्य-माधुर्य की निधि हैं, जो अपनी सहज भाव-भङ्गिमाओं से प्रियतम का सर्वस्व अपहरण करती रहती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया-छबि-सिन्धु की नित्य नूतन तरङ्गों का दर्शन करके प्रियतम की शीश-विराजित मयूर-चन्द्रिका रीझ-रीझ कर प्रिया के श्री चरणों की ओर ढलती रहती है।।३३।।

सुकुमारता कवित्त

हारनि के भार भारी ऐसी सुकुमारी प्यारी,
रसिक रँगीले लाल कीन्हीं उर-हार सी।
छबि के तमाल लपटानी रूप बेलि मानौं,
हँसनि दसनि फूल फूले सुख-सार सी।।
नख-सिख जगमगै रौंम-रौंम प्रतिबिंब,
लसत है ऐसैं जैसैं आरसी में आरसी।
'हित ध्रुव' इहि बिधि देखैं सखी चित्र भईं,
चहूँ कोद रही झूमि कंचन की डार सी।।३४।।

केलि-छटा कवित्त

अति अलबेली भाँति झूलैं अलबेली प्रिये,
सहज छबीली छबि नवल निहारही।
सारी सुही सुरँग परति खसि-खसि सखी,
बार-बार प्यारौ पिय फूल सौं सँवारही।।

प्रियतम की प्यारी श्री राधा ऐसी सुकुमारी हैं, जिन्हें हारावली का अल्प सा भार भी बहुत भारी प्रतीत होता है, तो भी प्रेमावेश में उन्होंने रसिक रँगीले लाल को अपना हृदय-हार बना रखा है। उनकी यह छबि ऐसी लगती है, जैसे किसी सुन्दर छबिमय तमाल-तरु से रूप-सौन्दर्य की लता आलिङ्गित हो, जिसमें मुसकान एवं दशन-द्युति के आनन्द-पुष्प विकसित हो रहे हों। रोम-रोम प्रति नख-शिख पर्यन्त उनका रूप ऐसे झलमलाता रहता है मानो दर्पण में दर्पण प्रतिबिम्बित हो रहा हो। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सुकुमारी प्रिया की ऐसी छबि-छटा का दर्शन करके सखियाँ चित्रलिखित सी रह गई हैं और वे प्रेम-विवश हुई युगल के चारों ओर स्वर्ण लताओं सी झूम रही हैं।।३४।।

आज अलबेली प्रिया अलबेले ढङ्ग से हिंडोले में झूल रही हैं, जिनकी सहज छबीली छबि को रँगीले नवल लाल देख-देख कर निहाल हो रहे हैं।

जेहि ओर अंग पट भूषन खिसत पिय,
तेहि ओर मुरि-मुरि प्रान ज्यौं सँभारही।
'हित ध्रुव' प्रीतम के नाहिं और दूजी गति,
छिन-छिन तिनहिं के सुखहि विचारही।।३५।।

रूप-प्रभा सवैया

रूप-रसीली हँसीली छबीली रँगीली, रँगीले के प्रान ते प्यारी।
सुलज्ज सुरंग सुनैन बिसालनि, सोभित अंजन रेख अनियारी।।
महामृदु बोलनि मोती की डोलनि, मोल लिये ध्रुव कुंज-बिहारी।
रहे सुख पाइ न और सुहाइ, भये बस नेह के देह बिसारी।।३६।।

उनकी चटकीले रङ्ग की साड़ी जब-जब फिसलती है, प्राण-प्रियतम बड़े चाव से उसे बार-बार सँभाला करते हैं। उनके श्री अङ्ग के वस्त्रालङ्कार जब-जब शिथिल हो कर अपने स्थान से ढलक जाते हैं तब-तब प्रियतम उन्हें मुड़-मुड़ कर सावधानी से प्राणों की भाँति यथा स्थान विराजित किया करते हैं। श्रीहित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेमासक्त प्रियतम, प्रिया के निरन्तर सुख का ही चिन्तन करते रहते हैं, इसके अतिरिक्त उनकी अन्य कोई गति ही नहीं है।।३५।।

सरस रूपमयी मन्द-स्मिता छबि आगरी एवं रङ्ग रँगीली प्रिया रसिक रँगीले लाल को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी हैं। उनके सुन्दर, लजीले, रतनारे, विशाल नयनों में झीनी अञ्जन रेखा सुशोभित हो रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनकी मृदु मधुर वाणी एवं नासा मुक्ता की लोल गति ने कुञ्जविहारी प्रियतम को सदैव के लिये अपना वशवर्ती बना लिया है, श्री लाल ने भी ऐसा अभूतपूर्व सुख प्राप्त किया है कि अब उन्हें इसके सिवाय अन्य कुछ प्रिय लगता ही नहीं। वे देह की सुधि-बुधि को भूल कर केवल एक प्रेम-किङ्कर बन गये हैं।।३६।।

कवित्त

सोने ते सुरंग गोरी सौंधे सौं सुवास अति,
मृदुताई पर वारौं जेतिक सुमन री।
रूप ही कौ रूप जगमगत सकल बन,
आरसी कौं आरसी लसत ऐसौ तन री।।
फैलि रही छबि-प्रभा जहाँ लौं बिराजै सभा,
'हित ध्रुव' चितै लाल भये हैं मगन री।
प्राननिं के प्रान और नैंननिं के नैंन मेरे,
रीझि-रीझि बार-बार कहैं छ्वै चरन री।।३७।।

कवित्त

कौन भाँति कौन काँति कौन रूप कौन नेह,
कौन एक है सुभाव कहा आली कहियै।
कौन माधुरी-तरंग हाव-भाव कौन रंग,
कौन मुख-पानिप विलोकत ही रहियै।।

वृन्दावनेश्वरी श्री राधा की गौर अङ्ग-कान्ति तप्त-काञ्चन-द्युति से भी अधिक उद्दीप्त है। उनके श्री अङ्ग का दिव्य सौरभ समस्त प्राकृतिक पुष्पों के परिमल सार को भी तिरस्कृत करने वाला है एवं उनके अङ्गों की कोमलता को देखकर तो पुष्पों की मृदुता भी तुच्छ प्रतीत होने लगती है। समस्त वृन्दावन उनकी रूप-ज्योत्स्ना से प्रकाशित होकर ऐसा लगता है, जैसे दर्पण में दर्पण की द्युति प्रतिबिम्बित हो। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रुपसि प्रिया की छबि-प्रभा पूरे सखि-सभा-मण्डल पर व्याप्त हो रही है, जिसे देखकर लाल आनन्द मग्न हो रहे हैं और कहते हैं कि मेरे प्राणों के प्राण एवं नयनों के नयन बारम्बार रीझ कर श्री लाड़िली के छबि पूर्ण चरणों को स्पर्श करने की मुझे प्रेरणा दे रहे हैं।।३७।। हे सखि! प्रिया का कैसा विलक्षण रूप है, कैसी अद्भुत देह द्युति है, कैसा मृदुल स्वभाव है, कैसी विलक्षण प्रीति है, इन सब की अभिव्यक्ति शब्दों में सम्भव नहीं है, फिर कोई इसका वर्णन कैसे

कोक कला रंग मई जौवन की जोति नई,
रही है बिचारि मति उपमा न लहियै।
'हित ध्रुव' ऐसी प्यारी मृदुताई वारि डारी,
रीझि पिय छ्वावत चरन नैननिं हियै।।३८।।
छवि ठाढ़ी कर जोरैं गुन कला चौंर ढोरैं,
दुति सेवै तन गोरैं रति बलि जाति है।
उजराई कुंज ऐंन सुथराई रची सैंन,
चतुराई चितै नैन अति ही लजाति है।।
राग सुनि रागिनिहूँ होत अनुराग बस,
मृदुताई अंगनि छुवत सकुचाति है।
'हित ध्रुव' सुकुमारी पुतरीनहूँ ते प्यारी,
जीवत देखैं बिहारी सुख बरखाति है।।३९।।

करे ? उनके हाव-भाव की विलक्षण माधुरी, उनका रङ्ग-रूप एवं अद्भुत लावण्यमयी छबि को तो देखते ही बनता है। कोक की कलाओं में वे परम-प्रवीण हैं एवं उनका तारुण्य भी नई-नई तरङ्गों से चञ्चल एवं निरुपम बना हुआ है, जिसका वर्णन करने के लिये मेरी बुद्धि विचार-विभ्रम ग्रस्त हो रही है और विविध चेष्टाओं के उपरान्त भी उनकी समता के लिये उपमान नहीं जुटा पाती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसी सर्वाङ्ग-सुन्दरी प्रिया पर मूर्त्तिमान् मृदुलता तो बलिहार है ही स्वयं प्रियतम भी बार-बार अपने नेत्रों एवं हृदय से उनके श्री चरणों का स्पर्श किया करते हैं।।३८।। रूप-लावण्य निधि श्री श्यामा के सम्मुख मूर्त्तिमान् छबि भी कर-बद्ध हुई सेवा-परायण रहती हैं। दिव्य गुणगणों की कलाएँ हाथ में चँवर लिये प्रिया की सेवा में उपस्थित रहती हैं। स्वयमेव प्रभा, गौराङ्गी की सेवा में तत्पर है एवं मदन-प्रिया रति भी किशोरी श्री राधा के सौन्दर्य पर बलिहारी होती रहती है, साक्षात् उज्वलता कुञ्ज-भवन को सँवारती रहती है, सुभगता तल्प का शृङ्गार किया करती है एवं नागरता स्वयं में लज्जित हुई देखती रह जाती है। श्री प्रिया की सङ्गीत-

रूप की नौलासी प्यारी नाना रंग के सुभाइ,
भाइनि की मृदुताई कही न परति है।
नैननिं के आगैं लाल लिये रहैं निसि दिन,
एकौ छिन मन तें न क्यौंहूँ बिसरति है।।
भींजि-भींजि जात पिय सुख के तरंगनि में,
जब प्रिया बातनि के रंग में ढरति है।
'हित ध्रुव' प्यारे जू की जीवन किसोरी गोरी,
छिन-छिन प्रीतम के मन कौं हरति है।।४०।।
रूप की नौलासी देखैं फूल की नौलासी सखी,
परी खसि नवल रँगीलेजू के कर तें।
हाव-भाव रंगनि कै जगि-मगि रही प्यारी,
चित्र से ह्वै रहे चितै-चितै प्रेम-भर तें।।

लहरी का श्रवण करके तो रागिनी भी उनके चरणानुराग में रँग जाती है, श्री किशोरी के कोमल अङ्गों का स्पर्श करने में मूर्त्तिमती मृदुलता भी सङ्कुचित होती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सुकुमारी लाड़िली प्रियतम को उनकी अपनी नयन पुतलियों से भी अधिक प्रिय हैं, जो उन पर निरन्तर सुख की वृष्टि करती रहती हैं एवं जिनका मुख अवलोकन करके ही श्री लाल जीवन-धारण करते हैं।।३९।। रूप की फूल-छड़ी जैसी तन्वङ्गी प्रिया के ललित हाव-भाव अनेकानेक प्रकार के हैं तथा उनकी अद्भुत भाव भङ्गिमाएँ भी अनिर्वचनीय हैं। प्रियतम श्री लाल उनको सतत निहारते हैं और एक क्षण के लिये भी विस्मृत नहीं कर पाते हैं। जब कभी प्रिया सहज वार्त्ता के रङ्ग में उल्लसित होती हैं, तब प्रियतम आनन्द की तरङ्गों में सराबोर हो जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि नवल किशोरी गौराङ्गी प्रिया प्रियतम की जीवन हैं, जो प्रतिक्षण उनके मन का मोहन किया करती हैं।।४०।। रूप की फूल-छड़ी की भाँति कोमलाङ्गी प्रिया नवल रँगीले लाल के प्रेम शिथिल हाथों से ऐसे खिसक पड़ी जैसे कोई फूल की छड़ी हाथ से खिसक जाती

अति ही बिचित्र सखी रही है सँभारि 'ध्रुव',
जिनि धुकि परै धर पर याही डर तें।
छिन-छिन प्रेम-सिंधु के तरंग नाना भाँति
रहयौ जकि थकि मन तेहि रस पर तें।।४१।।

दोहा

अंग-अंग ढरैं मैन ज्यौं, रूप तेज की काँति।
चहुँ दिसि थाँभे रहति सखि, देखि लाल की भाँति।।४२।।

कवित्त

रूप की सी फुलबारी फूलि रही सुकुमारी,
अंग-अंग नाना रंग नवल निहारहीं।
नैन कर कमल अधर हैं बँधूक मानौं,
दसन झलक पर कुंद वारि डारहीं।।

है। सखियों ने देखा कि प्रिया हाव-भाव के आमोद में रँगी हुई हैं और प्रियतम उनका अनवरत दर्शन करके प्रेम-प्रवाह में पड़े हुए चित्र की भाँति स्थिर हो गये हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अति विलक्षण नेहपूरित सखियाँ सावधानी पूर्वक युगल को सँभाले हुए हैं, वे आशङ्कित हैं कि प्रेम-मद छके युगल कहीं बेसुध होकर पृथ्वी पर न गिर पड़ें। इस प्रकार युगल के प्रेम-समुद्र में प्रतिपल नये-नये प्रकार की भावमयी तरङ्गें हिलोरें लेती रहती हैं। इस परात्पर प्रेम-रस विलास को देखकर उनके परिकर का मन भी रसोन्मत्त बना (छका) रहता है।।४१।।

प्रिया की अनुपम रूप-छबि-लावण्य- प्रभा एवं उनकी तेजस्विता के प्रभाव से प्रियतम के अङ्ग-अङ्ग तरल होते रहते हैं, अतएव सखियाँ श्री लाल की इस विचित्र प्रेम-गति को देखकर उन्हें सावधानी पूर्वक सँभालती रहती हैं।।४२।। आज सुकुमारी प्रिया रूप की मञ्जु वाटिका सी खिली हुई हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग के विलासों का नवल प्रियतम अवलोकन कर रहे हैं, प्रिया

बैंदी लाल है गुलाल नासिका सुवर्न-फूल,
मोती बने जहाँ-जहाँ जुही सी बिचारहीं।
छबि ही के खंजन रसीले नैन प्रीतम के,
खेलैं तहाँ 'ध्रुव' सखी चितै प्रान वारहीं।।४३।।
रूप-बन प्यारी-तन मौरयौ है जोवन तहाँ,
सहज हरितताई पानिप अनंग री।
दसन झलक झरैं छबि के सुरंग फूल,
मैंन सुख फल मानौं उरज उतंग री।।
अंग-अंग माधुरी श्रवत मकरंद मानौं,
भुज रस बेलि नख पल्लव सुरंग री।
'हित ध्रुव' तेहि मधि राजै नाभि-सरवर,
क्रीड़ै तहाँ पिय मन मद कौ मतंग री।।४४।।

के नेत्र एवं कर-पल्लव ही मानो रूप-सरोवर के सरोज हैं। अधराधर बन्धूक पुष्प हैं, शुभ्र दशनावलि की कान्ति पर तो कुन्द कलिकाओं की छबि न्यौछावर होती है। ललाट पटल की लाल बैंदी ही मानो गुललाला का विकसित कुसुम है। सुन्दर नासिका स्वर्ण-पुष्प जैसी है। श्रीअङ्ग पर सुसज्जित मुक्ता यत्र-तत्र खिली जूही के सदृश हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम श्री लाल के रस-लोभी नयन ही छबिमय खञ्जन पक्षी हैं, जो प्रिया की रूप-वाटिका में स्वछन्द खेलते रहते हैं। इस खञ्जन युक्त रूप की फुलवारी का दर्शन करके सखियाँ अपने प्राण बलिहार किया करती हैं।।४३।। श्री प्रिया के नख-शिख सौन्दर्य रूपी वन में नव यौवन की मञ्जरी विकसित है। उनके सहज रूप का उन्मेष वन की हरीतिमा (हरियाली) है। उनका लावण्य ही अनङ्ग है। उनकी दशन-द्युति से छबि के सुरङ्गित कुसुमों का निर्झरण होता रहता है। उनके उन्नत उरोज ही अनङ्ग क्रीड़ा के अद्भुत फल हैं। अङ्ग-अङ्ग

अलबेली सुकुमारी नैननिं के आगैं रहै,
जब लगि प्रीतम के प्रान रहैं तन में।
यहै जिय जानि प्यारी रंचकौ न होति न्यारी,
तिनही के प्रेम-रंग रँगि रही मन में।।
परम प्रवीन गोरी हाव-भाव में किसोरी,
नये-नये छबि के तरंग उठै छिन में।
'हित ध्रुव' प्रीतम के नैन-मीन रस-लीन,
खेलिबौ करत दिन-प्रति रूप बन में।।४५।।

सवैया

राधिका बल्लभ लाल की प्यारी, सखीनि के प्रान महा सुकुमारी।
रूप की बेलि फबी फल फूल, मनोज-उरोज भरे रस भारी।।

की माधुरी ही मकरन्द रस का स्राव है एवं उनकी सुन्दर भुजाएँ ही रस-वल्लरियाँ हैं। नख-प्रभा ही सुरङ्ग पल्लव हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रिया रूप वन के मध्य में एक नाभि-सरोवर है, जहाँ प्रियतम का प्रेम मदोन्मत्त मन रूपी गयन्द नित्य क्रीड़ा करता रहता है।।४४।। जब तक अलबेली कोमलाङ्गी प्रिया प्रियतम के सम्मुख रहती हैं, तभी तक ही प्रियतम देह में प्राणों का अनुभव करते हैं। इस बात को समझने वाली प्रिया उनसे एक पल के लिये भी वियुक्त नहीं होती और निरन्तर प्रियतम के प्रेम में ही रँगी रहती हैं। रस-विदग्धा नागरी प्रिया के मन में हाव-भाव पूर्ण नयी-नयी छवि की छटाएँ प्रतिक्षण उदित होती रहती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम के रस-निमग्न नयन रूपी मीन अहर्निश प्रिया के रूप-जलाशय में नित्य- निरन्तर कल्लोल करते रहते हैं।।४५।। प्राण-वल्लभ लाल की वल्लभा श्री राधिका अतिशय कोमलाङ्गी एवं सखियों की प्राण-स्वरूपा हैं। वे ऐसी रूप-वल्लरी हैं, जो मदन भावों के पुष्पों से नित्य आच्छादित रहती हैं एवं उरोज रूपी रस-फलों से गौरवमयी बनी रहती हैं। उन में लावण्य

पत्र लावण्य हरे भरे रंगरु, जोवन-मौरनि पानिप न्यारी।
प्रीतम नैननिं चैन तऊ नहिं, देखत ही 'ध्रुव' बाढ़ै तृषा री।।४६।।

सुकुमारता कवित्त

डीठि हू कौ भार जानि देखत न डीठ भरि,
ऐसी सुकुमारी नैन-प्रान हू ते प्यारी है।
माधुरी सहज कछु कहत न बनि आवै,
नैकुही के चितवत चकित बिहारी है।।
कौन भाँति मुख की अनूप काँति सरसाति,
करत बिचार तऊ जाति न बिचारी है।
'हित ध्रुव' मन पर्‌यौ रूप के भँवर माँझ,
नेह बस भये सुधि देह की बिसारी है।।४७।।

रूपी पत्र, रङ्गभरी यौवन-श्री रूपी मुकुलित मञ्जरी पानिप की जगमगाहट है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस रूप-लावण्यमयी लता का निरन्तर अवलोकन करते रहने पर भी रसिक प्रियतम के नेत्र व्याकुल बने रहते हैं और उनकी रूप-तृषा सतत बढ़ती ही जाती है।।४६।।

इस आशङ्का से ही कि मेरी दृष्टि का प्रिया पर भार न पड़े, प्रियतम श्रीलाल जी प्रिया को दृष्टि भर कर नहीं देखते हैं। सुकुमारी प्रिया, प्रियतम को नयन एवं प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनका सहज माधुर्य ऐसा है, जो कहने में नहीं आता, जिसकी तनिक सी रूप-छटा को देख कर भी लाल चकित रह जाते हैं। वे विचारते रहते हैं कि प्रिया के श्रीमुख की कान्ति कैसी अनुपम एवं कितनी सरस है तो भी वे इस रूप-रस की गहनता की सीमा को नहीं आँक पाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार प्रियतम का मन प्रिया-रूप के भँवर में जा पड़ा है, वे प्रेम के वशीभूत हुए देहानुसन्धान रहित हो गये हैं।।४७।।

रूप-छटा सवैया

भींजी नवेली चँवेली फुलेल सौं, फूलनि के पट भूषन सोहैं।
लोइन बंक बिसाल सचिवकन, अंजन की छबि प्राननि मोहैं।।
रूप तरंगनि पानिप अंगनि, प्यारी सखी ललितादिक जोहैं।
भूलि रही 'ध्रुव' तौ छबि श्री अरु, मोहनी मैंन की नारि धौं को है।।४८।।

कवित्त

कुंज ते निकसि दोऊ ठाढ़े जमुना के तीर,
आजु सखी औरै भाँति प्रिया रंग भरी हैं।
निसि के चिन्हनि चितै मुसकात रस-निधि,
वहु विधि सुख-केलि रंग-रस ढरी है।।
देखैं 'ध्रुव' छबि सींवा मृदु भुज मेलैं ग्रीवा,
हंसी, भौंरी, मोरी, मृगी ठौर ते न टरी हैं।
हरी-हरी लाल-लाल पीत-सेत सारी तन,
पहिरैं सहेली सबै चित्र की सी खरी हैं।।४९।।

आज नवोढ़ा प्रिया मल्लिका-पुष्पों के सौरभसार से भींगी हुई, पुष्पों के ही वस्त्रालङ्कारों से अलङ्कृत हो रही हैं। उनके बाँके विशाल रसीले लोचनों में सजी हुई अञ्जन की रेखा प्राणों का मोहन करती है। उनके रूप की तरङ्ग-छटा, श्री अङ्गों का लावण्य एवं श्री मुख-छवि को ललितादिक प्रिय सखियाँ आश्चर्य चकित भाव से जोह रही हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की इस छबि को देखकर जब साक्षात् श्री एवं मोहिनी भी अपना रूप-गौरव विस्मृत कर बैठती हैं, तब वहाँ मदन-प्रिया रति की तो गणना ही क्या है।।४८।। हे सखि! श्री लाड़िली-लाल दोनों ही अपनी कुञ्ज से निकल कर यमुना के तट पर खड़े हुए हैं एवं लाड़िली प्रिया आज कुछ विलक्षण ही छबि-छटा से युक्त हैं। उनके निशा-कालीन चिन्हों को देख कर रसनिधि प्रियतम मुस्कुरा उठे हैं। स्पष्ट है कि अलबेली प्रिया आज विशेष रङ्ग-रस

रूप-आहार कवित्त

नवल नवेली अलबेली सुकुमारी जू कौ,
रूप पिय-प्राननिं कौ सहज अहार री।
बिंजन सुभाइनि के नेह घृत सौं जु बने,
रोचक रुचिर हैं अनूप अति चारु री।।
नैननिं की रसना तृपित न होति क्यौंहू,
नई-नई रुचि 'ध्रुव' बढ़ति अपार री।
पानिप कौ पानी प्याइ पान मुसिक्यान ख्वाइ,
राखे उर सेज स्वाइ पायौ सुख सार री।।५०।।

में ढली सी दिखती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि छबि की परावधि युगल को गलबहियाँ दिये देख कर श्री वन की हंसिनी, भ्रमरी, मयूरी एवं मृगी ठगी सी रह गई हैं। ऐसे ही हरित, लाल, पीत एवं श्वेत रङ्ग की साड़ियों में सुसज्जित सभी सखियाँ भी गति-विस्मृत हो चित्रवत् हो गई हैं।।४९।।

नित्य नव रूप लावण्यमयी अलबेली अति कोमलाङ्गी प्रिया का रूप ही प्रियतम के प्राणों का पोषक आहार है। जिस रूप में भाव भङ्गिमाओं के व्यञ्जन प्रेम-घृत से निर्मित हैं, जो रुचिकारक हैं, सुन्दर हैं, महामधुर एवं सुस्वादु हैं, जिनका नित्य आस्वादन करते हुए भी प्रियतम की नेत्र रूपी जिह्वा कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करती, वरन् नित्य नवीन विशेष रुचि का सम्वर्धन करती रहती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब प्रिया ने रूप-लावण्य का जल पिला कर एवं मुसकान रूपी ताम्बूल बीटिका अर्पित कर उन्हें अपनी हृदय-शय्या पर शयन कराया, तब प्रियतम ने समस्त सुखों के सार का अनुभव किया।।५०।।

रस-लालसा एवं सम्भ्रम कवित्त

प्रानहूँ ते प्यारी सुकुमारी जू कौं देखत,
बिहारी जू के रौंम-रौंम लोचन ह्वै जात हैं।
ज्यौं-ज्यौं रूप पान करैं निमिष न चैन धरैं,
त्यौं-त्यौं प्यास बाढ़ै अति क्यौं हू न अघात हैं।।
छबि के तरंगनि में झूलत किसोर पिय,
हारत न हेरि-हेरि खरे ललचात हैं।
'हित ध्रुव' आरतमै भयौ भ्रम चाहत ही,
मिलै हैं कि नाहिं मन क्यौं हू न पत्यात हैं।।५१।।

अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी सुकुमारी प्रिया के मञ्जुल रूप लावण्य का दर्शन करके प्रियतम अपने रूप-दर्शन लोभ-लाभ का संवरण करने में असमर्थ हो जाते हैं। उनका रोम-रोम नेत्र बनकर प्रिया की रूप-सुधा पान में तत्पर हो जाता है। वे जितना जितना उनकी रूप-माधुरी का पान करते हैं, उनकी रूप-दर्शन की पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और रूप-दर्शन में एक निमेष का अन्तराय भी असह्य हो जाता है। वे किसी भी प्रकार तृप्ति का अनुभव नहीं करते हैं। ललित किशोर प्रियतम का मन सदैव प्रिया की छबि तरङ्गों में झूला करता है। वे प्रिया वक्ष-स्थल पर विराजित हारावली को देख-देख कर लालसा युक्त होकर ललचाया करते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम का मन रूपाभिलाषा से आर्त्त हो गया है। वे विश्वास नहीं कर पाते हैं कि वे दोनों सतत सङ्गी है, उनका चित्त उस सम्भ्रम में पड़ गया है कि हम दोनों अभी मिले भी हैं कि नहीं।।५१।।

रूप-छबि सवैया

रहे चकि लाल चितै मुख बाल, पर्‌यौ मन रूप तरंगनि माहीं।
भाइ सुभाइ उठैं छिन ही छिन, लालची नैन न क्यौं हूँ अघाहीं।।
जौवन रंग भरे अँग-अंग, बिलास अनंत कहे नहिं जाहीं।
बानिक आहि अनूप छबीली की, पानिप की उपमा 'ध्रुव' नाहीं।।५२।।

कवित्त

मुख छबि कांति सोहै उपमा कौ चंद कोहै,
रहे मोहि जोहि-जोहि नवल रसिक वर।
सीसफूल सोभा कछु कहत न बनि आवै,
मनहुँ सुहाग-छत्र झलकत सीस पर।।

नव बाला प्रिया का मुख देखकर श्री लाल चकित रह जाते हैं और उनका मन प्रिया की रूप तरङ्गों में झूलने लगता है। उनके मन में नवीन-नवीन भावों का उदय होने लगता है। उनके रूप-लालची नयन किसी भी प्रकार तृप्ति का अनुभव नहीं करते हैं। प्रिया के दिव्य वपु के अङ्ग-अङ्ग में यौवन के नव-नव रङ्गों का उज्जृम्भण होता रहता है एवं अनिर्वचनीय अनन्त रस-विलास का उच्छलन होता रहता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सत्य तो यह है कि प्रिया की रूप-सृष्टि एवं उनका लावण्य अनुपम है।।५२।।

जिस मुखच्छबि कान्ति का अवलोकन करके नवल रसिक राय कृत-कृत्य होते हैं, उसके लिये चन्द्रमा की उपमा क्या है? प्रिया के शीश-फूल की शोभा अवर्णनीय है, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो उनके शिरोभाग पर सुहाग का छत्र झिलमिला रहा हो, ललाट पर अरुण बैंदी की शोभा अपूर्व है, नासिका-विराजित नथ की छबि भी विलक्षण है, जिसकी द्युति के समक्ष

बैंदी लाल फबि रही कहा कहौं नथ-छबि,
और सब रहे दबि जहाँ लगि दुति-धर।
'हित ध्रुव' नैननिं में अंजन बिराजै खरौ,
चंचल चपल मनमोहन कौ चित्त-हर।।५३।।

दोहा

कुँवरि छबीली अमित छबि, छिन-छिन औरै-और।
रहि गये चितवत चित्र से, परम रसिक-सिरमौर।।५४।।

समस्त द्युतिमान् रवि, शशि आदि की प्रभा तिरस्कृत है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि किशोरी के नेत्रों में अञ्जन की रेखा बहुत फब रही है, जो परम चञ्चल मनमोहन के चित्त का हरण करती है।।५३।। छबिमयी किशोरी प्रतिक्षण नव-नवायमान् छबि से आपूरित अनन्त छबिमयी हैं, जिनका दर्शन करके परम रसिक शिरोमणि श्री लाल जी चित्र-लिखे से रह गये हैं।।५४।।

●

१४

शृङ्गार-शत (द्वितीय शृङ्खला)

प्रस्तावना — दोहा

दुतिय शृंखला सुनत ही, श्रवननिं अति सुख होइ।
प्रेम रतन गुन रूप सौं, मानौं राखी पोइ।।१।।

युगल किशोर की पारस्परिक प्रीति — कवित्त

दुलहिनि-दूलहु कुँवर दोउ, सहज ही,
रसिक रँगीले लाल भींने रस रंगना।
छबि के बसन अभरन अलबेले ताके,
ठाढ़े हैं छबीली भाँति कुंजनि के अंगना।।
सहज सुरंग मृदु झलकैं चरन कर,
रूप गुन पोइ बाँध्यौ प्रेम ही कौ कंगना।
'हित ध्रुव' सहज द्रगंचलनि गाँठि परी,
नयौ चाव नई रुचि बढ़त अनंगना।।२।।

शृङ्गार-शत की इस दूसरी शृङ्खला के प्रसङ्गों के श्रवण से अपूर्व आनन्दानुभूति होगी, क्योंकि इस शृङ्खला को युगल के प्रेम रूपी रत्न और दिव्य रूप-सौन्दर्य की डोरी से गुम्फित किया गया है।।१।।

रसिक रँगीले नित्य वर-वधू सहज ही प्रेम-रस-रङ्ग में भींजे रहते हैं। वे छबि-सौन्दर्य के विलक्षण वस्त्राभूषणों से सजे हुए कुञ्ज के प्राङ्गण में छबीली भाँति से खड़े हैं। उनके कोमल चरण एवं हस्तकमल सहज अरुणिम छटा से युक्त हैं, उन्होंने अपने कर-कमलों में रूप एवँ गुणों की डोरी में पिरोये हुए प्रेम के कङ्कन धारण कर रखे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनके नेत्र रूपी अञ्चलों में प्रेम की ग्रन्थि पड़ गयी हैं। तदनुरूप ही नव वर-वधू युगल में अनङ्ग की नई रुचि एवं नवीन उत्साह की वृद्धि होती रहती है।।२।।

जैसी अलबेली बाल तैसे अलबेले लाल,
दुहुँनि में उलही सहज गोभा नेह की।।
चाहनि के अंबु दै दै सींचत हैं छिन-छिन,
आल-बाल भई सेज छाया कुंज-गेह की।
अनुदिन हरी होति पानिप बदन-जोति,
ज्यौं-ज्यौं ही बौछार 'ध्रुव' लागै रूप-मेह की।
नैननिं की बारि कियैं हेरैं सखी मन दियैं,
चित्र सी ह्वै रहीं सब भूलीं सुधि देह की।।३।।
प्यारे जी की जीवन हैं नवल किसोरी गोरी,
तैसी भाँति प्यारी जू की जीवन बिहारी है ।
जोई-जोई भावै उन्हें सोई-सोई रुचै इन्हैं,
एकै गति भई ऐसी रंचकौ न न्यारी है ।।

नवल किशोरी लाड़िली जैसी रस-विदग्धा नागरी हैं, वैसे ही रस-प्रवीन नव नागर लाल हैं। तदनुरूप ही दोनों में सहज प्रेम का अङ्कुर उदित हो रहा है, जिसे वे प्रतिक्षण रूप-दर्शन के जल से सींचते रहते हैं। प्रेमाङ्कुर के संवर्धन एवं सुरक्षा के लिये शय्या विहार रूपी आलबाल है, जो नित्य कुञ्ज-गृह की छाया में परिपुष्ट होता रहता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल में उलही हुई प्रेम-लता को उनके रूप सौन्दर्य वर्षा की बौछार ज्यों-ज्यों लगती जाती है त्यों-त्यों युगल की बदन-ज्योति प्रतिदिन डहडही होती जाती है। सखियों के यूथ अपने नेत्रों की बाड़ लगाये उस लता-कुञ्ज में चारों ओर चित्र लिखी सी खड़ी हुई इस अद्भुत माधुरी के पान में तन्मय हैं।।३।। नवल किशोरी श्यामा नवल किशोर प्रियतम लाल की जीवन हैं, तद्वत् ही श्री प्रिया के प्राण-जीवन लाल प्रियतम हैं। जैसी प्रिया की रुचि होती है, तदनुसार ही प्रियतम की भी वही रुचि हो जाती है। दोनों की मनःस्थिति सर्वदा एक ही रहती है, कभी किञ्चित् भी अन्तर नहीं होने पाता है। यह युगल

छिन-छिन देखि-देखि छबि की तरंग नाना,
प्रीतम दुहुँनि सुधि देह की बिसारी है।
'हित ध्रुव' रीझि-रीझि रहे रति रस भींजि,
प्रीति ऐसी अब लगि सुनी न निहारी है।।४।।
प्रीतम की प्रेम-गति देखैं भूली तन-गति,
बड़े-बड़े नैना दोऊ आये प्रेम-जल भरि।
प्रिया लाल-लाल कहि लए लाइ उरजनि,
चूँमि-चूँमि नैना रही अधर दसन धरि।।
'हित ध्रुव' सखी सब देखत विवस भईं,
प्रेम पट नाना रंग झलकैं सबनि परि।
एक चित्र की सी खरी एक धर खसि परी,
एकनि के नैननिं तें गिरैं नेह-नीर ढरि ।।५।।

परस्पर छबि की विविध छटाओं का अवलोकन करते हुए विमुग्ध भाव से देहानुसन्धान रहित हो जाते हैं। नव दम्पति एक दूसरे पर रीझ-रीझ कर प्रेम-रङ्ग में भीगे रहते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसी विलक्षण प्रीति अब तक न कहीं देखी है, न सुनी ही है।।४।। प्रियतम की अति विलक्षण अगाध प्रीति को देख कर प्रिया प्रेम-विवश हुई देह की सुध-बुध खो बैठी। उनके बड़े-बड़े नयन प्रेम-जल से आपूरित हो उठे और उन्होंने विकलता पूर्वक "लाल-लाल" कहते हुए प्रियतम को हृदय से लगा लिया। वे प्रियतम के नेत्रों का बारम्बार चुम्बन करने लगीं। प्रियतम के अधरों को अपने दशनों में लेकर रह गयीं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की इस अनुपम प्रेम-छटा का दर्शन करके सब सखियाँ प्रेम-विवश हो गयीं और उन सब पर प्रेम का रङ्ग छा गया। कोई एक सखी चित्र लिखी सी खड़ी रह गयी, कोई चेतना विस्मृत हो पृथ्वी पर ढलक गयी, तो कोई प्रेमाश्रु-विमोचन ही करती रह गयी।।५।।

नैननिं के आगैं प्यारी बिलपत है बिहारी,
असुँवनि प्रेम-जल धारा चली जाइ री।
कौन प्रेम केहि फंद परे हैं रँगीले लाल,
अटपटी गति हेरैं हियौ अकुलाइ री।।
'हित ध्रुव' चेति कैं किसोरी गोरी धीर-धरि,
नैना नेह-नीर भरि लीन्हें उर लाइ री।
प्रेम कौ समुद्र फिरि गयौ है सबनि पर,
जहाँ-तहाँ सखी धर परीं मुरझाइ री।।६।।

सखियों पर युगल-प्रीति का प्रभाव सवैया

सेज सरोवर राजत हैं, जल मादिक रूप भरे तरुनाई।
अंगनि आभा तरंग उठैं, तहाँ मीन कटाक्षनि की चपलाई।।

प्रिया के सम्मुख प्रेम-विह्वल प्रियतम प्रलाप कर रहे हैं। उनके नेत्रों से अवरिल प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित है। न जाने ये रँगीले लाल किस विलक्षण प्रेम के पाश में आबद्ध हो गये हैं! इनकी विचित्र स्थिति को देखकर प्रिया का हृदय व्याकुल हो उठा। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं नवल-किशोरी प्रिया ने धैर्य पूर्वक सावधानी के साथ प्रेमाश्रु विमोचन करते हुए प्रियतम को अपने हृदय से लगा लिया। तब समस्त परिकर पर भी प्रेम-समुद्र का विस्तार छा गया, जिससे प्रभावित सब सखियाँ विमूर्छित हो कर यत्र-तत्र पृथ्वी पर गिर पड़ीं।।६।।

नित्य बिहार के निकुञ्ज देश में आस्तृत शय्या ही सुन्दर तड़ाग है, जिसमें युगल के तरुण रूप का रसोन्माद ही जल के रूप में लहरा रहा है। युगल के अङ्गों का लावण्य ही उस सरोवर में उत्थित तरङ्गें हैं, वहाँ श्री श्यामा-श्याम के चपल नेत्र कटाक्ष ही क्रीड़ामय मीन हैं। श्री ध्रुवदास जी

प्यासी सखी भरि अंजुलि नैन, पियैं ते गिरीं उपमा 'ध्रुव' पाई।।
प्रेम गयंद ने डारे हैं तोरि कैं, कंचन-कंज चहूँ दिसि माई।।७।।

कवित्त

सखीनि की गति हेरैं ठाड़े भये जाइ नेरैं,
करुना कै चितयौ दुँहुनि तिन ओर री।
अमी की सी धारा उर सीचि गये सबनि कैं,
प्रेम सिंधु भौंर तें निकारीं बरजोर री।।
चहुँ-दिसि राजैं खरी महा रस-रंग भरी,
नैननिं की गति वहै तृषित चकोर री।
सहज तरंग उठैं जल के से छिन-छिन,
'हित ध्रुव' यहै खेल तहाँ निसि-भोर री।।८।।

कहते हैं कि रूप की प्यासी सखियों ने अपनी नेत्र रूपी अञ्जलियों में भर कर युगल के मादक रस-रूप जल का पान किया, तो वह अपने को सँभाल न सकीं और बेसुध होकर अवनी पर गिर पड़ीं। उस समय उनकी शोभा ऐसी प्रतीत हुई मानो प्रेम रूपी गजराज ने स्वर्ण के विविध कमलों को तोड़-तोड़ कर यत्र-तत्र बखेर दिया हो।।७।। सखियों की इस प्रेम-विवश दशा का अवलोकन कर युगल वर प्रेम विवर्त्त से निकल, सावधान होकर सखियों के निकट आ खड़े हुए। उन्होंने सखियों की अपार प्रीति को समझा और करुणामयी दृष्टि से उनकी ओर देखा। युगल की उस करुणा भरी दृष्टि में सुधा-धारा का अद्भुत निर्झरण था, जिसके द्वारा उन्होंने सखियों को प्रेम-समुद्र के आवर्त्त से बलपूर्वक बाहर निकाल लिया। चारों ओर खड़ी सखियाँ तृषित चकोरों की भाँति रूप-दर्शन में निमग्न हो गयीं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जैसे सहज ही जल में तरङ्गें उठती रहती हैं, वैसे ही इस निकुञ्ज-विहार में दिनरात प्रेम की ही लीलाएँ होती रहती है।।८।।

नित्य नव प्रेम-विहार कवित्त

नई सेज नई रुचि नयौ रूप नयौ नेह,
नेही नये अलबेले अति सुकुमार री।
नई लाज नयौ रंग नेह रँगी चितवनि,
नई केलि कौ सिंगार सोहै उर हार री।।
छिन-छिन तृषा बढ़ै पानिप अनूप चढ़ै,
मधुर बिमल निजु यहै प्रेम-सार री।
'हित ध्रुव' प्यारी मानौं छुई है न मनहू कैं,
एकै रस दिन जहाँ बिसद बिहार री।।९।।

सवैया

सेज रँगीली रँगीली सखीनि, रची बहु रंग सुरंग सुहाई।
तापर बैठे रँगीले छबीले, हँसैं रस में सुख की सरसाई।।

अति सुकुमार नव दम्पति का सब कुछ ही अर्थात् केलि, शय्या, रुचि, रूप-लावण्य, प्रेम आदि नित्य नूतन है। उनकी प्रणय-क्रीड़ा भी नवीन है, प्रेम रँगी चितवन भी नवीन है एवं वे नयी-नयी शृङ्गारमयी केलि के हारों से अलङ्कृत रहते हैं। उनके अन्तर में अनुपम लावण्य की तृषा का प्रतिक्षण नित्य विवर्द्धन होता रहता है और उनकी यही उज्ज्वल प्रीति, प्रेम का सार है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जहाँ एक सा निरन्तर विशद प्रेम-विहार है, वहाँ नवल किशोरी प्रिया ऐसी अपूर्व नवीन हैं कि मानो प्रियतम ने कभी अपने मन के करों से भी उनका स्पर्श तक नहीं किया हो।।९।। प्रेम रँगी सखियों नें विविध रङ्गों से सुसज्जित सुरङ्ग शय्या की रचना की है। छबि धाम रङ्ग रँगीले युगल उस पर विराजित हो हास-परिहास पूर्वक सुख की वृष्टि करते

सचिक्कन अंजन नैन लसै, मैहँदी झलकै पद-पानि रचाई,
रूप की दीपति तें 'ध्रुव' कुंज, फनूस सी ह्वै रही यौं उर आई।।१०।।
फूल सौं फूलनि-ऐंन रची, सुख सैंन सुदेस सुरंग सुहाई।
लाड़िली-लाल बिलास की रासि, औ पानिप-रूप बढ़ी अधिकाई।।
सखी चहुँ ओर बिलौकैं झरोखनि, जाति नहीं उपमा 'ध्रुव' पाई।
खंजन कोटि जुरे छबि के ऐं कि, नैननि की नव-कुंज बनाई।।११।।

दोहा

नवल रँगीली कुंज में, नवल रँगीले लाल।
नवल रँगीलौ खेल रच्यौ, चितवनि नैन बिसाल।।१२।।

हैं। उनके नेत्रों में सचिक्कन अञ्जन एवं चरण तथा हाथों में रची हुई मेंहदी झलक रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की रूप-दीप्ति से कुञ्ज फानूस की भाँति जगमग-जगमग हो रही है।।१०।। कुञ्जभवन में सखियों ने उत्साहपूर्वक पुष्पों से सुन्दर रङ्गभरी सुखमयी शय्या की रचना की है। उस पर विलास की परावधि अनन्त रूप लावण्यमय श्री लाड़िली-लाल सुखासीन हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि चारों ओर झरोखों से लगी हुई सखियाँ युगल के दर्शन कर रही हैं इस अनुपम छबि का दर्शन करके ऐसा लगता है कि छबि के कोटि-कोटि खञ्जन एकत्रित हैं अथवा नेत्रों की ही नव-कुञ्ज निर्मित है।।११।। नित्य नवीन रङ्ग भरी कुञ्ज में नित्य रङ्ग रँगीले लाड़िली-लाल जिनके विशाल नेत्रों की छबि-छटा नवीन है, सदैव नव-नव प्रेम-केलि परायण रहते हैं।।१२।।

रूपक वर्णन कवित्त

फूलनि की कुंज ऐंन फूलनि की रची सैंन,
फूलनि के भूषन बसन फूल मन में।
फूल ही की चितवनि मुसिकनि फूलही की,
फूलि-फूलि लपटात फूल के सदन में।।
फूलनि के हाव-भाव फूलनि कौ बढ्यौ चाव,
फूले फूल देखि 'ध्रुव' उभै तन-वन में।
बरसत सुख-फूल सुरत हिंडोरे झूल,
फूल ही की दामिनी लसत फूल घन में।।१३।।
आछी छबि सौं छबीले बैठे हैं छबीली भाँति,
रतन निकुंज माहिं बातैं रति करहीं।
परम प्रवीन प्यारौ ताहू तें अधिक प्यारी,
रस भरी चितवनि चितै चित्त हरहीं।।

पुष्प-रचित कुञ्ज भवन में एक सुमन शय्या आस्तरित है, जिस पर पुष्पों का शृङ्गार धारण किये हुए प्रसन्न मन युगल विराजमान् हैं। उनकी चितवन एवं मुसकान में हृदय का आनन्दोल्लास प्रकट हो रहा है। वे आनन्दातिरेक में पुनः पुनः प्रेमालिङ्गन में बँध जाते हैं। उनके प्रत्येक हाव-भाव एवं चेष्टाओं में हार्दिक उल्लास झलकता है, नयी-नयी उमङ्ग-तरङ्गें उनके हृदय में उठती रहती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनके तनु रूपी वृन्दावन में फूल ही फूल विकसित हैं। प्रेम विलास रूपी हिंडोले में सुख रूपी पुष्पों की वर्षा हो रही है तथा परस्पर के आलिङ्गन की छबि ऐसी प्रतीत होती है, मानों प्रसन्नता रूपी दामिनी आनन्द-मेघ का आलिङ्गन कर रही हो।।१३।। रत्न-खचित कुञ्ज में छबीले युगल छबीली भाँति से छबीली प्रिया के सङ्ग विराजे हुए प्रेम रङ्ग की वार्त्ता कर रहे हैं। प्रियतम जितने रस विदग्ध हैं, उससे कहीं अधिक रस प्रवीणा हैं श्री प्रिया; जो अपनी रस रङ्ग-भरी तनिक सी चितवन में प्रियतम का मन हरण कर लेती हैं। वे अपनी नव-नव भाव भङ्गिमाओं से प्रियतम के

नवल-नवल भाइ बेध्यौ है मरम जाइ,
आनँद कौ रंग पाइ सुख-रस ढरहीं।
'हित ध्रुव' रीझि-रीझि देबैं कौं न कछू आहि,
फिरि-फिरि प्यारे लाल पाँइनि में परहीं।।१४।।
लाल पीत फूलनि की कुंज सुख पुंज मध्य,
लाल पीत बागे तन दोऊ लाल पहिरैं।
भूषन की दुति प्रति अंगनि में झलकत,
मानौं रूप सिंधुनि ते उठति हैं लहरैं।।
मंद-मंद हँसि कछु रंग-भीनी बातैं करैं,
बेसरि के मोती दोऊ छबि सौं थरहरैं।
'हित ध्रुव' रीझि-रीझि रहे रति-रस भींजि,
अंचलनि सुधि भूलि परे सुख गहरैं।।१५।।

हृदय को बेधती रहती हैं। उन प्रिया के कटाक्षवाणों से बिंधने में प्रियतम अतिशय आनन्द का अनुभव कर सुख के रस-प्रवाह में बहने लगते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब रीझन के प्रतिदान में उनके पास देने को शेष कुछ नहीं बचता, तब वे उपकृत भाव से बारम्बार प्रिया के चरणों में निपतित होने लगते हैं।।१४।। रक्त एवं पीत कुसुमों द्वारा रचित सुखराशि कुञ्ज में अरुण पीत वस्त्र धारण किये हुए युगल विराजमान् हैं। भूषणों की द्युति उनके श्री अङ्गों में प्रतिबिम्बित हो कर ऐसे दिखती है मानो रूप के समुद्र तरङ्गायित हो रहे हों। जब वे मन्द-मन्द मुसकान के साथ रस-रङ्ग भरी वार्त्ताएँ करते हैं, तब उनके नासा-मौक्तिक श्वासानिल के लगने से छबि-पूर्वक थिरकने लगते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल परस्पर रीझ-रीझ कर प्रेम-रस में भींज जाते हैं, वस्त्रों की सँभाल विस्मृत कर सुख-सिन्धु में निमग्न हो जाते हैं।।१५।।

प्रीतम किसोरी गोरी रसिक रँगीली जोरी,
प्रेमही के रंग बोरी सोभा कही जात है।
एक प्रान एक वैस एक ही सुभाव चाव,
एक बात दुहुँनि के मनहिं सुहात है।।
एक कुंज एक सेज एक पट ओढ़े बैठे,
एक एक बीरी दोऊ खंडि-खंडि खात हैं।
एक रस एक प्रान एक दृष्टि 'हित ध्रुव',
हेरि हेरि बढ़ै चौंप क्यौं हूँ न अघात हैं।।१६।।
साँवरे किसोर लाल लाड़िली किसोरी गोरी,
बाहाँ-जोरी एक संग नीके देखि पाये हैं।
कंचन के कंजनि की कुंजनि में बैठे सखी,
बीती रति-केलि निसि तऊ न अघाये हैं।।

गौराङ्गी नवल किशोरी एवं नीलघन सुन्दर प्रियतम युगल की प्रेम रङ्ग में सराबोर रसिक रँगीली जोड़ी की शोभा का भी कोई वर्णन हो सकता है ? अर्थात् नहीं। उनकी शोभा अनिर्वचनीय है। युगल सम वयस् हैं, एक प्राण हैं। उनका स्वभाव एवं उत्साह भी सम है तथा दोनों की रुचियाँ अभिन्न हैं। आज वे एक कुञ्ज में, एक शय्या पर, एक ही वस्त्र ओढ़े हुए, एक एक ताम्बूल बीटिका लिये हुए, दन्त-पङ्क्ति से खण्डित करते हुए परस्पर आरोग रहें हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसे एक रस एक प्राण अभिन्न दृष्टि युगल, परस्पर छबि अवलोकन पूर्वक प्रतिपल नवीन उत्साह को प्राप्त हो रहे हैं तथा कभी तृप्त नहीं होते।।१६।। श्यामघन सुन्दर किशोर श्रीलालजी एवं गौराङ्गी नवल किशोरी लाड़िली गलबहियाँ दिये आज एक साथ ही देखे जा रहे हैं। वे स्वर्ण कमलों की कुञ्ज में सम्पूर्ण रात्रि प्रेमरति क्रीड़ा में मग्न रह कर भी अतृप्त हैं। प्रियतम

हारनि के ब्याज पिय छुयौ चाहै उरजनि,
प्रिया जानि अंचल सौं तबही दुराये हैं।
'हित ध्रुव' परम प्रवीन कोक-अंगनि में,
समुझि-समुझि मन दोऊ मुसिकाये हैं।।१७।।
बैठे सेज एक संग भींजे रस अंग-अंग,
मन के मनोज-रंग मुदित करत हैं।
अधिक अधीरताई देखि प्रिया मुसिक्याई,
बिवस किसोर पिय अंक में भरत हैं।।
चितै-चितै नैंन ओर छुवै लाल कुच कोर,
भौंहनि की मुरनि तें अति ही डरत हैं।
'हित ध्रुव' ललित कपोल नासा-पुट चूँमि,
अधरनि-रस हित पाँइनि परत हैं।।१८।।

हारावली स्पर्श के ब्याज से श्री प्रिया के उरोजों का स्पर्श करना चाहते हैं। तब प्रियतम की मनोभावना को समझकर विदग्धा प्रिया वस्त्राञ्चल से अपने वक्षोजों का गोपन करने लगती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री युगल कोक-विलास की कलाओं में परम निपुण हैं। वे एक दूसरे की मनः स्थिति को भाँप कर मन्द-मन्द मुस्कराने लगते हैं।।१७।। आज श्री युगल अङ्ग-अङ्ग में रस-पूरित हुए एक साथ एक सेज पर बैठे मुदित चित्त से अनङ्ग-क्रीड़ा में निरत हैं। प्रियतम की अत्यधिक अधीरता को देखकर प्रिया मुस्कुराती हुई रस विवश किशोर प्रियतम को अपने अङ्क में भर लेती हैं। आशङ्कित प्रियतम, प्रिया के नेत्रों की ओर निहारते हुए कुच-तटी का स्पर्श करना चाहते हैं किन्तु उनका मन प्रिया की कुटिल भृकुटि-भङ्गिमा के भय से अत्यन्त भयभीत है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि अन्ततः प्रियतम, प्रिया के ललित कपोल एवं नासिका-पुट का चुम्बन करके अधर रस पान की लालसा लिये हुए उनके चरणों में निपतित होने लगते हैं।।१८।।

दुलहिनि-दूलहु किसोर इक जोर दोउ,
भूषन सहाने बागे बने अँग-अंग री।
चंचल नैना बिसाल अंजन बन्यौ रसाल,
कर पद रचे सोहैं मैंहँदी कौ रंग री।।
सहज सहानी कुंज रची है सहानी सेज,
लियैं लाल बैठे हैं लड़ैंती कौं उछंग री।
'हित ध्रुव' छिन-छिन बढ़त सहानौ नेह,
रौंम-रौंम उपजत छबि के तरंग री।।१९।।
नवल निकुंज सुख पुंज में रँगीले लाल,
दुलहिनि-दूलहु रसिक सिरमौर री।
रति-रस रंग साने ऐसैं अंग लपटाने,
परत न सुधि कछु कौ है स्याम-गौर री।।

नित्य नव वर-वधू युगल किशोर लाड़िली लाल सम रूप एवं सम वयस् हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग में सहाने वस्त्राभूषण सुशोभित हो रहे हैं। उनके चपल कर्णायत नेत्रों में अञ्जन की रेखा तथा मृदुल कर कमल एवं चरणों में सुरङ्ग मेंहदी सुसज्जित है। सहज अभिराम सहानी कुञ्ज में सहानी सेज रची है, जिस पर श्री युगल-दम्पति अति सुन्दर छबि का विस्तार करते हुए सहानी भाँति से विराजमान् हैं। प्रियतम ने प्रिया को अपने अङ्क में विराजित कर रखा है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनका दाम्पत्य-प्रेम प्रतिक्षण वर्द्धमान है एवं युगल के रोम-रोम से नव-नव छबि छटायें तरङ्गायित होती रहती हैं।।१९।। सुख-राशि नव-निकुञ्ज में रसिक रँगीले नव दम्पति किशोर, प्रेम की प्रगाढ़ता में सुध-बुध खोकर गाढ़ाश्लेष में ऐसे एकमेक हो रहे हैं कि उनकी गौर-श्यामता को भी पृथक्-पृथक् देख पाना कठिन हो रहा है।

महारस माधुरी कौं पीवत हैं ज्यौं-ज्यौं दोउ,
बढ़ति अधिक आली त्यौं-त्यौं प्यास और री।
'हित ध्रुव' हेरि-हेरि करति बिचार सखी,
कौन प्रेम कौन रूप जुर्‌यौ इक ठौर री।।२०।।
रूप निधि पानिप तरंगनि कैं चितवत,
मैंन-रंग भरे नैंन सोभित बिसाल री।
आनँद की कुंज ऐंन राजति हैं प्रेम सैंन,
तापर रँगीले जगमगैं दोउ लाल री।!
माधुरी मदन मोद मद के बिनोद करैं,
लालच की रासि ललचात सब काल री।
हाव-भाव चतुरई छिन-छिन नई-नई,
'हित ध्रुव' रस-बस कीन्हैं बर बाल री।।२१।।

हे सखि ! युगल ज्यों-ज्यों प्रेम रस सुधा माधुरी का पान करते हैं, त्यों ही त्यों उनकी रस-तृषा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियाँ इस छबि-छटा को देख-देख कर आश्चर्य चकित हुई सोचती रह जाती हैं कि युगल में यह कौन सा अकल्पित रूप एवं प्रेम एकत्रित है।।२०।। रूप-लावण्य के महार्णव की तरङ्गायित छबि का अवलोकन करते हुए प्रियतम के मदनरङ्ग रञ्जित विशाल नयन अति छबिमय प्रतीत होते हैं। आनन्द रूप कुञ्ज भवन में सुसज्जित प्रेम पर्यङ्क पर रँगीले युगल लाल अपनी दिव्य अङ्ग-कान्ति का विस्तार कर रहे हैं। वे स्मर-माधुरी के मद में छके हुए विविध आनन्दमयी प्रेम क्रीड़ाओं में मग्न हैं, तथापि ये रूप-रस के लोभी लाल सदैव अतृप्त ही बने रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं परम सुन्दरी नव किशोरी ने अपने नित्य नूतन हाव-भाव एवं चातुरी के द्वारा प्रिय लाल को अपना वशवर्त्ती बना लिया है।।२१।।

सवैया

आनँद पुंज सुहाग की कुंज में, सेज सुदेस सुरंग सहानी।
लै 'ध्रुव' फूल अनूप दुकूल, रची सुख-मूल सुगंध सौं सानी।।
दूलहु दोऊ बिचित्र महा कल, ही कल कोक कला कल ठानी।
परे रस रंग तरंग अभंग, भई लव रैनि विहात न जानी।।२२।।

दोहा

अद्भुत कोक कलानि की, नवल रँगीली केलि।
हार जीत समुझत नहीं, बढ़त रहै रुचि-बेलि।।२३।।

कवित्त

माधुरी की कुंज तामैं मोद की लै सेज रची,
तेहि पर राजैं अलबेले सुकुमार री।
रूप तेज मोद के जुगल तन जगमगैं,
हाव-भाव चातुरी के भूषन सुढ़ार री।।

घनीभूत आनन्द स्वरूप नव-दम्पति की विलास-कुञ्ज में सुन्दर सुखद शय्या निर्मित है, जिसे अनुपम पुष्पों एवं वस्त्रों से सुसज्जित कर सौरभ से सुवासित किया गया है। उस पर अद्भुत नव दम्पति युगल की सुन्दराति सुन्दर मदन-केलि उल्लसित हो रही है। इस प्रकार युगल रसिक रसानन्द की उज्जृम्भमाण उत्ताल तरङ्गों में ऐसे प्रवहमान् हो रहे हैं कि उन्हें समस्त रजनी एक क्षण की भाँति प्रतीत हो रही है।।२२।। इस प्रकार अद्भुत मदन कलाओं की नित्य नयी आनन्दमयी क्रीड़ाओं में जय-पराजय का बोध तो होता नहीं, अपितु रुचि की लता प्रतिक्षण वर्द्धमान् होती रहती है।।२३।। माधुर्य रूपी कुञ्ज में आनन्द रूप शय्या सुसज्जित है, जिस पर अलबेले सुकुमार युगल विराजमान् हैं। ये रसिक युगल रूप ओज एवं आनन्द के साक्षात् वपु हैं। इन्होंने हाव-भाव एवं चातुरी के सुन्दर आभूषण धारण कर रखे हैं।

नेह-नीर नैननिं की सैननिं में रहे भींजि,
कौन रंग बाढयौ जहाँ बोलिबोऊ भार री।
अति ही आसक्त सखी रहीं मोहि जोहि-जोहि,
'हित ध्रुव' प्राननि कौ यहै है अहार री।।२४।।
कमल-निकुंज में गुलाब-दल सेज रची,
बागे कोलपत्र मृदु अति ही सुरंग री।
अंग-अंग रहे भींजि सौंधे ही के मोद माँझ,
द्वै-द्वै लर मोतिनु के फौंदा बने संग री।।
कोलपत्र वारि डारे नैंन अरुनाई पर,
चपलाई पर फीके खंजन कुरंग री।
फूले मुख देखि सखी रहि गईं न्यारी-न्यारी,
छकीं अनुराग 'ध्रुव' सब के अभंग री।।२५।।

ये प्रेम सजल नेत्रों की भाव भङ्गिमाओं से सिञ्चित रहते हैं, न जाने किस विलक्षण आनन्द में मग्न हैं, जहाँ इन्हें बोलना भी भार रूप प्रतीत होता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, प्रेम रस रूप में आसक्त सखियाँ इन्हें देख-देख कर रस में सराबोर रहती है और यह युगल-छबि ही इन सखियों का प्राण-पोषक आहार है।।२४।। कमल पुष्पों से निर्मित कुञ्ज में पाटल-पुष्प-दलों की शय्या सुसज्जित है, जहाँ कोमल कमल पत्रों से बने सुरङ्ग बागे धारण किये श्री युगल विराजमान् हैं। उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग परिमल के उद्गार से सुवासित है। उनकी पहुँचियों में मोतियों के दुलड़े फुँदने झूल रहे हैं। उनके नेत्रों की अरुणिमा पर कमल पत्र न्यौछावर है एवं नयनों की चपल गति पर खञ्जरीट एवं हरिणियों की चञ्चलता भी तुच्छ हो जाती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की मन्द स्मितमयी प्रफुल्ल छबि का अवलोकन कर अभङ्ग अनुरागमयी सखियाँ जहाँ की तहाँ रस-विवश एवं विथकित हैं।।२५।।

फूलनि में फूले दोउ संग सखी नाहिं कोऊ,
रंग भीनी बतियनि कहि मुसिकात री।
आँनद के सिंधु परे नैंन मैंन रंग भरे,
'हित ध्रुव' रस ढरे उर लपटात री।।
अधर-अधर जोरैं मिलि रहीं नैन कोरैं,
थोरे-थोरे बेसरि के मोती थहरात री।
चली है उमड़ि सोभा बढ़ी रति-पति गोभा,
देखि लाल लालचहि लालचौ लजात री।।२६।।
लाल कुंज लाल सेज लाल बागे रहे बनि,
राजत हैं दोऊ लाल बातनि के रंग में।
लालनि की लाल भूमि लाल फूल रहे झूमि,
ललित लड़ैंती लाल फूले अँग-अंग में।।

आनन्दोल्लास में उत्फुल्ल हुए युगल किशोर सखियों से रहित किसी एकान्त स्थल में रसभरी बातें करते हुए रँगीली ढरन में ढरे मन्द-मन्द मुस्कराते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि आनन्द के सागर में हिलोरें लेते हुए उनके नयन मदन रङ्ग में भीने हैं। रस-प्रवाह में पड़े युगल, पुनः-पुनः परस्पर हृदय से लिपट जाते हैं और तब उनके अधरों से अधर, नयनों से नयनों की कोरें मिल जाती हैं। उस समय श्वास-पवन की झकोर में नासा-मुक्ता की लोल गति अनुपम सुहावनी लगती है। इस प्रकार युगल छबि की शोभा का जो प्रवाह उमड़ चला है, उससे उनके अन्तर में प्रेम मदन अङ्कुरित हो उठा है। उस समय लाल के मन में रूप रस का जो महा लोभ उत्पन्न हुआ उसे देखकर तो मूर्त्तिमान् लालच भी सकुचा उठा है।।२६।। लाल-लाल मणियों की कुञ्ज में लाल रत्नों की सेज पर लाल रङ्ग के वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित लाड़िली लाल युगल रस वार्त्ता के प्रसङ्ग में निरत हैं। कुञ्ज भवन की अवनी रक्तिम रत्न खचित है, जहाँ अरुण वर्ण के पुष्प स्तवक झूम रहे हैं, जिसकी शोभा का विस्तार कर रहे हैं, अङ्ग-अङ्ग में प्रफुल्लित ललित लाड़िली

लाल-लाल सारी तन पहिरैं सहेली सब,
भींजे दोऊ प्रान प्यारे प्रेम ही के रंग में।
'हित ध्रुव' चितवत लोइन सिरात तब,
देखैं जब प्यारी जू कौं पिय के उछंग में।।२७।।

प्रेमासक्ति कवित्त

जहाँ-जहाँ राधा प्यारी धरति चरन पिय,
तहाँ-तहाँ नैननि के पाँवड़े बनावहीं।
महा प्रेम रंग रँगे तिनहीं के प्यार पगे,
सेवा सब अंगनि की करैं सचु पावहीं।।

लाल। प्रियानुगामिनी सब सखियाँ आज अरुणिम वस्त्रों में ही सुशोभित हो रहीं हैं। तदनुरुप ही प्राण प्रियतम युगल अनुराग के अरुणिम रङ्ग में अनुरञ्जित हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों के नेत्र तो तभी शीतलता का अनुभव करते हैं, जब वे प्राण-प्रिया को प्रियतम के क्रोड़ में विराजित देखती हैं।।२७।।

श्री वृन्दावन की रसमयी भूमि में जहाँ-जहाँ प्रिया श्री राधा अपने सुकोमल चरणों को स्थापित करती हैं वहीं-वहीं अनुरागी रसिक प्रियतम अपने नेत्रों के पाँवड़े बिछाते चलते हैं। महा प्रेम के रङ्ग में रँगे हुए प्रियतम, प्रिया की प्रगाढ़ आसक्ति में ऐसे डूब गये हैं कि उन्हें प्रिया के सब अङ्गों की सेवा में संलग्न रह कर ही परम सुख की अनुभूति होती है। प्रेम के मधुरासव में

मादिक मधुर पियैं प्यारी कौ सुभाव लियैं,
छिन-छिन भाँति-भाँति लाड़नि लड़ावहीं।
तैसियै प्रवीन प्यारी 'हित ध्रुव' सुकुमारी,
समुझि सनेह रस कंठ सौं लगावहीं।।२८।।

सवैया

नेह रँगी मद मैन छकी, पिय छाती लगी जु चितै मुख ओरी।
गुन रासि किसोरी सुखाकर गोरी, सुकोक कलानि के सिंधु झकोरी।।
रंग तरंग अनंग अभंग, बढ़ै छिन ही छिन प्रीति न थोरी।
सखी हित की चित की नित की, 'ध्रुव' सो सुख पीवति हैं निसि-भोरी।।२९।।

छके, अपनी प्राण-प्रिया की रुचि को सँभालते हुए प्रतिक्षण भाँति-भाँति के लाड़-प्यार करने में ही खोये रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जैसे श्रीलाल की अतिशय प्रेमासक्ति है, तदनुरुप ही प्रेम-विचक्षणा प्रिया भी उनके प्रति अगाध प्रेम रङ्ग से भरी हुई हैं और प्रियतम के प्रेम की प्रगाढ़ता को समझ कर वे बार-बार उन्हें अपने कण्ठ से लगाती रहती हैं।।२८।। अनन्त गुण आगरी प्रेमरँगी नवल-किशोरी मदोन्मत्त भाव से प्रियतम के वक्षस्थल से आलिङ्गित हुई उनके श्री मुख का अवलोकन करती रहती हैं। सुख-सिन्धु रूपी गौराङ्गी प्रिया रति-केलि विलास कलाओं में परम विशारद हैं। उन अगाध प्रेम-राशि में प्रेमानन्द की उत्तुङ्ग लहरें प्रतिक्षण अबाध गति से तरङ्गायित होती रहती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनकी हित चिन्तक नित्य सहचरियाँ उनके प्रेम रस-रूप का अहर्निश पान करती रहती हैं।।२९।।

कवित्त

छिन-छिन नई छबि पानिप रही है फबि,
राधिका-वल्लभ पर प्रान वारि डारियै।
अंगनि झलक अरु भूषन झमक आली,
देखत रँगीली भाँति पलकैं न टारियै।।
रँग भींनी करैं बात बीच-बीच मुसिकात,
चाहनि चपल चितै मोहीं सखी सारियै।
प्रेम की अनूप गति भूली तहाँ ध्रुव-मति,
तन मन धन बुद्धि सबै बात हारियै।।३०।।
सुमिलि सुठौन अंग झलकत मैंन रंग,
पानिप झलक बहु भाँति झलकात हैं।
हाव-भाव माधुरी की मूरति रँगीली जोर,
कानन लौं नैन कोर रंग ही चुचात हैं।।

जिनके रूप में प्रतिक्षण छबि एवं लावण्य का नव-नव विकास होता रहता है, ऐसे श्री राधिकावल्लभ पर बरवस प्राण न्यौछावर हो जाते हैं। हे सखि! उनके श्री अङ्गों की कान्ति, आभूषणों की झनकार एवं उनकी रसभरी सलौनी छबि को तो अपलक नेत्रों से देखते ही बनता है। जब वे सरस वार्त्ता में संलग्न हुए बीच-बीच में मुस्करा जाते हैं, तब तो उनकी चपल अपाङ्गच्छबि को देखकर सब सखियाँ विमुग्ध हो जाती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनके प्रेम की इस विलक्षण गति को देखकर बुद्धि चकित-थकित रह जाती है, तथा तन-मन-धन-प्राण सभी उन पर उत्सर्ग हो जाते हैं।।३०।। श्री युगल के अङ्ग-अङ्ग का सौष्ठव सानुकूल है, जिनमें मदनोल्लास छाया रहता है एवं लावण्य हिलोरें लेता रहता है। यह रँगीली-जोड़ी प्रेम रङ्ग की विविध माधुर्यमयी भङ्गिमाओं से सदा आपूरित है। इनके कर्णायत नेत्रों से निरन्तर अमित रस निर्झरित होता रहता है। आज वे कुसुमित विटप की छाया

फूले द्रुम तर ठाढ़े प्रेम के तरंग बाढ़े,
'हित ध्रुव' मंद-मंद दोउ मुसिकात हैं।
छबि की छलक मानौं उछरि-उछरि परै,
ऐसै रूप आली कहौ कैसैं कहे जात हैं।।३१।।
केसरी सुरंग इक रंग बागे दुहुँनि के,
जमुना के कूल-कूल बाहाँ-जोरी आवहीं।
सखिनु के यूथ साथ आवत हैं पाछैं आछैं,
हित की निकट सखी संग लागी गावहीं।।
कहूँ-कहूँ ठाढ़े होइ देखत फूलनि छबि,
मन भाये रंग लै लै प्रियहि बनावहीं।
अति अलबेली भाँति फिरैं अलबेले दोऊ,
करत बिनोद 'ध्रुव' जे जे मन भावहीं।।३२।।

में खड़े हुए प्रेम-पयोधि की तरङ्गों में तरङ्गायित हुए मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनका मन्द स्मित ऐसा मनोहर है मानो रूप के उदधि में छबि की छलक उछल-उछल कर पड़ रही हो। हे सखि! ऐसी अनिर्वचनीय रूप-माधुरी का वर्णन कर सकना भी सम्भव है क्या?।।३१।। आज युगल किशोर केशरी सुरङ्ग वस्त्र धारण किये हुए बद्ध-बाहु कालिन्दी के सुरम्य तट पर विचरण करते हुए आ रहे हैं। सखियों के अनेक सुहावने यूथ उनका अनुगमन कर रहे हैं। हितमयी निकटवर्ती कुछ सखियाँ उनके साथ गान करती चल रही हैं। वे कहीं-कहीं रुक कर प्रफुल्ल प्रसूनों की शोभा निरखने लगते हैं, तब प्रियतम मन वाञ्छित रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों का चयन करके अपनी प्राणाराध्या प्रिया को शृङ्गारित करते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार अलबेले युगल अलबेली गति से अपनी रुचि अनुसार श्री वृन्दावन में रङ्ग-विनोद किया करते हैं।।३२।।

जमुना के कूल-कूल जहाँ-तहाँ फूले फूल,
बाहाँ-जोरी लटकत आवत हैं भोर हीं।
सघन लतनि माहिं फूले फिरैं रंग भरे,
कहूँ कहूँ ठाढ़े होइ फूलनि कौं तोर हीं।।
थोरी सखी संग जहाँ सोऊ न्यारी होइ रहीं,
'हित ध्रुव' देखि छबि पलकैं न जोर हीं।
प्रेम-रस राते माते छिनहूँ न होत हाँते,
ऐसै मन मिलि रहे चले एक ओर हीं।।३३।।

दोहा

एक प्रान मन एक ही, एक प्रेम कौ चाव।
एकै सील सुभाव मृदु, सहजहि बन्यौ बनाव।।३४।।

कालिन्दी के सुरम्य तट पर अनेक भाँति के रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प विकसित हैं। बद्ध-बाहु युगल उषः काल में रस में छके झूमते चले आ रहे हैं। प्रमुदित मन युगल सघन लताओं में विचरण करते कहीं-कहीं रुक कर प्रसून चयन करने लगते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल परस्पर एकटक रूपरस-सुधा का पान करते हुए जब मग्न हो गये तब उनकी समीपवर्त्ती सखियाँ कुछ इधर-उधर हो गयीं। ऐसे प्रेम-रङ्ग में छके उन्मत्त युगल कभी एक क्षण के लिये भी वियुक्त नहीं होते और परस्पर दोनों के मन ऐसे ओत-प्रोत हो रहे हैं कि वे एक ही रुचि लिये एक ही ओर चलते हैं।।३३।। युगल श्री श्यामा-श्याम की यह सहज जोड़ी अद्भुत एवं अद्वय है। यह अभिन्न प्राण है, अभिन्न मन है और इनका प्रेमोल्लास भी एक ही है। दोनों का शील एवं स्वभाव एक मृदुल सम्मिलन है।।३४।।

वेषभूषा शृङ्गार कवित्त

प्यारी के जँगाली बागौ लाल के गुलाबी आली,
फबि रहे जैसैं मोपै कहत न आवही।
मृगमद बैंदी इत बनी है सुरंग उत,
हारि रह्यौ मन कछु उपमा न पावही।।
कुँवरि के नत्थ सोहै बेसर बिहारीजू के,
कौन एक छबि बाढ़ी देखिबौई भावही।
झलकत मोती लरैं कुंदन की माल गरैं,
मुसिकन मंद 'ध्रुव' सुख बरसावही।।३५।।
अंग भरि पट भरि भूषन भवन भरि,
चल्यौ है उमड़ि छबि-अंबु चहुँ ओर री।
सखिनि के नैंन मीन परे हैं तरंगनि में,
जानत न कहाँ होत आली निसि-भोर री।।

हे सखि ! आज प्रिया ने नील निचोल धारण कर रखा है और श्री लाल के अङ्गों में गुलाबी रङ्ग के वस्त्र ऐसे फबित हैं कि उनकी शोभा कही नहीं जाती। कस्तूरी की चटक बैंदी भाल पर ऐसी सुशोभित हो रही है कि उसकी उपमा नहीं मिलती। श्री प्रिया जी के नथ धारण है एवं श्री लाल जी की नासिका में बेसर आभूषित है और उस समय ऐसी अनुपम शोभा का विकास हुआ कि उनकी मुख छबि को देखते ही रहने का मन करता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनके उदार वक्षस्थल पर मुक्ताहार एवं मणि-जटित कुन्दन मालाऐं अलङ्कृत हैं। उनकी मन्द मधुर मुसकान में अमित सुख की वृष्टि होती रहती है।।३५।। युगल के रूपरसमय सौन्दर्य-सिन्धु में जो आज प्लावन आया है, उसने श्री श्यामा-श्याम के श्री अङ्ग, वस्त्र, भूषण, कुञ्ज, भवन सब को रस से आपूरित कर दिया है। उस रस-प्लावन की लोल लहरियों में सखियों के मीनवत् नयन कल्लोल कर रहे हैं। हे सखि ! इस रस लीनता में सखियों को काल का बोध नहीं रहता। श्री युगल की इस रसकल्लोल-

वृंदावन कुंज-कुंज रह्यौ पूरि सुख पुंज,
हंसी और मोरी मृगी भये हैं चकोर री।
'हित ध्रुव' एक रस रस के समुद्र दोऊ,
नागर अनंग-केलि नवल-किसोर री।।३६।।

बन बिहार सवैया

फूलि चले दोउ फूलनि कुंज ते, फूलनि-फूलनि देखत आवैं।
मनौं छबि के विवि चंद अनंद सौं, मंदहि-मंद मिले सुर गावैं।।
नूपुर भूषन की झनकार, सखी सुनि कैं चहुँ ओर तैं धावैं।
रूप-सुधा रस प्रेम सुरंगहि, नैंन चकोरनि कौं 'ध्रुव' प्यावैं।।३७।।

मालाओं से वृन्दावन की प्रत्येक कुञ्ज, सुख, पुञ्ज पूरित हो रही है, जहाँ हंसिनी, मयूरी एवं मृगी भी चकोरवत् हो रही हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री लाड़िली लाल रस के महार्णव हैं, जिनमें मदन-केलि की तरङ्गें अविछिन्न रूप से नित्य प्रति प्रवहमान् रहती हैं।।३६।।

फूलों की कुञ्ज से निकल कर प्रसन्न मन युगल-किशोर श्रीवन की पुष्पित लताओं की शोभा को देखते हुए चले आ रहे हैं। वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो छबि के युगल चन्द्रमा आनन्दोल्लास में भरे मधुर स्वरों में गान कर रहे हों। उनके नूपुर एवं भूषणों का मधुर स्वर श्रवण कर चारों ओर से सखियाँ सिमिट कर उनके समीप आने लगीं हैं और उस समय तृषित चकोरवत् उनकी रूप-छबि का दर्शन करने में तल्लीन हैं।।३७।।

शय्या-विहार कवित्त

ललित रँगीली सेज पर दोउ रंग भरे,
हँसि-हँसि लपटात सुख-केलि करहीं।
सहज आनंद मोद मई तन दंपति के,
प्रेम रस मोद भींजि मृदु भुज भरहीं।।
मैंन मोद के तरंग झलकत अंग-अंग,
लोचन राजैं सुरंग चितै चित्त हरहीं।
'हित ध्रुव' सखी सब प्रेम रस मोद माती,
रहत बिवस नैंन नेह-नीर ढरहीं।।३८।।
रसिक रँगीले दोऊ तहाँ नाहिं सखी कोऊ,
हँसत मुदित मन उर लपटात री।
अधर मधुर मधुपान के बिवस रहैं,
जानत न रैंन-दिन कहाँ धौं बिहात री।।

सुन्दर रँगमगी सेज पर रसिक रँगीले नव दम्पति हास-परिहास पूर्वक आलिङ्गनादि-केलि में मग्न हैं। दिव्य दम्पति के युगल वपु सहज आनन्द एवं उल्लासमय हैं। वे रसानन्द में भीगे हुए, एक दूसरे को अपनी भुजाओं में भर रहे हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग में मदनोल्लास झलक रहा है और उनके नेत्रों में अनुराग की अरुणिमा छाई हुई है, जो एक दूसरे के चित्त को चुरा रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, कि युगल की ही भाँति सब सखियाँ भी प्रेमोल्लास के मद से मत्त बनी रहती हैं एवं उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु ढलते रहते हैं।।३८।।

आज सखी-समुदाय-विरहित एकान्त में रसिक रँगीले युगल हर्षोल्लास-पूर्वक एक दूसरे के हृदय से लग रहे हैं। मधुर अधरासव-पान में विवशता से उन्हें रात-दिन का भी आभास नहीं है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं

रति रस सिंधु केलि तहाँ रस रहे झेलि,
'हित ध्रुव' तऊ नेक नाहिंन अघात री।
छिन-छिन औरै-और भौंहनि के भाइ भेद,
रीझि-रीझि रस भींजि लाल हा-हा खात री।।३९।।

अभिन्न रुचि-प्रियता कवित्त

नवल रसिक पिय एक मन एक हिय,
एकै बात है सुहाति दुहुँनि के मन कौं।
एक वैस एक जोर एक से भूषन पट,
एक सी छबीली छबि राजति है तन कौं।।
रूप ही के रंग भीने लोचन चकोर कीन्हें,
एकै संग चाहैं ऐसैं जैसैं मीन वन कौं।
'हित ध्रुव' रसिक सिरोमनि जुगल बिनु,
आली को निवाहै एक रस प्रेम पन कौं।।४०।।

कि प्रेम-विलास रस समुद्र की केलि-रस का आस्वादन करते हुए भी वे किञ्चित् भी तृप्त नहीं हो पाते। प्रतिक्षण नवीन-नवीन भ्रकुटि भङ्गिमाओं के विलासों में रीझ कर एवं रस में भींज कर रसिक लाल प्राण-प्रिया के सम्मुख प्रेमाधीन हुए चाटु वचनों द्वारा विविध प्रकार से अनुनय-विनय करने लगते हैं।।३९।।

नित्य नवीन रसिक प्रिया-प्रियतम अद्वय युगल हैं। उनके तन-मन एक हैं और दोनों की रुचियाँ एवं प्रियता भी सदैव एक ही रहती है। यह अभिन्न जोरी सदा सम वयस् है। इनके वस्त्राभूषण भी एक से ही रहते हैं—इनके श्री अङ्गों की छबीली छटा भी नित्य एक जैसी ही हैं। इन्होंने रूप-दर्शन के आनन्द में भींगे हुए अपने नेत्रों को चकोर बना रखा है। जल और मीन की भाँति ये सदा एक साथ ही रहना चाहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं हे सखि! रसिक शेखर युगल के बिना इस एकरस प्रेम व्रत का कौन निर्वाह कर सकता है?।।४०।।

रूप की अवधि दोउ उपमा कौं नाहिं कोउ,
प्रेम-सींव सुकुमार एक रंग रँगे हैं।
सहज अटक जहाँ बिना हेत हित तहाँ,
उज्वल अनूप रस दोउ मन पगे हैं।।
मदन-कुसुम-मोद रमि रह्यौ दुहुँ कोद,
अंग-अंग रौंम-रौंम भाइ जगमगे हैं।
'हित ध्रुव' हेरि-हेरि छबि रस भये बस,
तृपित न नैंकु क्यौं हूं रैंनि सब जगे हैं।।४१।।

श्री लाल की प्रेम-तृषा कवित्त

ज्यौं-ज्यौं लाल देखै मुख नैननि कौं तृषा होति,
प्यारी जू कौ रूप मानौं प्यास ही कौ रूप है।
डीठ-डीठ रही मिलि जैसै एक धारा 'ध्रुव',
हौंहूँ भूली देखि दसा अति ही अनूप है।।

प्रेम की सीमा सुकुमार युगल निरुपम रूप की परम अवधि हैं। इनका आस्वाद्य प्रेम-रस भी एक है। इनकी पारस्परिक आसक्ति भी निर्हैतुक एवं सहज है। दोनों के मन शृङ्गारोत्तर उज्ज्वल एवं अनुपम रस में सदा संपृक्त हैं। अनङ्ग-केलि के सौरभ सार से दोनों के तन-मन रँगे रहते हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग एवं लोम प्रति लोम से नव-नव भावों की तरङ्गों का उच्छलन होता रहता हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि वे परस्पर एक दूसरे की रूप-छटा को देखते हुए रस विवश हो जाते हैं, और सम्पूर्ण रात्रि जागृत रह कर भी अतृप्त ही बने रहते हैं।।४१।।

जैसे-जैसे लाल प्रिया-मुखारविन्द की सरस रूप छटा का पान करते हैं त्यों ही त्यों उनकी प्रेम-तृषा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, तब ऐसा प्रतीत होता है कि प्रिया का रूप मानो प्यास का ही रूप है। युगल के नेत्र परस्पर इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि लगता है जैसे कोई रूप-रस की एक अखण्ड धारा प्रवाहित हो रही हो। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस अनुपम प्रेम-स्थिति

कौन रस स्वाद गह्यौ कैसैंहूँ न जात कह्यौ,
जानत न छाँह और कैसी होति धूप है।
और सुख जेते सब भये हैं पतंग रस-
राज के सुखनि पर प्रेम भान भूप है।।४२।।
छुवत न रसिक रँगीलौ लाल प्यारी जू कौं,
मनहूँ के करन सौं छुवत डरत हैं।
प्रेम की नौलासी प्यारी सहज ही सुकुमारी,
प्राननिं की छाया तिन ऊपर करत हैं।।
नेकु ही कौ हास सखी सार है बिलासनि कौ,
जाके हेरैं और सब सुख बिसरत हैं।
अतिही आसक्त ताकी 'हित ध्रुव' यहै गति,
रीझि-रीझि दूरि ही तें पाँइनि परत हैं।।४३।।

का दर्शन करके मुझे भी अपनी गति-मति विस्मृत हो गयी है। श्री युगल किशोर ने न जाने कौन सा विलक्षण रसास्वाद प्राप्त किया है, जो अनिर्वचनीय तो है ही काल गति को भी विस्मृत करा देने वाला है। इस महानतम उज्ज्वल रस के समक्ष अन्यान्य रस के जितने भी भेद विभेद हैं, वे सब ऐसे हो गये हैं जैसे देदीप्यमान् भास्कर के समक्ष शलभ ! अतएव सुनिश्चित है कि समस्त सुखों का सर्वोपरि सुख प्रेमरूप सम्राट है।।४२।। रसिक रँगीले प्रियतम गौराङ्गी प्रिया के कोमल अङ्गों का स्पर्श स्थूल तन के हाथों से तो क्या, मन के हाथों से भी करने की कल्पना नहीं कर पाते हैं। सहज सुकुमारी फूल-छड़ी सी कोमालाङ्गी प्राण-प्रिया पर वे सदैव अपने प्राणों की छाया किये रहते हैं। हे सखि ! प्रिया-मुखकमल की तनिक सी मन्दस्मिति भी समस्त रस-विलासों का सार है, जिसका दर्शन करके अन्य सब सुख विस्मृत हो जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि अत्यन्त रुपासक्त किंवा प्रेमासक्त प्रियतम की यह स्थिति है कि वे दूर से ही रीझे हुए प्रिया के चरणों में निपतित होते रहते हैं।।४३।।

रूपासक्ति एवं प्रेम-महिमा कवित्त

हेरि-हेरि रूपहि चकित ह्वै रहे हैं दोऊ,
प्रेम कौ न वार-पार कैसैं कै बखानियै।
मन-मन चतुराई तन सुधि बिसराई,
कौन एक रंग बाढ़्यौ जानत न जानियै।।
और कौ प्रवेस कहाँ मन हूँ न भेदी जहाँ,
ऐसी प्रेम-छटा ताहि काहि लै प्रमानियै।
'हित ध्रुव' जोई कछु कहिबौ है ऐसी भाँति,
जैसैं आली पाहन सौं मानिक लै भानियै।।४४।।

दोहा

कहिबौ सुनिबौ रहि गयौ, देखत मोहन रूप।
अद्भुत कौतुक सौं रँगे, प्रेम-बिलास अनूप।।४५।।

युगल किशोर परस्पर अपनी विलक्षण रूप छटाओं को देखते हुए अवाक् एवं विस्मित हो रहे हैं, उनका प्रेम असीम एवं वाणी से अगोचर है। उनकी मनश्चातुरी ने उन्हें देहानुसन्धान रहित कर दिया है और समझ नहीं आता कि आज उनमें कौन सा अभूत रस उद्भूत है। अन्य की तो बात ही क्या, जहाँ उनका अपना मन ही रस की गहनता का अनुमान नहीं लगा पाता है, ऐसी अद्भुत प्रेम-छटा का कैसे आकलन किया जाय। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की इस प्रेम-छटा के वर्णन में जो कुछ भी कहा जायगा वह सब बहुमूल्य माणिक्य की तुलना, पत्थर से करने जैसा ही होगा।।४४।। रूपरसाब्धि युगल के मनमोहन रूप के समक्ष सारे कथन श्रवण नीरस वार्त्तामात्र होकर रह जाते हैं; क्योंकि उनके अनुपम प्रेम विलास, अद्भुत कौतुक से रञ्जित हैं।।४५।।

●

१४

शृङ्गार-शत (तृतीय शृङ्खला)

प्रस्तावना — दोहा

अब सुनि तीजी शृंखला, रति-विलास आनंद।
तिहि रस मादिक मत्त रहैं, विवि वृंदावन-चंद।।१।।

सुरत-केलि — सवैया

भाँति भली नवकुंज विराजत, राधिका वल्लभ लाल बिहारी।
प्राननि की मनि प्यारी बिहारिनि, प्यार सौं प्रीतम लै उर धारी।।
ज्यौं छबि-चंद्रिका चंद के अंक में, बाढ़ी महा छबि की उजियारी।
सखी चहुँ कोद चकोरी भईं 'ध्रुव', पीवत रूप अनूप सुधा री।।२।।

अब श्री हित ध्रुवदास जी "शृङ्गार-शत लीला" की तीसरी शृङ्खला का निर्देश करते हुए कहते हैं कि इस शृङ्खला में रसिक युगल किशोर की प्रेम रसमयी उन सरस क्रीड़ाओं का वर्णन है, जिस में मत्त हुए श्री वृन्दावन के युगल चन्द्र श्यामा-श्याम नित्य आनन्दोल्लास में मग्न रहे आते हैं।।१।।

आज नव निभृत निकुञ्ज में, रसिक श्री राधिका एवं वल्लभ लाल अति सुन्दर छबि से भली भाँति विराजित हैं। प्रियतम ने नित्य विहारिणि प्रिया को अमूल्य निधि प्राणमणि की भाँति हृदय पर धारण कर रखा है। उस समय महाछवि के प्रकाश का ऐसा विस्तार हुआ मानो चन्द्रमा की क्रोड़ में छबि रूप ज्योत्स्ना ही मूर्त्तिमान् विराज गयी हो। चारों ओर एकत्रित सखियाँ तृषित चकोरी की भाँति उस अनुपम रूपामृत का पान कर रही हैं।।२।।

केलि करैं सुकुमारी-बिहारी, बढ़ी छबि भारी कही नहिं जाई।
लालची लाल रँगे रस-बाल, बिलोकि रहे 'ध्रुव' सुंदरताई।।
पीवत नैंन कटाक्षनि माधुरी, कौतुक एक न कैंहूँ अघाई।
सो हित हेरि लुभाइ रह्यौ, रुचि कौं रुचि देखिकै आप लजाई।।३।।
भाँति रँगीली छबीली के संग, छबीलौ बन्यौ छबि की निधि माई।
सेज सहानी सुरंग बनी, तिहि ऊपर केलि करैं सुखदाई।।
हिय सौं हिय लाइ रहे लपटाइ, लसै अँग अंग में अंगनि-झाँई।
मिलीं 'ध्रुव' द्वै सरिता छबि की, मनौं दीठि तहाँ न कहूँ ठहराई।।४।।

आज सुकुमारी गौराङ्गी प्रिया एवं रसिक शेखर श्री बिहारी सरस विहार परायण हैं। उनकी वर्द्धमान् छबि वाणी-अगोचर है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रस-लम्पट प्रियतम रस स्वरूपा नव बाला के रूप-रसासव-दर्शन में छके उनकी रूपसुधा का निरन्तर पान करते ही रहते हैं। प्रियतम सहज सुन्दरी नव सुकुमारी की नव-नव अपाङ्गच्छवि की अनेक भङ्गिमाओं का सतत दर्शन करते हुए भी कभी परितृप्त नहीं होते हैं। युगल के इस विलक्षण हित का अवलोकन कर मूर्त्तिमान् हित भी प्रलोभित हो जाता है एवं युगल की नित्य वर्द्धित सरस रुचि को देखकर स्वयं रुचि भी लज्जित हो उठती है।।३।। हे सखि! अनुराग-रञ्जिता छबि आगरी प्रिया का सङ्ग प्राप्त कर आज छबीले लाल छबि-रत्नाकर बन गये हैं। अति सुन्दर सहाने तल्प पर वे तत्सुख रति-केलि परायण हैं। हृदय से हृदय मिलाये हुए दृढ़ बाहु-पाश में आबद्ध वे एक दूसरे के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे छबि एवं सौन्दर्य की दो सरिताएँ परस्पर में मिल गयी हों, जहाँ दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती है।।४।।

लाड़िली-लाल बिलास करैं, रचि सेज सुदेस सुरंग सुहाई।
मंदहि-मंद हँसैं रस-मत्त, भरे अनुराग महा छबि पाई।।
कोक-कलानि की घातनि माहिं, बिचित्र बिनोद बढ़ावत माई।
सखी चहुँ कोद लतानि लगीं, निरखैं 'ध्रुव' प्राननिं देति बधाई।।५।।
गोरी किसोरी की अंगनि काँति, लसै बहु भाँति न जात बखानी।
रंग कौ रास रच्यौ रति रासि, बिलास की औधि निकुंजनि रानी।।
अंसनि-बाहु जुरी 'ध्रुव' मंडली, नैननिं नित्तत रैंनि विहानी।
अंचल चीर करैं श्रम जानि कैं, भूषन अंग तेई भये गानी।।६।।

श्री लाड़िली लाल जी सुन्दर सुहावनी रँगमगी शय्या पर विलास परायण हैं। अनुराग पूरित रसोन्मत्त युगल, मन्द मधुर हास परिहास करते हुए अपूर्व शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। वे ललित कोक-कलाओं के घात-परिघातों से विलक्षण प्रकार के विनोदों की वृद्धि कर रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि लता-भवन के गवाक्षों से लगी सखियाँ इस रसद-केलि का दर्शन करके अपने प्राण बलिहार करती हुई बधाई देती हैं।।५।। नव-यौवना श्यामा की अनिर्वचनीय प्रभा बहुत प्रकार से प्रकाशित होती रहती हैं। उन्होंने आनन्दोल्लासमय रास की रचना की है। वे प्रेमरति की पुञ्ज हैं, रस विलास की पराकाष्ठा हैं एवं निकुञ्ज देश की अधिष्ठात्री स्वामिनी हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते है कि इस रति क्रीड़ामय रास रस में स्कन्धों से बाहुओं का सम्मिलन ही सखियों का मण्डल है और नेत्र-चालन की चपल गति ही नृत्य है। इस सुखद रास-रस-क्रीड़ा के आनन्द में सहज ही निशा व्यतीत हो जाती है। रति-रास में श्रम निवारण के लिये वसनाञ्चल-दोलन ही व्यजन है, तथा श्री अङ्गों के भूषणों का मधुर रव ही रसमय मङ्गल-गीत है।।६।।

कवित्त

मदन के रस माँझ मगन बिहार करैं,
सुख के प्रवाह माहिं लाल मन भींनौ है।
श्रम-जलकन मुख छबि के समूह मानौं,
नैंन बैंन सैंन सर-पंजर सो कीनौ है।।
कहाँ लौं सँभारैं पिय परे सेज वेसँभार,
लटकत सीस गहि लाइ उर लीनौ है।
'हित ध्रुव' परम प्रवीन सब अंगनि में,
अधर-अधर जोरि सुधा रस दीनौ है।।७।।
सरस बिलास साने अंग-अंग लपटानें,
आरस में अरसाने नैंना न अघाने हैं।
जब-जब छुटि जात फिरि-फिरि लपटात,
छाँड़ि न सकत सेज ऐसैं ललचाने हैं।।

आज मदनोल्लास पूरित विविध रस विलासों को विलसते हुए श्री लाल का मन सुखानुरञ्जित है। उनके मुख पर छाये हुए प्रस्वेद कण छबि पुञ्ज के समान हैं, जो यह सूचित करते हैं कि प्रिया के चपल नेत्र-कटाक्षों, सुधामयी वाणी एवं विविध भाव-भङ्गिमाओं के बाणों से लाल जर्जर हो गये हैं। इस प्रकार के अनेक सरस प्रहारों को झेलते हुए लाल विथकित हो कर, देह-दशा विस्मृत हुए शय्या पर गिरने लगे, तब करुणार्द्र प्रिया ने उनके शिथिल मस्तक को सँभालते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की समस्त कलाओं में विशारद प्रिया ने अधरों से अधर मिला कर उन्हें रसामृत पान कराया है।।७।। प्रेम के सरस विलासों में पगे हुए गाढ़ाश्लेष में निबद्ध एवं विलास-जनित श्रम से अलसाये हुए रसिक युगल परस्पर रूपदर्शन से अघाते नहीं हैं। जब-जब उनका दृढ़ आलिङ्गन

उठिबे कौ मन करैं पुनि तेहि रंग ढरैं,
घरी एक और जाउ कहि मुसिकाने हैं।
'हित ध्रुव' ऐसी भाँति छिन-छिन सरसात,
जानत न दिन-रैन केतिक विहाने है।।८।।

सुरतान्त रस

कवित्त

भोर कुंज द्वार खरे अंग-अंग रंग भरे,
अरुनाई नैननिं की बरनी न जाति है।
अधर अंजन लीक फबी है कपोल पीक,
बसन पलटि परे सोभा झलकाति है।।

शिथिल होने लगता है तब-तब प्रेमावेश में छके नव दम्पति पुनः-पुनः गाढ़-लिङ्गन करते हैं, रस-लोलुप युगल शय्या को छोड़ना नहीं चाहते हैं। शय्या परित्याग का विचार तो करते हैं किन्तु पुनः उस रस की धारा में आवृत्त हो जाते हैं और कहते हैं क्षणार्ध और ठहर जाओ। सखियों से ऐसा कह कर मुस्करा जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार उनकी प्रीति प्रतिक्षण सरस होती जाती है और वे ये नहीं जान पाते कि इस सरस प्रेम विलास में कितनी दिवस-रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी हैं।।८।।

आज प्रभात की मङ्गल बेला में अङ्ग-अङ्ग आनन्दोल्लास से मत्त युगल लता-मण्डप के द्वार पर आ खड़े हुए हैं। उस समय उनके रतनारे नयनों की सुन्दर छबि का वर्णन कर सकना वाणी से परे है। उनके अधरों पर अञ्जन की रेखा एवं कपोलों पर पीक की लालिमा शोभित है तथा परिवर्त्तित वसनों की नील-पीतच्छबि की झलक भी अपूर्व है। सुरतालसमयी, मधुरासव में

रस भरी अलबेली लटकी है लाल पर,
मूँदरी की आरसी निरखि मुसिकाति है।
'हित ध्रुव' ऐसी छबि देखत ही रीझि रहे,
प्रीतम की अखियाँ तौ क्यौंहू न अघाति है।।९।।

सवैया

आज की बानिक लाल रँगीले की, मोपै कछू नहिं जाति बखानी।
लाड़िली रंग भरी सुकुमारि, रही लपटाइ हियैं अलसानी।।
रहे छुटि बार न हार सम्हार, बिहार-बिनोद में रैंनि बिहानी।
रूप बिलास सनेह निहारि, सखी हित वारि पियैं 'ध्रुव' पानी।।१०।।

छकी, रँगीली प्रिया शिथिलित होकर प्रियतम के हृदय पर लटकी अवलम्बित हैं और अङ्गुलिकाओं में धारण मुद्रिका के नग में अपने प्रतिबिम्बि को देखकर मुस्कराने लगती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री रसिक प्रियतम, प्रिया की ऐसी छबि को देखकर विमुग्ध हो रहे हैं। उनके नेत्र प्रिया की छबि को निहारते कभी तृप्त नहीं होते।।९।। आज रङ्ग रँगीले नवल किशोर की बाँकी छबि कहने में नहीं आती, जिनके हृदय से कोमलाङ्गी रँगीली लाड़िली आलस-वलित छबि पूर्वक आलिङ्गित हैं। युगल के ललित कुन्तल विगलित हैं, हारावली अस्त-व्यस्त हो रही है। विहार के आमोद-प्रमोद में सम्पूर्ण रात्रि अनजाने ही व्यतीत हो गई है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल के रूप-लावण्य, रस-विलास एवं अनुपम प्रेम का दर्शन करके सखियाँ उन पर जल वार-वार कर पान करती है एवं बलिहार होती रहती हैं।।१०।।

कवित्त

भोर भयैं साँझ ही कौ धोखौ है दुहुँनि मन,
सुपनौ सो चेत कहैं कहा बात है भई।
ऐंकि हम मिले नाहिं बैठे हैं अबहिं आइ,
ऐंकि निसा आज कछु बीच ही तें ह्वै गई।।
भूषन बसन छूटे देखैं पुनि समुझत,
कौन एक भ्रम दसा उपजी है सुखमई।
'हित ध्रुव' यहै जानैं मिल्यौ अनमिल्यौ मानैं,
नैननिं में रुचि ही की प्रेम-बेलि है बई।।११।।

दर्शन-सुख

कवित्त

नवल रँगीले दोऊ रस में रसीले अति,
सहज सुरंग नये नेह अनुरागे हैं।

सम्पूर्ण रात्रि विहार में व्यतीत हो जाने पर प्रातः युगल सम्भ्रम में पड़ गये हैं और प्रभात काल को संध्या मान कर स्वप्न में जागे हुए की भाँति परस्पर में पूछते हैं कि आज क्या हुआ, अचानक संध्या हो गई किन्तु प्रभात की बेला कब और कहाँ चली गई ? हम तो अभी-अभी ही मिले हैं, रात्रि न जाने आज कहाँ खो गयी। तदुपरान्त अपने अस्त-व्यत भूषण एवं वस्त्रों को देख कर कुछ विचित्र एवं सुखद भ्रम दशा को प्राप्त हो जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, वास्तव में मिलने पर भी उन्हें महती प्रेम-तृषा के कारण अनमिले जैसी प्रतीति होती रहती है, क्योंकि उनके नेत्रों में प्रेम-रुचि की लता लहलहाती रहती है।।११।।

नवल रँगीले युगल जो सदा रस में रँगे रहते हैं, आज प्रेम के सहज एवं नूतन रङ्ग में अनुरक्त हैं। प्रिया-मुखारविन्द की नित्य नूतन छबि-प्रभा का

देखि-देखि प्यारी अनदेखी सी लगत मन,
निमिषौ न लागे नैंन रैंन सब जागे हैं।।
चाह भूली चाहि-चाहि यद्यपि लड़ैती पाहि,
ऐसै प्रेम रंग रस मोद मद पागे हैं।
तेहि सुख की निकाई 'ध्रुव' पै कही न जाई,
तृपितौ न आई उर उरजनि लागे हैं।।१२।।

रस-विहार का स्वरूप सवैया

न आदि न अंत विलास करैं दोउ, लाल-प्रिया में भई न चिन्हारी।
नई-नई भाँति नई छबि कांति, नई नवला नव नेह विहारी।।

सतत् दर्शन करते रहने पर भी प्रियतम को प्रिया नित्य अनदेखी सी ही लगा करती हैं। उनके अतृप्त नेत्रों की पलकें एक निमेष काल के लिये भी नहीं जुड़तीं। वे समस्त रात्रि अपलक नेत्रों से प्रिया की सौन्दर्य-छबि को निहारा करते हैं। श्री प्रिया यद्यपि प्रियतम की समस्त कामनाओं का सतत एवं अतिशय पोषण करती हैं तथापि प्रियतम प्रेम के आनन्द रस आमोद के मद में ऐसे पगे रहते हैं कि उनकी लालसा को देख कर मूर्त्तिमान् लालसा भी चकित एवं आत्म-विस्मृत हो जाती है। युगल के इस सुख रङ्ग की उत्कृष्टता का वर्णन मुझ ध्रुवदास के लिये अशक्य है। आश्चर्य है कि ये युगल प्रेमी हृदय से हृदय मिलाए हुए भी सदैव अतृप्त बने रहते हैं।।१२।।

आदि अन्त रहित नित्य-निरन्तर विलास-परायण रहते हुए भी श्री लाड़िली-लाल युगल में प्रतिक्षण वर्द्धमान् रूप रस की इतनी अधिकता है कि वह मिले रहते हुए भी अपरिचित की भाँति नवीन बने रहते हैं। युगल की प्रत्येक चेष्टा नित्य नूतन है। उनकी परस्पर की छबि छटाऐं भी नित्य नवीन हैं। वे नित्य नव वर-वधू हैं। वे प्रेम तन्मय हुए निरन्तर मुख-दर्शन करते रहते

रहे मुख चाहि दियैं चित आहि, परे रस प्रीति सु सर्वसु हारी।
रहैं इक पास करैं मृदु हास, सुनौ 'ध्रुव' प्रेम अकत्थ कथारी।।१३।।

दोहा

नवल कुँवर दोउ रसिक-मनि, उपमा दीजै कौन।
चितै-चितै मुख-माधुरी, है रहियै 'ध्रुव' मौन।।१४।।

अनुपम युगल सवैया

पाग सुरंग बनी है छबीली के, भाँति अनूप सखीनि बनाई।
परयौ मन लाल कौ प्रेम के पेंच में, देखत पेंच रहे हैं लुभाई।।
बैंदी जराव की भाल दियैं, अरु नैननिं अंजन-रेख सुहाई।
तैसोई नत्थ कौ मोती बन्यौ, छबि छाइ रही न कही 'ध्रुव' जाई।।१५।।

हैं और प्रीति परवश हुए एक दूसरे पर अपना सर्वस्व न्यौछावर किये रहते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि निरन्तर साथ रहते हुए यह मृदुल ईषद् हास्य का अमृत उँड़ेलते रहते हैं। इनके प्रेम की कथा अनिर्वचनीय है।।१३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि दोनों नित्य नूतन कुँवर रसिक चूड़ामणि हैं, अनुपमेय हैं। इनकी मुख-माधुरी का सरस दर्शन ही सखियों का सर्वस्व धन है, जिसका वर्णन असम्भव है, अतः मौन रहना ही उचित है।।१४।।

आज रूप लावण्यमयी प्रिया के मस्तक पर सखियों ने पेंचदार पाग धारण कराई है, जिसके ललित पेचों की छबि को देख कर लाल का रस लोभी मन प्रेम के पेंच में बँध गया है। प्रिया के ललाट पर मणि जटित बिन्दी एवं उनके नेत्रों में अञ्जन-रेखा सुसज्जित है। तदनुरुप ही नथ के मौक्तिक की छबि भी परिव्याप्त हो रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं उसकी शोभा का वर्णन कर सकने में असमर्थ हूँ।।१५।।

चूँदरी लाल सुरंग छबीली की, ओढ़ैं छबीलौ महा छबि पाई।
केसनि गूँथि रची रुचि माँग ऽरु, नैननिं अंजन रेख बनाई।।
बैंदी दई हँसि लाड़िली रंग सौं, बेसरि लै अपनी पहिराई।
रूप बढ्यौ मन मोद चढ्यौ, 'ध्रुव' देखत नैंन निमेष भुलाई।।१६।।
पाग जँगाली बनी है किसोरी कैं, केसर रंग किसोर के माई।
बैंदी मृगंमद सोहै इतै, उत लाल रसाल अनूप बनाई।।
बेसरि नत्थ बनी झलकैं 'ध्रुव', खोजि रह्यौ उपमा नहिं पाई।
रूप-तरंग चितै मन मोद, सखी चहुँ कोद रही हैं लुभाई।।१७।।

छबि सौन्दर्यमयी प्रिया की धारण की हुई चटकदार अरुण वर्ण की चूनरी ओढ़ कर सहज सुन्दर प्रियतम आज महाछबि से युक्त हो रहे हैं। उन्होंने अपनी केश-चन्द्रिका का गुम्फन करके सुष्ठु सीमन्त-रेखा रच रखी है और नेत्रों में अञ्जन की रेखा सुसज्जित की है। लाल की इस मन-मोहिनी छबि को देखकर लाड़िली प्रिया ने आनन्दित हो कर मृदुल हास्यपूर्वक उनके विशाल भाल पर अपनी मणि-जटित बेंदी धारण करा दी है एवं नासाग्र पर नासा मुक्ता पहिना दिया है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिससे उनके रूप में और अधिक निखार आ गया है। मन भी नव उमङ्गों से तरङ्गायित हो उठा है, तब प्रिया, लाल की इस अभूत छबि को अपलक नेत्रों से देखती रह गई हैं।।१६।। आज सखियों ने किशोरी लाड़िली का नील वर्ण की पाग का शृङ्गार किया है एवं श्री लाल जी को केशर के वर्ण की पीत पाग का शृङ्गार धारण कराया है। प्रिया के ललित ललाट पर कस्तूरी की श्याम बेंदी सज रही है और उधर सखियों ने लाल के मस्तक पर अनुपम अरुण वर्ण की रसीली बिन्दिया शृङ्गारित की है। साथ ही नथ एवं बेसर की अनुपम द्युति तो ऐसी विलक्षण है कि उसकी उपमा खोजे नहीं मिलती। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस रूप-रसासव की उच्छलित तरङ्गों से मुदित मना सखियाँ चारों ओर विमुग्ध भाव से खड़ी हैं।।१७।।

चूँनरी लाल बनी है बिहारी कैं, पाग बिहारिनि के सिर सोहै।
छके नव नेह महा रस मेह, छकी सखि आइ जोई छबि जोहै।।
बेसरि पीय कैं नत्थ सुतीय कैं, बानिक रूप अनूपम मोहै।
भाँति रँगीली कही न परै सखि, या छबि की उपमा कहौ को है।।१८।।

कवित्त

प्यारी जू की सारी अति प्यारी लागै प्रीतम कौं,
सौंधे भींजी अँगिया सुरंग उर धारी है।
नवल रँगीलीजू के भूषन बिहारीलाल,
पहिरत बाढ़ी फूल जात ना सँभारी है।।

आज लाल वर्ण की चूनरी धारण किये हुए लाल एवं विहारिणि लाड़िली के मस्तक पर पाग का शृङ्गार अत्यन्त मनोहारी प्रतीत हो रहा है। इस अमित रूप रस की वर्षा में युगल तो भींजे हुए हैं ही, जो सखियाँ उनकी इस छबि का दर्शन कर रहीं हैं, वे भी इस छबि के प्लावन में सराबोर हो गईं हैं। प्रियतम की बेसर एवं प्रिया की नथ की छबि-बानिक अद्वितीय शोभामयी है, जो सब का चित्त हरण कर लेती है। हे सखि! युगल की यह रँगीली शृङ्गार छटा अनुपमेय है।।१८।। श्री प्रिया जू की धारण की हुई साड़ी प्रियतम को अत्यन्त प्रिय लगती है, आज उन्होंने उनका वही नीलाम्बर एवं सौरभ भीनी सुरङ्ग कञ्चुकी धारण कर रखी है। श्री प्रिया जू के वस्त्राभूषण पहिनने का लाल के मन में बहुत चाव रहता है और उन्हें धारण कर के उनके मन में जो प्रकर्ष उत्साह एवं आनन्द की संवृद्धि हुई है, उससे वे फूले नहीं समाते हैं। अति

जोई कछु प्रिया जू के अंगनि परस होत,
सोई प्रान जात होत ऐसी प्यारी प्यारी है।
'हित ध्रुव' प्रेम बात कैसैहूँ न कही जाति,
जानै सोई जिहि सिर मोहिनी सी डारी है।।१९।।

सवैया

उज्वल स्याम सुरंग सुहावनी, लाज भरी अँखिया अति सोहैं।
प्रेम भरी रस भाइ भरी 'ध्रुव', प्यार भरी पिय की दिसि जोहैं।।
बढ्यौ अनुराग सुरंग सुहाग, सबै अँग प्रीतम प्राननिं मोहैं।
लई छबि छीनि प्रवीन बिहारिनि, खंजन मीन कुरंगनि कोहैं।।२०।।

आसक्त लाल की मनोदशा ऐसी है कि जिस किसी वस्तु का श्री प्रिया के सुअङ्गों से स्पर्श हो जाता है, वही वस्तु उनको प्राणवत् प्रिय लगने लगती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की यह विचित्र गति कहते नहीं बनती। जिस पर प्रेम का जादू छा जाता है, वही इस बात को समझ सकता है।।१९।। नवल किशोरी प्रिया के श्वेत-श्यामल, रतनारे लाज भरे, रसीले नयनों की सुहावनी छबि अपूर्व सौन्दर्यमयी है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम रस भाव एवं स्नेह से पूरित ये नेत्र जब प्रियतम की ओर देखते हैं, तब प्रियतम के हृदय में अनुराग एवं सुहाग का आप्लावन छा जाता है। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग एवं प्राण सभी रस विमुग्ध हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रस प्रवीण नागरी प्रिया की सुन्दर अपाङ्गच्छवि ने खञ्जन, मीन और मृगी के नेत्रों की समस्त विशेषताओं को निस्प्रभ एवं तुच्छ कर दिया है।।२०।।

वसन्त-विहार कवित्त

खेलत बसंत होरी नवल छबीली जोरी,
उड़त गुलाल अनुराग कौ सुरंग री।
मृदु मुसकानि उर फूल एई फूल भये,
हाव-भाव सौंधे भींजे सोहैं अँग-अंग री।।
नैननिं की चितवनि छिरकनि प्रेम-नीर,
सींचत हैं पिय-हिय भरी रस-रंग री।
'हित ध्रुव' भींजे सुख बारिध विलास हाँस,
सोई सुख देखैं सखी दिनहिं अभंग री।।२१।।

सवैया

खेलत फाग भरे अनुराग सौं, लाड़िली-लाल महा अनुरागी।
तैसियै संग सखी सुठि सोहनी, प्रेम सुरंग सुधा-रस पागी।।

नवल छबि धाम युगल आज ऋतुराज वसन्त आगमन पर होली का शुभारम्भ करते हुए अनुराग की गुलाल उड़ा रहे हैं। उनकी मन्द मधुर मुसकान एवं हृदय का उल्लास ही पुष्प बन कर बरस रहा है। हाव-भाव रूपी सौरभी सार से भींगे हुए उनके श्री अङ्गों की छबि बड़ी मनमोहक है। प्रिया की प्रेम रस भरी चितवन ही सुरङ्ग प्रेम जल का छिड़काव है; जिसके द्वारा रस रङ्ग भरी प्रिया, प्रियतम के हृदय का सिञ्चन करती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि हास-परिहास रूपी सुख वारिधि-विलास में श्री युगल सदैव रसोन्मत्त बने रहते हैं, सखियाँ उसी सुख का अक्षुण्ण भाव से सेवन करती रहती हैं।।२१।। अनुराग की परावधि श्री लाड़िली-लाल युगल अनुराग-पूरित चित्त से फाग खेल रहे हैं। जैसे सरस अनुराग रञ्जित युगल हैं, तदनुरूप ही उनकी मन भाँवती सुन्दर सखियाँ भी सरस प्रेमसुधानुरञ्जित हैं। छबीली

चलैं पिचकारी चितौनि छबीली की, प्रीतम के उर अंतर लागी।
रंग कौ ओर न छोर सनेह कौ, देखि सबै उपमा 'ध्रुव' भागी।।२२।।
सखीनि की मंडली मध्य जु खेलत, रंग बिहारिनि संग बिहारी।
(लै) लै नव कुंकुम रंगनि छींटत, बंदन डारत नैन सँभारी।।
परै तहीं बूँद जहीं जहीं चाहियै, ऐसै प्रवीन सिँगार सिंगारी।
बढ्यौ 'ध्रुव रंग तरंग अनंग, सनेह की रासि रहै हैं निहारी।।२३।।
लाड़िली-लाल निकुंज में खेलत, आनँद प्रेम बिलास की होरी।
हैं अँखियाँ पिचकारी भरी 'ध्रुव', प्यार सौं छाँड़त प्रीतम गोरी।।
मैंन कौ खेल बढयौ सुख पुंज, बजै धुनि भूषन थोरी ही थोरी।
भयौ छबि कौ छिरकाव मनौं, जब साँवरे ओर हँसी मुख मोरी।।२४।।

प्रिया की चितवन रूपी पिचकारी की सरस धारा प्रियतम के हृदय में जा लगी और तन मन प्राण को रस रङ्गसिक्त बना गई। तबतो रङ्ग की न कोई सीमा रही और न प्रेम की। अपूर्व शोभामयी छटा के सम्मुख समस्त उपमाएँ अस्तित्त्वहीन हो गयीं।।२२।। सखियों के मण्डल में रस विलासिनी प्रिया श्री रसिकलाल के साथ बसन्त का खेल खेल रही हैं। वे नवीन केसर निर्मित रङ्ग से प्रियतम को रँगती है और उनकी आँखों को बचाते हुए बन्दन-धूर भुरकती हैं। प्रियतम के अङ्ग एवं वस्त्रों पर रङ्ग के बिन्दु वहीं-वहीं पड़ते हैं, जहाँ उन्हें पड़ना चाहिये। शृङ्गार कला प्रवीण प्रिया ने आज अद्भुत रीति से प्रियतम का शृङ्गार किया है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार मदन रङ्ग की उच्छलित तरङ्गों को देखते हुए प्रेम-पुञ्ज युगल भाव-मुग्ध हो रहे हैं।।२३।। आज नव-निकुञ्ज में रसिक लाड़िली-लाल उमङ्ग भरे प्रेम की विविध विलास रूप होली खेल रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि दोनों के सुरङ्ग नेत्र ही रङ्ग भरी पिचकारियाँ हैं, जिन्हें प्रिया-प्रियतम परस्पर एक दूसरे पर चला रहे हैं। इन पिचकारियों की मार से मदनोल्लास के साथ अपूर्व आनन्द की अभिवृद्धि हुई है और भूषणों की मन्द एवं मधुर झङ्कृति हो रही है। जब प्रिया, प्रियतम श्यामसुन्दर की ओर निहारती हुई मुख मोड़ कर हँस देती हैं, तब मानो छबि का ही छिड़काव हो जाता है।।२४।।

कवित्त

हंसजा विमल नीर सुंदर सुदेस तीर,
निर्त्तत मयूरी-मोर आनँद अधीर री।
कमल निकुंज कुंज मधुपनि होत गुंज,
बरसत सुख-पुंज रटैं पिक-कीर री।।
खेलैं तहाँ रस-रासि बिविध बिनोद हाँसि,
सुरँगित भये 'ध्रुव' अंगनि के चीर री।
बंदन डारत प्यारी छिरकैं लाल बिहारी,
रंगनि की बूँदैं बनीं सुभग सरीर री।।२५।।

सोरठा

खेलत कामिनि-कंत, भीनें रँग अनुराग में।
अद्‌भुत रास-बसंत, छबिहू तहँ भूली फिरै।।२६।।

हे सखि! निर्मल नीर-वाहिनी भानुनन्दिनी श्री यमुना के सुरम्य तट पर आनन्द विह्वल हुए मयूर-मयूरी नृत्य कर रहे हैं। कमल निर्मित विविध कुञ्जों में मधुप वृन्द की गुञ्जार हो रही है। तहाँ कीर-कोकिलाओं की काकली अमित सुख की वृष्टि कर रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं वहाँ रस-धाम श्री युगल अनेक प्रकार के हास्य विनोद-पूर्वक वसन्त क्रीड़ा में तन्मय हो रहे हैं। उनके श्री अङ्गों के परिधान बसन सभी रङ्ग रञ्जित हो रहे हैं। प्रिया अपने प्रियतम बिहारी लाल पर बूका बन्दन बुरक रही हैं और बिहारी लाल उन पर रङ्ग छिड़क रहे हैं, जिससे प्रिया का सुतनु रङ्ग की बूँदों से शृङ्गारित हो रहा है।।२५।। अनुराग के रङ्ग में रँगे हुए प्रिया लाल अद्भुत भाँति की वासन्ती रास-क्रीड़ा कर रहे हैं। उनके इस खेल को देखकर मूर्तिमान् छबि भी स्तम्भित एवं आत्म-विस्मृत हो रही है।।२६।।

रास-विहार सवैया

खेलत रास दोउ रस-रासि, विचित्र सुरंग कलानि में माई।
नई-नई भाँति नई गति लेत हैं, निर्त्तहूँ रीझि तहाँ बलि जाई।।
कंचन-मंडल में प्रतिबिंबित, अंगनि रूप-तरंगनि झाँई।
मनौं 'ध्रुव' चंद उभै छबि के, बिधु ऊपर निर्त्तत यौं उर आई।।२७।।
खेलैं मनौं अनुराग के बाग में, बाहु-लता छबि अंसनि दीने।
चहूँ दिसि राजैं सखीन के वृंद, विचित्र बनाइ सिंगारहि कीने।।
सारी सुही सब एकहि रंग, फबी पहिरैं कर-कंजनि लीने।
मध्य किसोर-किसोरी बने, दोउ रूप सने 'ध्रुव' रंग में भीने।।२८।।

हे सखि! रस राशि युगल श्री श्यामा-श्याम आज नृत्य की सुधङ्ग कलाओं को प्रकट करते हुए रास-क्रीड़ा कर रहे हैं, वे नये-नये नृत्य के भेद-विभेद दिखाते हुए नृत्य की नवीन गतियाँ लेते हैं, तब उनके कला कौशल पर रीझ कर साक्षात् नृत्य-कला बलिहार होने लगती है। उनके देदीप्यमान् अङ्गों की रूप-तरङ्गों का प्रतिबिम्ब जब कञ्चनमय रासमण्डल पर प्रतिविम्बित होता है तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो छबि सौन्दर्यमय युगल शशि चन्द्रमण्डल के ऊपर नृत्य कर रहे हों।।२७।। गलबहियाँ दिये हुए युगल मानो वृन्दावन-रूपी अनुराग-वाटिका में खेल रहे हैं। उनके चारों ओर विविध शृङ्गार-सुसज्जित सखियों के यूथ सुशोभित हैं। सभी सखियों ने एकसे अरुण वर्ण के परिधान धारण कर रखे हैं और सबने अपने-अपने कर-कमलों में लीला-कमल ले रखे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों के मध्य में रङ्ग भीने रूप-राशि नव दम्पति श्यामा- श्याम विराजे हुए अपूर्व शोभा से प्रकाशित हैं।।२८।।

श्री प्रिया-अङ्ग-माधुर्य कवित्त

माधुरी-तरंग रंग उपजत छिन-छिन,
रौंम-रौंम प्रति सोभा रही है लुभाइ कैं।
फूलनिं कौं छाँड़ि-छाँड़ि आवत मधुप धाइ,
तन की सुबास अति रही बन छाइ कैं।।
रूप की अनूप कांति कैसैहूँ न कही जाति,
नख आभा पर चंद गयौ है लजाइकैं।
'हित ध्रुव' पिय मन यहै सोच रहै दिन,
ऐसी सुकुमारी क्यौं हूँ देखी न अघाइ कैं।।२९।।
प्यारी जू की भौंहनि की सहज मरोर माँझ,
गयौ है मरोरयौ मन मोहन कौ माई री।
ऐसैं प्रेम रस लीन तिलहू ते भये छीन,
जैसैं जल बिन कंज रहै मुरझाइ री।।

श्री प्रिया के अद्भुत रूप-सौन्दर्य से नव-नव माधुरी की तरङ्गों का प्रतिपल उच्छलन होता रहता है। उनके लोम-प्रतिलोभ से प्रस्फुटित छबि पर लुब्ध होकर मूर्तिमती शोभा भी वहीं अचल निवास करने लगी है। श्री प्रिया के अङ्ग-सौरभ से आकर्षित होकर मधुप वृन्द अपने सेव्य पुष्पों के मकरन्द-पान का त्याग कर उनके समीप मँडराने लगे हैं; क्योंकि श्री प्रिया के दिव्य अङ्गों की सुगन्ध श्री वन की कुञ्ज-कुञ्ज में व्याप्त हो रही है। स्वामिनी के दिव्य रूप की अनुपम प्रभा वर्णनातीत है, उनके श्री चरणों की नख-द्युति छटा पर चन्द्र-द्युति लज्जित होती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक प्रियतम के अन्तर्मन में रात-दिन एक ही पछतावा घर किये रहता है कि ऐसी सुकुमारी सुन्दरी को मैं कभी भी जी भर कर देख नहीं पाया अर्थात् नेत्र इस रूप दर्शन से कभी परितृप्त न हो पाये।।२९।। अरी सखि! हमारी प्रिया जी की सहज वङ्क भृकुटियों के नर्तन में सब का मन मोहने वाले प्रियतम मोहन का भी मन मरोड़ में आ गया है। वे ऐसे प्रेमरस लीन हुए हैं कि अपना अस्तित्व ही भूल गये हैं, जैसे जल के अभाव में कमल मुरझा जाता है, वे ऐसे ही प्रेम

धीरज न नैंकु धरैं नैंना नेह-नीर ढरैं,
बिवस पगनि ओर ढरयौ सीस जाइ री।
व्याकुल विहारी लाल चितै अंक भरे बाल,
पाये प्रान तब 'ध्रुव' मृदु मुसिकाइ री।।३०।।

मान-रस कवित्त

नागरी नवल गुन सींव सब अंगनि में,
तेई भाइ जानिबै कौं नागर प्रवीन हैं।
रूप अरु जौबन की जैसीयै गरूरताई,
तैसै उत रसिक सिरोमनि अधीन हैं।।

विह्वल रहे आते हैं, उनका धैर्य रूपी बाँध टूट चुका है। उनके नेत्र सदैव अश्रुपूरित बने रहते हैं। उनका मस्तक प्रेम-विवश दैन्य-दशा में प्रिया के श्री चरणों की ओर निपतित होता रहता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम बिहारी लाल की इस प्रेम-वैचित्र्य दशा का अवलोकन करके नव बाला प्रिया मन्दस्मित पूर्वक उन्हें अपने अङ्क में विराजित कर लेती हैं, तब पुनः प्राणगत देह में जैसे प्राण लौट आये हों, ऐसे ही प्रियतम सावधान एवं प्रफुल्ल हो जाते हैं।।३०।।

नवल किशोरी प्रिया जिस प्रकार समस्त गुण कलाओं की राशि हैं, तदनुरूप ही नागर नवल-किशोर प्रियतम भी उनके गुणों के सुविज्ञ पारखी हैं। प्रिया जैसी रूप नव यौवना मद-गर्वीली हैं, तदनुरूप ही रसिक शिरोमणि प्रियतम प्रेमाधीन एवं दैन्य-भाव सम्वलित रसिक हैं। जब प्रिया तनिक सी रुखाई लिये मानवती सी होकर पीठ मोड़ कर बैठ जाती हैं, तब रसिक लाल प्रेम-विह्वल एवं अधीर हो उठते हैं और उनकी जल से वियुक्त मीन

नैंकु मुरि बैठैं जब व्याकुल ह्वै जात तब,
सहजहि गति ऐसी जैसैं जल मीन हैं।
रंच हँसि चाहत ही रौंम-रौंम होत फूल,
'हित ध्रुव' नेह जहाँ सदाईं नवीन है।।३१।।
प्रेम की तरंगनि में प्यारी जू कौ मन पर्‌यौ,
कछुक रुखाई छबि औरै भाँति भई है।
मानि पिय मान लीन्हौं हियौ गहवर दीन्हौं,
दीरघ उसाँस लेत भूलि सुधि गई है।।
प्रान प्यारे लाल जू की गति हेरि फेरि मन,
उर सौं रही है लाइ आँखें भरि लई है।
'हित ध्रुव' दुहुँनि कौ प्रेम कैसैं कह्यौ जात,
जानत हैं वेई छिन-छिन प्रीति नई है।।३२।।

जैसी स्थिति हो जाती है। किन्तु जब प्रसन्नमना प्रिया मन्दस्मित पूर्वक उनकी ओर दृष्टिपात करती हैं, तब उनका रोम-रोम खिल जाता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं इस प्रकार नव निकुञ्ज में प्रेम का विलास सतत नित्य नूतन बना रहता हैं।।३१।। आज प्रेमोद्भूत रस तरङ्गों में प्रिया का मन किसी अचिन्त्य गहराई में डूब गया है, जिससे वे अन्यमनस्क हुई किञ्चित् उपराम सी दिखाई पड़ रही हैं, जिसे देखकर प्रियतम को उनके मान का सम्भ्रम हो गया है, जिससे लाल का हृदय व्यथित हो उठा है। वे दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए चेतना-रहित से होने लगे हैं। अपने प्राण-प्रियतम लाल की यह दशा देखकर मृदुलमना प्रिया ने अपने मन को सावधान करके प्रियतम को हृदय से लगा लिया और उनके नेत्र प्रेम-सजल हो गये। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल की इस अद्भुत प्रीति-रीति का वर्णन सर्वथा अगम्य है। ऐसी नित्य नूतन एवं प्रतिक्षण वर्द्धमान् प्रीति के स्वाद को तो केवल यह रसिक युगल ही जानते हैं।।३२।।

प्रियतम की प्रेम-स्थिति कवित्त

जौलौं प्यारी बतराति चितै-चितै मुसिकाति,
पिय हिय लपटाति तौही लगि सांति है।
प्रेम नेम में प्रवीन याही रस भये लीन,
जैसैं जल माहिं मीन प्यारौ ऐसी भाँति है।।
रुचि ही की बेलि नई नैननिं में आनि बई,
बाढ़त है रस मई फैली अति जाति है।
आनँद के फूल ताहि लागे अनुराग पागे,
छिन-छिन डहडहे औरै 'ध्रुव' कांति है।।३३।।

प्रीति-परवशता कवित्त

जहाँ-जहाँ पग धरैं माधुरी कौ मन हरैं,
रूप गुन पाछैं फिरैं ऐसै सुकुमार री।
हाव-भाव सिंधु के तरंग उठैं अंग-अंग,
नेकही की चितवनि मोहे कोटि मार री।।

प्रफुल्ल मना प्रिया जब तक प्रियतम के साथ रस रङ्ग में ढली हुई वार्ता करती रहती हैं, उन्हें देख-देख कर मुस्कराती हुई हृदय से बारम्बार आलिङ्गित होती रहती है, उतनी ही देर के लिये प्रियतम सुख शान्ति का अनुभव करते हैं। प्रेम के भाव-विभावों के मर्मी रसज्ञ प्रियतम अपनी प्रिया के प्रेम-रसासव में ही छके रहते हैं। प्रिया के मधुर हास्य रस-विलासादि से विरहित होने पर उनकी दशा जल-विहीन मीन जैसी व्याकुल एवं व्यथित हो जाती है। उनके नेत्रों में अङ्कुरित नित्य नवीन प्रेम-लौल्य की लता निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हुई विकसित होती रहती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उस प्रेम रुचि की लता में अनुराग रञ्जित आनन्द-प्रसून खिले रहते हैं, जो प्रतिक्षण नव मुकुलित कान्ति से युक्त हैं।।३३।।

रूप-लावण्य धाम श्री लाड़िली लाल जहाँ-जहाँ अपना पाद-विन्यास

छिन-छिन नई-नई पानिप अनूप कांति,
देखैं तन झलकाति रहै न सँभार री।
'हित ध्रुव' चित-चोर नवल रँगीली जोर,
निसि दिन सखियनि कीने उर हार री।।३४।।

सवैया

तल्प-विहार

लाड़िली रंग भरी सुकुमारी, सिंगार सखीनि अनूप करयौ है।
रैंन बढ़यौ 'ध्रुव' रंग कौ खेल, महा सुख में रस-सिंधु तरयौ है।।
रहे छुटि बार टुटी लर हार, सु अंग कौ अंगनि रंग ढरयौ है।
मैंन-रची फुलवारि में मानहुँ, प्रेम कौ वारन आनि परयौ है।।३५।।

करते हैं, वहाँ की भूमि माधुर्य-मण्डित हो जाती है और तब रूप-लावण्यादि मूर्तिमान् हो उनका अनुगमन करने लगते हैं। उनके हाव-भाव के महार्णव की उच्छलित तरङ्गों से युगल के अङ्ग-अङ्ग लथ-पथ हैं। उनकी सरस उनहार एवं मन्दस्मितिमयी चितवन कोटि काम छबि का विमोहन करने वाली है। सुकुमार नव दम्पति श्री श्यामा-श्याम का नव नवायमान् रूप, अनुपम लावण्य की कान्ति से युक्त ऐसा सुन्दर एवं मोहक है कि उसे देखकर सुध-बुध विस्मृत हो जाती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे चित्त को चुराने वाली इस नित्य नूतन रँगीली जोड़ी को सखियों ने सर्वदा के लिये अपना हृदंय-हार बना लिया है।।३४।।

आज सखियों ने कोमलाङ्गी रङ्गभरी लाड़िली प्रिया को नख-शिख पर्यन्त अत्युत्तम भाँति से शृङ्गारित किया है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया ने अपने प्राण-प्रियतम के साथ सम्पूर्ण रात्रि महारस-रङ्गमयी केलि रूपी रस सिन्धु के अवगाहन में व्यतीत की है, जिससे उनकी कुन्तल राशि विलगित हो रही है, हारावली त्रुटित है और उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से सुरतालस छबि प्रस्रवित हो रही है। आज वे ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो मीनध्वज-रचित रूप की पुष्पवाटिका में प्रेमरूपी गयन्द ने प्रवेश करके उसे अस्त-व्यस्त कर डाला हो।।३५।।

सोरठा

फूल सौं जब मुसिकाति, चितै लाड़िली लाल तन।
को बरनै यह भाँति, प्रीतम हूँ रहे भूलि तहाँ।।३६।।

सवैया

मैंन की बेलि बढ़ी पिय हीय में, फूल मनोरथ बाढ़े अपारा।
एकहि रंग सुरंग रहे दिन, सीच्यौ करैं रस-प्रेम की धारा।।
रीझि कै चाहि रही सुकुमारि, बिहारी किये अपने उर-हारा।
देखत ही 'ध्रुव' या छबि कौं, सिर नाइ लजाइ गये सत मारा।।३७।।

कवित्त

नवल-नवेली हेली अलबेली भाँति दोउ,
रस-केलि सहजहि रंग भरे करहीं।
बदन-बदन जोरैं मिलि रही नैन-कोरैं,
थोरे-थोरे बेसरि के मोती थरहरहीं।।

रूप-निधि लाड़िली प्रिया जब प्रसन्न मुद्रा में प्रियतम लाल की ओर देखकर मुस्कराती हैं, तब प्रियतम भी रस में सराबोर हुए देहानुसन्धान-रहित हो जाते हैं। हे सखि ! इस अद्भुत प्रीति-रीति का वर्णन कर सकने का सामर्थ्य किसमें होगी ?।।३६।। आज प्रियतम के हृदय में काम-केलि लता विकसित हुई है, जिसमें विविध अभिलाषाओं के प्रसून प्रफुल्लित हुए हैं। उनके हृदय में उल्लसित हुई यह सुरङ्ग मदन-बेलि प्रेम-रस-धारा से निरन्तर सिञ्चित रहने के कारण सदैव लहलहाती रहती है। प्रियतम की इस मदनोल्लास-पूरित प्रेम- छटा को देखकर रिझवार प्रिया मुग्ध हो गयीं और उन्होंने हृदय-माल की भाँति प्रियतम को अपने हृदय पर सुशोभित कर लिया, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, उस समय रस-राशि युगल की मनोहारी छबि को देखकर अनन्त कामदेव भी लज्जित हो गये।।३७।। आज हे सखि ! युगल नवल लाड़िली-लाल सहज आनन्द मोद में भरे हुए रस-केलि परायण

आरस में अरसानी छबि न परै बखानी,
प्यार सौं लटकि प्यारे पिय पर ढरहीं।
'हित ध्रुव' सखिनि की जीवनि है यहै सुख,
रुख लियैं दुहुँनि कौ मन अनुसरहीं।।३८।।

सवैया

कही न परै मुख की छबि पानिप, राजत आज रँगीली विहारिनि।
भूलि रहे बिसरी सुधि देह की, मैंन-मनोरथ बाढ़े अपारनि।।
मोह के सिंधु परे मन-मोहन, हेरत नेह-नवेली-निहारनि।
लिये 'ध्रुव' हेत सौं लाइ हियैं, पिय देखि सखी सुकुमारी, सँभारनि।।३९।।

हैं। उनके मुख से मुख मिल रहे हैं एवं श्वासानिल से उनकी बेसर के मुक्ता दोलायित हैं। आलस में मदमाती लाड़ भरी प्रिया जब प्रियतम पर लटक जाती हैं, तो उस समय की अपूर्व छवि-छटा का वर्णन कर सकना असम्भव है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल का यह सरस विहार ही तत्सुखमयी सखियों के प्राणों का अवलम्ब है, और वे युगल की रुचि लिये सतत सेवा में तत्पर रहती हैं।।३८।। आज रङ्ग भरी कामिनी-प्रिया के मुख की लावण्यमयी छबि-छटा अपूर्व है, जिसे देखकर रसिक लाल चकित एवं देह-विस्मृत हो गये हैं। उनके मन में प्रेम की नाना अभिलाषायें उदित हो हिलोरें लेने लगी हैं। नवेली प्रिया के अद्भुत प्रेम-रङ्ग को देखकर लाल आज मुग्धता के रसार्णव में मग्न हो गये हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम की इस रसलीन स्थिति को देखकर प्रिया ने प्रीतिपूर्वक उनको अपने हृदय से लगा लिया है। हे सखि! तब उनका यह लाड़-पूर्वक प्रियतम को सँभालना तो देखते ही बनता है।।३९।।

कवित्त

प्रेम के खिलौना दोउ खेलत हैं प्रेम-खेल,
प्रेम-फूल फूलनि सौं प्रेम-सेज रची है।
प्रेम ही की चितवनि मुसिकनि प्रेम ही की,
प्रेम रँगी बातैं करैं प्रेम-केलि मची है।।
प्रेम के तरंगनि में प्रीतम परे हैं दोऊ,
प्रेम प्यार-भार प्यारी पिय-हिय लची है।
'हित ध्रुव' प्रेम भरी प्यारी सखी देखैं खरी,
हित-चितवनि छबि आनि उर सची है।।४०।।

प्रियतम का प्रेम-आहार

कवित्त

प्यारी जू की उनहार पिय कै अहार यहै,
हियहू कौ हार छिन चित तें न टारहीं।
अंग की सुवास पर भ्रमत भँवर मन,
लोचन छबीली जू की छबि ही निहारहीं।।

ये श्यामा-श्याम प्रेम के खिलौने हैं, जो निरन्तर प्रेम-क्रीड़ा में मग्न रहे आते हैं। सखियों ने इनकी प्रेम-क्रीड़ा के लिये उत्साह पूर्वक शय्या की रचना की है। इनकी परस्पर की चितवन उनहार एवं मुसकान सभी प्रेम में रँगी हुई है। इनकी सहज वार्त्ता भी प्रेममयी है और इनकी समस्त केलि प्रेम राग रञ्जित है। ये युगल प्रेम-सिन्धु की प्रेमोच्छलित तरङ्गों में नित्य तरङ्गायित रहते हैं। आज प्रियतम के अतिशय लाड़ को प्राप्त कर सुहाग भरी लाड़िली प्रेम-भार से भारान्वित हुई प्रियतम के हृदय पर झुक गयी हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की लाड़-भाजन प्रेम भरी सखियाँ, जिनके हृदय में युगल की हितमयी चितवन चुभी हुई है, आज युगल की प्रेम-केलि का दर्शन करके अघाती नहीं हैं।।४०।।

प्रिया जू की रूप-लावण्यमयी छबि प्रियतम की प्राण-पोषक सञ्जीवनी

पल-पल पानिप तरंग-रंग औरै-और,
माधुरी सुभाइनि की अमित अपारहीं।
'हित ध्रुव' प्रेम-रस-बिवस रहत दिन,
चितै-चितै मुख ओर प्राननि कौं वारहीं।।४१।।
आज की छबीली छबि-छटा चित बेधि रही,
कही नहीं जाति कछू औरै गति भई है।
नवल युगल-हास चितवति ठाढ़ी पास,
मानौं तेहि ओर नई नेह-बेलि बई है।।
'हित ध्रुव' नीरज से नीर भरे ढरैं नैन,
बोलति न कछू बैंन चित्र सी ह्वै गई है।
नैंना छाइ लीन्हें रूप परी तब प्रेम कूप,
बाकी गति जानै सोई जेहि अनभई है।।४२।।

है। उन्हें प्रिया के हृदय पर आभूषित हार भी विस्मृत नहीं हो पाता है। प्रिया के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से उत्थित सौरभ पर प्रियतम का मन रूपी भ्रमर सदा मँडराता रहता है। प्रियतम के नेत्र प्रिया की मुख-छबि पर ही अटके रहते हैं। प्रिया के श्रीमुख के लावण्य की छबि-तरङ्गें नित्य नवीन हैं एवं उनकी भाव भङ्गिमाओं का माधुर्य भी अमित एवं अपार है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम प्रिया-रूप सौन्दर्य के दर्शन से रस-विवश हुए उनके रूप-रसासव का पान करके बार-बार अपने प्राण न्यौछावर करते रहते हैं।।४१।। आज सुषमा-सींव रँगमगे युगल की अनुपम छटा ने सखियों का हृदय बींध दिया है और उस समय प्रेम रस-रङ्गभरी उन सखियों की गति भी विचित्र रस-सम्पृक्त हो गई है; वे समीप में स्थित रहकर उनके मञ्जुल मृदुल हास्य को देखती हुई ऐसा अनुभव करती हैं, मानो नव वर-वधू युगल दम्पति के हृदय में एक नवीन प्रीति लता का उद्भव हुआ है। श्री हित ध्रवुदास जी कहते हैं कि सखियों के कमल की भाँति खिले नेत्रों में प्रेमाश्रु डबडबा आए और तत्काल ही उनमें अश्रुरूपी

सखियों का युगल-प्रेम सवैया

आलिन-प्राननि की मनौं मूरति, लाड़िली-लाल बनाइ सँवारे।
जीवति हैं सब देखि दुहूँनि कौं, राखतिं ज्यौं अखियाँनि में तारे।।
खान रु पान बिलास-बिनोद, आहार यहै तिनके सुख सारे।
रूप-बिलास सनेह की सींव, निहारि रहीं 'ध्रुव' नैन न टारे।।४३।।

अभिलाषा सवैया

रूप की रासि किसोर-किसोरी, रँगे रस-केलि निकुंज बिहारा।
माते अनंग प्रवीन सबै अँग, फूल सिरीषहु ते सुकुमारा।।

प्रेम धारा निर्झरित होने लगी। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी और रस-विथकित दशा को प्राप्त हुईं वे चित्र की भाँति खड़ी की खड़ी रह गयी हैं। युगल की अद्भुत रूपलावण्यमयी प्रेम-छकी चितवन का अवलोकन कर सखियों का हृदय प्रेम गह्वर में निमग्न हो गया और उस समय हितमयी उन प्रेम रङ्ग-भरी सखियों की क्या स्थिति हुई, यह बता सकना कठिन है, क्योंकि यह नितान्त अनुभव गम्य है।।४२।।

श्री श्यामा-श्याम की यह अनुपम जोड़ी तत्सुखमयी सखियों के प्राणों में समाहित रहनेवाली जोड़ी हैं, जिसे वे निशिदिन प्रीति पूर्वक सँवारा करती हैं। इन सखियों का प्राणपोषक आहार युगल-छबि का दर्शन है, ये सखियाँ प्रतिपल नेत्र-तारकों के समान युगल को सँभालती रहती हैं। श्री युगल का सुख ही इन सखियों का भोजन, पान सुख एवँ आनन्दोल्लास है, जिसके चिन्तन में ये सदा-सर्वदा तल्लीन रहती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रूप, रस एवं प्रेम की अवधि श्री श्यामा-श्याम का निर्निमेष नयनों से दर्शन ही इन सखियों का जीवन सर्वस्व है।।४३।।

रूपघनाकृति श्री लाड़िली-लाल निभृत निकुञ्ज में विलसित होने वाली मधुर शृङ्गार केलियों के रङ्ग में सदा रँगे रहते हैं। जो प्रेम की समस्त कलाओं में निपुण एवं शिरीष कुसुम से भी अधिक सुकुमार हैं, वे अहर्निश मेरे हृदय

बसौ उर-नैननिं में दिन-रैन, नसौ मन के जिते आहिं बिकारा।
जाँचत बात न और कछु 'ध्रुव', देहु प्रिये रस-प्रेम की धारा।।४४।।

श्री प्रिया जी का स्वभाव कवित्त

सहज सुभाव पर्‌यौ नवल किसोरी जू कौ,
मृदुता दयालुता कृपालुता की रासि हैं।
नैंकहू न रिस कैहूँ भूलेहूँ न होत सखी,
रहत प्रसन्न सदा हियैं मुख हाँसि हैं।।
ऐसी सुकुमारी प्यारे लाल जी की प्रान-प्यारी,
धन्य-धन्य-धन्य तेई जे इनके उपासि हैं।
'हित ध्रुव' और सुख देखियत जहाँ लगि,
सुनियत तहाँ लगि सबै दुख-पासि हैं।।४५।।

एवं नेत्रों में छाये रहें और उनके कृपा प्रसाद से मेरे मन के सभी कल्मष दूर हो जायँ। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इससे अधिक मेरी कोई वाञ्छा नहीं है, वाञ्छा है तो मात्र इतनी ही कि श्री लाल-वल्लभा लाड़िली अपनी सरस प्रेम-धारा मेरे हृदय में प्रवाहित कर दें।।४४।।

साक्षात् अनुग्रह मूर्ति नवल किशोरी लाड़िली का सहज स्वभाव अतिशय कोमल, अनन्त करुणामय एवं कृपानिधि स्वरूप है। वे कभी किसी पर भूल कर भी कुपित होना नहीं जानतीं। हे सखि ! श्री लाड़िली का हृदय सदा प्रसन्नता से आपूरित रहता है। वे सर्वदा शुचि-स्मिता हैं। प्रियतम श्री लाल की प्राण-सञ्जीवनी हैं। ऐसी कोमलाङ्गी प्रिया के सुकुमार पादपद्मों के अनन्य उपासक ही धन्यातिधन्य हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री राधा नवल किशोरी के सुकुमार चरण-कैङ्कर्य-सुखके अतिरिक्त विश्व में जहाँ तक सुख-संज्ञक देखे और सुने जाने वाले सुख हैं, वस्तुतः वे सब दुःखों में आबद्ध करने वाले पाश ही हैं।।४५।।

प्रार्थना सवैया

ऐसी करौ नव लाल रँगीले जू, चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे दुख सुक्ख रहे लगि देह सौं, ते मिटि जाँइ अरु लोक-बड़ाई।।
संगति-साधु वृंदावन कानन, तौ गुन-गाननि माँझ विहाई।
छबि-कंज-चरन्न तिहारे बसौ उर, देहु यहै'ध्रुव' कौं ध्रुवताई।।४६।।

दोहा

सीसफूल सिखि-चंद्रिका, सदा बसौ मन मोर।
अरु जब चितवति लाड़िली, पिय तन नैननि कोर।।४७।।

उपसंहार दोहा

इकसत विंस (अ)रु पंच मिलि, भये सवैया आहि।
मन दै यह सिंगार-सत, छिन-छिन प्रति अवगाहि।।४८।।

हे नित्य नव रङ्ग रँगीले लाल ! ऐसी कृपा करो कि मेरा यह चित्त आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं आकर्षित ही न हो। प्रारब्धयोग से प्राप्त होने वाले देह सम्बन्धी सुख-दुःखादि की मुझे प्रतीति भी न हो और लोक-प्रतिष्ठादि की भावना भी समाप्त हो जाय। मेरा जीवन श्री वृन्दा-कानन में रसिक सन्तों के सत्सङ्ग में ही लगा रहे एवं आपके सौन्दर्य-राशि चरणारविन्द सदा मेरे हृदय-पटल पर विराजमान् रहें, बस इस 'ध्रुवदास' को यही एक अटल स्थिति प्रदान कीजिये।।४६।। प्रिया-प्रियतम की शीश-फूल एवं मयूर चन्द्रिका सदा मेरे मन में बसी रहैं एवं जब लाड़िली प्रिया, प्रियतम की ओर असमोर्द्ध प्रीति का उच्छलन करती हुई कटाक्ष निपातन करती हों तो उस समय की मनोहारी छबि मेरे हृदय में रमी रहे।।४७।।

अस्तु, शृङ्गार-शत की तीनों शृङ्खलाओं में सवैया एवं कवित्त सब मिलाकर एक सौ पच्चीस छन्द हैं। हमें मनोयोगपूर्वक इस शृङ्गार-शत का अनुशीलन करना चाहिये।।४८।।

नव किसोरता माधुरी, एक वैस रस एक।
या रस बिनु कहियै न कछु, धरियै 'ध्रुव' यह टेक।।४९।।
रस-पति रस-सिंगार कौ, यह रस है सिंगार।
धन्य-धन्य तेई जु नर, जिनकै यहै बिचार।।५०।।
सब तें कठिन उपासना, प्रेम-पंथ रस-रीति।
राई सम जो चलै मन, छूटि जाइ 'ध्रुव' प्रीति।।५१।।
प्रेम-भजन बिन स्वाद नहिं, भजन कहा बिनु स्वाद।
देत प्रान मृग बिवस है, सुनत कपट कौ नाद।।५२।।

रसिक संतों के प्रति उपदेश करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सम रूप-वयस् नित्य किशोर श्यामा-श्याम के नित्य विहार का कथन-श्रवण एवं चिन्तन ही रसिक उपासकों का ध्येय है और उन्हें चाहिये कि अनन्यता पूर्वक उसमें चित्त समाहित करें।।४९।। रस संज्ञा से अभिहित जितने प्रकार के रस हैं, उनमें सिरमौर रस है—शृङ्गार-रस। इस शृङ्गार-रस का भी राजरस शृङ्गार, युगल की उज्ज्वल शृङ्गार-केलि नित्य-बिहार रस है। वे साधक, जिनकी उपासना श्री युगल के नित्य-विहार के चिन्तन की है, वास्तव में धन्यातिधन्य हैं।।५०।। प्रेम-मार्गीय रस-रीति की उपासना सब उपासनाओं से कठिन है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि राई के समान किञ्चित् भी मन के विचलन से प्रेम- प्रीति में अन्तराय पड़ जाता है।।५१।। प्रेम, जीव-स्वभाव का मौलिक तत्त्व है। इसके अभाव में भजन केवल क्रिया मात्र, स्वाद रहित एवं नीरस हो जाता है, अतएव स्वाद-हीन भजन का अस्तित्व ही क्या है? देखो, बहेलिये की कपटमयी नाद-माधुरी में भी रसास्वादी मृग, रस-विवश होकर अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देता है।।५२।।

या रस सौं जे रहे रँगि, तिनकी पद-रज लेहु।
जिन समुझी यह बात 'ध्रुव' सुफल करी तिन देहु।।५३।।
भये कवित सिंगार के, इकसत अरु पच्चीस।
दोहनि मिलि सब ठीक भये, इकसत दस चालीस।।५४।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिनका हृदय युगल किशोर के प्रेम राग से अनुरञ्जित् है, उनकी चरण-धूलि सदैव मस्तक पर धारण करनी चाहिये। जिन्होंने उपासना के इस मर्म को भली भाँति समझ लिया है उनका ही मानव-जन्म सफल एवं कृतार्थ है।।५३।। शृङ्गार-शत में एक सौ पच्चीस कवित्त हैं और दोहों को मिलाकर इनकी संख्या एक सौ पचास है। इस प्रकार शृङ्गार-शत की तीसरी शृङ्खला सम्पन्न हुई।।५४।।

●

१५
मणि शृङ्गार

मङ्गलाचरण दोहा

(श्री) हरिवंश-हंस आवत हियैं, होत जु अधिक प्रकास।
अद्भुत आनँद प्रेम कौ, फूलै कमल बिलास।।१।।

(श्री) प्रिया रूप-माधुरी दोहा

नवल किसोरी सहजहीं, झलकति सहजहि जोति।
उपमा दै बरनौं तिनहिं, यह ढीठौ अति होति।।२।।
रूप-रंग कौ सार तन, सार-माधुरी अंग।
चंद-सार कौ मोद मुख, कांति-सार कौ रंग।।३।।
ललित लड़ैती कुँवरि कौ, बरनौं कछु इक रूप।
पिय तन-मन जो पूरि रह्यौ, मोहन सहज सरूप।।४।।

श्री हित ध्रुवदास जी महाराज ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में सर्वप्रथम श्री हित हरिवंश चन्द्र का स्मरण करते हुए कहते हैं कि श्री हित हरिवंश प्रेम रूपी सूर्य हैं, उनके उदय होते ही हृदय आलोकित हो जाता है एवं प्रेमानन्द का अद्भुत कमल प्रफुल्लित हो जाता है।।१।।

नवल किशोरी श्री राधा वह सहज सुन्दरी हैं, जिनका ज्योतिर्मय सहज सौन्दर्य अनुपम है, जिसका वर्णन उपमाओं के आधार पर करना अति धृष्टता है।।२।। श्री राधा का दिव्य वपु, रूप एवं आनन्द का सार है एवं उनका प्रत्येक अङ्ग मूर्त्तिमान् माधुर्य की परावधि है। श्रीमुख चन्द्रमा के निजानन्द का तात्पर्य है तथा समस्त कान्ति का सार रूप श्री स्वामिनी के वपु का वर्ण है।।३।। अब मैं ललित लाड़िली कुँवरि किशोरी के रूप सौन्दर्य का कुछ वर्णन करूँगा, जो सहज मोहन है एवं प्रियतम के तन-मन-प्राण में आपूरित है।।४।।

अतिहि सोहिनी मोहिनी, पिय-मन सुख की सींव।
उपमा सब सेवतिं तिनहिं, कीन्हें नीची ग्रीव।।५।।
नवल छबीली बदन मनौं, आनँद मोद कौ फूल।
इक रस फूल्यौ रहत दिन, पिय-तन जमुना-कूल।।६।।
कुंडल-दुति अरु मुख-प्रभा, राजति ऐसी भाँति।
झलमलात मिलि एक ठाँ, मनौं रवि-ससि की कांति।।७।।
चिकुर चंद्रिका रचि रुचिर, रची मनोहर बानि।
मानौं घटा सिंगार की, जुरी चंद पर आनि।।८।।
लटकनि बैनी की ललित, फूलनि गुही सुढार।
मनौं हासि युत मेरु तें, उतरति रविजा-धार।।९।।

नवल किशोरी श्री राधा अत्यन्त रूप-लावण्यमयी मनोमुग्धकारिणी हैं। वे प्रियतम के अन्तर् मन के सुखों की सीमा हैं। जिनके सम्मुख समस्त उपमायें नत-ग्रीवा हो कर सेवा में प्रस्तुत रहती हैं।।५।। ऐसी नित्य नव छबिमान् किशोरी का श्रीमुख क्या है, मानो आनन्द एवं मुग्धता का विकसित पुष्प है, जो प्रियतम के यमुना-पुलिन रूपी नील तनु में निरन्तर एक रस प्रफुल्लित है।।६।। लाड़िली के श्रीमुख की कान्ति एवं श्रवण कुण्डलों की आभा इस प्रकार सुशोभित है, जैसे सूर्य और चन्द्रमा की मिलित कान्ति एकत्र रूप से चमत्कृत हो रही हो।।७।। सच्चिकण केश-राशि अत्यन्त मनोहर रीति से गुम्फित एवं कबरी-बद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्तिमान् शृङ्गार रूपी श्यामवर्ण मेघच्छबि चन्द्रमा के ऊपर छाई हुई है।।८।। पुष्प गुम्फित सुढार वेणी की ललित लटक ऐसी लगती है, जैसे यमुना की नील-धारा मुस्कुराती हुई पर्वत-शिखर से नीचे उतर रही हो।।९।।

सीस-फूल रह्यौ झलकि कै, तैसियै मंग सुरंग।
मानौं छत्र सुहाग कौ, लियैं अनुरागहि संग।।१०।।
निरखि अरुन बैंदी छबिहि, मति की गति भई मूक।
मानौं विधु पूज्यौ सखिनु, आनि फूल बंधूक।।११।।
बंक-भृकुटि कल सोहिनी, अलक जुरी तहाँ आनि।
मानौं पिय मन-मीन कौं, बनसी राखी बानि।।१२।।
लोइन तौ स्रवननि लगे, बिबि कुंडल झलकात।
मनौं कंज हित जानि कैं, पूछन गये कछु बात।।१३।।
अंजन युत चंचल चपल, अंचल में न समाहिं।
अति विसाल उज्जल सुरँग, चुभे लाल मन माहिं।।१४।।

सुन्दरी किशोरी के मस्तक पर शीशफूल की जैसी जगमगाहट है, तदनुरूप सिन्दूर-रञ्जित माँग की शोभा भी उद्दीप्त है, मानो शीश फूल रूपी सौभाग्य-छत्र ने अरुणिम अनुराग को अपने सङ्ग विराजित कर लिया है।।१०।। श्री किशोरी के ललाट-पटल पर लाल रङ्ग की बिंदी की छबि देख कर बुद्धि विस्मित रह जाती है, ऐसा प्रतीत होता है मानो सखियों ने बन्धूक पुष्प से चन्द्रमा का पूजन किया हो।।११।। उनकी केश लट का सुन्दर सुहावनी बाँकी भ्रकुटियों के समीप आ जुड़ना ऐसा लगता है मानो प्रियतम के मन रूपी मीन को फँसाने के लिये बन्सी डाल रखी हो।।१२।। श्री प्रिया के विशाल नेत्र कर्णों का स्पर्श करते हैं। वहीं युग कुण्डलों की लोल छबि भी उद्दीप्र है, तहाँ ऐसा आभास होता है मानो कमल अपना हित मान कर कानों से कुछ पूछने गये हों।।१३।। अति चञ्चल, अति विशाल, उज्ज्वल, रतनारे नयन जो पलकों के अञ्चल में घिरते नहीं हैं, लाल के मन को बींध रहे हैं।।१४।।

सहजहिं सूच्छम अलक छुटि, परी पलक पर आइ।
खँजन मीन मनु ग्रहन कौ, विधु दई पासि चलाइ।।१५।।
स्रवननि छबि ताटंक दुति, रहि गंडनि झलकाइ।
मनौं भान आभा परी, कंज-दलनि पर आइ।।१६।।
कहि न सकत नासा बनक, अधर सुरंग निहारि।
मानौं शुक झुकि छकि रह्यौ, मन में कछू विचारि।।१७।।
बेसर की थरहरनि छबि, मीनरका मनु ऐंन।
पिय-हिय-ह्रद में मीन मन, ताकौं चितवत लैंन।।१८।।
अरुन स्याम उज्जल दसन, अति छबि सौं झलकाहिं।
कंज में अलि मुक्तनि सहित, मनु रँगे बंदन माहिं।।१९।।
सोभा-निधि वर चिबुक पर, स्याम बिंदु सुख देत।
रहि गयौ अलि-सावक मनौं, कंज कली रस हेत।।२०।।

केश राशि से विलग हुई एक सूक्ष्म लट स्वाभाविक गति से पलक पर आ पड़ी है, लगता है चन्द्रमा ने खञ्जन और मीन को पकड़ने के लिये कोई फन्दा फेका हो।।१५।। युगल कर्ण की छबि और तरल ताटङ्क-द्युति गण्डमण्डल पर ऐसी दमक रही है, यथा कञ्ज-दलों पर सूर्य की आभा झलमला रही हो।।१६।। नासिका की सुन्दर रचना अवर्णनीय है एवं अरुण अधरों की सुन्दर छबि को देखकर लगता है, मानो शुक लाल अधरों को देख कर नमित, मुग्ध एवं चकित है।।१७।। दोलायमान् नासा-मौक्तिक की छबि मत्स्यरेका की भाँति है, जो प्रियतम के ह्रदय-सरोवर में स्थित मन रूपी मीन को पकड़ लेने का सन्धान कर रहा है।।१८।। किञ्चित् श्याम रेखा युक्त अरुण एवं श्वेत दन्तपङ्क्ति अतिशय छबि से प्रतिबिम्बित हो रही है। ऐसा लगता है सिन्दूर-रञ्जित भ्रमर मुक्ता सहित कमल कोष में आबद्ध हों।।१९।। श्रेष्ठ शोभा-निधि चिबुक पर श्याम वर्ण का लघु बिन्दु अत्यन्त सुखदायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कमल कली का रस लेता हुआ अलि-छौना ठिठक कर जहाँ का तहाँ रह गया हो।।२०।।

नील बिंदु उपमा दुतिय, कहा कहौं अतिहिं अनूप।
मानौं पिय मन विवस है, पर्‌यौ आनि छबि-कूप।।२१।।
द्वै लर मोतिनु कंठ बनी, डारी सब छबि निंद।
मानौं पूरन चंद पर प्रगट्यौ दुतिया इंद।।२२।।
जलज-हार हीरावली, बिच-बिच मनि झलकाहिं।
मानौं मैंन तरंग उठैं, रूप-सरोवर माहिं।।२३।।
रतन खचित चौकी ललित, जगमग-जगमग होति।
बिबि गिरि-कंचन बीच मनु, छबि-रवि कियौ उदोति।।२४।।
भूषन युत मृदु भुजन कौं, निरखि लाल रहे भूलि।
मानौं छबि की लता द्वै, फूलनि सौं रहीं फूलि।।२५।।
उरज पीन कटि छीन छबि, नव किसोर रहे चाहि।
मानौं आनँद बेलि सौं, लागे सुख-फल आहि।।२६।।

चिबुक विराजित श्याम बिन्दु की द्वितीय अनुपम उपमा यह है कि मानो प्रियतम का रूप-विवश मन, छबि के कूप में गिर गया हो।।२१।। झीनें पोतों की दुलरी कण्ठ देश में सुशोभित हो कर अन्य छबियों को तिरस्कृत कर रही है, मानो राका चन्द्र पर द्वितीया का इन्दु उदय हुआ हो।।२२।। मुक्ता हार एवं हारावली के बीच-बीच में मणियों की झलक ऐसी लगती है, जैसे रूप के तड़ाग में मदन की तरङ्गें लहरा रही हो।।२३।। वक्षस्थल पर मणिमण्डित ललित चौकी ऐसे जगमगा रही है मानो युग कनक-गिरि के मध्य छबि का सूर्य उदित हो।।२४।। जिन भूषण भूषित कोमल भुजलताओं का अवलोकन कर के श्री लाल जी अपनें आप को विस्मृत कर बैठे हैं, वे भुजाएँ क्या हैं मानों पुष्पाच्छादित युगल छबि-लताएँ।।२५।। सुपुष्ट वक्षोज एवं क्षीण कटि-प्रदेश की छबि को नव किशोर प्रियतम जके-थके से देखते ही रह जाते हैं। ऐसा लगता है मानो आनन्द की लता में सुख के दो फल लगे हों।।२६।।

आई उपमा और उर, बस किये मोहन मैंन।
मुँदे कंज देखत मनौं, खुले कमल पिय नैन।।२७।।
अति सुंदर अँगिया बनी, सौंधे सनी सुरंग।
पिय मन अलि तहाँ भ्रमत रहै, तजत न कबहूँ संग।।२८।।
नीलांबर छबि फबि रही, मन में रहत विचार।
मानौं सार सिंगार कौ, ओढ़ैं वर सुकुमार।।२९।।
सारी पीरी जरकसी, झलकत छबि सौं जोति।
सुबरन की वरषा मनौं, कालिंदी पर होति।।३०।।
जब सुरंग सारी सुही, पहिरति भरी सुहाग।
अंतर भरि मनु उमँगि कै, प्रगट्यौ पिय-अनुराग।।३१।।
राजति सुंदर उदर पर, अद्‌भुत रेखा तीन।
देखत सींवा रूप की, ललन भये आधीन।।३२।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे मन में इस सम्बन्ध में एक और अनूठी उपमा स्फुरित हो रही है, मानो मदन-वश्य मोहन के विकसित नेत्र-कमल मुँदी कमल-कलियों का दर्शन कर रहे हैं।।२७।। वक्षस्थल पर अति सुन्दर सुरभित अरुण कञ्चुकी सुशोभित है, जहाँ प्रियतम का मन रूपी भ्रमर चारों ओर भ्रमण करता है और कभी साथ-छोड़ता नहीं।।२८।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के श्रीअङ्ग पर नीलाम्बर की छबि सुन्दर फबी देखकर मेरे मन में यह विचार आता है कि परम सुकुमारी लाड़िली ने मूर्तिमान् शृङ्गार रस की ओढ़नी ओढ़ रक्खी है।।२९।। पीत वर्ण की जरीदार साड़ी की द्युति ऐसी झलक रही है, जैसे श्याम वारि-वाहिनी यमुना पर सुवर्ण की वृष्टि हो रही हो।।३०।। प्रियतम-लाड़-गहेली लाड़िली जब गहरे लाल रङ्ग का परिधान धारण करती हैं, तब ऐसी शोभा होती है कि मानो उनका अन्तर्निहित अतिशय अनुराग उफन कर बाहर उच्छलित हो रहा है।।३१।। सुन्दर उदर पर शोभित त्रिवली-रेखा अद्भुत सौन्दर्य की सीमा है, जिसका अवलोकन करके श्री लाल जी प्रेमाधीन हो गये हैं।।३२।।

सोभित नाभि गँभीर ढिँग, रोमावलि अनुसार।
मानौं निकसी कमल तें, सूच्छम रेख-सिंगार।।३३।।
पृथु नितंब ऊपर बनी, मनिमय किंकिनि-जाल।
फिरि आई चहुँ ओर मनु, छबि-दीपनि की माल।।३४।।
अति सुढ़ार सुठि सुमिलि बनी, मनिमय जेहरि चारु।
चलनि छबीली भाँति पर, मत्त मरालनि वारु।।३५।।
पाइल नूपुर की झनक, होति है मंदहि-मंद।
मनु सावक कल हंस के, बोलत भरे अनंद।।३६।।
चरन कमल कौंमल सुरँग, मधुप लाल मन मंत।
दृग कंजनि छ्वावत रहत, कर कमलनि सेवंत।।३७।।
मैंहदी कौ रँग फबि रह्यौ, नख-मनि झलक अपार।
मनौं चंद कमलनि मिले, रही न और सँभार।।३८।।

सुन्दर गम्भीर नाभि के समीप सुढार रोमावली ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो कमल मूल से शृङ्गार रस की सूक्ष्म रेखा का उद्गम हुआ हो।।३३।। स्थूल नितम्ब देश पर सुसज्जित मणिमय किङ्किणी जाल ऐसा दिखता है मानो चारों ओर छबि दीपकों की माला जगमगा रही हो।।३४।। सुन्दर जेहरि सुढार मणियों से जटित होकर अलङ्कृत हैं। श्री प्रिया जू के श्रीचरणों की मदमन्थर गति पर मत्त राजहंस न्यौछावर हैं।।३५।। श्रीचरणों में विराजित पायल एवं नूपुरों की मन्द-मन्द झनक ऐसी मधुर है, मानो मुदित बाल-मराल आनन्द से चहक रहे हों।।३६।। जावक-रञ्जित कोमल श्री चरण-कमल पर श्री लाल जी का मधुप मन मँडराता ही रहता है, उन चरणों का अपने नेत्र कमलों से स्पर्श करता है एवं कर कमलों से संवाहनादि सेवा करता है।।३७।। पद-पल्लव मदयन्तिका (मेंहदी) के अरुण रङ्ग से रञ्जित हैं। नखमणि की द्युति भी अमित है, ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा, कमलों से मिलकर आत्म-विस्मृत हो गया हो।।३८।।

करि सिंगार दियौ डीठि डर, स्यामल बिंदु कपोल।
मुसकनि छबि बदले मनौं, राख्यौ पिय-मन ओल।।३९।।
अपुनौ जस कछु रुचत नहिं, ऐसी लाल की बात।
प्रान-प्रिया गुन सुनत ही, अमित करनि ह्वै जात।।४०।।
सब अँग अद्‌भुत भाँति कोउ, सहज रूप की खानि।
ऐती मति मोपै कहाँ, नख-छबि सकौं बखानि।।४१।।
उपमा तौ सब जे कहीं, ऐसी चित्त विचारि।
जैसैं दिनकर पूजियै, आगे दीपक बारि।।४२।।
रूप-माधुरी सहजहीं, झलकत नये तरंग।
उपमा हूँ सब सुफल भईं, बड़ी ठौर के संग।।४३।।

इस प्रकार अपनी प्राणप्रिया का नख-शिख शृङ्गार कर के प्रियतम ने अपनी दृष्टि लग जाने के भय से उनके कपोल-कमल पर श्याम बिंदु की रचना की, मानो प्रिया जू की मुस्क्यान छबि के बदले उस श्याम बिन्दु के रूप में अपना मन ही समर्पित कर दिया हो।।३९।। प्रियतम का स्वभाव है कि उन्हें अपना यश-गान तनिक भी नहीं रुचता और अपनी प्राणप्रिया की गुणावली सुनते ही अनन्त कर्णयुक्त हो जाते हैं।।४०।। स्वामिनी श्री राधा के प्रत्येक अङ्ग का सौष्ठव अति विलक्षण है। वह सहज ही रूप की निधि हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी बुद्धि अल्प है, उनकी नख-शिख छबि-छटा का वर्णन करने की सामर्थ्य मुझमें कहाँ है ?।।४१।। मैंने अपने विचार से जिन उपमाओं को प्रस्तुत किया है वह सब ऐसे ही है, जैसे प्रज्वलित दीपक को सम्मुख रख कर सूर्य की अर्चना की जाती है।।४२।। जिनकी रूप-माधुरी सहज ही नयी-नयी छटाओं से जाज्वल्यमान् है, ऐसी विशिष्ट विभूति के सङ्ग से सामान्य उपमाऐं भी कृतार्थ हो गयीं।।४३।।

याही तें कछु इक कही, पाइ बात कौ फेरि।
जैसै रति इक हेम तें, समुझै सोभा-मेरि।।४४।।

श्री लाल जी की प्रेमाधीनता दोहा

अंग-अंग मृदु माधुरी, अतिहि रसीली आहि।
तैसैयि मधुर किसोर पिय, जीवत तिनकौं चाहि।।४५।।
ललित लड़ैंती कुँवरि बिनु, और न कछुक सुहाइ।
नेकु नैंन की कोर कैं, लीनौं चित्त चुराइ।।४६।।
अमित कोटि ब्रह्माण्ड की, प्रभुता मन लगी थोर।
कर जोरैं चितवत रहैं, बंक दृगनि की कोर।।४७।।
देखौ बल या प्रेम कौ, सर्वस लीनौं छीन।
महामोहन गज-मत्त पिय, बिनु अकुंस बस कीन।।४८।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अनिर्वचनीय रूप-माधुरी का वर्णन करने के लिये उपमाओं का माध्यम ऐसा ही है, जैसे एक रती स्वर्ण बिन्दु से कञ्चन गिरि-(सुमेरु) का अनुमान किया जा सके।।४४।।

श्री लाड़िली जू के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की माधुरी जैसी अति सुकोमल एवं रसमयी है, वैसे ही मधुर मूर्ति नव किशोर प्रियतम उस मृदु माधुरी का प्रतिपल अवलोकन करते हुए जीवन धारण करते हैं।।४५।। श्री लाल को ललित लाड़िली किशोरी के बिना और कुछ सुहाता ही नहीं है; क्योंकि लाड़िली ने अपनी अपाङ्गच्छवि छटा से उनके चित्त को चुरा लिया है।।४६।। इसी कारण उन्हें अमित कोटि ब्रह्माण्डों की प्रभुता तुच्छ प्रतीत होती है और वे हाथ जोड़े हुए प्रिया जू के नयन-कोर की कृपा को जोहते रहते हैं।।४७।। प्रेम के इस अमित बल को तो देखो, जिसने प्रियतम का सर्वस्व अपहरण कर लिया एवं इस अद्भुत प्रेम ने महामोहन मत्त गजराजवत् स्वच्छन्द प्रियतम को बिना अङ्कुश के ही वशवर्त्ती कर लिया है।।४८।।

अखिल लोक की साहिबी, दीन्हीं तृण ज्यौं डारि।
छिन-छिन प्रति सेवा करैं, रहैं अपनपौ हारि।।४९।।
पानी पान सिंगार सब, करत आपने हाथ।
बँधे जु प्रेम अनंग गुन, फिरत प्रिया के साथ।।५०।।
प्रेम-खेल ऐसैं भयौ, जैसैं खेलत यूप।
तन मन धन सब हारि कैं, भये दीन रस-भूप।।५१।।
नव किसोर के प्रेम की, बात कही नहिं जाइ।
सहचरि जे निजु कुँवरि की, तिनके परत हैं पाँइ।।५२।।
नैंन-सैंन चितवनि चपल, मनि मुक्ता छबि ऐंन।
सखी सबै मनु हंसिनी, चुगत हैं भरि-भरि नैंन।।५३।।
पिय की प्रीति की रीति सुनि, हीये होत हुलास।
दासी जहाँ लगि प्रिया की, ह्वै रहे तिनके दास।।५४।।

प्रियतम अखिल लोक लोकान्तर का स्वामित्त्व एवं अपना स्वत्व तृणवत् त्याग करके क्षण-क्षण प्रति स्वामिनी की सेवा में तत्पर रहते हैं।।४९।। वे अपने हाथों जल, ताम्बूल एवं शृङ्गार सज्जा की सेवा करते हैं तथा प्रेम के बन्धन में बँधे हुए प्राण-प्रिया श्री राधा के साथ-साथ फिरते रहते हैं।।५०।। युगल की यह प्रेम क्रीड़ा, द्यूत क्रीड़ा की भाँति हैं, जहाँ रसिक शिरोमणि श्री लाल जू अपना तन-मन-धन सब हार कर प्रिया जू के वशीभूत हो गये हैं।।५१।। श्री नवल किशोर प्रियतम के प्रेम की कथा अलौकिक है, जो कहते नहीं बनती। आश्चर्य है कि कुँवरि किशोरी की जो नित्य सहचरियाँ हैं, उनके भी चरणों में नित्य विनत होते रहते हैं।।५२।। श्री प्रिया जू के नेत्रों का सञ्चलन चपल चितवन ही छबि के मणि-मुक्ता हैं, जिन्हें हंसिनी रूपी सखियाँ नेत्र-चञ्चु से चुगती रहती हैं।।५३।। प्रियतम की प्रीति रीति ये है कि वे श्री प्रिया की दासियाँ के भी दास बने रहते हैं। इस बात को सुन कर हृदय उल्लसित हो उठता है।।५४।।

श्री लाल जी की छबि दोहा

अब सुनि प्यारे लाल की, छबिहि नाहि नैं ओर।
बँधे लाड़िली-प्रेम सौं, ऐसै रसिक किसोर।।५५।।
कुँवर माधुरी रूप की, सोऊ कहत बनैन।
घटि बढ़ि कहे न जात हैं, जैसैं दोऊ नैंन।।५६।।
मोहन के मोहन सबै, अंग रहे झलकाइ।
नेकु चितै मुख-माधरी, मैंन गिरत मुरझाइ।।५७।।

युगल-छबि दोहा

प्रथमहि प्रियाहि सिंगार कैं, पिय कौ करहिं सिंगार।
सोभा उभै निहारि सखि, करतिं प्रान बलिहार।।५८।।
इक रस रूप समान वय, दंपति नवल किसोर।
नख-सिख बानिक एक सी, छैल-छबीली जोर।।५९।।

प्रियतम लाल जी की सौन्दर्य छटा की भी कोई सीमा नहीं है। वे अतिशय रूप-लावण्य धाम हैं, तथापि वे रसिक किशोर अपने को हीन मान कर श्री लाड़िली जू के प्रेम से बँधे हुए हैं।।५५।। नवल किशोरी श्री राधा की रूप माधुरी अपार है तदनुरूप ही प्रियतम श्री लाल जी की रूप-छटा भी वाणी से परे है। जैसे दोनों नेत्रों में छोटे बड़े का कोई तारतम्य भेद नहीं होता।।५६।। मोहन प्रियतम का प्रत्येक अङ्ग सोहन मनमोहन है, जिनकी मुख माधुरी का अवलोकन करके स्वयं रति-पति काम भी विमूर्छित हो कर गिर पड़ता है।।५७।।

सखियाँ प्रथम प्रिया का शृङ्गार करके पश्चात् प्रियतम का शृङ्गार करती हैं एवं युगल-छबि का दर्शन कर के अपने प्राणों को बलिहार करती हैं।।५८।। नवल किशोर दम्पति छैल-छबीली जोरी है; जो समान वयस् रूप एवं नख-शिख शृङ्गार से सुसज्जित है।।५९।।

द्वै मूरति सिंगार की, पुनि कीनौं सिंगार।
मिले रूप के सिंधु द्वै, अब को पावै पार।।६०।।
अब सुनि रंग-बिहार की, बात न कबहुँ अघात।
इक रस प्रेम छके रहैं, और न कछू सुहात।।६१।।
ललित रँगीली सेज पर, ललित रँगीले लाल।
राजत अद्भुत भाँति सौं, संग छबीली बाल।।६२।।
लाल-वल्लभा लाड़िली, नवल छबीली भाँति।
प्रेम प्यार के चाइ सौं, प्रीतम उर लपटाति।।६३।।
सब अँग सुदंरि सोहिनी, रूप-रासि सुकुमारि।
महा मोहन-गज मोहिनी, बस किये नैंकु निहारि।।६४।।

मूर्तिमान् शृङ्गार की युगल मूर्ति नव-नव शृङ्गार से शृङ्गारित हो कर ऐसी शोभित है, मानो दो रूप सिन्धुओं का समागम हुआ हो, जिसका पार पाना कठिन हो।।६०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब श्री युगल किशोर के रङ्ग-विहार की बातें सुनिये, जिस रङ्ग-विहार-क्रीड़ा में रसिक युगल कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करते। सतत् रसोन्मत्त बने रहते हैं एवं जिसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ रुचिकर नहीं होता।।६१।। सुन्दर सुरङ्ग शय्या पर ललित रँगमगे श्री लाल जी रूप सुधामयी नव बाला के सङ्ग अद्भुत भाँति से शोभित हैं।।६२।। प्रियतम की प्राण-वल्लभा लाड़िली प्रेम-प्यार के उत्साह से भरी हुई अति सुन्दर रीति से प्रियतम के हृदय से लिपट रही हैं।।६३।। रूप की राशि सुकुमारी श्री राधा सभी अङ्गों से सुन्दर एवं सुहावनी हैं। वे महामत्त गजराज श्री मोहनलाल को भी मोहित करने वाली हैं। उनकी एक दृष्टि ने प्रियतम को प्रेम-विवश कर दिया है।।६४।।

लाल रँगीली संग रँग, करत विनोद अनंद।
कबहुँ बात हँसि जात बिच, कबहूँ भरत उछंग।।६५।।
कबहूँ कुच-कमलनि छुवत, भौंह भंग ह्वै जात।
अति प्रवीन रस खेल में, चूकत नहिं कोउ घात।।६६।।
अंत लाल पाँइनि परत, मृदु मुख हा-हा खात।
ऐसैं वचननि सहचरी, सुनि-सुनि सब बलि जात।।६७।।
विविध भाँति रति-केलि रँग, छिन-छिन औरै और।
करत रँगीले लाल दोउ, परम रसिक सिरमौर।।६८।।
कमल-कपोलनि पर कछू, लागी पीक सुरंग।
मनौं छलक अनुराग की, उछरि परी छबि संग।।६९।।

रँगीले लाल अपनी रँगीली प्रिया के सङ्ग अनङ्ग-रङ्ग-विनोद में रम रहे हैं। वे कभी बातें करते हैं, कभी हास्य-विनोद करते हैं और कभी प्रिया को अङ्क में विराजित कर लेते हैं।।६५।। जब कभी प्रिया के कुच-कमलों के स्पर्श का साहस करते हैं तभी प्रिया की भृकुटि टेढ़ी हो जाती है। रसिक लाल रसकेलि में परम चतुर हैं, जो रस के किसी प्रसङ्ग में चूकते नहीं।।६६।। अन्ततः हार कर प्रिया चरणारविन्दों में निपतित होकर दीन वचनों में अनुनय -विनय करते हैं। प्रियतम के ऐसे मनुहार भरे वचनों को सुन-सुन कर सब सखियाँ उनकी बलैयाँ लेती हैं।।६७।। परम रसिक सिरमौर युगल किशोर का रतिकेलि विलास प्रतिक्षण नवीन एवं विविधता-पूर्ण है।।६८।। प्रिया के कपोल-कमल पर ताम्बूल-पीक की सुरङ्ग रेखा ऐसी सुशोभित हो रही है, मानो छबि की छटा पर अनुराग की छलक उभर आई हो।।६९।।

अरिल्ल

बाढ़ी अतिही चौंप न उरहि समाति है।
समझि लाड़िली ताहि हियैं लपटाति है।।
नवल रँगीली केलि छबीली भाँति है।
(हरि हां) पुनि तिनके रस की बात कही क्यौं जाति है।।७०।।

दोहा

तन तौ सिंधु है रूप कौ, लाल नैंन जल-मीन।
खेलत तहँ आनंद सौं, नाभि भँवर घर कीन।।७१।।
कुंज-कुंज प्रति द्रुमनि तर, करैं विलास सुख झेलि।
फैली वृंदाविपिन में, बेलि रंग-रति-केलि।।७२।।
ताके लागे फूल द्वै, कोमल सुरँग सुवास।
ईषद मुसकनि सहज की, करत मंद मृदु हास।।७३।।

रसिक लाल की उमड़ती हुई प्रीति का उत्साह देख कर श्री लाड़िली उनके हृदय से लिपट जाती हैं। युगल नवल की यह प्रेम-केलि अत्यन्त छबिमयी है, अतः उनके रस की बात कैसे कही जा सकती है अर्थात् अनिर्वचनीय है।।७०।। स्वामिनी श्री राधा का दिव्य वपु रूप का उदधि है। श्री प्रिया की नाभि-भँवर में ही अपना निवास बना कर रहने वाले श्री लाल के मीन रूपी नयन उस रूप-सागर में कल्लोल करते हैं।।७१।। श्री श्यामा-श्याम प्रत्येक कुञ्ज एवं लता-द्रुम के नीचे अमित सुख झेलते हुए विलास परायण हैं। इस प्रकार वृन्दावन में रति-रङ्ग-केलि की वल्लरी छाई हुई है।।७२।। उस रति-रङ्ग वल्लरी में सुरङ्गित एवं सुगन्धित दो सुमन विकसित हैं, जो मन्दस्मित एवं मृदु हास्य युक्त हैं।।७३।।

पुनि फल उरजनि सौं लगे, प्रीतम कर छबि देत।
मानौं कुंदन घटनि कौं, नील कमल ढँकि लेत।।७४।।
छबि-निधि दुलहिनि नाइका, नाइक रूप निधान।
प्रेम रंग तन मन रँगे, ह्वै रहे एकै प्रान।।७५।।
ललित कुँवरि वरनौं कहा, नख-सिख रूप अपार।
नैंन-कोर पाछैं लगे, फिरत रसिक सुकुँवार।।७६।।
मन अटक्यौ छबि अलक सौं, नैंन बदन-तन-रंग।
स्रवन लगे बैंननिं मधुर, नासा सौरभ-अंग।।७७।।
अंग-अंग पिय के सबै, परे प्रेम के फंद।
रुचि लै मुख जोवत रहैं, श्री वृंदावन-चंद।।७८।।

उस वल्लरी के फल हैं—युगल उरोज, जो प्रियतम के करों से आच्छादित हैं, मानो युगल कनक-कलश को नील कमल ढाँपे हुए हों।।७४।। नववधू श्री राधिका जैसी छबि निधि नायिका हैं, वैसे ही रूप निधान नायक हैं—सुन्दर वर श्री लाल जू। उनके तन एवं मन प्रेम रङ्ग से रञ्जित होकर एक प्राण बन गये हैं।।७५।। नख-सिख पर्यन्त अपार रूप-राशि ललित किशोरी श्री राधा की छबि का वर्णन कैसे सम्भव है, जिनके नयन-कटाक्षों ने सुकुमार प्रियतम श्री लाल जी को अपना अनुचर बना लिया है।।७६।। श्री लाल जी का मन प्रिया की अलक छबि पर, उनके नयन, किशोरी के वपु-वर्ण पर, श्रवण मधुर वाणी-विलास पर एवं नासिका स्वामिनी के श्री अङ्ग-सौरभ पर मुग्ध है।।७७।। वृन्दावन-चन्द्र श्री लाल जी का प्रत्येक अङ्ग प्रिया के प्रेम-पाश से बँधा हुआ है, तभी तो वे उनकी रुचि लिये प्रतिपल मुख जोहते रहते हैं।।७८।।

भई भीर छबि की तहाँ, और प्रीति उर माहिं।
परयौ लाल मन जाइ तहाँ, निकसन पावत ताहिं।।७९।।
अति उदार सुकुवाँरि तन, रसिक सूर सिरमौर।
नैंन-सैंन बाननिं छयौ, छाँड़ी नहिं तऊ ठौर।।८०।।
नैन स्रवन नासा अधर, चिबुक रूप की खानि।
गहि लीन्हौं पिय मन सबनिं, सौंप्यौ प्रेम के पानि।।८१।।

रति-विलास की ज्यौंनार दोहा

अब सुनि फल सिंगार कौ, नवल रंग रस सार।
दुलहिनि-दूलहु लाल की, रति-बिलास ज्यौंनार।।८२।।
लाज बसन तजि न्हाइ कैं, पानी पानिप माहिं।
चाह मदन की छुधा बढ़ी, चितै नवल मुसिकाहिं।।८३।।

श्री राधा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में छबि का पुञ्ज है एवं हृदय अपार प्रीति से पूरित है। इस छबि एवं प्रीति के जाल में श्री लाल जी का मन फँस गया है, जो निकल नहीं पाता।।७९।। अत्यन्त उदार मन वाले सुकुमार तनुधारी रसिकों के सिरमौर शूरवीर प्रियतम श्री लाल जी प्रिया के प्रेम पूर्ण नयन-वाणों से क्षतविक्षत हो जाने पर भी प्रेम रङ्ग-भूमि का त्याग नहीं करते।।८०।। रूप-निधि श्री राधा के लोचन, श्रवण, नासिका, अधर पल्लव एवं चिबुक सभी रूप की खानि हैं। इन सब ने मिल कर प्रियतम के मन को बन्दी बना कर प्रेम-देव के हाथों सौंप दिया है।।८१।।

नित्य नूतन आनन्द रस सार रूपी शृङ्गार का फल है नव वर-वधू श्री लाड़िली-लाल की रति-विलास रुपी ज्यौनार। अब उसका रसमय वर्णन श्रवण करिये।।८२।। व्रीड़ा-वसन के त्यागपूर्वक लावण्य-जल में निमज्जन करते ही स्मर-विलास की क्षुधा बढ़ चली और नवल किशोर परस्पर एक दूसरे को देखकर मुस्करा उठे।।८३।।

कुंज रसोई रचि दियौ, चौका सेज बनाइ।
अति दृढ़ चौकी प्रेम की, तापर बैठे आइ।।८४।।
हार-थार बिच झलकि रह्यौ, नाहिंन इंदु समान।
पहिरैं धोती फूल की, राजत मिथुन सुजान।।८५।।
सुंदर रुचि की खीर भई, मिसरी मुसिकनि थोर।
डोरा दियौ घृत नेह कौ, स्वादहिं नाहिंन ओर।।८६।।
पुनि फल उरजनि की झलकि, लेत लाल-मन चोरि।
करजनि कै जब छुवत पिय, कछुक झुकनिं मुख मोरि।।८७।।
परिरंभन चुंबन अधर, महा मधुर रस पाइ।
बीच सलौनी चितवनी, लेत है सुखहिं बढ़ाइ।।८८।।
हाव-भाव लावन्यता, बिंजन अंग निहार।
उज्जल हासि कपूर की, पुट दै रचे सँवारि।।८९।।

पाकशाला रूपी निभृत-निकुञ्ज में चौका रूपी शय्या की रचना हुई। सुदृढ़ प्रेम की चौकी बिछी जिस पर रसिक युगल विराजमान् हुए।।८४।। युगल के मध्य में चन्द्र विनिन्दक हार रूपी थाल विराजित है। प्रफुल्लता के धौत वस्त्र धारण किये रसज्ञ मिथुन-किशोर चौकी पर आसीन हैं।।८५।। युगल की पारस्परिक सुष्ठु रुचि की ही खीर बनी है, जिसमें मुस्कान रूपी कन्द का बाहुल्य है एवं स्नेह रूपी घृत-योग से अपरिमित स्वाद की वृद्धि हुई है।।८६।। पुनः नव वक्षोज रूपी फलों की शोभा ने तो लाल का चित्त ही चुरा लिया है एवं जब वे उनका स्पर्श करते हैं तो श्री प्रिया तर्जन-भाव से मुख मोड़ कर किञ्चित् कुपित सी हो जाती हैं।।८७।। इस ज्यौंनार में परिरम्भन, चुम्बन महामधुर अधर रसपान एवं लावण्यमयी चितवन ही रस का परिवर्द्धन करती रहती है।।८८।। हाव-भाव लावण्य अङ्ग दर्शन ही व्यञ्जन हैं; जिन्हें उज्ज्वल हास्यरूपी कर्पूर का पुट दे कर सँवारा गया है।।८९।।

भौंह बंक नैंननि झुकनि, कर धूननिं मुख नेति।
अद्रक मिरचि अचार ढिंग, ज्यौं रुचि कौ कर देति।।९०।।
नैननिं रसना के रसिक, जेंवत तृपति न होइ।
अद्भुत गति या प्रेम की, कहि न सकत है कोइ।।९१।।
भाजन भूषन अंग दुति, श्रम जल छबिहि न ओर।
पलक कटोरिनु कै पिवत, स्यामा-स्याम किसोर।।९२।।
बीरी मुख अनुराग की, स्वांस पवन आनंद।
अति सुवास मृदु हास बिच, होति है मंदहि-मंद।।९३।।

प्रेम शय्या विहार दोहा

पौढ़े प्रीति-प्रजंक पर, ओढ़े प्यार कौ चीर।
गौर-स्याम अंगनि मिले, ज्यौं द्वै धारा-नीर।।९४।।

भृकुटियों क तर्जन, नयनों का मधुर आक्रोश, गौर-नील भुजाओं का कलह एवं नेति-नेति वचनावली ही अदरक, मिर्च आदिक अचार हैं, जो रुचि की अभिवृद्धि करते रहते हैं।।९०।। नेत्र रूपी जिह्वा के रसास्वादी युगल-किशोर ज्यौंनार जीमते हुए भी कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करते, प्रेम की इस अद्भुत गति का वर्णन करना बहुत कठिन है।।९१।। इस ज्यौंनार में अङ्ग एवं आभूषणों की द्युति ही भाजन हैं। श्रमजल की छबि-शोभा असीम है, जिसे किशोर श्री श्यामा-श्याम पलक रूपी कटोरियों में भर-भर कर पान करते रहते हैं।।९२।। अनुराग रूपी ताम्बूल वीटिका ही मुख-रञ्जन है। युगल का श्वासोच्छ्वास ही आनन्द-पवन-प्रवाह है एवं मृदु मन्द हास्य ही सौरभ सार है, जो मन्द-मन्द रीति से विकसित होता रहता है।।९३।।

प्रेम की शय्या पर ही प्रेम का आच्छादन ओढ़े हुए मिलित-अङ्ग गौर-श्याम ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो जल की दो धाराएँ परस्पर में मिल कर एक हो गई हों।।९४।।

परम रसिक रस-रासि दोउ, परे प्रेम के फंद।
रहत भरे आनंद में, जुग-चकोर बिबि-चंद।।९५।।
सखी चकोरी अति सरस, द्वै ससि छबि रस रंग।
पलु-पलु पीवतिं दृगनि भरि, होत न कबहूँ भंग।।९६।।

रसिक उपासक का धर्म — दोहा

हित ध्रुव सखियनि सरन गहि, ऐसै मन अनुसार।
औरहुँ तिनकौ संग गहि, जिनकै यहै विचार।।९७।।

उपसंहार — दोहा

रचि कीन्ही सिंगार-मनि, जो लै राखी सीस।
ताके हिय में बसत रहैं, श्री वृंदावन-ईस।।९८।।
जेहैं 'मनि सिंगार' की, सब गुन भरि अनुराग।
पहिरी पिय हिय प्यार सौं, पोइ प्रेम के ताग।।९९।।

रसिक वर, रसपुञ्ज युगल, प्रेम के पाश में बँधे हुए परस्पर तृषित चकोर चन्द्र की भाँति सतत् आनन्द-रस में विभोर रहते हैं।।९५।। अतिशय सरस चित्तवाली सखियाँ प्रतिपल तृषित चकोरी की भाँति छबि रस रङ्गमय युगल छबि की रूप-सुधा का नयन चषकों से अभङ्ग पान करती रहती हैं।।९६।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक उपासक को चाहिये कि इन सखियों के प्रपन्न हो कर इनका अनुसरण करे एवं उन रसिकों का सङ्ग करे, जो इस उपासना के ही चिन्तन में रत रहते हैं।।९७।।

इस 'शृङ्गार-मणि' की रचना को जो शिरोधार्य करेगा उसके हृदय में श्री वृन्दावन ईश श्यामा-श्याम युगल सदैव विराजमान रहेंगे।।९८।। शृङ्गार की यह मणियाँ समस्त रसमय गुणों एवं अनुराग से रञ्जित हैं, जिन्हें प्रियतम ने प्रेम के धागे में पिरो कर प्रीति पूर्वक हृदय पर धारण किया है।।९९।।

अद्भुत सरिता प्रेम की, वृंदावन चहुँ ओर।
नव-नव रंग तरंग उठैं, मदन पवन झकझोर।।१००।।
ऐसै रसिक किसोर पिय, 'ध्रुव' कै हिय में राखि।
अद्भुत रस की माधुरी, नैननिं रसना चाखि।।१०१।।
दोहा कहे 'सिंगार मनि', साठि चौंतिस अरु आठ।
प्रेमा तिहिं उर झलकि रहै, जो करि हैं ध्रुव पाठ।।१०२।।

प्रेम की अद्भुत सरिता वृन्दावन के चारों ओर प्रवाहित है, जिसमें आनन्द की नयी-नयी तरङ्गें अठखेलियाँ करती रहती हैं एवं मदन-केलि का पवन उन्हें झकझोरता रहता है।।१००।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसे प्रेम-विदग्ध रसिक-किशोर युगल को अविचल रीति से अपने हृदय में विराजमान् कर के उनके अद्भुत् रस की माधुरी नेत्र रूपी रसना से निरन्तर पान करना चाहिये।।१०१।। 'शृङ्गार-मणि' नामक ग्रन्थ के एक सौ दो दोहे कहे गये है। जो कोई इस ग्रन्थ का नित्य पाठ करेगा, उसके हृदय में प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रकाश होगा।।१०२।।

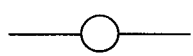

१६

हित-शृङ्गार

वृन्दावन वर्णन— दोहा

सहज सुभग वृंदाविपिन, मिथुन प्रेम-रस ऐंन।
सेवत सरद-बसंत नित, रति युत कोटिक मैंन।।१।।
फूलीं फूलनि की लता, रहीं जमुन-जल झूमि।
तैसिय अद्भुत झलमलै, कंचन-मनि-मय भूमि।।२।।
जलज-थलज विकसित सहज, नील-पीत सित-लाल।
हेम- बेलि रही लपटि कै, सुंदर सुभग तमाल।।३।।
नव-निकुंज मंजुल बनी, सनी सनेह सुवास।
सुमन सुरंग अनेक रँग, छाई विविध बिलास।।४।।
अति सुरंग बहु रंग दल, कोमल कमल गुलाल।
रची रँगीली सखिनु मिलि, सेज सुरंग रसाल।।५।।

रसिक युगल श्री श्यामाश्याम का प्रेम विहार स्थल श्री वृन्दावन सहज शोभा सम्पन्न है एवं कोटि-कोटि रति-काम युक्त शरद एवं वसन्त ऋतुऐं इसकी सेवा में नित्य तत्पर रहती हैं।।१।। अनेक कुसुमिति लताएँ यमुना-जल में प्रतिबिम्बित होती हैं, वैसे ही वन की कञ्चनमणिमय भूमि अद्भुत भाँति से झलमलाती रहती है।।२।। जल एवं स्थल में उत्पन्न होने वाले नीले, पीले, श्वेत एवं लाल वर्ण के कमल जहाँ तहाँ विकसित हो रहे हैं एवं यत्र-तत्र सुन्दर श्याम तमाल से कुन्दन की ललित लताएँ आलिङ्गित हैं।।३।। स्नेह सुवासित नवल निकुञ्ज बड़ी मनोरम है, जो अनेक प्रकार के सुरङ्गित पुष्पों से आच्छादित है। कुञ्ज के अन्तर्भाग में कमल के कोमल वृन्तों एवं अनेक सुरङ्गित पुष्प-दलों से सखियों ने रङ्ग-भरी शय्या की रचना की है।।४।।५।।

सोरठा

करत मिथुन मृदुहास, मन-मन अति अनुराग सौं।
अधर दसन छबि रास, रहे तँबोल रँग भींजि सखि।।६।।

दोहा

विपिन-देस चहुँ दिसि बहै, सरिता स्याम सुदेस।
प्रेम-राज राजत तहाँ, इकछत जुगल नरेस।।७।।
दुलहिनि रानी सहजही, दूलहु नृपति किसोर।
रूप-छत्र सिर पर फिरै, आसन जोवन-जोर।।८।।
कुंज-धाम सखियनि सभा, प्रजा हंस मृग मोर।
बसत निरंतर चैन सौं, कीन्हें नैन चकोर।।९।।

सुखद शय्या पर अनुरागमय युगल सरस हास्य-विनोद का रस ले रहें हैं। उनके छबि राशि अधर-पल्लव एवं दन्तावलि ताम्बूल के अरुणिम रङ्ग से अनुरञ्जित हो रही है।।६।। विपिन राज श्री वृन्दावन के चारों ओर श्याम-वारिवाहिनी सरित् श्रेष्ठ श्री यमुना प्रवाहित हैं, जहाँ वृन्दावन प्रेमराज्य के एक-छत्र नृपति चूड़ामणि युगल, सुन्दर भाँति से सुशोभित हो रहे हैं।।७।। प्रेम-राज्य श्री वृन्दावन की महासाम्राज्ञी नववधू श्री राधा हैं एवं नित्य नव दूलह नव किशोर श्री लाल जी राजाधिराज हैं, जिनके सिर पर रूप का छत्र तना हुआ रहता है और जो नव यौवन के राज्यासन पर सदैव विराजमान रहते हैं।।८।। कुञ्ज भवन उनका राजप्रासाद है; सखियों का समूह राज-दरबार है एवं खग, मृग, हंस, मयूरादिक उनकी प्रजा है, जो अपने नेत्रों को युगलरूप शशि का चकोर बनाये हुए नित्य सुखपूर्वक निवास करते रहते हैं।।९।।

फुलवारी आनंद की, फूली छबि अँग-अंग।
षट-रितु मालिनि सुख फलनि, देत दिनहिं बहु रंग।।१०।।

प्रेम-शतरंज क्रीड़ा दोहा

मैंन-रंग सतरंज तहँ, खेलत दोउ सुकुमार।
हाव-भाव चितवनि चलनि, छिन-छिन चाह अपार।।११।।
मन नृप मंत्री चौंप सौं, रचि कीन्हीं रुख चाल।
उरज गयंद तुरंग दृग, पाइक अँगुरी लाल।।१२।।
तिल कपोल पर अलक छबि, मुसिकनि कही न जात।
जब चितई पिय लाल तन, भये नैंन सहमात।।१३।।

श्री वृन्दावन में चारों ओर आनन्द रूपी पुष्प-वाटिका विकसित रहती है, जहाँ छहों ऋतुऐं मालिनि बनी हुई नित्य प्रति विविध प्रकार के सुख रूपी फलों का युगल चरणों में समर्पण करती रहती हैं।।१०।।

युगल सुकुमार राजाधिराज अपने रङ्गमहलों में प्रेमरङ्ग की शतरञ्ज खेल रहे हैं। हाव-भाव एवं नयन-कटाक्षों का चलन ही जहाँ शतरञ्ज के मोहरे हैं, जिनको आगे चलाने पर युगल के उत्साह की प्रतिपल अभिवृद्धि होती रहती है।।११।। मन रूपी राजा, उत्साह रूपी मन्त्री, वक्रगति रूपी रुख (ऊँट), वक्षोज रूपी गजराज, नयन रूपी अश्व तथा अङ्गुली रूपी पयादे के योग से श्री लाल ने चक्रव्यूह की रचना करके श्री प्रिया के क्रीड़ा-मोहरे रूपी राजा को मात देने का आह्वान किया।।१२।। श्री प्रिया ने अपने कपोल स्थित तिल पर लहराती अलक लट-छवि के साथ रस पूर्ण चितवन से श्री लाल की ओर देखा, तो श्री लाल के नेत्र मात खा गये अर्थात् श्री लाल पर श्री प्रिया जू की विजय हो गयी।।१३।।

रति नागरि दै अधर रस, हेत विसात सँवारि।
आलिंगन चुंबन मनौं, खेलत फेरि सँभारि।।१४।।
नव किसोर सुकुमार तन, बिलसत प्रेम-बिलास।
अलबेली चितवनि हँसनि, नौतन नेह-हुलास।।१५।।

सवैया

नेह-निकुंज में रूप की मूरति, खेलत प्रेम-बिलास बिहारी।
चौंप की चालनि नैंन बिसालनि, चाहि रहे 'ध्रुव' प्रीतम-प्यारी।।
रँगे रस-सार दोऊ सुकुमार, महा रिझवार रहे मनहारी।
हेरति ठाढ़ी सखी सुख-सींव, दियैं भुज-ग्रींव निमेष विसारी।।१६।।

श्री प्रिया-छबि वर्णन दोहा

सहज सरस सुंदर बदन, चंद-बिंब मनौं आहि।
रूप-किरन हित रसिक पिय, चख-चकोर रहे चाहि।।१७।।

रति-विचक्षणा श्री राधा ने प्रियतम को अधरामृत दान कर के मानो प्रेम रूपी बिसात को बिछा कर खेल का पुनः प्रारम्भ किया एवं आलिङ्गन चुम्बन रूपी मोहरे फिर आगे बढ़ाये जाने लगे।।१४।। इस प्रकार सुकुमार युगल नवल किशोर, विहार में निरन्तर संलग्न रहते हैं। उनकी मनोहारी चितवन युक्त मुसकान से नित्य नव प्रेमोल्लास प्रकट होता रहता है।।१५।। रूप की प्रतिमूर्ति उत्साह भरे प्रेम-विलासी युगल प्रेम की कुञ्ज में प्रेम-विलास की क्रीड़ा कर रहे हैं। वे चाह चौंप वाले अपने विशाल नयनों से परस्पर रूप रसामृत का पान कर रहे हैं। महा रिझवार सुकुमार युगल रस-सार प्रेम में रँगे हुए एक दूसरे पर बलिहार हो रहे हैं, ऐसे कण्ठ-भुज परिवेष्टित छवि-सीम युगल की रूप-माधुरी का सखियाँ अपलक नेत्रों से पान करती रहती हैं।।१६।।

श्री प्रिया का सहज सुन्दर सरस मुख मानो चन्द्र-बिम्ब है, जिसकी रूप-रश्मियों का पान रसिक प्रियतम के नेत्र चकोरवत् करते रहते हैं।।१७।।

सगबगे केस फुलेल में, छुटे अधिक छबि देत।
कछु चितवनि पुनि मृदु हँसनि, प्रीतम मन हरि लेत।।१८।।
बैंदी स्याम सुह्मवनी, सोभित गौर लिलार।
प्रगट सुधाकर पर भयौ, मनौं रूप सिँगार।।१९।।
पल उतंग उज्वल अरुन, अति सलज्ज रस ऐंन।
करनाइत लौंने चपल, कजरारे कल नैन।।२०।।
भौहँनि बिच फगुआ फब्यौ, अरुन भये छबि कौन।
बैठ्यौ है अनुराग मनु, निज सिँगार के भौंन।।२१।।
नासा पुट डोलत जलज, पल-पल स्वाँसा संग।
यह छबि निरखत नवल पिय, होति नैन-गति पंग।।२२।।

सुगन्धित तेल से सचिक्कन केश-राशि उन्मुक्त हो कर अधिक शोभा को प्राप्त हो रही है। प्रिया की रसपूर्ण चितवन एवं मृदु मुसकान प्रियतम के चित्त को चुरा लेती है।।१८।। प्रिया के गौर ललाट पर श्याम वर्ण की सुन्दर बैंदी शोभा का विस्तार कर रही है, ऐसा प्रतीत होता है मानों राका-शशि पर मूर्त्तिमान् शृङ्गार ही सुसज्जित हो रहा है।।१९।। उनके अति सलज्ज, रस पूर्ण नेत्रों की उज्ज्वल एवं रतनारी छबि-छटा के साथ उठी हुई पलकें एवं सलोने, चञ्चल, कजरारे कानों तक फैले नयनों की छबि अत्यन्त नयनाभिराम है।।२०।। दोनों भृकुटियों के मध्य में फगुआ शोभित है, इस फगुआ की अरुणिम रेख का दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शृङ्गार रस के भवन में अनुराग ही रूप धारण कर विराजित हो गया हो।।२१।। नासिका पुट में विराजित नासा-मुक्ता श्वास पवन से प्रियतम के नेत्रों की गति को शिथिल कर रहा है।।२२।।

राजत बाम कपोल तिल, अलप अलक तिहिं पाँहि।
डार्‌यौ मनौं सिंगार फँद, खंजन नैंननि चाहि।।२३।।
दसन-दमक छबि कह कहौं, मुसिकनि बरषत फूल।
अद्‌भुत अंगनि माधुरी, देखति भूली भूल।।२४।।
फब्यौ चिबुक पर सहज ही, बिंदुका अतिहि अनूप।
पिय साँवल कौ मन मनौं, पर्‌यौ रूप के कूप।।२५।।

रूपासव-पान की मादकता सवैया

बैठे हैं सेज भरे रस रंग, रँगीली कछू मुरि कैं मुसिकाई।
और की और भई पिय की गति, कैसेहुँ कैं न कही 'ध्रुव' जाई।।
चाहत चाहत रूप प्रिया कौ, परे सुख में जिहि ठाँ गहराई।
गुराई कौ भार भयौ गरुवौ, मन बूड़ि गयौ छबि अंबु में माई।।२६।।

श्री प्रिया जी के बायें कपोल पर श्याम तिल शोभित है, जिसके समीप विलुलित झीनी अलक ऐसी छबि दे रही है, मानो खञ्जनवत् चञ्चल नेत्रों को पाश-बद्ध करने के लिये मूर्त्तिमान् शृङ्गार ने फन्दा डाला हो।।२३।। श्री प्रिया की दशन-द्युति अनिर्वचनीय शोभामयी है, उन की मृदु मुस्कान मानो फूल बरसाती है, एवं अङ्ग-प्रत्यङ्ग का रूप-लावण्य ऐसा है, जिसे देखकर साक्षात् विस्मृति भी आत्मविस्मृत हो जाती है।।२४।। सहज सौन्दर्यमय चिबुक पर विराजित श्याम बिन्दु ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रियतम का मन ही रूप के कूवे में आ गिरा हो।।२५।।

रसरङ्ग छबीले युगल रङ्गभरी सेज पर विराजमान हैं, तभी रङ्गभरी प्रिया ने लाल की ओर मुड़कर मन्दस्मितमयी चितवन से देखा। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस सरस कटाक्ष से प्रियतम की स्थिति कुछ से कुछ हो गयी, जो कहने में नहीं आती। वे प्रिया-रूप का निर्निमेष नयनों से दर्शन करते हुए उस रूप की अतुल गम्भीरता में निमग्न हो गये। गौराङ्गी प्रिया की छबि के भार से बोझिल हुआ उनका मन छबि के अगाध समुद्र में डूब गया।।२६।।

श्री प्रिया जी की उदारता और लाल जी की रस-चौंप दोहा

करुणा करि लिये लाइ उर, देखे लाल अधीर।
लिये काढ़ि छबि भँवर तें, छ्वाइ दसन वर चीर।।२७।।
छबि मुरझानी देखि छबि, मृदुताई मृदु अंग।
चतुराई जहँ चित्र भई, चपलाई गति पंग।।२८।।
कोटिक छबि मुख कमल पर, रंजित पाननि राग।
छिन-छिन प्रीतम नैंन अलि, पीवत पीक-पराग।।२९।।
नवल नवेली उर बनी, मृदुल चमेली-माल।
सारी सौंधे सौं सनी, अँगिया फूल-गुलाल।।३०।।
अलबेली चितवनि अली, रस बेली मुसिकानि।
छिन-छिन प्रति बाढ़ति नई, फैली पिय-उर आनि।।३१।।

उदार लाड़िली ने श्री लाल को भाव-विह्वल देखकर करुणार्द्र हो कर हृदय से लगा लिया एवं अधरों का स्पर्श कराके उन्हें छबि रूपी भँवर से निकाल लिया।।२७।। युगल के श्री अङ्गों की मृदुता पर साक्षात् मृदुलता भी लज्जित हो उठी एवं चातुरी चित्रवत् हो गई तथा चपलता की गति पङ्गु हो गयी।।२८।। श्री किशोरी के अपरिमित सौन्दर्य-राशि मुख-कमल पर अनुरञ्जित ताम्बूल की अरुणिमा रूपी मकरन्द का प्रियतम के नयन-भ्रमर निरन्तर पान करते रहते हैं।।२९।। नित्य नव वधू श्री श्यामा के वक्षस्थल पर सुकोमल मल्ली-माल शोभित है। वे सौरभ सिञ्चित साड़ी एवं मृदुल गुलाल-पुष्प निर्मित कञ्चुकी धारण किये हुए हैं।।३०।। श्री प्रिया की रूप सुधामयी विलक्षण चितवन ही चञ्चरीक है एवं उनकी मृदु मुरकान है रस-रूपी लता, जो प्रतिक्षण विकसित एवं लम्बमान् होती हुई प्रियतम के हृदय देश पर छा गयी है।।३१।।

मैंहँदी-रँग भीने बने, मृदु कर चरन सुरंग।
नख-मनि दुति अति झलमलै, पानिप झलक अनंग।।३२।।
बरषत अद्‌भुत रूप जल, एकहि रस निसि-भोर।
तृषित पपीहा तऊ पिय, चितवत मुख की ओर।।३३।।

श्री प्रिया जी की रूप-रमणीयता कवित्त

रोम-रोम रूप कांति पानिप जगमगाति ,
मोहिनी के देखैं आवै मोहन कौं मोहिनी।
'हित ध्रुव' माधुरी मदन मद मोद मई ,
अति सुकुमार तन सहजही सोहनी।।
दसन-दमक देखैं दामिनी लजानी जाति ,
नख पटतर कोऊ कोहै पति-रोहनी।
अतिही छबीली गोरी बरनि सकत को री ,
जाके संग फिरैं छकि छबिनि की छोहनी।।३४।।

श्री किशोरी जी के सुकोमल कर एवं चरण मेंहदी के रङ्ग से अनुरञ्जित हैं। उनकी कर-चरण-नख-मणि-द्युति अतिशय प्रकाशमान् एवं मदन-केलि से प्रभवमान् अनुपम लावण्यमयी है।।३२।। श्री प्रिया की मुख-छबि से यद्यपि सहजरूप से सतत् रूप जल की वर्षा होती रहती है, तो भी तृषित पपीहा रूपी प्रियतम अनवरत रसपान करते हुए भी उनके मुख की ओर अपलक दृष्टि से निहारते ही रहते हैं।।३३।। जिनके रोम-रोम से रूपलावण्य की प्रभा नवीन-नवीन आभा लिये प्रस्फुटित होती रहती है ऐसी महामोहन रूपसि, मोहिनी प्रिया का दर्शन करके मदन मोहन श्याम सुन्दर पर भी प्रिया रुप की मोहिनी छा जाती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अति कोमलाङ्गी सहज सौन्दर्यमयी प्रिया की माधुरी सहज प्रेमोन्मद मोद से परिपूरित है। उनकी दशन-द्युति का दर्शन करके सौदामिनी भी लज्जित होती है एवं

दोहा

रोम-रोम प्रति अमित छबि, ज्यौं दधि लहर उठाँति।
चषक अलप बहु प्यास पिय, तृषा मिटति किहिं भाँति।।३५।।
गाढ़ी कै कसि कंचुकी, दरकि रही कुच-कोर।
निरखत दृष्टि बचाइ पिय, नागर नवल किसोर।।३६।।
मोहे मोहन मैंन रस, अति सलज्ज मुसिकानि।
लालच के लालच बढ़्यौ, देखि लाल-ललचानि।।३७।।

केलि व्याज-रसानुभव दोहा

बेसरि अरुझी अलक सौं, सोभा बढ़ी सुभाइ।
पिय निरवारन व्याज कैं, दई अधिक उरझाइ।।३८।।

उनकी नखच्छवि के समक्ष चन्द्रमा भी द्युतिहीन प्रतीत होता है। ऐसी छबीली नवल किशोरी गोरी के अगाध-रूप सौन्दर्य का वर्णन कौन कर सकता है ?, जिनका अनुगमन करती है छबि-राशि सखियों की सेना।।३४।। जिस प्रकार समुद्रों में प्रतिक्षण विशाल लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार नवल किशोरी प्रिया के रोम-रोम से रूप की अपार छटाऐं तरङ्गायित होती रहती हैं। इस रूप रस का पान करने के लिये प्रियतम के नेत्र रूपी पान-पात्र बहुत सीमित हैं एवं उनकी पिपासा अमित है, तब उनकी तृषा का उपशमन कैसे हो सकता है ?।।३५।। नवल किशोर प्रियतम चतुर शिरोमणि हैं। वे प्रिया की दृष्टि बचाकर उनके वक्षोज पर कसी हुई कञ्चुकी से उभरती हुई कुच-तटी का दर्शन कर रहे हैं।।३६।। श्री प्रिया की सहज सलज्ज मुसकान को देखकर प्रियतम मोहन का मन प्रेम विमुग्ध एवं लुब्ध हो गया। उनके रूप-लालच को देखकर मूर्त्तिमान् लालच भी ललचा उठा है।।३७।।

श्री प्रिया जू का नासा-मौक्तिक कपोल पर आलम्बित झीनी अलक से उलझ गया, जिसे सुलझाने के बहाने रूप दर्शन के रसिक प्रियतम ने उसे और अधिक उलझा दिया है।।३८।।

सोरठा

सुंदर रूप निधान, परम चतुर नागरि प्रिया।
लयौ झटकि पिय पानि, जानि चतुरई लाल की।।३९।।

दोहा

जो अँग चाहत रसिक पिय, इन नैंननि सौं छ्वाइ।
सो ठाँ सुदंरि पहिल ही, राखति बसन दुराइ।।४०।।
काँपत कर धरकत हियौ, बनत न मन की बात।
कुसल युगल कल कोक में, समुझि-समुझि मुसिकात।।४१।।

सवैया

कोक बिलास कलनि में नागर, नाहिं दुहूँ कोऊ घटि घातनि।
नई-नई भाँति नई 'ध्रुव' चौंप, बढ़ी मन माहिं चितै दृग-पातनि।।
चाहत लाल छुयौ उरहार, लई सखी लाइ रँगीली जु बातनि।
आनि धरे कर तौ कुच यौं, जनु कुंदन-कुंभ ढँके जल-जातनि।।४२।।

रूपनिधि प्रिया जो परम विचक्षणा हैं, लाल की चतुराई को समझ गयीं और तब उन्होंने लाल के कर-कमलों को झटक कर हटा दिया।।३९।। रसिक प्रियतम, प्राणप्रिया के जिन अङ्गों का अपने नयन करों से स्पर्श करना चाहते हैं, परम विदग्धा सुन्दरी प्रिया उन अपने अङ्गों को पहले ही वसनाच्छादित कर लेती हैं।।४०।। जब प्रियतम के प्रयास विफल होने लगते हैं; तब उनके कर-कमल काँपने लगते हैं एवं हृदय-गति तीव्र हो जाती है। कोक-विद्या में प्रवीण युगल इस केलि-रहस्य को समझ कर मुस्कराने लगते हैं।।४१।। कोक-विलास की विधाओं में युगल (दम्पति) परम कोविद हैं। घात-प्रत्याघात में कोई भी न्यूनाधिक नहीं है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री युगल में पारस्परिक कटाक्ष-निक्षेप के द्वारा नित्य नव-नव प्रकार से रसोत्साह प्रकट होता रहता है। हे सखी! रस-लोभी लाल ने रँगीली प्रिया को बातों

दोहा

मन-मन अंतर सहज ही, बढ़ी रंग-रस-केलि।
उर-नैंननिं फैली अधिक, चाह मदन-सुख-बेलि।।४३।।
दोउ प्रवीन नागर नवल, अपनी-अपनी भाँत।
फवति न जब कछु चतुरई, तब पिय हा-हा खात।।४४।।

श्री लाल जी की सेवाभिलाषा

दोहा

कहत बचन अति दीन ह्वै, निरखि प्रिया मुख ओर।
चरन अलंकृत करन कौं, जाँचत नवल किसोर।।४५।।
आतुरता अति दीनता, चाह-चौंप अधिकाइ।
निरखि समुझि मन नागरी, चितई कछु मुसिकाइ।।४६।।
मंजु कंज-पद विमल द्वै, गहे मृदुल पिय पानि।
करत चित्र अति गहर सौं, जावक कौ रँग बानि।।४७।।

में लगा कर उनके हृदय पर विराजित हारावली के स्पर्श ब्याज से कुच कमलों पर कराच्छादन किया, तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वर्ण-कलश नीलकमलों से आच्छादित किये गये हों।।४२।। युगल किशोर के अन्तर में रसमयी आनन्द क्रीड़ा उल्लसित हो उठी एवं तब मदन केलि की लालसा रूपी लता उनके हृदय और नेत्रों में छा गयी।।४३।। युगल किशोर दोनों ही अपनी-अपनी रस विधाओं में परम प्रवीण हैं किन्तु प्रियतम की जब कोई चातुरी सफल नहीं हो पाती, तब वे दीन हो कर चाटु परायण हो जाते हैं।।४४।।

श्री प्रिया मुख की ओर जोहते हुये अत्यन्त दीन वचनों में नवल किशोर प्रियतम उनके श्री चरणों में जावक-चित्र-रचना करने की याचना करते हैं।।४५।। तब श्री लाल के मन की उत्सुकता, ललक एवं अधीरता को देखकर तथा उनकी मनस्थिति को समझकर नागरी प्रिया मुस्कराने लगीं।।४६।। तब प्रियतम ने श्री प्रिया की स्वीकृति का अनुमान लगा कर उनके मञ्जुल विमल श्री चरणों को अपने सुकोमल करों पर धारण किया एवं भाव-विभोर

नखनि माहिं प्रतिबिंब छबि, रही अधिक झलकाइ।
चंद कंज मिलि एक ठाँ, जनु पाँइनि परे आइ।।४८।।
जेहि रस ढरै मन नागरी, ढरत लाल तिहिं रंग।
छिन-छिन प्रति चितवत रहत, भौंहनि भाइ तरंग।।४९।।
अतिहिं छबीली सोहनी, प्रीतम यह उर आनि।
सुंदर मुख पर डीठ डर, दियौ दिठौना बानि।।५०।।

प्रेम का स्वभाव दोहा

अटपटी बात है प्रेम की, बरनत बनै न बैंन।
धरति चरन प्यारी जहाँ, लाल धरत तहाँ नैंन।।५१।।
यद्यपि प्यारे पीय कौं, रहत है प्रेम अवेस।
कुँवरि प्रेम गंभीर तहँ, नाँहिन बचन प्रवेस।।५२।।

होकर अलक्तक रस से उन्हें चित्रित करने लगे।।४७।। श्री प्रिया की पद नख मणि में प्रियतम की मुखच्छवि इस प्रकार प्रतिबिम्बत हो रही है, जैसे शशि एवं कमल दोनों श्री प्रिया के चरणों में एक साथ सुशोभित हो रहे हों।।४८।। नव नागरी प्रिया की जब और जैसी रुचि होती है; तदनुरूप ही लाल का मन भी उसी ओर प्रवृत्त हो जाता है, एतावता वे प्रतिक्षण प्रिया की भृकुटि- जन्य भाव-तरङ्गों को ही देखते रहते हैं।।४९।। प्रिया अत्यन्त छविमयी सुन्दरी हैं, अतः किसी की कुदृष्टि लग जाने के भय से प्रियतम उनके सुन्दर मुख पर दिठौना लगा देते हैं।।५०।।

प्रेम की बात अटपटी होती है इसलिये वह अवर्ण्य है। जहाँ प्रिया अपने चरण रखती हैं, वहाँ प्रेमी लाल अपने नेत्र बिछाते रहते हैं।।५१।। प्रियतम श्री लाल जी के प्रेम का स्वरूप आवेशमय होने के कारण नित्य उज्जृम्भमाण है; किन्तु श्री प्रिया जू का प्रेम अत्यन्त गम्भीर एवं वाणी का अविषय है।।५२।।

प्रिया प्रेम सागर अमल, लहरिंनु लेति समाइ।
उमड़ै जो मर्जाद तजि, कापै रोक्यौ जाइ।।५३।।
छबि छिपाइ भूषन बसन, राखति प्रेम दुराइ।
समुझि कुँवर की गति कुँवरि, जतननि करति बिहाइ।।५४।।

कवित्त

परी है कठिन अति नवल किसोरी जू कौं,
छिन-छिन नई छबि कहाँ लौ छिपावहीं।
जोई अंग प्रीतम की दीठि सौं परस होत,
नीरज से नैंना नीर भरि-भरि आवहीं।।
'हित ध्रुव' अधिक विवस भये जात पिय,
ताही हेत सुकुमारी जतन बनावहीं।
और अंग राखे पट भूषननि में दुराइ,
लोचन चपल चल कहे में न आवहीं।।५५।।

प्रिया के प्रेम का निर्मल उदधि, अपनी भाव-लहरियों को अपने अन्तर में ही समावेशित किये रहता है। यदि कदाचित् वह अपनी मर्यादा का अतिक्रमण करके उज्जृम्भित हो जाय, तो उसे नियन्त्रित कर सकने का सामर्थ्य किसी में नहीं है।।५३।। प्रियतम की उफनती प्रेम-गति को समझ कर प्रिया वस्त्राभूषणों द्वारा अपनी छबि को सदैव यत्नपूर्वक छिपाए रखती हैं एवं अपने प्रेम को भी अन्तर में दुराये रखती हैं।।५४।। अङ्ग-प्रत्यङ्गों से प्रतिक्षण प्रस्फुटित होने वाली नव-नव छबि-प्रभा को छिपाने में प्रिया अपने आपको पूर्णतया असमर्थ पाती हैं। यदाकदा जब प्रियतम की दृष्टि उनके किसी सुअङ्ग को छू लेती है, तो उनके कमल जैसे नेत्र बारम्बार जलपूरित हो उठते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम की इस प्रेमविवशता को देख कर कोमलाङ्गी प्रिया सतत प्रयत्नशील रहती हैं कि उनके अपने अङ्गों का सहज रूप प्रियतम न देख पायें, इसलिये वे अपने अङ्गों को वस्त्राभूषणों से आच्छादित तो कर लेती हैं किन्तु उनके चञ्चल नेत्र नियन्त्रण में नहीं रह पाते।।५५।।

अद्भुत रसपूर्ण युगल-विहार दोहा

तहाँ मान कैसैं बनै, अद्भुत जहँ यह प्रेम।
भींजे दोउ आसक्ति रस, कहाँ समाइ बिच नेम।।५६।।
जब चितवत अनुराग जुत, कुँवरि नैंन चख-कोर।
तिहि छिन बारत प्रान पिय, ढरत शीश पग ओर।।५७।।
भये मगन छबि निरखि पिय, गये बिसरि चख-चीर।
रूप-सरोवर में मनौं, रहे कंज भरि नीर।।५८।।
प्रेम सुरँग रँग रचि रहे, सोभा कही न जाइ।
मनौं लालच पिय हीय तें, नैंननिं प्रगट्यौ आइ।।५९।।
पिय मुख अंबुज की दसा, सुनि सखि कही न जात।
फूलत अधरनि-रस पियैं, बिनु पीयैं कुम्हिलात।।६०।।

जहाँ इस प्रकार का अद्भुत प्रेम है, वहाँ मान के लिये अवकाश ही नहीं है। युगल नित्य आसक्ति-रस में निमग्न हैं और उनकी आसक्ति इस पराकाष्ठा की है कि नेमादि नैमित्तक रस वहाँ सर्वथा अप्रासङ्गिक हैं।।५६।। जब प्रिया प्रसन्न मुद्रा में अनुराग-पूरित दृष्टि से प्रियतम की ओर देखती है; तब प्रियतम अपने को धन्यातिधन्य मानते हुए उनके चरणों की ओर विनत होने लगते हैं।।५७।। प्रिया की सुन्दर छवि को निहारते हुए प्रेम मग्न हुए प्रियतम पलकें गिराना भूल जाते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि रूप के तड़ाग में कमल जल पूरित हो रहे हों।।५८।। श्री लाल के अनुराग रङ्ग रञ्जित रतनारे नेत्रों की अपूर्व सुन्दरता को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, मानो उनके अन्तर का अनुराग भीतर न समा कर बाहर नेत्रों में झलक आया हो।।५९।। हे सखि! प्रियतम के मुखारविन्द की दशा भी विचित्र है, जब वे प्रिया के अधरासव का पान करते हैं, तब तो आनन्दित रहते हैं अन्यथा उनका मुख-कमल उदास प्रतीत होने लगता है।।६०।।

अति प्रवीन रस नागरी, लिये कुँवर भरि अंक।
मनौं सुधा-रस प्रेम-बल, कंजहि देत मयंक।।६१।।
जबहि लाल लटकत बिवस, ललना लेत सँभारि।
राखति हिय सौं लाइ हिय, लज्जा-नेम बिसारि।।६२।।
छबि-निधि रस-निधि नेह-निधि, गुन-निधि परम उदार।
रँगे परस्पर एक रँग, अद्भुत जुगल-बिहार।।६३।।
जोवन मद, नव नेह मद, रूप मदन मद मोद।
रसमद, रतिमद, चाहमद, उनमद करत विनोद।।६४।।

कवित्त

मधुर तें मधुर अनूप तें अनूप अति,
रसन कौ रस सब सुखनि कौ सार री।
विलास कौ विलास निजु प्रेम की है राज-दसा,
राजै एक-छत दिन विमल बिहार री।।

रस-विदग्धा नागरी प्रिया श्री लाल को अपने अङ्क में विराजित करके अधर सुधा का पान कराती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो मूर्त्तिमान् सुधाकर ही कमल को प्रेमामृत पान करा रहा हो।।६१।। जब श्री लाल जी प्रेम-विथकित होकर देहानुसन्धान खोने लगते हैं, तब प्रिया लज्जा रूपी नेम के निवारणपूर्वक उन्हें अपने हृदय से लगा कर सँभाल लेती हैं।।६२।। श्री युगल श्यामा-श्याम छबि के धाम हैं। रस-निधि, प्रेम की अमित राशि एवं गुणों के सागर होते हुए भी अतिशय उदार हैं। दोनों एक ही प्रेम रङ्ग में रँगे हुए निरन्तर निकुञ्ज-केलि परायण हैं।।६३।। रसिक युगल नित्य ही यौवन-मद, नव-नव प्रेम-मद, रूप मद, मदन-मोद के मद, रस-मद, रति-मद एवं प्रेमोत्कण्ठा के मद से उन्मत्त हुए प्रेम की विनोद लीलाओं में मग्न रहते हैं।।६४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि हमारे रसिक रँगीले सुकुमार युगल, जिस विमल विहार में तन्मय रहते हैं, वह विहार मधुरातिमधुर एवं अनुपमेय है। वह समस्त रसों

छिन-छिन त्रिषित चकित रूप-माधुरी में,
भूले सेई रहैं कछु आवै न विचार री।
भ्रमहूँ कौ विरह कहत जहाँ डर आवै,
ऐसै हैं रँगीले 'ध्रुव' तनु-सुकुमार री।।६५।।

दोहा

दिन दूलहु दिन दुलहिनी, परम रसिक सुकुमार।
प्रेम-समागम रहत दिन, नवल निकुंज-बिहार।।६६।।

सोरठा

कोक कलानि प्रवीन, नव किसोर दंपति सदा।
सुरत-सिंधु सुखलीन, अति विचित्र नागर कुँवर।।६७।।

का सार एवं सुखों की चरम-सीमा है। विलासों का भी मूर्द्धन्य विलास है। प्रेम की सर्वोपरि अवस्था है और नित्य ही सब रसों का राज- रस एवं एकच्छत्र विशुद्ध विहार है, जहाँ हमारे युगल नित्य नव नवायमान रूप-सौन्दर्य की अद्भुत छटाओं को देख कर विस्मित रह जाते हैं एवं प्रतिक्षण उनकी उद्‌वर्द्धित प्रेम-तृषा उन्हें ऐसा आत्मविस्मृत कर देती है कि वे जके-थके से रह जाते हैं। युगल की ऐसी एकात्म प्रेम-स्थिति में विरह के आभास की कल्पना भी भयावनी प्रतीत होती है।।६५।। वृन्दावन के नित्य नवल निकुञ्ज-विहार में रसिक-शेखर युगल नित्य नव वर-वधू हैं अर्थात नित्य दम्पति हैं। उनका प्रत्येक मिलन नव समागम है।।६६।। नित्य नव किशोर दम्पति कोक की कलाओं में परम कुशल हैं। अति विचित्र ये नागर-नागरी सुरत-केलि के आनन्द-समुद्र में सतत् लीन रहते हैं।।६७।।

दोहा

रति-नागर दोउ रँग भरे, सुरत तरंगनि माँहिं।
चाह चौंप मन-मन समुझि, चितै चषनि मुसिकाहिं।।६८।।
वर बिहार कछु श्रमित भई, प्रिया परम सुकुँवारि।
रुचिर पीत अंचल लियैं, मृदु कर करत वयारि।।६९।।
गौर बदन पर फबि रही, विथुरी अलक रसाल।
सिथिल बसन भूषन सबै, घूँमत नैंन विसाल।।७०।।
अति सुदेस आलस भरे, अरुन छबीले नैंन।
प्रेम की रैंनी में मनौं, रँगे कंज रति-मैंन।।७१।।
अरुनाई बिच स्यामता, छबि नहिं परति बखानि।
मनौं मधुप अनुराग के, रँग में बोरे आनि।।७२।।

सुरत क्रीड़ा की तरङ्गों में आनन्दित युगल नागर परस्पर की लालसा एवं उत्कण्ठा को मन-मन समझ कर नेत्रों में हँसते रहते हैं।।६८।। जब परम सुकुमारी प्रिया विहार-श्रम से श्रमित हो जाती हैं, तब प्रियतम अपने पीताम्बर के छोर से उन पर मन्द-मन्द बयार करने लगते हैं।।६९।। प्रेम विहार में प्रिया के गौर मुखारविन्द पर विलुलित अलकावली अपूर्व रसमयी शोभा को प्रकट करती है। उनके वस्त्रालङ्कार शिथिल हो जाते हैं एवं विशाल नेत्र आलस वलित हो रहते हैं।।७०।। आलस्य मद पूरित प्रिया के छबिमय रतनाने नयन ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो कामरति ने कमल को प्रेम के रङ्ग में रञ्जित कर डाला हो।।७१।। रतनारे नेत्रों में श्याम पुतलियों की छबि-छटा का वर्णन असम्भव है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है, मानो भ्रमरों को अनुराग के रङ्ग में झकोर दिया हो।।७२।।

सुरतानन्त छबि

दोहा

रति-विनोद जामिनि जगे, सिथिल अटपटे बैंन।
अँग-अँग अरसाने सबै, सरसाने सखि नैंन।।७३।।

कवित्त

सब निसि रंग भीने मन के मनोज कीने,
भोर एक चूनरी सुरंग ओढ़े ठाढ़े हैं।
अरुझे हैं नख-सिख घटति न चौंप कैंहूँ,
अंग-अंग प्रति अति आलिंगन गाढ़े हैं।।
सौंधे भींजे सोहैं बार छूटि टूटि रहे हार,
देखिबै कौं रूप नैंना सतगुन बाढ़े हैं।
'हित ध्रुव' रसमसे फबि रहे रसमाते,
सुरत सुरंग रंग में झकोर-काढ़े हैं।।७४।।

प्रेम के विनोद-विलास में सम्पूर्ण-रात्रि जागने के कारण युगल की वाणी लटपटाई हुई है और अङ्गों में श्रम का आलस्य छा रहा है, उनकी ऐसी सुरतान्त-छबि का दर्शन करके सखियों के नेत्र सरस हो रहे हैं।।७३।। रसिक युगल ने समस्त-रात्रि अपने मनोरथों की सिद्धि में व्यतीत की है, वे प्रातः एक ही चूनरी में लिपटे हुए खड़े हैं। प्रेम के जाल में नख-शिख पर्यन्त उलझे हुए हैं एवं सरस गाढ़ालिङ्गन में आबद्ध हैं, तो भी उनका उत्साह न्यून नहीं हो पाता है। सुगन्ध से सनी उनकी उन्मुक्त केश-राशि एवं खण्डित हारावली की रूप-शोभा का दर्शन करने के लिये सखियों में शत-शत उत्साह की वृद्धि हो रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेमोन्मत्त रँगमगे दम्पति ऐसे शोभित हो रहे है मानो प्रेम के रङ्ग में झकोर दिये गये हों।।७४।।

दोहा

रँगमगे दंपति रसमसे, 'हित ध्रुव' अद्भुत केलि।
छबि-तमाल सौं लपटि रही, मानौं छबि की बेलि।।७५।।
सीस सीस तरैं बाहु दै, जुरे मिथुन मुख चाहि।
निसि-दिन जीवनि सखिन कै, यहै परम सुख आहि।।७६।।
उभै सरोवर रूप के, हंस सखिनु के नैंन।
अद्भुत मुक्ता चुगत दिन, चितवनि-मुसिकनि-सैंन।।७७।।

उपसंहार दोहा

सहज रंग सुख सिंधु कौ, नाहिंन है सखि पार।
श्री हरिवंश प्रताप बल, कह्यौ बुद्धि अनुसार।।७८।।

सोरठा

हौंहिं सकल जौ गात, रौंम-रौंम रसना सहित।
कह्यौ तऊ नहिं जात, पिय-प्यारी कौ प्रेम-रस।।७९।।

प्रेम के विलासों में रँगे हुए आलिङ्गित रसिक दम्पति ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो छबिमय तमाल तरु से छबि की लता परिवेष्टित हो रही हो।।७५।। युगल रसिक परस्पर एक दूसरे के शिरों के नीचे उपवर्हण की भाँति भुजाएँ अर्पित किये, मुख से मुख मिलाये शोभित हैं। ऐसा दर्शन सखियों का परम सुख-मय जीवन है।।७६।। श्रीयुगल, रूप एवँ रस के तड़ाग हैं, सखियों के नेत्र मराल हैं, जो उनकी चितवन, मुसकान एवं नयन-कटाक्ष की छबि-छटा रूपी मुक्ताओं का ही सतत आहार किया करते हैं।।७७।।

युगल के सहज प्रेम सुख सागर का कोई ओर-छोर नहीं है। मैंने श्री हरिवंश-कृपा बल से अपनी बुद्धि के अनुसार उस अपार रस-सागर का वर्णन किया है।।७८।। यदि किसी के रोम-रोम प्रति अनेक जिह्वाएँ हो जायँ, तो भी वह लाड़िली-लाल के प्रेम रस का गान करने में असमर्थ ही रहेगा।।७९।।

दोहा

मन-बच जो गावै सुनै, हित सौं हित-सिंगार।
तेहि उर झलकत रहैं विवि, पद-अंबुज सुकुमार।।८०।।
यह रस जिनके सुनत मन, नाहिंन होत हुलास।
सपनेहुँ परस न कीजिये, तजि 'ध्रुव' तिनकौ पास।।८१।।
अस्सी दोइ दोहा कवित, हित-सिंगार के कीन।
जाके उर में बसैं ध्रुव, जुगल चरन है लीन।।८२।।

अस्तुः, जो प्रीतिपूर्वक मनसा-वाचा "हित शृङ्गार" का गान अथवा श्रवण करेगा, उसके हृदय में श्री श्याम-श्याम के सुकोमल चरणारविन्द प्रतिबिम्बित होंगे।।८०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस रस के श्रवण से जिनका मन उल्लसित नहीं होता, वे स्वप्न में भी स्पर्श योग्य नहीं हैं एवं उनके सङ्ग का परित्याग ही उचित है।।८१।। श्री ध्रुवदास ने "हित शृङ्गार" के बयासी दोहे एवं कवित्त कहे हैं। ये भाव जिनके हृदय में बसेंगे, वे युगल किशोर के चरणों में तन्मयता प्राप्त करेंगे।।८२।।

●

१७
शृङ्गार-सभा-मण्डल

मङ्गलाचरण दोहा

प्रथम चरन हरिवंशजी, उर धरि करौं विचार।
जिहिं प्रताप यह रस कछू, कहत बुद्धि अनुसार।।१।।

वृन्दावन-छबि दोहा

सर्वोपरि अद्भुत सरस, (श्री) वृंदाविपिन-विहार।
वरनौं जुगल किसोर कौ, मंडल-सभा-सिंगार।।२।।
कुंडल जमुना कौ जितौ, तितौ आहि बिस्तार।
पंकति कुंजनि की बनी, मंजु मंडलाकार।।३।।
कहा कहौं वृंदाविपिन छबि, जहँ बिहरत सुकुमार।
पत्र-पत्र सेवत दिनहि, कोटि-कोटि रति-मार।।४।।

ग्रन्थ का मङ्गलाचरण करते हुए श्रीहित ध्रुवदास जी आचार्यवर श्री हित हरिवंश चन्द्र के पाद-पद्मों को हृदय में विराजित कर शृङ्गार सभामण्डल का चिन्तन करते हुए कहते हैं कि इन चरणों के आशीर्वाद से ही मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इस रस का किञ्चित् वर्णन कर सकूँगा।।१।।

श्री वृन्दावन का यह नित्य विहार सर्वोत्कृष्ट, विलक्षण एवं अत्यन्त सरस है, अतः अब मैं रसिक-दम्पति युगल-किशोर के "शृङ्गार सभा मण्डल" (नामक ग्रन्थ) का वर्णन करता हूँ।।२।। यमुना के वृत्त से घिरा हुआ क्षेत्र "मण्डल सभा शृंङ्गार" का विस्तार है, जिसमें मञ्जु मण्डलाकार नव कुञ्जों की पङ्क्ति सुशोभित हो रही हैं।।३।। जहाँ सुकुमार युगल लाड़िले क्रीड़ा परायण हैं एवं जहाँ के पत्ते-पत्ते को कोटि-कोटि रति-काम नित्य सँवारा करते हैं, ऐसे श्री वृन्दावन की शोभा का वर्णन वाणी का अविषय है।।४।।

हेम-लता फूलन सहित, लसत छबीली भाँति।
नैंन चितै चकचौंधि रहै, सोभा कही न जाति।।५।।
मत्त फिरति मधुपावली, करत मधुर गुंजार।
मनहुँ मेघ अनुराग के, गावत मंगलचार।।६।।
कुंज-कुंज अति झलमलैं, बनति न उपमा आन।
सोम-सूर सत जोरियै, होत न तऊ समान।।७।।
रचना चित्र विचित्र दुति, राजत परम रसाल।
झालरि जलजनिं झलकि रहीं, बिच-बिच हीरा लाल।।८।।
जमुना की छबि कहा कहौं, तहाँ न आनँद थोर।
मनहुँ ढरयौ सिंगार रस, करि प्रवाह चहुँ ओर।।९।।
फूलि-फूलि रहे फूलि कै, कमल सुरंग अनेक।
हंस-हंसिनी फिरत बिच, निर्तत केकी-केक।।१०।।

जहाँ की कुसुमित कनक-वल्लरी की अपूर्व शोभा को देखकर दृष्टि चकित थकित सी रह जाती है। उस छबि-छटा का वर्णन शब्दों में किस प्रकार किया जा सकता है।।५।। जहाँ मधुर गुञ्जार करती हुई भ्रमरों की पङ्क्ति मतवाली होकर घूमती है, वहाँ ऐसा प्रतीत होता है, मानो अनुराग की मेघमाला मङ्गल-गीत गा रही हो।।६।। "शृङ्गार सभा मण्डल" की प्रत्येक कुञ्ज अनुपम प्रकाशमयी है। शत-शत-सूर्य-शशि एकत्रित हो कर भी उसकी समता कर सकने में असमर्थ हैं।।७।। इन कुञ्जों की रचना अति सुन्दर एवं परम रसमयी है, जिसमें शोभामयी मोतियों की झालरें, जिनके बीच-बीच में हीरे माणिक्य गुम्फित हैं, झूल रही हैं।।८।। श्यामवारि-वाहिनी कालिन्दी की असीम शोभा अतिशय आनन्द से परिपूर्ण है। वे श्री वृन्दावन के चारों ओर इस प्रकार सुशोभित हैं, मानो मूर्तिमान् शृङ्गार रस ही चतुर्दिक प्रवाहित हो रहा हो।।९।। वहाँ अनेक प्रकार के सुरङ्गित कमल पुष्प प्रफुल्लित हैं। हंस-हंसिनी जल में विहरण कर रहे हैं एवं प्रमुदित मयूर-मयूरी नृत्य कर रहे हैं।।१०।।

कुंज-कुंज आसन सुमन, राखी सेज रचाइ।
भरि सुरंग मादिक विविध, भाजन धरे बनाइ।।११।।
संपति इक-इक कुंज की, को कहि सकै प्रमान।
सारद जौ सत-कोटि मिलि, हारहिं तऊ निदान।।१२।।
मधुर-मधुर गति ताल सौं, कूजत विविध विहंग।
मनौं द्रुमनि चढ़ि रागिनी, गावतिं तान-तरंग।।१३।।
विविध भाँति रह्यौ फूलि कै, वृंदावन निजु बाग।
रति अरु श्री लियैं सोहिनी, झारतिं कुसुम-पराग।।१४।।
मनिमय अवनी अति बनी, सुंदर सुभग सुढार।
बिच कंचन कौ जगमगै, रतन-खचित आगार।।१५।।

सहचरियों ने कुञ्जों में पुष्पों के विविध आसन एवं आस्तरण सुसज्जित किये हैं तथा उनके समीप अनेक मधुर पेय कनक-कलशों में भर-भर कर हेज (प्रीति) पूर्वक विराजित किये हैं।।११।। जिस वृन्दावन की कुञ्ज प्रति कुञ्ज की सुख-सम्पति का अनुमान लगा पाना ही कठिन है, उस के कुञ्जगत वैभव का यदि कोटि-कोटि सरस्वती भी मिल कर वर्णन करना चाहें तो अन्ततोगत्वा उन्हें भी हार माननी पड़ेगी।।१२।। विविध खग-वृन्द वृक्षों पर बैठे मधुर-मधुर गति ताल से कूज रहे हैं, मानो वृक्षों पर आरूढ़ हो कर अनेकशः राग-रागिनियाँ तान-तरङ्गयुत गान कर रही हैं।।१३।। श्री श्यामा-श्याम की निज वाटिका श्री वृन्दावन विविध प्रकार के पुष्पों से पुष्पित है; जहाँ रति एवं लक्ष्मी मार्जनी हाथ में सोहिनी लिये वृन्दावन के कुसुम पराग को बुहारती रहती हैं।।१४।। मणि-खचित वृन्दावन की भूमि अति सुन्दर, सुभग एवं समतल है, जिसके मध्य में रत्न-खचित विशद भवन जगमगा रहा है।।१५।।

फूली फूलनिं की लता, रहीं झरोखनि झूमि।
प्रतिबिंबित जहँ तहँ मनौं, रची फूलनि की भूमि।।१६।।
सौरभताई जहाँ लगि, अरु सुगंध रस सार।
तिन करि वासित रहत दिन, उठत मोद उदगार।।१७।।
अति अनूप सुख पुंज में, चितवत चित्त लुभाइ।
रच्यौ राज-सत राज रति, नाना चित्र बनाइ।।१८।।
भानु कोटि तिहिं सम नहीं, झलकत झलक अपार।
भाँति-भाँति रचना नई, राजत चौंसठ द्वार।।१९।।
द्वार-द्वार प्रति सहचरी, खरी भरी रस-प्रेम।
तिनकौं प्यारी पीय की, सेवा ही कौ नेम।।२०।।
मृदु-मृदु दल लै जलज के, अति सुरंग रचि सैंन।
तापर विलसत नवल दोउ, मैंन-रंग भरे नैंन।।२१।।

प्रफुल्ल कुसुमित लताएँ भवन के झरोखों पर झूल रही हैं, जिनसे वृन्दावन की मणिमय भूमि प्रतिबिम्बित होकर ऐसी लगती है मानो वह पुष्प -सज्जित है।।१६।। सुगन्धित रस-सार से सुरभित है श्री वृन्दावन की अवनी, जहाँ सौरभ-सार का मोद रूपी उद्‌गार नित्य प्रवाहित रहता है।।१७।। अति अनुपम एवं सुखधाम वृन्दावन की शोभा दर्शन मात्र से चित्त को चुरा लेती है, जिसे शत- शत दिव्य रतिराज एवं रति ने मिल कर नाना विधि चित्रों से चित्रित किया है।।१८।। मध्य में भाँति-भाँति की रचनाओं से युक्त चौसठ द्वारों का भव्य भवन है, उस अपार प्रकाशमय धाम की समता कोटि-कोटि सूर्य भी नहीं कर सकते।।१९।। इस दिव्य धाम के प्रत्येक द्वार पर अनुराग भरी सहचरियाँ सेवा तत्पर रहती हैं जिनका, प्रिया-प्रियतम की सेवा का ही व्रत है।।२०।। वे सखियाँ सुपेशल, मृदु कमलदलों से अति सुन्दर शय्या की रचना करती हैं। मदन मद छके रतनारे नयन हैं, ऐसे नवल युगल रस-विलासी उस शय्या पर सुशोभित होते हैं।।२१।।

सुरत-रंग सुख में सरस, दोऊ रस की रासि।
मरम भिदी बतियनिं करैं, मृदु-मृदु ईषद हासि।।२२।।
दसन चिलक मुख की दमक, रह्यौ झलकि सब भौंन।
सो रस तो ललितादि निज, भरि पीवत दृग-दौन।।२३।।
रँगी रंग-अनुराग सौं, पगी दुहुँनि के प्यार।
और न कछू सुहाइ मन, जीवन युगल-बिहार।।२४।।
सहज सुभग अद्‌भुत अयन, सुख वरषत चहुँ कोद।
रँगमगे नवल-किसोर दोउ, तामें करत विनोद।।२५।।

सभामंडल-वर्णन दोहा

तिहि आगे मंडल सभा, प्रभा कही नहिं जाइ।
सोभा तहाँ की देखि कै, सोभा रहत लजाइ।।२६।।

रसनिधि युगल प्रेम रङ्गरस के रसिक है, वे मन्द मधुर हास-परिहासमयी वार्त्ताओं से हृदय को उल्लसित करते रहते हैं।।२२।। युगल की दन्तावलि की चमक एवं श्री मुख के तेज से सम्पूर्ण भवन प्रकाशित हो उठता है। श्री श्यामा-श्याम के इस सौन्दर्य का ललितादि सहचरी अपने दृग-पात्रों में भर-भर कर पान करती रहती हैं।।२३।। श्री युगल के प्रेम प्यार से पगी एवं उनके अनुराग-रस में रँगी इन सखियों को अन्य कुछ रुचिकर नहीं है। श्री युगल का प्रेम-विहार ही उनका जीवन है।।२४।। सहज शोभामयी अद्भुत कुञ्ज है, जहाँ सुख की अनवरत वृष्टि होती रहती है, वहाँ रस रङ्ग भरे नवल किशोर लाड़िले सतत रङ्ग विनोद करते रहते हैं।।२५।।

इस अद्भुत भवन के आगे अवर्णनीय प्रभापूर्ण 'सभा मण्डल' है, जिसकी शोभा का दर्शन करके मूर्तिमान् शोभा भी लज्जित हो जाती है।।२६।।

सभा में युगल-शोभा दोहा

सुरँग बिछौना मृदुल अति, भाँति-भाँति के आनि।
जो जैसैं जिहिं ठाँ बनैं, सखिनि बिछाये बानि।।२७।।
कंचन कौ रतननि खच्यौ, मनिमय विविधि सुरंग।
सिंहासन झलकत तहाँ, धर पर कछू उतंग।।२८।।
कोमल कुसुमनि की गदी, तापर धरी बनाइ।
अति सुरंग सौंधे सनी, रह्यौ विपिन महकाइ।।२९।।
मधुर-मधुर खग बोलहीं, डोलैं छबि सौं मोर।
सखिनु सहित सब दरस कौं, ह्वै रहे मनहुँ चकोर।।३०।।

सभा-दर्शन दोहा

तब आये मण्डल-सभा, जहाँ सखिनु की भीर।
भई एक गति सबनि की, बिसरे नैननिं-चीर।।३१।।
बनि बैठे भली भाँति सौं, नवल लाड़िली-लाल।
मनौं तमाल ढिग लसत मृदु, कंचन-बेली बाल।।३२।।

सखियों ने अनेक प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे कोमल आस्तरण, जहाँ जैसे फबे, ला कर बिछाये हैं।।२७।। धरातल से कुछ ऊँचा उठा हुआ मणिमय स्वर्ण-सिंहासन सुसज्जित किया गया है।।२८।। जिस पर कोमल पुष्पों की सुगन्धित गद्दी ला कर रखी गई है, जो सुन्दर एवं सौरभमय है, जिससे सारा वृन्दावन सुरभित हो रहा है।।२९।। चारों ओर पक्षियों का सुमधुर कूजन व्यञ्जित हो रहा है, जहाँ छबि पूर्वक मयूर विचरण कर रहे हैं। सखियों सहित समस्त परिकर चकोरवत् प्रतीक्षा रत है।।३०।।

जहाँ सखि-समुदाय एकत्रित है, उस मण्डल में नव दम्पति का पदार्पण होने पर समस्त परिकर निर्निमेष नयनों से उन्हें निहारने लगा है।।३१।। नवल लाड़िली-लाल उस गद्दी पर भली प्रकार से विराजमान् हुए, उस समय उनकी छबि ऐसी लगी, जैसे श्याम तमाल पर सुकोमल कनक-लता विलम्बित हो।।३२।।

नख शिख पानिप रूप निधि, सहज सरस सुकुमार।
रौंम-रौंम वरषत रहै, गुन-माधुरि छबि-वारि।।३३।।
(श्री) राधावल्लभ लाल सिर, फबी चंद्रिका-मोर।
सुरँग पाग सौं लटकि रही, बाम भाग की ओर।।३४।।
लाल भाल पर फबि रही, बैंदी लाल अनूप।
मनौं मूरति अनुराग की, प्रगट भई धरि रूप।।३५।।
नासा पुट मुक्ता फब्यौ, चितै रहे दृग-द्वंद।
भाजन भरि तन छलकि परी, मनौं रूप की बुंद।।३६।।
अरुन अधर दसनावली, झलकति परम रसाल।
हीरनि की पंकति मनौं, बंदन में करी लाल।।३७।।
साँवल मुख छबि-प्रभा पर, वारौं कोटिक चंद।
जित चितवत वरषत तहीं, सहज रूप-मकरंद।।३८।।

सहज सरस सुकुमार युगल नखशिख पर्यन्त अद्भुत रूप-लावण्य के धाम हैं, जिनके रोम-रोम से गुण, माधुरी एवं शोभा की वर्षा होती रहती है।।३३।। श्री राधावल्लभ लाल के मस्तक पर मयूर-चन्द्रिका से सुसज्जित सुरङ्ग पाग जो वाम भाग की ओर नमित है, अतिशय सुशोभित हो रही है।।३४।। श्री लाल के ललाट पटल पर अरुण बैंदी ऐसी शोभा पा रही है, मानो स्वयं अनुराग मूर्तरूप धारण कर प्रकट हो गया हो।।३५।। श्री लाल की सुन्दर नासिका पर दोलायमान् मुक्ता की छबि को देख कर नेत्र अपनी गति भूल जाते हैं, मानो रूप-सौन्दर्य पूरित भाजन से कोई एक मनोहर बिन्दु छलक पड़ा हो ।।३६।। अरुण अधरों के मध्य दशनावलि की परम रसमयी झलक ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो हीरों की पङ्क्ति किसी ने सिन्दूर में रँग दी हो।।३७।। लाल की श्यामल मुख-छबि-कान्ति पर कोटि-कोटि राका-शशि न्यौछावर हैं, वे जिस ओर दृष्टिपात करते हैं, वहाँ सहज ही रूप-पराग की वृष्टि हो जाती है।।३८।।

रूप प्रिया कौ कहन कौं, कितकि बुद्धि है मोर।
तेई कुँवर चरननि लुठत, निरखि नैंन की कोर।।३९।।
जिहि मनमथ त्रैलोक सब, अपने बस कियौ आनि।
सोइ मैंन मोह्यौ चितै, मोहन मृदु मुसकानि।।४०।।
मोहिनी सोहिनी भौंह तें, उपज्यौं सहज अनंग।
ते मोहन ध्रुव बस किये, तिहिं मनोज रस-रंग।।४१।।
चितवत मोहन चित्र से, रहे भूलि छबि ऐंन।
मानौं तिहि ठाँ मोल के, नैननिं लीनें नैन।।४२।।
यह सुख देखत हैं सखी, ठाढ़ी सब गहि ठौर।
वरषत आनँद सबनि पर, रसिकनि-मनि सिरमौर।।४३।।
लक्ष-लक्ष के जूथ तहाँ, अगनित अमित अपार।
रसन कोटि जौ हौंहि तन, कहि न सकति विस्तार।।४४।।

श्री प्रिया के रूप का वर्णन करने के लिये मेरी बुद्धि में सामर्थ्य ही कहाँ है ? जिनके नयन-कोर की किञ्चित् छबि-छटा पर कोटि काम लावण्य धाम प्रियतम चरणों में विलुण्ठित होते रहते हैं।।३९।। जिस मन्मथ (मदन) ने त्रिलोकी को अपने वशवर्ती बना रक्खा है, वह कामदेव प्रियतम की मोहिनी मृदु मुस्कान को देख कर मोहित हो रहता है।।४०।। श्री प्रिया के भृकुटि-विलास-सौन्दर्य से उत्पन्न हुए सहज प्रेम रूप अनङ्ग ने प्रियतम मोहन को अपने रस रङ्ग में रँग दिया है।।४१।। श्री प्रिया की अपाङ्गच्छटा के सौन्दर्य से विमुग्ध हुए लाल चित्र की भाँति ठगे से रह जाते हैं, मानो प्रिया के नेत्रों ने उनके नयनों को मोल ले लिया हो।।४२।। इस अपूर्व सुख का दर्शन करती हुई सखियाँ भाव-विभोर होकर अचल एवं स्थिर हो गयी हैं। रसिक शिरोमणि सब सखियों पर आनन्द की वृष्टि कर रहे हैं।।४३।। लक्ष-लक्ष सखियों के यूथ गणना रहित, असीम एवं अपार हैं। अनन्त जिह्वाएँ हों, तो भी कोई इन सखियों के विस्तार का वर्णन नहीं कर सकता।।४४।।

सखियों का वर्णन दोहा

यूथ-यूथ प्रति नाइका, इक-इक सखी उदार।
तिनके नाम कहौं कछू, अपनी मति अनुसार।।४५।।
ललित विसाखा रूचि लियैं, करत भाँवती बात।
रँग देवी चित्रा तहाँ, जुगल रंग-रस रात।।४६।।
तुँगविद्या चंपकलता, इँदुलेखा गुनखान।
सखी सुदेवी सहित 'ध्रुव', आठौं परम सुजान।।४७।।
इनतें अंतर नेकु नहिं, ज्यौं छाया तिन संग।
मानौं मूरति हेत की, बढ़वति पलु-पलु रंग।।४८।।
एक वैस छबि-रासि सब, भूषन बसन समान।
एक प्रेम में रहीं सनि, इकमन एकै प्रान।।४९।।

प्रत्येक यूथ के साथ यूथेश्वरी एक-एक उदार सखी है, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनके नाम-वर्णन करता हूँ।।४५।। ललिता एवं विशाखा सखियाँ युगल की रुचि का ध्यान रखते हुए उनको प्रिय लगनेवाली ही बातें करती रहती हैं। इसी प्रकार श्री रङ्गदेवी एवं चित्रलेखा युगल के प्रेम रस में रँगी रहती हैं।।४६।। तुङ्गविद्या, चम्पकलता, इन्दुलेखा एवं सखी सुदेवी ये आठों सखियाँ परम चतुर एवं गुणों की निधान हैं।।४७।। तन् की परछाँही की भाँति श्री युगल के नित्य निकट रहती हैं, एवं तत्सुखमयी प्रीति की प्रतिमूर्ति ये सखियाँ युगल रङ्ग विनोद का संवर्द्धन करती रहती हैं।।४८।। ये सब सखियाँ समवयस्क हैं एवं अनुपम छबि पुञ्ज हैं। इनके वस्त्रालङ्कार सब एक से हैं। ये सब एक मन एक प्राण हैं एवं केवल युगल-प्रेम में ही रँगी रहती हैं।।४९।।

यूथगत सखियों के नाम दोहा

अब कछु तिनके नाम सुनि, हीयौ-स्रवन सिराइ।
प्रेम-रंग उर में बढ़ै, और दुःख मिटि जाइ।।५०।।
चंद्रभगा चंद्रानना, चंद्रप्रभा चित चाव।
चंद्रकला अरु चंद्रिका, कोमल सहज सुभाव।।५१।।
चंद्रमती चंद्रासखी, चंपक बरनी चारु।
चित्रांगी चंदनवती, चंद्रनिता चितहार।।५२।।
चपला चतुरा चंचला, चित्तहरा चित चैन।
चंद्रछटा वर चंदिनी, चंद्र-कांति रस ऐंन।।५३।।
चारुमुखी चरिता चतुर, चारुदृगी चल नैन।
चारुमती चंपक-तनी, चित्रांगी चित-चैन।।५४।।
रस-रंगा रस-रंगिनी, रसपुंजा रस-रूप।
रस भरि रसिका रसवती, रंगावली अनूप।।५५।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब मैं उन सखियों के कुछ एक नामों का गान-वर्णन करता हूँ, जिसके श्रवण से हृदय शीतल होता है, प्रेमानन्द की वृद्धि होती है एवं समस्त दुःखों की निवृत्ति हो जाती है।।५०।। चन्द्रभगा, चन्द्रानना, चन्द्रप्रभा नवीन उमङ्ग लिये नित्य सेवा-तत्पर रहती हैं। चन्द्रकला एवं चन्द्रिका सहज मृदुल स्वभाव की हैं।।५१।। अति सुन्दर हैं चन्द्रमती, चन्द्रा, चम्पक वर्णी, चित्राङ्गा चन्दनवती एवं चन्द्रजिता। ये सखियाँ युगल का चित्त हरण करने वाली हैं।।५२।। चपला, चतुरा, चञ्चला परम मृदुल चितवाली हैं। चन्द्रछटा, वरचन्दिनी एवं चन्द्रकान्ति रस की भण्डार हैं।।५३।। चारुमुखी, चरिता परम विलक्षण हैं एवं चारुदृगी चपल नेत्रवाली हैं। चारुमती, चम्पकतनी एवं चित्राङ्गी चित्त को सुख देने वाली हैं।।५४।। रसरङ्गा, रसरङ्गिणी एवं रस पुञ्जा साक्षात् रस स्वरूपा हैं। रसिका, रसवती एवं रङ्गावली अनुपम रस राशि हैं।।५५।।

रतनप्रभा रस-मंजरी, रूप-मंजरी नाम।
रस-ऐंनी रस-मंजरी, रस-रैंनी रस धाम।।५६।।
रतन-मंजरी रति-कला, राग रंग के साथ।
रस-दैंनी अरु रस-भरी, गहैं रसलिका हाथ।।५७।।
वृंदा विपिन-विनोदनी, बन-दीपा बन-कांति।
वनशोभा अरु बनमती, बन-मोदा भली भाँति।।५८।।
बन-रागा अरु-बन-प्रभा, बन-भूषा बन-केलि।
बन-विज्ञा विजया-जया, बन-माला बन-बेलि।।५९।।
सुभगा सुमती शारदा, सारंगी रस-सार।
सुखद जयंती शशि-मुखी, सरसी सखी उदार।।६०।।
सुघर सुनंदा साँवरी, सहज सलौंनी चाहि।
सिंदूरा शुभ-आनना, शोभा की निधि आहि।।६१।।
सरला सुमना सारिका, सौदामिनी लसंत।
सुमुखी संग सुकुन्तला, भ्रमत भँवर रस-मंत।।६२।।

रत्न प्रभा, रस मञ्जरी, रूप मञ्जरी, रस-अयनी, रति-मञ्जरी एवं रस -रैनी नाम की ये सब सखियाँ रस धाम हैं।।५६।। रत्न मञ्जरी, रतिकला, सङ्गीत कला में निपुण हैं, रसदैनी एवं रसभरी सखियाँ रसालिका नामक वीणा धारण किये रहती हैं।।५७।। वृन्दा विपिन विनोदिनी, वनदीपा, वनकान्ति, वनशोभा, वनमती एवं वनमोदा ये सब सखियाँ सुन्दर स्वरूपा हैं।।५८।। वनरागा, वनप्रभा, वनभूषा, वनकेलि, वनविज्ञा, विजया, जया, वनमाला, वन, बेलि, सुभगा, सुमति, शारदा, सारङ्गी ये सब रससारग्राही सखियाँ हैं।।५९।। सुखदा, जयन्ती, शशिमुखी एवं सरसी ये उदार स्वभाव वाली सखियाँ हैं।।६०।। चतुरा, सुनन्दा और साँवरी ये सहज लावण्यमयी हैं। सिन्दूरा एवं शुभानना शोभा की निधि हैं।।६१।। सरला, सुमना, सारिका एवं सौदामिनी शोभामयी हैं। सुमुखी की सङ्गिनी सुकुन्तला पर रसिक भ्रमर (श्रीलालजी) मँडराते रहते हैं।।६२।।

मालती माधवी माधुरी, मधुपा कै अति हेत।
मानवती मंदालसा, मदनावती समेत।।६३।।
मंजुकेशी मनिमंजरी, मनिकुंडला रसाल।
मृगनैंनी मधुमालती, मंजुपदा मनिमाल।।६४।।
कलहंसी कटिकेहरी, कलवंशी कलकेलि।
कलनैंनी कलगामिनी, कलबैंनी कलबेलि।।६५।।
कंजमुखी कमलावती, कनकांगी रही सोहि।
केलिकला कृष्णावती, कुमुदा रही छबि जोहि।।६६।।
भाँमा भाँमती भानुजा, भवन-सुंदरी संग।
भानमती मन-भावनी, भूषनभूषा अंग।।६७।।
भद्रपदा भद्रावती, भामिनि दीपा भौंन।
भद्र-सरूपा भाग-भरी, उपमा दीजै कौन।।६८।।
तानवती तारावती, भरी तमाला रंग।
तम-हरनी तरला तहीं, तान-तरंगा संग।।६९।।

मालती, माधवी, माधुरी, मधुपा हृदय में अत्यन्त प्रीति सँजोये युगल की सेवा परायण रहती हैं। इनके साथ रहती हैं मानवती, मन्दालसा एवं मदनावती।।६३।। मञ्जुकेशी, मणि मञ्जरी, मणि कुण्डला अति सरस हैं एवं मृगनैनी, मधुमालती, मञ्जुपदा, मणिमाला की तरह शोभामयी हैं।।६४।। कलहंसी, कटिकेहरि, कलवंशी, कलकेलि, कलनैनी, कलगामिनी, कलबैनी, कलबेलि।।६५।। कञ्जमुखी, कमलावती एवं कनकाङ्गी अति शोभामयी हैं। केलिकला, कृष्णावती, कुमुदा ये युगल छबि को निहारा करती हैं।।६६।। भामा, भामती, भानुजा, भवन-सुन्दरी के साथ हैं—भानमती, मन-भावनी, जिनके अङ्ग भूषणों के भी भूषण हैं।।६७।। भद्रपदा, भद्रावती, भामिनी, भवन-दीपा, भद्रस्वरुपा एवं भाग्यभरी ये सखियाँ अनुपमेय हैं।।६८।। तानवती, तारावती इनकी सङ्गिनी तमहरनी, तरला और तानतरङ्गा ये सब सखियाँ तमाल वर्ण की हैं।।६९।।

पिकबैंनी प्रेमावली, प्रेमा रस में लीन।
परिमल पुन्या पावनी, पद्मावती प्रवीन।।७०।।
नीरजनैंनी नंदनी, नेह नवीना नित्त।
नाद-नंदिनी निर्मला, नवला कोमल चित्त।।७१।।
गुनमाला अरु गुनवती, गुन भूषन गुन खान।
गुनकंदा अरु गुनकला, गुनभेदा गुन जान।।७२।।
चंप चमेली केतकी, वासंती रस ऐंन।
बेलि गुलाली सेवती, सेवत हैं दिन-रैंन।।७३।।
रुप धरैं सब रागिनी, रँगी रंग-अनुराग।
लाल-लड़ैंती कुँवरि कौ, गावत दिनहिं सुहाग।।७४।।
दिवा-जामिनी छहौं ऋतु, ठाड़ी रहैं कर जोर।
करत जोइ तेहि छिन समुझि, जब चितवत जेहि ओर।।७५।।
गोरी-गोरी सखी जे, भरी प्रिया रस गर्व।
चंदकिरनि सी चहुँ दिसनिं, राजति अर्वनि-अर्व।।७६।।

पिकबैनी, प्रेमावली, परिमल-पुण्या, पावनी, प्रवीण एवं पद्मावती ये सब प्रेम रस में निरन्तर लीन रहनेवाली हैं।।७०।। नीरज नैनी, नन्दिनी, नेह नवीना, नाद-नन्दिनी, निर्मला एवं नवला ये सखियाँ अतिशय कोमल चित्त हैं।।७१।। गुणमाला, गुणवती, गुणभूषणा, गुणखानि, गुणकन्दा, गुणकला, गुणभेदा, गुणजानि, चम्पा, चमेली, केतुकी एवं वासंती ये सब सखियाँ रस की भण्डार हैं।।७२।। गुलाली और सेवती लता रूपी सखियाँ युगल की अहर्निश सेवा किया करती हैं।।७३।। अनुराग में रँगी हुई मूर्तिमती समस्त रागिनियाँ सदैव ललित लाड़िली-लाल के सुहाग के मङ्गल-गीत गाती रहती हैं।।७४।। इसी प्रकार षट ऋतुऐं, दिन-रात सभी करबद्ध आज्ञानुवर्तिनी हुइ युगल दम्पति के सम्मुख खड़ी रहती हैं।।७५।। गौरवर्ण की समस्त सखियाँ प्रिया पक्ष की होने के कारण सदा किरणों की भाँति प्रिया के चारों ओर शोभित होती हैं।।७६।।

कुंज भृंगी सब सहचरी, मोर मराली चाहि।
जे हैं प्यारी पक्ष की, ते सगर्व सब आहिं।।७७।।
शुक पिक बल्ली सखी सब, हंस मयूरी मोर।
लिये दीनता रहत दिन, जितक लाल की ओर।।७८।।
जुगल मिलन सुख सहज ही, अद्‌भुत केलि-विहार।
जीवन सब की एक ही, जीवति तेहि अधार।।७९।।
यह नामावलि सखिनु की, सुनत रुचैगी जाहि।
प्रेम बढ़ै शोभा चढ़ै, रहै जाहि तेहि पाहि।।८०।।
रज-कन उड़गन बूँद घन, आवत गिनती माहिं।
कहत जोई थोरी सोई, सखियन संख्या नाहिं।।८१।।
मंडल जोरैं खड़ी मनौं, जुरे चकोरिनु बृंद।
इक टक रहीं निहारि सब, विवि वृंदावन-चंद।।८२।।

कुञ्ज-निकुञ्ज भ्रमर-भ्रमरी, मयूर-मयूरी, मराल-मराली ये सब प्रिया पक्ष की सगर्विता सखियाँ हैं।।७७।। शुक, पिक, वल्लरी, हंस, मयूरी, मयूर और भी जो श्री लाल के पक्ष की सखियाँ हैं, वे सदैव दैन्य भाव धारण किये रहती हैं।।७८।। नव दम्पति का मिलन सुख, एवं उन की अद्भुत शृङ्गार-केलि ही इन सखियों का एक मात्र जीवनाधार है।।७९।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों की यह नामावली जिसे श्रवण-प्रिय होगी, उसके हृदय में प्रेम की वृद्धि होगी, वह तेज सम्पन्न होगा एवं उसे अभिलषित वस्तु प्राप्त होगी।।८०।। धूलिकण, तारागण एवं वर्षा के विन्दु-कणों की गणना तो कदाचित् हो भी सकती है परन्तु सखियों की संख्या अपार है।।८१।। श्री युगल के चतुर्दिक मण्डल बना कर खड़ी हुईं ये सखियाँ ऐसी शोभायमान् हैं मानो चकोरियों के अनेक वृन्द अपलक नेत्रों से श्री वृन्दावन-चन्द्र श्यामा-श्याम की छबि को निहार रहे हों।।८२।।

अपनौ अपनौ गुन जितौ, हित के रस सौं सानि।
ते सब आगैं दुहुँनि के, प्रगट करति हैं आनि।।८३।।
सखी सुधंगा निर्त्त करै, लियैं कला सब संग।
देखैं अद्भुत गतिन कौं, होत नैंन-मन पंग।।८४।।
उरप तिरप अरु हुरमई, लाग डाट बंधान।
सरस सुलप सुंदर चलनि, मुसिकनि हरत है प्रान।।८५।।
अति प्रवीन सब अंग में, रीझि-रीझि दोउ लाल।
तबहिं बोल तेहि सखी कौं, पहिराई उर-माल।।८६।।
पाछैं गावत रागिनी, बीना लियैं मृदंग।
एक साँरँगी किन्नरी, एक सजैं मुहचंग।।८७।।
अमृत-कुंडली हुड़कई, एक गहैं करतार।
गुन-सरिता उमड़ी मनौं, बाढ़्यौ रंग अपार।।८८।।

ये सब सखियाँ अपने-अपने प्रेमरस-रञ्जित समस्त गुणों को श्री युगल के सम्मुख प्रकट करती रहती हैं।।८३।। सुधङ्गा सखी नृत्य की विविध कलाओं का जब विकास करती है तो उनके नृत्य की विचित्र गति का अवलोकन कर के मन एवं नेत्रों की गति स्थिर हो जाती है।।८४।। उरप, तिरप, लाग, डाट, बन्धान, सुलप एवं हुरमई-नृत्य की विविध गतियों के साथ, मुख की मधुर मुस्क्यान से श्री युगल के चित्त का हरण करती हैं।।८५।। उस समय नृत्य-कला-विचक्षणा सखी की नृत्यकला-चातुरी को देख कर नव किशोर श्री युगल अत्यन्त रीझ गये। उस सखी को बुलाकर उन्होंने अपनी उरमाला उसे पहिना दी।।८६।। सङ्गत के लिये वीणा एवं मृदङ्ग धारण किये रागिनी का विस्तार हो रहा है एवं अन्यान्य सखियाँ सारङ्गी, किन्नरी, मुखचङ्ग, अमृतकुण्डली, हुड़कई एवं कठतार आदिक वाद्य लिये अपनी-अपनी गुण कलाओं को प्रगट करती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गुणों की सरिता प्रवाहित हो रही है, जिसमें आनन्द-प्रवाह उमड़ पड़ा हो।।८७।।८८।।

जितक कला संगीत की, तामें सबै प्रवीन।
गावति निर्त्तति लेत हैं, अद्‌भुत गतिनु नवीन।।८९।।
एक वैस गुन रासि सब, तैसौ तिनकौ हेत।
देखि छबीली छबि तहाँ, रीझि दुँहुनि सुख देत।।९०।।
तानतरंगा निकट ह्वै, गाई बाँकी तान।
तबहिं रीझि तेहि सखी कौं, दिये बुलाय हँसि पान।।९१।।

सोरठा

आँनद मेघ चुचात, सुख कौ सर 'ध्रुव' दिन तहाँ।
क्यौं आवै कहि बात, वृंदावन-बिधु-सभा की।।९२।।

वर्षा ऋतु वर्णन दोहा

पावस रितु आगम कियौ, अपनी सेवा हेत।
द्रुम-द्रुम बोलत खग मधुर, नाम सनेह समेत।।९३।।

सङ्गीत की जितनी कलाऐं हैं, उनमें ये सब सखियाँ परम प्रवीण हैं। ये गानकला एवं नृत्यकला की नित्य नवीन अद्‌भुत गतियों को प्रकट करती रहती हैं।।८९।। ये सब सखियाँ समवयस् नित्य किशोरी हैं, एवं गुणों की राशि हैं। तदनुरूप उनका युगल के प्रति प्रेम भी अतिशय विलक्षण है। ये सखियाँ श्री युगल की सुन्दर छबि का दर्शन करके प्रेम में छक जाती हैं और उनकी प्रेम-विभोर दशा को देखकर श्री युगल अत्यन्त प्रमुदित एवं आनन्दित होते हैं।।९०।। जब गान-कला प्रवीण तानतरङ्गा नाम की सखी ने समीप आकर विलक्षण रीति से स्वरों का द्रुतगति में विस्तार किया, तब युगल ने रीझ कर उस सखी को निकट बुलाकर हँसते हुए ताम्बूल वीटिका दी।।९१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार वृन्दावन में आनन्द मेघ की झड़ी लगी रहती है! वृन्दावन-चन्द्र की सभा का वर्णन वाणी द्वारा असम्भव है।।९२।।

अपनी सेवा की सौंज लिये वर्षा ऋतु ने जब पदार्पण किया, तब श्री वन के लता द्रुमों पर विराजमान् खग-मृग वृन्द अपनी मधुर वाणी में श्री श्यामाश्याम के नामों का गान करने लगे।।९३।।

स्याम सचिक्कन मोहिनी, आई घटा अनूप।
मनौं रह्यौ बन छाइ कैं, निज सिंगार कौ रूप।।९४।।
ऊँचे नीचे महल की, सिखर सिखी चहुँ ओर।
जहँ तहँ आनँद रंग भरि, निरतत मोरी-मोर।।९५।।
सुरंग हिंडोरे रंग में, झूलत समय बिचारि।
पानिप, रूप तरँग उठैं, सो छबि रही निहारि।।९६।।
रिमझिमि बूँदनि की परनि, गावनि मधुर मलारि।
यह सुख देखत सुनत ही, रहति न देह सँभारि।।९७।।
बढ़ी ओप झलकत सबै, पत्र फूल फल डारि।
मानौं मज्जन करि विपिन, फेरि कियौ सिंगारि।।९८।।
देखि भाँति बन की भली, रुचि में रुचि की गोभ।
उपजी है मन दुहुँनि कै, एक केलि की लोभ।।९९।।

श्यामवर्ण की सघन एवं मन मोहिनी मेघमाला घिर कर ऐसे छा गयी मानो शृङ्गार रस ने ही मूर्त्त रूप धारण करके श्रीवनको आच्छादित कर लिया हो।।९४।। छोटे-बड़े निकुञ्ज महलों के उन्नत एवं लघु शिखरों पर यत्र-तत्र आनन्द से भरे हुए मयूर-मयूरी नृत्य करने लगे।।९५।। जब युगल किशोर श्री श्यामाश्याम समय-समय पर रङ्गमय सुरत-हिंडोरे में झूलते हैं, तब उनके रूप-लावण्य की उठती हुई तरङ्गों के दर्शन से सखियाँ आनन्दमग्न हो जाती हैं।।९६।। वर्षा की रिमझिम-रिमझिम बूँदों का निर्झरण देख एवं मधुर मलार रागिनियों का श्रवण कर देह की सुध-बुध खो जाती है।।९७।। वर्षा के प्रभाव से लता, द्रुम, पत्र, पुष्प, फल एवं शाखाओं की कान्ति प्रखर हो उठती है, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विपिनराज का अभिषेक करके फिर नवीन शृङ्गार किया गया हो।।९८।। श्री वन की सुरुचिपूर्ण सुषमा को देखकर श्री श्यामाश्याम के मन में ऐकान्तिक-केलि की लालसा स्फूर्त्त हो उठी।।९९।।

बाहाँ-जोरी चलत दोउ, देखन हित सब कुंज।
चहूँ ओर सब सहचरी, मध्य प्रान सुख-पुंज।।१००।।

कमल-कुञ्ज आगमन दोहा

कमल कुंज आये प्रथम, सहज रंग-रस ऐंन।
अति सुरंग अंबुज-दलनि, रची तहाँ सखि सैंन।।१०१।।
देखत रचना रुचिर अति, रीझे दोउ सुकुमार।
बोलि सखी कमलावती, पहिरायौ उर हार।।१०२।।
पुनि पौढ़े तिहिं सेज पर, करत हास-परिहास।
भींजे रंग अनंग में, बाढ्यौ हिये हुलास।।१०३।।
रति-विनोद बिलसत विविध, उपज्यौ आनँद रंग।
हँसनि दसनि अंगनि लसनि, छबि के उठत तरंग।।१०४।।

परस्पर बद्ध-बाहु श्री युगल समस्त कुञ्जों का अवलोकन करने के लिये चले हैं। उस समय उनके चारों ओर सखियों के वृन्द हैं, जिनके मध्य में सुशोभित हैं, प्राणवत् आनन्दराशि ये श्री युगल।।१००।।

श्री युगल सर्व प्रथम सहज आनन्द रस धाम "कमल कुञ्ज" में पधारे, जहाँ उस कुञ्ज की सखी ने अरुणिम कमल-दलों की शय्या रची थी।।१०१।। उस कुञ्ज की कमनीय रचना को देखकर श्री युगल अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने रीझ कर कमलावती सखी को अपना हृदय-हार पहिना दिया।।१०२।। तदुपरान्त वे उस शय्या पर विराजमान् होकर विविध प्रकार के सरस हास-परिहास करने लगे, जिससे उनका हृदय उल्लसित हो कर प्रेम रस में निमग्न हो गया।।१०३।। आनन्द-उल्लास से भरे हुए ललित लाड़िली लाल अनेक प्रकार से रति-विनोद करने लगे। उनके मधुर हास्य में दशनों की द्युति एवं ललित अङ्गों की दिव्य कान्ति से छबि की तरङ्गें उठने लगीं।।१०४।।

लतनि ओट ललितादि निजु, सुख देखत भरि नैंन।
कहत बचन जे रँगमगे, सुनत श्रवन है चैंन।।१०५।।

शृङ्गार-कुञ्ज आगमन दोहा

ता पाछैं तेहि कुंज तें, आये कुंज सिंगार।
नौतन भूषन बसन तन, पहिराये उर हार।।१०६।।
सुरँग सहानी सेज पर, दुलहिनि-दूलहु लाल।
मुसिकनि मन हरि लेत हैं, चितवनि-नैंन-विसाल।।१०७।।
मिहँदी कौ रँग बनि रह्यौ, अंजन नैंन सुदेस।
नवसत अंगनि जगमगै, कहि न सकत छबि लेस।।१०८।।
ललिता आनँद रँग भरी, विवि-मुख चितै अनूप।
मनहुँ नैन नरजा कियैं, तोल्यौ करति है रूप।।१०९।।

लतारन्ध्रों से लगी हुई निज सहचरी ललितादि इस सुख का नेत्र-पुटों में भर-भर कर पान करने लगीं एवं युगल की पारस्परिक रसवार्ता का श्रवण करके वे आनन्द विभोर हो गयीं।।१०५।।

तत्पश्चात् कमल-कुञ्ज से शृङ्गार-कुञ्ज में पधारे, वहाँ सखियों ने उन्हें नवीन वस्त्रालङ्कार एवं पुष्प मालाएँ धारण करायीं।।१०६।। नव वर-वधू रङ्ग रँगीली शय्या पर आकर विराजमान् हुए, उनके विशाल नेत्रों की चितवन एवं मञ्जु मुखारविन्द की मन्दस्मित अत्यन्त मनोहारी है।।१०७।। कर-कमल मदयन्तिका रङ्ग-रञ्जित हैं, सुन्दर नेत्रों में अञ्जन की रेखा शोभा पा रही है। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग षोडश शृङ्गार सज्जा से अलङ्कृत हैं, जिसकी छबि-छटा का लेश वर्णन कर सकना भी कठिन है।।१०८।। आनन्द उल्लासमयी श्री ललिता सखी श्यामाश्याम की अनुपम मुख-छबि का सतत दर्शन करती रहती हैं, मानो अपने नेत्र रूपी नरजा (तराजू) में उनके रूप की प्रतिपल की नयी-नयी छबि-छटा को तोल रही हों।।१०९।।

जबहिं ढ़रत जिहि कुंज कौं, तहँ की सखी सुजान।
नैंननिं के करि पाँवड़े, न्यौछावरि करि प्रान।।११०।।

मान-कुञ्ज आगमन दोहा

मान कुंज आये जबहिं, कुंवरि-भौंह भई भंग।
चितै लाल पाइन परैं, समुझि मान कौ अंग।।१११।।
ऐसै रस में हो प्रिये, ऐसी जिय न बिचारि।
तासौं इती न चाहियै, तन मन जो रह्यौ हारि।।११२।।
कैसैं कै सहि जाति है, नेकु रुखाई भौंह।
याते नाहिंन और दुख, प्यारी तेरी सौंह।।११३।।
मेरै तो कछुवै नहीं, तुमहौ प्राननि-प्रान।
यहै बात जिय समुझि कै, चित जिन आनौं आन।।११४।।

इस प्रकार श्री लाड़िली लाल जब जिस कुञ्ज की ओर गतिमान् होते हैं, तब उस कुञ्ज की चतुर सखियाँ प्राणों को न्यौछावर करते हुए, अपने नेत्रों के पाँवड़े बिछा देती हैं।।११०।।

मान-कुञ्ज में पदार्पण करते ही श्री लाड़िली जी की भृकुटि तन गई जिसे देखते ही मान के अङ्ग का आगमन अनुभव कर, श्री लाल चरणों में निपतित हो गये।।१११।। वे चाटु वचनों द्वारा निवेदन करने लगे-हे प्रिये! ऐसे रसमय अवसर पर मान को मन में स्थान देना असङ्गत है। जो आपके चरणों में अपना तन-मन-प्राण हार चुका हो, उसके प्रति ऐसी कठोरता अन्याय है।।११२।। हे प्रिये! आप ही विचारिये कि आप की किञ्चित् उपरामता भी मेरे लिये कितनी असह्य है। हे प्रिये! मैं आपकी सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि मेरे लिये इससे अधिक दुःखद और कुछ नहीं है।।११३।। आपसे पृथक् मेरा अस्तित्व नहीं है। आप मेरे प्राणों की भी प्राण हैं। इस बात को समझ कर, अपने चित्त में अन्यथा कुछ मत लाइये।।११४।।

सोरठा

मेरे है गति एक, तुव पद-पंकज की प्रिये।
अपने हठ की टेक, छाँडि कृपा करि लाड़िली।।११५।।

दोहा

मोहन के मोहन वचन, सुनि मोहिनि मुसिकाइ।
प्यारौ प्यारी प्यार-सौं, ढरकि लियौ उर लाइ।।११६।।
तिहिं छिन दीनौं अधर रस, नवल रँगीली-बाल।
तिनकी प्रीति न कही परै, प्रेम-सींव दोउ लाल।।११७।।

कवित्त

प्यारी जू की रिस ऐसी दामिनी दमकि जैसी,
छिन एक चमकि मिलति जाइ घन में।
नैंन नेकु बंक करै फिरि ताही रंग ढ़रै,
परम कोमल चित रस भरी मन में।।

हे प्रिये ! आपके पदपद्म ही मेरा एकमात्र आश्रय हैं, अतएव हे लाड़िली ! आप कृपा पूर्वक अपना हठ छोड़ दीजिये।।११५।। मनमोहन की मधुमय चाटु वचनावली को सुन कर मृदुल चित्त लाड़िली प्यारी ने प्रेमोल्लसित हो कर प्रियतम को हृदय से लगा लिया।।११६।। तब रङ्ग रँगीली नव किशोरी ने प्रियतम को अधर-सुधा प्रदान कर आनन्दित किया। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की परमावधि श्री लाड़िली-लाल की पारस्परिक प्रीति की शाब्दिक अभिव्यक्ति असम्भव है।।११७।। श्री प्रिया का रोष तो दामिनी की कौंध जैसा क्षणिक है, जो एक क्षण चमक कर बादलों में विलीन हो जाती है। जिस प्रसङ्ग में उनकी भृकुटी बङ्क होती है तत्काल ही रोष विस्मृत हो कर वह प्रियतम के सङ्ग प्रेम-रस रँग में ढ़ल जाती हैं। वस्तुतः वे परम कोमल रस-रङ्गमयी हैं।

उर सौं लपटि रही छबि न परति कही,
मानौं मीन विहरति स्याम-सर वन में।
'हित ध्रुव' मान ऐसौ बिरह न हौंन पावै,
समुझि प्रवीन प्यारी सावधान पन में।।११८।।

दोहा

पुनि हँसि कै तहाँ ते चले, आये कुंज विलास।
देखत रचना रुचिर अति, बाढ़्यौ हियैं हुलास।।११९।।
मनिमय कनक प्रजंक पर, फूलनि-सेज बनाय।
रचि राखी सखियनि जहाँ, अरगजा सौं छिरकाय।।१२०।।
मेवा फल सब अमृत मय, चहूँ ओर धरे आनि।
भाजन भरि मधु मादिकन, बीरी राखी बानि।।१२१।।
आसन मृदु बहु भाँति के, सोभा कही न जाइ।
कहुँ चौपर सतरँज कहूँ, राखी विविध बिछाइ।।१२२।।

प्रियतम के सङ्ग उनका गाढ़ाश्लेषित रूप अवर्णनीय है। ऐसा प्रतीत होता है मानो श्याम-सरोवर के अगाध जल में मीन संतरित हो रही हो। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम-प्रवीण प्रिया मान की अवस्था में भी सदा इस बात के लिये सावधान हैं कि मान उस सीमा का अतिक्रमण न कर पाये, जहाँ विरह की कटुता उत्पन्न हो जाय।।११८।। पुनः हँसते हुए श्री लाड़िली-लाल विलास कुञ्ज में पधारे। वहाँ की सरस एवं सुन्दर रचना को देखकर उनका मन अत्यन्त उल्लसित हो उठा।।११९।। सखियों ने मणि जटित स्वर्ण पर्यङ्क पर परिमल सुरभित पुष्प-शय्या रच रखी थी।।१२०।। पर्यङ्क के चारों ओर अमृतमय मेवा, फल, ताम्बूल-बीटिकाएँ एवं मादक मधु-पूरित विविध भाजन सुसज्जित कर रखे थे।।१२१।। सखियों ने कुञ्ज के अभ्यन्तर भाग में विविध प्रकार के कोमल आसनों पर कहीं चौपड़, कहीं शतरञ्ज आदि क्रीड़ा के उपस्करण भी बिछा रखे थे।।१२२।।

हँसि बैठे तेहि सेज पर, हेत सखिन कौ जानि।
कहत परस्पर बैंन मृदु, मैंन रंग सौं सानि।।१२३।।

सोरठा

कहत बनत कछु नाहिं, सुरत-रंग सुख-सिंधु बढ़्यौ।
पैरावत तिहि माँहि, पियहि लाइ कुच घटनि सौं।।१२४।।

दोहा

सब विधि नागरि निपुन अति, कोक-विलास कलानि।
उपजत नव-नव भाव सत, गुन-रतननि की खानि।।१२५।।

कवित्त

कोटि-कोटि रसना जो रोम-रोम प्रति हौंहिं,
प्यारी जू के रूप कौ न प्रमान कह्यौ जात है।
अतिहि अगाध सिंधु पार नाहिं पावै कोऊ,
थोरी बुद्धि सीप माँझि कैसैं कैं समात है।।

सखियों के प्रीतिमय मनोभाव को जान कर श्री लाड़िली लाल मुस्कराते हुए कनक-पर्यङ्क पर विराजित हो कर परस्पर में प्रेम रङ्ग से सनी हुई मृदुल वार्त्ता करने लगे।।१२३।। सुरतसुख-सिन्धु के वर्द्धन का वर्णन वाणी का अविषय है, जहाँ प्रिया अपने कुचघटों का अवलम्ब प्रदान कर प्रियतम को उस आनन्द-सिन्धु में तैरा रही हैं।।१२४।। गुण रत्नों की निधि नागरी प्रिया कोक-विलास की कलाओं में सर्वविध विचक्षणा हैं, उनमें नित्य नवीन शत-शत भावों का उदय हुआ करता है।।१२५।। यदि लोम प्रति लोम में कोटि-कोटि जिह्वाएँ प्रकट हो जायँ, तो भी रूप-राशि प्रिया के अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य को सीमाबद्ध करके वर्णन कर सकना असम्भव है। प्रिया-रूप-सुधा के इस अगाध एवं असीम समुद्र का कोई पार नहीं पा सकता, जैसा कि अल्प बुद्धि रूपी क्षुद्र सीप में अगाध सिन्धु समा नहीं सकता। प्रिया के रूप सौन्दर्य में प्रतिक्षण

छिन-छिन नई-नई माधुरी तरंग रंग,
देखैं नख-चंद्रिकनि चंद हू लजात है।
'हित ध्रुव' अंग-अंग बरसत छबि स्वाति,
नैंना पिय-चातिक तौ कैहूँ न अघात हैं।।१२६।।

रङ्ग-कुञ्ज आगमन दोहा

रंग कुंज नीकी बनी, रंगावलि चित लाइ।
दुलहिनि-दूलहु हेत सौं, तामें बैठे आइ।।१२७।।
रँगमगे दंपति रसमसे, भर्‌यौ हिऐं रस-मैंन।
अतिही रँगीले रँगमगे, कहत परस्पर बैंन।।१२८।।

विवाह-मङ्गल दोहा

उपज्यौ रंग बिनोद इक, सखियन के उर ऐंन।
लाड़–लड़ैती ब्याह कौ, सुख देखैं भरि नैंन।।१२९।।

नव-नव माधुरी की तरङ्गें उठती रहती हैं एवं उनकी नख-द्युति का दर्शन कर के चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से सतत छबि रूपी स्वाति-जल की वर्षा होती रहती है, जिसका पान करके प्रियतम के नेत्र रूपी चातक किसी भी प्रकार तृप्ति का अनुभव नहीं करते अर्थात् सदा उस रूप सुधा के लिये तृषातुर बने रहते हैं।।१२६।।

श्री रङ्गावलि सखी ने मनोयोगपूर्वक रङ्ग कुञ्ज की रचना की, वहाँ नवल वर-वधू प्रीति पूर्वक आकर विराजमान् हुए।।१२७।। रसिक रँगीले नव दम्पति का हृदय प्रेमोल्लास से परिपूरित हो रहा था, वे परस्पर मर्म भिदी सरस वार्त्ता में संलग्न हो गये।।१२८।।

इस बीच सखियों के हृदय में आनन्द-विनोद की तरङ्ग उठी कि क्यों न हम श्री लाड़िली लाल के विवाह का सुखोत्सव करें।।१२९।।

तबहिं भाव यह बढ़ि गयौ, सब के भयौ विचार।
जैसी रीति है ब्याह की, करन लगीं-विधिचार।।१३०।।
कुंज-द्वार मंडप रच्यौ, सुमन सुरंग बनाइ।
हेम-खंभ रतननि खच्यौ, रह्यौ मध्य झलकाइ।।१३१।।
हीरा गज-मोतीनु की, झालर रची सँभारि।
षट-रितु मालिनि फूल सौं बाँधी बंदनवारि।।१३२।।
एक सखी गाइनि भई, गावति मंगल-गीत।
और बहुत बाजे लियैं, मगन भईं रस प्रीति।।१३३।।
मंजन की विधि करन कौं, जुरी सखिनु की माल।
कोलाहल आनंद कौ, बाढ्यौ है तेहि काल।।१३४।।
कंचन चौकी पर दोऊ, राजत भाँति अनूप।
बसन उतारे सुठि बने, बाढ्यौ सतगुन रूप।।१३५।।

तभी सब के हृदय में उल्लास बढ़ गया और सब एक मत हो कर विवाह की मङ्गल-विधि की रचना करने लगी।।१३०।। सर्वप्रथम रङ्ग-कुञ्ज के द्वार पर रङ्ग-विरङ्गे पुष्पों से मण्डप की रचना रची, तदनन्तर मण्डप के मध्य भाग में रत्नजटित स्वर्ण स्तम्भ की स्थापना की।।१३१।। गजमुक्ता एवं हीरों की झालरें सज्जित कीं एवं षट्ऋतु रूपी मालिनि ने मण्डप के चारों ओर फूलों की बन्दनवार सुसज्जित की।।१३२।। एक सखी प्रमुख गायिका बनकर विवाह के मङ्गलगीत गाने लगी तथा अन्य बहुत सी सखियाँ वाद्ययन्त्र लिये उसका अनुगमन करती हुईं सरस प्रीति में निमग्न हो गयीं।।१३३।। युगल की स्नान-विधि को सम्पन्न कराने के लिये सखियों के यूथ के यूथ एकत्रित हो गये। उस समय आनन्द का कोलाहल बढ़ चला।।१३४।। अनुपम रूप लावण्यमय युगल हेममयी चौकी पर आकर विराजमान् हुए और सखियों ने स्नान के लिये जब उनको वस्त्रों से विलग किया, तो उनके अङ्गों की शोभा शतगुणमय अधिक हो गयी।।१३५।।

पट दै बिच अंतर कियौ, चतुर सखी इकसार।
चंदन कौ करि उबटनौ, उबटत दोउ सुकुमार।।१३६।।

सोरठा

होत ही पट की ओट, पिय के दृग व्याकुल भये।
मनौं कलप सत-कोटि, सो छिन तौ ऐसी भई।।१३७।।

दोहा

कुंकुम तेल फुलेल मथि, सीसनि तैं दियौ ढारि।
मानौं पानिप रूप की, उमड़ि चली मित टारि।।१३८।।
अधिक हेत सौं करैं सखी, प्रथम चारु अस्नान।
इक गावति इक हँसति है, इक वारति है प्रान।।१३९।।
एक प्रिया तन होइ कै, कहत वचन परिहास।
सुनि-सुनि पिय के हीय में, बाढ़त अधिक हुलास।।१४०।।

उन चतुर सखियों ने युगल के मध्य एक यवनिका डाल कर दर्शन का अन्तराय कर दिया एवं चन्दन के पङ्किल उद्वर्त्तन से वे सुकुमार युगल का उबटन करने लगीं।।१३६।। पट की ओट होते ही प्रियतम के रूप-लोभी दृग व्याकुल एवं अधीर हो उठे। उनके लिये वह क्षण शत-कोटि कल्प के समान दीर्घ हो गया।।१३७।। केशर एवं सुगन्धित स्नेह द्रव्य का मन्थन कर सखियों ने उसे युगल के शीश पर उड़ेल दिया। उस समय ऐसी शोभा हुई मानो मूर्तिमान् रूप लावण्य ही अपनी मर्यादा विस्मृत करके उमड़ पड़ा हो।।१३८।। सखियों ने अत्यन्त प्रीति से श्री युगल को स्नान कराया, उस समय कोई सखी तो उनसे विनोद करती है और कोई उनकी छबि-छटा को देख कर उन पर अपने प्राण वारती हैं।।१३९।। एक सखी प्रिया पक्ष की हो कर श्री लाल से परिहास वचन कहती है, जिसका श्रवण कर के लाल बहुत आनन्दित होते हैं।।१४०।।

सब सुगंध सौं बासि जल, जैसौ तनहिं सुहाइ।
तब सबहिनु अति प्यार सौं, लीनें कुँवर न्हवाइ।।१४१।।
मंडप वर आसन सुमन, राख्यौ रुचिर बनाइ।
सुरँग सहाने बसन तहाँ, ल्याईं मृदु पहिराइ।।१४२।।
एक सखी अंजन दियौ, एक खवावति पान।
इक हँसि बाँधति कंकनौ, एक करति है गान।।१४३।।
मेहँदी कौ रँग फबि रह्यौ, भूषन छबि अँग-अंग।
मगन भईं सोभा निरखि, निरतति नारि अनंग।।१४४।।
सीसनि सुभग जराव के, झलकत मौरी मौर।
देखि छबीली भाँति दोऊ, छबि भूली तेहि ठौर।।१४५।।
कुंकुम रोरी रंग लै, चित्रे अद्भुत भाँति।
किये चित्र रचि मुखनि पर, अखियाँ निरखि सिराँति।।१४६।।

युगल के श्री अङ्ग को प्रिय लगने वाले विविध प्रकार की सुगन्धों से सुवासित जल द्वारा सखियों ने उन्हें स्नान कराया।।१४१।। विवाह-मण्डप में सखियों ने एक सुन्दर पुष्प-सज्जित आसन निर्मित कर रखा था, श्री युगल को विवाह-मङ्गल के वस्त्र धारण करा के उस आसन पर विराजमान् किया।।१४२।। एक सखी उनके नेत्रों में अञ्जन सारने लगी, दूसरी एक सखी ने ताम्बूल बीटिकाएँ अर्पित की, किसी एक ने युगल के कर-कमलों में कङ्कन बाँधे एवं कुछ एक सखियाँ विवाह के मङ्गल-गीत गानें लगीं।।१४३।। युगल के करों एवं पद-तलों में मेंहदी की अरुणिमा और अङ्ग-अङ्ग में भूषणों की शोभा का दर्शन कर कामदेव-प्रिया रति भी विमुग्ध हुई नृत्य करने लगी।।१४४।। युगल के सुभग शिरोभाग पर मणि-जटित मौरी एवं मौर की छबीली छटा का अवलोकन कर के मूर्तिमान् छबि भी अपने आप को भूल गयी।।१४५।। सखियों ने केशर एवं रोरी से श्री युगल के मुखारविन्द पर अद्भुत पत्रावली की रचना की, जिसका दर्शन करके सबके नेत्र सुखित हुए।।१४६।।

फूल सुनहरे सेहरे, सोभा बढ़ी नवीन।
प्रान-थार दृग-दीप करि, सखियनि आरति कीन।।१४७।।
सुरँग पीत विवि अंचलनि, जोरी ग्रंथि बनाइ।
चितै कुँवरि मुसिकाइ मृदु, कछु इक रही लजाइ।।१४८।।
निगम छंद तब उच्चरत, चतुर सखी द्वै चार।
जदपि बिवस हैं प्रेमरस, सब बिधि करत सँभारि।।१४९।।
अरुन-अरुन मनि फूल बिच, धरि बेदी सो कीन।
पाछैं पिय आगैं प्रिया, भाँवरि विधि सौं दीन।।१५०।।
एक मधुर मिलि गावही, मंगल-गीत-सुहाग।
मानौं बोलत कोकिला, मध्य बिपिन अनुराग।।१५१।।

स्वर्णिम नव पीत आभा लिये सुमन-ग्रथित सेहरे की शोभा तो अपूर्व चमत्कारमयी हो रही थी और सखियों ने मानो अपने प्राणों की स्थालिका में नयनों के दीप प्रज्ज्वलित करके उनकी आरती की हो।।१४७।। सखियों ने सुरङ्गित नील-पीत अञ्चलों की गाँठ जोड़ दी, जिसे देख कर मन्दस्मितमयी नव वधू श्री लाड़िली कुछ लजा गयी।।१४८।। परम कोविदा कुछ सखियाँ तब वेद-मन्त्रों से स्वस्तिवाचन करने लगीं। यद्यपि इस अवसर पर सब सखियाँ प्रेम विभोर हैं, तथापि विवाह के सभी मङ्गल विधानों का सम्पादन सावधानी पूर्वक करा रही हैं।।१४९।। सखियाँ अरुणिम मणिमय सुमनों के द्वारा वेदी रच कर अग्रगामिनी प्रिया एवं अनुगामी प्रियतम से भाँवर की विधि सम्पन्न कराने लगीं।।१५०।। कुछ एक सखियाँ समवेत मधुर स्वर से सुहाग के मङ्गल-गीत गाने लगीं, जिसे सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो अनुराग-वन के मध्य में कोकिलाओं का सम्मिलित-गान हो रहा है।।१५१।।

तब ललिता हँसिकै कह्यौ, दुहुँ विधु-मुखहि निहारि।
दूधा-भाती करहु अब, पिय सौं मिलि सुकुँवारि।।१५२।।
सुनत सखिन के बचन ये, मुरि बैठी पट तानि।
मनौं लाज कौ ऐंन रचि, कियौ प्रवेस तहँ आनि।।१५३।।
ऊँचे चितवति नेकु नहिं, नमित करि रही नारि।
घूँघट पट नहीं छाँड़ही, पिय कर देति है टारि।।१५४।।
तब सखियनि पिय सौं कह्यौ, सुनहु रसिक-वर-राइ।
जौ रस चाहत आपनौं, गहौ कुँवरि के पाँइ।।१५५।।
अति सुरंग मुख कमल तें, ललित उगारहिं लेति।
छल सौं पियहि खवाइ कै, हँसि-हँसि तारी देति।।१५६।।

श्री युगल चद्र-मुखच्छटा का अवलोकन करके हँसते हुए ललिता सखी ने तब श्री लाड़िली से कहा कि-हे सुकुमारी ! अब आप प्रियतम के साथ मिल बैठकर दूधा-भाती करिये।।१५२।। सखी के इन वचनों को सुनते ही व्रीड़ामयी नवल वधू अवगुण्ठन की ओट कर के सिमट कर बैठ गयी, तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह साक्षात् लज्जा के भवन में ही प्रविष्ट हो गई हो।।१५३।। नव वधू श्री प्रिया ने अपनी ग्रीवा लज्जावश नमित कर रखी है। वह अपनी दृष्टि ऊपर उठाती ही नहीं हैं। वे प्रियतम के करकमलों को टाल देती हैं एवं अवगुण्ठन को नहीं उठाने देतीं।।१५४।। तत्पश्चात् सखियों ने प्रियतम से कहा कि रसिकवर चूड़ामणि यदि आप रस के अभिलाषी हैं, तो श्री प्रिया-चरणों का आश्रय लीजिये।।१५५।। सखियाँ प्रिया के ताम्बूल-रञ्जित मुख-कमल से ताम्बूल-चूर्ण ले कर छलपूर्वक प्रियतम के मुख में अर्पित कर, ताली बजा-बजा कर हँसती हैं।।१५६।।

कुँवरि-चरण-छबि मनि मनौं, प्रीतम बंदत ताहि।
मानौं देवी प्रेम की, पियहि पुजावत आहि।।१५७।।
तेहि छिन जोइ-जोइ सहचरी, करवावत विधिचार।
करत कुँवर अति प्यार सौं, यहै नेह की ढार।।१५८।।
सबही विधि आधीन पिय, पगनि सीस रहे लाइ।
तबहि लाज पट दूर करि, चितई कछु मुसिकाइ।।१५९।।
ऐसैं सुख के रंग की, क्यौं कहि आवै बात।
जद्‌पि बीतत है कलप, छिन के सम ह्वै जात।।१६०।।
नित्य-विहार विवाह नित, दुलहिनि-दूलहु लाल।
नित्य सखी सुख सहजही, लेत रहतिं सब काल।।१६१।।
रस-सनेह-सागर बढ़्यौ, नवल रंग रस-सार।
तेहि रस में सखि मगन भईं, भूली देह-सँभार।।१६२।।

श्री लाड़िलीजू के चरणारविन्द छबि पुञ्ज-मणि सदृश हैं, जिनकी प्रियतम सतत् वन्दना किया करते हैं, मानो सखियाँ चरणरूपी प्रेम अधिष्ठात्री देवी की ही प्रियतम के द्वारा अर्चना सम्पादित करा रही हों।।१५७।। उस समय सहचरियाँ जो भी वैवाहिक विधि के उपचार सम्पन्न कराती हैं, प्रियतम उन सब का बहुत प्रीतिपूर्वक पालन करते हैं, यही प्रेम की रीति है।।१५८।। जब रसिकवर लाल सर्व प्रकार प्रेमाधीन हो कर नव वधू के श्री चरणों में निपतित हुए तब नव-वधू प्रिया ने लज्जा पट को निवृत कर मन्द स्मित पूर्वक प्रियतम की ओर दृष्टिपात किया।।१५९।। विवाह-मङ्गल के इस अपूर्व आनन्द-रङ्ग का वर्णन अकथनीय है, जहाँ कल्प का समय भी एक पल जैसा प्रतीत होता है।।१६०।। नित्य नव दम्पति का नित्य विहारमय विवाह नित्य है, जिसका सहचरियाँ सर्वकाल सुखास्वादन करती रहती हैं।।१६१।। इस विवाह-मङ्गल में नवनवायमान् आनन्द रस-सार रूपी प्रेम-सिन्धु उज्जृम्भित हुआ, जिसमें समस्त सखियाँ देहात्म-विस्मृति पूर्वक रसमग्न हो गयीं।।१६२।।

सोरठा

करवावति सब ख्याल, इच्छा सक्ति सखी तहाँ।
उपजावति तेहि काल, भाव सबनि के तैसोई।।१६३।।

विनोद-कुञ्ज आगमन दोहा

बैठे कुंज विनोद में, करत विनोद-बिहार।
चितवनि मुसिकनि लसनि रद, सोभा-निधि सकुवाँर।।१६४।।
लाल सखी कौ भेष कियौ, उपज्यौ चित यह भाव।
पट-भूषन नव कुँवरि के, पहिरनि कौ बढ्यौ चाव।।१६५।।
जब सेवा सिंगार की, लगे करन भली भाँति।
तब फिरि चितवत लाड़िली, लाज सहित मुसिकाति।।१६६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की इच्छाशक्ति रूपी सखी ही युगल की समस्त प्रेम-केलि की प्रेरक है। नित्य विहार परिकर के अन्तर में रस केलि के अनुरूप भावों का लीला-काल में सृजन, सम्पादन इच्छाशक्ति का सहज कौतुक है।।१६३।।

जब शोभानिधि सुकुमार युगल विनोद-कुञ्ज में विराजमान् हो कर परस्पर हास-परिहास करने लगे, उस समय की उनकी चितवन, मन्द मधुर मुस्कान के बीच उज्ज्वल दन्त-पङ्क्ति की शोभा अपूर्व हो रही थी।।१६४।। उस समय श्री लाल जी के मन में सखी वेष धारण करने का उत्साह जागृत हुआ और नवल किशोरी लाड़िली के सभी वस्त्रालङ्कार धारण करने के लिये मन उल्लसित हो उठा।।१६५।। सखी वेषधारी प्रियतम तब प्रिया जू की शृङ्गार सम्बन्धी सेवाओं का सुरुचिपूर्ण सम्पादन करने लगे। इस बीच जब श्री लाड़िली जू उनकी ओर दृष्टिपात करतीं, तो वे सलज्ज भाव से मुस्करा जाते।।१६६।।

छुटे बार सौंधे सने, पिय-कर पर प्रिया-वार।
मनौं सिंगारति रचि रुचिर, सिंगारहिं सिंगार।।१६७।।
बैनी रचि फूलनि गुही, सुंदर सुभग सुढार।
नख-सिख भूषन पट बने, अरु गज-मोतिनु-हार।।१६८।।
नैननि अंजन दियौ जब, रीझी मुकुर निहारि।
दसन खंडि अति हेत सौं, बीरी दई सुकुँवारि ।।१६९।।
दसन-बसन रस देत हैं, लालहि लियैं उछंग।
मानौं चंदहि चंद मिलि, प्यावत सुधा सुरंग।।१७०।।
फूले आनँद रंग भरि, अति सुख कौ रस पाइ।
नैन छ्वाइ चूमत चरन, कबहुँ रहत उर लाइ।।१७१।।

वेणी गूँथने के समय प्रिया की सौरभ सिञ्चित, उन्मुक्त कुन्तल राशि सखी वेष धारी प्रियतम के कर कमलों पर ऐसी शोभा देती है कि मानो शृङ्गार ही मूर्तिमान् हो कर शृङ्गार-राशि को शृङ्गारित कर रहा हो।।१६७।। नवल सखी ने बीच-बीच में पुष्पों को गुम्फित करके सुन्दर सुभग सुढार वेणी की रचना की। प्रिया को नख-शिख वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर गज-मुक्ताओं के हार धारण कराये।।१६८।। नवल सखी ने नवल लाड़िली के सुन्दर नेत्रों में अञ्जन-रेख अङ्कित कर जब प्रिया को दर्पण दिखाया, तब वे सखी की प्रीतिमयी सेवा पर मुग्ध हो गयीं, उस समय सुकुमारी प्रिया ने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अपनी दशन-खण्डित ताम्बूल-बीटिका सखी को दी।।१६९।। तदुपरान्त उदार प्रिया ने लाल को अङ्क में ले कर अधरासव पान कराया, उस समय ऐसी शोभा बढ़ी मानो शशि, शशि को अङ्क में लिये सुरङ्ग सुधा का पान करा रहा हो।।१७०।। सखी रूपधारी प्रियतम अमित सुख रस का अनुभव करते हैं। आनन्दमग्न प्रियतम, प्रिया के चरणारविन्द का स्पर्श अपने नेत्रों से करते हैं और उन चरणों का चुम्बन करते है तथा कभी उन्हें हृदय से लगा कर भाव-विभोर हो जाते हैं।।१७१।।

कहा कहौं या प्रेम की, अद्भुत भाँति अनूप।
वृंदावन घन कुंज में, सेवत रूपहिं रूप।।१७२।।
उलटी चाल है प्रेम की, को समुझै बिनु लाल।
ज्यौं-ज्यौं हारै अपनपौ, त्यौं-त्यौं बढ़ै विसाल।।१७३।।

कवित्त

प्यारी जू की सारी अति प्यारी लागै प्रीतम कौं,
सौंधे भींजी अँगिया सुरंग उर धारी है।
नवल रँगीलीजू के भूषन बिहारी लाल,
पहिरत बाढ़ी फूल जाति न सँभारी है।।
जोइ कछु प्रियाजू के अंगनि परस होत,
सोई प्रान जात होत ऐसी प्यारी प्यारी है।
"हितध्रुव" प्रेम बात कैसेहूँ न कही जात,
जानै सोई जेहि सिर मोहनी सी डारी है।।१७४।।

प्रेम की इस अद्भुत एवं अनुपम रीति-भाँति का वर्णन कैसे सम्भव है, जहाँ वृन्दावन की सघन कुञ्जों में रूप-सौन्दर्य ही तनु धारण कर के रूप-सौन्दर्य की सेवा करता है।।१७२।। प्रेम की रीति ऐसी उलटी है कि प्रेमी जितना-जितना अपना अस्तित्व खोता जाता है, उतना ही उसका प्रेम उज्ज्वल एवं विशाल बनता जाता है। प्रेम की इस बाँकी गति को प्रियतम लाल के अतिरिक्त समझने में कौन समर्थ है।।१७३।। श्री प्रिया का नीलाम्बर प्रियतम को अत्यन्त प्रिय लगता है, इस हेतु उन्होंने सुगन्ध-सिञ्चित् कञ्चुकि एवं प्रिया का नीलाम्बर धारण कर रखा है। नवल रँगीली जू के आभूषणों को धारण करते समय विहारी लाल के हृदय में इतनी प्रसन्नता होती है कि उनसे सँभाली नहीं जाती। प्राण-प्यारी प्रिया उन्हें इतनी अधिक प्रिय हैं कि उनके श्री अङ्गों से जो भी वस्तु स्पर्श प्राप्त कर लेती है, वह प्रियतम को प्राण सदृश प्रिय हो जाती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की बात वाणी द्वारा तो कही नहीं जा सकती उसे तो वही जानता है, जिसके सिर पर प्रेम की मोहिनी छा गयी हो।।१७४।।

शरद ऋतु वर्णन दोहा

रैंनि सुहावनि सरद की, राजति सहज सुदेस।
इक-इक मनि आभा मनौं, झलकति सत राकेस।।१७५।।
ऐसी रजनी देखि पिय, सजनी मन भयौ मोद।
पुलिन हंसजा रह्यौ बनि, कीजै रास-बिनोद।।१७६।।
सखिन मंडली जुरी तब, हेत दुहुँनि कौ जानि।
चहूँ ओर सब फिरि गईं, जोरि पानि सौं पानि।।१७७।।
मध्य रसिक दोउ लाड़िले, सभा रही सब हेरि।
मानौं छबि के चंद द्वै, छबि कमलनि लिये घेरि।।१७८।।
सरस एक तें एक सखी, अपनी-अपनी भाँति।
निरतति अंग सुधंग के, दामिनि सी दमकाति।।१७९।।

शरद की सुभग सुहावनी रात्रि अत्यन्त मनोरम है। वृन्दावन के कञ्चनमणि मण्डित रास-मण्डल की प्रत्येक मणि की कान्ति शत-शत राका-शशि की भाँति प्रकाशमय है।।१७५।। ऐसी ज्योत्स्नामयी रजनी को देख कर श्री प्रिया-प्रियतम के मन में उत्साह हुआ कि कालिन्दी के दिव्य निसर्गमय पुलिन पर रासक्रीड़ा का आमोद-प्रमोद रसानुभव करें।।१७६।। युगल के मनोभाव को जानकर तत्काल ही सखियाँ के यूथ एकत्रित हो गये, सब ने परस्पर हाथ से हाथ जोड़कर मण्डल बना लिया।।१७७।। जिसके मध्य में रसिक लाड़िले युगल शोभित हुए। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत हुआ मानो छबि के युगल शशि को छबि रूपी कमलों ने आवृत्त कर रखा हो।।१७८।। कला-कौशल में सखियाँ एक से एक बढ़कर प्रवीण एवं सरस हैं। वे सुधङ्ग नृत्य के अङ्गों का प्रकाश करती हुई ऐसी लगती हैं, मानो अनेक विद्युल्लतायें दमक रही हों।।१७९।।

नवल कुँवर वर कुँवरि सौं, कहत बदन तन जोहि।
अपनी सी गति निर्त्त की, कछुक सिखावहु मोहि।।१८०।।
नागर-मनि नव-नागरी, समुझि पीय कौ हीय।
भरी नेह आनंद रस, अद्भुत कौतिक कीय।।१८१।।
कंज-दलनि पर रुचिर कल, करति निर्त्त सुकुँवारि।
तिहिं छिन जहाँ लगि सहचरी, चकित ह्वै रहीं निहारि।।१८२।।
जो गति नहिं देखी सुनी, उपजै नव-नव भाइ।
निर्त्त जु मूरतिमंत ही, सोऊ रही लुभाइ।।१८३।।
तिरप बाँधि दल एक पर, अलग लाग तहाँ लीन।
दूजौ दल परस्यौ नहीं, लाघवता अति कीन।।१८४।।

नवल रसिक कुँवर श्री प्रिया के मुख-कमल की ओर देखते हुए यह निवेदन करने लगे कि—हे प्रिये ! आप अपने जैसी नृत्य की ललित गति से कुछ मुझे भी अवगत कराइये।।१८०।। चतुर शिरोमणि नव नागरी प्रिया ने प्रियतम के हार्द भाव को समझ कर आनन्द एवं अनुराग-पूरित हृदय से नृत्य की अद्भुत् कलाओं का प्रकाश किया।।१८१।। सुकुमारी प्रिया कमल के दलों पर अति सुन्दर नृत्य करने लगीं, उनकी नृत्य की विलक्षण गतियों को देखकर समस्त सखियाँ जकी-थकी सी रह गयीं।।१८२।। नृत्य की जो गति कभी न देखी थी, न सुनी थी वह नव-नव भाव से प्रकट हुई, जिसे देखकर मूर्त्तिमान् नृत्य-कला भी विमुग्ध होकर मानो वह भी प्रिया जू के नृत्य-प्रसाद की अभिलाषी हो गयी।।१८३।। श्री प्रिया ने कमल के एक दल पर नृत्य की तिरप गति का अनुबन्ध दिखा कर जब 'अलग लाग' नृत्य गति का विस्तार किया, तब ऐसी लाघवता (सूक्ष्म गति) को प्रकट किया कि उनके चरणों ने समीपवर्त्ती दूसरे कमल-दल का स्पर्श भी नहीं होने दिया।।१८४।।

रीझि लाल चूँवत चरन, ऐसी चित्त बिचारि।
प्रान हारि पहिलैं रह्यौ, अब कहा दीजै वारि।।१८५।।
मोहन सँग महा मोहिनी, सुख बरषत है नित्त।
चंदनि में अति चमकि रही, चमकावति पिय-चित्त।।१८६।।
श्रम-जल-कन मुख गौर पर, चितै रहे पिय मोहि।
मानौं छबि के कमल पर, छबि के कन रहे सोहि।।१८७।।
रविजा-वन परसै पवन, सौरभ घन जनु लेत।
मंद-मंद जैसी रुचै, आइ दुहुँनि सुख देत।।१८८।।
मान सरोवर रसमयी, झलकत निर्मल नीर।
नव किसोर इक बैस द्रुम, रतन-खचित वर तीर।।१८९।।

प्रिया के नृत्य-विलास पर रीझ कर रसिक लाल उनके श्री चरणों का चुम्बन करने लगे और विचारने लगे कि मैंने अपने प्राण तो पहिले ही इन पर वार दिये है, अब शेष क्या है , जो इन पर न्यौछावर करूँ ?।।१८५।। छबि-निधि प्रियतम के सङ्ग महा मोहिनी प्रिया नित्य निरन्तर सुख रस की वृष्टि करती रहती हैं, वे अपनी गौर अङ्ग की कान्ति से चन्द्र ज्योत्सना को भी प्रभावित करती हुई प्रियतम के चित्त को चमत्कृत करती है।।१८६।। श्री प्रिया के मुख मण्डल पर प्रस्वेद कणों की शोभा का दर्शन करके प्रियतम विमुग्ध हो रहे हैं। उनके श्री मुख की शोभा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो छबि रूपी कमल पर छबि के ही बिन्दु छिटक रहे हों।।१८७।। कालिन्दी के नील सलिल का स्पर्श करता हुआ पवन ऐसा प्रतीत होता है, मानो घन-समूह से सौरभ-पुञ्ज को प्राप्त करके एवं मद मन्थर गति से ले जा कर श्री युगल को समर्पित कर रहा हो।।१८८।। मान सरोवर रस-राशि है, जिसका निर्मल जल सदैव आलोडित रहता है। उसके रमणीय तट रत्नखचित हैं एवं जहाँ की द्रुमावलि नित्य नव किशोर अवस्था को प्राप्त हैं।।१८९।।

छत्री मध्य जराव की, मैंन-फूल छबि-ऐंन।
रचि राखी अति हेत सौं, सखियनि तहाँ सुख सैंन।।१९०।।
देखि भाँति सर की भली, बाढ़ी आनँद-बेलि।
तामें दोउ निजु सखिनु जुत, करन लगे जल-केलि।।१९१।।
हँसि-हँसि छिरकत आप में, अलबेले सुकुँवार।
मानौं वारन रूप के, विहरत वारि-विहार।।१९२।।
छुटे बार सौंधे सने, छूटि रहे उर-हार।
विवस भये खेलत दोऊ, बाढ़ी चौंप अपार।।१९३।।
अंगराग बहु भाँति मिलि, ह्वै गयौ अंबु सुरंग।
मनौं सरस अनुराग के, दिखियत प्रगट तरंग।।१९४।।
निकसे दोउ भींजे बसन, सोभा कही न जाइ।
मानौं पानिप रूप की, बढ़ि कै चली चुचाइ।।१९५।।

सरोवर के मध्य में छबि पुञ्ज मणि जटित छत्री इस प्रकार सुशोभित है मानो अनङ्ग ने ही उसे सोल्लास शृङ्गारित किया हो। वहाँ पर सखियों ने अत्यन्त प्रीति पूर्वक सुखमयी शय्या की रचना कर रखी है।।१९०।। सरोवर की सुन्दरता को देखकर युगल के मन में आनन्द की लता उल्लसित हो उठी और वे अपनी सखियों को साथ ले कर जलकेलि करने लगे।।१९१।। विलक्षण सुकुमार युगल परस्पर हास्य-विनोद पूर्वक एक दूसरे पर जल उलीचने लगे। उस समय ऐसी शोभा बनी, मानो रूप-सौन्दर्य रूपी गज-दम्पति जलक्रीड़ा कर रहे हों।।१९२।। उस समय सुगन्ध-सिञ्चित् युगल की केशराशि बिगलित हो गयी, हारावलि त्रुटित हो गयी एवं दोनों उल्लास के आवेश में प्रेम विवश हो गये।।१९३।। श्री युगल के श्रीअङ्ग-चर्चित अङ्गराग से सरोवर का जल रङ्ग-रञ्जित हो उठा और ऐसी शोभा हुई मानो तरङ्गों के रूप में सरस अनुराग ही उच्छलित हो रहा हो।।१९४।। जब युगल भींगे वस्त्रों में सरोवर से बाहर आए उस समय उनकी रूप-छटा अद्भुत थी, तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो रूप का लावण्य ही अभिवृद्ध हो कर चुचाने लगा हो।।१९५।।

अंग-अंग छबि कहा कहौं, बाढ़ी सतगुन ओप।
उपमा-दुति सब और जे, ते सब ह्वै गईं लोप।।१९६।।
पहिरे पट नव जरकसी, मृदु सुरंग अति बाँनि।
सौंधे सौं रहे घमड़ि कै, सौरभता की खाँनि।।१९७।।
देखत फिरत निसंक वन, जैसैं मत्त गयंद।
बिनु अकुंस रुचि आपनी, दुरत है मुरत स्वछंद।।१९८।।

वसन्तोपमा दोहा

संग लिये सब सहचरी, विलसत लसत हसंत।
ऐसी छबि तहाँ रही फबी, खेलत मनौं बसंत।।१९९।।
कुंकम तौ तन कौ वरन, अंबर विविध गुलाल।
अधर दसन मनौं फूल भये, अबुंज नैन बिसाल।।२००।।

उस समय श्री युगल के अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा की ऐसी अभिवृद्धि हुई कि उनके अङ्गों की आभा शत गुणी उद्दीप्त हो उठी, जिसके समक्ष समस्त द्युति-उपमाएँ लुप्त प्राय हो गयीं।।१९६।। सखियों ने श्री युगल को कोमल-कोमल नूतन जरकसी अरुण वर्ण के बागे सुरुचिपूर्वक धारण कराये। उनके उन वस्त्रों से सुगन्ध की लपटें उठ रही थी, तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे सुगन्ध की खान हों।।१९७।। वे युगल मत्त गजराज की भाँति निःशङ्क भाव से श्रीवन की शोभा का अवलोकन करते हुए विचरण करने लगे, मानो अङ्कुशहीन मत्त मतङ्ग स्वच्छन्द भाव से अपनी रुचि के अनुसार इतस्ततः भ्रमण कर रहा हो।।१९८।।

सहचरियों को साथ लिये हुए हास्य-विनोद करते हुए युगल किशोर ऐसी छबि को प्राप्त हुए मानो वसन्त खेल रहे हों।।१९९।। श्री प्रिया के अङ्ग की आभा ही कुङ्कुम है और उनके अनेक रङ्गों के वस्त्र ही गुलाल हैं। अरुणाधर दशनावलि ही कुसुम हैं और उनके विशाल नेत्र ही सरोज हैं।।२००।।

नौलासी भुज-लतनि की, आगम जोवन मौर।
कुच-गेंदुक उर फूल भई, उपमा नहिं कछु और।।२०१।।
चितवन मुसकनि छिरकिबौ, बाजे भूषन-राव।
देखत ऐसी मंडली, उपजत है चित-चाव।।२०२।।
इहि बिधि तौ खेलत रहैं, दिनहि बसंत ऽरु फाग।
यह सुख जो चिंतत रहै, ताही के 'ध्रुव' भाग।।२०३।।
कुंज-कुंज सब ऐसैं ही, कीनें विविध विनोद।
ता पाछे दोउ रँग भरे, चले महल की कोद।।२०४।।
झलकत हैं छबि चंद द्वै, सखिनि-माल चहुँ ओर।
मानौं घेरे फिरत हैं, सबके नैंन-चकोर।।२०५।।

फूलों की छड़ियाँ हैं उनकी युग भुजलताएँ, नव यौवनोदय ही मञ्जरी है, क्रीड़ा कन्दुक हैं—युगल वक्षोज एवं हृदय का उल्लास ही अनुपम पुष्प-समूह है।।२०१।। युगल की चितवन एवं मुस्कान ही रङ्गभरी पिचकारियों की फुँहार है। सुन्दर अङ्गों के आभूषणों का शिञ्जन् ही वाद्ययन्त्र हैं। ऐसी रसमयी मण्डली दर्शनमात्र से चित्त को रसोल्लास से आप्लावित कर देती है।।२०२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार श्री लाड़िली-लाल नित्य वसन्त एवं फाग का खेल खेला करते हैं। जो कोई उनके इस रस-विलास का चिन्तन करता रहता है, वही वास्तव में परम भाग्यशाली है।।२०३।। इस प्रकार कुञ्ज प्रति कुञ्ज में विविध विहार-विनोद करते हुए रसिक रँगीले युगल अपने निज महल की ओर अग्रसर हुए।।२०४।। मालाकार सखि-समुदाय से परिवेष्टित युगल चन्द्रमा की भाँति ऐसे प्रकाशित हुए, मानो सब सखियों के नयन-चकोर युगल चन्द्रमा को घेर कर विचरण कर रहे हों।।२०५।।

सभा मण्डल दोहा

ठाढ़े भये मंडल-सभा, सोभा-सिंधु अगाध।
जैसी रुचि ही सखिनि की, पुजई सब की साध।।२०६।।
फूली अंग न मात हैं, भरी रंग आनंद।
जीवन सबके एकही, विवि वृंदावन- चंद।।२०७।।

राजभोग दोहा

रचि मृदु आसन सुमन पर, बैठारे दोउ लाल।
अति प्रवीन सेवा करैं, जैसी रुचि जेहि काल।।२०८।।
विविध भाँति विंजन अधिक, आगैं राखे आनि।
मधुर सलोने चरपरे, खाटे-मीठे बाँनि।।२०९।।
हँसि-हँसि स्वाद सराहि दोउ, ग्रास परस्पर लेत।
ललित-विसाखा तेहि समैं, वारि प्रान धन देत।।२१०।।

अगाध शोभा के सागर श्री श्यामाश्याम मण्डल सभा में आकर विराजित हुए। युगल ने सखियों की रुचि के अनुसार उनके समस्त मनोरथों को पूर्ण किया।।२०६।। आज आनन्द रङ्ग से भरी सखियाँ फूली नहीं समाती हैं। वृन्दावन-चन्द्र श्री युगल ही जिनके जीवन सर्वस्व हैं।।२०७।।

सखियों ने युगल को पुष्परचित कोमल आसन पर विराजमान् किया। सेवा-प्रवीण सखियाँ यथासमय युगल की रुचि लिये सेवा में तत्पर रहती हैं।।२०८।। अनेक प्रकार के मधुर सलौने चटपटे खट्टे एवं मीठे व्यञ्जन रच कर सखियों ने युगल के सम्मुख उपस्थित किये।।२०९।। जब श्री युगल हँसते हुए ग्रास-ग्रास प्रति स्वाद की सराहना करते हैं, उस समय ललिता विशाखादि सहचरियाँ अपना सर्वस्व उन पर न्यौछावर करती हैं।।२१०।।

कछु खाये सखियनि दिये, नागर नवल प्रवीन।
अमृत चितवनी चितै सखि, बोलि सबनि सुख दीन।।२११।।
चतुर सिरोमनि नेह-निधि, सब विधि रूप-निधान।
पग धारे निजु महल कौं, करि सब कौ सनमान।।२१२।।
मंडल सब देखत फिरत, बीते कलप अनेक।
सहचरि यौं मानत भईं, मनौं गई घरी एक।।२१३।।

विश्राम दोहा

जब जाने सबही श्रमित, नवल भामिनी-स्याम।
बाढ्यौ तिनके हेत यह, नेकु करैं विश्राम।।२१४।।
भाँति रँगीली सेज पर, रहे लटकि लपटाइ।
ललितादिक निजु सहचरी, तहाँ पलोटतिं पाँइ।।२१५।।

परम प्रवीण नवल नागर युगल ने कुछ स्वयं आरोगा एवं कुछ सखियों में वितरित किया। पुनः अपनी अमृतमयी चितवन से सबकी ओर देखकर एवं बुला कर सब को सुखित किया।।२११।। सब सखियों को समुचित सम्मान देकर रूपनिधान, स्नेहराशि, चतुर शिरोमणि युगल ने अपने निज महल में पदार्पण किया।।२१२।। युगल को सम्पूर्ण मण्डल की शोभा का अवलोकन एवं उसमें भ्रमण करते हुए अनेकों कल्प व्यतीत हो गये किन्तु प्रेम-पगी सहचरियों को यह समय एक घड़ी जैसा प्रतीत हुआ।।२१३।।

जब सहचरियों को यह अनुमान हुआ कि हमारे नवल लाड़िली-लाल श्रमित हो गये हैं, तब उनके विश्राम का प्रेममय मनोभाव उनके हृदय में उमड़ पड़ा।।२१४।। तभी सखियों ने सुष्ठु रचनामयी सुख-शय्या पर नव-दम्पति को निवेशित किया और ललितादिक निज सहचरियाँ उनका पाद-सम्वाहन करने लगीं।।२१५।।

एक सुनावत सारँगी, रँग भीनी लियैं बीन।
मंद मधुर सुर गावहीं, रुचि लियैं तान नवीन।।२१६।।
राग-रंग जुत प्रेम रस, अद्भुत केलि-अनंग।
छिन-छिन आनँद सिंधु के, उठिबौ करत तरंग।।२१७।।

कवित्त

नवल रँगीले लाल रस में रसीले अति,
छबि सौं छबीले दोउ उर घुरि लागे हैं।
नैननिं सौं नैन कोरि मुख-मुख रहे जोरि,
रुचि कौ न ओर-छोर ऐसै अनुरागे हैं।।
परे रूप-सिंधु माँझ जानत न भोर-साँझ,
अंग-अंग मैंन-रंग मोद-मद पागे हैं।
'हित ध्रुव' बिलसत तृपित न होत कैहूँ,
जद्दपि लड़ैंती-लाल सब निसि जागे हैं।।२१८।।

एक सखी सारङ्गी एवं दूसरी सरस वीणा लिये मन्द मधुर स्वरों में रुचिपूर्ण नवीन-नवीन तानों का विस्तार करनें लगी।।२१६।। राग रङ्ग युक्त प्रेम रस पूर्ण अद्भुत अनङ्ग-केलि रूपी आनन्द-सिन्धु में रस की तरङ्गें उच्छलित होने लगीं।।२१७।। प्रेम-रस-रसिक छबि धाम नवरङ्गी युगल गाढ़ प्रेमाश्लेष में आबद्ध हैं। उनके नयन से नयन, मुख से मुख मिल रहे हैं। उनके अनुराग की एवं रुचि की कोई सीमा नहीं है। रूप-उदधि में निमग्न युगल को प्रातः सायं का अनुसन्धान नहीं है, कारण कि उनका अङ्ग-अङ्ग प्रेमानन्द जनित मोद-मद में पगा हुआ है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ललित लाड़िली-लाल सम्पूर्ण रात्रि प्रेम के मधुर विलासों में रमे रह कर भी कभी तृप्त नहीं होते हैं।।२१८।।

फलस्तुति

दोहा

नित उठि जो गावै सुनै, "मंडल-सभा-सिंगार"।
सो ध्रुव पावै वेगि ही, प्रेम-कृपा कौ हार।।२१९।।

सोरठा

'मंडल-सभा-सिंगार', सोलह सै इक्यासिया।
सकल रसन कौ सार, हित ध्रुव बरने जथा मति।।२२०।।

दोहा

दोहा कवित्त अरु सोरठा, द्वै सत तिथि गुन वेद।
या रँग में जे रँगि रहे, तेई पैहैं भेद।।२२१।।
द्वै सत ऊपर अष्ट दस, और सवैया चार।
अद्भुत युगल बिहार रस, छिन-छिन 'ध्रुव' उर धार।।२२२।।
दोहा द्वै सत बीस इक, बरनत युगल-विलास।
सुनत सुनावत सरस "ध्रुव", रसिकन होत हुलास।।२२३।।

श्री ध्रुवदास जी कहते है कि जो कोई नित्य प्रातः काल "मण्डल सभा शृङ्गार" का गान एवं श्रवण करेगा, वह शीघ्र ही लाड़िली-लाल की कृपा का प्रेममय उपहार प्राप्त कर लेगा।।२१९।। विक्रम संवत् सोलह सौ इक्यासी में समस्त रसों का सार "मण्डल सभा शृङ्गार" का मुझ ध्रुवदास ने यथामति वर्णन किया है।।२२०।। इसके दोहा, कवित्त एवं सोरठों की गणना सब मिला कर दो सौ तेईस है। जो प्रेम रङ्ग के रँगे हैं वही मण्डल सभा शृङ्गार का रहस्य जान सकेंगे।।२२१।। दो सौ अठारह दोहे एवं चार सवैयों में वर्णित अद्भुत युगल-विहार रस को प्रतिक्षण हृदय में धारण करना चाहिये।।२२२।। दो सौ इक्कीस दोहों में वर्णित सरस युगल-विलास का श्रवण कथन रसिकों के लिये आनन्द दायक है।।२२३।।

१८
रस-मुक्तावली

मङ्गलाचरण — दोहा

प्रथमहि श्रीगुरु के चरन, उर धरि करौं विचारि।
वैस वेष सखि भाव सौं, अद्भुत रूप निहारि।।१।।
एती मति मोपै कहाँ, सिंधु न सीप समाइ।
रसिक अनन्यनि कृपा-बल, जो कछु बरन्यौ जाइ।।२।।

वृन्दावन वर्णन — चौपाई

रसिक अनन्यनि कृपा मनाऊँ। वृंदावन-रस कछु इक गाऊँ।।३।।
जोजन पंच विहार-स्थाना। श्रीपति, श्री सौं कह्यौ प्रमाना।।४।।
रतन खचित कंचन की अवनी। झलकि रही सोभा अति कवनी।।५।।

सर्वप्रथम श्रीगुरु के पादपद्मों को हृदय में धारण कर के सखियों के भाव, आयु एवं उनकी स्वरूप विलक्षणता का वर्णन करूँगा।।१।। जिस प्रकार सीप में अगाध समुद्र की समाई नहीं हो सकती, उसी प्रकार मेरी लघु मति के द्वारा सखियों का स्वरूप वर्णन कर सकना दुरूह है, तथापि अनन्य रसिकों की कृपा का अवलम्ब ले कर यत्किञ्चित् कह सकने का साहस कर रहा हूँ।।२।।

अनन्य रसिकों की कृपा मनाता हुआ मैं श्री वृन्दावन-रस (रसिकों के उपास्य तत्त्व) के सम्बन्ध में कुछ वर्णन करूँगा।।३।। श्रीपति भगवान् नारायण ने लक्ष्मी जी से कहा है कि श्री युगल-किशोर की विहार-स्थली श्रीवृन्दावन पञ्चयोजन (अर्थात् बीस कोस) की भूमि में विस्तृत है।।४।। वृन्दावन की हेममयी भूमि बहु रत्न-खचित है, जिसकी कमनीय शोभा प्रतिपल जगमगाती रहती है।।५।।

कुंदन-बेलि द्रुमनि लपटानी। मुक्तनि-लता भरी छबि पानी।। ६ ।।
जगमगात है सब वन ऐसैं। दामिनि कोटि लसत घन जैसैं।। ७ ।।
राजत हंस-सुता छबि न्यारी। रसपति रस की मनौं पनारी।। ८ ।।
बहु विधि रंग कमल कल कूले। आनँद फूल जहाँ-तहाँ फूले।। ९ ।।
भ्रमत मधुप सौरभ-रस-माते। पंछी सबै गान-गुन राते।।१० ।।
कोकिल कीर कपोत रसाला। छबि सौं निर्त्तत मोर मराला।।११ ।।
जेहि बन कौं शिव श्री पति गावैं। मन प्रवेश तहाँ कैसैं पावैं।।१२ ।।
अगम अगाध सबनितें न्यारौ। प्रेम खेल तेहि ठाँ विस्तारौ।।१३ ।।

वहाँ के वृक्ष कनक-लताओं से आलिङ्गित हैं एवं मुक्ताओं की लताएँ अपनी लावण्यमयी छवि से नित्य परिपूरित हैं।।६।। समस्त वनराजि इस प्रकार जगमगा रही है, जैसे सघन मेघमण्डल के साथ कोटि-कोटि विद्युल्लताएँ दमक रही हों।।७।। रवि-नन्दिनी यमुना की विलक्षण शोभा ऐसी प्रतीत होती है, मानो रस-राज शृङ्गार रस की प्रणालिका ही वृन्दावन के चारों ओर प्रवाहित हो रही हो।।८।। यमुना तट पर विविध रङ्गों के सुन्दर कमल एवं अनेक आनन्द-दायक सुमन यत्र-तत्र विकसित हो रहे हैं।।९।। कुसुमित वनराजि के परिमल से रसमत्त हुए भ्रमर समूह एवं खग-वृन्द मधुर-मधुर गान कर रहे हैं।।१०।। कोकिल, शुक, कपोत, मयूर एवं मराल सभी पक्षी प्रमुदित भाव से श्री वृन्दावन में नृत्य कर रहे हैं।।११।। जिस वृन्दावन की महिमा का गान साक्षात् शिव एवं लक्ष्मीपति नारायण भी करते हैं, उसकी महिमा को जान सकना सामान्य जीव के लिये अत्यन्त दुरूह है।।१२।। जिस वृन्दावन की महिमा अतिशय गम्भीर है, जो सर्व साधारण के लिये दुष्प्रवेश है एवं जो सबसे विलक्षण है, उस श्रीवृन्दावन धाम में रसिक सिरमौर श्रीश्यामाश्याम ने अपनी रस-क्रीड़ा का विस्तार किया है अर्थात् श्री वृन्दावन धाम रसिक-युगल की ऐकान्तिक-क्रीड़ास्थली है।।१३।।

दोहा

प्रेम-रासि दोउ रसिक वर, रूप-रंग रस-ऐंन।
मैंन-खेल खेलत तहाँ, नहिं जानत दिन-रैंन।।१४।।

चौपाई

मंडल मनिमय अधिक विराजै। निरखत कोटि भान-ससि लाजै।।१५।।
तापर कमल सुदेस सुवासा। षोडस-दल राजत चहुँ पासा।।१६।।
मध्य किसोर-किसोरी सोहैं। दल-दल प्रति सहचरि छबि जोहैं।।१७।।
अति सरूप मोहन सुकुँवारा। रँगे परस्पर प्रेम अपारा।।१८।।
रसिकानंद रसिकिनी संगा। विलसत हैं नव केलि-अनंगा।।१९।।
एक वैस रुचि एकै प्राना। जीवन अधर-सुधा-रस पाना।।२०।।
अद्भुत रसनिधि जुगल-विहारा। सब सखियनि के यहै अहारा।।२१।।

धन्य है श्री वृन्दावन, जहाँ रूप लावण्यधाम, रस के निधान, प्रेमराशि युगलवर निरन्तर प्रेम रस विलास में निमग्न रहते हैं।।१४।। श्री वृन्दावन में कोटि-कोटि रवि-शशि विनिन्दक मणिमय मण्डल शोभित है।।१५।। तहाँ एक अत्यन्त सुवासमय सुन्दर कमल सुशोभित है, जिसके चारों ओर षोडश दल शोभित हो रहे हैं।।१६।। कमल की मध्य कर्णिका पर श्री किशोर-किशोरी विराजमान् हैं एवं उस कमल के प्रत्येक दल पर एक-एक सहचरी विराजमान् है, जो सतत युगल-छबि सुधा का पान करती रहती हैं।।१७।। अति सुन्दर सुकुमार युगल परस्पर प्रेम-रङ्ग में रँगे रहते हैं।।१८।। रसरङ्गमयी प्रिया के साथ रसिक रसराशि मोहन लाल नित्य नूतन मदन-केलि का विस्तार करते रहते हैं।।१९।। युगल की वयस्, रुचि एवं प्राण अभिन्न हैं। अधर सुधा रस पान ही उनका जीवन है।।२०।। युगल किशोर का यह सरस विहार विलक्षण रस-सागर है, जो सखियों का नित्य परिपोषण करता रहता है।।२१।।

अष्ट-सखी परिचय चौपाई

अष्ट सखी मनौं मूरति हित की। अति प्रवीन सेवा करैं चितकी।।२२।।
आठ-आठ सहचरि तिन संगा। रँगी निरंतर तिहिं सुख-रंगा।।२३।।

दोहा

नाम वरन सेवा बसन, जैसैं सुने पुरान।
ते सब ब्यौरे सौं कहौं, अपनी मति अनुमान।।२४।।

ललिता एवं उनका परिकर चौपाई

ललिता परम चतुर सब बातनि। जानति है निज नेह की घातनि।।२५।।
पाननिं बीरी रुचिर बनावै। रुचि लै रचि-रचि रुचि सौं ख्वावै।।२६।।
मुख सौं वचन सोई तौ काढ़ै। जातैं दुहुँ में अति रुचि बाढ़ै।।२७।।

प्रधान अष्ट-सखियाँ मूर्त्तिमान हित का ही रूप हैं। वे सेवा-परिचर्य्या में अत्यन्त निपुण हैं, जो युगल की रुचि को जानते हुए नित्य सेवा परायण रहती हैं।।२२।। इन प्रत्येक प्रमुख सखी के अनुगत आठ-आठ सखियाँ हैं, जो अपनी यूथेश्वरी के सुख से नित्य अनुरञ्जित् रहती हैं।।२३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं सखियों के नाम, रूप, रङ्ग, उनकी सेवाएँ एवं वस्त्राभूषण का पुराणों में जैसा कुछ सुना है, वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार यथाक्रम वर्णन करने की चेष्टा करूँगा।।२४।।

श्री ललिता नेह की रीति-भाँति को जानने समझने वाली परम विचक्षणा सखी हैं। वे सुन्दर ताम्बूल वीटिकाएँ रच-रच कर युगल की रुचि के अनुसार उन्हें अर्पित किया करती हैं।।२५-२६।। उनके श्री मुख से निःसृत् प्रत्येक वार्त्ता युगल के हृदय में रस-रुचि का संवर्द्धन करती है।।२७।।

दोहा

गोरोचन सम तन प्रभा, अद्‌भुत कही न जाइ।
मोर-पिच्छ की भाँति के, पहिरे बसन बनाइ।।२८।।
रतन प्रभा अरु रति कला, सुभा निपुन सब अंग।
कलहंसीरु कलापनी, भद्र सौरभा संग।।२९।।
मनमथ मोदा मोद सौं, सुमुखी है सुख रास।
निसि दिन ये आठौं सखी, रहैं ललिता के पास।।३०।।

विशाखा एवं उनका परिकर चौपाई

सखी विसाखा अति ही प्यारी। कबहुँ न होति संग ते न्यारी।।३१।।
बहु बिधि रंग बसन जो भावै। हित सौं चुनि के लै पहिरावै।।३२।।
ज्यौं छाया ऐसैं सँग रहही। हित की बात कुँवरि सौं कहही।।३३।।

दोहा

दामिनि-सत-दुति देह की, अधिक प्रिया सौं हेत।
तारा-मंडल से बसन, पहिरैं अति सुख देत।।३४।।

श्री ललिता की अङ्ग-प्रभा गोरोचन की भाँति गौर एवं अति सुन्दर है। वे मयूर पिच्छ की छापेदार शाटिका (साड़ी) धारण करती हैं।।२८।। सुख-पुञ्ज स्वरूपा ये आठ सखियाँ श्री ललिता की सेवा सहयोगी हैं। उनके नाम हैं—रत्नप्रभा, रतिकला, शुभा, कलहंसी, कलापिनी, भद्र-सौरभा, मन्मथ-मोदा एवं सुमुखी। ये सभी सखियाँ युगल-सेवा में परम प्रवीण हैं।।२९-३०।।

विशाखा श्री श्यामा जी के नित्य सान्निध्य में रहने वाली स्वामिनी की अति प्रिय सखी है।।३१।। विविध रङ्गों के सुरुचिपूर्ण वस्त्रों का प्रीतिपूर्वक चयन करके प्रिया को धारण कराती है।।३२।। ये छाया की भाँति उनके सान्निध्य में रहते हुए उनसे हित की ही बातें करती रहती हैं।।३३।। श्री विशाखा का प्रिया जू के प्रति अगाध प्रेम है। उनके देह की आभा शत-शत दामिनि-द्युति के समान प्रकाश-मयी है। वे तारामण्डल जैसे वस्त्रों में परम सुखद प्रतीत होती हैं।।३४।।

माधवि, मालति, कुंजरी, हरिनी, चपला-नैंन।
गँध-रेखा, सुभ-आनना, सौरभी कहैं मृदु बैंन।।३५।।

चम्पक लता एवं उनका परिकर चौपाई

चंपकलता चतुर सब जानै। बहुत भाँति के बिंजन बानै।।३६।।
जेहि-जेहि छिन जैसी रुचि पावै। तैसे बिंजन तुरत बनावै।।३७।।

दोहा

चंपकलता चंपक बरन, उपमा कौं रह्यौ जोहि।
नीलांबर दियौ लाड़िली, तन पर रह्यौ अति सोहि।।३८।।
कुरंगाछी, मनि-कुंडला, चंद्रिका अति सुख दैन।
सखी सुचरिता, मंडनी, चंद्रलता रति ऐंन।।३९।।

इनकी अनुगत सखियों के नाम हैं—माधवी, मालती, कुञ्जरी, हरिणी, नयन-चपला, गन्ध-रेखा, शुभ आनना एवं सौरभी। ये सब सखियाँ अति मृदु भाषिणी हैं।।३५।।

सखी चम्पकलता सर्व विद्या विशारद हैं। वे बहुत प्रकार के व्यञ्जनों की रचना करना जानती हैं।।३६।। जिस क्षण युगल की जैसी रुचि अनुभव करती हैं, तत्काल उनकी रुचि के अनुरूप व्यञ्जन तैयार कर युगल के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं।।३७।। श्री चम्पक लता का अङ्ग-वर्ण चम्पक पुष्प-छटा की भाँति अनुपम एवं अद्वितीय है। उनके अङ्ग पर लाड़िली प्रदत्त नीलाम्बर शोभा पा रहा है।।३८।। उनकी सखियों के नाम हैं—कुरङ्गाक्षी, मणिकुण्डला, चन्द्रिका, सुचरिता, मण्डनी, चन्द्रलता, रति-अयना एवँ सुमन्दिरा। ये सब सखियाँ अति सुख देने वाली प्रेम रूपा हैं।।३९।।

राजत सखी सुमंदिरा, कटि-काछिनी समेत।
बिबिध भाँति बिंजन करै, नवल जुगल के हेत।।४०।।

चित्रलेखा एवं उनका परिकर चौपाई

चित्रा सखी दुहुँनि मन भावै। जल सुगंध लै आनि पिवावै।।४१।।
जहाँ लगि रस पीवे के आहीं। मेलि सुगंध बनावै ताहीं।।४२।।
जिहिं छिन जैसी रुचि पहिचानैं। तबही आनि करावति पानैं।।४३।।

दोहा

कुंकुम को सो बरन तन, कनक-बसन परिधान।
रूप चतुरई कहा कहौं, नाहिंन कोउ समान।।४४।।
सखी रसालिका, तिलकनी, अरु सुगंधिका नाम।
सौर-सैन अरु नागरी, रामलिका अभिराम।।४५।।
नाग-बेंनिका नागरी, भरी सबै सुख रंग।
हित सौं ये सेवा करैं, श्रीचित्रा के संग।।४६।।

शोभामयी सुमन्दिरा एवं कटि काछिनी, नवल युगल के लिये विविध प्रकार के व्यञ्जन निर्मित करने में संलग्न रहती हैं।।४०।।

चित्रा सखी युगल की अति मन-भाँवती सखी हैं। वे समय-समय पर युगल को सुरभित जल पिलाया करती हैं।।४१।। और भी अनेक प्रकार के पेय पदार्थ सँवार के युगल की सेवा में प्रस्तुत करना उनका सेवा-कार्य है।।४२।। युगल की क्षण-क्षण की रुचियों को पहचानने वाली चित्रलेखाजी सदा सेवा में ही संलग्न रहती हैं।।४३।। श्री चित्रलेखा जी के अङ्गों की आभा केशर जैसी है, वे स्वर्णिम कान्तिमय वस्त्र धारण करती हैं। उनके रूप एवं सेवा की दक्षता अनुपमेय है।।४४।। इनकी सखियों के नाम हैं– रसालिका, तिलकिनी, सुगन्धिका, सौरसैनी, नागरी, रामलिका, नाग-बैनिका। ये परम सुखदा सखियाँ प्रीतिपूर्वक यूथेश्वरी चित्रलेखा के सङ्ग युगल की सेवा में नित्य तत्पर रहती हैं।।४५-४६।।

तुङ्गविद्या एवं उनका परिकर चौपाई

तुँगविद्या सब विद्या माँही। अति प्रवीन नीके अवगाही।।४७।।
जहाँ लगि बाजे सबै बजावै। राग-रागिनी प्रकट दिखावै।।४८।।
गुन की अवधि कहत नहिं आवै। छिन-छिन लाड़िली-लाल लड़ावै।।४९।।

दोहा

गौर बरन छबि-हरन मन, पंडुर बसन अनूप।
कैसैं बरन्यौ जात है, यह रसना करि रूप।।५०।।
मंजु-मेधा अरु मेधिका, तनु-मध्या मृदु बैंन।
गुनचूड़ा बारंगदा, मधुरा मधुमय ऐंन।।५१।।
मधु-अस्पंदा अति सुखद, मधुरेच्छना प्रवीन।
निसि दिन तौ ये सब सखी, रहत प्रेम-रस लीन।।५२।।

इन्दुलेखा एवं उनका परिकर चौपाई

इंदुलेखा अति चतुर सयानी। हित की रासि दुहुँनि मनमानी।।५३।।

तुङ्गविद्या सखी गान-विद्या विचक्षणा हैं। वे सब प्रकार के वाद्य बजाने में कुशल हैं तथा अपने गानकला-कौशल से राग-रागनियों को मूर्त कर देती हैं।।४७-४८।। उनके गुणों का वर्णन कर सकना दुरूह है। वे निरन्तर लाड़िली-लाल के लाड़-चाव में मग्न रहती हैं।।४९।। श्री तुङ्गविद्या की मनहरण अङ्गच्छवि गौरवर्ण है। वे कपिल वर्ण के वस्त्र धारण करती हैं। रसना द्वारा उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर सकना असम्भव है।।५०।। उनकी सखियों के नाम हैं—मञ्जुमेधा, मेधिका, मृदु भाषिणी, तनुमध्या, गुणचूड़ा, वारङ्गदा, मधुरा, मधुमयी, अति सुखद मधुस्पन्दा एवं प्रवीण मधुरेक्षणा। ये सखियाँ प्रेम रस में रँगी हुई अपनी यूथेश्वरी के आनुगत्य में नित्य युगल सेवा में तत्पर रहती हैं।।५१-५२।।

सखी इन्दुलेखा अत्यन्त कुशल एवं बड़ी सूझबूझ वाली हैं; श्री युगल ने इन्हें अपनी परम हितमयी सखी के रूप में स्वीकार किया है।।५३।।

कोक कला घातनि सब जानै। काम-कहानी सरस बखानै।।५४।।
बसी-करन निजु-प्रेम के मंत्रा। मोहन-विधि के जानति जंत्रा।।५५।।
छिन-छिन ते सब पियहि सिखावै। तातें अधिक प्रिया मन भावै।।५६।।

दोहा

देह प्रभा हरताल रँग, बसन दाड़िमी-फूल।
अधिकारिनि सब कोस की, नाहिंन कोउ समतूल।।५७।।
चित्रलेखा अरु मोदिनी, मंदालसा प्रवीन।
भद्रतुंगा अरु रसतुँगा, गानकला रस लीन।।५८।।
सोभित सखी सुमंगला, चित्रांगी रस दैंन।
ये तौ रहैं सब बात में, सावधान दिन-रैंन।।५९।।

ये दाम्पत्य विलास की अनेक घात-प्रतिघातों की कुशल ज्ञाता तो हैं ही सरस प्रेम-कथाओं को सुनाकर लाल-प्रिया में रसोद्दीपन विभाव भी प्रकट करती हैं।।५४।। सहज प्रेम एवं वशीकरण मन्त्रों की ज्ञाता एवं मोहन-विधि के यन्त्रों की भी चतुरा हैं।।५५।। इन्दुलेखा जी प्रतिक्षण प्रियतम लाल को वशीकरण एवं मोहन यन्त्रों की शिक्षा देती रहती हैं। इस कारण वे श्री प्रिया को भी अत्यन्त प्रिय लगती हैं।।५६।। उनकी देह-प्रभा हरताल के रङ्ग की अर्थात् पीतगौरवर्ण की है। उनके वस्त्र अनार के पुष्प की भाँति अरुण वर्ण के हैं। वे निकुञ्ज भवन के कोष की अधिकारिणी हैं। उनके गुणों की समता किसी से नहीं की जा सकती।।५७।। उनकी सखियों के नाम हैं—चित्रलेखा, मोदिनी, मन्दालसा, भद्रतुङ्गा, रसतुङ्गा, गानकला एवं चित्राङ्गी। ये सब सखियाँ प्रवीण, रसलीन, रसदात्री एवं अहर्निश सेवा-सावधान हैं।।५८-५९।।

रङ्गदेवी एवं उनका परिकर चौपाई

रँगदेवी अति रंग बढ़ावै। नख सिख लौं भूषन पहिरावै।।६०।।
भाँति-भाँति के भूषन जेते। सावधान ह्वै राखति तेते।।६१।।
कमल-केसरी आभा तन की। बड़ी सक्ति है चित्र लिखन की।।६२।।

दोहा

तन पर सारी फबि रही, जपा-पुहुप के रंग।
ठाढ़ी सब अभरन लियैं, जिनकैं प्रेम अभंग।।६३।।
कलकंठी अरु ससि कला, कमला अतिहि अनूप।
मधुरिंदा अरु सुंदरी, कंदर्पा जु सरूप।।६४।।
प्रेममंजरी जो कहै, कोमलता गुन गाथ।
एतौ सब रस में पगी, रँगदेवी के साथ।।६५।।

सखी रङ्गदेवी श्री प्रिया-लाल को नख-शिख पर्यन्त अलङ्कारों से सुसज्जित कर उनमें नित्य आनन्दोल्लास का उद्दीपन कराती हैं।।६०।। युगल के विविध आभूषणों को सावधानी पूर्वक सँजो कर रखती हैं।।६१।। इनके श्री अङ्ग की आभा कमल-किञ्जल्क की भाँति गौर है। श्री रङ्गदेवी में चित्र-लेखन का अद्भुत कौशल है।।६२।। ये सदा जपा-कुसुम (गुड़हल) के रङ्ग की लाल साड़ी धारण करती हैं। हृदय में गाढ़ी प्रीति लिये सारे आभूषणों के साथ सदा प्रिया-प्रियतम की सेवा में उपस्थित रहती हैं।।६३।। इनकी सखियाँ हैं—कलकण्ठी, शशिकला, अनुपम कमला, मधुरिन्दा, सुन्दरी, कन्दर्पा, प्रेम मञ्जरी एवं कोमलता। ये सब सखियाँ रस में पगी हुई श्री रङ्गदेवी का अनुगमन करती हैं।।६४-६५।।

सुदेवी एवं उनका परिकर चौपाई

सखी सुदेवी अतिहि सलौंनी। काहू अंग नाहिनैं औंनी।।६६।।
सुठि सरूप मोहन मन भावै। रुचि सौं सब सिंगार बनावै।।६७।।
कच-कबरी गूँथति है नीकी। अति प्रवीन सेवा करै जी की।।६८।।
अंजन-रेख बनाइ सँवारै। रीझि मुकर लै प्रिया निहारै।।६९।।
सारौ सुवा पढ़ावति नीकैं। सुनि-सुनि मोद होत सबही कैं।।७०।।

दोहा

अति प्रवीन सब अंग में, जानत रस की रीति।
पहिरैं तन सारी सुही, बढ़वति पल-पल प्रीति।।७१।।
कावेरी रु मनोहरा, चारु कबरि अभिराम।
मंजु केसी अरु केसिका, हार-हीरा छबि धाम।।७२।।

अति स्वरूप लावण्यमी सखी सुदेवी सर्वगुण सम्पन्न हैं। उनका सुष्ठु सौन्दर्य प्रियतम मोहनलाल को प्रिय लगता है। वे सुरुचि पूर्ण श्री युगल की शृङ्गारसेवा-विधि में तत्पर रहती हैं।।६६–६७।। कच गुम्फन एवं कबरी-बन्धन की कला में विशेष कुशल हैं। युगल की रुचि अनुरूप सेवा करने में अत्यन्त प्रवीण हैं।।६८।। वे प्रिया के नेत्रों में अञ्जन रेखा सारती हैं और दर्पण में प्रिया की मुखच्छवि का अवलोकन करके प्रसन्न हो जाती हैं।।६९।। श्री सुदेवी जी शुक-सारिकाओं को पढ़ाती हैं, जिसे सुनकर सभी परिकर आनन्दित होता है।।७०।। सखी सुदेवी सेवा की सभी विधियों में कुशल तो हैं ही रसरीतियों को भी भली-भाँति जानने वाली हैं। लाल रङ्ग की साड़ी धारण किये हुए सुदेवी सखी श्री युगल के हृदय में उत्तरोत्तर प्रीति का सम्वर्द्धन किया करती हैं।।७१।। इनकी अनुगत सखियों की नामावली है–कावेरी, मनोहरा, चारुकबरि, मञ्जुकेशी, केशिका, हारहीरा, ये सब सखियाँ सुखदायिनी एवं छबि पुञ्ज हैं।।७२।।

महा हीरा अतिही बनी, हीरा-कंठ अनूप।
उपमा कछु नहिं कहि सकत, ऐसी सबै सरूप।।७३।।
कहे गौतमी तंत्र में, इन सखियनि के नाम।
प्रथम वंदि इनके चरन, सेवहु स्यामा-स्याम।।७४।।
जो यह टहल सखीनि की, रहत बिचारत नित्त।
सो पावै 'ध्रुव' प्रेम रस, तेहि सुख सौं रँगै चित्त।।७५।।

सखियों द्वारा अष्टयाम-सेवा चौपाई

सबै सखी इहि बिधि ज्यौ ज्यावैं। छिन छिन प्रति नव लाल लड़ावैं।।७६।।
फूलनि कुंज अनूप बनावैं। लै गुलाब-दल सेज रचावैं।।७७।।
तापर लाल-लाड़िली सोहैं। अति आसक्त परस्पर जोहैं।।७८।।
चितवनि मुसकनि अति रस भींनी। मैंन अनी मनौं आगे कीनी।।७९।।

सुकण्ठ में हीरा धारण करने वाली कण्ठहीरा एवं महाहीरा अनुपम सुन्दरी हैं।।७३।। अस्तु, गौतमी तन्त्र में इन सखियों के नाम रूपादि का वर्णन है, जिनके श्री चरणों की वन्दना करके ही श्री श्यामा-श्याम की सेवा में संलग्न होना चाहिये।।७४।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई इन सखियों की युगल-सेवा का नित्य चिन्तन करेगा, निश्चित ही उसे प्रेम रस प्राप्त होगा एवं उसका चित्त सखियों की सेवा-सुख में रँग जायेगा।।७५।।

ये सब सखियाँ युगल श्री श्यामा-श्याम की विविध सेवाओं में रँगी रहकर प्रतिक्षण लाड़ करती हुई अपने प्राणों का पोषण करती हैं।।७६।। विविध पुष्पों से अनुपम कुञ्जों की रचना करती हैं। पाटल पुष्प-दलों से शय्या सज्जित कर श्री लाड़िली-लाल को उस पर विराजमान् करती हैं, और तब युगल परस्पर रूप-दर्शन में तन्मय हो जाते हैं।।७७–७८।। उस समय श्रीलाड़िली-लाल की रससम्पृक्त चितवन एवं मुसकान ऐसी प्रतीत होती है, मानो सुरत-युद्ध के पूर्व काम-सेना का पदार्पण हो रहा हो।।७९।।

आलिंगन चुंबन अनुरागे। अद्‌भुत सुरत प्रेम-रस पागे।।८०।।
बिच-बिच बतियाँ कहत सुहाई। अँखियनिं सौं अँखियाँ अरुझाई।।८१।।
तेहि सुख-रंग में रैंन बिहानी। रति-बिहार की तृपति न मानी।।८२।।
अंग-अंग ऐसैं लपटाने। गौर स्याम तहाँ जात न जाने।।८३।।

दोहा

रैंन घटी रुचि नहिं घटी, अद्‌भुत जुगल-विहार।
तन-मन अरुझे लेत हैं, अधर-सुधा रस-सार।।८४।।

मङ्गला चौपाई

भोर भयैं सहचरि सब आईं। यह सुख देखति करति बधाई।।८५।।
कोउ बीना सारंगी बजावैं। कोउ इक राग विभासहि गावैं।।८६।।

युगल गाढ़ाश्लेष एवं चुम्बनादि में अनुरक्त हुए अद्भुत सुरत-केलि के समुद्र में निमज्जन करने लगते हैं।।८०।। वे बीच-बीच में मधुर रस वार्त्ता में तन्मय हुए आँखों में आँखें डाले परस्पर रूप-सुधा का पान करते हैं।।८१।। इस अद्भुत सुखरङ्ग को विलसते यद्यपि समस्त रात्रि व्यतीत हो जाती है, तो भी इस रङ्ग-विनोद में उन्हें तृप्ति का अनुभव नहीं होता है।।८२।। युगल रसिक गाढ़ाश्लेष में ऐसे एकमेक रहते हैं कि उनके गौर-श्याम स्वरूप का भेद कर पाना सखियों के लिये कठिन हो जाता है।।८३।। इस अद्भुत केलि-विहार में यद्यपि समस्त रजनी व्यतीत हो जाती है, तथापि श्री युगल की सुरुचि कम नहीं होती और वे तन-मन से उलझे हुए रससार अधरासव-पान से उपरत नहीं हो पाते हैं।।८४।।

प्रातःकाल होते ही समस्त सखियाँ रङ्ग-महल में पधारीं और युगल की इस सुरम्य केलि का दर्शन करके उन्हें नित्य सुख-वृद्धि का आशीष देने लगीं।।८५।। युगल के उत्थापन के उपक्रम में कोई सखी वीणा एवं कोई सारङ्गी बजाने लगी और एक सखी विभास राग में गान करने लगी।।८६।।

एक चरन हित सौं सहरावै। एक बचन-परिहास सुनावै।।८७।।
उठि बैठे दोउ लाल रँगीले। बिथुरी अलक सबै अँग ढीले।।८८।।
घूमत अरुन नैन अनियारे। भूषन-बसन न जात सँभारे।।८९।।
कहुँ अंजन कहुँ पीक रही फबि। कैसैं कही जाति है सो छबि।।९०।।
हार-वार मिलि कैं अरुझाने। निसि के चिन्ह निरखि मुसिकाने।।९१।।

दोहा

निरखि-निरखि निसि के चिन्हनिं, रोमांचित ह्वै जाहिं।
मानौं अंकुर मैन के, फिरि निपजे तन माहिं।।९२।।

एक सखी युगल के सुकोमल चरण-तलों को सहलाने लगी और एक मधुर वचनों में परिहास रस वर्षण करने लगी।।८७।। तभी रसिक रँगीले युगल उठ बैठे, उस समय उनके अङ्ग-अङ्ग में आलस्य छाया हुआ था एवं अलकावली विखरी हुई थी।।८८।। रात्रि जागरण के कारण अरुणिम अनियारे नयन आलस्य से झूम रहे थे एवं उनको अपने वस्त्राभूषणों का भी अनुसन्धान नहीं था।।८९।। मुखारविन्द पर कहीं तो पान की पीक और कहीं अञ्जन की लीक अनुरञ्जित् हो रही थी। इस अनुपम छबिछटा का वर्णन कर सकने की किस में सामर्थ्य होगी ?।।९०।। हारावली एवं केश-राशि आपस में उलझ गई थी तथा रात्रि-विलास के सरस अङ्कों को देख-देख कर युगल आनन्द मग्न हुए मन्द-मन्द मुस्कराते थे।।९१।। रात्रिकालीन सुरत-चिन्हों का अवलोकन करके युगल आनन्दातिरेक से रोमाञ्चित हो रहे थे, तब उनके रोमाञ्च को देखकर प्रतीत होता था कि मानो उनके श्री अङ्गों पर पुनः प्रेम-रति के अङ्कुर उग आये हों।।९२।।

चौपाई

अद्भुत मिश्री मेलि मलाई। अधिक हेत सौं आनि खवाई।।९३।।
चितवत जुगल बदन-बिधु ओरी। मानौं रसभरी त्रिषित चकोरी।।९४।।

दोहा

कीनी मंगल आरती, मंगल निधि सुकुँवार।
मंगल भयौ सब सखिनु कै, यह रस प्रेम अधार।।९५।।

चौपाई

एक सखी ल्याई पिकदानी। एक लियैं झारी भरि पानी।।९६।।
रतन खचित कंचन की चौकी। झलमलात सोभा रवि सौ की।।९७।।
कोमल कुसुमनिं गदी बिछाई। अति सुगंध सौंधे छिरकाई।।९८।।
तेहि ऊपर बैठे दोउ प्यारे। जल सुगंध सौं बदन पखारे।।९९।।
सहचरी एक मुकुर लियैं ठाढी। झलकनि सोभा सतगुन बाढ़ी।।१००।।

सखियों ने मलाई में मिश्री मिश्रित कर प्रेमपूर्वक युगल को भोग लगाया और तृषित चकोरी की भाँति युगल मुखचन्द्र छबि का पान करने लगीं।।९३-९४।। तत्पश्चात् सखियों ने मङ्गलनिधि श्री श्यामा-श्याम की मङ्गल आरती की। इस प्रकार सखियों ने परम सुख का अनुभव किया, क्योंकि यह प्रेम रस ही उनके जीवन का एकमात्र अवलम्ब है।।९५।। एक सखी पीकदानी लेकर सेवा में प्रस्तुत हुई तो दूसरी जल की झारी लेकर।।९६।। हेममयी मणिचौकी की प्रभा तहाँ शत-शत सूर्यों की स्वर्णमयी आभा को भी तिरस्कृत कर रही थी।।९७।। उस पर सखियों ने फूलों की सुकोमल सुगन्ध भीनी गद्दी बिछाई, जिस पर सुकुमार युगल-किशोर को विराजमान् कर सुरभित जल से उनका मुख प्रक्षालन करने लगीं।।९८-९९।। वहाँ एक सखी दर्पण दिखाती हुई युगल की सेवा में उपस्थित हुई, तब दर्पण में उनका प्रतिबिम्ब शत-शत छबि पुञ्ज को प्रकट करने लगा।।१००।।

तेहि छिन कछु खैवैं कौं लाई। मादिक मधुर बात मन भाई।।१०१।।

दोहा

बहु बिधि मेवा मधुर फल, कढ्यौ दूध इकसार।
लै आई निज सहचरी, जानि कलेऊ वार।।१०२।।

चौपाई

हँसि-हँसि नवल जुगल कछु लयौ। सखियनिं के मन आनँद भयौ।।१०३।।
ललिता पान खवावति खरी। निरखति छबि आनँद रस भरी।।१०४।।
ख्वाइ प्याइ कैं जब मन मान्यौ। मंजन कौ हित सबहिनि ठान्यौ।।१०५।।
काहू सखी तप्त जल आन्यौ। काहू घोरि उबटनौ बान्यौ।।१०६।।
एक फुलेल अरगजा ल्याई। टहल हेत सब फिरति हैं धाई।।१०७।।

तदुपरान्त सखियाँ श्री युगल को भोग लगाने के लिये कुछ सामग्री ले आईं, जो मधुर, स्वादिष्ट एवं रुचिकर थी।।१०१।। युगल की निज सहचरियाँ कलेऊ का समय जानकर बहुत प्रकार के मेवे, मधुर फल और भली प्रकार से औटाया हुआ दूध लेकर उपस्थित हुईं।।१०२।। उपस्थित सामग्री में से रसिक युगल ने रुचि के अनुसार प्रसन्न भाव से हँसते हुए कुछ ग्रहण किया, जिससे सखियों का मन आनन्दपूरित हो उठा।।१०३।। श्री ललिता सखी ने ताम्बूल-वीटिका रच कर लाड़िली-लाल को अर्पित की एवं आनन्द-रस पूरित हो कर उनकी मञ्जुल छबि का दर्शन करने लगी।।१०४।। खिला-पिला कर जब सखियों का मन सन्तुष्ट हो गया, तब वे युगल को स्नान कराने की बात विचारने लगीं।।१०५।। कोई सखी युगल के स्नान हेतु उष्ण जल ले आयी। किसी ने घोल कर उबटन तैयार किया।।१०६।। एक सखी फुलेल एवं अरगजा लेकर उपस्थित हुई। स्नानसेवा के लिये सब सखियाँ आतुर भाव से चतुर्दिक सेवा-सौंज लिये फिरने लगीं।।१०७।।

दंपति-सुख के रस में भींनी। छिन-छिन तिन की प्रीति नवीनी।।१०८।।
एकै रस भींनी रहैं नितहीं। जानत नहिं निसि-वासर कितहीं।।१०९।।

सेवा का उल्लास सवैया

सखी चहुँ कोद फिरैं चकडोरी सी, सेवा कौ चाव बढ्यौ मन माँहीं।
सौंज-सिंगार नई-नई आनति, वानत नैकहूँ हारति नाँहीं।।
प्रेम पगी तेहि रंग रँगी, निरखैं तिनकौं तनकौ न अघाहीं।
और सवाद लगे 'ध्रुव' फीके, रहैं विवि-रूप के छत्र की छाँहीं।।११०।।

चौपाई

रतन-कुंज में आये दोऊ। ललितादिक बिनु तहाँ न कोऊ।।१११।।

इस प्रकार दम्पति के तत्सुख-रस में भीनी इन सखियों का प्रेम नित्य नवीन है।।१०८।। सहज एक रस में रँगी इन सखियों को रात-दिन का भी पता नहीं चलता अर्थात् काल की गति का भी अनुसन्धान नहीं रहता।।१०९।।

सेवा के भावोल्लास से भरी सखियाँ चकडोर की भाँति चारों ओर घूमती रहती हैं। वे नयी-नयी शृङ्गार की सामग्री ले-ले कर आती हैं और युगल का शृङ्गार करती हैं। उनके उल्लास में कभी कमी नहीं आती है। सेवा के रङ्ग में रँगी, प्रेम के माधुर्य में पगी इन सखियों को युगल की छबि-माधुरी का सतत पान करते हुए भी कभी तृप्ति का अनुभव नहीं होता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल के रूप-छत्र की छाया में निवास करनेवाली इन सखियों को सेवा-सुख स्वाद के समक्ष अन्य सब स्वाद नीरस प्रतीत होते हैं।।११०।। अस्तु अब श्री लाड़िली लाल रत्न-कुञ्ज में पधारे, जहाँ श्री ललितादिक निज सहचरियाँ ही समीप में थीं।।१११।।

दोहा

चाँपि चुपरि मृदु सेज पर, न्यौछावर करि प्रान।
अति सुगंध जल उस्न सौं, करवावतिं स्नान।।११२।।

शृङ्गार एवँ राजभोग चौपाई

अद्भुत अंग अगौंछे जबही। कोटि आरसी वारीं तबही।।११३।।
पुनि सिंगार-कुंज में आये। मन भाये सिंगार कराये।।११४।।
मन की रुचि लै सेवा करहीं। छिन-छिन प्रति ऐसैं अनुसरहीं।।११५।।
फूलनि-आसन रचे बनाई। भोजन-कुंज में बैठे जाई।।११६।।
मनि-मय चौकी राखी आनि। हेम-थार तापर धरयौ वानि।।११७।।
झलकि रहे बहु कनक-कचोरा। बिंजन भरि-भरि धरे चहुँ ओरा।।११८।।

सुकोमल शय्या पर उन्हें विराजमान करके निज सखियों ने सुगन्धित उबटन तेल से उनके सुकुमार अङ्गों का संवाहन एवं उद्वर्त्तन आदि किया। तब वे प्रेम विभोर हुईं उन पर बलिहार हो गईं। पुनः उन्हें सुगन्धित उष्णोदक से स्नान कराया।।११२।।

तत्पश्चात् कोमल वस्त्रों से जब अङ्गों को अँगोछा तो उनके अङ्गों की दिव्य कान्ति पर कोटि-कोटि दर्पण-द्युति न्यौछावर होने लगी।।११३।। तत्पश्चात् रसिक युगल शृङ्गार-कुञ्ज में पधारे, वहाँ सखियों ने उनकी रुचि के अनुकूल उन्हें शृङ्गार धारण कराया।।११४।। सखियाँ युगल की अभिरुचि को देखते हुए नित्य प्रति उनकी सेवा में तत्पर रहती हैं।।११५।। तत्पश्चात् सखियाँ उन्हें भोजन कुञ्ज में ले आईं, जहाँ पुष्प-रचित आसनों पर युगल को विराजमान् किया और सुन्दर मणिमय चौकी पर तब स्वर्ण थालों में भोजन परोसा।।११६-११७।। स्थालिकाओं में चारों ओर विविध व्यञ्जनों से पूरित स्वर्णमय कटोरे सजाये।।११८।।

मध्य अनूप खीर अति नीकी। भरी कटोरी सौंधे घी की।।११९।।
उज्वल मिश्री पीस मिलाई। रसना स्वादहि कहि न सकाई।।१२०।।
एक दूध के बहुत प्रकारा। कहि न सकत तिनके बिस्तारा।।१२१।।
विविध भाँति पकवान बनाये। ते सब नवल जुगल मन भाये।।१२२।।
मोहन-भोग सरस घी माँही। अति कोमल उपमा कछु नाहीं।।१२३।।
पतरी रोटी घी सौं सनी। बरी फुलौरी अति ही बनी।।१२४।।
खाटे चरपरे बरे सलोने। घृत में नीके बने निमोने।।१२५।।
पापर कचरी गीचे नीके। पावत रुचि सौं प्यारे जीके।।१२६।।
सालन साक और तरकारी। रसना स्वादहि लेति न हारी।।१२७।।

दोहा

जो बिंजन कर पल्लवनि, छुवति छबीली बाल।
तहाँ ते रुचि सौं लेत हैं,नवल रँगीले लाल।।१२८।।

मध्य में खीर रखी तथा समीप में घृत-पूरित कटोरी भी रखी, जिसमें निर्मल कन्द पीस कर मिलाया, जिसका स्वाद अपूर्व था।।११९-१२०।। दूध से निर्मित अनेक व्यञ्जन थे, जिनका विस्तार कहते नहीं बनता एवं दुग्ध-निर्मित अनेक प्रकार के पक्वान्न थे, जो युगल नवल को अत्यन्त रुचिकर हैं।।१२१-१२२।। सद्य घृत निर्मित मोहन-भोग अत्यन्त सुस्वादु था। पतले-पतले फुलके घी से चभोरे गये थे, ऐसे ही बहुत प्रकार के बड़े-पकौड़े एवं फुलौरी आदि सलोने व्यञ्जन थे।।१२३-१२४।। खट्टे चटपटे बड़े तथा घृत संपृक्त निमोने (व्यञ्जन विशेष) के अनेक प्रकार रखे गये थे। पापड़, कचरी इत्यादि घृत में सेंकी हुई सामग्रियों का भी बाहुल्य था, जिसे युगल बड़ी रुचि से आरोग रहे थे।।१२५-१२६।। विविध प्रकार के सालन, शाक एवं तरकारियाँ थीं, जो अत्यधिक स्वादिष्ट थीं।।१२७।। जिस किसी व्यञ्जन का छबीली प्रिया के कर पल्लवों से स्पर्श हो जाता, परमासक्त लाल उन्हीं व्यञ्जनों को सुरुचिपूर्वक ग्रहण करते।।१२८।।

चौपाई

चंपक लता चौंप सौं जिँवावै। ललिता बातनिं रुचि उपजावै।।१२९।।
पीत भात सिखरन सुठि गाढ़ी। ग्रास लेत अति ही रुचि बाढ़ी।।१३०।।

दोहा

हँसि-हँसि दोउ नागर नवल, ग्रास परस्पर लेत।
ललितादिक निज सखिनु के, नैननिं कौं सुख देत।।१३१।।

चौपाई

दूध पना सरबत रुचि कारी। बहुत भाँति सौं तक्र सँवारी।।१३२।।
हित की निधि सहचरि चहुँ ओरैं। कौर-कौर प्रति सबै निहोरैं।।१३३।।
हँसि-हँसि जैंवत हैं पिय-प्यारी। तेहि छिन कौ सुख कहौं कहारी।।१३४।।

सखी चम्पकलता अत्यन्त उल्लास से भर कर उन्हें भोजन करवाती हैं एवं ललिता अपनी मधुर वार्त्ताओं से युगल की रुचि का अभिवर्द्धन किया करती हैं।।१२९।। केसर युक्त पीत-भात एवं गाढ़ा श्रीखण्ड इतना स्वादिष्ट था कि उसके प्रथम ग्रास को लेते ही युगल की रुचि बढ़ गई।।१३०।। हास्य विनोद-पूर्वक चतुर किशोर युगल परस्पर एक दूसरे के मुख में ग्रास देते लेते हैं एवं उनकी ये अपूर्व शोभा छटा ललितादिक सखियों को परम सुख प्रदान करती है।।१३१।। विविध प्रकार के पेय पदार्थ यथा दूध, पना, शरबत एवं तक्र सुरुचि से निर्मित किये गये थे।।१३२।। प्रेम-आगरी सहचरियाँ चारों ओर एकत्रित हुई बड़े दुलार से ग्रास प्रति निहोरा करती हुई उन्हें जिमाती हैं।।१३३।। प्रिया-प्रियतम हँस-हँस कर जब उनकी अनुनय-विनय को स्वीकार कर के आरोगते हैं, तो उस क्षण के अपरिमित आनन्द की बात का कोई वर्णन कैसे कर सकता है।।१३४।।

मन जानै कै दोऊ नैंना। रसना पै कछु कहत बनैंना।।१३५।।
यह आनंद कह्यौ नहिं जाई। रसना कोटि होहिं जौ माई।।१३६।।
तब सखियनि आचमन दिवायौ। सबके नैंन-प्रान सुख पायौ।।१३७।।
ललिता रचि-रचि बीरी कीनी। नवल कुँवरि अरु कुँवरहि दीनी।।१३८।।

दोहा

नैंन दीप हिय-थार भरि, पूरि प्रेम-घृत ताहि।
लीने हित के करनि सौं, आरति करतिं उमाहि।।१३९।।

चौपाई

सो प्रसाद सब सखियनि लीनौं। अपनौ सेस 'ध्रुवहि' कछु दीनौं।।१४०।।
इहि विधि कै जो भोग लगावै। ताकी चरन रैंनु 'ध्रुव' पावै।।१४१।।

इस सुख के अनुभवी तो मन एवं इस शोभा का दर्शन करने वाले नेत्र ही हैं। वाणी के द्वारा तो उसका वर्णन असम्भव प्राय है।।१३५।। एक जिह्वा की तो बात ही क्या, इस आनन्द सुख का वर्णन कर सकने में तो कोटि जिह्वायें भी सक्षम न हो पायेंगी।।१३६।। भोजनोपरान्त सखियों ने युगल का मुख-प्रक्षालन कराया एवं सबके मन-प्राण अत्यन्त सुखानन्द पूरित हुए।।१३७।। श्री ललिता सखी ने ताम्बूल वीटिकाओं की सुन्दर रचना रच करके नवल युगल किशोर को अर्पण किया।।१३८।। अन्त में हृदय-थाल पर नेत्र रूपी दीपकों में घृत-पूरित करके सखियों नें हितमय करों से उल्लास पूर्वक युगल श्री श्यामा-श्याम की आरती की।।१३९।। पश्चात् युगल का अवशिष्ट प्रसाद ग्रहण किया और उसका शेषांश ध्रुवदास को दिया।।१४०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो भक्त इस रीति से अपने इष्ट को भोग लगाते हैं, उनकी चरण-रेणु मेरे लिए शिरोधार्य है।।१४१।।

दोहा

सखियनि अद्भुत सेज रचि, नव निकुंज रस-ऐंन।
तहाँ रसिक दोउ लाड़िले, करत सुखद सुख सैंन।।१४२।।

चौपाई

उर सौं उर नैननिं सौं नैंना। मन सौं मन बैननिं सौं बैंना।।१४३।।
दसननि अधर रही धरि प्यारी। करुना रस की निधि सुकुमारी।।१४४।।
सुख के सिंधु परे पिय गहरैं। रति-बिनोद की उठति हैं लहरैं।।१४५।।
ललितादिक तेहि सुखहि निहारैं। प्रेम बिबस प्राननि कौं वारैं।।१४६।।

दोहा

मदन-मोद आनन्द-मद, मते रहत निसि-भोर।
कुसल सुरत रस सूर दोउ, नागर नवल-किसोर।।१४७।।

चौपाई

जबही घरी चार दिन रह्यौ। प्रीतम प्रान-प्रिया सौं कह्यौ।।१४८।।

रस धाम निकुञ्ज गृह में सखियों ने बड़े चाव से रँगमयी शय्या सुसज्जित की, जिस पर नव लाड़िली- लाल युगल ने सुख पूर्वक शयन किया।।१४२।। उस समय उनके वक्षस्थल से वक्षस्थल, नेत्रों से नेत्र, मन से मन एवं वाणी से वाणी एकमेक हो रही थी।।१४३।। करुणामयी नागरी सुकुमारी प्रिया श्री लाल को दशनाञ्चल अर्पित किये हुए थीं एवं प्रियतम सुख के गम्भीर समुद्र में तन्मय हो रहे थे, एवं उस सुख-समुद्र में रति-विनोद की लहरें तरङ्गायित हो रही थीं।।१४४-१४५।। इस सुख का दर्शन करके प्रेम विवश ललितादिक सखियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करने लगीं।।१४६।। परम चतुर नवल किशोर सुरत-रस क्रीड़ा में परम प्रवीण हैं। वे रति-विनोद विलासों में दिन-रैन आनन्दोन्मत्त रहते हैं।।१४७।। जब चार घड़ी दिन शेष रह गया तब प्रियतम ने नव कुँवरि प्रिया के आगे प्रस्ताव रखा।।१४८।।

चलहु कुँवरि देखैं बनराई। फूलनिं सोभा कही न जाई।।१४९।।
फूलीं लता बढ़ी तरु छाँहीं। झूमि रही जमुना-जल माहीं।।१५०।।
सिमटीं आइ सखी हितकारी। एक बैस अति ही सुकुँवारी।।१५१।।
विविध भाँति मधु भोजन आन्यौ। सब सुगंध सौं बास्यौ पान्यौ।।१५२।।
जोइ भायौ सोई कछु लीनौ। पुनि बन देखन कौ मन कीनौ।।१५३।।

वन-विहार

दोहा

भीने अति रस-रंग में, नवल रँगीले लाल।
बाहाँ-जोरी चलत दोउ, मत्त मरालनि चाल।।१५४।।

चौपाई

जिहि द्रुम बेलि फूल तन हेरैं। सींचत मनौं अनुराग सौं फेरैं।।१५५।।

कि–"हे किशोरी जू! अपूर्व कुसुमित वनराज श्री वृन्दावन की शोभा का दर्शन करने के लिये चलना चाहिये।।१४९।। जहाँ सघन वृक्षों की छाया एवं कुसुमित लताएँ लूम-झूम कर यमुना में प्रतिविम्बित हो रही हैं।।१५०।। उसी समय युगल की हित-चिन्तक सखियाँ, जो सम वयस् एवं नवल किशोरी सुकुमारी हैं, उनके समीप एकत्र हो आयीं।।१५१।। उन्होंने विविध भाँति के मधुमय भोजन तथा सुवासित जल युगल की सेवा में प्रस्तुत किये।।१५२।। यथा रुचि कुछ ग्रहण करके युगल किशोर श्री वन-विहार के लिये चल पड़े।।१५३।।

अति रस रङ्ग भरे नित्य नव रँगीले युगल गलबहियाँ दिये हुए राजहंस की सी चाल चलते हुए अपूर्व शोभा को प्राप्त हो रहे हैं।।१५४।। वे जिस वृक्ष, लता एवं पुष्प पर दृष्टिपात करते हैं, मानो उसे प्रेम-सुधा से सिञ्चित् कर, जीवन दे देते हैं।।१५५।।

निकसत हैं घन बीथिन माहीं। नवल निचोलनि परसत नाहीं।।१५६।।
वंशीवट तट रबिजा तीरैं। सीतल मंद सुगंध समीरैं।।१५७।।
उज्वल चौक अधिक झलकाई। मानौं सोभा आनि बिछाई।।१५८।।
सखियनि-सभा तहाँ सुखदाई। सुख की सींव कही नहिं जाई।।१५९।।
मध्य महा मन मोहन माई। आनँद छबि सब पर बरषाई।।१६०।।
बैठे दोउ ग्रीवा भुज मेलैं। नैंननिं-खेल परस्पर खेलैं।।१६१।।
अपनैं-अपनैं गुनहिं दिखावैं। निर्तत एक-एक मिलि गावैं।।१६२।।

दोहा

सहज रूप के चंद द्वै, सखिन पुंज चहुँ ओर।
मानौं पीवत छबि-सुधा, सब के नैंन-चकोर।।१६३।।

चौपाई

सखी सबै चहुँ ओर सुहाई। निरखति फूलीं अंगनि माई।।१६४।।

वे जब सघन कुञ्ज-वीथियों में से हो कर निकलते हैं, तब सिमिट कर ऐसे एक हो जाते हैं कि वहाँ की सघन लताएँ उनसे उलझना तो क्या, स्पर्श भी नहीं कर पातीं।।१५६।। जहाँ हंस-सुता के तट पर वंशीवट में नित्य शीतल मन्द सुगन्धित पवन प्रवाहित रहता है।।१५७।। वहाँ उज्ज्वल एवं देदीप्यमान् अपूर्व शोभा से पूर्ण एक प्राङ्गण है।।१५८।। जहाँ सुख की सींवा रूप सखियों की सभा एकत्रित है।।१५९।। सखी-सभा के मध्य में युगल भुज-ग्रीवा दिये हुए, सबके मन का मोहन करते हुए, आनन्दमयी छबि की वृष्टि करते हुए एवं परस्पर नेत्र कटाक्ष पूर्वक रस की बातें कर रहे हैं।।१६०—१६१।। श्री युगल नृत्य द्वारा अपने-अपने गुणों का प्रकाश करते हुए कभी पृथक्-पृथक् नृत्य करते हैं तथा कभी समवेत गान करते हैं।।१६२।। सहज रूप के चन्द्र यह युगल सखी-समुदाय से परिवेष्टित ऐसे लगते हैं, मानो सखियों के नेत्र रूपी चकोर सोम-सुधा का पान कर रहे हों।।१६३।। चारों ओर घिरी हुई सखियाँ युगल-छबि का दर्शन करके रोम-रोम से प्रसन्न हैं।।१६४।।

एक सारंगी बीन सुनावै। एक मृदंग अनूप बजावै।।१६५।।
तिरप लेत झलकत तनु ऐसैं। बहुत रंग की दामिनि जैसैं।।१६६।।
राग-रागिनि मूरति धारैं। सखी रूप सेवति सुख वारैं।।१६७।।
कोटि कलप जौ यह सुख देखै। रुचि न घटै छिन की सम लेखै।।१६८।।

दोहा

अद्भुत मीठे मधुर फल, ल्याईं सखी बनाइ।
ख्वावत प्यारे लाल कौं, पहिलैं प्रियहिं चखाइ।।१६९।।

शयन-भोग चौपाई

रजनी मुख सोभा अति बढ़ी। पानिप मैंन दुहूँनि मुख चढ़ी।।१७०।।
हुलसि हियैं आनँद-रस भरे। चाह-चौंप रति-रँग में परे।।१७१।।

कोई सखी सारङ्गी बजाती है, कोई वीणा बजाती है और कोई सुन्दर मृदङ्ग-वादन करती है।।१६५।। नृत्य की तिरप गति लेते हुए उनके शरीर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो रङ्ग-बिरङ्गी विद्युल्लताएँ ही नृत्य कर रही हों।।१६६।। ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् राग एवं रागनियाँ ही सखी स्वरूप धारण करके युगल की सेवा में अपने को समर्पित किये हुए हैं।।१६७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि कोटि कल्प पर्यन्त निरन्तर इस शोभा-सुख का दर्शन करने पर भी रुचि शिथिल नहीं होगी, वरन् कोटि कल्प जैसा दीर्घ काल भी एक क्षण के समान प्रतीत होगा।।१६८।। तदुपरान्त सखियाँ संध्या समय जान कर सुस्वादु मधुर फल सँवार कर ले आईं एवं प्रथम प्रिया को चखा कर प्यारे लाल को खिलाने लगीं।।१६९।।

संध्या कालीन शोभा की वृद्धि के साथ ही युगल के मुख पर मदन-लावण्य की अभिवृद्धि होने लगी।।१७०।। रस-तरङ्गों से उल्लसित युगल उत्साह एवं उत्कण्ठा के रतिरङ्ग में डूबने लगे।।१७१।।

सैंन समय की बिरियाँ जानी। भोजन सौंज तबहि कछु आनी।।१७२।।
दूध-भात मधु अति रुचिकारी। जल सुगंध भरि आनी झारी।।१७३।।
ख्वाइ प्याइकैं बीरी दीनी। प्रेम प्यार सौं आरति कीनी।।१७४।।
मदन-रंग नैंननिं झलकान्यौ। मन कौ हेत सखिनु जब जान्यौ।।१७५।।
कलप दुमनि कल कुंज सुहाई। षोडस द्वार बने तहाँ माई।।१७६।।
इक-इक मनि की आभा ऐसी। कोटि दिवाकर प्रभा न तैसी।।१७७।।
कोमल कमलनि के दल लीने। अति सुगंध सौंधे सौं भीने।।१७८।।
रचि बिचित्र वर सेज बनाई। निरखत नैंन मैंन अरुझाई।।१७९।।

दोहा

सेज सुखद रचना रची, लै मृदु कुसुमनि मोद।
तेहि ऊपर सुकुँवार दोऊ, करत विलास बिनोद।।१८०।।

शयन बेला के आगमन पर सखियों ने युगल के सम्मुख विविध प्रकार की भोजन सामग्री प्रस्तुत की।।१७२।। दूध, भात रुचिकर मिष्ठान्न तथा सुवासित जल की झारी युगल के सम्मुख उपस्थित की।।१७३।। खिला-पिला कर ताम्बूल-वीटिका दी एवं प्रीति-पूर्वक उनकी आरती की।।१७४।। जब युगल के नेत्रों में सखियों नें मदन-रङ्ग की झलक देखी, तब वे उन के मन का भाव समझ कर उन्हें कल्पद्रुम की सुहावनी कुञ्ज में ले गयीं। वह कुञ्ज षोडश द्वार वाली थी।। १७५-१७६।। उस कुञ्ज का प्रत्येक मणि कोटि-कोटि रवि-द्युति को तिरस्कृत करने वाला था।।१७७।। सखियों ने कमल के सुकोमल दलों से सुगन्ध पूरित सुन्दर तल्प की रचना की, जो काम के मन को भी विमुग्ध कर रही थी।।१७८-१७९।। इस प्रकार सुकोमल कुसुम-पराग पूरित सुन्दर शय्या पर पौढ़े युगल प्रेम-विलास केलि करने लगे।।१८०।।

सौंधो पान सुगंध मधु, दूध सौं मिश्री छानि।
भरि-भरि भाजन हेम के, सखियनि राखे बानि।।१८१।।

चौपाई

सबै सौंज गृह धरी बनाई। आपुन लतनि ओट रहीं जाई।।१८२।।
तब दोउ बतियनि के रस परे। आलिंगन चुंबन अनुसरे।।१८३।।
रूप मदन गुन नेह के ऐंना। तन मन अरुझि नैंन सौं नैंना।।१८४।।
जो रस उपजत है दुहुँ माहीं। ललितादिक निरखत न अघाहीं।।१८५।।
यह रस तौ समुझै नहि कोई। जानै सो जो इनकौ होई।।१८६।।

शय्या-विहार दोहा

रूप तरंगनि में परीं, अखियाँ मीन अनूप।
सुरत-सिंधु सुख झिलि रहे, साँवल-गौर सरूप।।१८७।।

सखियों ने शय्या के समीप परिमल द्रव्य, ताम्बूल-वीटिका, सुगन्धित मधुर पेय, सिता मिश्रित दुग्ध एवं अन्यान्य प्रकार के मधु पदार्थ स्वर्ण पात्रों में सँजो कर रखे।।१८१।। तब सखियाँ सेवा की सौंज पूरी कर के स्वयं लताकुञ्ज की ओट में रन्ध्रों द्वारा युगल की कुञ्ज-केलि का अवलोकन करने लगीं।।१८२।। इधर निकुञ्ज गृह में सरस वार्त्ता में उलझे हुए युगल आलिङ्गन चुम्बन के रस में ढलने लगे।।१८३।। और रूप, प्रेम, गुण एवं रस के आगार युगल तन, मन और नयनों से परस्पर उलझ गये।।१८४।। उस समय युगल रसिक में जिस अनुपम रस की निष्पत्ति हुई ललितादिक सहचरियाँ अपने नेत्रों से उसका सतत पान करती हुईं भी अतृप्त ही बनी रहीं।।१८५।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह रस रसिक युगल के अनन्य उपासकों का ही आस्वाद्य है, अन्य लोगों की गति-मति से परे है।।१८६।।

गौर श्याम अद्वय युगल प्रेम विलास के जिस सुख समुद्र में निमग्न हैं, सखियों के मीन रूपी नेत्र भी उसी रूप-तरङ्ग में तरङ्गायित हैं।।१८७।।

सेज सुरत सरिता मनौं, मज्जत दोउ सुकुँवार।
बिवस लाल पैरत फिरैं, कुच-तुंबनि आधार।।१८८।।
अद्‌भुत रस मुक्तावली, मंडल केलि-विहार।
'हित ध्रुव' जो गावै सुनै, पावै प्रेम अपार।।१८९।।
साँझ-भोर लौं ऐसैंही, भोर-साँझ लौं जानि।
'हित ध्रुव' यह सुख सखिनि कौ निसि-दिन उर में आनि।।१९०।।
दोहा चौपई एक सत, नब्बै अति अभिराम।
'हित ध्रुव' रस मुक्तावली, रसिक-जननिं विश्राम।।१९१।।

इस नित्य विहार देश में शय्या ही सुरत-केलि की सरिता है, जिसमें सुकुमार नव-दम्पति निमज्जन करते रहते हैं।। रस-विवश प्रियतम प्रिया के कुच तुम्बों का आश्रय ले कर इस प्रेम सरिता का सन्तरण करते हैं।।१८८।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह 'रस मुक्तावली' नामक ग्रन्थ अद्भुत-विहार-केलि का आवर्त्त है, जो कोई इसका गान एवं श्रवण करेगा, वह असीम प्रेम रस की प्राप्ति करेगा।।१८९।। संध्या से प्रातः एवं प्रातः से संध्या पर्यन्त अहर्निश सखियों के इस चिन्तनीय सेव्य-सुख को हृदय में धारण करना चाहिये।।१९०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिकों के लिये परम आनन्द-दायिनी इस 'रस-मुक्तावली' में अति सुन्दर दोहा-चौपाई एक सौ नब्बे की संख्या में परिगणित हैं।।१९१।।

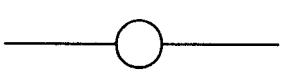

१९
रस हीरावली

मङ्गलाचरण — दोहा

प्रथमहिं श्री गुरु-कृपा ते, यह उपजी उर आनि।
बरनौं रस-हीरावली, जुगल-केलि रसखाँनि।।१।।

प्रस्तावना — चौपाई

रंग भरे दोउ लाल रँगीले। रति के रस पगि रहे रसीले।।२।।
अति सुदेस वृंदावन माँहीं। नवल प्रेम रस दिन वरषाँहीं।।३।।
सुख अनूप नव कुंज सुहाई। छबि के फूलनि सौं जनु छाई।।४।।
मृदु-मृदु दल जलजनि के लीने। अति सुगंध सौंधे सौं भीने।।५।।
रचि विचित्र सुख-सेज बनाई। तेहि ऊपर बैठे सुखदाई।।६।।

सर्व प्रथम श्री गुरु-कृपा से मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई है कि मैं श्रीलाड़िली-लाल युगल की 'रस हीरावली' नामक रचना के माध्यम से रसपूर्ण निकुञ्ज-केलि का वर्णन करूँ।।१।।

प्रेम रङ्ग से भरे हुए रसिक रँगीले युगल श्री लाड़िली-लाल बड़े रसीले हैं। वे सदैव रति-रस में पगे रहते हैं।।२।। वे दिव्य प्रकृतिमय अत्यन्त रमणीय देश श्री वृन्दावन में अहर्निश नित्य नूतन प्रेम-रस की वर्षा करते रहते हैं।।३।। अनुपम सुखमयी, परम सुहावनी, वृन्दावन की नव कुञ्ज, जो छबि-सौन्दर्य के पुष्पों से आच्छादित रहती है।।४।। वहाँ सखियों ने कोमल-कोमल कमल-दलों द्वारा अत्यन्त सुगन्धमय परिमल सिञ्चित् विचित्र सुख-शय्या का निर्माण किया है। उस शय्या पर युगल सुख पूर्वक विराजमान् हैं।।५-६।।

जहाँ-तहाँ डोलत मोर मराला। सुक-पिक बोलत वचन रसाला।।७।।
फूलनि की छबि बनति निहारैं। होति मधुर मधुपनि गुंजारैं।।८।।
मारुत त्रिविध बहै रुचि लीयैं। मदन मोद उपजावति हीयैं।।९।।
हँसत परस्पर आँनद-रासी। सुख फूलनि की मनौं वरषा सी।।१०।।

दोहा

भीने नेह सुरंग रँग, अति उदार सुकुँवार।
प्यारी तन अति प्यार सौं, रहत निहार-निहार।।११।।

प्रियतम की सेवा-लालसा चौपाई

देखी प्यारी अति रस ढरी। तबहि लाल इक बिनती करी।।१२।।
हा-हा प्रिये बात इक पाऊँ। रचि अंगनि सिंगार कराऊँ।।१३।।

वृन्दावन के प्रकृति-रम्य वातावरण में यत्र-तत्र मयूर एवं हंस विचरण कर रहे हैं तथा शुक एवं कोकिल आदि गायक पक्षी-गण अपनी रसमयी वाणी का आलाप प्रकट कर रहे हैं।।७।। श्री वन में विकसित पुष्पों की छबि देखते ही बनती है। उन पर भ्रमर-पुञ्ज का मधुमय गुञ्जन हो रहा है।।८।। युगल किशोर की रुचि के अनुकूल बहता हुआ त्रिविध पवन उनके मन में मदन-मोद का जागरण करता है।।९।। आनन्द-धाम युगल परस्पर हास-परिहास कर रहे हैं। उनका मन्द स्मितयुत सम्भाषण ऐसा लगता है, मानो सुख के पुष्पों की वर्षा हो रही हो।।१०।। उदार शिरोमणि, परम सुकुमार प्रेम के आनन्द-रङ्ग में भीगे हुए रसिक-शेखर आत्यन्तिक प्रेम-पूर्वक अपनी प्राण-प्रिया की ओर निहारते हैं, तो एक टक निहारते ही रह जाते हैं।।११।।

प्रियतम ने जब देखा कि आज प्रिया उदार भाव से उल्लसित हैं, तब उन्होंने उनके समक्ष एक विनम्र निवेदन प्रस्तुत किया।।१२।। प्रियतम ने कहा—"हे प्रिये! मैं आपसे एक याचना करता हूँ, आप कृपा-पूर्वक मुझे अपने श्री अङ्गों के शृङ्गार करने की सेवा का सुअवसर प्रदान कीजिये।।१३।।

आतुरता हिय की जब जानी। पिय तन चितै कछुक मुसिकानी।।१४।।
इहि विधि की जब अज्ञा पाई। आँनद फूल न उरहि समाई।।१५।।
मेलि फुलेल सँवारत बारनि। छबि सौं राजति नित्य-विहारिनि।।१६।।
चिकुर-चंद्रिका रुचिर बनाई। गुहत गहर सौं रहे लुभाई।।१७।।
कैसैं कहौं छबि जो उर माँही। इन नैननिं के रसना नाहीं।।१८।।
स्याम सुदेस सच्चिकन सोहैं। लाँबे कच गूँथत मन मोहैं।।१९।।
जानौं कमल बहुत इक ठौरैं। पंकति बाँधि भृंग मनौं दौरैं।।२०।।

प्रियतम के हृदय की सेवा-सम्बन्धी उत्कण्ठा का अनुभव करके श्री प्रिया उनकी ओर देख कर मुस्करा गईं।।१४।। जब प्रियतम ने इस प्रकार प्रिया की सेवा-स्वीकृति प्राप्त कर ली, तो उनका हृदय आनन्द एवं प्रसन्नता से भर गया, तत्पश्चात् वे सेवा में तत्पर हो गये।।१५।। उन्होंने सुगन्धित तैल का अभिमर्दन करके नवल किशोरी की केश-राशि को विधिवत् सँवारा।।१६।। नित्य-विहारिणी श्री प्रिया की छबि को सँवारने के लिए उन्होंने उनकी चिकुर-चन्द्रिका को ककही से निर्वारित करके बड़ी रुचि से गुम्फन किया। मञ्जुल केश-राशि का गुम्फन करते समय प्रियतम का रस-लोलुप मन सच्चिकन केश-राशि पर लुब्ध होकर रह गया।।१७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की उस छबि का कैसे वर्णन करूँ, जो मेरे हृदय में बसी है ? मेरे इन नेत्रों की जिह्वा तो है ही नहीं।।१८।। प्रिया के लम्बमान्, सघन, श्याम, सच्चिकन, सुहावने एवं कुञ्चित केश गुम्फन-काल में प्रियतम का मन मोहित कर रहे हैं।।१९।। ऐसा लगता है, मानो बहुत से कमल एक ही स्थल पर एकत्रित हैं और उन कमलों पर भ्रमरों का समुदाय पङ्क्ति-बद्ध होकर धावमान् है।।२०।।

प्रियतम द्वारा लाड़िली जी की शृङ्गार-सेवा दोहा

गुननिधि अंग सुवास निधि, नवल छबीली नारि।
सौरभ की मूरति मनौं, रची है रूप सँवारि।।२१।।

चौपाई

सीस फूल छबि यौं उर आई। रवि सुहाग कौ प्रगट्यौ माई।।२२।।
मनिमय बैंदी रुचिर बनाई। रूप-दीप मनौं सोभा पाई।।२३।।
भाइनि भाइ भौंह सुकुँवारी। पिय पुतरी जहाँ रहैं रखवारी।।२४।।
स्रवननि तरल तरौना झलकैं। निरखत लाल परत नहिं पलकैं।।२५।।
पतरी अलक एक छुटि आई। पियमन कौं जनौं पासि चलाई।।२६।।
बंक बिसाल नैंन अनियारे। उज्ज्वल अरुन सहज कजरारे।।२७।।

नित्य नूतन छबि-धाम किशोरी, गुणों की निधि एवं सौरभ-निधि हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग से दिव्य गन्ध की लपटें छूटती रहती हैं। ऐसा लगता है मानो इस रूप-निधि को किसी ने सौरभ-प्रतिमा के रूप में सँवार कर रचा हो।।२१।। प्रिया के सीमन्त भाग पर सीस-फूल की छबि ऐसी शोभा देती है, मानो उनके ललाट पर सौभाग्य-सूर्य का प्राकट्य हुआ हो।।२२।। ललाट-पटल पर सुन्दर मणिमय बैंदी रूप के दीप की भाँति शोभित है।।२३।। सुकुमारी प्रिया की भृकुटियाँ, सौन्दर्य शोभा एवं भाव-भङ्गिमा की प्रतिमूर्ति हैं, जहाँ प्रियतम की पुत्तलिकाओं का प्रहरी के रूप में निवास है।।२४।। सुभग युगल कर्णों पर झलमलाते हुए चञ्चल ताटङ्कों की छबि का अवलोकन करके रसिक प्रियतम की पलकें गिरना भूल जाती हैं।।२५।। श्री प्रिया के कपोल पर एक झीनी अलक (जो केश-राशि से विलग होकर लटकती हुई शोभित है,) को देखकर ऐसा लगता है, मानो रसिक प्रियतम के मन को फँसाने के लिए पाश फेंका गया हो।।२६।। नवल किशोरी के विशाल आयत नेत्र, बङ्क और नुकीले हैं एवं उज्ज्वल (श्वेत), अरुण एवं सहज कजरारे हैं।।२७।।

सुठि सुढार पानिप मिति नाहीं। चंचल अंचल में न समाहीं।।२८।।
नासा बेसरि जगमग रही। छबि की सींव परति नहिं कही।।२९।।
अधर-बिंब बंधूक पँवारी। दसन झलक पर दामिनि वारी।।३०।।

दोहा

अति अनूप वर चिबुक पर, स्याम-बिंदु सुख देत।
मानौं मोहन-मन मधुप, बदन-कंज-रस लेत।।३१।।

चौपाई

नीलांबर छबि ऐसी पाई। रैंनि मनौं दिन के सँग आई।।३२।।
तामें अँगिया अरुन सुधारी। यातैं उपमा और बिचारी।।३३।।
मनौं सिंगार मेरु रह्यौ छाई। जनु अनुराग धर्‌यौ बिच आई।।३४।।

उन नेत्रों का सुढार सौन्दर्य एवं उनके लावण्य की कोई परमिति नहीं है। वह चञ्चल नयन पलकों के अञ्चल में आबद्ध नहीं किये जा सकते।।२८।। ललित नासिका के अधोभाग में झलमलाती बेसरि की छवि-सीमा वाणी का अविषय है।।२९।। प्रिया के सुकोमल अधर-पल्लवों ने विम्बा-फल एवं बन्धूक-पुष्प को तिरस्कृत कर दिया है। उनकी दशन-द्युति पर दामिनी न्यौछावर है।।३०।। अतिशय अनुपम ललित चिबुक पर शोभित श्याम रङ्ग की बिन्दी प्रियतम के मन के लिए अमित सुखदायी है; जिसका दर्शन करके ऐसा लगता है, मानो मन मोहन का मन ही भ्रमर बन कर प्रिया के मुख-कमल का रस-पान कर रहा हो।।३१।। श्री ललित लाड़िली की ललित देहयष्टि पर शोभित नीलाम्बर की छबि ऐसी प्रतीत होती है, मानो उज्ज्वल दिवस के साथ रात्रि का आलिङ्गन हो रहा हो।।३२।। गौराङ्गी प्रिया के श्रीअङ्ग पर सुसज्जित अरुणिम कञ्चुकी ऐसी उपमित है, मानो स्वर्णगिरि के मध्य भाग पर मूर्तिमान् अनुराग विराजमान् हो।।३३-३४।।

कुंदन की दुलरी बनी गरैं। फबी पोत विवि मोतिनु-लरैं।।३५।।
रतननि खच्यौ पदिक अति सोहै। ताकी दुति पर दिनकर को है।।३६।।
भुज-मृनाल छबि उदर बखानौं। रस-फल रूप-लता लगे मानौं।।३७।।
चूरी स्याम करनि फबि रहीं। तिनकी उपमा पावत नहीं।।३८।।
पहुँचिनु के लटकन बने ऐसैं। भ्रमत भँवर कमलनि पर जैसैं।।३९।।
गोरी अँगुरिनु की छबि जोहैं। मिहँदी रँग भीनी अति सोहैं।।४०।।

दोहा

चन्द्रहार छबि कहा कहौं, पानिप मोतिनु-हार।
मनौं रूप अरु प्रेम की, आइ मिलीं द्वै धार।।४१।।

चौपाई

सरसी-नाभि सुदेस सुहाई। पिय मन हंस बसत तहाँ माई।।४२।।

कण्ठ-देश पर कुन्दन की जाज्वल्यमान् दुलरी एवं मोतियों की युगल -लड़ी पोत-पुञ्ज के साथ अत्यन्त फबी है।।३५।। विविध रत्नों से खचित पदिक वक्षस्थल पर शोभित है, जिसकी आभा के समक्ष सूर्य की प्रभा भी तुच्छ है।।३६।। सुकुमाराङ्गी नवल-किशोरी की मृणालवत् भुजाएँ एवं युगल उरोजों की छबि ऐसी प्रतीत होती है, मानो रूप की लता में रस के फल लगे हों।।३७।। गौर कलाइयों पर श्याम-वर्ण की चूड़ियाँ बहुत फब रही हैं, जिनकी उपमा खोजे नहीं मिलती।।३८।। वहीं समीप पहुँचियों के लटकन ऐसे शोभित हैं, मानो कर-कमलों पर भ्रमर मँडरा रहे हों।।३९।। गौर-वर्ण की अङ्गुलियों की छबि देखते ही बनती है, जो मेंहदी के रङ्ग से अनुरञ्जित् होकर अतिशय शोभा को प्राप्त हैं।।४०।। छवि-धाम किशोरी के वक्षस्थल पर विराजित चन्द्रहार एवं मुक्ता-हारों का लावण्य कहने में नहीं आता। ऐसा लगता है, मानो रूप एवं प्रेम की दो धाराएँ मिलकर आज एक हो रही हों।।४१।। श्री प्रिया की गम्भीर नाभि एक मनोरम कुण्डिका (सरसी) है, जहाँ प्रियतम का मन-मराल सदैव निवास करता रहता है।।४२।।

त्रिवली प्रीतम प्रान-अधारा। मनौं रूप रस गुन की धारा।।४३।।
रोम-राजि सोभा यौं दीनी। मनौं रेखा रति-पति की कीनी।।४४।।
सूक्षम कटि पृथु जघन सुढारा। अति रोचक किंकिनी झनकारा।।४५।।
जेहरि सुमिलि अनूप विराजै। नूपुर अद्भुत रागिनी बाजै।।४६।।
तिन पर बंसी बारत प्यारौ। 'हित ध्रुव' रीझि अपनपौ हारौ।।४७।।
चरन-कमल जावक रँग भीने। प्रीतम चित्र प्यार सौं कीने।।४८।।
परम रसिक रस में सहरावत। कबहूँ लै हिय-नैंन लगावत।।४९।।
पिय मन बसत रहत तेहि ऐंना। अटक्यौ नागर नैननिं-सैंना।।५०।।
कोक-कला बरनी हैं जेती। प्रिया-चरन सेवत रहैं तेती।।५१।।

उदरस्थ त्रिवली-रेखा प्रियतम के प्राणों का आधार ही नहीं, अपितु वह रूप-रस एवं दिव्य गुण-गणों की धारा है।।४३।। रोमावलि की शोभा ऐसी प्रतीत होती है, मानो रति-पति कामदेव ने सौन्दर्य पराकाष्ठा की रेखा खींच दी हो।।४४।। क्षीण कटि, सुपुष्ट एवं सुढार जघन प्रान्त पर मणिमय किङ्किणी की झङ्कार अत्यन्त रुचिकारक है।।४५।। श्री चरणों में सुमिल, सुढार, अनुपम जेहरि हैं और मणिमय नूपुरों का स्वर अद्भुत रागनियों का गान है।।४६।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के नुपूर-रव पर रीझ कर प्रियतम अपनी मधुवर्षिणी वंशी तो न्यौछावर करते ही हैं, अपितु अपना आपा भी न्यौछावर कर देते हैं।।४७।। अलक्तक-रङ्गरञ्जित् प्रियाचरण-कमलों को प्रियतम ने अत्यन्त प्यार से विविध चित्रों द्वारा अलङ्कृत किया है।।४८।। परम रसिक प्रियतम रस-मग्न हुए कभी उन चरणों को सहलाते हैं, और कभी अपने हृदय एवं नेत्रों से लगा कर कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं।।४९।। परम चतुर प्रियतम का रसिक मन प्रिया के नयन-इङ्गितों से अटका हुआ सदैव उनके चरणों में ही विश्राम पाता है।।५०।। शृङ्गार शास्त्रों में दाम्पत्य-रति सम्बन्धी कोक-कलाओं के जितने भी विस्तृत वर्णन हैं, वे समस्त कोक-कलायें नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया के चरणों की दासी बनी हुईं, उन श्री पदों का सेवन कर अपने आप को धन्य- धन्य अनुभव करती हैं।।५१।।

नख-सिख लौं अति कुँवरि सिंगारी। मानौं सोभा की फुलवारी।।५२।।
देखि छबीली भाँति लुभाने। लाल तहाँ बिनु मोल बिकाने।।५३।।

दोहा

बाढ़ी छबि सब भूषननि, अद्‌भुत भाँति अनूप।
गहने कौ गहनौं भयौ, नवल नागरी-रूप।।५४।।

शृङ्गार-प्रयोजन चौपाई

यातें अंगनि भूषन बाने। ताके हेत दोऊ उर आने।।५५।।
चितवत लाल बिवस ह्वै जाई। यातें राखे अंग दुराई।।५६।।

अस्तु, ऐसी रूप-लावण्य, गुण-धाम, सहज सौन्दर्य-राशि सुकुमारी नवल-किशोरी का प्रियतम ने नख-शिख शृङ्गार किया, मानो उन्होंने शोभा की पुष्प-वाटिका सजा दी।।५२।। और जब प्रियतम ने प्रिया की नख-शिख शृङ्गारमयी छवि का दर्शक की भाँति अवलोकन किया, तो उनका मन छबि से लुब्ध हो गया। वे बिना मोल बिक गये।।५३।। प्रिया का रूप एवं छबि का सामीप्य प्राप्त करके भूषणों को भी अद्भुत एवं अनुपम शोभा प्राप्त हो गयी, मानो नव-नवायमान् रूप-लावण्य-धाम किशोरी का रूप भूषणों के लिए भी भूषण हो गया।।५४।।

श्री ध्रुवदास जी प्रश्न उठाते हैं कि सौन्दर्य-राशि नवल किशोरी प्रिया जब स्वयं भूषणों की भूषण हैं, तब उन्हें प्राकृत आभूषणों से शृङ्गारित करने का क्या प्रयोजन है ? इसका वे स्वयंमेव समाधान देते हैं कि सहज सौन्दर्य-मयी प्रिया के श्रीअङ्गों को प्राकृत भूषणों से शृङ्गारित करने के दो प्रयोजन हैं।।५५।। प्रथम यह कि प्रिया के रूप-लावण्य मय श्रीअङ्गों का दर्शन कर रिझवार प्रियतम पदे-पदे सुध-बुध खो कर विवश हो जाते हैं, इसलिये प्रिया के श्री अङ्गों को सखियाँ भूषणों से ढाँप कर छिपाये रखना चाहती हैं।।५६।।

दूजे सखियनि यौं पहिरावैं। सेवा हित के सुखहिं बढ़ावैं।।५७।।
अंगनि के भूषन यौं भये। मनौं मनिनु के ढँपना दये।।५८।।
रूप-माधुरी सहजहि राजै। छिन-छिन औरै-और विराजै।।५९।।

दोहा

ऐसौ रूप प्रकाश तहाँ, नख की सम नहिं भान।
तेहि ठाँ उपमा दीप की, धरिबौ बड़ौ अयान।।६०।।

चौपाई

जहाँ लगि दुति अरु कांति बखानी। कुँवरि अंग देखत सकुचानी।।६१।।
छबि ठाढ़ी आगैं कर जोरैं। गुन की कला चौंर सिर ढोरैं।।६२।।

द्वितीय तत्सुखमयी हित-चिन्तक सखियाँ अपनी प्रीति एवं सेवा-सुखों की अभिवृद्धि के लिए उन्हें भूषण धारण कराती हैं।।५७।। प्रिया अङ्गों में धारण कराये गये वे सब भूषण ऐसे लगते हैं, मानो किसी दिव्य वस्तु को मणियों के ढक्कनों से ढाँप दिया गया हो।।५८।। ऐसी सहज लावण्यमयी प्रिया की रूप-माधुरी प्रतिक्षण नव-नव भाव से सदा वर्द्धित होती रहती है।।५९।। ऐसा अद्भुत रूप और उसका प्रकाश ! जिसके पद-नख की समता भुवन-भास्कर सूर्य भी नहीं कर सकता, वहाँ दीपक आदि की उपमा प्रस्तुत करना अपनी अज्ञता का ज्ञापन ही सिद्ध होगा।।६०।। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में जहाँ तक द्युति और कान्तियों के प्रकाश एवं तेज का वर्णन है, वे सब कान्ति, द्युति, प्रकाश आदि कुँवरि किशोरी की अङ्गच्छवि का दर्शन करके सङ्कुचित एवं लज्जित हो जाते हैं।।६१।। मूर्तिमान् छवि, प्रिया के सम्मुख कर-बद्ध खड़ी रहती है। गुण एवं उनकी ललित कलाएँ दासियों की भाँति किशोरी के ऊपर चँवर डुलाती रहती हैं।।६२।।

चित्र भई तेहि ठाँ चतुराई। पंगु भई चितवत चपलाई।।६३।।
छ्वै न सकत अंगनि मृदुताई। अति सुकुँवार कुँवरि तनु माई।।६४।।
यातें उपमा कछु उर आई। बात खोज बिनु जात न पाई।।६५।।
रति इक हेम छबिहि उर आनैं। ताहि समुझि सुमेरु पहिचानैं।।६६।।

दोहा

अंग कांति की छबि छटा, ताकी छटा सुदेस।
उपमा सब जग की भईं, तेहि सोभा कौ लेस।।६७।।

चौपाई

सहज माधुरी अंगनि वरषै। पल-पल प्रीतम मन आकरषै।।६८।।

स्वयं चातुरी भी जाड्य-भाव से चित्र सी लिखी रह जाती हैं। साक्षात् चञ्चलता पङ्गु होकर प्रिया के नेत्र-चाञ्चल्य को देखती रह जाती है।।६३।। कोमलता अपने आप को कठोरता के रूप में अनुभव करके, प्रिया के विलक्षण कोमल अङ्गों का स्पर्श करने में डरने लगती है।।६४।। हे सखि! ऐसी सुकुमारी हैं, हमारी किशोरी कि अन्यान्य उपमा से उनके रूप को उपमित करना असम्भव है।।६५।। किन्तु समझने के लिये कहा जाता है कि एक रत्ती-मात्र स्वर्ण-छवि का दर्शन करके स्वर्ण-निर्मित सुमेरु पर्वत की परिकल्पना की जा सकती है, अर्थात् प्राकृत उपमाओं से वृन्दावनेश्वरी स्वामिनी श्री राधा की अप्राकृत सौन्दर्य-राशि का अनुमान सहृदयों के लिए सम्भव है।।६६।। श्री लाड़िली जू के दिव्य श्री अङ्गों की अद्भुत कान्ति, छवि, छवि-विलास तथा उस छटा का सौन्दर्य सब प्राकृत वाणी से परे हैं, अतएव जगत् की स्थूल उपमाएँ उस अवर्णनीय शोभा का लेश किंवा अंश-मात्र होकर रह गयी हैं।।६७।। इस प्रकार श्री प्रिया के अङ्गों से, सहज रूप से माधुर्य का नित्य अभिवर्षण होता रहता है, जो प्रतिपल प्रियतम के मन को आकृष्ट करता रहता है।।६८।।

देखत अद्भुत भाँति अनूपहि। पिय मन परयौ प्रेम के कूपहि।।६९।।
चितै रूप गुन अलक-निकारौ। हित सौं लाइ लयौ उर प्यारौ।।७०।।
अधरनि रस सींच्यौ जब प्यारी। तनकी सुधि तब जाइ सँभारी।।७१।।
बढ़्यौ केलि-रस-सिंधु अभंगा। हाव-भाव तहाँ उठत तरंगा।।७२।।
पायौ रूप अंबु निजु ऐंना। चंचल मीन फिरत तहाँ नैंना।।७३।।
रंग भरे पट अंग बिसारे। रस-बिनोद भींजे दोउ प्यारे।।७४।।
अति विचित्र सबही बिधि दोऊ। रस-विहार में घटि नहिं कोऊ।।७५।।
विद्या कोक कला जिती कहीं। तेऊ तहाँ भूलि सब रहीं।।७६।।
तेहि सुख रंग परे सुनि सजनी। जानत नहिं कित वासर रजनी।।७७।।

ऐसे प्रिया रूप की अद्भुत एवं अनुपम नित्य नूतन रूप-माधुरी का अवलोकन करके रसिक प्रियतम का मन प्रेम के कूप में निपतित हो गया।।६९।। तब कृपा-मूर्ति प्रिया ने अपनी अलक रूपी केश-राशि का फन्दा बना कर रूप-कूप में गिरे हुए प्रियतम के मन को बाहर निकाला और उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।।७०।। तत्पश्चात् प्रिया ने अधरामृत रस से उन्हें अभिसिञ्चित् करके देहानुसन्धान कराया।।७१।। इस प्रकार रसिक युगल की अजस्र-केलि की अभिवृद्धि में हाव-भाव की लोल-लहरियाँ उठने लगीं।।७२।। चञ्चल नेत्र रूपी मछलियों को अपना सहज क्रीड़ा क्षेत्र रूप का समुद्र मिल गया।।७३।। केलि के आनन्द में डूबे हुए रसिक युगल अपने अङ्ग-वस्त्रों को विस्मृत कर चुके हैं। रस के विनोद में भींगे हुए रस-विधाओं में विदग्ध विचित्र रसिक-युगल रस-विहार में परम निष्णात हैं। इन दोनों में कोई न्यून नहीं है।।७४-७५।। शृङ्गार शास्त्रों में वर्णित दाम्पत्य- रति की विद्या एवँ कलायें भी यहाँ का रस-विहार-विनोद अवलोकन करके भूली सी रह जाती हैं।।७६।। हे सखि ! ऐसे लोक-विलक्षण सुखानन्द में निमग्न युगल काल- ज्ञान से परे हो जाते हैं। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि किधर दिन होता है, किधर रात्रि।।७७।।

दोहा

मिटत न तृषा मनोज की, करत मधुर रस-पान।
जैसैं निवरत खेल नहिं, जहाँ खिलार समान।।७८।।
हाव-भाव हीरा भये, हेम नील मनि अंग।
जरे जु कुदंन प्रेम 'ध्रुव', पानिप झलक अनंग।।७९।।

षट्-ऋतु वर्णन

दोहा

षटरितु बरनौं जुगल हित, बहु विधि करत विहार।
रितु-रितु कौ सुख कहौं कछु, अपनी मति अनुसार।।८०।।

सवैया

खेलत कामिनी कंत बसंत, बढ्यौ मन मोद विनोद अनंगा।
तैसौ रह्यौ बन फूलनि फूल, रँगे दोउ प्रीतम प्रेम-सुरंगा।।
प्रिया मुख-चंद की ओर किसोर, चकोर भये पिवैं रूप तरंगा।
सखी चहुँ कोद विलोकत हैं 'ध्रुव', आनँद कौ सुख सार अभंगा।।८१।।

कोक-केलि का मधुर रस पान करते हुए भी रसिक युगल की प्रेम -पिपासा शान्त नहीं होती, जैसे द्यूत-क्रीड़ा में यदि दोनों खिलाड़ी समान गुण धर्ममय हों, तो उस क्रीड़ा का अन्त होना असम्भव प्राय है।।७८।।श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस रति-विलास में द्रुत स्वर्ण एवं नीलमणिवत् युगल-अङ्गों के हाव-भाव ही हीरक हैं, जो प्रेम रूपी कुन्दन में जड़े हुए हैं, जिसका अनङ्ग रूपी लावण्य नित्य निकुञ्ज वृन्दावन देश में सदैव झलकता रहता है।।७९।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब मैं रसिक युगल ललित लाड़िली-लाल के षट्-ऋतु विहार में जो बहुत प्रकार का है, अपनी बुद्धि के अनुसार प्रत्येक ऋतु का सुख-विलास वर्णन करूँगा।।८०।। रमणीय कामिनी श्री राधा एवं उनके रसिक कान्त श्याम-सुन्दर आज वासन्तिक-क्रीड़ा में रत हैं। उनके

चौपाई

रितु बसंत आई सुखदाई। भयौ आनंद सबनि मन भाई।।८२।।
हरित अरुन दल अंकुर नये। जहाँ-तहाँ फूल सुरंगित भये।।८३।।
नवल जुगल सुख हेत बिचार्‌यौ। मानौं वृंदा विपिन सिंगार्‌यौ।।८४।।
फूली बेलि तरुनि लपटानी। मानौं तिय पिय सौं रति मानी।।८५।।
तन मन फूल कही नहिं जाई। फूले फूल जहाँ-तहाँ माई।।८६।।
सुक पिक वानी सुख सौं सानी। मानौं कहत हैं मैंन-कहानी।।८७।।
इक द्रुम तौ सब फूलनि छाये। मानौं अतन-वितान तनाये।।८८।।

मनों में वासन्तिक अनङ्ग-केलि का उत्साह, उल्लास एवं विनोद वृद्धि को प्राप्त हो रहा है तथा वृन्दावन भी युगल रसिक के मनोनुकूल रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों से पुष्पित है। आज युगल प्रियतम प्रेम के सुरङ्ग रङ्ग से अनुरञ्जित हो रहे हैं। रसिक किशोर लाल चकोर बने हुए श्री प्रिया के मुख-चन्द्र की रूपामृत-तरङ्गों का अनवरत निर्निमेष पान कर रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियाँ अभङ्ग रूप से वसन्त के आनन्द सुख सर्वस्व को चारों ओर से घिर कर अवलोकन कर रही हैं।।८१।। सुख-दात्री वसन्त-ऋतु के आगमन से युगल का समस्त परिकर आनन्दित हो उठा है।।८२।। लता-द्रमों में अरुण-वर्ण के नये-नये दल एवं अङ्कुर उगने लगे हैं। सर्वत्र हरीतिमा का विस्तार हो रहा है। यत्र-तत्र सुरञ्जित पुष्प विकसित हो उठे हैं।।८३।। ऐसा लगता है मानो नवल युगल के सुख का चिन्तन करने वाली वृन्दासखी ने वृन्दावन को वहु-विधि सजाया सँवारा हो।।८४।। पुष्पित लतायें तरुण तरुगण से आलिङ्गित हैं। ऐसा लगता है, मानो प्रिया ने अपने प्रियतम से रति स्वीकार कर ली हो।।८५।। समस्त परिकर के तन एवं मन में व्याप्त प्रसन्नता वर्णन में नहीं आती। सर्वत्र फूले हुए फूल ही दिखाई देते हैं।।८६।। कुहकते हुए तोते और कोकिलाओं की सुख-सम्वलित मधुमयी वाणी मानो काम-कहानी कह रही हों।।८७।। कोई एक द्रुम तो केवल पुष्पों से ही लदे हैं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो तनुहीन कामदेव ने प्रेम का मण्डप तान दिया हो।।८८।।

सुरँग सुगंध गुलाल उड़ायौ। मनौं अनुराग सबनि पर छायौ।।८९।।
तेहि ठाँ खेल बढ़्यौ अति भारी। चहुँ दिस सखी मध्य पिय-प्यारी।।९०।।
छिरकत हँसत अधिक सुख देहीं। बिच-बिच अधर-सुधा-रस लेहीं।।९१।।
कुंकुम अरगजा के रस भीने। रस विहार में परम प्रवीने।।९२।।
कोमल सेज रची सुख सीवाँ। तापर राजत दै भुज-ग्रीवाँ।।९३।।
झूलत दोउ मिलि सुरत हिंडौरैं। चंचल चपल स्याम तन गौरैं।।९४।।
चितै रहत प्यारी मुख ओरैं। भाइनि भरी नैंन की कोरैं।।९५।।
छिन-छिन प्रीतम कौ चित चोरैं। बाजत किंकिनि थोरैं-थोरैं।।९६।।

और जब वसन्त-क्रीड़ा के समारम्भ में चटकीला सुगन्धित लाल-लाल गुलाल उड़ने लगा, तो ऐसा लगा मानो सब पर अनुराग छा गया हो।।८९।। इस प्रकार मधुमय सुरम्य स्थल पर वासन्तिक-क्रीड़ा वृद्धि को प्राप्त होने लगी। रसिक शेखर प्रिया-प्रियतम को मध्य में करके सखियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया।।९०।। युगल किशोर परस्पर में रङ्ग छिड़कते हुए, हास्य-विनोद करते परिकर को परम सुख का दान करने लगे। वे वसन्त-क्रीड़ा के बीच-बीच में अधर- सुधा रस का पान करते हुए अपूर्व शोभा को प्राप्त हुए।।९१।। रसमय विहार में परम-प्रवीण युगल आज केशर, अरगजा और चन्दन के रस-रङ्ग में सराबोर हो गये।।९२।। तत्पश्चात् रङ्ग-गुलाल की क्रीड़ा से विरत होकर धौत-वस्त्र धारण करके सखियों के द्वारा रचित सुकोमल सुखमयी शय्या पर परस्पर गल-बहियाँ देकर विराजमान हुए।।९३।। परम चञ्चल श्याम-सुन्दर एवं परम चपला गौराङ्गी-प्रिया आलिङ्गित हो प्रेम के हिंडोरे में झूलने लगे।।९४।। उस समय प्रियतम अपनी भाव-भरी नयन कोरों से प्रिया मुख की ओर अवलोकन करते अधिक छवि को प्राप्त हुए।।९५।। प्रिया क्षण-क्षण में प्रियतम के चित्त का अपने नयन-कटाक्षों से अपहरण करने लगीं। लीला-विलास में युगल की कटि-किङ्किणी मन्द मधुर स्वर में बजती शोभित हुई।।९६।।

रति विलास रस ऐसौ कीनौं। मनमथ कोटि मान हरि लीनौं।।९७।।

दोहा

रूप सखी कौ धरैं 'ध्रुव' सेवत दिनहिं बसंत।
छिन-छिन रुचि लै दुहुँनि की, फूलत फूल अनंत।।९८।।

ग्रीष्म ऋतु वर्णन सवैया

ग्रीषम की रितु जानि सहेलिनु, कंज कपूर की कुंज बनाई।
चंदन चंद के खंभ रचे दल, कोमल रंग सुरंगनि छाई।।
उज्वल सेज सुरंग सुहावनी, वारि गुलाब सौं लै छिरकाई।
राजत हैं 'ध्रुव' लाड़िली-लाल, बिनोद कौ मोद बढ्यौ अधिकाई।।९९।।

रसिक युगल के इस अनुपम रस-विलास ने कोटि-कोटि कामदेवों के मान का मर्दन कर उनके मनों का हरण कर लिया।।९७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि वृन्दावन में रस-साम्राज्ञी प्रिया की सखी (सेविका) का रूप धारण करके मूर्त्तिमान् वसन्त सदैव निवास करता है और प्रतिक्षण युगल की रुचि को निरखता-परखता विकसित पुष्पों के रूप में अनन्त प्रसन्नता एवं उल्लास का विस्तार करता रहता है।।९८।।

ग्रीष्म-ऋतु का आगमन जानकर तत्सुख-परायणा सहचरियों ने कर्पूर सिञ्चित् कमल पुष्पों की कुञ्ज रचना की, जिसमें चन्द्रमा की भाँति उज्ज्वल एवं शीतल चन्दन के स्तम्भों का आधान करके कुञ्ज में कोमल, सुरञ्जित एवं उज्ज्वल शय्या की रचना करके गुलाब जल से उसे अभिसिञ्चित् किया। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब उस शय्या पर सखियों के प्राणाराध्य ललित लाड़िली-लाल विराजमान् हुए, तब आनन्द, उल्लास एवं आमोद-प्रमोद की कोई सीमा नहीं रह गयी।।९९।।

चौपाई

आई ग्रीषम सोभा ऐंना। अंगनि छबि देखत भरि नैंना।।१००।।
झीनें बसन झलक अति तन की। पूरन भई आस सब मन की।।१०१।।
उज्वल फूलन कुंज सुहाई। उज्वल कोमल सेज रचाई।।१०२।।
फूलनि के रचि हार बनाये। लै कपूर जल सौं छिरकाये।।१०३।।
जहाँ-तहाँ उज्वल बसन बिछाये। जलजनि के भूषन पहिराये।।१०४।।

दोहा

उज्वलता उज्वल सहज, उज्वल भाँति अनूप।
बैठे उज्वल सेज पर, उज्वल प्रेम सरूप।।१०५।।

चौपाई

पुट कपूर दै चंदन गार्‌यौ। नव गुलाब लै तामें डार्‌यौ।।१०६।।

जब शोभा-धाम ग्रीष्म-ऋतु का आगमन हुआ तो युगल के मनोहारी परम रम्य लावण्य-पूर्ण श्रीअङ्गों की स्वच्छन्द-छबि के दर्शन का नेत्रों के लिए मानो भाग्योदय हो गया।।१००।। झीने वस्त्रों में रमणीय तनु की झिलमिली झलक से सबके मनों की अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं।।१०१।। स्थान-स्थान पर सेवा-सुखाभिलाषी सखियों ने विविध पुष्पों से कुञ्जें बनाईं एवं उनमें उज्ज्वल एवं सुकोमल शय्या आस्तरित की।।१०२।। फूलों के हार बनाये एवं कर्पूर मिश्रित जल से उन्हें अभिसिञ्चित् किया।।१०३।। यत्र-तत्र उज्ज्वल वस्त्रों के आस्तरण बिछाये एवं युगल को कमल पुष्पों के आभूषण धारण कराये ।।१०४।। उज्ज्वल प्रेमस्वरूप युगल सहज उज्ज्वल हैं, उनका प्रत्येक स्वरूप, विहार-विलास सभी उज्ज्वल है। उनका वेश, परिवेष मूर्तिमान् उज्ज्वलता है। ऐसे परमोज्ज्वल ललित लाड़िली-लाल उज्वल सहचरी-गण द्वारा निर्मित उज्ज्वल शय्या पर विराजमान हैं।।१०५।। सहचरियों ने कर्पूर का पुट देकर चन्दन-पङ्क निर्मित किया उसमें गुलाब के शीतल जल का सम्मिश्रण किया।।१०६।।

सबै सखी पहिरैं सित सारी। तैसेइ भूषन अति रुचिकारी।।१०७।।
बहत है सीतल मंद समीरा। सीरौ अदन-पान बर नीरा।।१०८।।

दोहा

सियराई सेवा करै, चितवति नैंननिं कोर।
खान-पान सीतल सबै, लियैं रहति निसि-भोर।।१०९।।

पावस ऋतु वर्णन सवैया

स्याम घटा उमड़ी चहुँ ओरनि, पावस की रितु आई सुहाई।
नाँचत मोर मयूरी बिनोद सौं, आनँद की बरसा बरसाई।।
कौंधै जहाँ-तहाँ दामिनी कामिनी, प्रीतम अंक रही दुरि माई।
कैसैं कही 'ध्रुव' जाति है सो छबि, देखत नैंन रहे हैं लुभाई।।११०।।

समस्त सखियों ने श्वेत वर्ण की साड़ियाँ धारण कीं, तदनुरूप रुचिदायक भूषण धारण किये।।१०७।। ग्रीष्म निवारणकारी शीतल पवन मन्द गति से प्रवाहित हुआ तथा सखियों ने भोजन पान सभी कुछ शीतल ही प्रस्तुत किये।।१०८।। वृन्दावन ऐसा धाम है, जहाँ श्री प्रिया-लाल के नयनों की ओर देखती हुई, उनकी प्रसन्नता की प्रतीक्षा एवं लालसा करती हुई मूर्तिमान् शीतलता खान-पान आदि की शीतल सामग्री लिये अहर्निश सेवा में प्रस्तुत रहती है।।१०९।।

पावस की सुहावनी ऋतु के आते ही आकाश में चारों ओर से काली-काली घटाएँ उमड़ पड़ी। आनन्द मोद में भरे हुए मयूर एवं मयूरियों की थिरकन से आनन्द की वर्षा होने लगी। यत्र-तत्र विद्युल्लताओं की चमकन से भयभीत हुई कामिनी प्रिया की प्रियतम के अङ्क में छिप जाने की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि पावस की इस छवि को देख कर सखियों के नेत्र लुब्ध होकर पलकें मारना भूल गये हैं।।११०।।

चौपाई

पावस रितु जब आइ तुलानी। भाँति अनूप दुहुँनि मन मानी।।१११।।
स्याम सचिक्कन घटा सुहाई। उमड़ि-उमड़ि चहुँ दिस ते आई।।११२।।
चमकत चपला कही न जाई। सकुचि कुँवरि पिय-उर लपटाई।।११३।।
गरजन-घन सुनि पवन-झकोरिनिं। आनँद बढ़्यौ मोर अरु मोरिनिं।।११४।।
रंग-कुंज में सेज सहानी। रचि-रचि सखियनि हेत सौं बानी।।११५।।
सोभित भूषन-बसन सहानें। दूलहु-दुलहिनि रँग में सानें।।११६।।
नव किसोर मन मन अनुरागे। मदन मोद आनँद रस पागे।।११७।।
रिमझिमि-रिमझिमि बूदैं परैं। रंग-हिंडोरैं झूलत खरैं।।११८।।
तेहि छिन कुँवरि कछुक मन डरैं। लपटि जात प्रीतम के गरैं।।११९।।
तिनके छल-बल कहे न जाँहीं। अति विचित्र दोउ विद्या माँहीं।।१२०।।

पावस ऋतु के आगमन की सन्निकटता से निर्मित वृन्दावन का अनुपम वातावरण रसिक युगल के मन को बड़ा प्रिय लगा।।१११।। सरस जलपूरित श्याम-श्याम घटाओं की उमड़-घुमड़ चारों दिशाओं से होने लगी।।११२।। चमचमाती चपला की अवर्णनीय चमक, जिसको देख-देख कर भयभीत हुई भीरु प्रिया प्रियतम के हृदय से बारम्बार लिपटने लगीं।।११३।। मेघों की गर्जना एवं पवन के झकोरों से मयूर एवं मयूरियों का आह्लाद बढ़ने लगा और वे थिरक-थिरक कर नाचने लगे।।११४।। इधर सखियों ने रङ्ग-कुञ्ज में अतिशय प्रीति-पूर्वक युगल के लिए सहानी सेज का निर्माण किया।।११५।। जिनके वस्त्राभूषण सहाने हैं, प्रेम-रङ्ग में सने हुए वे श्यामा-श्याम नव किशोर वर-वधू के परिवेश में अनुराग-रञ्जित हुए मदन-केलि के आनन्द मोद में मग्न होने लगे।।११६-११७।। जब रिमझिम-रिमझिम बूँदों की फुहारों से भींजते हुए रङ्ग हिंडोरे में झूलते हैं, तब सुकुमारी भीरु प्रिया डरती हुई प्रियतम के कण्ठ से लिपट जाती हैं।।११८-११९।। इस प्रकार सकल विद्या-विचक्षण रसिक युगल जिस रीति से छल-बल-पूर्ण रस-क्रीड़ाएँ करते हैं, उसका वर्णन असम्भव है।।१२०।।

दोहा

कुँवरि-रूप बरसत दिनहिं, पिय-चातक न अघात।
कहा कहौं या प्रेम की, सुनि 'ध्रुव' उलटी बात।।१२१।।

शरद ऋतु वर्णन सवैया

खेलत रास विनोद बिहार, निसा उजियारी महा सुख दैंनी।
सखीनु के मंडल मध्य बने दोउ, गावत सुंदर सारँग नैंनी।।
राग जम्यौ बजैं भूषन अंगनि, चंदहि भूली है आपनी गैंनी।
सखी रहीं भींजि तहाँ रँग में 'ध्रुव', रैंनि भई मनौं प्रेम की रैंनी।।१२२।।

चौपाई

सुखद सरस रितु सरद सुहाई। सखियनि मानौं निधि सी पाई।।१२३।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नवल किशोरी श्रीराधा का रूप-लावण्य ही पावस-कालीन वर्षा है, जो वरषती ही रहती है, किन्तु नित्य अतृप्त तृषित चातक रूपी प्रियतम कभी अघाते नहीं। प्रेम का स्वरूप-धर्म बड़ा विलक्षण है, लोक विपरीत है। मैं सामान्य व्यक्ति उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ।।१२१।। महासुखदात्री शुभ्र चन्द्रिकामयी रात्रि में रास-विहार की विनोदमयी क्रीड़ा करते हुए युगल अपनी नित्य सहचरियों के मण्डल के मध्य में शोभित हैं। मृग-शावक नयनी प्रिया एवं कमल-लोचन प्रियतम गानपरायण हैं। युगल के राग-गान ने सब को स्तम्भित कर दिया है। गान एवं नृत्य के कारण उनके श्री अङ्गों के अलङ्कार मुखरित हैं। आकाश में राका-शशि पथ-विथकित है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि आज की शरद-रात्रि प्रेम की रैंनी (रंग घोलने का पात्र) बन गई है और सबको प्रेम के रङ्ग से रँग रही है।।१२२।। सुखद, सरस एवं सुहावनी शरद-ऋतु का आगमन क्या हुआ, मानो सखियों को अमूल्य निधि प्राप्त हो गयी।।१२३।।

फूले नील कमल सित राते। भ्रमत मधुप सौरभ रस माते।।१२४।।
कुंज-कुंज गहवर बन खोरी। देखत फिरत किसोर-किसोरी।।१२५।।
जहाँ-तहाँ स्वच्छ भई धर ऐसी। कीनी सिकल आरसी जैसी।।१२६।।
बन की कांति कहाँ लौ कहियै। सोभा देखि चकित ह्वै रहियै।।१२७।।
रैंन उज्यारी देखि बिहारी। रच्यौ रास अति ही सुखकारी।।१२८।।
सेज मंडल मनि-दीप बिराजैं। अंगनि भूषन बाजे बाजैं।।१२९।।
पलक तार भौंहैं भई गाइनि। निर्त्तत पुतरी सहज सुभाइनि।।१३०।।
सोभित अंजन रेख उपंगा। मनौं कटाक्ष तहाँ मधुर मृदंगा।।१३१।।

यत्र-तत्र सरिता, सरोवरों में नील, श्वेत एवं रक्त कमलों का विकास होने लगा, जिन पर सौगन्धिक रस से मत्त हुए भ्रमर-गण मँडराने लगे।।१२४।। ऐसे श्री वृन्दावन की सघन कुञ्जों एवं वीथियों का दर्शन करते हुए नवल युगल किशोर-किशोरी विचरण कर रहे हैं।।१२५।। वर्षा के जल से स्वच्छ हुई वृन्दावन की भूमि यत्र-तत्र सर्वत्र ऐसी दिखने लगी, मानो किसी ने विशाल दर्पण को दिव्य निसर्ग से प्रतिबिम्बित कर दिया हो।।१२६।। श्रीवन की स्वच्छ कान्ति अवर्णनीय है, जिसकी छबि का दर्शन कर चकित रह जाना पड़ता है।।१२७।। ऐसे श्री वृन्दावन में चन्द्रिकामयी शरदनिशा का आगमन देखकर रास-विहारी श्री राधावल्लभ लाल ने आत्यन्तिक सुखमय रास की रचना की।।१२८।। इस विलक्षण रास में शय्या ही रास मण्डल है। ज्योतिर्मय मणि ही दीपक हैं, युगल के श्री अङ्गों में धारण भूषणादि ही रास-क्रीड़ा में बजने वाले वाद्य हैं।।१२९।। नेत्रों की पलकें ही तार-वाद्य हैं, युगल की कुटिल भृकुटियाँ ही गायिकाएँ हैं तथा सुष्ठु भाव-प्रवण नेत्र पुत्तलिकायें ही चञ्चल गति से नृत्य करने वाली नर्तकी हैं।।१३०।। नयन-कोरों में शोभित अञ्जन की रेखायें उपङ्ग नामक वाद्य हैं। कुटिल भृकुटियों के कटाक्ष ही मानो मृदङ्ग की मधुर थापें हैं।।१३१।।

चितवनि सुलप चलन अँग अंगा। कोक कलनि के उठत तरंगा।।१३२।।
हाव-भाव बहु बिधि दिखरावत। चुंबन दान रीझि तहाँ पावत।।१३३।।

दोहा

रति-बिहार कौ रास दोउ, खेलत परम प्रवीन।
कोक-कला घातें सहज, छिन-छिन उठति नवीन।।१३४।।

हिम ऋतु वर्णन सवैया

लाड़िली लालहि भावति है सखि ,आनँद मय हिम की रितु आई।
ऐसै रहे लपटाइ दोउ जन, चाहत अंग में अंग समाई।।
हार उतार धरे सब भूषन, स्वादी महा रस की निधि पाई।
महा सुख कौ 'ध्रुव' सार बिहार है, श्री हरिवंश जू केलि लड़ाई।।१३५।।

चञ्चल चितवन का सञ्चालन ही यहाँ सुलप नृत्य का गति भेद है, जिनसे शृङ्गार-केलि कलाओं की अमित लहरियाँ उच्छलित होती रहती हैं।।१३२।। विविध भाँति के हाव-भावों के प्रदर्शन की रीझ में वहाँ चुम्बन की बख्सीश मिलती रहती है।।१३३।। इस प्रकार रस-केलि में परम प्रवीण रसिक-युगल रति-विहार का रास खेलते रहते हैं, जिसमें प्रतिक्षण नित्य-नूतन कोक-कलाओं की सहज घात-प्रतिघातों का उदय होता रहता है।।१३४।।

हे सखि ! हमारे ललित लाड़िली लाल को अतिशय प्रिय लगने वाली आनन्दमयी हिमऋतु (शीतकाल) का आगमन हो गया है। देखो तो सही रसिक युगल ऐसे आलिङ्गित हैं; मानो दोनों ही , परस्पर अङ्ग-प्रत्यङ्ग में समाविष्ट हो जाना चाहते हों। आज महा-रस शृङ्गार-केलि के आस्वादी युगल ने अपने अङ्गों के हार आदि भूषण उतार फैंके हैं, क्योंकि उन्हें परम रस की निधि प्राप्त हो गयी है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिकाचार्य शिरोमणि श्री हित-हरिवंश जी महाराज किंवा श्री हित सजनी ने युगल की जिस आभ्यन्तर-केलि का लाड़-दुलार प्रकट किया है, वह युगल विहार ही महानतम सुखों का सारातिसार है।।१३५।।

चौपाई

हिमरितु-रंग कह्यौ नहि जाई। लाड़िली-लाल रहे लपटाई।।१३६।।
तहाँ लागत ऐसी सियराई। चाहत अंग में अंग समाई।।१३७।।
ज्यौं-ज्यौं प्यारी पिय उर लागै। मनौं आनँद के रस में पागै।।१३८।।
जाकौ सोच करत हे मन में। सहजहि बन आई सो छिन में।।१३९।।
हिमरितु अधिक लाल मन भाई। जिनतौ ऐसी बात बनाई।।१४०।।
या रितु कौ गुन मानत भारी। ऐसें रसिक लाल पर वारी।।१४१।।
तन-मन भये एक रस माँही। तेहिसुख पर सहचरि बलि जाहीं।।१४२।।

शीतकालीन हिम-ऋतु के आनन्द (जिसमें रस-निधि लाड़िली लाल आलिङ्गित प्राय बने रहते हैं) का वर्णन वाणी का अविषय है।।१३६।। इस ऋतु में युगल को ऐसी शीतलता का अनुभव होता है; जिससे प्रभावित होकर वे परस्पर एक दूसरे के अङ्गों में अपने अङ्ग समाविष्ट कर लेना चाहते हैं।।१३७।। शीत-भीत प्रिया जैसे-जैसे प्रियतम के हृदय देश से परिरम्भित होती है, तो ऐसा लगता है मानो आनन्द के रस में डूब गयी हों।।१३८।। नवल किशोर रसिक प्रियतम सदैव मन ही मन नवल किशोरी प्राण- प्रिया के जिस गाढ़ आलिङ्गन की अभिलाषायें किया करते थे, हिमऋतु के सौभाग्य-सहयोग से क्षण-मात्र में वह सहज ही पूर्ण हो रही हैं।।१३९।। अतएव यह हिमऋतु ही है, जिसने प्रिया के गाढ़ालिङ्गन का मधुमय सहयोग प्रदान किया है।।१४०।। तभी प्रियतम इस ऋतु के आभारी हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं हे सखि ! ऐसे रसिक प्रियतम पर मैं न्यौछावर हूँ।।१४१।। जिस अनिर्वचनीय सुख में लीन होकर रसिक युगल रस-लीनता में तन-मन के एकत्व की अनुभूति में मग्न हैं, परम रसिक सखियाँ उनके उस सुख पर बारम्बार बलिहार हो रही हैं।।१४२।।

सावधान सब सखी सयानी। हित की सौंज धरी सब बानी।।१४३।।
जेहि-जेहि छिन जैसी रुचि होई। हित सौं आनि खवावत सोई।।१४४।।
हित में हरषि सखी सुखकारी। निरखत प्रीति लेति बलिहारी।।१४५।।
मन की रुचि लै सेवा करहीं। सावधान सब ऐसैं रहहीं।।१४६।।
अति सुकुँवार किसोर-किसोरी। सहजहि बँधे प्रेम की डोरी।।१४७।।
ऐसौ लालच बढ़्यौ बिहारी। उर ते प्रिया करत नहिं न्यारी।।१४८।।
अंग-अंग ऐसै लपटाहीं। भूषन-हार न बीच समाहीं।।१४९।।

दोहा

अंग-अंग सब रहे जुरि, अरु नैंननि सौं नैंन।
रीति दुहुँनि की यहै 'ध्रुव' तबही लौं चित चैंन।।१५०।।

सेवा में सावधान तत्सुखसुखी परम रस-विदग्धा सखियों ने युगल के लिए सब प्रकार की सुख-भोग सामग्रियाँ सजा-सजा कर उनके सम्मुख प्रस्तुत कीं।।१४३।। जिन-जिन क्षणों में श्री युगल रसिक के मनों में जैसी-जैसी रुचियाँ उत्पन्न होती हैं, ये हितमयी सखियाँ वही सब ला-लाकर उनके सम्मुख प्रस्तुत करती हैं, खिलाती हैं, पिलाती हैं।।१४४।। प्रीति से हर्षित हुईं सुखदानी सखियाँ युगल की अद्भुत प्रीति का अवलोकन कर बारम्बार बलिहार जाती हैं।।१४५।। वे सदैव सावधान रह कर रसिक युगल की रुचि, प्रीति के अनुसार सेवा में संलग्न रहती हैं।।१४६।। अतिशय सुकुमार नवल किशोर-किशोरी सहज ही प्रेम की डोरी से बँधे हुए हैं।।१४७।। रस-लालची रसिक बिहारी लाल के मन में ऐसा अद्भुत रस लालच है कि वे क्षण-मात्र के लिए भी अपने हृदय से प्राण-प्रिया को विलग नहीं करना चाहते।।१४८।। रसिक युगल अङ्ग-प्रत्यङ्ग से ऐसे आलिङ्गित होते हैं कि दोनों के बीच में आभूषण तथा हार आदि के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।।१४९।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब तक रसिक लाड़िली-लाल के अङ्ग-प्रत्यङ्ग एवं नयन प्रति नयन मिले रहते हैं, उनके चित्त को विश्राम मिलता है, यही उनकी प्रीति की विलक्षण रीति है।।१५०।।

शिशिर-ऋतु वर्णन सवैया

ल्याई कछू सियराई सुगंध सौं, बात बहै अतिही सुखदाई।
कौंमल फूल दुकूल सुरंगनि, मंजु निकुंज में सेज बनाई।।
विलास कौ रास करैं दोउ हाँस, मनौं छबि कंज रहे बिकसाई।
भोर अली सत आइ जुरीं 'ध्रुव', पीवति रूप परागहि माई।।१५१।।

चौपाई

आई सिसिर कछू सियराई। त्रिविध समीर बहै सुखदाई।।१५२।।
मंजुल कुंज में बनी निकुंजा। तामें रची सेज सुख-पुंजा।।१५३।।
तापर रसिक रसिकनी सोहैं। सो छबि सखी नैंन भरि जोहैं।।१५४।।
कबहूँ बातन के रस परैं। कबहूँ लटकि सेज पर ढरैं।।१५५।।
ऐसी सभा बनी सुखदाई। आनँन्द हास परस्पर माई।।१५६।।

शिशिर-ऋतु ने अपने आगमन के साथ सुगन्धित वायु का सुखद प्रवाह प्रारम्भ कर दिया और हिम-ऋतु की शीतलता को कुछ कम कर दिया। अतएव सखियों ने विविध सुरङ्गित पुष्प एवं दुकूल (वस्त्र) आदि से सुन्दर निकुञ्ज देश में सुखद शय्या की रचना की है, जहाँ रसिक युगल रास रूपी विलास में मग्न हैं। उनका मन्द मधुर हास्य ही छवि रूपी कमल पुष्पों का विकास है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रातः काल सेवा में उपस्थित हुईं सखियाँ युगल के छवि-पुञ्ज रूपी पराग का पान कर रही हैं।।१५१।। शिशिर-कालीन अल्प शीतलता, त्रिविध सुखद पवन, कुञ्जान्तर्गत सुख, सुखद पुञ्ज शय्या एवं उस पर विराजित रसिक युगल का रस-रूपी-विलास अवलोकन कर सखियाँ अपने नेत्रों को तृप्त कर रही हैं।।१५२-१५४।। प्रेम-विलासी नवल युगल कभी तो बतरस में डूब जाते हैं और कभी लटकते हुए शय्या पर ढल जाते हैं।।१५५।। रसिक-युगल एवं सखी-समाज की यह सभा नितान्त रूप से सुखद है; जहाँ परस्पर में आनन्द एवं हास-परिहास का

दंपति-रुचि लै दिनहिं लड़ावैं। 'हित ध्रुव' रति-रस मंगल गावैं।।१५७।।
यह रस प्रेम कौ सागर आही। मो मति पैर सकै क्यौं ताही।।१५८।।
जतन अनेक कियैं नहिं पावै। सिंधु सीप में कैसैं आवै।।१५९।।

उपसंहार दोहा

मो मति लव त्रिसरैंनु सम, सोभा मेरु समान।
या मन के अवलंब हित, कही कछू उनमान।।१६०।।
बरषा-ग्रीष्म नैंन सुख, सरद-वसंत विलास।
लपटनिं कौ सुख हिम-सिसिर, प्रेम सुखद सब मास।।१६१।।

बड़भागी सखियाँ दम्पति की रुचि लिये अहर्निश उनकी लाड़-प्यारमयी सेवा के रस में डूबी रहती हैं और तहाँ हित ध्रुवदास युगल के रति-रस का मङ्गल-गान करते हैं, अथवा श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि वे सखियाँ युगल के प्रेम-रस-विलास का मङ्गल गान करती रहती हैं।।१५७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नित्य दम्पति ललित लाड़िली-लाल का यह रस-विहार प्रेम का अगाध समुद्र है, जिसमें मेरी लघु मति तैर सकने में सर्वथा असमर्थ है।।१५८।। नाना प्रकार के प्रयास करने पर भी इस रस की उपलब्धि सर्व-साधारण के लिये असम्भव है; क्योंकि क्षुद्र सीप में समुद्र को नहीं भरा जा सकता।।१५९।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी बुद्धि त्रसरेणु एवं लव-काल के समान अत्यन्त अल्प है, और वृन्दावन विलासी रसिक-युगल की शोभा-सम्पति विशाल नगाधिराज की भाँति है। तात्पर्य यह कि मैं युगल की उस अवर्णनीय शोभा का वर्णन करने में सर्वथा ही असमर्थ हूँ, तथापि मैंने अपने मन को उस छवि में टिकाये रखने के लिए वर्णन करने का उपक्रम किया है।।१६०।। अस्तु, वर्षा एवं ग्रीष्म-काल नेत्रों को सुख देने वाली ऋतुएँ हैं, शरद एवं वसन्त युगल को विलास सुख देने वाली ऋतुएँ हैं, हिम-ऋतु एवं शिशिर आलिङ्गन का सुख देती हैं, किन्तु प्रेम तो सभी ऋतुओं और महीनों में सदा एक रस सुखद है।।१६१।।

रसमय ''रस हीरावली'', पढ़ि है 'ध्रुव' जो कोइ।
प्रेम-कमल तेहि हीय तें, तबहीं प्रफुलित होइ।।१६२।।
और न कछू सुहाइ 'ध्रुव', यह जाँचत निसि भोर।
याही रस की चटपटी, लगी रहौ हिय मोर।।१६३।।
दोहा कबित अरु चौपई, इकसत साठ रु दोइ।
जुगल-केलि-हीरावली, हिय गुन माला पोइ।।१६४।।

पुनः श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, जो कोई श्रद्धालु 'रस-हीरावली' नामक इस रस-पूर्ण ग्रन्थ का पाठ करेगा, उसके हृदय में शीघ्र ही प्रेम रूपी कमल प्रफुल्लित होगा। मुझे और कुछ नहीं भाता, मैं अहर्निश यही चाहता हूँ कि मेरे हृदय में केवल 'रस-हीरावली' विषयक रस की ही आतुरता छाई रहे।।१६२-१६३।। इस ग्रन्थ में दोहा, कवित्त और चौपाइयों की मिलित संख्या एक सौ बासठ है। इस युगल केलि-हीरकों को हृदय रूपी डोरी में पिरो कर धारण करना चाहिये।।१६४।।

●

२०
रस रत्नावली

रस-प्रस्तावना

दोहा

प्रथम समागम सरस रस, वर विहार के रंग।
बिलसत नागर नवल कल, कोक कलनि के अंग।।१।।
नमित ग्रीव छवि सींव रही, घूँघट पटहि सँभारि।
चरननिं सेवति चतुरई, अति सलज्ज सुकुँवारि।।२।।
जो अँग चाहत छुयौ पिय, कुवँरि छुवन नहिं देति।
चितवनि मुसकनि रस भरी, हरि-हरि प्राननिं लेति।।३।।
चितवत औरै अंग पिय, छुयौ चहत अँग और।
तऊ बनत नहिं चतुरई, कुँवरि चतुर सिरमौर।।४।।

युगल-विहार के आनन्द-रङ्ग का प्रथम सोपान रसिक दम्पति का रसमय समागम है, तत्पश्चात परम चतुर नवल-युगल कोक-कलाओं के विविध अङ्गों का विलास विलसते हैं।।१।। रति-विहार के उपक्रम में जब अति व्रीड़ामयी नागरी सुकुमारी प्रिया नमित ग्रीव होकर अवगुण्ठन-पट को सम्हाल कर सिमट बैठती हैं, तब छवि की सीमा बन जाती हैं। रस चातुर्य की मूर्त्तिमान् चातुरी भी मानो उनकी सेवा करने लग जाती है।।२।। सलज्ज सुकुमारी के जिन किन्हीं अङ्गों का प्रियतम स्पर्श करने की चेष्टा करते हैं, चतुर प्रिया उन्हें स्पर्श से वञ्चित कर देती हैं। उस समय नवल नागरी की रस-भरी चितवन एवं मधुर मुसकान प्रियतम के प्राणों को हरण करने लगती है।।३।। रसिक नागर लाल प्रिया के अन्य अङ्गों का अवलोकन करते हुए उससे भिन्न अङ्गों का स्पर्श करना चाहते हैं, किन्तु चतुर शिरोमणि कुँवरि किशोरी के समक्ष उनकी एक भी चातुरी नहीं चल पाती।।४।।

अलक सँवारन ब्याज कै, परस्यौ चहत कपोल।
मृदुल करनि डारति झटकि, रसमय कलह कलोल।।५।।
बातनिं लाई लाड़िली, बहु विधि करि छल-छंद।
बुधि-बल कै खौल्यौ चहत, नागर नीबी-बंद।।६।।
नागरताई जहाँ लगि, कीनी नागर जानि।
रहे दीन ह्वै चितै मुख, हारि आपनी मानि।।७।।
आतुर पिय रस में विवस, उर अधीर अकुलात।
कबहुँ गहत है पगनि कौं, कबहूँ हा-हा खात।।८।।

प्रिया की उदारता दोहा

यह गति देखति लाड़िली, भइ कृपाल तेहि काल।
हारे ही रस पाइयै, उलटी प्रेम की चाल।।९।।

वे किशोरी की विलुलित अलकावली को सँवारने-सजाने के बहाने से उनके ललित कपोलों का स्पर्श करना चाहते हैं, तब चतुर शिरोमणि प्रिया अपने सुकोमल कर-कमलों से प्रियतम के कर-कमलों को झटक कर दूर कर देती हैं और तभी गौर-नील भुजाओं में कल्लोलमय कलह उत्पन्न हो जाती है।।५।। रसिक नागर प्रियतम विविध प्रकार के छल-छन्द पूर्वक श्री लाड़िली को वार्त्ता-प्रसङ्ग में उलझा कर बुद्धि-वल का प्रयोग करके उनके नीबी-बन्धन का विमोचन करना चाहते हैं।।६।। किन्तु प्रिया की नागरता के समक्ष उनकी एक नहीं चलती। नागर शिरोमणि अपनी समस्त नागरता के प्रयोग-पूर्वक अन्ततः अपनी पराजय मानकर दीन हुए श्री प्रिया मुख की ओर ताकते से रह जाते हैं।।७।। रस की अकाङ्क्षा में विवश हुए रसातुर प्रियतम का हृदय जब अधीर एवं व्याकुल हो जाता है, तब वे कभी तो श्रीप्रिया के चरण-कमलों को पकड़ने लगते हैं और कभी हा-हा खाने लगते हैं।।८।।

प्रियतम की ऐसी रसातुर गति-स्थिति का अवलोकन करके प्रिया तत्काल ही कृपा की ओर ढल गयीं। प्रियतम के अनेक प्रयत्नों से भी जो अभिलाषा

नैंन कपोलनि चूमि कै, लये अंक भरि लाल।
अधर सुधा-रस दै मनौं, सींचत मैंन तमाल।।१०।।
सुरत-सिंधु सुख रस बढ्यौ, अति अगाध नहिं पार।
लाज नेम-पट दूरि कै, मज्जत दोउ सुकुँवार।।११।।
रस विनोद विपरीत-रति, बरसत प्यार कौ मेह।
चल्यौ उमड़ि भरि नेम की, तोरि मैंड़ जल नेह।।१२।।
अंग-अंग उरझानि की, सोभा बढ़ी सुभाइ।
मृदुल कनक की बेलि मनौं, रहि तमाल लपटाइ।।१३।।
बिच-बिच बोलत बैंन मृदु, सुनि सुख होत अपार।
रोचक रस पोषक सदा, कल किंकिनि झनकार।।१४।।

पूर्ण नहीं हो पा रही थी, वह दैन्य-भाव की धारणा से बन गयी, प्रेम की चाल बड़ी उलटी है।।९।। श्री प्रिया ने श्री लाल जी के नेत्र एवं कपोलों का चुम्बन करके उन्हें अपनी गोद में भर लिया, मानो वे अपने अधर-अमृत से मदन रूपी तमाल तरु का अभिसिञ्चन् करने लगी हैं।।१०।। रसिक युगल के उस मिलन में अत्यन्त गम्भीर एवं अपार प्रेम के सुखमय रस का समुद्र वृद्धि को प्राप्त हुआ। उस उफनते हुए सुख-समुद्र में सुकुमार युगल अपने लज्जा-रूपी वसनों का त्याग करके निमज्जन करने लगे।।११।। आमोद-प्रमोद के रस-रञ्जन पूर्वक विलक्षण प्रीति-रीति रूपी प्रेम-जल की वर्षा होने लगी और रस का प्रवाह उमड़ चला, जिससे नेम की मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं।।१२।। युगल के अङ्ग-अङ्ग की आलिङ्गन-शोभा बड़े ही सहज स्वाभाविक रूप से वृद्धि को प्राप्त होती, ऐसी प्रतीत हुई मानो स्वर्ण की सुकोमल ललित-लता श्याम-तमाल से आलिङ्गित हो।।१३।। विहारावसर बीच-बीच युगल की मृदु-मृदु वचनावली रस-पोषक रुचिकारक मधुर-मधुर किङ्किणियों की झङ्कृति सखियों के लिये अमित सुखदायक है।।१४।।

प्रवल चौंप सरिता बढ़ी, कहत बनत कछु नाहिं।
पियहि लाइ कुच घटनि सौं, पैरावति तेहि माहिं।।१५।।
अति उदार मृदु चित्त सखि, प्रेम-सिंधु सुकुँवारि।
विविध रतन सब अंग जे, देत सँभारि-सँभारि।।१६।।
सुरत स्वाति वरषा मनौं, निसि-दिन बरसत आहि।
रह्यौ हारि चात्रिक तहाँ, तृषा लाल की चाहि।।१७।।
सुरत रंग रस में कबहुँ, रसिक विवस ह्वै जाइ।
करजनि नासा पुट चटकि, ललना लेति जगाइ।।१८।।
ऐसौ सुख कौ रस बढ्यौ, श्रम नहिं जान्यौ जाइ।
चाह चौंप रुचि तहाँ की, लालच चितै लजाइ।।१९।।

रसिक-युगल में उल्लास की वेगवती सरिता का प्रवाह बढ़ चला। प्रिया कुच-घटों का आश्रय देकर प्रियतम को रस-सरिता में प्रविष्ट कराके सन्तरण कराने लगीं, युगल का यह रस-विहार अवर्णनीय है।।१५।। प्रेम की अपार एवं अगाध समुद्र रूपिणी सुकुमारी प्रिया अतिशय उदार एवं मृदुल चित्त हैं, वे अपने रत्न रूपी विविध अङ्ग-प्रत्यङ्गों का सँभाल-सँभाल कर बड़ी सावधानी से प्राण-प्रियतम को रसमय दान करती रहती हैं।।१६।। प्रिया सुरत विहार-रूपी स्वाति नक्षत्र की वर्षा अहर्निश बरसती रहती है। चातक-रूपी श्री लाल की लालसा रूपी तृषा का फिर भी परिशमन नहीं होता, वे सदैव पराजितप्राय एवं दीन बने रहते हैं।।१७।। यदि कदाचित् रसिक प्रियतम प्रेम रस-रङ्ग में विवश हुए देहानुसन्धान रहित होने लगते हैं, तो उदार लाड़िली अपनी सुकोमल कराङ्गुलियों से उनकी नासिका के समीप चुटकी देकर उन्हें सावधान कर देती हैं।।१८।। रसिक-युगल के सुख-विलास में रस की अभिवृद्धि के कारण शारीरिक- श्रम का कोई बोध नहीं होता। लालसा, उत्कण्ठा एवं रुचि की प्रतिक्षण अभिवृद्धि का दर्शन करके मूर्तिमान् लालच भी लालायित हो रहता है।।१९।।

मैंन मनोरथ-बेलि बढ़ी, सोभा चढ़ी अपार।
मन न घटत तनहूँ नहीं, अटके सुरत-बिहार।।२०।।
सुरति-केलि ऐसी बनी, मानौं खेलत फाग।
हाव-भाव सौंधौ भर्‌यौ, मुख तँबोल अनुराग।।२१।।
अति सुरंग सारी सुही, छबि सौं रहि झलकाइ।
कुंदन-बेलि तमाल पर, मनौं गुलाल रह्‌यौ छाइ।।२२।।
चंचल नैंननिं की चलनि, पिचकारिनु की धार।
बिवस भये खेलत दोऊ, भींजे रँग सुकुँवार।।२३।।

सुरतान्ता छबि दोहा

श्रम जलकन मुख गौर पर, अलकावलि गइ छूटि।
दरकी सब ठाँ कंचुकी, हारावलि गइ टूटि।।२४।।

मदन-केलि के मनोरथ की लता प्रतिपल बढ़ती रहती है। सुरत-विहार-रत रसिक युगल के तन-मन की चाह चौंप कभी घटती नहीं है।।२०।। उस समय सुरत-क्रीड़ा की छवि ऐसी प्रतीत होती है, मानो श्यामा-श्याम फाग खेल रहे हों, एवं परस्पर हाव-भाव के सौरभ-सार का अभिसिञ्चिन् कर रहे हों और उनके मुख अनुराग रूपी ताम्बूल से अनुरञ्जित हों।।२१।। गौराङ्गी-प्रिया के सुभग-तनु पर अरुणिम सुही साड़ी ऐसी छवि से झलक रही है, मानो तमाल तरु-आवेष्टित स्वर्णलता पर गुलाल का रङ्ग छा रहा हो।।२२।। तब चपल नेत्रों का सञ्चलन ही रङ्ग भरी पिचकारियों की धार है, जिससे भींगे सुकुमार युगल प्रेम-विवश हुए वसन्त-केलि (फाग) खेल रहे हैं।।२३।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सुरत-केलि के पश्चात् शिथिल गात्र नवल किशोरी के गौर मुख-मण्डल पर श्रम-जन्य प्रस्वेद कणों की झलक, विगलित ललित कुन्तल राशि, कञ्चुकी की दरकन एवं हारावली का भञ्जन सब अपूर्व शोभा है।।२४।।

अलक लड़ी सुख लाड़िली, प्रीतम प्यार की देह।
श्रमित जानि अंचल पवन, करत रंग निज नेह।।२५।।
सिथल भये भूषन बसन, चित्रित पीक सुरंग।
लिख्यौ पत्र अनुराग मनौं, हारे कोटि अनंग।।२६।।
अरुन नैंन घूमत बने, सोभा बढ़ी सुभाइ।
अधरनि रँग मादिक पियौ, सोई रँग झलकाइ।।२७।।
पीक कपोलनि फबि रही, कहुँ कहुँ अंजन लीक।
मनौं अनुराग सिंगार मिलि, चित्र बनाये नीक।।२८।।
निरखत तेई चिन्हनिं पुनि, बढ्यौ चतुरगुन काम।
गही सरन चरननि तबै, जानि सुखद सुखधाम।।२९।।

सुख स्वरूपिणी लाड़िली प्रियतम-प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। अतः प्रियतम प्राण- प्रिया को श्रमित जानकर सहज प्रेम में रँगे हुए अपने अञ्चल से बयार करते हैं।।२५।। किशोरी के वस्त्राभूषण शिथिल हो चुके हैं। उनके कपोल ताम्बूल की पीक से अनुरञ्जित हैं, इस छबि का अवलोकन कर ऐसा प्रतीत होता है कि कोटि-कोटि कामदेवों को पराजित करके मानो आज अनुराग ने विजय- पत्र लिखवा लिया हो।।२६।। रस-मद् से घूमते हुए रतनारे नयनों की शोभा कहते नहीं बनती, ऐसा लगता है मानो अधरोष्ठों ने किसी अनिर्वचनीय मादक पेय का पान किया हो, वही नेत्रों में आ झलका हो।।२७।। ललित- कपोलों पर शोभित ताम्बूल-पीक एवं मुख-मण्डल पर कहीं-कहीं अङ्कित कज्जल रेखायें ऐसा अनुमान कराती हैं कि मूर्त्तिमान् अनुराग एवं शृङ्गार ने मिलकर प्रिया- मुख-मण्डल पर विचित्र चित्रों की रचना की हो।।२८।। जिनका दर्शन करके प्रियतम के मन में चौगुनी रस-लिप्सा की अभिवृद्धि होने लगी हो। वे किशोरी के सब सुखदायक सुखधाम श्री चरणों की शरण ग्रहण कर रहे हों।।२९।।

श्री प्रिया-चरणों की छबि दोहा

लई लाल जिनकी सरन, कोमल सुरँग सुदेस।
कछुक कहत हौं जथामति, तिनकी छबि कौ लेस।।३०।।
कुवँरि चरन सुख-पुंज में, अंबुज छबि हरि लैंन।
चहुँ दिसि तापर भ्रमत रहैं, प्रीतम के अलि नैंन।।३१।।
लाल सखी को भेस धरि, रचि अद्भुत सिंगार।
प्रेम प्यार के चाव सौं, सेवत पद सुकुवाँर।।३२।।
कर पर अंचल राखि कै, तिन पर चरन अनूप।
चितवत लीने मुकुर ज्यौं, अमित माधुरी रूप।।३३।।
चूँवत छ्वावत नैंन पिय, जावक चित्र बनाइ।
देखि अटपटी प्रेम की, गति नहीं समुझी जाइ।।३४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री लाल जी ने जिन सुकोमल, अरुणिम एवं परम सुन्दर श्री चरणों की शरण ली है, मैं यथामति उनकी छवि का यत्किञ्चित् वर्णन करूँगा।।३०।। कुँवरि किशोरी के श्री चरण सुख समूहमय हैं। वे कमल की छवि का भी हरण कर लेने वाले हैं। प्रियतम श्री लाल जी के भ्रमर रूपी नेत्र उनके चारों ओर मँड़राते रहते हैं।।३१।। कभी श्री लाल जी अपने अङ्गों में रमणीय शृङ्गार की रचना पूर्वक सखी वेष धारण करके अत्यन्त प्रीति की उत्कण्ठा के साथ श्री किशोरी के सुकुमार चरणों की सेवा करते हैं।।३२।। अपने सुकोमल कर-पल्लव पर मृदुल पीताम्बर बिछा कर श्री प्रिया के अपरिमित रूप-माधुरीमय अनुपम सुकुमार श्री चरणों को स्थापित करके दर्पण की भाँति निहारते रहते हैं।।३३।। उन श्री चरणों को अलक्तक रङ्ग से चित्रित करके प्रियतम (लाल) कभी उनका चुम्बन करते हैं, कभी नेत्रों से स्पर्श करते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की इस विलक्षण गति को तो देखो, जो समझ से परे है।।३४।।

ते पद सेवत रहत दिन, सहज परयौ यह नेम।
चरन चारु कौ हार किय, पिय प्रवीन रस प्रेम।।३५।।
चरन कंज कुंदन बरन, झलमलात नख कांति।
आई मिलि रस करन कौं, मनौं बिधुनि की पाँति।।३६।।
मनिगन जुत झलकत रहैं, पद अंबुज सुख-दैंन।
सहज सुभग रसनिधि सरस, प्रीतम-चित अलि ऐंन।।३७।।
सुमन-सुखासन सेज पर, लटकी कुँवरि सुभाइ।
पिय नैंननिं के करनि सौं, तहाँ पलोटत पाइ।।३८।।

प्रियतम की सहज प्रेम स्थिति — दोहा

सब अँग नागर वैस सम, नेह रूप गुन ऐंन।
पिय अधीर आधीन तहाँ, बँधे नैंन फँद सैंन।।३९।।

परम चतुर प्रियतम प्रेम-रस के भाव-विधानों में अतिशय निपुण हैं। वे अपनी आराध्या नवल-लाड़िली के श्री चरणों का निरन्तर प्रीतिपूर्वक सेवन करते रहते हैं। उनका प्रिया-चरण-सेवा का नियम सहज एवं भावपूर्ण है। उन्होंने उन चारु चरणों को अपना हृदय-हार बना रखा है।।३५।। नवल किशोरी के तप्त-काञ्चन वर्ण के चरण-कमलों की नख-प्रभा प्रतिक्षण झलमलाती रहती है। उनका दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो चन्द्रमाओं की पङ्क्ति अपने आपको रसमय बनाने के लिए श्री प्रियाचरणों में आ उपस्थित हुई हो।।३६।। श्री श्यामा के सुखदायक चरण-कमल मणिमय नूपुरों से अलङ्कृत होकर अपनी प्रभा का प्रकाश करते रहते हैं। वे श्री चरण स्वाभाविक सुन्दर, रस के भण्डार एवं सरस हैं तथा प्रियतम के चित्त रूपी भ्रमर के लिए नित्य विश्राम स्थल हैं।।३७।। पुष्प निर्मित्त सुखमय शय्या पर स्वाभाविक विश्राम मुद्रा में पौढ़ी हुई किशोरी के श्री चरण-कमलों का प्रियतम अपने नयन रूपी कर-कमलों से सम्वाहन करते रहते हैं।।३८।।

रसिक लाल वय-क्रम, प्रेम, स्नेह, रूप एवं गुणों के धाम हैं तथा प्रेम

लोइनि भीनें मदन रस, निरखत पानिप अंग।
कहि न सकत कछु बात पिय, वेपथ भये अँग-अंग।।४०।।
लाइ लये हित सौं हियैं, गहि अधरनि मृदु दंत।
मैंन रसासव रह्यौ भरि, रौंम-रौंम प्रति कंत।।४१।।
प्रेम खेल वृंदाविपिन, नृप दोउ नवल किसोर।
प्रेम खेल खेलत तहाँ, नहिं जानत निसि भोर।।४२।।
अति स्वादी दोउ लाड़िले, केलि-पुंज सुख-रास।
रीझि-रीझि बिच-बिच करत, मधुर मंद मृदुहास।।४३।।
ज्यौं-ज्यौं मैंन तरंग उठैं, त्यौं-त्यौं मुख छबि कांति।
कहा-कहौं रुचि चाह की, छिन-छिन नव-नव भाँति।।४४।।

के समस्त अङ्गों में सहज विदग्ध हैं, तथापि प्रिया-नयनों के प्रेम-कटाक्ष रूपी पाश में बँधे होने से सदैव विह्वल एवं अधीन बने रहते हैं।।३९।। उनके नेत्र प्रिया के सुभग अङ्गों के लावण्य का दर्शन करके सदैव प्रेम-रस में भींगे रहते हैं। उनकी वाणी गद्‌गद एवं अवरुद्ध होती रहती है। उनका प्रत्येक अङ्ग प्रेम-विवश भाव से कम्पित होता रहता है।।४०।। प्रियतम की ऐसी प्रेम-दशा का अवलोकन करके करुणामयी प्रिया उन्हें अपने हृदय से लगा कर उनके अधरों को मृदुल रीति से अपने दन्त-हीरकों से चाँप कर उनके रोम-रोम में रसासव की मादकता का प्रवाह भर देती हैं।।४१।। श्री वृन्दावन प्रेम का साम्राज्य है। इसके सम्राट-साम्राज्ञी हैं—युगल नवल श्री लाड़िली-लाल नव किशोर दम्पति, जो विश्व-विस्मृति पूर्वक अहर्निश प्रेम-केलि में निमग्न परस्पर एक दूसरे पर रीझ-रीझ कर मन्द मधुर एवं मृदु-मुदु मुसकान भरते रहते हैं।।४२-४३।। उनके मनों में जैसे-जैसे मदन की तरङ्गें उच्छलित होती हैं, वैसे-वैसे उनकी मुख-कान्ति उद्दीप्त होती रहती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि क्षण-क्षण में नये-नये प्रकार की रुचि एवं उत्कण्ठा का वर्णन अशक्य है।।४४।।

श्रम जल पीक सुरंग कन, झलकत अमल कपोल।
सुरत-सिंधु के मथत मनौं, प्रगटे रतन अमोल।।४५।।

निज सखियों का सुख दोहा

यह सुख देखत सखिनु के, बाढ्यौ अति अनुराग।
हित सौं देतिं असीस सब, अविचल कुँवरि-सुहाग।।४६।।
रूप मदन गुन नेह जुत, ऐसौ भयौ अनूप।
सो रस पीवत छिनहि-छिन, मिलि वृंदावन-भूप।।४७।।
तेहि सुख कौ रस मोद सखि, जो उपजत दुहुँ माहिं।
पल-पल पीवति दृगनि भरि, ललितादिक न अघाहि।।४८।।

युगल के सुरत-विहार-रूपी समुद्र के मन्थन से जो अमोल रत्न प्रकट हुए, वे हैं—श्रमजल के मुक्ता-रूपी बिन्दु, ताम्बूल-पीक के अरुणिम कण, जो निर्मल कपोल फलक पर जगमगा रहे हैं।।४५।।

युगल के रति-विहार सुख का दर्शन करके तत्सुख रति-मयी नित्य सहचरियों का अनुराग-रस निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहता है और तब वे सखियाँ अपना प्रेम पूर्ण आशीर्वाद देने लगती हैं कि प्राण-प्यारी कुँवरि किशोरी का दाम्पत्य, सुखमय सुहाग सदा-सर्वदा अविचल रहे।।४६।। अस्तु, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री वृन्दावन का यह रसमय एवं गोप्य युगल-विहार अनुपम रूप, स्मर, गुण एवं प्रेम से युक्त है, जिसका रस-पान वृन्दावन नरेश नवल-लाड़िली लाल प्रतिक्षण विच्छेदाभास-रहित भाव से करते रहते हैं।।४७।। हे सखि! जो सुख युगल के सम्मिलन से प्रगट होता है, उस रस-सुख के आनन्द का ललितादिक सहचरियाँ अतृप्त भावपूर्वक पल-पल प्रति अपने नेत्र-चषकों (प्यालों) में भर-भर कर पान करती रहती हैं।।४८।।

उपसंहार दोहा

रस-निधि "रस रतनावली", रसिक-रसिकनी-केलि।
हित सौं जो उर धरै 'ध्रुव', बढ़ै प्रेम-रस-बेलि।।४९।।
महा गोप्य अद्‌भुत सरस, चिंतत रहौ मन माँहि।
या रस के रसिकनि बिना, सुनि 'ध्रुव' कहिबौ नाँहि।।५०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि 'रस-रतनावली' लघुकाय ग्रन्थ प्रेम रस का समुद्र है। इसमें रसिक प्रियतम एवं रसिकिनी प्रिया की गोप्य केलि का गान है, जो श्रृद्धालु इसे प्रीतिपूर्वक हृदय में धारण करेगा, उसके हृदय में प्रेम रस रूपी लता सदैव बढ़ती एवं फैलती रहेगी।।४९।। पुनः वे सचेत करते हुए कहते हैं कि, "हे रसिको ! यह 'रस-रतनावली' विलक्षण रूप से सरस तथा अत्यन्त गोप्य है। इसका मन-मन में चिन्तन करते रहना चाहिये। इसे रस के उपासक रसिकों के अतिरिक्त किसी अन्य से कहना अथवा इसका प्रकाश करना उचित नहीं हैं।।५०।।

२१
प्रेमावली

मङ्गलाचरण एवं श्री हित हरिवंश स्वरूप निरूपण दोहा

प्रगट प्रेम कौ रूप धरि, श्री हरिवंश उदार।
(श्री) राधावल्लभ लाल कौ प्रगट कियौ रस सार।।१।।
हरिवंश चंद सब रसिकजन, राखे रस में बोरि।
प्रेम-सिंधु विस्तारि कैं, नेम-मेड़ दई तोरि।।२।।

रस एवं रूप की परिभाषा दोहा

रूप-बेलि प्यारी बनी, प्रीतम प्रेम-तमाल।
द्वै मन मिलि एकै भये, श्री राधावल्लभलाल।।३।।
लपटि रहे दोउ लाड़िले, अलबेली लपटानि।
रूप-बेलि बिबि अरुझि परी, प्रेम-सेज पर आनि।।४।।

निकुञ्जेश्वरी श्री राधा की निजु सहचरी हित सजनी ने साक्षात् प्रेम वपु धारण किया एवं उदार श्री हित हरिवंश के रूप में भूतल पर अवतरित हो कर श्री राधावल्लभ लाल के रस सार रूप नित्य-विहार की रसमयी उपासना को लोक में प्रकट किया।।१।। साक्षात् हितमय वपु श्री हित हरिवंश चन्द्र ने समस्त रसिक समुदाय को श्री श्यामाश्याम के दिव्य प्रेम-रस में निमग्न कर दिया। उन्होंने तत्सुखमय प्रेम का विस्तार करके वैदिक विधि-निषेधों के बन्धनों को निःसार निरपेक्ष कर दिया।।२।।

रसिक शेखर श्री हरिवंश चन्द्र ने जिस रस सारमयी सूक्ष्म उपासना का प्राकट्य किया है, वह रूप-वेलि श्रीराधा एवं प्रेम-तमाल श्रीलाल के युगल मनस्तत्त्व का ही मिलित विग्रह श्री राधावल्लभ है।।३।। वही नव दम्पति श्रीलाड़िली लाल अद्भुत छवि से आश्लेष आबद्ध होकर, ऐसे प्रतीत होते हैं मानो रूप की ही युगल वल्लरियाँ प्रेम-पर्यङ्क पर उलझ पड़ी हों।।४।।

श्री लाल की प्रेम रीति दोहा

प्रेम रीति निजु आहि जो, तामें लाल प्रवीन।
अंग-अंग सब हारि कैं, रहे आप ह्वै दीन।।५।।
अलबेली नागरि जहाँ, धरति चरन छबि पुंज।
पलकनि की करि सोहनी, देत कुँवर तिहि कुंज।।६।।
धरति भाँवती पग जहाँ, रहत देखि तिहिं ठौर।
को समुझै यह सुख सखी, बिना रसिक सिरमौर।।७।।
भरि आए दोउ नैंन जँह, रहे नेह बस झूमि।
तिहिं-तिहिं ठाँ काहे न भइ, इन प्राननि की भूमि।।८।।
देखि प्रेम पिय कौ सखी, नैंन भरे जल आइ।
समुझि दसा पिय की तबहिं, पुतरिनु लियौ समाइ।।९।।

प्रेम की जो सहज रीति है, उसमें लाल विदग्ध नागर हैं। वे अपने समस्त अस्तित्त्व को खो कर अपनी प्रिया श्रीलाड़िली के प्रति अत्यन्त दीन बने रहते हैं।।५।। रँगीली नागरी श्रीराधा जहाँ कहीं अपने छवि-पुञ्ज चरणों को स्थापित करती हैं, उस कुञ्जस्थली को रसिक कुँवर लाल अपनी पलकों की मार्जनी (सोहिनी) बना कर बुहारा करते हैं।।६।। उनकी भाँवती श्री प्रिया जू के चरण जहाँ कहीं भी पड़ते हैं, रसिक नागरवर लाल उस भूमि को देखते ही रह जाते हैं। हे सखी! रसिक चूड़ामणि प्रियतम श्रीलाल के बिना इस प्रीति के सुख को समझने वाला भी और कौन होगा।।७।। अहा! प्रिया-चरणों से चिन्हित भूमि को देख कर प्रियतम के युगल नयन सजल हो गये एवं वे प्रेममत्तता से झूमने लगे। रँगीले लाल सोचते हैं कि जहाँ-जहाँ भाँवती प्रिया अपने चरण स्थापित करती हैं, वहाँ-वहाँ मेरे प्राणों की भूमि क्यों न हुई?।।८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि--हे सखी! प्रियतम की इस प्रेम-दशा को देख कर श्री प्रिया के नेत्र सजल हो उठे। प्रियतम की इस प्रेम-विवश छवि को उन्होंने अपने नयनों में समाहित कर लिया।।९।।

लिये दीनता एक रस, महा प्रेम रँग-रात।
ऐसी प्यारी पीय कौं, देखत हूँ न अघात।।१०।।
जावक रँग भीने चरन, गौर बरन छबि सींव।
निरखत पिय अनुराग सौं, ढरी जात अधि ग्रीव।।११।।
अंग-अंग सब लाल के, झुकत प्रिया की ओर।
सहज प्रेम कौ ढार परयौ, बँधे नेह की डोर।।१२।।
जिनके है यह प्रेम रस, सोई जानत रीति।
जौ हारै तौ पाइयै, नेह-खेत में जीति।।१३।।

प्रेमी के मन का उत्साह दोहा

मन के पाछैं मन फिरै, नैननिं पाछैं नैंन।
इहै एक सुख लाल के, रह्यौ पूरि उर-ऐंन।।१४।।

एक रस महा-प्रेम रङ्ग रँगे दैन्य भावाविष्ट प्रियतम के नेत्र अपनी प्रिया का मुखावलोकन करते कभी अघाते नहीं।।१०।। जावक-रङ्ग रञ्जित प्रिया के गौर वर्ण छवि सीम चरणों को देख कर रसिक प्रियतम की ग्रीवा प्रेम वैवश्य से नीचे की ओर झुक जाती है।।११।। श्रीलाल का अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रिया की ओर आकर्षित एवं सहज झुका रहता है, क्योंकि वह सतत प्रेम-पाश में बँधे रहते हैं, उनका यह प्रेम-प्रवाह नित्य प्रवाहित रहता है।।१२।। इस विलक्षण प्रेम-देश में पराजय ही विजय है। इस प्रीति देश की रीति को तो अनुरागी ही जानता है।।१३।।

श्रीप्रिया जू के मन का नित्य अनुगामी बना रहता है प्रियतम श्रीलाल का मन। तैसे ही उनके नेत्रों का अनुगमन करते हैं लाल के नयन अर्थात् श्री लाल ने अपनी समस्त रुचियाँ प्रिया की रुचि में लीन कर दी हैं और यह परम सुख ही रसिक प्रियतम के हृदय रूपी भवन में परिपूरित रहता है।।१४।।

नैननिं छ्वात फिरत पिय, पत्र फूल बन जेत।
प्रान-प्रिया-दृग छटा जल, सींचे सखि यह हेत।।१५।।
नैननिं बाढ़ी तृषा अति, ज्यौं-ज्यौं देखत रूप।
पानिहिं लागै प्यास ज्यौं, कहा करै ढ़िग कूप।।१६।।
विटप डारि अवलंब पिय, ठाढ़े चितहि न चैंन।
झलमलात भरे प्रेम रस, झलकत सुदंर नैंन।।१७।।
और सबै सुख देह के, पिय मन तें गये भूलि।
अवलोकत मुख-माधुरी, रहे प्रेम-रस झूलि।।१८।।
हेरि-हेरि हिय गहवर्‌यौ, भरि-भरि आवत नैंन।
कौन अटपटी मन परी, ध्रुव पै कहत बनै न।।१९।।

हे सखी ! वृन्दावन के वनरुह, लता, द्रुम, पुष्पादिक का स्पर्श प्रेमासक्त प्रियतम अपने नेत्रों से करते हुए अपने को धन्य-धन्य मानते हैं, कारण कि यहाँ के पत्र-पुष्पादि प्रिया के दृग छटा रूपी जल द्वारा सिञ्चित् हैं।।१५।। श्रीलाल जैसे-जैसे अपनी प्रिया श्रीलाड़िली की अद्‌भुत रूप-छटा का दर्शन करते हैं, त्यौं ही त्यौं उनकी प्रेम-तृषा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। यदि जल को ही पिपासा व्याप्त हो जाय, तो समीपवर्ती कूप भी क्या उपाय कर पायेगा।।१६।। रसिक प्रियतम श्रीलाल एक द्रुम-शाखा का अवलम्ब लिये खड़े हैं, उनका चित्त अधीर हो उठा है। प्रेम-रस-पूरित प्रिया के नीलोत्पल नयनों की छवि उनके नेत्रों में प्रतिविम्बित हो रही है।।१७।। देह के समस्त सुख प्रियतम के मन से विस्मृत एवं नीरस हो चुके हैं एवं प्रिया-मुख की छवि-माधुरी का अवलोकन करते हुए वे प्रेमरस के हिंडोले में झूलते रहते हैं।।१८।। श्री प्रिया मुखचन्द्र-पीयूष माधुरी का निरन्तर रस पान करते हुए प्रियतम का हृदय गम्भीर हो जाता है, और नेत्र प्रेमाश्रु-पूरित हो जाते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्रीलाल के मन की अटपटी गति का वर्णन कर सकने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ।।१९।।

चितवनि सौं चित रँगि रह्यौ, मुसकनि रस बस मैंन।
अँग-अँग दीप अनंग मनौं, परत पतंग जु नैंन।।२०।।
अद्भुत अंगनि की झलकि, उठति तरंग सुभाइ।
समुझि दसा पिय की प्रिया, रहति छिपाइ-छिपाइ।।२१।।
प्रीतम प्यासे रूप के, सो रस कह्यौ न जाइ।
नैंन रूप ह्वै जाँइ जौ, प्यास न तऊ सिराइ।।२२।।
अद्भुत रूप विलास सुख, चितवत भूले अंग।
सहज सिंधु सुख में परे, नख-सिख प्रेम अभंग।।२३।।
नयौ नेह नेही नये, नयौ रूप सुखरासि।
नयौ चाव विलसैं सहज, परे प्रेम की पासि।।२४।।

श्री प्रिया जू की चितवन-छवि में श्रीलाल का चित्त रँग गया है। उनका मदन रूपी मन, प्रिया की मन्द-मधुर स्मित के वशीभूत हो गया है। श्री प्रिया का प्रत्येक अङ्ग अनङ्ग-दीप के सदृश है, जिस पर प्रियतम के शलभ रूपी नेत्र नित्य उत्सर्ग होते रहते हैं।।२०।। अद्भुत अङ्ग-सौष्ठवमयी श्रीप्रिया जू की सुहावनी छवि-तरङ्गें प्रतिपल तरङ्गायित होती रहती हैं; परन्तु अपने रूपासक्त प्रियतम की रिझवार मनस्थिति को समझ कर वे अपनी अङ्गच्छवि का गोपन किया करती हैं।।२१।। जिस रूप-रस की प्रियतम के चित्त में निरन्तर ललक बनी रहती है, वह रस अनिर्वचनीय है। यदि कहीं नेत्र ही मूर्त्तिमान् रूप बन जाय, तो भी लाल की तृषा का शमन नहीं हो पायेगा।।२२।। इस अद्भुत सुख-विलास का दर्शन कर के प्रियतम श्रीलाल-अपना देहानुसन्धान खो बैठे हैं एवं सुख के अगाध सिन्धु में निमग्न हो कर, आपाद मस्तक वे प्रेम-रस में पूरित हो गये हैं।।२३।। नित्य नवनवायमान्, सौन्दर्यमय घनीभूत आनन्द सुख समूह, नव दम्पति श्री श्यामा-श्याम नित्य नूतन प्रेमी हैं, तदनुसार उनका प्रेम भी नित्य नवोत्साहमय है। सहज ही प्रेम-पाश में आबद्ध नित्य नवीन चौंप लिये वे प्रेम-सुख विलास में रमण करते-रहते हैं।।२४।।

सहज प्रेम के सिंधु में, दोऊ करत कलोल।
भरि-भरि रस हुलसत हियौ, सुख की उठति अलोल।।२५।।
रचि-रचि बीरी देत पिय, महा प्रेम की रासि।
सर्वसु है जिनके इहै, चितवन कै मृदु हासि।।२६।।
पिकदानी लीन्हें कुँवर, चितवत मुख की ओर।
रहे उगार की आस धरि, ज्यौं प्रति चंद चकोर।।२७।।
मन वच काइक एक रस, धरे महा व्रत प्रेम।
प्रान प्रियहिं सेवत कुँवर, याही सुख कौ नेम।।२८।।
प्यारी सर्वस लाल कैं, लाल प्रिया कैं प्रान।
सहज प्रेम दुहुँ में बन्यौ, फीके भये रस आन।।२९।।

रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल प्रेम के सागर में कल्लोल करते रहते हैं। प्रेम-सागर के इस प्रवाह में उनका मन नित्य उल्लसित रहता है एवं अन्तर्वहिः सुखवीचियों से उनका मन आप्लावित रहता है।।२५।। रसिक रसराशि प्रियतम श्रीलाल ताम्बूल- वीटिकायें रच कर अपनी प्रिया श्रीराधा को अर्पित करते हैं। प्रिया की सहज छविमयी चितवन एवं मधुर हास्य ही उनका सर्वस्व है।।२६।। रँगमहल में प्रियतम पीकदानी लिये हुए श्रीप्रिया मुख-चन्द्र की ओर चकोर की भाँति उगाल की आशा लिये निहारते रहते हैं।।२७।। महाप्रेम का व्रत धारण किये हुए रसिक कुँवर श्रीलाल जू मन इन्द्रियों एवं वाणी से अपनी प्राण-प्रिया श्रीराधा की सेवा में तत्पर रहते हैं। उनका यह सुखमय सहज नियम है।।२८।। श्रीलाल जू की सर्वस्व श्रीप्रिया जू हैं एवं प्रिया जू के प्राण श्री लाल हैं। युगल का यह पारस्परिक-प्रेम अद्वितीय एवं दिव्य है। इस सुख के आगे और सब रस सारहीन—नीरस लगते हैं।।२९।।

मंद-मंद मुसिकात जब, बेसर तरल तरंग।
चितै चित्रवत रहे पिय, सिथिल भये सब अंग।।३०।।
मुकुर पानि लियैं लाड़िली, बैठी सहज सुभाइ।
अनियारी अँखियनि दियौ, अंजन रुचिर बनाइ।।३१।।
सोचि रही तिहिं छिन कछू, इत उत चितवत नाहिं।
प्रीतम मन की मृदुलता, गड़ी आइ मन माहिं।।३२।।
प्रेम रूप कौ सुख सहज, सो ध्रुव कहत बनैं न।
कै जानै मन तिहिं बिंध्यौ, कै समुझैं दोउ नैंन।।३३।।
नित्य सहज दूलहु कुँवर, दुलहिनि अति सुकुँवारि।
नयौ चाव नित ही रहै, अद्‌भुत रूप निहारि।।३४।।

जब श्रीप्रिया मन्द मधुर मुस्कुराती हैं, तब श्वास-पवन से उनका नासा-मौक्तिक दोलायमान् होता है, जिसकी छवि-छटा का अवलोकन कर प्रियतम का अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो जाता है और वे चित्रवत् बन जाते हैं।।३०।। श्रीलाड़िली कर-कमलों में दर्पण लिये हुए सहज रीति से विराजमान् हैं। अपने सुन्दर अनियारे नयनों में अञ्जन की रेख रञ्जित करते ही उन्हें प्रियतम का स्मरण हो आया तथा प्रियतम के चित्त की मृदुलता उनके हृदय को बींध गई।।३१।। वह सोचने लगीं कि रूप-रिझवार प्रियतम का कोमल मन मेरी इस अञ्जन पूरित नेत्रच्छवि को देख कर विह्वल विथकित हो उठेगा, तो यह नयनों का शृङ्गार तत्सुखमयी प्रीति में अनीति बन जायगा।।३२।। तत्सुखमय प्रेम का स्वरूप सहज सुखमय है, जिसका विवेचन करना कठिन है। इस रसको तो प्रेम-विद्ध मन ही जानता है किंवा प्रेमी-प्रेमास्पद के युगल नेत्र।।३३।। कुँवरवर लाल नित्य नव दूलह हैं। कोमलाङ्गी प्रिया भी सहज नव वधू हैं। परस्पर वे अति रूपलावण्यमयी छवि छटाओं का अवलोकन करते हैं, तो भी उनमें नव-नव उत्साह का सञ्चार होता रहता है।।३४।।

नव किसोर उन्नत सदा, आनँद की निधि शोभ।
नई अटक की चौंप धुव, परे प्रेम के लोभ।।३५।।
और भोग नहिं प्रेम सम, सबकौ प्रेम सिंगार।
तिहिं अबलंबे रसिक दोउ,सकल रसनि कौ सार।।३६।।

प्रेमी हृदय का सुख सर्वस्व दोहा

प्रेम मदन मद किये रद, और सकल सुख जेत।
कुँवारि सुभाइनि रंग रँग्यौ, छिन-छिन होत अचेत।।३७।।
लाल नैंन भये लाल के, रँगे रँगीली लाग।
अंतर भरि निकस्यौ चहत, इहिं मग मनु अनुराग।।३८।।
लै सुरंग जावक सुकर, चरननिं चित्र बनाइ।
मृदु अँगुरिनि की छबि निरखि, पुतरिनु सौं रहे लाइ।।३९।।

प्रतिक्षण जिनका नवनवायमान् रूप वर्द्धनशील है, ऐसे रसिक दम्पति श्री युगल आनन्द की निधि हैं। प्रेमाङ्कुर उनके हृदय में नित्य उल्लसित एवं विकसित होता रहता है। रस-लोलुप प्रेमी युगल के मन में रस की चौंप उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है।।३५।। प्रेम के समतुल्य अन्य कोई सुख नहीं है। प्रेम ही सबका शिरोमणि शृङ्गार है। प्रेम ही समस्त रसों का सार है, जिस पर अवलम्बित है, रसिक युगल श्रीलाड़िली-लाल का रङ्गविहार।।३६।।

प्रेम ने मदन के गर्व को एवं अन्य समस्त सुखों को तिरस्कृत कर दिया है। वही प्रेम कुँवरि किशोरी लाड़िली की भाव-भङ्गिमाओं के समक्ष पराजित हो कर क्षण-क्षण में मूर्च्छित होता रहता है।।३७।। प्राण-प्रिया की रँगीली प्रेम-लगन में रँग कर प्रियतम श्रीलाल जी के नेत्रों में अनुराग की अरुणिमा छा गई है, मानो उनका प्रिया-प्रेम हृदय से छलक कर नयन-मार्ग से निकल कर बाहर झलक आया है।।३८।। प्रियतम अपने कर-कमलों से अरुणिम अलक्तक रस लिये प्रिया-चरणों को चित्रित करना चाहते हैं परन्तु पादाङ्गुलियों की मृदु छवि का अवलोकन कर उन्हें नयन पुतलियों से स्पर्श कर स्तम्भित रह जाते हैं।।३९।।

दसन खंडि अति रीझि कै, पिय मुख बीरी दीन।
सीवाँ दोउ अनुराग की, भये एक रस लीन।।४०।।
पट भूषन जे कुँवरि के, प्रीतम के ते प्रान।
अति अनन्य रस प्रेम में, परसत नहिं कछु आँन।।४१।।
ते पट भूषन पहिर पिय, सहचरि कौ वपु बानि।
फिरत लियैं अनुराग सौं, कुसुम-बीजना पानि।।४२।।
प्रेम कुँवर कौ समुझि कै, प्रेम-वारि भरि नैंन।
रही लपटि पिय के हियैं, सो सुख कहत बनै न।।४३।।
अमित कोटि जुग कलप लौं, राखे उरजन माहिं।
ते सब लव त्रिसरैनु सम, बीतत जानें नाहिं।।४४।।

प्रियतम के इस विलक्षण प्रेम पर अतिशय रीझ कर प्रिया ने अपनी दशन-खण्डित ताम्बूल वीटिका प्रियतम के मुख में अर्पित की और अनुराग की सीमा श्री युगल गाढ़ाश्लेष में बँधकर प्रेम में तन्मय हो गये।।४०।। कुँवरि किशोरी के वस्त्राभूषण प्रियतम को प्राण-तुल्य प्रिय लगते हैं। प्रेम-रस के अनन्य रसिक प्रियतम, प्रिया से सम्बन्धित वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य का स्पर्श भी नहीं करना चाहते।।४१।। प्रिया के उतीरण पट-भूषणों को धारण कर सहचरि-रूप-धारी प्रियतम अनुराग पूर्वक हाथों में कुसुम निर्मित व्यजन लिये प्रिया का अनुगमन करते रहते हैं।।४२।। यह देख श्री लाड़िली प्रिया, प्रियतम के प्रेम की गम्भीरता का अनुभव करके अधीर हो उठीं तथा उनके नेत्र प्रेमाश्रु-पूरित हो गये और वे प्रेम-विवश हो प्रियतम से लिपट गयीं। इस अपूर्व सुख का वर्णन कौन कर सकता है?।।४३।। श्री प्रिया ने कोटि-कोटि कल्प पर्यन्त प्रियतम को अपने हृदय से लगाये रखा तथापि वह अमित काल प्रेम विशेष के कारण लव-त्रिसरेणु के समान अत्यल्प सा लगा, जिसका उन्हें पता ही नहीं चला।।४४।।

प्रिया प्रेम आसव महा, मादिक रहैं दिन-रैंन।
कैसैं छूटै बिबसता, भरि-भरि पीवत नैंन।।४५।।
महा मोहिनी मन हर्‌यौ, तन डोलत तिन संग।
बोलत नहिं चितवत मनहि, बस्यौ जाइ किहिं अंग।।४६।।
बिनु देखे देखत न कछु, छबि छायौ उर ऐंन।
कुँवरि राधिका लाड़िली, पिय नैननिं के नैंन।।४७।।
जहँ लगि सुख कहियत सकल, सुनि ध्रुव कहत विचारि।
सहज प्रेम के निमिष पर, ते सब डारे वारि।।४८।।
यह सुख समुझन कौं कछू, नाहिंन आन उपाइ।
प्रेम दरीची जौ कबहुँ, सहज कृपा खुलि जाइ।।४९।।

प्रिया का प्रेम अतिशय उन्मादक है, वह प्रियतम को अहिर्निश छकाए रखता है। प्रियतम श्री लाल जी उस प्रेमासव को नेत्र-चषकों में भर-भर कर जब निरन्तर पान करते ही रहते हैं, तो उनकी प्रेम-विवशता कैसे कम हो सकती है ?।।४५।। महामोहिनी प्रिया ने प्रियतम के मन का हरण कर लिया है, अतः प्रियतम उनके सङ्ग लगे फिरते रहते हैं। वे मौन धारण किये चिन्तनलीन हो कर यह अन्वेषण करते रहते हैं कि उनका मन प्रिया के किस अङ्ग में जा बसा है।।४६।। प्रियतम के हृदय में प्रिया की छवि छाई रहती है। अतः वे श्री प्रिया के अतिरिक्त अन्य कुछ देख ही नहीं पाते। ऐसी लाड़िली प्रिया, प्रियतम के नयनों में नयन हो कर बसती हैं।।४७।। श्री ध्रुवदास जी का विचारपूर्ण यह अन्तिम निर्णय है कि जहाँ तक सुखों की सम्पूर्ण सृष्टि है, वह सब सहज प्रेम सुखानुभव के एक निमेष पर न्यौछावर है।।४८।। इस प्रेम-सुख के अनुभव के लिये कोई अन्य उपाय नहीं है। यदि कोई साधन है, तो यह कि अहैतुक श्रीकृपा के झरोखे का खुल जाना।।४९।।

एकै प्रेमी एक रस, श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कहै कोउ और ठाँ, झूठौ जानौं ताहि।।५०।।
तीन लोक चौदह भुवन, प्रेम कहूँ 'ध्रुव' नाहिं।
जगमग रह्यौ जराव सो, श्री वृंदावन माहिं।।५१।।
प्रेमी बिछुरत नाहिं कहुँ, मिल्यौ न सो पुनि आहि।
कौन एक रस प्रेम कौ, कहि न सकत ध्रुव ताहि।।५२।।
ढूँढ़ि फिरै त्रैलोक जो, बसत कहूँ 'ध्रुव' नाहिं।
प्रेम रूप दोउ एक रस, बसत निकुंजनि माहिं।।५३।।

प्रेमधाम श्री वृन्दावन दोहा

नित्य भूमि मडंल सहज, श्री वृंदावन ऐंन।
रतन जटित जगमगि रह्यौ, रसिकनि मन सुख दैंन।।५४।।

कोई एक-रस एवं सहज अनन्य-प्रेमी है, तो वह केवल श्री राधावल्लभ है। यदि कोई भ्रमवश यह कहता है कि ऐसे प्रेमी कहीं अन्यत्र भी हैं तो मैं उसे सर्वथा मिथ्यावादी मानता हूँ।।५०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि तीनों लोक एवं चौदह भुवनों में कहीं भी सहज प्रेम का दर्शन नहीं है, वह तो एक मात्र श्री वृन्दावन में मणि-काञ्चनवत् जगमगा रहा है।।५१।। जो वियुक्त होते हैं, वे प्रेमी नहीं है एवं जो वियुक्त हो कर पुनः मिलते हैं, वे भी प्रेमी नहीं हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की सहज एक रस स्थिति को परिभाषित करने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है।।५२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि कोई त्रिलोकी में ढूँढ़ता फिरे तो भी उसे ऐसे सहज प्रेमी कहीं देखने को भी नहीं मिलेंगे जैसे साक्षात् प्रेम स्वरूप श्री युगल सदा एकरस वृन्दावन की निभृत-निकुञ्जों में निवास करते हैं।।५३।।

श्री वृन्दावन धाम श्री श्यामा-श्याम की नित्य-लीला भूमि है, जो नैसर्गिक रूप से मण्डलाकार (गोलाकार) है, मणि-खचित एवं प्रकाशमय है तथा रसिक जनों के मन के लिये परम सुखदायी है।।५४।।

तरनि-सुता चहुँ दिसि बहै, सोभा लियैं अथाह।
मनौं ढरयौ सिंगार रस, कुंडल बाँधि प्रवाह।।५५।।
आवत उपमा और उर, अद्भुत परम रसाल।
वृंदावन पहिरी मनौं, नील मनिनु की माल।।५६।।
हेम बरन अद्भुत धरनि, मनिनु खचित बहुरंग।
बिच-बिच हीरनि की झलक, मानौं उठति तरंग।।५७।।
मृगी मयूरी हंसिनी, भरी प्रेम-आनंद।
मत्त मुदित पीवत रहैं, जुगल कमल-मकरंद।।५८।।
कुंज-कुंज प्रति झलमलै, आसन सेज सुदेस।
सहज सौंज छिन-छिन नई, कहि न सकत छबि लेस।।५९।।

श्री वृन्दावन के चारों ओर अमित शोभामयी श्री यमुना प्रवाहित है; मानो मूर्तिमान् शृङ्गार-रस ही कुण्डलाकार हो कर प्रवाहबद्ध है।।५५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि यमुना-प्रवाह की इस शोभा को देखकर मेरे मन में एक और अद्भुत परम रसमयी उपमा स्फुरित हो रही है, ऐसा प्रतीत होता है मानो श्री वृन्दावन ने नीलमणियों की माला धारण कर रखी हो।।५६।। श्री वृन्दावन की भूमि बहुरङ्गी विविध मणियों से खचित स्वर्णमयी है तथा उन मणियों के बीच-बीच में हीरक मणियों की झलक उठती हुई तरङ्गों की शोभा की भाँति है।।५७।। प्रेमानन्द रसोन्मत्त मृगी, मयूरी एवं हंसिनी श्री युगल छवि रूपी कमल-पराग का निरन्तर पान करती रहती हैं।।५८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री वृन्दावन की प्रत्येक कुञ्ज के अभ्यन्तर भाग में परम शोभामय आसन एवं शय्याएँ सुसज्जित हैं तथा प्रतिक्षण नित्य-नूतन सेवा-सामग्री भी उपस्थित है, जिसकी शोभा का लेश वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।।५९।।

आनँद बन बरसत कुँवरि, कुँजनि में जहाँ नित्य।
सुरँग लता द्रुम फूल फल, झूमि रहे जित कित्य।।६०।।
नेकु होत ठाढ़ी कुँवरि, जेहि फुलवारी माहिं।
पत्र फूल तहँ के सबै, पीत बरन ह्वै जाहिं।।६१।।

वृन्दावनेश्वरी श्री राधा की छबि दोहा

प्रेम रूप के मोद की, सोभा बढ़ी विसाल।
सोई लड़ैती-लाल जी, कीनी है उर माल।।६२।।
रौंम-रौंम प्रति लाड़िली, सहज रूप की खानि।
प्रीतम की जीवन इहै, सरस मंद मुसिकान।।६३।।
अति सलज्ज अनुराग भरे, अनियारे छबि ऐंन।
अरुन विसद सित सोहने, काजर भींने नैंन।।६४।।

श्री वृन्दावन की कुञ्जों में श्री राधा नित्य आनन्द रूपी जल की वृष्टि करती रहती हैं, जिससे वहाँ के हरित लता, द्रुम, पत्र, पुष्पादि यत्र-तत्र लहराते झूमते रहते हैं।।६०।।* जिस पुष्प-वाटिका में कुँवरि किशोरी आकर किञ्चित् विरम जाती हैं, तो उनकी स्वर्णिम आभा से वहाँ के पत्र-पुष्पादि सभी तद्रूप पीत-वर्ण के हो जाते हैं।।६१।।

प्रेम एवं रूप के उल्लास की वृद्धि-प्राप्त शोभा हैं लाड़िली श्रीराधा; जिन्हें रसिक लाल ने अपने उर की माला बना रक्खा है।।६२।। लाड़िली श्रीराधा रोम-रोम प्रति सहज रूप की निधि हैं, जिसकी रसमयी मन्द मुसकान ही प्रियतम का जीवन है।।६३।। श्री राधा के लजीले, अनुराग रञ्जित नयन नुकीले, छबीले, रतनारे, श्वेत, सुहावने, विशाल एवं कजरारे हैं।।६४।।

---

* नोट—यह दोहा सं॰ १८६० एवं १८९० वि॰ की प्रतियों में नहीं है।

श्रवनाइत बाँके चपल, घूँघट पट न समात।
अवलोकत जेहि ओर कौं, छबि-बरषा ह्वै जात।।६५।।
हाव-भाव लावण्यता, कही सकल जे कोक।
निसि दिन कर जोरैं तहाँ, सेवतिं नैंननिं नौंक।।६६।।
अति सुदेस रह्यौ झलकि कै, बैंदा सुरँग रसाल।
मनौं सुहाग अनुराग कौ, प्रगट बिराजत भाल।।६७।।
नख-सिख पट भूषन बने, कहि न सकत कछु रूप।
सीस-फूल सिंगार कौ, मानौं छत्र अनूप।।६८।।
झलक-कपोलनि कहा कहौं, मुख-पानिप बहु भाँति।
अखियाँ रपटत चितै तहँ, डीठि नाहिं ठहराति।।६९।।

कानों तक फैले हुए तिरछी चितवन वाले प्रिया के चञ्चल नेत्र घूँघट-पट में समाते नहीं हैं। वे जिस ओर भी दृष्टिपात करती हैं, वहाँ शोभा की वृष्टि हो जाती है।।६५।। कोक-शास्त्र में हाव-भाव, हेला, लावण्य आदि के जो भी स्वरूप वर्णित हैं, वे सब कर-बद्ध होकर विनीत भाव से दिन-रात श्रीलाड़िली के नयन-कटाक्ष की कृपाकोर चाहते हैं।।६६।। बहुरत्न जटित रसीला, अति सुन्दर बैंना (मस्तक का आभूषण विशेष "टीका") शोभा की वृद्धि कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो अनुराग ही सुहाग का मूर्त्तिमान् रूप धारण कर प्रिया के सुन्दर भाल पर प्रकट हो गया है।।६७।। नख-शिख पर्यन्त श्री प्रिया वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। उनकी अद्भुत रूप-छटा का वर्णन असम्भव है। शीश पर विराजित शीशफूल मानो शृङ्गार-रस का अनुपम छत्र है।।६८।। सुन्दर कपोलों की आभा एवं श्रीमुख का अनुपम लावण्य अनिर्वचनीय है। उस चमत्कृत रूप पर दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती, आँखें फिसल कर गिर पड़ती हैं।।६९।।

नासा-बेसरि फबि रही, सोभा की मित नाहिं।
मनौं मीन तहाँ थरहरै, पर्‌यौ रूप-जल माहिं।।७०।।
बन्यौ कपोल पर असित तिल, अलक रही तहँ आइ।
प्रगट लाल कौ मन मनौं, पर्‌यौ फंद बिच जाइ।।७१।।
नैंन अधर कुच कर चरन, झलकत नये तरंग।
कनक बेलि मनौं फूलि रही, नख-सिख कमल सुरंग।।७२।।
प्रिया बदन वर कंज पर, भ्रमत भृंग पिय नैंन।
छबि-पराग रस-माधुरी, पीवत हू नहिं चैंन।।७३।।

प्रेमियों का तत्सुखित्व भाव दोहा

ठौर-ठौर पिय रचत हैं, आसन-कुसुम-रसाल।
को जानैं कहाँ बैठि हैं, अलबेली नव बाल।।७४।।

नासाग्र भाग पर बेसर फब रही है, जिसका सौन्दर्य अमित है। लगता है रूप के जल में मीन कम्पायमान् हो रहा हो।।७०।। लाड़िली के कपोल फलक पर नील-तिल के समीप अलक-लट का सुशोभन, ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकटतः श्रीलाल का मन रूप के जाल में आ फँसा हो।।७१।। श्री राधा के नेत्र, अधर, वक्षोज, कर एवं चरणों में रूप-सौन्दर्य की अद्भुत आभा प्रतिक्षण प्रस्फुटित होती रहती है, मानो कोई कनक-वल्लरी हो, जिसमें नख-शिख पर्यन्त सुरङ्ग कमल विकसित हैं।।७२।। प्रिया के मुख-सरोज मण्डल पर श्रीलाल के अलि रूपी नयन सदैव मँडराते रहते हैं। मुखारविन्द के छवि- मकरन्द का पान करते हुए भी वे सदैव तृषावन्त ही बने रहते हैं।।७३।।

यह विचार करके कि अलबेली नव नागरी न जाने किस आसन पर विराजमान् होंगी, रसिक प्रियतम प्रत्येक कुञ्ज में स्थान-स्थान पर छवि-पुञ्ज कुसुमासनों की रचना करते हैं।।७४।।

समुझि हेत पिय कौ जबहिं, बैठी तहँ मुसिकाइ।
पिय ग्रीवाँ-भुज मेलि कै, अँग-अँग रहे लपटाइ।।७५।।
रची सेज मृदु दलनि लै, अरुन पीत अरु सेत।
ता पर राजै लाड़िली, इतनौ मन कौ हेत।।७६।।
रंग-रंग के सुमन पिय, लै रचि माल बनाइ।
तन-मन कौ सुख को कहै, जब देखत पहिराइ।।७७।।
रूप-माधुरी की झलक, निरखि रीझि सुख पाइ।
चहुँ दिसि फिरि आपुन कुँवरि, पगनि सीस रहे लाइ।।७८।।
रूप-सिंधु में मन परयौ, ढरत नैंन दुहुँ नीर।
डगमगात सखियनि गहे, देखे लाल अधीर।।७९।।

अपने रसिक लाल प्रियतम की अपरिमित प्रीति को समझ कर श्रीप्रिया मन्द मुस्कराते हुए किसी एक पुष्पासन पर विराजमान् हो गयीं, तब प्रियतम उनकी ग्रीवा से अपनी दोनों भुजाएँ मिलकर उनके अङ्ग-अङ्ग में लिपट गये।।७५।। प्रेमासक्त रँगीले प्रियतम यह सोच कर कि मेरी प्रिया इस शय्या पर सुखासीन हों, बड़े चाव से अरुण, पीत एवं श्वेत वर्ण के विविध मृदुल कुसुम दलों को ले कर सुरङ्ग शय्या की रचना करते हैं।।७७।। प्रियतम भाँति-भाँति के सुमनों की माला रच कर अपनी प्राण-प्रिया को धारण कराके जब उनका दर्शन करते हैं, तो उस समय के उनके तन-मन के अपार सुख का वर्णन कर सकना वाणी से परे है।।७७।। प्रिया रूप- माधुरी का दर्शन कर प्रियतम अति मुग्ध हो गये और उनका हृदय प्रेमानन्द से आप्लावित हो उठा, अपनी प्रिया के चारों ओर घूम कर उन्होंने अपना मस्तक उनके चरणों में रख दिया।।७८।। प्रिया के अगाध रूप सिन्धु में लाल का मन डूब गया एवं उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु-धारा प्रवाहित हो चली। उन्हें अधीर एवं डगमगाते देख कर सखियों ने उन्हें सँभाल लिया।।७९।।

लिये अंक भरि लाड़िली, बिबस लाल कौं जानि।
कही परत सखि कौन पै, बिबि मन की अरुझानि।।८०।।
प्रेम-प्रेम मन-मन समुझि, नैंन सजल झलकाति।
मुख निसरत नहिं बैंन कछु, बिबस दोउ ह्वै जाति।।८१।।

रति-विहार एवँ सुरतान्त छबि दोहा

पिय-प्यारी दोउ रँग भरे, ढरे सेज पर आनि।
बिबस सखी चितवतिं खरी, महा प्रेम लपटानि।।८२।।
परे प्रेम सुख रंग में, दोऊ नवल किसोर।
इतनी नहिं जानति सखी, निसा होत कब भोर।।८३।।
पीक कहूँ अंजन कहूँ, मुक्तावलि रही टूटि।
सिथिल बसन भूषन कहूँ, अलकावलि रही छूटि।।८४।।

लाल की प्रेम-विवश दशा को देख कर लाड़िली श्री प्रिया ने उन्हें अपने अङ्क में समेट लिया। हे सखि ! श्री युगल की इस अद्भुत प्रेमासक्ति का वर्णन कर सकने की भला किसमें सामर्थ्य है।।८०।। यह युगल श्रीलाड़िली-लाल अपनी पारस्परिक अगाध प्रीति को अपने-अपने मन में समझ कर सजल नेत्र हो जाते हैं, वाणी कण्ठावरुद्ध हो जाती है और प्रेम-विवश दशा को प्राप्त हो जाते हैं।।८१।।

प्रेम रसासव में छके हुए श्री युगल पर्यङ्क पर आ ढले हैं। उनकी इस प्रेममयी उलझन का सखियाँ महा प्रेमाविष्ट चित्त से दर्शन करती हैं।।८२।। हे सखि ! ये रसिक युगल प्रेम के सुखमय विलास में इतने निमग्न हैं कि इन्हें निशि-गत भोर का भी पता नहीं चलता।।८३।। सुरतोपरान्त कहीं तो मुखारविन्द ताम्बूल की पीक से अनुरञ्जित् हो रहा है, तो कहीं अञ्जन का मषि-विन्दु शोभित है तथा वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, शिथिलित अलकावलि झूल रही है।।८४।।

श्रम-जलकन छबि बदन पर, चितवत प्रीतम ताहि।
पानिप कौ पानी मनौं, प्रकट देखियत आहि।।८५।।
अंजन तिल रह्यौ अधर पर, नैननिं पर लगी पीक।
इत हद करी सिंगार की, उत दई प्रेम की लीक।।८६।।
एक प्रेम विवि मन हरे, अरुझी मृदु भुज-ग्रींव।
उभै सिंधु मिलि उमड़ि चले, रहत तहाँ क्यौं सींव।।८७।।
पीवत मुख छबि माधुरी, व्याकुल रहैं दोउ नैंन।
रौंम-रौंम बाढ़ी त्रिषा, जहाँ प्रेम कौ मैंन।।८८।।

प्रस्वेद विन्दु श्री प्रिया मुखमण्डल की शोभा की वृद्धि कर रहे हैं, श्रीलाल उनके मुखारविन्द की शोभा को अति मुग्ध-भाव से देख रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो लावण्य का सार ही विन्दु के रूप में प्रकट हुआ हो।।८५।। प्रियतम के अधर पर अञ्जन-निर्मित तिल शोभित है एवं प्रिया के नयनों पर ताम्बूल का अरुणिम रङ्ग रञ्जित है। ऐसा प्रतीत होता है मानो एक ओर शृङ्गार की सीमा है, तो दूसरी ओर प्रेम की अन्तिम रेखा खींच दी हो।।८६।। एक प्रेम ने ही श्री युगल को अपने वशीभूत कर लिया है। ग्रीवा में पड़ी दोनों की सुकोमल भुजाओं का गाढ़ आलिङ्गन देख कर ऐसा लगता है, मानो दो सागर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके उमड़ पड़े हों।।८७।। अतिशय प्रेमासक्त श्री लाड़िली-लाल के युगल-नयन, परस्पर छवि-माधुरी का निरन्तर पान करते हुए भी अधीर एवं अतृप्त ही रहे आते हैं। उनके रोम-रोम में प्रेम-तृषा की अभिवृद्धि होती रहती है। श्री युगल की इस शृङ्गार-केलि में प्रेम एवं काम का भेद नहीं है, उनका प्रेम ही काम है और काम ही प्रेम है।।८८।।

रस-रंगी रस-रंग में, भींजे सहज सनेह।
परत प्रेम आनंद में, दोउनि भूलि गई देह।।८९।।
भये अचेत पुनि चेति कै, उठे कुँवर सुकुँवार।
नैंना प्यासे रूप के, पिवत डीठि भई धार।।९०।।
कहि न सकत तिन की दसा, छिन-छिन नौतन नेह।
एक प्रान द्वै रहे तहँ, देखन कौं, द्वै देह।।९१।।
एक स्वाद 'ध्रुव' एक रस, प्रेम अखंडित धार।
इकछत प्रेम-दसा रहै, सकल सुखनि कौ सार।।९२।।
प्रेम-तरंगनि में परे, छिन-छिन प्रति यह केलि।
महामत्त घूमत फिरैं, दोउ कंठ - भुज मेलि।।९३।।

रसमय केलि में ही आनन्द का अनुभव करने वाले रँगीले युगल श्री-श्यामा-श्याम सहज प्रेम में भीगे हुए सरस विहार में निमग्न रहे आते हैं। इस अद्भुत प्रेम में ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें देह की सुध-बुध भी नहीं रहती।।८९।। घनीभूत प्रेमावेश में जो मूर्च्छित होते हैं, वे परम सुकुमार कुँवर पुनः प्रेम-केलि में चैतन्य हो जाते हैं और अमित तृषावन्त हुए प्रिया की रूपसुधा-माधुरी का सतत पान करते रहते हैं। अतः उनकी दृष्टि रूप-रस पान की एक विशद धारा जैसी बन जाती है।।९०।। श्री युगल प्रियतम की प्रतिक्षण-नित्य नूतनता को प्राप्त होने वाली प्रेम तन्मय दशा का वर्णन कर सकना असम्भव है, वे प्रेम-रस में ओतप्रोत अद्वय युगल एक प्राण द्वय तनु हैं।।९१।। श्री युगल-प्रेम की रुचि अभिन्न है, उनका प्रेमानुभव भी एक एवं समान है, उनके प्रेम की धारा अखण्ड, अभङ्ग एवं एकरस नित्य प्रवहनशील है, अतएव एतज्जातीय प्रेम ही समस्त सुखों का सार एवं सर्व-मूलाधार है।।९२।। प्रेम की तरङ्गों में प्रवाहित श्री युगल प्रतिक्षण नव-नव केलि-परायण रहते हैं। महा प्रेमोन्मत्त हुए वे परस्पर गलबहियाँ दिये श्री वृन्दावन में विचरण करते रहते हैं।।९३।।

बिलसत नित्य-विहार दोउ, प्रेम खेल तिहि ठौर।
और कछू परसत नहीं, महा रसिक सिरमौर।।९४।।

सहचरियों का प्रेम-सुख दोहा

प्रेम पगी तैसी सखी, रँगीं दुहुँनि के हेत।
सहज माधुरी रूप की, नैननिं भरि-भरि लेत।।९५।।
अद्भुत प्रेम सखीनि कौ, बिमल अखंडित धार।
रसिक कुँवर दोउ लाड़िले, करि राखे उर-हार।।९६।।
सहज प्रेम की सींव दोउ, नव किसोर वर जोर।
प्रेम कौ प्रेम सखीन कैं, तेहि सुख कौ नहिं ओर।।९७।।
हारि-हारि जीतत दोऊ, जीति-जीति रहे हारि।
महा प्रेम देखत सखी, जहँ तहँ रहीं बिचारि।।९८।।

नित्य प्रेम केलिमयी भूमि श्री वृन्दावन-स्थली में ये श्री श्यामा-श्याम, रसिक युगल सदैव नित्य-विहार-विलास परायण रहते हैं। ये रसिक शिरोमणि प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का स्पर्श ही नहीं करते।।९४।।

श्री श्यामाश्याम युगल के प्रति तत्सुख प्रेम में रँगी, प्रेम पगी सखियाँ युगल की सहज रूप-माधुरी का अपने नेत्र-चषकों में भर-भर कर निरन्तर पान करती रहती हैं।।९५।। सखियों के अद्भुत प्रेम की धारा अखण्डित एवं उज्जवल है, जिन्होंने रसिक युगल श्रीलाड़िली-लाल कुँवर को अपना हृदयहार बना रखा है।।९६।। यद्यपि युगलवर नवकिशोर प्रियतम सहज प्रेम की परमावधि हैं, तथापि सखियों का प्रेम तो प्रेम का भी प्रेम है। उनके सुख एवं आनन्द की कोई सीमा नहीं है।।९७।। जब प्रेम-केलि में युगल प्रियतम बारम्बार पराजित हो-हो कर विजयी होते है एवं विजयी हो-हो कर पराजित होते हैं तब इस महा प्रेमकेलि का दर्शन करनेवाली सहचरियाँ इस रस-चिन्तन में लीन हो जाती हैं।।९८।।

नैंकु भौंह की मुरनि में, लाल दीन ह्वै जात।
जल सूखे जलजात ज्यौं, बदन मृदुल कुँभिलात।।९९।।
भर्‌यौ हियौ अनुराग सौं, रहि न सकी अकुलाइ।
लये लाइ पिय हीय सौं, अधर-सुधा-रस प्याइ।।१००।।
मान मनावन छुटि गयौ, पर्‌यौ उपटि तहाँ प्रेम।
अतंर भरि बाहिर भर्‌यौ, रहे लीन ह्वै नेम।।१०१।।
सहज रूप कौ कंज मुख, तामें मुसिकनि मंद।
जीवन पिय दृग सखिनु के, सोइ तहाँ मकरंद।।१०२।।
अलबेली हँसि कैं जबहि, पिय सौं कहै कछु बात।
धनि-धनि कै मानत सखी, तेहि छिन की बलिजात।।१०३।।

श्री प्रिया की भृकुटि थोड़ी सी टेढ़ी होते ही लाल अति दीन भाव में हो जाते हैं। उनका मृदु मुख-कमल जल-विहीन कमल की भाँति मुरझा जाता है।।९९।। प्रियतम की इस प्रेम-विवश दशा को देखकर प्रिया का हृदय अनुराग से प्लावित हो उठता है। वे आकुल एवं अधीर हो जाती हैं, तब प्रियतम को हृदय से लगा कर उन्हें अधर-सुधा का पान कराती हैं।।१००।। मानिनी प्रिया के प्रति लाल की मनुहार-चेष्टाओं के प्रसङ्ग में अकस्मात् उत्थित प्रेम की उत्ताल तरङ्ग ने सहज ही प्रिया का मान भङ्ग कर दिया और तब प्रिया का प्रेम-पूरित हृदय छलक उठा, जिसमें समस्त नेम चेष्टाएँ लीन हो गईं।।१०१।। श्री प्रिया का मुख मानो सहज रूप का कमल है जिसमें उनका मन्द स्मितमय मकरन्द निरन्तर निर्झरित होता रहता है। वही प्रियतम एवं सहचरियों के नेत्रों का आधार एवं जीवन है।।१०२।। अलबेली नव लाड़िली जब हँस कर प्रियतम से कुछ बात कहती हैं, तो सखियाँ उस क्षण को धन्य-धन्य मानती हैं और बलिहार जाती हैं।।१०३।।

रह्यौ झलकि वृंदा-विपिन, कुँवरि रूप के तेज।
रहे कुँवर छकि कै तहाँ, धरि न सकत पग सेज।।१०४।।
लीने कर गहि लाड़िली, लै बैठी वर अंक।
बदन-बदन यौं जुरि रहे, मनु मिले कंज मयंक।।१०५।।
परम रसिक आसक्त दोउ, भूली तिनहिं निहारि।
अंग-अंग मिलि उरझि रहे, सकत नाहिं निरवारि।।१०६।।
प्रेम मदन कौ सुख जहाँ, सहज प्रेम सिंगार।
आदि मध्य अवसान इक, इक रस विमल विहार।।१०७।।
वृंदावन सरवर भर्‌यौ, प्रेम-नीर गंभीर।
तामें मज्जत रसिक दोउ, बिसरे नैननिं चीर।।१०८।।

कुँवरि किशोरी के सरस रूप प्रकाश से श्री वृन्दावन जगमगा रहा है, जिसका अवलोकन कर रसिक कुँवर रस में छके रहते हैं एवं उनके रूप का तेजोमय प्रभाव ऐसा है कि उनका अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो जाता है और वे प्रिया के आस्तरण पर पद स्थापन करने में सङ्कुचित होते हैं।।१०४।। प्रियतम की इस मनःस्थिति को भाँप कर लाड़िली प्रिया, प्रियतम का हस्त- कमल पकड़ कर उन्हें अपने अङ्क में विराजमान् कर लेती हैं। तब दोनों के मिलित मुखों की छटा ऐसी प्रतीत होती है, मानो एक ही स्थान पर कमल-शशि का मिलन हो रहा हो।।१०५।। रसिक रँगीले श्री युगल का अङ्ग-प्रत्यङ्ग गाढ़ाश्लेषाबद्ध है और अत्यन्त आसक्तिवश वह इससे निवृत होने में असमर्थ हैं। ऐसे परस्पर दृढ़ प्रेमासक्त दम्पति की यह छवि-छटा देख कर सखियाँ आत्म-विस्मृत हो जाती हैं।।१०६।। वृन्दावन के नित्य-विहार देश में प्रेमी रूपी मदन का सुख युगल प्रेम का सहज शृङ्गार है। इसके आदि-मध्य-अवसान में विशुद्ध प्रेम ही विहार रूप है।।१०७।। वृन्दावन रूपी गम्भीर सरोवर प्रेम-जल से नित्य आपूरित रहता है, जिसमें रसिक युगल श्री श्यामा- श्याम प्रेम में निमग्न हुए मज्जन करते रहते हैं। सखियाँ निर्निमेष नयनों से इस छवि-छटा का पान करती रहती हैं।।१०८।।

सहज सघन छबि हरन मन, श्री वृंदावन बाग।
रह्यौ झूमि फलिकैं तहाँ, रसमय फल अनुराग।।१०९।।
प्रिया बदन तहँ झलमलै, सहज रूप कौ चंद।
बिमल प्रकास अखंड भर्‌यौ, सुधा प्रेम मकरंद।।११०।।
श्रवत सोई मकरंद दिन, प्रीतम नैंन-चकोर।
प्रेम-अमी रस-माधुरी, पान करत निसि-भोर।।१११।।
सघन निकुंजनि खोर प्रति, सुख कौ सहज निवास।
रही झूमि जहाँ फूलि कै, लता सुरंग सुवास।।११२।।
परत दृष्टि जेहि सुमन पर, पिय प्रवीन यह जानि।
धाइ कुँवर सोइ फूल लै, देत कुँवरि कौं आनि।।११३।।
बिहरत दोउ अनुराग में, नवलासी लियैं पानि।
न्यारे तन देखत सखी, छुटत न मन लपटानि।।११४।।

अतिशय सौन्दर्यमय श्री वृन्दावन सहज मनहरण वाटिका है, जो कि रसमय अनुराग रूपी फल से फलित एवं दोलित है।।१०९।। श्री वृन्दावन में सर्वत्र श्रीप्रियामुख-शशि की ज्योत्स्ना छिटकी रहती है एवं उसका विमल प्रकाश चारों ओर व्याप्त रहता है। उनके उस मुख-शशि से प्रेम-सुधा रूपी मकरन्द का सतत निर्झरण होता रहता है।।११०।। श्रीप्रियामुख-चन्द्र निरन्तर प्रेम-सुधामय मकरन्द का निर्झरण करता रहता है एवं लाल के चकोरवत् तृषित नयन अहिर्निश उस मुख-सुधा-पराग का पान करते रहते हैं।।१११।। वृन्दावन् की सघन निकुञ्ज वीथियों में सुख, सहज रूप में निवास करता है। यहाँ सुरङ्ग, सौरभमयी, कुसुमित लताएँ नित्य झूमती रहती हैं।।११२।। कुसुमित वृन्दावन में जब कभी किसी एक पुष्प पर प्रिया की दृष्टि ठहर जाती है, तो सुजान प्रियतम प्रिया की रुचि को समझ कर तुरन्त उस पुष्प को लाकर श्री प्रिया के कर-कमलों में अर्पित करते हैं।।११३।। अनुराग भरे नव दम्पति कर कमलों में फूलों की छड़ी लिये वृन्दावन में विहरण करते हैं।

घटत न मन की चाह ध्रुव, हारत नहिं दृग चाहि।
तृषित तऊ पिय लाड़िलौ, कौन प्रेम रस आहि।।११५।।
प्रेम फूल प्यारी प्रिया, सुरँग सरूप सुवास।
इक जीवन आसक्त पुनि, मधुप लाल रहैं पास।।११६।।
अति सुकुँवारी लाड़िली, धरत चरन तेहिं ठौर।
नैंन-कमल के दल तहाँ, रचत रसिक सिरमौर।।११७।।
प्रेम अंबु सर विपिन वर, अति अगाध मित नाहिं।
कमल-कमलिनी रसिक दोउ, रहे फूलि तिहिं माहिं।।११८।।
भ्रमत सखी भँवरी तहाँ, पीवत रूप पराग।
पलु-पलु प्रति बाढ़त रहै, मादिक नव अनुराग।।११९।।

यद्यपि तन से वे पृथक् दिखाई पड़ते है, तथापि उनका मन सदैव संयुक्त एवं संश्लिष्ट है।।११४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि लाड़िले प्रियतम के मन में प्रेमाभिलाषा कभी न्यून नहीं होती और न ही उनके नेत्र कभी तृप्ति का अनुभव करते हैं। वे सदैव रूप के तृषातुर बने रहते हैं; न जाने यह कौन सा विलक्षण प्रेम है।।११५।। लाड़िली प्रिया एक सुन्दर प्रेम का पुष्प हैं, जो अति सुन्दर, सुरङ्ग एवं सुवासित है। आसक्त मधुप लाल का यही प्रेम-पुष्प एकमात्र जीवन है, वे निरन्तर प्रिया-प्रेमरूपी पुष्प की सन्निधि ही चाहते हैं।।११६।। अति कोमलाङ्गी लाड़िली श्री प्रिया जहाँ कहीं अपने चरण स्थापित करती हैं, वहाँ रसिक लाल अपने नेत्र-कमल दलों का आसन बिछाते हैं।।११७।। विपिनराज श्री वृन्दावन प्रेम रस परिपूरित अमित अगाध रस का सरोवर है, जिसमें कमल-कमलिनी रूप रसिक युगल नित्य विकसित हैं।।११८।। कमल-कमलिनी रूपी रसिक युगल के रूप-पराग का पान करती हुई भ्रमरीवत् सखियाँ उनके ही चारों ओर मँडराती रहती हैं। उनका नवानुराग प्रतिपल वृद्धि को प्राप्त होता रहता है।।११९।।

नित्य-विहार सूचन

दोहा

प्रेम-खेत वृंदाविपिन, सुभट नागरी स्याम।
हाव-भाव आयुध लियैं, करत सुरत-संग्राम।।१२०।।

कुंडलिया

पिय-नैंननिं को मोद सखी, प्रिया-नैंन को मोद।
रहत मत्त विलसत दोऊ, सहजहि प्रेम-विनोद।।
सहजहि प्रेम-विनोद, रूप देखत दोउ प्यारे।
लोइनि मानत जीति, दुहुँनिं जद्यपि मन हारे।।
परे नवल नव केलि, सरस हुलसत हिय सैंननि।
छिन-छिन प्रति रुचि होइ अधिक सुंदर पिय-नैंननिं।।१२१।।

दोहा

नित्य नवल वृंदा-विपिन, नित्य नवल धर-हेम।
नित्य नवल दोऊ लाड़िले, नित्य नवल तहँ प्रेम।।१२२।।

श्री वृन्दावन प्रेम-रण भूमि है, जिसके महान् योद्धा हैं, नागर युगल श्री श्यामाश्याम। वे हाव-भाव रूपी शस्त्र धारण किये हुए सुख-रूपी संग्राम के लिये सदैव तत्पर रहते हैं।।१२०।। हे सखि! प्रियतम के नेत्रों का उत्साह ही प्राणप्रिया के नेत्रों का उत्साह है। रसोन्मत्त श्री युगल सहज प्रेम विनोदमय मधुर विलासों में रमण करते हैं। इस सहज प्रेम-क्रीड़ा में रूप का सतत पान करते हुए मन-मन में प्रेम से पराजित होकर भी उनके नेत्रों में विजय-श्री सूचित होती रहती है। नवल युगल सरस नूतन केलि रूपी संग्राम में मग्न रहते हैं। उनका हृदय विविध इङ्गितों से उल्लसित होता रहता है, जिसके फलस्वरूप सुन्दर प्रियतम के नेत्रों में प्रतिक्षण नव-नव रुचियों का संवर्धन होता रहता है।।१२१।। नित्य-नूतन श्री वृन्दावन की स्वर्णमयी भूमि नित्य- नूतन है, जहाँ नित्य नवल युगल लाड़िले नित्य-नवीन प्रेम का रसास्वादन करते रहते हैं।।१२२।।

वृंदा विपिन बिसात पर, प्रेम कौ खेल अपार।
निवरत नहिं छिन-छिन बढ़ै तैसेहिं खेलनहार।।१२३।।
बिनु रसिकन वृंदाविपिन, को है सकत निहारि।
ब्रह्म-कोटि ऐश्वर्ज के, वैभव की तहँ वारि।।१२४।।
पीवत मुख-छबि-माधुरी, व्याकुल रहैं तन-नैंन।
रौंम-रौंम बाढ़ी तृषा, जहाँ प्रेम कौ मैंन।।१२५।।

उपसंहार दोहा

श्री राधावल्लभ प्रेम की, प्रेमावलि गुहि लीन।
'हित ध्रुव' जेतिक बुद्धि ही, तासौं रचि-पचि कीन।।१२६।।
घटि-बढ़ि अक्षर होंइ जौ, तहाँ दृष्टि जिनि देहु।
श्री राधावल्लभ लाल जस, यहै जानि उर लेहु।।१२७।।

श्री वृन्दाविपिन रूपी बिसात पर प्रेम की अनन्त क्रीड़ा विस्तृत है, जिसका कभी अवसान नहीं होता वरं प्रतिक्षण वृद्धि को ही प्राप्त होती रहती है, कारण कि इस अनादि, अनन्त खेल के खिलाड़ी हैं, रसिक दम्पति श्री श्यामा-श्याम।।१२३।। वृन्दावन के रस-मर्मी रसिकों के अतिरिक्त वृन्दावन के रस-वैभव का साक्षात्कार कर सकने में अन्य कोई सिद्धान्तवादी सक्षम नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि में भगवदैश्वर्यमय ज्ञान का महत्त्व है, जो रसानुभव में व्यवधान है। (अतएव रसानुभूति में ब्रह्मकोटि ऐश्वर्यरूपी बाड़ है)।।१२४।। परस्पर मुख-छबि-माधुरी का निरन्तर पान करते हुए भी श्री श्यामाश्याम के तन, मन, नयन, आतुर एवं अधीर बने रहते हैं। जहाँ मदन ही प्रेम है वहाँ उनके रोम-रोम में प्रेमतृषा की प्रतिपल अभिवृद्धि भी सहज स्वाभाविक है *।।१२५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं मैंने यथामति समझ बूझ कर श्री राधावल्लभ के प्रेम की प्रेमावलि रूपी माला गूँथ दी है।।१२६।। यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो बुधजन उस पर ध्यान न दें। यह श्री राधावल्लभ का यश-रस है; यह विचार कर इसे सप्रेम हृदय में धारण करें।।१२७।।

* नोट—यह दोहा सं॰ १८६० एवं १८९० वि॰ की प्रतियों में नहीं है।

प्रेम-सार 'ध्रुव' कछु कह्यौ, अपनी मति अनुमान।
अति अगाध सुख-सिंधु-रस, ताकौ नाहिं प्रमान।।१२८।।
मन-वच जो उर धारि है, प्रेमावलि कौं नित्त।
प्रेम-छटा 'ध्रुव' सहज ही, उपजैगी तिहि चित्त।।१२९।।
'हित ध्रुव' भई ''प्रेमावली'', सुनत जुगल दरसाहिं।
सोलह सौ इकहत्तरा, श्री वृंदावन माहिं।।१३०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने अपनी बुद्धि प्रमाण से प्रेम के सार तत्त्व का किञ्चित् वर्णन किया है। वस्तुतः प्रेम अत्यन्त अगाध रस का सुख-समुद्र है, जिसका कोई पारावार नहीं है।।१२८।। जो कोई भी इस 'प्रेमावलि' को नित्यप्रति मन-वाणी के द्वारा हृदय में धारण करेगा, निश्चित ही उसके मन में प्रेम-छटा का स्फुरण होगा।।१२९।। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए अन्त में श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस 'प्रेमावली' की रचना संवत् सोलह सौ इकहत्तर विक्रम में श्री वृन्दावन में सम्पन्न हुई। इसके श्रवण मात्र से युगल किशोर श्री लाड़िली-लाल हृदय में प्रतिविम्बित होने लगते हैं।।१३०।।

●

२२

श्री प्रिया जी की नामावली

इस "प्रिया नामावली" ग्रन्थ में नित्य-विहारिणी सर्वाराध्या स्वामिनी के नित्य-विहार परक नामों का ही रसात्मक तात्पर्य निहित है। इस नामावली के लेखन में श्री ध्रुवदासजी का यह भी मन्तव्य अनुमानित होता है कि नित्य-विहार के उपासक रसिक जन श्री प्रिया जी के इन्हीं नामों का गान-स्मरण करें।

१. **श्री राधे** = नित्य विहारमय वृन्दावन-निभृत-निकुञ्ज की सर्वोपरि स्वामिनि, श्री कृष्ण की भी आराध्या।

२. **नित्य किशोरी** = बाल, पौगण्ड एवं कौमार अवस्थाओं से अतीत, नित्य कैशोरावस्था सम्पन्न, सौन्दर्य-माधुर्य की एकमात्र निधि।

३. **वृन्दावन विहारिनी** = नित्य धाम श्री वृन्दावन में ही विहार करने वाली, नित्य एकरस प्रियतम-संयोगिनी।

४. **बनराज रानी** = नित्य धाम वृन्दावन की एकमात्र परम स्वतन्त्र अधिकारिणी स्वामिनी।

५. **निकुंजेश्वरी** = श्री वृन्दावन के निभृत निकुञ्ज में, जहाँ प्रिया-प्रियतम की कैशोर-लीला सम्पन्न होती है, उस निकुञ्ज धाम की सर्वोपरि एवं स्वतन्त्र साम्राज्ञी।

६. **रूप रँगीली** = रूप एवं रङ्ग(आनन्द) में रँगी हुई।

७. **छबीली** = छबि अथवा शोभा से युक्त।

८. **रसीली** = रसयुक्त अथवा रस-प्रदात्री।

९. **रस नागरी** = रस एवं रसिकता की मर्मज्ञ, रस-विलास-चतुरा।

१०. **लाड़िली** = प्रियतम एवं समस्त परिकर की लाड़-भाजन एवं अत्यन्त दुलारी।

११. **प्यारी** = प्रियतम की प्रेम-पात्र, प्रेमास्पदा।

१२. **सुकुँवारी =** सुकोमल अङ्गों वाली।

१३. **रसिकनी =** रासादि रस-क्रीड़ाओं में आनन्द लेने वाली, रसमर्मज्ञा।

१४. **मोहिनी =** जिनकी रूप-छटा प्रियतम को मोहित करती रहती है।

१५. **लाल-मुखजोहिनी** = प्रियतम के मनोहर मुख-चन्द्र की चकोरी।

१६. **मोहन-मन-मोहिनी =** अन्य सबके मन को मोहित करने वाले प्रियतम श्री कृष्ण का भी विमोहन करने वाली।

१७. **रति-विलास-विनोदिनी =** अपने प्रियतम के साथ दाम्पत्य-केलि में आनन्दानुभव करने वाली।

१८. **लाल-लाड़-लड़ावनी =** प्रियतम श्री लालजी को उनके मनोनुकूल सुखों का दान करके, तत्सुख रीति से उन्हें प्रसन्न रखने वाली।

१९. **रंग-केलि बढ़ावनी =** निकुञ्ज भवन में प्रियतम के सुख के लिए कोक -केलि का विस्तार करने वाली।

२०. **सुरत-चंदन-चर्चिनी =** एकान्तिक विहार काल में प्रियतम के प्रस्वेद पङ्किल चन्दन से लिप्त अङ्गों वाली।

२१. **कोटि-कोटि दामिनी-दमकनी =** कोटि-कोटि-असंख्य विद्युल्लताओं की चमक-दमक को भी जाज्ज्वल्यता प्रदान करने वाली अथवा कोटि-कोटि विद्युल्लता जैसी छबिमयी।

२२. **लाल पर लटकनी =** प्रियतम की लाड़-भाजन होने के कारण लड़कान पूर्वक अपने ललित तनु को प्रियतम की देहयष्टि से विलम्बित करने वाली।

२३. **नवल नासा-चटकनी =** प्रियतम श्री लाल को, रसलीन दशा से सचेत करने के लिये उनकी नासिका के समीप अपनी कराङ्गुलियों से मीठी सी चुटकी चटका देने वाली।

२४. **रहसि पुंजे =** ऐकान्तिक आनन्द की निधि।

२५. **वृंदावन प्रकाशिनि =** श्री वृन्दावन के गोप्य रसमय स्वरूप को अपनी रसमयी लीलाओं के द्वारा प्रकाशित करने वाली अथवा श्री वृन्दावन मात्र में अपने स्वरूप को प्रकाशित रखने वाली।

२६. **रंग-विहार-विलासिनी =** श्री वृन्दावन के प्रेमानन्दमय विलास में विलसने एवं प्रियतम को विलसाने वाली।

२७. **सखी-सुख-निवासिनी =** जिनके स्वरूप में अपनी दासियों, सखियों किंवा सहचरियों का सम्पूर्ण सुख निहित है।

२८. **सौंदर्य रासिनी =** अखिल एवं अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य तथा लावण्य-राशि को सर्वदा धारण करने वाली।

२९. **दुलहिनी =** नित्य नव-वधू।

३०. **मृदु हासिनी =** जिसके मुखमण्डल पर निरन्तर मन्द मधुर एवं मृदु मुस्कान स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है।

३१. **प्रीतम-नैन-निवासिनी =** सदा-सर्वदा प्रियतम के नेत्रों में बसी रहने वाली।

३२. **नित्यानन्द-दर्शिनी =** जिसके स्वरूप में सदा नव-नव आनन्द का दर्शन होता रहता हो अथवा जो नित्य नये आनन्द का दर्शन कराती रहती हो।

३३. **उरजनि पिय-परसिनी =** जो अपने उरोजों के द्वारा प्रियतम के सुभग अङ्गों को स्पर्श दान करने में सहज उदार हो।

३४. **अधर-सुधारस बरसनी =** जो प्रेम विवश भाव से प्रियतम को सुखदान करने के लिये अपने अधरामृत रस का सदैव वर्षण करती है।

३५. **प्राननिं रस-सरसिनी =** निरन्तर प्रियतम के प्राणों को रस से सिक्त रखने वाली।

३६. **रंग-विहारिनि =** आनन्द रूपी विहार में रमण करने वाली अथवा विहार में रसरङ्ग की वृद्धि करने वाली।

३७. **नेह-निहारनि =** जिनकी सहज दृष्टि में सदा प्रेम-स्नेह की ही वृष्टि होती है।

३८. **पिय-हित-सिंगार-सिंगारिनी =** जो अपने प्रियतम के लिए वस्त्राभूषण आदि शृङ्गारों से अपने श्री अङ्गों को सुसज्जित करती हो, स्व-सुख के लिए नहीं, अपितु तत्सुखिता ही जिसके शृङ्गार का मूल हो।

३९. **प्यार सौं प्यारे कौं लै उर धारिनि =** जो अपने प्रियतम को हृदय पर धारण कर रस-दान करने में कुशल हैं।

४०. **मोहन-मैंन-विथा-निरवारनि =** सदैव अकाम रहने वाले मोहन श्याम के प्रेम-सकाम होने पर उनके हृदय की अनिवार्य प्रेम-व्यथा को अपने उदार रस-दान द्वारा निर्वारित करने में सदा सक्षम एवं समर्थ।

४१. **जानि प्रवीन उदार सँभारनी =** जो परम निपुण प्रेमास्पद हैं, उदार शिरोमणि हैं। जो अपने जनों को सदा सर्वदा स्नेहपूर्वक ध्यान में रखने में समर्थ हैं।

४२. **अनुराग सिंधे =** प्रेम की अगाध समुद्ररूपा।

४३. **स्यामा =** षोडश वर्षीया नव-नव रूप, गुण, सौन्दर्य, लावण्य-निधि, रसनिधि नागरी।

४४. **भामा =** प्रियतम-प्रेम की प्रकाशिका।

४५. **बामा =** प्रतिकूलता की रस-विधा में भी रसास्वादन करने-कराने वाली प्रिया।

४६. **भाँवती =** प्रियतम को अतिशय प्रिय लगने वाली।

४७. **जुवतिन-जूथ-तिलका =** परम सुन्दरी एवं नवयौवना सखियों के विशाल समूह की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी प्रिया।

४८. **वृंदावन-चंद-चंद्रिका =** वृन्दावन-विलासी श्री कृष्ण रूपी चन्द्रमा की ज्योत्स्ना रूपी प्रिया।

४९. **हास-परिहास-रसिका =** हास्य विनोद की क्रीड़ा में आनन्द अनुभव करने वाली।

५०. **नवरंगिनी** = सदैव नये-नये प्रकार के आनन्द विलास को प्रकट करने वाली।

५१. **अलकावलि-छवि-फंदिनी** = जिसकी घुँघराले केश-राशि सौन्दर्य छबि के पाश किंवा फंदे की भाँति है, जो सदैव लाल के मन को फँसाती हैं।

५२. **मोहनी मुसिकिनि मंदिनी** = मन्द-मन्द मधुर मुस्कान के द्वारा प्रियतम के मन को भी मोहित करने वाली।

५३. **सहज आनन्द-कंदिनी** = सहज रूप से आनन्द की सार स्वरूपिणी।

५४. **नेह-कुरंगिनी** = बहेलिये के कर्ण-मधुर नाद पर मोहित होकर अपना सर्वस्व देने वाली हरिणी की भाँति जो प्रियतम के प्रेम पर मोहित होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दे, ऐसी रिझवार प्रिया।

५५. **नैंन विसाला** = जिसके कर्णायत नेत्र सुन्दर एवं सुदीर्घ हैं।

५६. **महामधुर रस-कंदिनी** = उज्ज्वल शृङ्गार मूलक नित्य विहारमय दम्पति विलास रस की आधार-स्वरूपा

५७. **चंचल चित-आकर्षिनी** = व्रज के बहु नायकत्त्व रस में लिप्त व्रज रस रसिक श्री कृष्ण को कान्त भाव से विरत करके, अपने रूप, प्रेम, आकर्षण के द्वारा नित्य-विहारमय ऐकान्तिक राधा-कान्त भाव में स्थिर कर देने वाली।

५८. **मदन-मान-खंडिनी** = अपने निष्काम एवं उज्ज्वल प्रेम के द्वारा नेम-प्रधान काम के कामना-मूलक अभिमान का तिरस्कार एवं मान मर्दन कर देने वाली सहज सर्वोपरि प्रेम-मूर्ति।

५९. **प्रेम-रंग-रंगिनी** = कामादि भावों से विवर्जित विशुद्ध तत्सुखमय प्रेम के आनन्द में निरन्तर रँगी हुई।

६०. **बंक-कटाक्षिनी** = जिनके नेत्रों की सहज चितवन भी रसदायक, पैनी एवं बाँकी है।

६१. **सकल विद्या-विचक्षनी**—दाम्पत्य प्रेम की विलास कलाओं किंवा कोक-

विद्या की समस्त कलाओं में सहज निपुणा।

६२. **कुँवर अंक-विराजनी =** रसिक-किशोर प्रियतम की क्रोड़ में विराजमान् होनेवाली, उनके प्रेम-सम्मान की एकमात्र अधिकारिणी।

६३. **प्यार-पट-निवाजिनी =** प्रेम के पदाधिकार का आद्यन्त निर्वाह करने वाली।

६४. **सुरत-समर-दल-साजिनी =** निकुञ्ज विहारावसर पर प्रियतम के साथ दाम्पत्य क्रीड़ा में हाव-भाव रूपी सैन्य को सुसज्जित रखने वाली।

६५. **मृगनैंनी =** हरिणी जैसे सुन्दर एवं विशाल डहडहे नेत्रों की शोभा से सम्पन्न।

६६. **पिकबैंनी =** कोयल जैसी कर्ण-मधुर वाणी एवं स्वर से युक्त।

६७. **सलज्ज अंचला =** जो पदे-पदे लज्जा से युक्त होकर दुकूल अञ्चल से मुख को ढँक लेती है।

६८. **सहज चंचला =** नारी स्वभाव सुलभ चाञ्चल्य जिसके अङ्ग-अङ्ग में अधिकाधिक रूप से विराजमान् हैं।

६९. **कोक कलानि-कुशला =** दम्पति विलास की केलि-कलाओं में जो सहज निपुण हैं।

७०. **हाव-भाव चपला =** अन्तर स्थित प्रेम को प्रकाश करने वाले इङ्गितों अर्थात् हाव-भावों की व्यञ्जना में कुशल एवं उनके प्रदर्शन में सहज चञ्चला।

७१. **चातुर्य चतुरा =** मूर्त्तिमान चातुरी को भी अपनी चातुरी से पराजित करने वाली।

७२. **माधुर्य मधुरा =** मूर्त्तिमान् माधुर्य को अपने प्रेम, रूप, लावण्य आदि की माधुरी से विलज्जित कर देने वाली सहज माधुर्य-मूर्ति श्री राधा।

७३. **बिनु भूषन भूषिता =** जिसका प्रत्येक अङ्ग सहज सौन्दर्य, माधुर्यमय हो, जो सौन्दर्य के लिए अलङ्कार किंवा आभूषणों की अपेक्षा न रखती

हो, अपितु जिसके सौन्दर्य से आभूषणादि भी सौन्दर्य-मण्डित हो जाते हों, ऐसी सहज शृङ्गारमयी नवल किशोरी।

७४. **अवधि सौन्दर्यता =** सौन्दर्य की चरमसीमा, जिसके सौन्दर्य के समकक्ष कोई हो ही नहीं, तब अधिक कैसे होगा। अर्थात् असमोर्द्ध रूप लावण्यमयी।

७५. **प्राण-वल्लभा =** प्रियतम के प्राणों को उनके अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय अर्थात् जिस पर प्रियतम के प्राण न्यौछावर हों।

७६. **रसिक-रवनी =** रसिक प्रियतम को भी अपने रूप में रमा लेने वाली किंवा रसिक प्रियतम के प्रेम एवं रूप में सदैव एक रस रमने वाली।

७७. **कामिनी =** जिसके हृदय में प्रियतम सुखार्थ प्रेम-कामनाओं का विस्तार होता रहता है।

७८. **भामिनी =** प्रियतम के मन पर सहज रूप से अधिकार रखने वाली।

७९. **हंस कल-गामिनी =** राजहंस पक्षी की भाँति मद-मन्थर गति से गमनशील प्रिया।

८०. **घनश्याम अभिरामिनी =** सघन जल-पूरित मेघों की भाँति परम सुन्दर श्याम वर्ण श्रीकृष्ण को भी अपने परम रमणीय रूप में रमा लेने वाली, दामिनी द्युति-विनिन्दक गौराङ्गी, परम सुन्दरी।

८१. **चंद-विपनी =** श्री वृन्दाविपिन के स्वरूप प्रभाव को अपने प्रेम, सौन्दर्य एवं महामधुर विलास से प्रकाशित करने वाली चन्द्रमा रूपी शीतल प्रभा पुञ्ज।

८२. **मदन-दवनी =** अपने परमोज्ज्वल प्रेम प्रभाव से समस्त काम प्रवृत्तियों का सर्वथा दमन एवं विनाश कर देने वाली।

८३. **रसिक-रवनी =** रसिक शिरोमणि प्रियतम श्री लाल जी को रमण सुख प्रदान करने वाली किंवा रसिक प्रियतम के साथ रमण करने वाली।

८४. **केलि-कमनी =** निकुञ्जगत दाम्पत्य क्रीड़ा को कमनीय स्वरूप प्रदान करने वाली रस-विदग्धा नागरी।

८५. **चित्तहरनी** = अपने सहज सौन्दर्य एवं लावण्य से प्रियतम श्याम के चञ्चल चित्त को चुराने वाली।

८६. **ललन-उर पर चरनधरनी** = तीव्र प्रेमताप से संतप्त प्रियतम के हृदय देश पर अपने शीतल सुभग चरण कमलों को स्थापित करके उन्हें शान्ति प्रदान करने वाली।

८७. **छवि कंज-वदनी** = जिनकी श्री मुखच्छवि कमल के समान शोभा सम्पन्न है।

८८. **रसिक आनंदिनी** = आनन्द स्वरूप रसिक प्रियतम को भी अपने रसानन्द से आन्दोलित करने वाली अथवा रसिक प्रियतम से मिलकर आनन्दानुभूति करने वाली।

८९. **रूप-मंजरी** = नित्य विकास को प्राप्त होने वाली, रूप-कलिका-पुञ्ज।

९०. **सौभाग्य-रसभरी** = प्रियतम का नित्य साहचर्य सुख-विलास प्राप्त, रसवती नित्य किशोरी प्रिया।

९१. **सर्वांग सुन्दरी** = जो नख-शिख पर्यन्त समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में रूप, सौन्दर्य, माधुर्य, सुकुमारता, लावण्य, हाव-भाव भङ्गिमा आदि की सौन्दर्य सीमा हैं।

९२. **गौरांगी** = तप्त कञ्चनवत् गौर-वर्ण के सौन्दर्य-लावण्य से परिपूरित सुकुमार अङ्गों वाली गौरवर्णा मुग्धा प्रिया।

९३. **रतिरस रंगी** = प्रियतम समागम से उद्भूत रति-रस से रँगी हुई अथवा दाम्पत्य-रति के रस से प्रियतम को रँग देने वाली।

९४. **विचित्र कोक कला अंगी** = शास्त्र वर्णित कोक-कलाओं से भी विलक्षण अथवा अनुपम कोक अङ्गों में प्रवीण किंवा विचित्र कोक-कलाएँ भी जिनकी एक अंश-कला के प्रतिमान् हों।

९५. **छबि-चंद-वदनी** = शोभा रूपी चन्द्रमा के समान सुभग शीतल मुख-मण्डलमयी।

९६. **रसिक लाल बंदिनी** = जिनकी अनुपम रसिकता के समक्ष रसिक शेखर श्री लाल जी भी नतमस्तक होकर चरण वन्दना करते हैं, ऐसी रसिक-मौलि नवल-किशोरी, रस-विदग्धा प्रिया।

९७. **रसिक रस-रंगिनी** = रसिक प्रियतम के रस में रँगी हुई अथवा रसिक-प्रियतम को अपने रस में रँग देने वाली।

९८. **सखिनु सभामंडिनी** = नित्य विहारमय श्री वृन्दावन की नित्य-किशोरी सखियों की सभा में सर्वोपरि सुन्दर होने से सबकी भूषण-स्वरूपा।

९९. **आनंद-कंदिनी** = आनन्द की मूल स्वरूपा अर्थात् आनन्द रूप प्रियतम को भी आह्लादित करने वाली।

१००. **चतुर अरु भोरी** = चातुर्य की अवधि होकर भी हृदय की सरलता के कारण भोलेपन की भी जो प्रतिमूर्त्ति है।

१०१. **सकल सुख-रासि-सदने** = आश्रित जनों को, सखियों को एवं प्रेमास्पद प्रियतम को भी वाञ्छित समस्त सुखों का दान करने में सदा-सर्वदा समर्थ एवं उदारता की परमावधि।

उपसंहार

दोहा

प्रेम-सिंधु के रतन ये, अद्‌भुत कुँवरि के नाम।
जाकी रसना रटै 'ध्रुव', सो पावै विश्राम।।१।।
ललित नाम नामावली, जाके उर झलकंत।
ताके हिय में बसत रहैं, स्यामा-स्यामल कंत।।२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि कुँवरि किशोरी श्री राधा के ये नाम प्रेम रूपी समुद्र के अद्‌भुत रत्न हैं। जिस भाग्यशाली भक्त की जिह्वा इन नामों का गान करेगी, वह निश्चित ही परम-शान्ति को प्राप्त करेगा।।१।। ललित नामों की यह नामावली जिसके हृदय में झलकेगी, वहीं उस नाम के साथ उसके हृदय में प्रिया श्यामा एवं उनके कान्त प्रियतम श्याम सुन्दर सदैव निवास करेंगे।।२।।

●

२३
रहस्य-मञ्जरी

मङ्गलाचरण — दोहा

करुनानिधि अरु कृपानिधि, श्री हरिवंश उदार।
वृंदावन-रस कहन कौं, प्रकट धर्‌यौ अवतार।।१।।

नित्य-विहार निर्देश — चौपाई

वृंदावन-रस सबकौ सारा। नित सर्वोपरि जुगल-बिहारा।।२।।
नित्य किसोर रूप की रासि। नित्य विनोद मंद मृदु हासि।।३।।
नित ललितादिक भरी अनंद। नित प्रकास वृंदावन चंद।।४।।

रसिकाचार्य शिरोमणि वंशी-स्वरूप श्री हित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु उदार मना महानुभाव, करुणा के सागर एवं कृपा के भण्डार हैं, जिन्होंने श्री वृन्दावन के निभृत निकुञ्जान्तर्गत विलसित श्री श्यामा-श्याम के केलि-विलास रस को प्रकट करने के लिए ही भूतल पर मानव-रूप में अवतार लिया।।१।।

['वृन्दावन-रस' के नाम से अभिसंज्ञात रस गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी की एक अनुपम देन है, जिसका स्वरूप व्रज के अवतारवाद एवं स्वकीयात्त्व परकीयात्त्व, विरह मिलन आदि से अतीत है। यह नित्य विहार केलि नित्य-निभृत निकुञ्जमय वृन्दावन में प्रिया, प्रियतम, सहचरी एवं वृन्दावन इन चार रूपों में अनादि-अनन्त रूप से विद्यमान है।] यह वृन्दावन-रस प्रेम की समस्त उपासनाओं का सार है, जो नित्य है एवं श्यामा-श्याम के विहार का सर्वोपरि स्वरूप हैं।।२।। जिस प्रकार नित्य वृन्दावन विलासी नित्य-किशोर आनन्द विनोद में मग्न रहते हुए सदा प्रसन्न एवं मन्द मधुर हास्यमय बने रहते हैं।।३।। ऐसे ही ललिता, विशाखा आदि उनकी नित्य सहचरियाँ सदैव आनन्द से उल्लसित रहती हैं। युगलकिशोर का नित्य लीला-धाम श्री वृन्दावन नित्य प्रकाशमय है।।४।।

वृन्दावन कुञ्ज वर्णन चौपाई

कुंजनि सोभा कहा बखानौं। छबि फूलनि सौं छाई मानौं।।५।।
राजत सुमन द्रुमनि बहुरंगा। मानौं पहिरैं बसन सुरंगा।।६।।
नाचत हंस मयूरी मोर। सुक सारिक पिक नाद चहुँ ओर।।७।।
झलमलात छबि कही न जाई। चिंतामनि मय हेम जराई।।८।।
शोभा दुतिय बढ़ी अधिकाई। फूलनि की जनौं अवनि बनाई।।९।।
छबि सौं जमुना बहै सुहाई। मानौं आनँद द्रय चल्यौ माई।।१०।।
जहाँ-तहाँ पुलिन नलिन कल कूला। फूले सबके मनोरथ फूला।।११।।

ग्रन्थकार कहते हैं कि अनादि-अनन्त तेजोमय, रसमय, आनन्दमय प्रेमधाम श्री वृन्दावन के निभृत-निकुञ्जों की शोभा का वर्णन कर सकना मेरी सामर्थ्य से परे है।।५।। प्रिया-प्रियतम की विलास-स्थली श्री वृन्दावन की निकुञ्जें छबि रूपी पुष्पों से सदैव आच्छादित रहती हैं।।६।। पुष्प-भार से नमित रङ्ग-विरङ्गे वृक्ष अपूर्व शोभा से पूरित हुऐ ऐसे लगते हैं, मानो वृन्दावन ने सुरञ्जित बहु-रँगे वस्त्र धारण कर रखे हों। यत्र-तत्र राजहंस, मयूर और मयूरियाँ नृत्य करती रहती हैं। सुख-सारिका (मैना) एवं कोयलों का मधुमय नाद चतुर्दिक सुनाई देता रहता है।।७।। रत्न जटित वृन्दावन की कञ्चन भूमि ऐसी झलमलाती रहती है, जो देखते तो बनती है पर कहते नहीं बनती।।८।। दूसरे पुष्पभार से लदे हुए वृक्षों का दृश्य वृन्दावन की भूमि को ऐसे शोभित करता है, मानो वह कञ्चन-भूमि पुष्प-समूहों से आस्तरित कर दी हो।।९।। यमुना का शोभामय प्रवाह ऐसा प्रतीत होता है, मानो मूर्तिमान् आनन्द द्रवित होकर बह चला हो।।१०।। यमुना के तट प्रान्त में जहाँ-तहाँ पुलिन-स्थलियों में कमल-पुष्प विकसित हैं, जिनकी छवि देखकर ऐसा लगता है कि वृन्दावनीय रसिक-परिकर के मनोरथ ही पुष्पित हो गये हों।।११।।

फूले फिरत मधुप मदमाते। जलजनिं सौरभ के रस राते।।१२।।
सीतल मंद समीर सुवासा। वृंदा कानन रंग हुलासा।।१३।।
सुख की अवधि प्रेम कौ ऐंना। सेवत मैंननि की सत सैंना।।१४।।

दोहा

वृंदावन छबि कहा कहौं, कैसेहुँ कहत बनैं न।
नैंननिं के रसना नहीं, रसना के नहिं नैंन।।१५।।

सखियों का तत्सुख प्रेम चौपाई

विहरत तहाँ परम सुकुँवारा। रूप-माधुरी कौ नहिं पारा।।१६।।
प्रेम मगन अलबेली भाँति। जगिमगि रह्यौ बन अंगनि कांति।।१७।।

उन विकसित कमल-पुष्पों की सुवास रस से उन्मत्त हुए भ्रमर उन पर सदा मँडराते रहते हैं।।१२।। वृन्दावन का सुगन्धित शीतल पवन मन्द-मन्द गति से प्रवाहित होता रहता है, मानो वृन्दा-कानन का आनन्द ही पवन-प्रवाह बनकर उल्लसित हो रहा हो।।१३।। तात्पर्य यह है कि श्री वृन्दावन सुखों की पराकाष्ठा एवं उज्ज्वल प्रेम का निज धाम है, जहाँ शत-शत प्रेमकाम की चतुरङ्गिणी सेना नित्य सेवा-परायण रहती है।।१४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि वृन्दावन की अवर्णनीय छवि का क्या वर्णन करूँ ? क्योंकि वह किसी भी प्रकार से कहने में नहीं आती। मेरे नेत्रों ने उस छवि को देखा तो है पर नेत्रों के पास वर्णन करने के लिए जिह्वा नहीं है और जिस जिह्वा के पास वर्णन करने की क्षमता है उस अभागी के पास नेत्र नहीं हैं।।१५।।

ऐसे परम रम्य निसर्गमय नित्य वृन्दावन में परम सुकुमार युगल, जो नित्य ही अपार रूप-माधुरी से मण्डित हैं, नित्य निरन्तर विहार-परायण हैं।।१६।। जिनके श्री अङ्गों की लावण्यमयी कान्ति से समस्त वृन्दावन जगमगाता रहता है, ऐसे युगल विलक्षण रीति से प्रेममग्न बने रहते हैं।।१७।।

सखी सबै हित की हितकारिनि। जीवन जिनकै रंग-बिहारिनि।।१८।।
तिनहीं के रँग सौं अनुरागी। महा मधुर सेवा रस पागी।।१९।।
रुचि लै रुचि सौं दुहुँनि लड़ावैं। पलु-पलु सुख कौ रंग बढ़ावैं।।२०।।
फूल सौं भाजन भरि मधु आनैं। फूल चँदोवा छबि सौं तानैं।।२१।।
फूल सौं फूलनि सेज बनाई। अति सुगंध सौंधे छिरकाई।।२२।।
तापर राजत रँग विवि ओर। मुख जोवत ज्यौं चंद-चकोर।।२३।।

युगल का प्रेम विलास स्वरूप चौपाई

नैंकु चितै तिरछे मुसिकानी। लालहि सुधि-बुधि सबै भुलानी।।२४।।

युगल-किशोर श्री लाड़िली-लाल की हित-चिन्तक सहचरियाँ, जिनका सर्वस्व रङ्ग-विहारिणी श्री प्रिया के लिए समर्पित है, हित की मूर्ति हैं।।१८।। वे सखियाँ केवल युगल के प्रेमरङ्ग से रँगी हुई सेवा के महा-मधुर रस में पगी रहती हैं।।१९।। सखियाँ युगल की रुचि किंवा उत्कण्ठा को ध्यान में रख कर अपनी सम्पूर्ण रुचि एवं प्रसन्नता के साथ पल-पल प्रति युगल के सुख का चिन्तन करती हुईं बहुविध लाड़-प्यार पूर्वक युगल के आनन्द का अभिवर्द्धन करती रहती हैं।।२०।। वे कभी प्रसन्नतापूर्वक मणि-जटित स्वर्ण-पात्रों में मधुर-मधुर पेय एवं भोज्य पदार्थ युगल के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं, तो कभी मृदु-मृदु पुष्पों के शोभामय वितान निर्मित करती हैं।।२१।। तत्पश्चात् उस मण्डप की शीतल छाया में हर्षपूर्वक पुष्प-पर्यङ्क आस्तरित करके उसे सौरभ-सार से अभिसिञ्चित् कर सुगन्धमय बना देती हैं।२२।। तब उस पुष्प-शय्या पर युगल को विराजित करके उनके श्री मुख-चन्द्र का चकोर की भाँति निर्निमेष अवलोकन करती हैं।।२३।।

जब नवल किशोरी प्रिया ने प्रियतम की ओर मृदु मुस्कान के साथ अपने नेत्रकोणों से रसपूर्ण कुटिल कटाक्ष का मृदुल निक्षेप किया, तो प्रियतम देहानुसन्धान रहित हो गये।।२४।।

दोहा

बसी जु प्यारे लाल उर, वह चितवनि मुसिकानि।
तबतें कबहूँ छुटी नहिं, चुभी जु उर में आनि।।२५।।

चौपाई

तिनकौ प्रेम और ही भाँति। अद्‌भुत रीति कही नहिं जाति।।२६।।
जौ करुना करि बे उर आनैं। तब रसना कै कछुक बखानैं।।२७।।
जाकौ हियौ सरस अति होई। यह रस रीतिहि समुझै सोई।।२८।।
सूक्षम प्रेम विरह सुखदाई। दिन संयोग में रहत हैं माई।।२९।।
देखत ही अनदेखी मानैं। तिनकी प्रीतिहि कहा बखानैं।।३०।।
प्रेम लालची लाल रँगीलौ। अवधि प्यार की रसिक रसीलौ।।३१।।

प्रियतम के हृदय में वह अपूर्व रसमयी चितवन एवं मुसकान ऐसी चुभी कि तब से अब तक कभी किसी प्रकार से निकली ही नहीं, तात्पर्य नवल-किशोरी प्रिया की अगाध रूप-माधुरी उनके नित्य चिन्तन का विषय बन गयी।।२५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल का पारस्परिक प्रेम, विलक्षण प्रकार का है। उस प्रेम की अद्भुत रीति एवं विलास-विधियाँ कहने में नहीं आतीं।।२६।। यदि वे कृपा करें तो ही यह अनुपम रस-भाव किसी भाग्यवान् रसिक के हृदय में प्रकट हो सकता है और तभी वह अपनी वाणी से युगल के इस प्रेम-रस का यत्किञ्चित् गान करने में समर्थ हो सकता है।।२७।। जिस रसिक उपासक का हृदय अतिशय सरस होगा, वही इस रस-रीति को समझने में समर्थ हो सकेगा।।२८।। अतृप्ति-पूर्वक मुखावलोकन इस रस-देश का 'प्रेम-विरह' है ; जो अत्यन्त सूक्ष्म है; क्योंकि निरन्तर संयोग (मिलन) में रहने वाले युगल परस्पर एक दूसरे के दर्शन को, अतृप्ति के कारण अदर्शन जैसा ही अनुभव करते हैं। उनकी इस सूक्ष्म रीति का वर्णन असम्भव है।।२९-३०।। प्रेम-लालची लाल बड़े रँगीले रसिक हैं, वे अपनी प्रेमास्पद प्रिया के प्रेम-प्यार के रसिक रसीले प्रेमी हैं।।३१।।

कर अँगुरिनु भुज-मूलनि परसै। अधर-पान रस कौं जिय तरसै।।३२।।
छै न सकत उरजनि कर काँपै। चतुर कुँवरि अंचल सौं ढाँपै।।३३।।
सो वह छटा प्रेम की न्यारी। लालहि विवस करति अति भारी।।३४।।
तबहि सँभारि लेति सुकुँवारी। अधर कपोलनि चूँवति प्यारी।।३५।।
जब देखी अखियाँनि उघारी। प्याइ जिवाये अधर-सुधारी।।३६।।
जबही उर सौं घुरि लपटाँही। तब नैंना विरही ह्वै जाँही।।३७।।

वे प्रियतम अपनी कराङ्गुलियों से जब प्रिया के भुज-मूल का स्पर्श करते हैं, तब स्पर्श-जन्य तृप्ति का यत्किञ्चित् अनुभव करते हुए उनके हृदय में अधर-रस पान की तीव्र तृषा का उद्भव हो जाता है।।३२।। वे प्रिया के वक्ष-स्थल का रसद स्पर्श करने की आकाङ्क्षा तो करते हैं, किन्तु भय वशात् ऐसा नहीं कर पाते, उनके कर कम्पित हो जाते हैं। प्रियतम की ऐसी रस-विवश दशा को भाँप कर दयामयी प्रिया अपने रस-कलशों को अञ्चल से आच्छादित करके, प्रियतम को, लालसा-निवृत्त करके सुखित करना चाहती हैं।।३३।। प्रिया के द्वारा ललित भुज-लताओं से किये गये अञ्चल-आच्छादन की वह छटा प्रेम की एक अद्भुत छवि-छटा है, जो लाल को अतिशय रस-विवश करने वाली बन जाती है।।३४।। प्रियतम लाल जी की इस विलक्षण प्रेम दशा का अवलोकन करके सुकुमारी प्रिया उनके अधर एवं कपोलों का चुम्बन करके उन्हें प्राकृत स्थिति में ले आती हैं।।३५।। जब प्रिया ने देखा कि प्रियतम ने सावधानी पूर्वक अपने नेत्र खोल दिये हैं, तब उन्होंने प्रियतम को अपनी मधुमय अधर-सुधा का पान कराके जीवन दान दिया।।३६।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सूक्ष्म प्रेम-विरह की यह स्थिति बड़ी ही विलक्षण है। जब रसिक युगल प्रेम-विवश भाव से वक्ष से वक्ष मिलाकर आलिङ्गित होते हैं, तब रूप-दर्शन के अभाव से उनके नेत्रों में दर्शनाकाङ्क्षा रूपी विरह की व्याप्ति हो जाती है।।३७।।

छुटैं जबहि छबि दैख्यौ करैं। विरह आनि अंगनि संचरै।।३८।।
भाँति अटपटी सौं चित्त हरयौ। जात नहीं उर धीरज धरयौ।।३९।।
छिन-छिन दसा और की औरै। थांभै रहतिं सखी सिरमौरै।।४०।।

दोहा

प्रेम-अटपटी चटपटी, रही लाल उर पूरि।
और जतन ताकौ न कछु, प्रिया सँजीवनि-मूरि।।४१।।

चौपाई

बिरह-संयोग छिनहि छिन माँही। जद्दपि ग्रीवनिं मेले वाँही।।४२।।
इहि विधि खेलत कलप विहाने। परम रसिक कबहूँ न अघाने।।४३।।

ऐसे ही जब वे आलिङ्गन-मुक्त होकर परस्पर मुखच्छवि अवलोकन के सूक्ष्म मिलन रस में संयोगित होते हैं, तब अङ्ग-स्पर्श आकाङ्क्षा रूपी विरह युगल के अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त हो जाता है।।३८।। इस प्रकार विलक्षण रीति से रसिक युगल के चित्त एक दूसरे के प्रति अपहृत हो जाते हैं। उनके हृदय धैर्य छोड़ देते हैं।।३९।। प्रेम-विरहमय नव निभृत-निकुञ्ज देश में युगल की दशाएँ बदलती रहती हैं। तब तत्सुख भावमय प्रेम-तत्त्व की शिरोमणि ज्ञाता सखीजन युगल किशोर को सँभालती रहती हैं।।४०।। रसिक प्रियतम के हृदय में निरन्तर विलक्षण कोटि के प्रेम की आतुरता किंवा छटपटाहट छाई ही रहती है ; जिसके निवारण का उपाय केवल प्रेम-सञ्जीवनी मूल रूपी नवल- किशोरी प्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं।।४१।। यद्यपि श्री श्यामा-श्याम युगल रसिक सदैव ही गलबहियाँ दिये मिले रहते हैं, तथापि वे संयोग में भी क्षण-क्षण प्रति विरह का ही अनुभव करते रहते हैं।।४२।। इस प्रकार प्रेम-क्रीड़ा करते हुए अमित कल्प का काल व्यतीत हो गया है, तथापि नित्य-विहारी युगल रसिक ने कभी तृप्ति का अनुभव नहीं किया है।।४३।।

रूप-विवश प्रियतम की प्रेम-दशा चौपाई

एक समै मुख की छबि पानिप। निरखत भूली सबै सयानिप।।४४।।
चाह प्यार की यौं फिर गई। सोइ आनि बिच अंतर भई।।४५।।
कुँवरि छबीली मन धरि आगै। विवस होइ पिय विलपन लागै।।४६।।
चितवत-चितवत लाल बिहारी। कहत यहै कहाँ-कहाँ सुकुँवारी।।४७।।
प्रेम-तरंग कहे नहिं जाँही। छिन-छिन जे उपजत मन माँही।।४८।।

दोहा

कौन प्रेम के फँद परे, मोहन नवल-किसोर।
भूलि रही चितवत खरी, सखी-माल चहूँ ओर।।४९।।

विहारावसर किसी समय प्रियतम ने प्रिया-मुख की लावण्यमयी शोभा का अवलोकन किया, जिससे उनकी भाव-गम्भीरता बढ़ गयी। फलस्वरूप उनका चातुर्य-बोध समाप्त हो गया।।४४।। उनके हृदय में प्रेम की लालसा कुछ ऐसे ढङ्ग से व्याप्त हुई कि वे अपना स्वरूप-बोध विसार कर छविमयी किशोरी के रूप ध्यान की तल्लीनता में मग्न एवं प्रेम-विवश हो गये।।४५।। और निर्निमेष नयनों से प्रिया-मुखचन्द्र की ओर चकोर की भाँति निहारते हुए, प्रेम-वैचित्य दशा को प्राप्त हो गये एवं सहज प्रलाप करने लगे-हे प्रिया ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? ४६-४७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम के मन का यह क्षण-क्षण प्रति नव-नव प्रेम की तरङ्गों का अभिवर्द्धन किसी भी प्रकार वर्णन में नहीं आता।।४८।। चराचर के मन को मोहित करने वाले मोहन नवल-किशोर न जाने किस अनिर्वचनीय प्रेम-पाश (बन्धन) में फँस गये हैं, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। निभृत-निकुञ्ज की समस्त सहचरियाँ उन्हें घेर कर खड़ी हैं। वे केवल चकृत भाव से इस दृश्य का अवलोकन तो कर रही हैं, किन्तु आत्म-विस्मृत होने के कारण कुछ कर नहीं पाती हैं।।४९।।

चौपाई

रसनिधि रसिक प्रवीन पियारी। लालहि राखति ज्यौं फुलवारी।।५०।।
प्रेम प्यार जल सींच्यौ करही। पल-पल प्रति तिनके सँग ढरही।।५१।।

दोहा

फूल पान ज्यौं राखही, ढाँपि प्यार के चीर।
छिन-छिन तिनकौं छिरकही, नेह-कटाच्छनि नीर।।५२।।

चौपाई

रसिक-मौलि मनि लाल बिहारी। जिनकैं सर्बसु प्राँन-पियारी।।५३।।
नैंन जोरि देखति पिय रूपहि। मैंन माधुरी झलक अनूपहि।।५४।।
कौंन भाँति मुख की छबि कहियै। चितवत सखी भूलही रहियै।।५५।।

रस-धर्म में अतिशय प्रवीण रसनिधि प्रिया अपने प्रियतम श्री लाल जी को पुष्प-वाटिका की भाँति सँभालती रहती हैं।।५०।। तथा उन्हें प्रेम-प्यार रूपी जल से अभिसिञ्चित् करती रहती हैं। करुणामयी किशोरी प्रतिपल प्रियतम के सुखों का एवं उनकी लालसाओं का ही अनुगमन करती रहती हैं।।५१।। सदय हृदया किशोरी अपने प्रेमास्पद को सुकोमल पत्र-पुष्प की भाँति प्रेम-प्यार के वस्त्र से ढाँके रखती हैं तथा अपने प्रेममय नयन-कटाक्ष रूपी जल से प्रतिक्षण उनका अभिसिञ्चिन् करती रहती हैं।।५२।। रसिक शेखर श्री बिहारी लाल रस और रसिकों के मुकुट मणि हैं, इसीलिए तो उन्होंने प्राण-प्रिया श्री श्यामा को अपना सर्वस्व समर्पित करके उन्हें अपनी सर्वस्व निधि के रूप में स्वीकार किया है।।५३।। रूपरसिक प्रियतम प्राण- प्रिया के नेत्रों में नेत्र डाल कर उनकी मदन-माधुरी की अनुपम झलक को निहारते ही रहते हैं।।५४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं—हे सखि ! प्रिया की उस अनुपम मुखच्छवि का किस प्रकार वर्णन किया जाए ? जिसका अवलोकन करके बरबस ही सब कुछ विस्मृत हो जाता है।।५५।।

भौंहनि भाइ कटाक्ष तरंगा। गह्यौ लाल-मन प्रेम अनंगा।।५६।।
स्वेद कंप वेपथ अँग-अंगा। प्रान प्रिया भरि लेति उछंगा।।५७।।
परसत हूँ परस्यौ नहि जानै। छिन-छिन नई-नई रुचि मानै।।५८।।
सो गति चितै सखी मुसिकाँहीं। वारि फेरि अंचल बलि जाहीं।।५९।।
प्रेम प्यार वन तन मन सरस्यौ। और स्वाद कबहूँ नहि परस्यौ।।६०।।
रूप रंग सौरभता तनकी। जीवन यहै दिनहि पिय मन की।।६१।।
देखिवौ जहाँ बिरह सम होई। तहाँ कौ प्रेम कहा कहै कोई।।६२।।

श्री प्रिया की भृकुटियों की लहरियों ने अपने प्रेम-काम के द्वारा श्री लाल जी के मन को सर्वथा ही बन्धन में ले रखा है।।५६।। जब प्रेम-विवश प्रियतम के अङ्ग-अङ्ग में प्रस्वेद-कम्प आदि प्रेम के अनुभाव प्रकट होने लगते हैं, तब प्राण-प्रिया किशोरी उन्हें अपने उत्सङ्ग (गोद) में लेकर चेतना प्रदान करने लगती हैं।।५७।। फिर भी प्रेम-परवशता में आत्म-विस्मृत प्रियतम, प्रिया के सुकोमल सुखद स्पर्श को प्राप्त करके भी स्पर्शानुभूति से रहित से बने रहते हैं। उनके मन में प्रतिक्षण प्रेम-सुख की नयी-नयी रुचियों का उद्भव होता रहता है।।५८।। रसिक लाल की ऐसी प्रेम-वैचित्य गति का अवलोकन करके सखियाँ प्रीति और हर्ष से भरकर मुस्कुरा उठती हैं। वे उन पर जल उतार कर अपने निचोल-अञ्चल की आड़ में उन पर बलिहारी जाती हैं।।५९।। प्रेम-प्रीति के जिस अद्भुत जल ने श्री लाल जी के तन और मन को सरस कर दिया है, वे इस रस-स्वाद के अतिरिक्त अन्य किसी रस का स्पर्श भी नहीं करना चाहते।।६०।। अनिन्द्य सुन्दरी प्रिया के नित्य नव-नव रूप-रङ्ग एवं तन की सुगन्धि ही सदैव प्रियतम के रसिक मन का एक-रस एवं पूर्ण जीवन है।।६१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नित्य विहारमय वृन्दावन के सूक्ष्म प्रेम देश में जहाँ अपलक दर्शन भी प्रेम-पिपासा रूपी विरह जैसा बन जाता है, उस देश के सूक्ष्म प्रेम का कोई कैसे और क्या वर्णन करे?।।६२।।

दोहा

अटपटी भाँति कौ बिरह सुनि, भूलि रह्यौ सब कोइ।
जल पीवत हे प्यास कौं, प्यास भयौ जल सोइ।।६३।।

सखियों की तत्सुख प्रीति चौपाई

महाभाग सुखसार सरूपा। कोमल सील सुभाव अनूपा।।६४।।
सखी हेत उदवर्तन लावैं। आनँद रस सौं सबै न्हवावैं।।६५।।
सारी लाज की अतिही बनी। अँगिया प्रीति हियैं कसि तनी।।६६।।
हाव-भाव भूषन तन बने। सौरभ गुनगन जात न गने।।६७।।
रसपति रसकौ रचि-पचि कीनौ। सो अंजन लै नैंननिं दीनौ।।६८।।

अटपटे प्रकार के इस विरह का वर्णन-गान श्रवण करके बहुधा तत्त्वचिन्तक, मनीषी, भक्त, ज्ञानी, प्रेमी आदि भी आश्चर्य चकित हो रहते हैं। यह सूक्ष्म प्रेम प्रकार कुछ-कुछ ऐसा ही है, जैसे तीव्र पिपासा का शमन करने के लिए कोई पिपासु जलपान करे, किन्तु वह जल भी प्यास बन जाय, तब पिपासु क्या करे ?।।६३।।

ऐसी अनुपम एवं कोमल सुभाव-शीलमय महाभाग्य सुखसार स्वरूपा श्री श्यामा-प्रिया को सखियाँ सदैव अपना लाड़-भाजन बनाये रखती हैं।।६४।। वे रति-विहार से थकित एवं अलसायी प्रिया के श्री अङ्गों में 'हित' का उद्वर्त्तन करके आनन्द-रस के जल से उन्हें स्नान कराती हैं।।६५।। लज्जा रूपी साड़ी धारण कराके उनके हृदय-देश पर प्रीति की कञ्चुकी धारण कराती हैं।।६६।। किशोरी के अङ्गों में हाव-भाव के अलङ्कार अलङ्कृत करती हैं एवं रस रीति के गुण-समूह रूपी सुगन्धि से प्रिया के श्री अङ्गों को सुरभित करती हैं।।६७।। मूर्त्तिमान् शृङ्गार-रस के द्वारा बहुविध-चर्चित अञ्जन से प्रिया के नेत्रों का अनुरञ्जन करती हैं।।६८।।

मैंहदी रँग अनुराग सुरंगा। कर अरु चरन रचे तेहि रंगा।।६९।।
बंक चितवनी रस सौं भीनीं। मनौं करुना की बरसा कीनी।।७०।।
झलमल रही सुहाग की जोती। नासा फबि रह्यौ पानिप मोती।।७१।।
नेह फुलेल बार वर भीनें। फूल के फूलनि सौं गुहि लीनें।।७२।।
मौरी रँग अनुराग की डोरी। तिय कर बाँध्यौ पिय मन गोरी।।७३।।

दोहा

हास झलक हीरावली, अधर-बिंब अनुराग।
त्रिवली सीवाँ रूप की, नवसत-पोति सुहाग।।७४।।

चौपाई

ऐसी प्यारी पिय उर बसै। ज्यौं घन में दिन दामिनि लसै।।७५।।

मेंहदी का अरुणिम रङ्ग ही मानो सुरञ्जित अनुराग है, जिससे नवल किशोरी के सुकोमल श्री-कर एवं चरणों को रँगती हैं।।६९।। रस-सिक्त बङ्क चितवन ही मानो किशोरी की करुणा-वृष्टि है, जो समस्त परिकर को रस-सिक्त करती रहती है।।७०।। प्रिया के ललाट पर सौभाग्य सुख की ज्योत्स्ना सदैव झलमलाती रहती है। उनकी शुक-नासिका पर नासा-मौक्तिक का लावण्य अपूर्व शोभा को प्राप्त है।।७१।। स्नेह रूपी सच्चिक्कण फुलेल से उनकी लम्बमान् केश-राशि को स्निग्ध करके प्रसन्नता एवं उत्साह के पुष्पों से गुंथित किया गया है।।७२।। सखियों ने आनन्द की मौरी (भूषणविशेष) अनुराग की डोरी से पिरोकर प्रिया के कर-कमलों में आबद्ध की है, जो प्रियतम के मन को पाश-बद्ध कर लेने में परम समर्थ है।।७३।। प्रिया के मन्द हास्य की झलक ही हीरक-पङ्क्ति है। बिम्बा-फल जैसा अधर ही अनुराग है। उदर की त्रिवली-रेखा समग्र रूप की चरम सीमा है तथा सौभाग्य सूचक पोतों की दुलरी ही षोडश शृङ्गार की चरम-रेखा है।।७४।। ऐसी नख-शिख अद्भुत शृङ्गारमयी लाड़िली प्रिया, प्रियतम के मन में सदैव ऐसे बसी रहती है, जैसे सघन मेघ में सदैव दामिनी का निवास है।।७५।।

अद्भुत वृंदावन रजधानी। अद्भुत दुलहिनि राधा रानी।।७६।।
अद्भुत दूलहु नित्य किशोर। अद्भुत रस के चंद-चकोर।।७७।।
अद्भुत जहाँ प्रेम कौ रंग। अद्भुत बन्यौ दुहुनिं कौ संग।।७८।।
अद्भुत रूप सहज सुकुँवारी। वृंदावन की मनि उजियारी।।७९।।
तिनकौं सेवत लाल बिहारी। तन मन बचन रहे तहाँ हारी।।८०।।
अद्भुत प्रेम एक व्रत लीनौं। छाँड़ि प्रिया मन अनत न दीनौं।।८१।।
छिन-छिन औरै-और सिंगार। गुहि फूलनि पहिरावत हार।।८२।।
ठाढ़े होइ रहत कर जोरैं। लै बलाइ बारत तृन तोरैं।।८३।।

वृन्दावन धाम अद्भुत अनुपम राजधानी है, जहाँ की साम्राज्ञी श्री राधा अद्भुत नव-वधू हैं।।७६।। जिनके प्रियतम हैं अद्भुत नित्य नव-किशोर दूलह श्री श्यामसुन्दर। ऐसे श्री राधा-श्यामसुन्दर वृन्दावनीय अद्भुत रस के अद्भुत चन्द्रमा एवं चकोर हैं।।७७।। नित्य-निकुञ्ज श्री वृन्दावन का प्रेम जहाँ अद्भुत है, वहीं अद्भुत प्रिया-प्रियतम का सङ्ग-साहचर्य्य भी अद्भुत है।।७८।। नवल-किशोरी सुकुमारी का सहज रूप-लावण्य अत्यद्भुत है। वे वृन्दावन की ज्योतिर्मयी-मणि हैं।।७९।। श्री बिहारी लाल प्रियतम अपना तन-मन-प्राण आदि सब कुछ हार कर समर्पण पूर्वक उनका सेवन करते रहते हैं।।८०।। तथा उनका एक ही अद्भुत प्रेम-व्रत है कि उन्होंने प्रिया के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र अपना मन दिया ही नहीं है।।८१।। सेवा-परायण प्रियतम प्रतिक्षण प्रिया को नित्य नव-नव शृङ्गार-भूषणों से शृङ्गारित करके मृदु-मृदु पुष्पों की मालाएँ गूँथ कर उन्हें धारण कराते हैं।।८२।। तथा प्रिया के सम्मुख दैन्य-भाव धारण किए कर-बद्ध खड़े रह कर उनकी बलैयाँ लेते रहते हैं, स्वयं उनपर न्यौछावर होकर तृण तोड़ते हैं।।८३।।

दोहा

चितवति जितही लाड़िली, तित ही मोहन लाल।
सो ठाँ प्यारी ह्वै गई, देखौ प्रीति की चाल।।८४।।

चौपाई

तब मुसिकाइ लियै उर लाई। रीझि प्रेम माला पहिराई।।८५।।
अद्भुत प्रेम विलास अनंगा। अद्भुत रुचि के उठत तरंगा।।८६।।
अद्भुत प्रेम कह्यौ नहिं जाती। रसिक रँगीली तेहि रँग राती।।८७।।
ललित विसाखा सखी पियारी। दंपति सुख मन समुझनि हारी।।८८।।
सब सखियनि कौं दोऊ प्यारे। जीवन प्रान चखनि के तारे।।८९।।

लाड़िली प्रिया जिस ओर दृष्टिपात करतीं हैं, अनुगामी मोहन लाल भी वहीं अपनी दृष्टि स्थिर कर देते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की इस अद्भुत गति का दर्शन तो कीजिये, आश्चर्य है कि जिस स्थल पर प्रिया का दृष्टिपात होता है, वही भूमि प्रियतम के लिए प्राणवत् प्रिय हो जाती है।।८४।। अहो, प्रियतम की ऐसी प्रेम-विवश दशा का अवलोकन कर श्री प्रिया ने मुस्कुराते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया है एवं उनकी प्रीति पर रीझ कर उन्हें अपनी माला धारण करा दी है।।८५।। श्री वृन्दावन का अनङ्गमय प्रेम-विलास अद्भुत है, जिसमें अद्भुत रुचि की अद्भुत तरङ्गें तरङ्गायित होती रहती हैं।।८६।। रसिक रँगीली प्रिया जिस आनन्द रङ्ग में रँगी हुईं हैं, उस अद्भुत प्रेम की वार्त्ता कहने में नहीं आती।।८७।। नवल किशोरी प्रिया की प्राण-प्रिय सहचरियाँ श्री ललिता-विशाखा ही दम्पति के आभ्यन्तर सुखों को समझने में समर्थ हैं।।८८।। परम प्रियतम रसिक युगल सब सखियों को प्राणाधिक प्रिय हैं, उनके प्राण-जीवन हैं एवं युगल ही उनके नेत्रों की तारिकाएँ हैं।।८९।।

दोहा

भुज सौं भुज उर सौं उरज, अधर अधर जुरे नैंन।
ऐसी विधि जौ रहैं तौ, कछुक होइ चित चैंन।।९०।।

तात्पर्य एवं उपसंहार चौपाई

या सुख पर नाहिंन सुख औरै। जेहि उर रचे रसिक सिरमौरै।।९१।।
या सुख सौं 'ध्रुव' जो मन लावै। ताकौ भाग कहत नहिं आवै।।९२।।
ऐसै अद्भुत भक्त अनूपा। जिनके हिये रहत यह रूपा।।९३।।
श्री हरिवंश चरन उर धारै। सो या रस में ह्वै अनुसारै।।९४।।
श्री हरिवंशहि हित सौं गावै। जुगल-बिहार प्रेम रस पावै।।९५।।

सखियों का सुख युगल के सुख में निहित है। रसिक युगल जब तक अपनी बाहु-लताओं से बाहु, वक्षोज से वक्षोज, अधर से अधर एवं नयनों से नयन मिलाये रखते हैं, तभी तक उनको एवं उनके परिकर (सखियों) को कुछ शान्ति रहती है। सब चाहते हैं कि सदैव ऐसी ही स्थिति बनी रहे।।९०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं उपरिवर्णित 'रहस्य मंजरी' के सुखों से अधिक अन्य कोई सुख नहीं है, किन्तु जिस किसी सौभाग्यशाली हृदय में रसिक शिरोमणि श्री हित-हरिवंश चन्द्र कृपा पूर्वक इसकी स्थापना कर दें। वही इस सुख का अधिकारी हो सकेगा।।९१।। जो कोई रसिक उपासक इस रस से अपना मन संयोजित करेगा, उस भाग्यशाली के भाग्य की महिमा कह सकना कठिन है।।९२।। वे भक्त जिनके हृदय में 'रहस्य मञ्जरी' का रसमय रूप-विलास सदैव निवास करता है, वे ही अनुपम एवं अद्भुत रसिक- भक्त हैं।।९३।। यदि कोई उपासक इस रस-रीति में प्रवेश पाने के लिए इनका अनुसरण करता है, तो उसे चाहिये कि सर्वप्रथम श्रद्धा-पूर्वक श्री हित-हरिवंश के चरणों को अपने अन्तर्हृदय में धारण करे।।९४।।

जापर श्री हरिवंश कृपाला। ताकी बाँह गहैं दोउ लाला।।९६।।
श्री हरिवंश हियै जो आनै। ताहि कुँवरि अपनौ करि मानै।।९७।।
यह रस गायौ श्री हरिवंश। मुक्ता कौन चुनै बिनु हंस।।९८।।
रसद 'रहस्य मंजरी' भई। छिन-छिन जोति होति है नई।।९९।।
दुहुँनि मध्य सखियनि लै बई। आनँद बेलि बढ़ी रस मई।।१००।।
श्री हरिवंश प्रकट करि दई। जाकौ भाग तिनहि 'ध्रुव' लई।।१०१।।

प्रीति-पूर्वक श्री हित हरिवंश के गुणमय लीला-चरित्रों का गान करे। तो निश्चित ही वह युगल किशोर के प्रेममय रस-विहार की प्राप्ति में समर्थ होगा।।९५।। जिस भाग्यशाली पर रसिक-शिरोमणि श्री हित-हरिवंश कृपालु होंगे, निश्चित ही लाड़िली-लाल युगल उसकी भुजा को पकड़ लेंगे अर्थात् निश्चित ही उसे आश्रय प्रदान करेगें।।९६।। जो श्री हित-हरिवंश को अपने हृदय में विराजमान करेगा, उसे कुँवरि-किशोरी श्री राधा अपना निज जन स्वीकार करेंगी।।९७।। इस अद्भुत एवं अमल रस-रहस्य का आदि गान रसिक शिरोमणि श्री हित हरिवंश ने किया है। वे रस-सरोवर के राज-हंस हैं, जो निर्मल मुक्ताओं का चयन करते हैं या चुगते हैं अर्थात् यह नित्य-विहार-रस रसिक शिरोमणि श्री हित हरिवंश का आस्वाद्य रस है। [जिसका प्रादुर्भाव उन्होंने किया है, उनके अतिरिक्त न कोई इस रस का ज्ञाता है, न कोई प्रदाता है। एकमात्र हित-हरिवंश जी ही इस रस-विहार विलास सिद्धान्त के प्राकट्य कर्त्ता आचार्य हैं।]।।९८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं इस प्रकार यह रसदायक 'रहस्य मञ्जरी' नामक ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ, जिसकी शान्त-शीतल ज्योति प्रतिक्षण नवीन होती रहती है।।९९।। इस 'रहस्य मञ्जरी' के बीजों का वपन सखियों ने युगल रसिक प्रिया-प्रियतम रूपी क्षेत्र में किया, तब यह रसमयी आनन्द-लता अभिवृद्धि को प्राप्त हुई।।१००।। जिसका प्रकाश लोक-हित में अनन्य रसिक जनों के लिए श्री हित हरिवंश जी ने किया। तभी भाग्यशाली जनों को इसकी उपलब्धि हुई।।१०१।।

दोहा

नित्यहि नित्य-बिहार दोउ, करत लाड़िली-लाल।
वृंदावन आनंद जल, बरसत हैं सब काल।।१०२।।
रूप-रँगीली सभा सो, प्रेम-रँगीलौ राज।
सखी सहेली संग रँग, अद्भुत सहज समाज।।१०३।।
यह सुख देखत कंठ दृग, रुकै न आनँद-वारि।
और अंग हारे सबै, नैंन न मानत हारि।।१०४।।
सत्रह सौ द्वै ऊन अरु, अगहन पछि उजियार।
दोहा चौपइ कहे 'ध्रुव', इकसत ऊपर चार।।१०५।।

युगल ललित लाड़िली-लाल अनादि-अनन्त नित्य-विहार में मग्न रहते हैं तथा उनके निज धाम श्री वृन्दावन में सर्वकाल आनन्द का जल ही बरसता रहता है।।१०२।। श्री वृन्दावन एक प्रेम रङ्गमय साम्राज्य है, वहाँ का रूपमय रस लेने वाला चतुर्व्यूहात्मक (प्रिया-प्रियतम, सखी एवं वृन्दावन) परिकर ही वहाँ की सभा है।।१०३।। सखी एवं सहेलियों के साथ यह समाज अद्भुत आनन्द रङ्ग में मग्न रहता है। इस सुख का चिन्तन करते ही हृदय से आनन्द रूपी जल-प्रवाह उमड़ चलता है, जो न कण्ठ में रुकता है न दृगों में। जिसका पान करके रसिक उपासक के अन्य सभी अङ्ग थकित हो जाते हैं, किन्तु रूप-रसिक नेत्र कभी भी हार नहीं मानते। उनकी रूप-दर्शन की लालसा प्रतिपल बढ़ती ही रहती है।।१०४।। पुनः श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि 'रहस्य मञ्जरी' की रचना एक सौ चार दोहों एवं चौपाइयों में विक्रम संवत् सौलह सौ अठानवै के शुक्ल पक्षीय मार्गशीर्ष मास में सम्पन्न हुई।।१०५।।

●

२४
सुख-मञ्जरी

श्री लाल जी की प्रेमासक्ति — दोहा

सखी एक हितकी अधिक, आनँद कौ समै पाइ।
दसा कुँवर की प्रिया सौं, कहति बनाइ-बनाइ।।१।।
चाह मदन की बिथा कौ, नाहिंन है कछु ओर।
पलु-पलु पिय-हिय में बढ़ै, यहै सोच मन मोर।।२।।
सिथल अंग बलहीन सखि, कछुक भयौ तन छीन।
करि उपाइ प्यारी प्रिया, तुम जल हौ वे मीन।।३।।

किसी समय निकुञ्जेश्वरी प्रिया अपने रङ्ग-महल में सहज आनन्द-मयी स्थिति में प्रसन्न-मन विराजमान् थीं। तभी उनकी एक हित-चिन्तक सखी श्री चरणों में उपस्थित हो, प्रियतम की प्रेम-दशा का सधे हुए शब्दों में ज्ञापन करती हुई निवेदन करने लगी।।१।। हे किशारी जू! इस समय आपसे वियुक्त हुए प्रियतम के मन में उत्कण्ठापूर्ण स्मर-व्यथा व्याप्त है। वे आपके अतिरिक्त अन्य सब कुछ भूल चुके हैं। उनके हृदय में प्रतिपल मदन-व्यथा की अभिवृद्धि हो रही है। इस बात से मेरा मन अधिक अनर्थ की आशङ्का से चिन्ता-ग्रस्त है।।२।। हे सखि! प्रियतम के सभी अङ्ग प्रेम-प्रभाव से शिथिल तथा बलहीन हो चुके हैं। उनका सुभग तनु कुछ-कुछ कृश भी हो गया है। हे प्राण-प्रिये! आप शीतल जल की भाँति हैं तथा वह आपके स्वरूप में निवास करने वाले मीन की भाँति हैं। उनका जीवन आपके अधीन है, अतएव जीवन-रक्षा का कोई उपाय कीजिये।।३।।

सोरठा

मिटत नहीं यह रोग, तुम हौ मूरि-सजीवनी।
बन्यौ आनि संजोग, अब विलंब कीजै न बलि।।४।।

दोहा

उनके लक्षन कहौं कछु, चित्त दै सुनि सुकुँवारि।
नारी में पिय प्रान बसैं, नारी नारि निहारि।।५।।
जैसैं बिथा बढ़ै नहीं, कीजै जतन बिचारि।
देवै कौं कछु और नहिं, दैहैं प्राननिं वारि।।६।।

सखी ने पुनः कहा—हे किशोरी जी! आप उनके जीवन की मूल सञ्जीवनी औषधि हैं। आपके बिना उनका यह रोग किसी भी प्रकार से नहीं मिट सकता, इसलिए अब आपको विलम्ब नहीं करना चाहिए। मैं आपकी बलिहार जाऊँ, यह शुभ संयोग ही है कि वे अभी देह-सुधि धारण किए हुए हैं।।४।। सखी ने पुनः कहा, "हे प्रिये! आप मेरा निवेदन मनोयोगपूर्वक श्रवण करने का कष्ट करें। मैं उनकी प्रेम-व्यथा के लक्षणों का कुछेक वर्णन आपको सुनाना चाहती हूँ। इस समय प्रियतम के प्राण "नारी" (नाड़ी) में बसे हुए हैं, (मरणासन्न स्थिति में पहुँचने पर देहधारी का प्राण-तत्त्व सम्पूर्ण देह से सिमिट कर नाड़ी में स्थित हो जाता है। ऐसी उनकी अन्तिम जैसी स्थिति है। दूसरा आशय यह है कि रमणी-रूप नारी आप में अथवा आपके चिन्तन में उनके प्राण बसे हैं।) इसलिए हे नारी स्वरूप! रमणी! आप उनके समीप पहुँच कर उनका नाड़ी-परीक्षण करें।।५।। एवं विचारपूर्वक प्रयत्न करें, जिससे उनकी व्यथा की वृद्धि न हो। आपके द्वारा किये गये औषधि-उपचार के बदले में देने के लिए उनके पास और कुछ तो है नहीं, वे अपने प्राण आप प्राणप्रिया पर न्यौछावर अदश्य कर सकते हैं।।६।।

सुनत सखी के बचन ये, करुना बढ़ी अपार।
तबहि कुँवरि अति हेत सौं, करन लगी उपचार।।७।।

प्रेमोपचार दोहा

प्रथमहिं नारी देखिकैं, हिय पर कर धरयौ आनि।
रौंम-रौंम आनँद भयौ, परस होत ही पानि।।८।।
बहुत भाँति की औषधी, चितवनि मुसिकनि भाइ।
सँभराये तेहि छिन सखी, अधर-सुधा रस प्याइ।।९।।
कोक-कलनि के रस विविध, जानत परम उदार।
दियौ किसोरी प्यार सौं, अंग मृगांग सँवार।।१०।।

सखी के मार्मिक, करुणापूर्ण एवं श्लेषार्थमय विनीत वचनों को सुनते ही अपार करुणासिन्धु श्री प्रिया का हृदय करुण-रस से उज्जृम्भित हो उठा। वे अति शीघ्रता से तत्काल प्रियतम के समीप पहुँच कर उन्हें प्रकृतिस्थ करने का प्रीतिपूर्ण उपचार करने लगीं।।७।।

श्री प्रिया ने प्रियतम के कर-कमल को अपने कर-कमलों में धारण करके कराङ्गुलियों का सुखद स्पर्श प्रदान करते हुए सर्वप्रथम उनका नाड़ी-परीक्षण किया। तदुपरान्त उनके वक्षस्थल पर अपना सुशीतल कर-कमल स्थापित करके मानो हृदय-गति एवं स्थिति का भी परीक्षण किया। परीक्षण के व्याज से वस्तुतः अमृतमय स्पर्श दिया। फलतः प्राण-प्रिया का रसद स्पर्श प्राप्त करके प्रियतम का रोम-रोम आनन्दातिरेक से भर गया।।८।। रसमयी चितवन, मन्द-मधुर मुसकान, भृकुटि-भङ्गिमा एवं अन्यान्य मधुमय हाव-भावों की विविध औषधियों का सेवन कराके अन्त में अधर-सुधा-रस पान कराया। तदुपरान्त प्रियतम को सावधान कर उनकी उचित शुश्रूषा के लिए सखी को उन्हें सौंप दिया।।९।। रसिक-शिरोमणि प्रिया, कोक-कलाओं की रस रूपी औषधियों की परम ज्ञाता हैं। वे परम उदार हैं। उन्होंने प्रीतिपूर्वक प्रियतम को अपने

नैंन-कटाक्ष सुवास अँग, चितवनि प्यार की कीन।
अति प्रवीन रस लाड़िली, लालहि पथ मनु दीन।।११।।
परिरंभन चुबंन अधिक, करत विलास अहार।
तुष्ट-पुष्ट बल रुचि भई, बाढ़ी चाह अपार।।१२।।

कृतज्ञता-प्रकाश दोहा

गरैं पीताबंर मेलि कै, चरननि पर धर्‌यौ सीस।
दयौ अपनपौ रीझि तब, श्री वृंदावन ईस।।१३।।

अङ्ग में भर कर अङ्ग-सङ्ग रूपी 'मृङ्गाङ्ग' नामक रसौषधि का सेवन कराया।।१०।। औषधि उपचार के उपरान्त अपने रसीले नेत्रों की कटाक्ष-भङ्गिमा, श्री अङ्ग की सुगन्धि एवं प्रेमपूर्ण चितवन का पथ्य (भोजन) आरोगाया।।११।। स्वास्थ्य-लाभ के लिए अधिकाधिक चुम्बन एवं परिरम्भन पूर्वक विविध विलासों का पथ्यपूर्ण आहार देने से व्याधि-दशा का निवारण होकर श्री लाल जी को तुष्टि-पृष्टि प्राप्त हुई। बल एवं रुचि की अभिवृद्धि हुई तथा अपार उत्कण्ठा एवं प्रेम-लालसा भी बढ़ गई। इस प्रकार मदन-व्यथा (रोग) का निवारण होकर श्री लाल जी में सहज प्रेम की स्वस्थ स्थिति आ गयी।।१२।।

मदन-व्यथा किंवा अस्वस्थता का निवारण होकर शुद्ध तत्सुखमयी प्रेम-स्थिति रूपी स्वास्थ्य-लाभ से उपकृत होकर श्री लाल जी ने दैन्य-भाव-पूर्वक अपने कण्ठ-देश में पीताम्बर डाल कर-बद्ध-मुद्रा में श्री प्रिया-चरणों में अपना मयूर-पिच्छ-मण्डित शीश स्थापित कर प्रणाम किया। [इसका आशय हुआ कि वृन्दावनाधीश, अखण्ड ऐश्वर्यशाली परात्पर सर्वोपरि ब्रह्म तत्त्व ने आज रसिकता के क्षेत्र में नवल-किशोरी श्री राधा की कृपा से परात्पर रस किंवा तत्सुखमय प्रेम की उपलब्धि करके अपना स्वत्त्व-महत्त्व एवं अहं उनके श्री चरणों में समर्पित कर दिया]।।१३।।

पुनि पग परसे सखिनु के, कीनौं बड़ उपकार।
तासौं इतनी कहि कुँवर, पहिरायौ उर हार।।१४।।

युगल की प्रेम-केलि दोहा

मदन छुधा पानिप त्रिषा, सरिता बढ़ी गँभीर।
प्रेम मगन बिलसत रहैं, पावत नाहिंन तीर।।१५।।
विविध बिहार विनोद रँग, उठत है मदन तरंग।
अंग-अंग सब चपल भये, नित्तत मनहु सुधंग।।१६।।
हार बलय किंकिनि झनक, नूपुर की झनकार।
परे मीन मन दुहुँनि के, रस प्रवाह की धार।।१७।।

तत्पश्चात् उन्होंने समस्त सखियों के श्री चरणों का स्पर्श किया और आभार व्यक्त किया कि आपने बड़ा उपकार किया इसलिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। इतना कहकर उस सखी को, जिसने श्री प्रिया के समीप अस्वस्थता का सन्देश निवेदन किया था, उन्होंने अपना कण्ठ-हार पहना दिया।।१४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि व्यथा-निवारण के पश्चात् युगल के मनों में प्रेम-केलि की क्षुधा (भूख) एवं लावण्य-दर्शन की पिपासा रूपी गम्भीर सरिता में उफान सा आ गया। उस प्रेम-सरिता में प्रेम-मग्न युगल रस-विलास में तरङ्गायित होते रहे, किन्तु उन्हें तट की प्राप्ति नहीं हुई।।१५।। उनके हृदयों में अनेक प्रकार से विहार सम्बन्धी विनोद, आनन्द एवं प्रेम-क्रीड़ा की तरङ्गें उठती रहीं। प्रेम-क्रीड़ाओं के अनुपम प्रवाह से उनका प्रत्येक अङ्ग अतिशय चञ्चल हो उठा, तब ऐसा लगा मानो उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग नृत्य कर रहे हों।।१६।। उस नृत्य में हारावली, हाथों की चूड़ियाँ, कटि की किङ्किणियाँ और चरणों के नूपुर बारम्बार झङ्कृत होने लगे तथा दोनों के मन रूपी मीन इस प्रवाह की गँभीरता में डूब गये।।१७।।

हाव-भाव लावन्यता, अद्‌भुत प्रेम-विहार।
केलि खेल निवरत नहीं, तैसेई खेलनहार।।१८।।
रूप-रसासव पिवत दोउ, नहिं जानत दिन-रैंन।
पल कौ अंतर परत नहिं, जुरे नैंन सौं नैंन।।१९।।
त्रिपित न कबहूँ भये हैं, जदपि मिले अँग-अंग।
रुचि न घटै छिन-छिन बढ़ै, प्रेम अनंग-तरंग।।२०।।
छके रहत दोउ लाड़िले, यह रस रंग-विहार।
सँभरावत छिन-छिन सखी, तब कछु होत सँभार।।२१।।

आनन्द-दशा दोहा

ज्यौं-ज्यौं करत विहार दोउ, बाढ़त चाह बिलास।
जल पीवत हैं प्यास कौं, सोई जल भयौ प्यास।।२२।।

युगल के पारस्परिक हाव-भाव, उनका रूप-लावण्य एवं अद्भुत प्रेमपूर्ण-विहार सब कुछ विलक्षण है। जैसे उत्कृष्ट केलि-परायण युगल हैं, वैसी ही रसमयी है उनकी केलि, अतएव रसिक-युगल कभी भी केलि से निवृत्त नहीं हो पाते।।१८।। वे कालातीत हुए अहर्निश रूप-रसासव का पान करते रहते हैं। उनके बीच में एक पल का भी अन्तराय प्रवेश नहीं कर पाता। रूप-लालची युगल के नयन से नयन सदैव जुड़े ही रहते हैं।।१९।। यद्यपि श्री श्यामा-श्याम रसिक युगल निरन्तर अङ्ग-प्रत्यङ्ग से आलिङ्गित रहते हैं, तथापि आज तक वे कभी तृप्त नहीं हुए। उनकी प्रेम रुचि-प्रेम रूपी अनङ्ग की तरङ्गें प्रतिक्षण बढ़ती रहती हैं, घटती नहीं।।२०।। श्री वृन्दावन का यह आनन्द-विहार विलक्षण रस से ओत-प्रोत है, जिसमें रसिक लाड़िली-लाल सदा छके रहते हैं तथा देहानुसन्धान-रहित बने रहते हैं। उनकी हित-रूपा सखियाँ प्रतिक्षण उन्हें सँभालती रहती हैं तथा सावधान करती रहती हैं, तब कुछ उनमें सावधानी सी भी आ जाती है।।२१।।

युगल रसिक क्रमशः जैसे-जैसे विहार-केलि में मग्न होते जाते हैं,

रहे लपटि आनंद सौं, आनँद कौ पट तानि।
'हित ध्रुव' आनँद कुंज में, रमि रह्यौ आनँद आनि।।२३।।
यह सुख निरखत सहचरी, जिनकै यहै अहार।
प्रेम मगन आनंद रस, रही न देह सँभार।।२४।।
अद्भुत बैदक मधुर रस, दोहा कहे पचीस।
सुनत मिटै हृद रोग 'ध्रुव', झलकहिं उर बन ईस।।२५।।

वैसे-वैसे उनके अन्तर्मन में प्रेम-विलास की उत्कण्ठा वृद्धि को प्राप्त होती जाती है, जैसे पिपासा शान्त करने के लिए पान किया गया जल भी पीने वाले के लिए प्यास बनता जाता हो।।२२।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक-युगल लाड़िली-लाल आनन्द के आलिङ्गन में आबद्ध हुए आनन्द रूपी कुञ्ज में जब शयन करते हैं तब ऐसा लगता है, मानो मूर्तिमान् आनन्द वृन्दावन की निभृत निकुञ्जों में रम रहा हो।।२३।। जिन सखियों का आत्मिक-आहार युगल का विलास सुख ही है, वे इस सुख का दर्शन करती हुईं प्रेमानन्द के रस में मग्न हो जाती हैं। उन्हें अपने देह का भी अनुसन्धान नहीं रहता।।२४।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि 'सुख मञ्जरी' नामक ग्रन्थ का वर्णन अद्भुत आयुर्वैदिक मधुर रस का गान है, जिसे पच्चीस दोहों में वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का श्रवण करने से मानव-मात्र का हृद-रोग (काम-विकार) सर्वथा विनष्ट होकर साधक के हृदय में वृन्दावन के अधिष्ठाता युगल-किशोर श्रीलाड़िलीलाल सदैव जगमगाने लगते हैं।।२५।।

२५
रति-मञ्जरी

मङ्गलाचरण एवं प्रस्तावना

दोहा

हरिवंश नाम ध्रुव कहत ही, बाढै आनँद-बेलि।
प्रेम रंग उर जगमगै, जुगल नवल रस-केलि।।१।।
(श्री) हरिवंश चंद पद बंदिकै, करत बुद्धि अनुसार।
ललित विसाखा सखिनु के, यह रस प्रान-अधार।।२।।
एती मति मोपै कहाँ, सिंधु न सीप समात।
रसिक अनन्यनि कृपा बल, जो कछु बरन्यौ जात।।३।।

'रति-मञ्जरी' नामक इस ग्रन्थ का प्रणयन करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्रीहित हरिवंश के मङ्गलमय नाम का उच्चारण करने मात्र से हृदय में आनन्द की लता लहलहाने लगती है। प्रेम का उल्लास एवं नवल युगल श्री लाड़िली-लाल की रसमयी केलि-क्रीड़ा हृदय में जगमगाने लगती है।।१।। मैं वंशी स्वरूप श्री हित हरिवंश चन्द्र के श्री चरणों की वन्दना करके अपनी सामान्य बुद्धि के अनुसार "रति-मञ्जरी" का गान-वर्णन करूँगा। रति-मञ्जरी का रस श्री ललिता-विशाखा आदि सखियों के प्राणों का आधार है।।२।। इस रस-वर्णन के लिए मेरे पास विशाल बुद्धि का अभाव है, जैसे सीप में समुद्र नहीं भरा जा सकता, वैसे ही मेरी अल्पबुद्धि में विशाल रसकेलि 'रति-मञ्जरी' नहीं भरी जा सकती, तथापि जो कुछ भी वर्णन किया जायगा, वह सब रसिक अनन्य महापुरुषों का ही कृपावल किंवा आशीर्वाद होगा।।३।।

श्री वृन्दावन वर्णन चौपाई

प्रथमहिं सुमिरौं श्री वृंदावन। जा देखत फूलै यह तन-मन।।४।।
कुंदन रचित खचित धर बनी। सो छबि कैसैं जाति है भनी।।५।।
रज कपूर की झलकनि न्यारी। हियौ सिराइ निरखि सोभा री।।६।।
ललित तमाल लता लपटानी। कूँजत कोकिल अति कल बानी।।७।।
तपन-सुता छबि जात न बरनी। रस-पति रस ढारयौ मनु धरनी।।८।।
कुंज सुरंग सुदेस सुहाई। रति-पति रचि-रचि रुचिर बनाई।।९।।

दोहा

कुंकुम अंबर अगरसत, बेलि चँबेली फूल।
सखियनि सबकौ मोद लै, रची कुंज सुख मूल।।१०।।

मैं सर्वप्रथम श्री प्रिया जी के निजधाम श्री वृन्दावन का स्मरण करता हूँ ,जिसके दर्शन-मात्र से मेरा यह तन-मन प्रफुल्लित हो उठता है।।४।। श्री वृन्दावन की भूमि स्वर्ण-रचित एवं मणि-खचित है, जिसकी छवि (कान्ति) का वर्णन वाणी के द्वारा असम्भव है।।५।। वृन्दावन की कर्पूर-धूलि की झलक अपूर्व है, जिसकी शोभा का दर्शन करके हृदय शीतल हो जाता है।।६।। तमाल-तरु से आलिङ्गित सुकोमल ललित लताओं पर कूँजती हुई कोकिल की मधुर वाणी विलक्षण है। सूर्य-पुत्री श्री यमुना की प्रवाह-छवि ऐसी प्रतीत होती है, मानो मूर्त्तिमान् शृङ्गार-रस ने पृथ्वी पर रस का प्रवाह प्रवाहित कर दिया हो।।७-८।। श्री यमुना के तट पर परम सुहावनी सुरङ्ग कुञ्ज ऐसी दिखती है, मानो रति-पति कामदेव ने स्वयमेव अपने कर-कमलों से रुचि पूर्वक इसकी रचना की हो।।९।। साथ ही सखियों ने केशर, कस्तूरी, चन्दन का सत्व-सौरभ एवं मल्लिका के पुष्पों की सुगन्धों का मोद-सार लेकर इस सुख-मूल कुञ्ज को सँवारा-सजाया है।।१०।।

रूप-पुंज रस पुंज दोउ, पौढ़े प्रेम-प्रजंक।
बिलसत नवल बिहार निजु, सब विधि होइ निसंक।।११।।

निज रस वर्णन चौपाई

अब बरनौं निज रस सिंगारा। सुख निधि सरस निकुंज बिहारा।।१२।।
नवल नाइका अति सुकुँवारी। नाइक रसिक निकुंज बिहारी।।१३।।
अति प्रवीन रस कोक में दोऊ। राज हंस गति घटि नहिं कोऊ।।१४।।

दोहा

रूप मदन रस मोद की, सहज जुगल वर देह।
बैठे प्यार की सेज पर, भरे मोद मृदु नेह।।१५।।

कुञ्ज के अभ्यन्तर भाग में प्रेम-पर्यङ्क पर रूप-निधि, रस के पुञ्ज युगल-किशोर श्री श्यामा श्याम सब ओर से सर्वविध निःशङ्क एवं निर्मर्यादित भाव से सहज नवल-विहार-विलास करते रहते हैं।।११।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब मैं महली युगल किशोर श्यामा-श्याम के सहज शृङ्गार-रस (उज्जवल-रस-केलि) का वर्णन करूँगा, जो अतिशय सरस एवं सुख निधान निकुञ्ज विहार है।।१२।। जिसकी नित्य नवनवायमान् रूप लावण्य धाम, सर्वगुण सम्पन्न अत्यन्त सुकुमारी नायिका हैं—नवल किशोरी श्री राधा एवं जिसके धीर ललित नायक हैं—रसिक शेखर निकुञ्ज विहारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण।।१३।।ये रसिक युगल, दाम्पत्य-विलास सम्बन्धी कोकविद्या के राज-हंस एवं राज हंसिनी हैं। रस-विलास में न्यूनाधिक न होकर सहज समतुल्य हैं।।१४।। निभृत निकुञ्ज-विलासी युगल की दिव्य देहयष्टि, रूप-लावण्य मदन-रस एवं मोद से निर्मित है। वे प्रसन्नता एवं सुकोमल स्नेह से भरे हुए, प्रेम-प्यार की शय्या पर विराजमान् रहते हैं।।१५।।

एक रंग रुचि एक वय, एक प्रान द्वै देह।
पल-पल पिय हुलसत रहत, अरुझे सरस सनेह।।१६।।

चौपाई

सब बिधि नागर नवल किसोरी। सील सुभाव नेह निधि गोरी।।१७।।
अति गंभीर धीर वर बाला। परम सलज्ज रूप की माला।।१८।।
नवल रँगीली राजत खरी। रंग-लता रस भाइनि भरी।।१९।।

दोहा

कोमल कुंदन बेलि मनौं, सींची रंग सुहाग।
मुसकनि लागे फूल फल, उरज भरे अनुराग।।२०।।

चौपाई

बरसत छबि बरसा सी माई। चातिक लाल न पिवत अघाई।।२१।।

ये कहने मात्र को दो देहधारी हैं। इनका आस्वाद्य-रस, रुचि, आयु एवं प्राण सब कुछ एक ही है, तथापि रसिक युगल सरस स्नेह से संवलित हुए प्रतिपल उल्लसित रहे आते हैं।।१६।। इसी प्रकार नवल किशोरी प्रिया सब प्रकार से रस-विदग्धा हैं ; वे शील, विनम्रता, मृदु-मृदु स्वभाव एवं स्नेह की निधि हैं।।१७।। अत्यन्त गम्भीर हैं, परम धीर हैं, समस्त सखियों की शिरोमणि हैं, परम सलज्ज एवं रूप की माला हैं।।१८।। नित्य नव रँगीली हैं, मानो रस एवं भावों से भरी मूर्त्तिमान् आनन्द की लता हैं।।१९।। वे ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो सुकोमल कुन्दन-बेलि सुहाग के आनन्द-जल से सिञ्चित होकर लहलहा रही हो, जिसमें मन्द मधुर स्मित के फूल विकसित हो रहे हों एवं अनुराग-रस पूरित उरोज रूपी फल लगे हों।।२०।। जिनके अङ्ग-अङ्ग से प्रतिपल शोभा की वृष्टि होती ही रहती है, तथापि तृषातुर चातकवत् प्रियतम स्वाति-रसपान करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं।।२१।।

आतुर पिय आधीन अधीरा। जाँचत रहत दसन वर चीरा।।२२।।
छिन-छिन नई-नई छबि औरे। सुधि नहिं रहन देति सिरमौरे।।२३।।
जेहि अँग ओर परै मन जाई। छुटै न तहाँ ते रहत लुभाई।।२४।।

दोहा

ज्यौं-ज्यौं सर में जल बढ़ै, कमल बढ़ै तेहि भाँति।
ऐसी पिय की रुचि बढ़ै, निरखि प्रिया-तन-काँति।।२५।।

चौपाई

अद्‌भुत सहज माधुरी अंगा। चितै रीझि भरि लेत उछंगा।।२६।।
झटकनि लटकनि की छबि न्यारी। यह सुख जानत देखनहारी।।२७।।
चितई नेक चपल भ्रू-भंगा। काँपत लाल सकल अँग-अंगा।।२८।।

प्रेमातुर प्रियतम अधीन एवं अधीर हुए सदैव ही नवल नायिका के दशन-वर-चीर अर्थात् अधर-रस की याचना करते ही रहते हैं।।२२।। नवल-किशोरी नायिका की छवि प्रतिक्षण नयी-नयी होती रहती है, जो रसिक-शिरोमणि नायक श्री लाल जी को देह-विस्मृत कराती रहती है।।२३।। श्री प्रिया के जिस अङ्ग पर प्रियतम का मन जा पड़ता है, वहीं लुब्ध होकर रह जाता है, वहाँ से छूट नहीं पाता।।२४।। जिस प्रकार किसी सरोवर में जल की वृद्धि होने पर कमल भी जल-स्तर के साथ बढ़ता चलता है, इसी प्रकार श्री प्रिया की देहकान्ति का अवलोकन करके रसिक-प्रियतम की रुचि, वृद्धि को प्राप्त होती रहती है। प्रिया की सहज स्वाभाविक अद्भुत अङ्ग-माधुरी का दर्शन करके प्रियतम रीझ कर उन्हें अपने अङ्क (गोद) में भर लेते हैं।।२५-२६।। उस समय युगल में जो भुज-लताओं की झटकन-झकझोरन होती है, उस सुख का अनुभव उन सखियों के ही भाग्य में है, जो उस दर्शन की अधिकारिणी हैं।।२७।। प्रियतम की रसपूर्ण धृष्टता से प्रणय-कोपमयी प्रिया जब अपनी चपल भ्रू-भङ्गिमा से किञ्चित् रोष-दृष्टि का निक्षेप करती हैं, तब श्री लाल के अङ्ग-अङ्ग में भय-जन्य कम्पन होने लगता है।।२८।।

बचन सगर्व सुनत हुंकारा। प्रीतम देह रही न सँभारा।।२९।।
बिवस भये विरहज-दुख भारी। लटकि परे गहि चरन बिहारी।।३०।।
प्रेम-प्यार की मूरति प्यारी। लये लाल भरि कैं अँकवारी।।३१।।
रही लाइ हित सौं उर ऐसैं। खची नील-मनि-कंचन जैसैं।।३२।।

दोहा

बदन कमल सुठि सोहनौ, रस भरे अधर-सुरंग।
पल-पल प्यावत लाड़िली, उठत सुगंध तरंग।।३३।।

चौपाई

अधरनि रस सींच्यौ जब बाला। फूल्यौ मन मनु मैंन-तमाला।।३४।।
अति सुकुँवार केलि-रँग भीने। छिन छिन उपजत भाइ नवीने।।३५।।

और जब रस-रूप गर्विता नागरी प्रिया रोष हुङ्कार पूर्वक सगर्व वचनों का उच्चारण करती हैं, तब प्रियतम को अपने देह की भी सुधि नहीं रह जाती।।२९।। उनके अन्तर्मन में विरह-जन्य विषम दुःख की व्याप्ति हो जाती है और वे विवश होकर प्रिया-चरणों का आश्रय लेकर चरणों पर लटके से रह जाते हैं।।३०।। प्रेम और स्नेह की मूर्ति प्रिया अपने प्रियतम श्रीलालजीकी प्रेम-विवश- दशा का अवलोकन करके उन्हें अपनी भुज-लताओं में समेट कर हृदय से ऐसे चिपटा लेती है, जैसे स्वर्ण में नील-मणि खचित हो।।३१-३२।। तत्पश्चात् नवल किशोरी प्रिया अपने परम सुन्दर, सुहावने बदन-कमल के रस भरे अरुणिम अधरों का सुरङ्ग-तरङ्ग प्रवाहित, मृदु-मधुर रस पल-पल प्रति प्रियतम को पान कराने लगती हैं।।३३।। जब नव-बाला ने प्रियतम को अपने अधर-रस से सिञ्चित् किया, तब प्रियतम का मन ऐसे प्रफुल्लित हो उठा, मानो तमाल-तरु मदन रस से सिञ्चित् हुआ हो।।३४।। तदुपरान्त सुकुमार युगल-केलि के रस में भींज गये। क्षण-क्षण प्रति उनके हृदयों में नव-नव भावों की सृष्टि होने लगी।।३५।।

प्रबल चौंप बाढ़ी दुहुँ माहीं। रस समतूल कोऊ घटि नाहीं।।३६।।
सुरत-समुद्र परे दोउ प्यारे। अंबर लाज दूरि करि डारे।।३७।।
भूषन सब दूषन करि जानैं। तन-मन एक होइ लपटानैं।।३८।।

दोहा

सुख वारिधि में परत ही, गये छूटि पट नेम।
मैंड़ तहाँ कैसैं रहै, उमड़त है जहाँ प्रेम।।३९।।
बढ़ी त्रिषा निज केलि की, रस-लंपट न अघात।
चरन छुवत हा-हा करत, रीझि-रीझि बलि जात।।४०।।

रति-केलि-विस्तार चौपाई

अति उदार नागरि सुकुँवारी। पिय रुचि जानि केलि बिस्तारी।।४१।।

दोनों में प्रेम संग्राम की प्रबल उत्कण्ठा बढ़ चली, क्योंकि दोनों ही रस समतुल्य नवल नायक-नायिका हैं।।३६।। युगल प्रियतम लज्जा का अम्बर निवारण करके सुरत-समुद्र में लीन हो गये।।३७।। उस समय उनके अङ्गों के भूषण दूषणवत् प्रतीत होने लगे, अतएव उनका भी निवारण कर तन एवं मन से द्वैत मिटा कर ऐसे आलिङ्गित हुए, जिसका वर्णन अशक्य है।।३८।। सुख-समुद्र में मग्न होने पर नेम रूपी वस्त्र स्वयं ही विसर्जित हो जाता है। प्रेम के प्लावन में नेम की मैंड़ (मर्यादाओं) का अस्तित्व रह भी कैसे सकता है।।३९।। अस्तु, रसिक युगल में निजकेलि की तृष्णा अपार वृद्धि को प्राप्त हो गयी, फिर भी रस-लम्पट प्रियतम तृप्त नहीं हुए। वे अपनी प्राण-प्रिया के श्रीचरणों का बारम्बार स्पर्श करते हुए दैन्य-वचनावली "हाय-हाय" का उच्चारण करने लगे। प्रियतम की प्रेम-दशा एवं दैन्य का अवलोकन करके उदार नवल-किशोरी रीझ कर बारम्बार उन पर बलिहार जाने लगीं।।४०।।

रस-विदग्धा सुकुमारी प्रिया उदार शिरोमणि हैं ; प्रियतम की तत्सुख परायण हैं, अतएव प्रियतम की रुचि का अनुभव करके उन्होंने रस-क्रीड़ा का विस्तार किया।।४१।।

रति विपरित बिलसत वर भाँती। चुंबन अधर नैंन मुसकाँती।।४२।।
रस के बस ह्वै रस में झूले। बात नेम की ते सब भूले।।४३।।
बिरमि-बिरमि बानी पिय बोलैं। श्रमित जानि अंचल झकझोलैं।।४४।।

दोहा

नाइक तहाँ न नाइका, रस करवावत केलि।
सखी उभै संगम सरस, पिवतिं नैंन-पुट झेलि।।४५।।

चौपाई

तजि मर्याद बिलास जु करहीं। रति जुत मदन कोटि दुति हरहीं।।४६।।

वे उत्तमोत्तम रीति से विपरीति रति-विलास में प्रवृत्त हुईं। उनके नेत्रों में मुसकान विराजमान् थी तथा वे अधर-चुम्बन का उदार दान कर रही थीं।।४२।। रस-विवश युगल रसान्दोलित होकर नेम-विस्मृत हो गये।।४३।। प्राण-प्यारी को श्रमित जान कर प्रियतम उन पर अपने वस्त्राञ्चल से बयार करने लगे एवं विश्राम लेने का आग्रह करने लगे।।४४।। रस-विलास की इस परावस्था में जहाँ नायक एवं नायिका का अस्तित्त्व विलीन हो कर केवल एकमात्र रस की ही परिव्याप्ति हो जाती है, इसका विश्लेषण करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस रसाद्वैत स्थिति में नायक एवं नायिका का भोक्ता-भोग्य स्वरूप रस में विलीन हो जाता है, केवल रस का ही अस्तित्त्व शेष रह जाता है। नायक-नायिका के सङ्गम (मिलन) की अभिव्यक्ति किंवा अस्तित्त्व रूपिणी हैं सखियाँ। वे रस की साक्षी होने से युगल रसिक उद्भूत महारस का अपने नयन-पात्रों से तल्लीनता पूर्वक पान करती रहती हैं।।४५।। निभृत-निकुञ्ज-विलासी रसिक युगल लोक-वेद मर्यादाओं के त्याग-पूर्वक किये गये अपने विलास से रति-सहित कोटि-कोटि मार-द्युतियों का प्रतिक्षण हरण करते रहते हैं।।४६।।

आलिंगन चुंबन जब दये। अंगनि के भूषन अँग भये।।४७।।
अंजन अधर पीक लगी नैंननिं। सुख में कहत अटपटे बैननिं।।४८।।
आनँद मोद बढ़्यौ अधिकाई। बिच-बिच लाल बिबस ह्वै जाई।।४९।।
दुहुँ मन रुचि एकै ह्वै जबहीं। सुख की बेलि बढ़ै 'ध्रुव' तबहीं।।५०।।
गौर-स्याम अँग मिलि रहे ऐसैं। सीस रंग झलकत तन जैसैं।।५१।।
रस की अवधि इहाँ लौं माई। विवि तन-मन एकै ह्वै जाई।।५२।।

दोहा

एक रंग रुचि एक वय, एकै भाँति सनेह।
एकै सील सुभाव मृदु, रस के हित द्वै देह।।५३।।

उनका पारस्परिक आलिङ्गन एवं चुम्बन-दान उनके ललित अङ्गों के ललित भूषण बनकर शोभित होने लगते हैं।।४७।। विहारावसर उनके अधरों पर अञ्जन की मषि-रेखा एवं नेत्र-पलकों पर ताम्बूल की अरुणिम पीक-छबि शोभित होती है। वे सुखासक्ति-रसपूर्ण अव्यवस्थित वचनावली का प्रलाप सा करने लगते हैं।।४८।। इस प्रकार आनन्दोल्लास की अधिकता के कारण श्री लाल जी विलास के बीच-बीच में बारम्बार रस-विवश हो जाते हैं।।४९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब रसिक युगल की रुचियाँ अद्वैत से हट कर द्वैत में स्थित होती हैं, तब परम सुख की लता लहलहा उठती है।।५०।। और तभी गौर-श्याम युगल अङ्ग-प्रत्यङ्ग से ऐसे मिल जाते हैं जैसे किसी दर्पण में ढले हुए युगल रङ्ग की नील-गौर छबि झलमला उठी हो।।५१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मिलन सम्बन्धी परावस्था यह है कि युगल के पृथक्-पृथक् तन एवं मन अपना अस्तित्त्व विस्मृत कर एकत्त्व में स्थित हो जावें।।५२।। रसामृत मूर्त्ति युगल हित की—रस की एक ही मूत्तियाँ हैं, जो कथनमात्र के लिए दो हैं, वस्तुतः इनके रङ्ग (आनन्द), रुचि, वय, स्नेह, शील एवं स्वभाव सभी कुछ एक ही हैं।।५३।।

अरिल्ल

चहूँ ओर रही छाइ प्रेम के प्यार सौं।
पिय हिय सौं रही लाइ हिये के हार सौं।।
तिनके रस की बात कही नहिं जात है।
(हरि हाँ) जानत नाहिंन रात किधौं 'ध्रुव' प्रात है।।५४।।

चौपाई

मादिक मधुर अधर रस प्यावै। नैंन चूँमि नासा चटकावै।।५५।।
ऐसै जतननि पियहि जगावै। रति नागरि रति केलि बढ़ावै।।५६।।
अधरनि दसन लगे जब जानैं। रौंम-रौंम रति-पति रससानैं।।५७।।
देखि रसिक रति रीझि भुलानी। हियौ खोलि हिय सौं लपटानी।।५८।।

जब युगल की रस-स्थिति विस्तृत प्रेम-पट की भाँति चतुर्दिक व्याप्त हो जाती है तब प्रिया, प्रियतम को अपने हृदय से लगाकर उनका हृदय हार बन जाती है। उनके इस समतुल्य रस-विलास की वार्त्ता किंवा स्थिति वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करना अत्यन्त दुरूह कार्य है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह रस-स्थिति कालातीत है। इस विलास-काल में युगल को यह बोध नहीं होता कि अधुना दिवस है या रात्रि।।५४।। परम उदार, रस-मुग्धा प्रिया, प्रियतम को मदोन्मत्तकारी मधुर-मधुर अधरासव पान कराती हुई उनके नयनों को चुम्बित करके एवं उन्हें मदान्वित करके पुनः नासापुट चटका कर तथा अन्यान्य रसमय प्रयासों से जाग्रत करती हैं। वे रति-नागरी हैं, कोक-कला कोविदा हैं अतएव नानाविध रतिक्रीड़ा का विस्तार करती हैं।।५५-५६।। रति विलास काल में रस-मुग्ध प्रियतम जब प्रिया के दसनाञ्चल अर्थात् अधरों के संयोग का अनुभव करते हैं, तब उनका रोम-रोम रति-पति रस से संसिक्त हो जाता है।।५७।। रसिक प्रियतम की रति-प्रीति का अनुभव करके रिझवार प्रिया रीझ ही नहीं जाती वरन् प्रीतिवश आत्म-विस्मृत प्रायः हो जाती हैं और तब वे मुक्त भाव से प्रियतम के हृदय से आलिङ्गित हो जाती हैं।।५८।।

दोहा

प्यावति प्यारी प्यार सौं, प्रेम रसासव सार।
त्यौं-त्यौं प्यारे लाल के, बाढ़त त्रिषा अपार।।५९।।

चौपाई

सुख-सरिता उमड़ी चहुँ ओरैं। झलमलात सोभा तन गोरैं।।६०।।
कंचुकि दरकि तनी सब टूटी। सगबगी अलकैं सोभित छूटी।।६१।।
श्रम-जल-कन दुति कहा बखानौं। छबि के मोती राजत मानौं।।६२।।
रति-बिलास की उठत झकोरैं। चंचल दृग अंचल चल कोरैं।।६३।।
सुख सर में दोउ करत अलोलैं। मानौं छबि के हंस कलोलैं।।६४।।
ऐसैं उमड़ि महा रस ढरी। मनौं प्यार की बरसा करी।।६५।।

वे अत्यन्त प्रीति-पूर्वक प्रेम रसासव-सार अपना अधरामृत पान कराने लगती हैं। अधरामृत पान के साथ साथ रस-लोलुप प्रियतम के हृदयमें प्रेम की अपार तृषा प्रतिक्षण बढ़ती ही चली जाती है।।५९।। इस प्रकार सुख का सरिता-प्रवाह चारों ओर उमड़ चलता है, जिसमें गौराङ्गी प्रिया के सुभग तनु की शोभा सर्वोपरि रूप से झलमला उठती है।।६०।। उनकी कञ्चुकी विखण्डित हो, उसके पट-बन्ध टूट जाते हैं। मुख-मण्डल पर सच्चिक्कन श्याम अलकावली विलुलित शोभा का विस्तार करने लगती है।।६१।। ललित कपोलों पर श्रम-जल बिन्दुओं की अवर्णनीय कान्ति ऐसी दिखती है, मानो पीत-कमल पर छबि के मुक्ता शोभित हों।।६२।। पुनः-पुनः उनके श्रीअङ्गों में रति-विलास की हिलोरें उठती रहती हैं। उनके चपल दृगाञ्चल की चञ्चल कोरें अपना विलास प्रकट करती हैं।।६३।। इस प्रकार सुखरूपी सरोवर में युगल रसिक विहार करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मूर्त्तिमान् शोभा रूपी हंस कल्लोल कर रहे हों।।६४।। श्री प्रिया की यह उमड़न और प्रियतम के लिए प्रेम-प्यार की ढलन ऐसी प्रतीत हुई, मानो उन्होंने प्रेम की वर्षा कर दी हो।।६५।।

रस फिरि गयौ दुँहुनिं पर माई। भूली तन गति रति न भुलाई।।६६।।

दोहा

लाल त्रिषा कौ सिंधु है, प्रेम-उदधि सुकुँवारि।
इक रस प्यावत पिवत दोउ, मानत नहिं कोउ हारि।।६७।।

चौपाई

होत बिवस तबहीं पिय-प्यारी। सावधान तहाँ सखि हितकारी।।६८।।
कुँवरि अधर पिय-अधरनि लावैं। रूप बदन नैंननिं दरसावैं।।६९।।
पिय के कर लै उरज छुवावैं। मनौं मैंन के खेल खिलावैं।।७०।।
उर सौं उर मिलि भुजनि भरावैं। चरन पलोटि सेज पौढ़ावैं।।७१।।

हे सखि ! आज विलासावसर, युगल रसिक पर रस की यह अति व्याप्ति वर्णनातीत है, जिसने उनको देहानुसन्धान-रहित तो बना दिया, किन्तु उनके अन्तर्मन से पारस्परिक रति का विस्मरण नहीं करा सकी।।६६।। सिद्धान्ततः रस विलास के देश में श्री लाल जी प्रेम-लालसा रूपी तृषा (प्यास) के सागर हैं तथा सुकुमारी प्रिया प्रेम रूपी जल का दान करने वाली विस्तृत समुद्र हैं। दोनों ही अनवरत रस का पान करते कराते हैं, फिर भी परितृप्त एवं थकित नहीं होते।।६७।। प्रिया-प्रियतम की प्रेम-विवश स्थिति में भी तत्सुख हितमयी सखियाँ सावधान एवं सचेत रहकर युगल को सुख विलसाती रहती हैं।।६८।। वे नवल किशोरी के रसपूर्ण मृदु अधरों को प्रियतम के रस लोलुप अधरों से संस्पर्श कराके उनके सौन्दर्य मण्डित मुख की माधुरी का पारस्परिक दर्शन कराती हैं।।६९।। प्रियतम के कर-कमलों से प्रिया के सुभग वक्ष का किसी बहाने से स्पर्श कराके मानो युगल को मदन के खेल खिलाती हैं।।७०।। वे कभी उनके हृदय से हृदय, भुजाओं से भुजाओं का आलिङ्गन कराती हैं, तो कभी युगल को सुखद शैय्या पर पौढ़ा कर अपने कर-पल्लवों से उनके श्रीचरणों का सम्वाहन करती हैं।।७१।।

ऐसी भाँति नव लाड़ लड़ावैं। ताही सौं अपनौं जिय ज्यावैं।।७२।।

दोहा

प्रेम रसासव छके दोउ, करत बिलास-विनोद।
बढ़त रहत उतरत नहीं, गौर-स्याम छबि मोद।।७३।।

रति-रस सिद्धान्त चौपाई

मैंड़ तोरि रस चल्यौ अपारा। रही न तन-मन कछू सँभारा।।७४।।
सो रस कहौ कहाँ ठहरानौं। सखियनि के उर-नैंन समानौं।।७५।।

कभी इस प्रकार नव-नव लाड़-प्यार से युगल का लाड़-दुलार करके सखियाँ अपने प्राणों का पोषण करती हैं।।७२।।

इस प्रकार प्रेम रस रूपी मादक रस के छके हुए युगल रसिक निरन्तर विलास-विनोद में मत्त बने रहते हैं। सदा प्रसन्न छबि के मूर्त्तिमान् स्वरूप गौर-श्याम प्रिया-प्रियतम का प्रेम रसासव मद बढ़ता ही रहता है, घटता नहीं।।७३।।

रस-विलास की परिव्याप्ति में रसिक युगल अपने तन-मन एवं आत्मानुसन्धान से रहित हो जाते हैं। तब रस का प्रवाह समस्त मर्यादाओं का उल्लङ्घन करके अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त हुआ प्रवाहित हो चलता है।।७४।। [यहाँ सहज यह प्रश्न बनता है कि रसधाम युगल के अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो इस रस-प्रवाह को धारण करने में समर्थ हो अर्थात् युगल के अतिरिक्त इस सिद्ध रस का धारक-पात्र अन्य कोई नहीं हो सकता। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ध्रुवदास जी कहते हैं कि] नित्य-विहार की सखियाँ ही इस रस की प्राकट्य-कर्त्ता, संस्थापिका एवं समर्थ धारक हैं। प्रेम के क्रीड़ा उपस्करण लाड़िली-लाल को विलास की चरमावस्था पर्यन्त रस-प्रेरणा पूर्वक उन्हें विलसा कर उनका रस झेलती हैं। यथा—

तेहि अवलंब सबै सहचरी। मत्त रहतिं ठाढ़ी रँग-भरी।।७६।।
या रस की जाके रुचि रहै। भाग पाइ सो कछु इक कहै।।७७।।
सखियन सरन भाव धरि आवै। सो या रसके स्वादहि पावै।।७८।।
छाँड़ि कपट भ्रम दिन दुलरावै। ताकौ भाग कहत नहिं आवै।।७९।।
रति-मंजरि रँग लागै जाके। प्रेम कमल फूलै हिय ताके।।८०।।
यह रस जाके उर न सुहाई। ताकौ संग बेगि तजि भाई।।८१।।

पलु-पलु हरिवंश पिवत नैंन चषक झेलि।
एवँ
उभय संगम सिंधु सुरत पूषन बंधु
द्रवत मकरंद (श्री) हरिवंश अलि पावै।।७५।। श्रीहित-चौरासी

तात्पर्य यह है कि युगल-क्रीड़ा से उद्‌भूत यह परम रस सखियों के हृदय एवं नेत्रों में समाविष्ट होकर ही स्थान पाता है। ये सखियाँ युगल रस से अवलम्बित प्रेमोन्मत्त बनी रह कर सदैव आनन्द से ओत-प्रोत भाव पूर्वक युगल सेवा में तत्पर रहती हैं।।७६।। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सौभाग्यवशात् यदि किसी के मन में रसिक-युगल के रस विलास के प्रति रुचि उत्पन्न हो अथवा वह इस के भजन-चिन्तन की अभिलाषा करे, तो वह श्रद्धा-भाव धारण करके नित्य-सिद्धा सखियों की शरण ग्रहण करके ही उनके भजन आस्वादन का अधिकार प्राप्त कर सकेगा।।७७-७८।। जो व्यक्ति कपट एवं भ्रम का परित्याग करके निरन्तर इस रस-भजन का चिन्तन-ध्यान रूपी प्यार-दुलार करेगा, उसके भाग्य की महिमा कोई नहीं कह सकता।।७९।। 'रति-मञ्जरी' में वर्णित आनन्द-रङ्ग का चस्का जिस किसी को लगेगा, निश्चित ही उसके हृदय में प्रेम रूपी कमल विकसित होगा।।८०।। हे रसिक बन्धुओ! ध्यान रहे 'रति मञ्जरी' वर्णित यह रस जिसे न सुहावे, तुम्हें चाहिए कि उस व्यक्ति का सामीप्य-सहवास (संग-साथ) शीघ्र छोड़ दो।।८१।।

दोहा

या रस सौं लाग्यौ रहै, निसि दिन जाकौ चित्त।
ताकी पद-रज सीस धरि, बंदत रहौ 'ध्रुव' नित्त।।८२।।

पुनः अन्तिम अभिलाषा करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिस किसी भाग्यशाली का चित्त इस रस में निरन्तर रँगा रहता है, उसके श्री चरणों की धूलि शिरोधार्य करके सदैव उसकी वन्दना करते रहना चाहिए।।८२।।

२६

नेह-मञ्जरी

वृन्दावन का रसमय स्वरूप चौपाई

वृंदावन सोभा की सींवाँ। विहरत दोउ मेलि भुज ग्रीवाँ।।१।।
राजत तरुन किसोर तमाला। लपटी कंचन-बेलि रसाला।।२।।
अरुन पीत सित फूलनि छाये। मनौं बसंत निज धाम बनाये।।३।।
बरन-बरन के फूलनि फूली। जहाँ-तहाँ लता प्रेम-रस झूली।।४।।
तीन भाँति के कमल सुहाये। जल थल विकसि रहे मन भाये।।५।।
बहुत भाँति के पंछी बोलैं। मोर मराल भरे रस डोलैं।।६।।
त्रिविध पवन संतत तहाँ रहहीं। जैसी रुचि तैसी ही बहहीं।।७।।

श्री वृन्दावन धाम अप्राकृत निसर्ग की सौन्दर्य-सीमा हैं, जहाँ रसिक लाड़िली-लाल गलबहियाँ दिये हुए वन-वीथियों में विहार करते रहते हैं।।१।। श्रीवन के लहलहाते हुए तरुण कैशोरमय तमाल-तरु से आलिङ्गित रसमयी स्वर्ण-लता विलक्षण शोभा बिखेरती रहती है।।२।। यत्र-तत्र वन में अरुण, पीत, नील एवं श्वेत आदि रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प विकसित हुए देखकर ऐसा लगता है; मानो मूर्त्तिमान् वसन्त ने इसे अपना निज-धाम बना रखा हो।।३।। विविध वर्णों के रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों से आच्छादित लताएँ जहाँ-तहाँ प्रेम रस से भारान्वित हुई झूमती रहती हैं।।४।। जल एवं थल में नील, पीत एवं श्वेत वर्ण के कमल यत्र-तत्र विकसित हो रहे हैं।।५।। द्रुम-शाखाओं पर बैठे हुए पक्षीगण अपनी काकली से वन को मुखरित कर रहे हैं। भूमि पर यत्र-तत्र रस भरे मोर एवं राजहंस विचरण करते रहते हैं।।६।। श्रीवृन्दावन में निरन्तर शीतल, मन्द एवं सुगन्धित पवन, युगल की रुचि के अनुसार प्रवाहित होता रहता है।।७।।

हेम बरन अद्‌भुत धर माई। हीरनि खचित अधिक झलकाई।।८।।
रज कपूर की तहाँ सुहाई। सौरभ मय संतत सुखदाई।।९।।
तरनि-सुता चहुँ दिसि फिरि आई। मनौं नीलमणि-माल बनाई।।१०।।
(श्री) वृंदावन की छबि है जैसी। कापै कही जात है तैसी।।११।।

दोहा

फूल जहाँ-तहाँ देखिये, श्रीवृंदावन माँहि।
द्रुम बेली खग सहचरी, बिना फूल कोउ नाहिं।।१२।।

युगल छबि वर्णन चौपाई

सुंदर सहज छबीली जोरी। सहज प्रेम के रँग में बोरी।।१३।।
खेलत फिरत निकुंजनि खोरी। एक वैस पिय कुँवरि किसोरी।।१४।।

श्रीवन की भूमि अद्भुत स्वर्ण की भाँति आभामयी है तथा हीरक आदि विविध मणियों से खचित है।।८।। वहाँ की धूलि कर्पूर की भाँति उज्ज्वल एवं सुगन्धयुक्त है।।९।। श्री वृन्दावन को चारों ओर से घेर कर कुण्डलाकार प्रवाहित सूर्य-पुत्री यमुना का प्रवाह ऐसा लगता है, मानो श्री वृन्दावन ने नीलमणियों की माला धारण कर रखी हो।।१०।। तात्पर्य यह है कि श्री वृन्दावन की जैसी कुछ छबि है, उसका वर्णन किसी के द्वारा हो सकना असम्भव है।।११।। श्री वृन्दावन में सर्वत्र जहाँ देखिये वहाँ फूल ही फूल दिखाई पड़ते हैं अर्थात् सर्वत्र प्रसन्नता का साम्राज्य है। यहाँ की प्रत्येक द्रुमलता, पक्षीगण, मृगादि पशु एवं सहचरी-गण सभी सदा फूले-फूले फिरते हैं। वहाँ फूल अर्थात् प्रसन्नता-रहित कोई नहीं है।।१२।।

ऐसे श्री वृन्दावन में सहज सुन्दर छबिमयी एक युगल मूर्त्ति है, जो प्रेम के सहज आनन्द-रङ्ग में सदा सराबोर रहती है।।१३।। वह जोड़ी श्री वृन्दावन की निकुञ्ज-वीथियों में खेलती फिरती है, उसका परिचय है—प्रियतम श्री लाल जी एवं नवल-किशोरी प्रिया श्री राधा इस दम्पति की आयु सदा एक-

तैसीय संग सहचरी भोरी। बँधी बंक चितवन की डोरी।।१५।।
बिनु प्राननि डोलति सँग लागी। प्रेम रूप के रँग अनुरागी।।१६।।
महा प्रेम की रासि रँगीले। चित्त हरन दोउ छैल छबीले।।१७।।
जहाँ-जहाँ चरन धरत सुखदाई। झरि-झरि रूप परत तहाँ माई।।१८।।
जो तेहि ठाँ ह्वै देखै आई। तन की ताहि भूलि सुधि जाई।।१९।।

युगल का रसमय स्वरूप चौपाई

नव किसोर बरनैं क्यौं जाँही। प्रेम रूप की सींवा नाहीं।।२०।।
तिनकौ रूप कहन को पारै। जो देखै सो पहिलै हारै।।२१।।

सी नव कैशोर बनी रहती है।।१४।। इन्हीं की भाँति भोली-भोली प्रेम रङ्ग में बोरी इनकी बङ्क चितवन की रूप डोरी से बँधी सहचरियाँ हैं। जिन्होंने अपने मन-प्राण रसिक-युगल को सम्पूर्णतः समर्पित कर दिये हैं एवं प्रेम-रूप के रङ्ग (आनन्द) में अनुरक्त हुई इनके सङ्ग लगी डोलती हैं।। १५-१६।। रसिक-रँगीले युगल श्री ललित-लाड़िली लाल महाप्रेम के निधान हैं। छैल-छबीले युगल (दोनों) ने अपने-अपने प्रेम एवं रूप से दोनों का चित्त हरण कर लिया है।।१७।। ये सर्व सुखदायी रूप-राशि युगल श्री वृन्दावन की भूमि में जहाँ-कहीं अपने चरण स्थापित करते हैं, वहीं इनका रूप झर-झर करके बरसने लगता है।।१८।। जो कोई भाग्यशाली कृपा-आश्रित अधिकारी वहाँ पहुँच कर दर्शन कर पाता है, उसे भी अपने तन-मन की सुधि भूल जाती है।।१९।।

नित्य नवनवायमान् छविमय नवल किशोर युगल की छवि का वर्णन किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। न उनके प्रेम की कोई सीमा है, न रूप की।।२०।। उनके रूप का वर्णन करने की यदि कोई चेष्टा करता है, तो वर्णन से पूर्व ही सब कुछ भूल कर अवाक् रह जाता है।।२१।।

ऐसै दोऊ आप में राते। अहनिसि रहत एक रस माते।।२२।।
अँग-अँग बिवस और सुधि नाँही। प्रेम रसासव पान कराहीं।।२३।।
अद्‌भुत रस पीवत हैं दोऊ। तिन में त्रिपित होत नहिं कोऊ।।२४।।

दोहा

मत्त परस्पर रहत 'ध्रुव', एक प्रेम रँग-रात।
अति सुरंग लोइनि रहे, दिन अनुराग चुचात।।२५।।

चौपाई

हाव-भाव गुन सींव रँगीली। मुख पर पानिप झलक छबीली।।२६।।
बैठे कुँवर सोई छबि देखैं। लोभी नैंन न परतिं निमेषैं।।२७।।
रहे चकित ह्वै रसिक बिहारी। रूप-छटा नहिं जात सँभारी।।२८।।
सहजहि प्रेम ढार ढरि जाँही। तेहि रस जानत घाम न छाँही।।२९।।

अस्तु, ऐसे रूप-राशि युगल परस्पर में एक दूसरे के रूप-रङ्ग से रँगे हुए हैं। वे दिन-रात एकसे रसमत्त बने रहते हैं।।२२।। उनका प्रत्येक अङ्ग प्रेम-रसासव-पान के कारण विवश बना रहता है।।२३।। उन्हें प्रेम के अतिरिक्त अन्य सब कुछ भूला सा रहता है। वे जिस रस का पान करते हैं, वह अद्भुत प्रेम है, उससे मत्त हुए निरन्तर अतृप्त बने रहते हैं।।२४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि केवल प्रेम में रँगे हुए रसिक युगल परस्पर एक-दूसरे के रूप-रस से मतवाले बने रहते हैं। उनके अनुराग भरे अरुणिम लोचनों से अहर्निश अनुराग झरता रहता है।।२५।। रङ्ग-रँगीली प्रिया हाव-भाव और गुणों की पराकाष्ठा हैं। उनके मुख पर लावण्य की झलक अद्भुत छवि का प्रकाश करती है।।२६।। रसिक कुँवर प्रियतम स्तम्भित से हुए श्री प्रिया-मुखच्छवि का दर्शन ही करते रहते हैं। प्रियतम के रूप लालची नयन पलकें गिराना भूल जाते हैं।।२७।। रसिक विहारी लाल बारम्बार चकित हो-हो जाते हैं तथा उनसे प्रिया की रूप-छटा का भार सँभाला नहीं जाता।।२८।। इसलिये वह सहज ही प्रेम-प्रवाह में बह जाते हैं। प्रिया-प्रेम की रस मग्नता में न उन्हें

छिन-छिन प्रति रुचि बाढ़ै भारी। रही भूलि सो प्रेम निहारी।।३०।।
कबहूँ लै मृदु कुसुम सुरंगनि। गुहि भूषन बानत सब अंगनि।।३१।।
वारि-वारि पीवत पिय पानी। चितै कुँवरि कछु इक मुसिकानी।।३२।।
छबि सींवाँ भुज-लतनि पियारी। छबि तमाल पिय भरे अँकवारी।।३३।।
महा मधुर रस जुगल-बिहारा। जहाँ लगि प्रेम सबनि कौ सारा।।३४।।
रहत लीन ह्वै दीन रँगीलौ। नख सिख सुंदर रसिक रसीलौ।।३५।।
तिनके प्रेम प्रेम बस कीनी। सखि सौं सखी कहत रँग भीनी।।३६।।

धूप का बोध होता है न छाया का।।२९।। प्रतिक्षण प्रियतम के मन में प्रिया -छबि के प्रति रुचि का पदे-पदे अभिवर्द्धन होता रहता है। प्रियतम की प्रेम रुचि का अवलोकन करके मूर्त्तिमान रुचि भी भूली सी रह जाती है।।३०।। रसिक प्रियतम कभी कोमल- कोमल सुरञ्जित सुमनों को गुम्फित करके पुष्प-भूषण निर्मित करते हैं एवं प्राण-प्रिया के श्री अङ्गों में उन्हें धारण कराते हैं।।३१।। कभी प्रिया की रूप- माधुरी पर बारम्बार वारि (जल) न्यौछावर करके स्वयं पान करते हैं और तब उनकी इस भाव-विभोरता का अवलोकन कर गम्भीर प्रेममयी प्रिया मन्द-मन्द रीति से मुस्कराने लगती हैं।।३२।। उस समय मृदुल-चित्त नवल-किशोरी प्रिया अपनी सौन्दर्य-सीमामयी भुज-लताओं से छबि-तमाल प्रियतम को अपने अङ्क में भर लेती हैं।।३३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल का महा-मधुर रसमय विहार उस सब प्रेम का सार है।।३४।। [जिसका वर्णन समस्त श्रुति शास्त्रों एवं अनुभवी सन्तों की वाणियों में है।] रसिक रँगीले प्रियतम श्री प्रिया-प्रेम के प्रति निरन्तर लीन रहने के कारण सदा दीन बने रहते हैं। यद्यपि वह नख-शिख सुन्दर हैं, रसिक हैं एवं रसकी राशि हैं।।३५।। किन्तु नवल किशोरी प्रिया के प्रति अपने आपको समर्पित करके वे प्रेम के वशीभूत हो गये हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि एक सखी प्रियतम के प्रेमी स्वरुप का विश्लेषण दूसरी रँग भीनी सखी से करते हुए कहती है।।३६।।

दोहा

जद्दपि मन चंचल हुतौ, मोह्यौ अद्भुत रूप।
बिसरि गई सब चतुरता, परत प्रेम के कूप।।३७।।

श्री प्रिया जी का स्वरूप चौपाई

प्रिया वदन सुंदर अति राजै। सहज रूप कौ चंद बिराजै।।३८।।
मुसिकनि मंद दसन दुति न्यारी। तापर दामिनि कोटिक वारी।।३९।।
झलक कपोलनि की चिकनाई। अँखिया रपटि गिरतिं तहाँ माई।।४०।।
अरुन असित सित नैंन सलौनैं। छ्वै-छ्वै जात हैं काननि कौंनैं।।४१।।
सहज चपल इत उतहि निहारैं। बरसत मनु अनुराग की धारैं।।४२।।

कि-अरी सखि! यद्यपि प्रियतम प्यारे श्री लाल जी का मन अतिशय चञ्चल था, कहीं मोहित ही नहीं होता था, किन्तु हमारी निकुञ्जेश्वरी स्वामिनी के अद्भुत रूप-लावण्य ने उन को मोहित कर लिया। प्रिया रूप पर मोहित होकर मानो वे प्रेम के गम्भीर कूप में जा गिरे हों, जिससे उनकी सारी चातुरी विस्मृत हो गयी हो।।३७।।

नवल-किशोरी प्रिया का श्रीमुख अत्यन्त सुन्दर है, जैसे रूप का चन्द्रमा हो।।३८।। अधरों की मन्द मुसकान के बीच दमकती हुई दन्तावली की कान्ति पर कोटि-कोटि दामिनी न्यौछावर हैं।।३९।। कपोलों की सच्चिक्कण झलक पर से दर्शक की आँखें फिसल कर नीचे गिर पड़ती हैं।।४०।। उनके सुदीर्घ नयन रतनारे, श्वेत एवं श्याम वर्ण से परम शोभा को प्राप्त हैं। कर्णायत नेत्रों के छोर कानों को छू-छू जाते हैं।।४१।। जब वे नेत्र अपनी सहज चपलता से इधर-उधर चलायमान् होते हैं, तब ऐसा लगता है, मानो अनुराग की धाराएँ बरस रही हों।।४२।।

दोहा

रंग भरे अरु रस भरे, सरस छबीले नैंन।
सींचत पिय हिय कमल कौं, नेह-नीर मृदु सैंन।।४३।।

चौपाई

अति अनूप बैंदी जगमगै। चितै-चितै पिय पाँइनिं लगै।।४४।।
नासा बेसरि मोती झलकै। मनौं रूप की आभा छलकै।।४५।।
अद्‌भुत रूप मेह सो बरसै। तऊ कुँवर चातिक ज्यौं तरसै।।४६।।
छबि डोलै चरननि सौं लागी। उपमा सबै देखि यह भागी।।४७।।
अद्भुत सहज रूप की माला। ऐसी कुँवरि किसोरी बाला।।४८।।
पहिरि कुँवर छिन-छिनहि सँभारै। ऐसौ लोभ न नैंकु उतारै।।४९।।

प्रिया के सरस व छबीले नेत्र सदैव आनन्द-केलि एवं रस से भरे रहते हैं। वे प्रेम जल के सुकोमल इङ्गितों से प्रियतम के हृदय कमल को सींचते रहते हैं।।४३।। लाड़िली के देदीप्यमान् ललाट पटल पर अनुपम बैंदी की शोभा का अवलोकन करके रिझवार प्रियतम उनके चरणों में निपतित होने लगते हैं।।४४।। नासिकाग्र पर झलकते झूलते हुए नासा-मौक्तिक की शोभा ऐसी प्रतीत होती है, मानो रूप की आभा छलक पड़ी हो।।४५।। नवल किशोरी का अद्भुत रूप वर्षा-कालीन मेघ की भाँति निरन्तर प्रायः बरसता ही रहता है, फिर भी नवल किशोर प्रियतम उस रूप-माधुरी का पान करते हुए भी अतृप्त चातक की भाँति तरसते ही रहते हैं।।४६।। मूर्त्तिमती छबि प्रिया-चरणों से सन्नद्ध हुई उनके पीछे डोलती रहती है, जिसे देखकर समस्त उपमाएँ लज्जित होकर भागती फिरती हैं।।४७।। ऐसी अनुपम कुँवरि किशोरी नव-यौवना बाला अद्भुत एवं सहज रूप की माला है।।४८।। जिसे धारण करके रसिक प्रियतम प्रतिपल सँभालते रहते हैं। उनके मन में इस रूप-माला का ऐसा विलक्षण लोभ है कि वे उसे कभी क्षण-भर के लिए भी नहीं उतारते।।४९।।

श्री लाल जी का स्वरूप चौपाई

कुँवर प्रेम कौ सागर राजै। प्रिया-प्रेम तहँ भँवर बिराजै।।५०।।
ज्यौं सब जल फिरि-फिरि तहाँ परही। ऐसैं लाल प्रिया दिस ढरही।।५१।।

सोरठा

प्राननि हूँ के प्रान, पिय की सर्वसु लाड़िली।
तिनकैं नहिं गति आँन, देखि-देखि जीवत सखी।।५२।।

श्री लाल जी की प्रीति-रीति चौपाई

लालहि प्रिया लगति अति प्यारी। तापर प्रान करत बलिहारी।।५३।।
जहँ-जहँ चरन धरति सुकुँवारी। सो ठाँ चूँबत लाल बिहारी।।५४।।
प्रेम अटक की अटपटी रीती। जाने सो जाके उर बीती।।५५।।

रसिक कुँवर प्रियतम प्रेम के अपार समुद्र हैं, किन्तु उस प्रेम-समुद्र में पड़ने वाली भँवर का स्वरुप है—श्री प्रिया का प्रेम।।५०।। जैसे समुद्र का सम्पूर्ण जल बारम्बार यहाँ-वहाँ से घूम कर भँवर में आ गिरता है, वैसे ही प्रेमी श्री लाल जी अपनी प्रेमास्पदा प्रिया की ओर ही निरन्तर ढलते रहते हैं।।५१।। लाड़िली प्रिया श्री लाल जी के प्राणों की प्राण अर्थात् प्राण से भी अधिक प्यारी हैं। वे प्रियतम की सर्वस्व निधि हैं। अतएव हे सखि ! उन प्रिया के अतिरिक्त प्रियतम की अन्य कोई गति ही नहीं है। प्रेमासक्त प्रियतम प्रिया को देख-देख कर जीवन धारण करते हैं।।५२।।

श्री लाल जी को नवल-किशोरी प्रिया अत्यन्त प्रिय लगती हैं। वे उन पर अपने प्राण प्रतिपल न्यौछावर करते रहते हैं।।५३।। सुकुमारी प्रिया जहाँ-जहाँ अपने चरण स्थापित करती हैं, श्री विहारीलाल प्रियता से बँधे हुए उस भूमि का चुम्बन करते फिरते हैं।।५४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की अटकन एक अटपटी (विलक्षण) रीति है। इसे वही जानता है, जिस पर यह बीती है अर्थात् प्रेमानुभवी ही इसका सम्यक् ज्ञाता होता है।।५५।।

कहिबै कौं नहिं प्रेम के बैंना। मन समुझै कै दोऊ नैंना।।५६।।
जेहि-जेहि सुमन सुरँग की ओरैं। चितवत नैंकु नैंन की कोरैं।।५७।।
धाइ कुँवर तेहि फूलहि लावै। मन सेवा कै प्रियहि रिझावै।।५८।।
प्रीति रीति को जानै माई। बिन पिय कुँवर रसिक सुखदाई।।५९।।
मानत है धनि भाग बड़ाई। ऐसी कुँवरि किसोरी पाई।।६०।।
भये दीन यौं तजी बड़ाई। पुनि ताकी बातैं न सुहाई।।६१।।
अब मोकौं कछु और न चहियै। नैंननिं में अंजन ह्वै रहियै।।६२।।
ऐसै नैंन लगैं सखि प्यारे। कैसैं रहैं आप ते न्यारे।।६३।।

प्रेम एवं उसकी अनुभूति का वर्णन करने के लिए विश्व की कोई वाणी, कोई भाषा समर्थ नहीं है। इसे तो रूप रसिक प्रेमी के युगल-नयन ही जानते समझते हैं।।५६।। छबीली प्रिया श्रीवन के विकसित जिन सुरङ्ग सुमनों की ओर किञ्चित् भी दृष्टिपात करती हैं।।५७।। तो उनकी प्रसन्नता प्रतिपालन के लिए रसिक कुँवर अत्यन्त तत्परता पूर्वक धावित होकर उस पुष्प को लाकर प्रियाको समर्पित करते हैं। इस प्रकार प्राण-प्रिया की मनोनुकूल रुचि पूर्ण सेवा करके उन्हें रिझाते रहते हैं।।५८।। हे सखि ! सहज सुखद रसिक कुँवर श्री लाल जी के बिना प्रीति-रीति का ऐसा ज्ञाता कौन है ?।।५९।। जिन्होंने अपनी प्रशंसा, मान-बड़ाई त्याग कर अपनी प्रेमास्पदा प्रिया के प्रति परम दैन्य को धारण कर रखा है। यहाँ तक कि उन्हें अपनी प्रशंसा किंवा स्तुति के शब्द भी अच्छे नहीं लगते।।६०।। इस बात में ही अपने आप को धन्य-धन्य और भाग्यशाली अनुभव करते हैं कि उन्हें ऐसी रूप-लावण्य-निधि, प्रेम-मूर्त्ति, अनुपम कुँवरि प्राप्त हुई है।।६१।। वे कहते हैं कि मुझे अब कुछ नहीं चाहिए, केवल कुँवरि किशोरी मेरे नेत्रों में अञ्जन की भाँति छाई रहे।।६२।। हे सखि ! रसिक लाल जी को ऐसे ही नेत्रों की वाञ्छा है, जिनमें प्रिया का स्वरुप अञ्जन की भाँति एकमेक होकर बसा हो, वे प्रियतम, प्रिया छबिपूरित-नेत्रों के बिना जी भी कैसे सकते हैं।।६३।।

ऐसी न होइ तौ यह उर धरहीं। मोही तन वे चितयौ करहीं।।६४।।
धन्य सोई छिन पल सखि मेरैं। कुँवरि नैंन भरि मोतन हेरैं।।६५।।

दोहा

कोटि काम सुख होत हैं, हँसि चितवत पिय ओर।
भूलि जात तन की दसा, परसे प्रेम-झकोर।।६६।।

श्री प्रिया जी की प्रीति-रीति चौपाई

कुँवर-प्रेम जब मन में आयौ। बचन किसोरी कहन न पायौ।।६७।।
भरि हीयौ अति ही अकुलानी। पिय किसोर के उर लपटानी।।६८।।
फिरि गयौ प्रेम दुहुँनि पर माई। अपनी-अपनी सुधि बिसराई।।६९।।

यदि ऐसा न हो सके तो फिर वे यह वाञ्छा करते हैं कि प्राण-प्रिया अपनी नयन-कोरों से मेरी ओर ही निहारती रहें।।६४।। हे सखि! प्रियतम कहते हैं कि मेरे लिए वहीं क्षण, वही पल धन्य है जब कुँवरि-किशोरी प्रसन्न दृष्टि से मेरी ओर देखती हैं।।६५।। प्रेम के झूले में झूलने वाले प्रियतम को कोटि-कोटि कामनाओं का सुखस्वरूप फल उस समय प्राप्त हुआ प्रतीत होता है, जब प्राण-प्रियतमा किशोरी उनकी ओर मुसकुराती हुई दृष्टिपात करती हैं और जब वे उस सुखानुभूति में अपना देहानुसन्धान खो बैठते हैं।।६६।।

इस प्रकार रसिक कुँवर प्रियतम श्री लाल जी द्वारा अपने प्रति की जाने वाली विलक्षण आसक्ति पूर्ण तत्सुखमयी प्रेम-प्रीति का मन में विचार आते ही प्रेम- मूर्त्ति करुणामयी किशोरी की वाणी अवरुद्ध हो गयी।।६७।। उनका हृदय भर आया, वे भाव विह्वल होकर किशोर प्रियतम के हृदय से लिपट गयीं।।६८।। हे सखि! प्रेम विह्वल प्रिया के प्रेमालिङ्गन से प्रियतम भी प्रेम-विह्वल हो गये। इस प्रकार दोनों ही प्रेम-विभोर होकर आत्म-विस्मृत हो गये।।६९।।

पिय-पिय प्रिया कहत सुकुँवारी। रहि गये ऐसैं भरि अँकवारी।।७०।।
प्रेम-नीर उर अंचल भीनें। चितवत नैंन चकोरहिं कीनें।।७१।।

दोहा

सहज रँगीली लाड़िली, सहज रँगीलौ लाल।
सहज प्रेम की बेलि मनौं, लपटी प्रेम-तमाल।।७२।।

सखियों की प्रेम-रीति चौपाई

देखि सखी तहँ सबै भुलानी। एक रही मनौं चित्र की बानी।।७३।।
एकनि के नैंननिं जल ढरहीं। मनौं प्रेम के झरना झरहीं।।७४।।
एक गिरी धर अति मुरझानी। रहि गई एक लता लपटानी।।७५।।

सुकुमारी प्रिया बारम्बार प्रलाप करते हुए कहने लगीं—हे प्रियतम तुम कहाँ हो ? हे प्रियतम ! तुम कहाँ हो ? और प्रियतम को बाहु-पाश में बाँधे हुए प्रेम-जाड़्य भाव में अविचल से हो गये।।७०।। उनके नेत्रों से प्रवाहित प्रेम-वारि धारा से उनका उराञ्चल भीग गया। वे अपने नेत्रों को चकोर बनाये हुए एक-दूसरे के मुख-चन्द्र को अपलक निहारते रह गये।।७१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं जैसी सहज रँगीली लाड़िली प्रिया हैं, वैसे ही सहज रँगीले प्रियतम श्रीलाल जी हैं। इनका मिलन-आलिङ्गन देखकर ऐसा लगता है, मानो सहज प्रेम की लता, सहज प्रेम तमाल से आलिङ्गित हो।।७२।।

युगल के पारस्परिक प्रेम का विलक्षण स्वरूप दर्शन कर युगल की समस्त सहचरियाँ प्रेम-प्रभाव से आत्म-विस्मृत हो गयीं। उन सखियों में कोई एक तो ऐसी स्तम्भित रह गयी, मानो प्रस्तर-प्रतिमा हो अथवा भीति चित्र हो।।७३।। किसी एक के नेत्रों से ऐसी अवरिल अश्रुधारा प्रवाहित हुई मानो प्रेम का झरना झर रहा हो।।७४।। एक सखी तो मुरझा कर पृथ्वी पर गिर पड़ी, अन्य एक सखी किसी लता से लिपट कर लिपटी ही रह गयी।।७५।।

भइ अचेत पुनि चेत निहारे। तब सबहिन मिलि आइ सँभारे।।७६।।
देखे दोउ उर में उरझाने। तब सबहिन के नैंन सिराने।।७७।।

सोरठा

जुगल रसिक सिरमौर, सब सखियनि के प्रान हैं।
नाहिंन है गति और, तिनहीं के सुख सौं रँगी।।७८।।

युगल की प्रेम-स्थिति चौपाई

महा प्रेम गति सब तें न्यारी। पिय जानै कै प्रॉन पियारी।।७९।।
अरुझे मन सुरझत नहि कैहूँ। जेहि अँग ढरत होत सुख तैहूँ।।८०।।

पश्चात् कुछ समय तक अचेत रहकर वे सभी सचेत हो गयीं, तब सब ने तत्परता से आकर युगल को सँभाला।।७६।। प्रेम-विह्वला सखियों ने देखा कि हमारे प्रेमास्पद युगल परस्पर हृदयालिङ्गनपूर्वक उलझे हुए अचेत प्राय विथकित पड़े हैं, तब सभी सखियों के नेत्र शीतल हुए।।७७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि निकुञ्ज-विलासी, प्रेम रस भोगी, रसिक-शिरोमणि युगल की सुखाभिलाषा से सुख-रञ्जित सखियाँ उनकी अनन्य-गति दासियाँ हैं, जिनके लिए युगल रसिक के अतिरिक्त अन्य कोई गति ही नहीं है।।७८।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री वृन्दावनीय निभृत निकुञ्ज स्थित उज्ज्वल प्रेम-रस विलासी एक प्राण प्रिया-प्रियतम की प्रेम-गति एवं स्थिति अन्यान्य लौकिक पारलौकिक प्रेम स्तरों से सर्वथा पृथक् एवं विलक्षण है। उस प्रेम की स्वरूप-स्थिति के अनुभवी ज्ञाता या तो रसिक बिहारी प्रियतम हैं या निकुञ्ज-विहारिणी प्राण-प्रिया।।७९।। प्रेम-जाल में उलझे हुए उनके मन कभी किसी भी प्रकार से सुलझते ही नहीं वरन् उलझते ही जाते हैं। युगल के रसिक मन प्रेम राज्य के जिस अङ्ग (दिशा) में ढ़लते हैं, वहीं अपार सुख सृष्टि का सृजन होने लगता है।।८०।।

एकै रुचि दुहुँ में सखि बाढ़ी। परि गई प्रेम ग्रंथि अति गाढ़ी।।८१।।
देखत-देखत कल नहिं माई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहि जाई।।८२।।
सहज सुभाइ अनमनी देखैं। निमिषनि कोटि कलप सम लेखैं।।८३।।
हँसि चितवत जब प्रीतम माँहीं। सोई कलप निमष ह्वै जाँहीं।।८४।।
खेलन हँसनिं लाल कौं भावै। नेह की देवी नितहि मनावै।।८५।।
कौतुक प्रेम छिनहि-छिन होई। यह रस समुझै बिरला कोई।।८६।।
ज्यौं-ज्यौं रूपहि देखत माई। प्रेम-तृषा की ताप न जाई।।८७।।

हे सखि! युगल में एक ही रुचि की अभिवृद्धि होते-होते ऐसी प्रेम ग्रन्थि बँध गई है, जिसकी गाढ़ता असीम है।।८१।। रसिक युगल का पारस्परिक प्रेम वाणी द्वारा कहने में नहीं आता, जहाँ परस्पर अपलक रूप-दर्शन करते हुए भी निरन्तर अतृप्ति बनी रहती हो, बेचैनी छाई रहती हो उस प्रेम-स्थिति का वर्णन कोई कैसे करे?।।८२।। यदि कदाचित् नवल किशोरी प्रिया स्वभाव से अन्यमनस्कवत् प्रेम-वैचित्य दशा में प्रियतम की ओर दृष्टिपात नहीं करती हैं, तो प्रियतम उस निमेष-काल को कोटि-कोटि कल्प की भाँति विरह-काल जैसा अनुभव करते हैं।।८३।। जब कभी श्री प्रिया मृदु मधुर मुस्कान के साथ प्रियतम की ओर एक दृष्टि डाल देती हैं, तो प्रियतम के लिए वह निमेष-काल भी कल्प की भाँति दीर्घ-कालीन सुखमय बन जाता है।।८४।। प्रिया का क्रीड़ा-विलास एवं उनकी मुसकान प्रियतम की स्वाभाविक प्रसन्नता और प्रीति का विषय है। नवल-किशोरी प्रिया का, प्रेम देवी की भाँति नित्य आराधन करते हुए रसिक-प्रियतम उनकी प्रसन्नता की वाञ्छा करते रहते हैं अर्थात् उन्हें मनाते रहते हैं।।८५।। युगल के मध्य में अहर्निश, प्रतिक्षण केवल प्रेम की ही कौतुक-क्रीड़ाएँ सम्पन्न होती रहती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम के इस कौतुकमय रस को जानने समझने वाला अधिकारी पात्र कोई बिरला ही होता है।।८६।। हे सखि! हमारे रसिक युगल जैसे-जैसे अधिकाधिक रूप-दर्शन करते हैं, वैसे-वैसे उनका प्रेम-तृषामय बनता जाता है। उनकी वह प्रेम-तृषा ताप बन जाती है।।८७।।

दोहा

प्रेम तृषा की ताप ध्रुव, कैसे हुँ कही न जाइ।
रूप-नीर छिरकत रहैं, तऊ न नैंन अघाँइ।।८८।।

चौपाई

बिच-बिच उठत हैं प्रेम तरंगा। खेलत हँसत मिलत अँग-अंगा।।८९।।
नवल राधिका-वल्लभ जोरी। दूलहु नित्य दुलहिनी गोरी।।९०।।
सोभित नित्य सहाने बागे। नये नेह के रस अनुरागे।।९१।।
खेलत-खेलत तहाँ मन भाये। यह कौतुक कबहूँ न अघाये।।९२।।
नेह-मंजरी सहजहि भई। हरी एक रस छिन-छिन नई।।९३।।
सींचत चाह चौंप के जल सौं। लगि रहे दृग कमलनि के दल सौं।।९४।।

श्री ध्रुवदास जी पुनः कहते हैं कि प्रेम प्यास के मधुर ताप अर्थात् प्रेम-ऊष्मा का वर्णन कर सकना असम्भव है। प्रेम-संतप्त नेत्रों पर रूप-जल का सिञ्चन करते रहने पर भी नेत्रों को परितृप्ति नहीं मिलती।।८८।। श्री श्यामा-श्याम के नित्य-विहार में प्रेम की अनेक तरङ्गें बीच-बीच में उठती ही रहती हैं और इस प्रकार वह खेलते हँसते हुए अङ्ग-अङ्ग से मिलते रहते हैं।।८९।। नित्य-नवेली प्रिया राधिका और उनके प्रियतम वल्लभ की जोड़ी अनुपम है। गौराङ्गी नित्य नव-वधू श्री राधिका एवं नित्य दूलह श्री वल्लभ नित्य नये प्रेम रङ्ग में रँगे हुए नित्य सहाने वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत रहते हैं।।९०-९१।। वे सदा अपनी रस-रुचि के खेल खेलते रहते हैं। इस अनादि-अनन्त रस-क्रीड़ा से वे कभी परितृप्त नहीं हुए।।९२।। यह क्रीड़ा ही उनकी सहज नेह-मञ्जरी है, जो सदा सर्वदा प्रतिक्षण एक सी हरी-भरी एवं नित्य-नूतन बनी रहती है।।९३।। रसिक युगल जिसे अपने प्रेमोत्कण्ठा एवं रसोल्लास के जल से सींचते रहते हैं तथा नेह-मञ्जरी के सुकोमल वृन्त-दलों को अपने नयन-कमलों से लगाये रखते हैं।।९४।।

सोरठा

श्री राधावल्लभ लाल, रसिक रँगीले विवि कुँवर।
परे प्रेम के ख्याल, रुचत न तिनकौं और कछु।।९५।।

कुञ्ज-विनोद चौपाई

नव निकुंज रँग-रँग चित्रसारी। राजत नवल कुँवरि सुकुँवारी।।९६।।
रस-बिहार की चौपर खेलैं। दोउ प्रवीन अंसनि भुज मेलैं।।९७।।
सखियनि तलप बिसात बनाई। कहि न जाइ सोभा कछु माई।।९८।।
पाँसे नैंन कटाछनि ढारैं। हाव-भाव रँग-रँग की सारैं।।९९।।
जो अँग लालहि परस्यौ भावै। समुझि किसोरी ताहि दुरावै।।१००।।
घात अनेक मन में उपजावै। हँसै कुँवरि जब नहिं बनि आवै।।१०१।।

रसिक रँगीले युगल किशोर नित्य-विहारी श्री राधावल्लभ लाल केवल प्रेम के विलासों में मग्न रहते हैं। उन्हें प्रेम-विलास के अतिरिक्त अन्य कुछ रुचता ही नहीं।।९५।।

निभृत निकुञ्जान्तर्गत युगल की प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल किशोर की ऐकान्तिक नव-निकुञ्ज अर्थात् चित्रशाला विविध प्रकार की सज्जा सामग्री से सुशोभित है; जहाँ नवल-किशोर एवं सुकुमारी प्रिया परस्पर में स्कंधों पर भुज- लताएँ अर्पित किये हुए रस-विहार रूपी चौपर का खेल खेलते रहते हैं।।९६-९७।। सखियों ने शय्या रूपी बिसात बिछा रखी है, जिसकी शोभा अवर्णनीय है।।९८।। जहाँ नयन कटाक्षों के पाँसे फैंके जाते हैं। बिसात पर हाव-भाव रूपी रङ्ग-बिरङ्गी गोटें रखी गई हैं।।९९।। श्री लाल को प्रिया के जिस अङ्ग के स्पर्श की लालसा होती है, विदग्धा किशोरी उसे पहले से ही भाँप कर छिपा लेती है।।१००।। तब श्री लाल जी अपने मन में रस-घात की अनेकों युक्तियाँ उपजाते हैं किन्तु जब उनकी एक भी युक्ति सफल नहीं होती, तब प्रिया उनकी असफलता पर मुस्कुरा जाती है।।१०१।।

हारि मानि पग परत बिहारी। रसिक सिरोमनि की बलिहारी।।१०२।।
नैननिं सैंन कछुक मुसिकानी। मैंन खेल रस रैंन न जाँनी।।१०३।।
उरज कपोल झलक छबि छाई। चितवत लाल विवस ह्वै जाई।।१०४।।
तबहि कुँवरि भरि लिये अँकवारी। करुना करि दियौ अधर सुधारी।।१०५।।

दोहा

नागरि कोक कलानि में, बिलसत सुरत-बिहार।
रोचक रव रसना तहाँ, अरु नूपुर झनकार।।१०६।।

श्री लाल जी की सेवा चौपाई

नवल निकुंज रँगीले दोऊ। तेहि ठाँ सखी नाहिनैं कोऊ।।१०७।।

अन्ततः विहारी लाल अपनी पराजय मान कर श्री प्रियाचरणों में विलुण्ठित होने लगते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार पराजित होकर रस-लाभ करने वाले रसिक-शिरोमणि प्रियतम बारम्बार बलिहार के योग्य हैं।।१०२।। अस्तु, इस प्रकार प्रियतम की प्रेम-दीन स्थिति का अवलोकन करके रसिक शिरोमणि प्रिया अपने नेत्रों में हर्ष प्रकट करती हुईं मुस्कुरा उठीं। तत्पश्चात् युगल प्रेम क्रीड़ा में प्रवृत हो गये उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ कि रात्रि किधर चली गयी।।१०३।। प्रिया के सुपुष्ट वक्षोजों एवं सचिक्कण कपोलों की छबि कान्ति का अवलोकन करके लाल जी बारम्बार जब प्रेम-विवश होने लगे।।१०४।। तब कुँवरि किशोरी ने द्रवित होकर उन्हें अपने बाहु-पाश में भर लिया और करुणा करके अधरामृत-रस का दान किया।।१०५।। पश्चात् शृङ्गार रस की कलाओं में परम निपुण प्रिया सुरतविहार में मग्न हो गयी, जिससे किङ्किणी की रुचिपूर्ण ध्वनि एवं चरण-नूपुरों की झङ्कृति मुखरित हो उठी।।१०६।।

नव निभृत-निकुञ्ज में आस्तृत पुष्प-शय्या पर रङ्ग-रँगीले युगल विराजमान् हैं। सहज एकाकी हैं, वहाँ पर अन्य कोई सखी सहचरी नहीं

रसिक लाल ऐसै रँग भीनें। तन-मन प्राँन प्रिया कर दीनें।।१०८।।
कबहूँ रूप सखी कौ धरही। रुचि लै सब बातनिं कौं करही।।१०९।।
नख-शिख लौं सिंगार बनावै। याही सेवा में सुख पावै।।११०।।
अद्‌भुत बैंनी गूँथि बनाई। मनौं अलिनु की स्रैंनी आई।।१११।।

दोहा

बिच-बिच फूल सुरंग दै, गूँथी कबरि बनाइ।
मिलि अनुराग सिँगार दोउ, गही सरन मनौं आइ।।११२।।

चौपाई

नैंननिं अंजन रेखा दीनी। तबहि कुँवरि कर आरसी लीनी।।११३।।

है।।१०७।। रसिक लाल प्रेम के रङ्ग में ऐसे अनुरक्त हैं कि उन्होंने अपना तन-मन प्राण सभी कुछ श्री प्रिया के कर-कमलों में समर्पित कर दिया है।।१०८।। वे कभी सखी का स्वरूप धारण करके श्री प्रिया की रुचियों को परख-परख कर बड़े चाव के साथ उनकी सेवाएँ करते हैं।।१०९।। कभी नख-शिख पर्यन्त प्रिया का शृङ्गार निर्मित कर उन्हें धारण कराते हैं और उस सेवा में अपार सुख का अनुभव करते हैं।।११०।। कभी वे प्रिया की वेणी का अद्भुत सौन्दर्यपूर्ण गुम्फन करते हैं, तब सचिक्कण-श्याम केशों की गूँथी हुई वेणी ऐसी दिखती है, मानो भ्रमर-श्रेणी हो।।१११।। शृङ्गार-कला कुशल प्रियतम लम्बमान् वेणी के बीच-बीच सुरङ्गित पुष्पों का ग्रथन करके कबरी की रचना करते हैं। सुरङ्गित अरुण-पुष्पों के साथ श्याम केशों से रचित कबरी ऐसी प्रतीत होती है, मानो अनुराग एवं शृङ्गार दोनों ने मिलकर श्रीप्रिया की शरण ग्रहण की हो।।११२।। सखी रूपधारी प्रियतम ने नवल किशोरी के विशाल नयनों में अञ्जन-रेखा रञ्जित की और जब कुँवरि किशोरी ने कर-कमलों में दर्पण लेकर अपना मुख दर्शन किया।।११३।।

रीझि अंक लालन भरि लीनौ। अति हित सौं अधरामृत दीनौ।।११४।।
समुझि सनेह नैंन भरि आये। मनौ कंज आनँद जल छाये।।११५।।
बिवस होइ तब उर लपटाने। बीते कलप न नैंकु अघाने।।११६।।
रहत यहै भ्रम पिय मन माहीं। प्रान-प्रिया मोहिं मिली कि नाहीं।।११७।।

दोहा

देखत-देखत हँसत ही, गये कलप बहु बीति।
पल समान जाने नहीं, बिलसत दिन यह रीति।।११८।।

सखियों की प्रीति चौपाई

कौन प्रेम तेहि ठाँ कौ कहियै। दुहूँ कोद चितवत सखि रहियै।।११९।।

तब वह प्रियतम की सेवा पर बहुत रीझीं और उन्होंने प्रियतम को अपने अङ्क में भर लिया, साथ ही अतिशय प्रीतिपूर्वक उन्हें अधरामृत दान किया।।११४।। अपने प्रति श्री प्रिया के गम्भीर प्रेम का अनुभव करके प्रियतम के नेत्र छल-छला उठे। उस समय अश्रु-कण बरसते नेत्रों की छबि ऐसी लगी,मानो अरुण कमलों पर आनन्द रूपी जल छा गया हो।।११५।। प्रियतम भाव विवश हो गये तथा श्री प्रिया के वक्षस्थल से लिपट गये। इस आलिङ्गन सुख में अनगिनत कल्पों का काल क्षण की भाँति व्यतीत हो गया, फिर भी प्रियतम अतृप्त ही बने रहे।।११६।। नित्य निरन्तर प्रिया से मिले रहने पर भी प्रियतम के मन में सदैव यह भ्रम बना रहता है कि प्राण-प्रिया किशोरी मुझे मिली भी है अथवा नहीं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल किशोर प्रिया–प्रियतम को [परस्पर में एक-दूसरे का रूप दर्शन करते, हास्य-विनोद करते एवं] केलि-कौतुक करते न जाने कितने कल्प व्यतीत हो गये, किन्तु उपरोक्त प्रकार से अहर्निश सुख-रस-विलास करते हुए भी वह दीर्घकाल निमेष की भाँति कब, कैसे कहाँ चला गया, पता ही नहीं चला।।११७-११८।।

[निकुञ्ज-देश की नित्य सहचरियाँ आपस में वार्त्ता करती हुई एक दूसरी से कहती हैं] हे सखि! इस नित्य-विहार में वृन्दावन निकुञ्ज देश के प्रेम

नित्त प्रेम एकै रस धारा। अति अगाध तेहि नाहिंन पारा।।१२०।।
महा-मधुर रस प्रेम कौ प्रेमा। पीवत ताहि भूलि गये नेमा।।१२१।।
तैसी सखी रहैं दिन-राती। हित 'ध्रुव' जुगल नेह मदमाती।।१२२।।

दोहा

रसनिधि रसिक किशोर विवि, सहचरि परम प्रवीन।
महा प्रेम रस मोद में, रहत निरंतर लीन।।१२३।।

वृन्दावन प्रेम की परा स्थिति चौपाई

प्रेम बात कछु कही न जाई। उलटी चाल तहाँ सब माई।।१२४।।

की किंवा युगल के पारस्परिक प्रेम की चर्चा (समीक्षा) किस प्रकार की जाय ? यह तो कहने में ही नहीं आती। बस, प्रिया-प्रियतम की ओर देखते ही बनता है, कहते नहीं बनता।।११९।। युगल का यह नित्य प्रेम एक विलक्षण रस की धारा है, जो कभी न्यून नहीं होती। यह रस-धारा अत्यन्त गम्भीर, अथाह एवं अपार है।।१२०।। हमारे रसिक युगल किशोर का आभ्यन्तर प्रेम मधुरा-तिमधुर एवं प्रेम का भी प्रेम है। इस रस का पान करके रसिक युगल समस्त नेम, धर्म, विधि-विधानों को भूल चुके हैं।।१२१।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं जैसे लोक, वेद, विधि से अतीत हमारे रसिक युगल हैं, ऐसे ही उनकी सखियाँ अहर्निश युगल के प्रेम मद से मत्त बनी रहती हैं।।१२२।। यदि युगल रसिक किशोर रस की निधि हैं, तो उनकी सहचरियाँ अपने आराध्य युगल को रस विलसाने में परम विदग्ध हैं अर्थात् परम निपुण हैं। वे प्रेम-रस के आनन्द-मोद में निरन्तर लीन रहती हैं।।१२३।।

[प्रेम परम तत्त्व है, वह समस्त अनुबन्धों, प्रतिबन्धों एवं मर्यादाओं से उन्मुक्त है। वह ईश्वर का भी ईश्वर है] प्रेम की इदम् इत्थं अर्थात् प्रेम यह है, प्रेम ऐसा है, व्याख्या या परिभाषा कर सकना कठिन है। प्रेम की गति लोक-वेद विलक्षण है।।१२४।।

प्रेम बात सुनि बौरा होई। तहाँ सयान रहै नहिं कोई।।१२५।।
तन-मन-प्रान तिही छिन हारै। भली बुरी कछुवै न बिचारै।।१२६।।
ऐसौ प्रेम उपजिहै जबही। हित 'ध्रुव' बात बनैंगी तबही।।१२७।।
ताकौ जतन न दीसत कोई। कुँवरि कृपा तें कहा न होई।।१२८।।
वृंदावन रस सब तें न्यारौ। प्रीतम तहाँ अपुनपौ हारौ।।१२९।।
श्रीहरिवंश चरन उर धरई। तब या रस में मन अनुसरई।।१३०।।

जो व्यक्ति प्रेम की स्वरूप गरिमा से प्रभावित होकर उसे धारण करता है, वह प्रेम का पागल हो जाता हैं। उसकी सारी चातुरी खो जाती है।।१२५।। वह तत्काल ही अपने तन-मन-प्राण सभी कुछ प्रेम और प्रेमास्पद पर न्यौछावर करने को तत्पर हो जाता है। प्रेम-विवश व्यक्ति अपनी लौकिक पारलौकिक लाभ-हानि, अच्छाई-बुराई आदि से ऊपर उठ जाता है अर्थात् वह लोक और वेद से अतीत हो जाता है तथा सब ओर से उपरत हुआ प्रेमास्पद की प्रीति में ही जीता है।।१२६।। अस्तु, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसा परम प्रेम जिस दिन उपासक के हृदय में उत्पन्न होगा, उसी दिन वह अपने आपको कृतकृत्य अनुभव करेगा।।१२७।। ऐसे अनिर्वचनीय अमृत-स्वरूप प्रेम की प्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है। इस दिव्यातिदिव्य अलौकिक प्रेम की प्राप्ति प्रेममूर्त्ति निकुञ्जेश्वरी वृन्दावन रानी नवलकिशोरी श्रीराधा की कृपा से ही सम्भव है।।१२८।। प्रेम का सर्वोपरि धाम श्री वृन्दावन है। वृन्दावन का रस विशुद्ध प्रेम-विलास है, जो श्रुति-स्मृति, पुराणादि के ज्ञान, कर्म, योग आदि से विलक्षण विशुद्ध एवं तत्सुखमय है। जहाँ परात्पर तत्त्व भगवान् श्री कृष्ण ने प्रेम-विवश होकर अपनी प्रेमास्पदा प्रिया श्रीराधा के चरणों में अपने सर्वस्व के साथ स्वयं को भी समर्पित कर दिया है।।१२९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, जो भाग्यशाली उपासक वृन्दावन के प्रेम रसमय देश में प्रवेश चाहता हो किंवा अन्तर्मन से इस रस मार्ग का अनुसरण करना चाहता हो, उसका प्रथम कर्त्तव्य-धर्म है कि वह वंशी-अवतार, प्रेमस्वरूप, रसिकाचार्य गोस्वामी श्री हित हरिवंश चन्द्र के श्री चरण-कमलों को परिपूर्ण निष्ठा एवं भक्ति के साथ हृदय में धारण करे।।१३०।।

मो मति कवन कहै यह वानी। हरिवंश चरन बल कछुक बखानी।।१३१।।
जुगल प्रेम मन ही में राखै। अनमिल सौं कबहूँ नहिं भाखै।।१३२।।

दोहा

पिय प्यारी कौ प्रेम रस, सकहि तौ मन में राखि।
या रस के भेदी बिना, काहू सौं जिनि भाखि।।१३३।।

चौपाई

प्रेम बात आनँद मय माई। ताहि सुनत हिय नैंन सिराई।।१३४।।
जहाँ लगि सुख कहियत जग माँहीं। प्रेम समान और कछु नाँहीं।।१३५।।
यह रस जाके उर नहिं आयौ। तेहि जग जनम लै वृथा गमायौ।।१३६।।

श्री ध्रुवदास जी पुनः कहते हैं कि श्री वृन्दावन प्रेम रस के सम्बन्ध में अपनी वाणी को मुखरित करना मेरे अधिकार से बाहर है। जो कुछ भी मेरे द्वारा वर्णन किया गया है, वह सब प्रेम-स्वरूप श्री हित हरिवंश चन्द्र के चरण-कमलों का बल-प्रताप ही है।।१३१।। रसिक उपासक को चाहिए कि 'नेह मञ्जरी' में वर्णित युगल प्रेम को अपने अन्तर्मन में कृपण के धन की भाँति छिपा कर रखे। प्रेमी हृदय रसिक के अतिरिक्त किसी विजातीय से इस रस का वर्णन न करे।।१३२।। श्री प्रिया-प्रियतम के इस अलौकिक प्रेम-रस को प्रयास-पूर्वक मन में छिपाये रखना चाहिए और यह सावधानी रखनी चाहिए कि इस के धर्मी-मर्मज्ञ के बिना किसी अन्य से इसकी चर्चा करनी ही नहीं है।।१३३।। हे सखि! प्रेम का स्वरूप नित्य आनन्दमय है, जिसकी वार्त्ता श्रवण-मात्र से हृदय एवं नेत्रों को शीतल कर देती हे, शान्ति देती है।।१३४।। सम्पूर्ण विश्व में जहाँ तक दैहिक, दैविक एवं आध्यात्मिक सुखों का विस्तार है, उनमें से कोई सा भी सुख प्रेम के सुख की समता नहीं कर सकता।।१३५।। जिसने संसार में जन्म लेकर इस प्रेम-रस को अपने हृदय में नहीं बसाया, उसने जीवन को व्यर्थ खो दिया।।१३६।।

सब रस में देखे अवगाही। सबकौ सार प्रेम रस आही।।१३७।।
प्रेम छटा जेहि उर पर परई। सो सुख स्वाद सबै परिहरई।।१३८।।

दोहा

जेहि दुख सम नहि और सुख, सुख की गति कहै कौन।
वारि डारि 'ध्रुव' प्रेम पर, राज चतुर्दश भौंन।।१३९।।

चौपाई

जहाँ लगि उज्ज्वल निर्मलताई। सरस सनिग्ध सहज मृदुलाई।।१४०।।
मादिक मधुर माधुरी अंगा। दुर्ल्लभता के उठत तरंगा।।१४१।।
नौतन नित्य छिनहि-छिन माँहीं। इक रस रहत घटत रुचि नाँहीं।।१४२।।
अतिहि अनूप सहज स्वछंदा। पूरन कला प्रेम वर चंदा।।१४३।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं मैंने रस नाम से कहे जाने वाले रसों, प्रसङ्गों एवं धर्मों का अवगाहन करके अनुभव प्राप्त किया है कि युगल का प्रेम रस ही सब रसों का सार है।।१३७।। जिस भाग्यशाली के हृदय में प्रेम की छवि-छटा प्रकट हो जाती है, वह विश्व के समस्त सुख स्वादों को सहज ही परित्याग कर देता है।।१३८।। प्रेम-जनित विरहादि दुःख भी जहाँ सुख स्वरूप है, वहाँ संयोग में पलने वाले सुखों की गति-स्थिति का वर्णन असम्भव है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, ऐसे परम सुख स्वरूप नित्यानन्दमय प्रेम पर चतुर्दश लोकों का वैभव सुख भी न्यौछावर है।।१३९।। प्रेम, सर्वोपरि उज्ज्वलता (निष्कामता) निर्मलता (वासना-राहित्य), रसपूर्णता, स्निग्धता एवँ सहज सुकोमलता की पराकाष्ठा है।।१४०।। प्रेम के अङ्ग हैं—मादकता (मस्ती एवं सहज उपरामता), मधुरता एवं प्रतिक्षण माधुर्य-बोध। प्रेम परम दुर्लभ है अर्थात प्रेम में दुर्लभता की तरङ्गें उठती रहती हैं।।१४१।। प्रेम सदैव क्षण-क्षण में नवीन होता रहता है, वह नित्य-नूतन है एवं वह सदा एक रस रहता है, घटता नहीं। प्रेम में प्रेमास्पद के प्रति रुचियों की अभिवृद्धि होती रहती है।।१४२।। वह अत्यन्त अनुपम है, सहज स्वच्छन्द तथा निरङ्कुश है। प्रेम

सब गुन तें ताकी गति न्यारी। जाके बस भये लाल विहारी।।१४४।।

दोहा

कहि न सकत रसना कछू, प्रेम सार आनंद।
को जानै ध्रुव प्रेम रस, बिनु वृंदावन-चंद।।१४५।।

चौपाई

प्रेम की छटा बहुत विधि आही। समुझि लई जिन जैसी चाही।।१४६।।
अद्भुत सरस प्रेम निज सोई। चित्त चलन की जेहि गति खोई।।१४७।।
रसिक-रसिकिनी गुन अनुरागे। एक प्रेम दंपति मन पागे।।१४८।।
इक छत सार प्रेम रस धारा। जुगल किसोर निकुंज-विहारा।।१४९।।
यह विहार जाके उर आवै। ताहि न बात दूसरी भावै।।१५०।।

वह श्रेष्ठ चन्द्रमा है, जो अपनी समस्त कलाओं से पूर्ण है।।१४३।। प्रेम की गति गुणातीत है। किमअधिकम् प्रेम वह सर्वोपरि तत्त्व है, जिसके वशीभूत हो गये हैं स्वयमेव श्रीविहारीलाल ठाकुर।।१४४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं प्रेम के आनन्द-सार-सर्वस्व का वर्णन करने में मेरी वाणी सर्वथा असमर्थ है। वस्तुतः श्री वृन्दावन चन्द्र के बिना प्रेम के परात्पर रस-स्वरुप को कौन जान सकता है।।१४५।। प्रेम की छवि छटाएँ–[शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गारदि रूपों में] बहुत प्रकार की हैं। अपने-अपने अधिकारानुसार जिन उपासकों को जहाँ जैसी समझ पड़ी, उन्होंने धारण कर लिया।।१४६।। किन्तु प्रेम का अद्भुत एवं रसमय निज (सहज) स्वरुप वह है जो प्रेमी उपासक के चित्त-चाञ्चल्य को समाप्त करके प्रेमास्पद के स्वरुप में अविचल भाव से रति-पूर्वक जोड़ दे।।१४७।। युगल रसिक श्री लाड़िली-लाल के प्रेममय गुण-गान से अनुरक्त करके उन रसिक दम्पति के ऐकान्तिक-प्रेम में मन को रस-रञ्जित कर दे।।१४८।। सर्वोपरि सार-रूप प्रेम रस की धारा युगल-किशोर श्री लाड़िली लाल का निकुञ्ज-विहार है।।१४९।। यह निकुञ्ज-विहार जिसके हृदय में (कृपावशात्) प्रकट होता है, उस प्रेमी रसिक को इसके सिवाय अन्य कोई बात सुहाती ही नहीं।।१५०।।

औरौ भजन आहिं बहुतेरे। ते सब प्रेम-भजन के चेरे।।१५१।।

दोहा

नारदादि सनकादि सब, उद्धव अरु ब्रह्मादि।
गोपिन कौ सुख देखि किये, भजन आपनौ बादि।।१५२।।

चौपाई

तिन गोपिनु ते दुर्ल्लभ माई। नित्य-विहार सहज सुखदाई।।१५३।।
शिव श्री पति जद्दपि ललचाहीं। मन प्रवेस तिनहूँ कौ नाहीं।।१५४।।
ऐसै रसिक किसोर विहारी। उज्वल प्रेम विहार अहारी।।१५५।।
अति आसक्त परस्पर प्यारे। एक सुभाव दुहुँनि मन हारे।।१५६।।
रस में बढ़ी नेह की बेली। तेहि अवलंबे नवल-नवेली।।१५७।।

अन्य और भी कई प्रकार के भजन-भाव विधान हैं किन्तु वे सब वृन्दावनीय युगल-विहार परक प्रेम रूपी भजन के दास ही कहे जायेगें अर्थात् प्रेम-भजन के समक्ष वे सब सामान्य भजन हैं।।१५१।। नारद; सनकादिक, उद्धव, ब्रह्मा एवं शिव आदि श्रेष्ठ भक्तों ने ब्रज-वल्लवी-गण के प्रेम भजन पूर्ण सुखों का दर्शन करके अपने ऐश्वर्यमय भजन को व्यर्थ जैसा स्वीकार कर लिया।।१५२।। ब्रज-बालाओं के प्रेम-भजन से भी दुर्लभ एवं श्रेष्ठ है सहज सुख स्वरुप नित्य-विहारी श्री लाड़िली लाल का वृन्दावन नित्य-विहार।।१५३।। यद्यपि भगवान् शङ्कर एवं लक्ष्मीपति जैसे महामहिम भी नित्य-विहार के लिए ललचाते रहते हैं, तथापि उनका भी मन इस प्रेम विहार में प्रवेश प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हो पाता।।१५४।। श्री वृन्दावन विलासी रसिक युगल किशोर का आहार है शृङ्गारोत्तर उज्ज्वल निष्काम एवं तत्सुखमय प्रेम-विहार।।१५५।। ये प्रेमविहारी परस्पर अत्यन्त प्रेमासक्त हैं, दोनों का स्वभाव एक ही है। दोनों ने अपने-अपने मन को दोनों के लिए समर्पित कर दिया है।।१५६।। फलतः वृन्दावन में रसमय प्रेम की लता निरन्तर लहलहाती रहती है, जिससे अवलम्बित हैं—नित्य-नव प्रेम-विलासी ललित लाड़िली-लाल।।१५७।।

दोहा

हित 'ध्रुव' दुर्ल्लभ सबनि तें, नित्य विहार सरूप।
ललितादिक निज सहचरी, सो सुख लहतिं अनूप।।१५८।।

चौपाई

दुर्ल्लभ कौं दुर्ल्लभ अति माई। वृंदाविपिन सहज सुखदाई।।१५९।।
बेलि फूल फल ललित तमाला। प्रेम सुधा सींचत सब काला।।१६०।।
मृगी विहंगी सखी अपारा। सबकै यहि ठाँ यहै अहारा।।१६१।।
नित्य किसोर एक रस भीने। तन-मन प्राँन नेह बस कीने।।१६२।।
इहि बिधि बिलसत प्रेमहि सजनी। जानत नहिं कित बासर-रजनी।।१६३।।
'नेह मंजरी' हित 'ध्रुव' गावै। दंपति प्रेम माधुरी पावै।।१६४।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिस नित्य-विहार स्वरूप का अनुपम सुख युगल की निज सहचरियाँ ललितादिक प्राप्त करती हैं, वह सबसे दुर्लभ है।।१५८।। सहज सुखदायक नित्य-विहारमय वृन्दाविपिन दुर्लभ ही नहीं अपितु अत्यन्त दुर्लभ है।।१५९।। श्री वृन्दावन सर्वकाल अपने धाम की ललित-लताओं, पत्र-पुष्प एवं तमाल आदि द्रुमों का अपने प्रेमामृत-वारि से सिञ्चन करता रहता है।।१६०।। श्रीवन की मृगी, विहङ्गी आदि सभी सखियों का युगल-प्रेम ही जीवन आधार है।।१६१।। हे सखि ! सदैव केवल प्रेम रस से भीगे रहने वाले नित्य किशोर युगल ने इन सब सखि स्वरूप पशु-पक्षियों के तन, मन एवं प्राणों को अपने प्रेम से वशवर्त्ती बना रखा है।।१६२।। हे सखि ! इस प्रकार श्रीवन का समस्त परिकर निरन्तर प्रेम-रस का विलास-सुख लेता हुआ काल-ज्ञान से अनबूझ बना रहता है—यह भी नहीं जानता कि किधर रात होती है और किधर दिन।।१६३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो श्रद्धालु रसिक 'नेह मञ्जरी' का पठन-पाठन-गान करेगा, वह दम्पति श्री श्यामा-श्याम के प्रेम-माधुर्यमय रस को प्राप्त करेगा।।१६४।।

दोहा

प्रेम धाम वृंदाविपिन, मध्य मधुर वर जोर।
सरिता रस सिंगार की, जगमगात चहूँ ओर।।१६५।।

सोरठा

प्रेममई दोऊ लाल, प्रेममई सहचरि जहाँ।
सेवत हैं सब काल, प्रेम मई वृंदाविपिन।।१६६।।

दोहा

वैभव सब ईश्वर्यता, ठाढ़ी सेवत दूर।
परसन पावत कबहुँ नहिं, श्रीवृंदावन-धूर।।१६७।।

उपसंहार

दोहा

ब्रह्म जोति को तेज जहाँ, जोगेश्वर धरैं ध्यान।
ताही कौ आवरन तहाँ, नहिं पावै कोउ जान।।१६८।।

प्रेमधाम श्री वृन्दावन की मधुमयी सीमा के अन्तर्गत मधुर वर युगल श्री लाड़िली लाल विराजित हैं, जहाँ शृङ्गार-रस-प्रवाह रूपी सरिता प्रवाहित रहती है।।१६५।। प्रेममय श्री वृन्दावन में प्रेममय लाड़िली-लाल का सेवन प्रेममयी सखियाँ सर्वकाल करती रहती हैं।।१६६।। विश्व नियन्ता का समग्र विश्व-वैभव एवं उसका ईशत्व दूर से ही भावना में श्रीवृन्दावन का सेवन करता है। वह इस रसधाम वृन्दावन की धूलि का स्पर्श भी नहीं कर पाता।।१६७।।

नव योगेश्वर-गण किंवा अन्यान्य शिवादि योगेश्वर-गण जिसका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, ऐसी किसी अनिर्वचनीय ब्रह्मज्योति का जिस वृन्दावन के चतुर्दिक ज्योतिर्मय आवरण है, वह अवाङ्मनसागोचर वृन्दावन धाम अपने निज-स्वरूप में सदा अवस्थित है, जिसके समीप तक जा पहुँचना असम्भव है।।१६८।।

'नेह मंजरी' मंजु रस, मंजुल कुंज-विलास।
जेहि रस के गावत सुनत, रसिकनि होत हुलास।।१६९।।
रूप रंग की बेलि मृदु, छबि के लाल तमाल।
'नेह मंजरी' दुहुँनि में, हरी रहति सब काल।।१७०।।

अस्तु, 'नेह मञ्जरी' अपने आप में एक अत्यन्त सुन्दर रस है और इसका कुञ्ज-विलास भी अतिशय मञ्जुल है, जिसका श्रवण एवं गान रसिक-जनों के लिए अतीव उल्लासदायक है।।१६९।। नवल-किशोरी लाड़िली प्रिया रूप एवं आनन्दमय केलि की सुकोमल स्वर्णलता हैं और प्रियतम श्रीलाल जी मूर्त्तिमान् शोभा के ललित तमाल तरु हैं, इन रसिक दम्पती के मध्य में यह 'नेह मञ्जरी' सदा-सर्वदा हरी-भरी बनी रहती है।।१७०।।

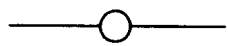

२७

श्री वन-विहार

मङ्गलाचरण दोहा

रसिक नृपति हरिवंश जू, परम कृपालु उदार।
(श्री) राधावल्लभ लाल जस, प्रगट कियौ रस सार।।१।।

श्री वन-विहार में ब्याह का रूपक-वर्णन दोहा

वन विहार छवि कहा कहौं, सोभा बढ़ी बिसाल।
मानौं ब्याहन चढ़े हैं, श्रीराधावल्लभ लाल।।२।।
मौरी-मौर जराव के, अरु मोतिनु के हार।
दुलहिनि दूलहु अति बने, रूप-सींव सुकुँवार।।३।।

रसिकाचार्य शिरोमणि बंशी-स्वरूप गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी महाराज अखिल भू-मण्डल अवस्थित युगल उपासक रसिकजनों के नृपति-मणि हैं। वे परम कृपामय एवं उदार हैं, उन्होंने श्री वृन्दावन निभृत निकुञ्ज-विलासी रसिक शेखर श्री राधावल्लभ लाल के नित्य विहारमय रस-सार केलि-यश का संसार में प्राकट्य किया है।।१।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, श्री वन-विहार करते समय राधावल्लभ लाल की जो अपूर्व शोभा-वृद्धि हुई, उस छबि का वर्णन करना कठिन तो है किन्तु उसका दर्शन करके ऐसा लगा, मानो आज वे वर बने हुए विवाह का कोई अपूर्व सुख लेने जा रहे हों।।२।। युगल के शिरोभाग पर मणिजटित मौरी-मौर शोभित है एवं वक्षस्थल पर मुक्ता-हार शोभित हैं। आज वर-वधू के रूप में, रूप-सौन्दर्य एवं सुकुमारता की चरम अवधि श्री राधावल्लभ लाल बहुत अच्छे लग रहे हैं।।३।।

फूलनि के बने सेहरे, झलकत प्रगट सुहाग।
बसन सहाने फबे तनु, मनु पहिरयौ अनुराग।।४।।
नख-सिख लौं भूषन सजे, फबे छबीली भाँति।
झलमलात अँग-अंग प्रति, मनि-रतननि की काँति।।५।।
कहा कहौं बानिक बनक, सुंदर परम उदार।
चरननि तर लोटत बिवस, निरखि रूप सिंगार।।६।।
जुरी बरात सखीनु की, कोटिन जूथ अपार।
उमड़े छबि के सिंधु मनु, मधि दूलहु सुकुँवार।।७।।
सब के सीसनि रही फबि, सीस-फूलनि की पाँति।
मनौं छत्र सिंगार के, झलकि रहे बहु भाँति।।८।।

उनके मुख मण्डल पर पुष्प निर्मित सेहरे उनके सुख-सौभाग्य की सूचना दे रहे हैं। युगल के सुभग तनु पर विवाह सम्बन्धी सुहाने अरुणिम वस्त्र ऐसे शोभित हैं, मानो वस्त्र के रूप में उन्होंने अनुराग को ही ओढ़ रखा हो।।४।। नवल-युगल नख-शिख पर्यन्त भूषणों से सुसज्जित होकर छबीली छबि से फबित हैं। उनके सुभग अङ्गों में भूषण-जटित रत्न एवं मणियों की कान्ति झलमला रही है।।५।। आज की बानक और उसका बनाव परम उदार सुन्दर युगल पर कुछ ऐसा शोभित है, जिसका दर्शन करके लगता है कि मूर्त्तिमान रूप एवं शृङ्गार-रस दोनों ही श्री राधावल्लभ लाल के चरण-तल पर विलुण्ठित हो रहे हैं।।६।। वर-यात्रा में सखियों के अपार यूथ कोटि-कोटि की संख्या में एकत्र हैं, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि सुकुमार दूलह-दुलहिनी को मध्य में करके छबि के अनेकों समुद्र एक साथ उमड़ पड़े हों।।७।। वर-यात्री (बाराती) सभी सखियों के शिरोभाग पर शीश-फूलों (आभूषण-विशेष) की छबि ऐसी प्रतीत होती है, मानो मूर्त्तिमान शृङ्गार-रस के बहुत से छत्र झलक रहे हों।।८।।

किंकिनि धुनि मनौं दुंदुभी, बाजत है चहुँ ओर।
कहा कहौं कहि सकत नहिं, आनँद बढ़्यौ न थोर।।९।।
अंगनि छबि भूषन झलक, फैलि रही बन माहिं।
ससि-सूरज दुति जहाँ लगि, निरखत सबै लजाहिं।।१०।।
छाँड़त छबि की फुलझरी, मदन हवाई-दार।
निसि तैं मानौं दिन भयौ, कोटि भान उजियार।।११।।
छुटत अलौकिक भौंचपा, जहँ-तहँ फैली जोति।
कंचन की बरसा मनौं, वृंदावन में होति।।१२।।
कुंज-कुंज ऐसी बनी, मानौं मत्त मतंग।
लागत ही जनौं पवन के, नर्त्तत लता सुरंग।।१३।।

मद-मन्थर गतिमान वर-यात्री सखियों की कटि-किङ्किणियों की मधुर ध्वनि ऐसी शोभित हो रही हैं, मानो चारों ओर दुंदुभियाँ बज रही हों, जिससे उत्पन्न चतुर्दिक अपार आनन्द की अभिवृद्धि का वर्णन असम्भव है।।९।। सहचरियों के सुभग अङ्गों में धारण किये हुए भूषणों की छबि एवं कान्ति सम्पूर्ण वृन्दावन को प्रकाशित कर रही है। इस अङ्ग-भूषण-द्युति के समक्ष यावत् सूर्य-चन्द्र एवं सौदामिनी आदि की कान्ति-द्युति लज्जित हैं।।१०।। मदन-रूपी हवाई-दार (आतिशबाजी चलाने वाला) इस अवसर पर छबि की फुलझड़ियाँ छोड़ रहा है, जिनका प्रकाश कोटिशः सूर्यों की भाँति है। इस प्रकाश के कारण ऐसा लगता है, मानो रात्रि दिन के रूप में बदल गई हो।।११।। लोक विलक्षण भौं-चपा नामक आतिशबाजी के प्रज्वलित होते ही यत्र-तत्र स्वर्णिम ज्योति का विस्तार होने लगा जिससे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वृन्दावन में स्वर्ण-वृष्टि हो रही है।।१२।। युगल-विवाह के प्रसङ्ग में वृन्दावन की कुञ्जें मत्त मतङ्ग की भाँति सुसज्जित हैं। पवन-प्रवाह से आन्दोलित लताएँ ऐसी लगती हैं, मानो अश्व-अश्विनीनृत्य कर रही हों।।१३।।

फूले द्रुम फूली लता, फूले जहँ-तहँ फूल।
बहुत रंग वृंदा-विपिन, पहिरैं मनौं दुकूल।।१४।।
उज्ज्वल परम सुरंग अति, नव कपूर की धूरि।
बढ़ी धूँधि कहत न बनै, रह्यौ अकास सब पूरि।।१५।।
बरसा रूप-सुहाग की, बरसत बन चहुँ ओर।
जहाँ-तहाँ आनंद भरि, नित्तत मोरी-मोर।।१६।।
रितुराज पखावज लियैं कर, बीना सरद प्रवीन।
ग्रीषम ताल रसाल धरैं, पावस छाया कीन।।१७।।
कीर कपोती भँवर पिक, करत मधुर सुर गान।
भींजे सब आनंद में, उपजत नव-नव तान।।१८।।
उड़्यौ गुलाल सुरंग बहु, सब बन छयौ सुहाग।
मानौं द्रुम-द्रुम तें भयौ, प्रगट रंग अनुराग।।१९।।

वृन्दावन की सभी द्रुम-लताएँ प्रसन्नता-पूर्वक पुष्पित हैं। यत्र-तत्र सर्वत्र फूल ही फूल हैं, जिसे देखकर लगता है, मानो श्री वृन्दावन विविध रङ्गमय दुकूल धारण किये हो।।१४।। उज्ज्वल नव कपूर की धुन्ध सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो गई है।।१५।। श्रीवन में चारों ओर रूप एवं सुहाग की वर्षा सी होने लगी है। जहाँ-तहाँ मयूर-मयूरी नृत्य करने लगे हैं।।१६।। ऋतुराज वसन्त ने अपने हाथों में पखावज, शरद ऋतु ने वीणा, ग्रीष्म ऋतु ने रसमय ताल-वाद्य धारण करके एवं वर्षा-ऋतु ने छाया का विस्तार करके सेवा का परिचय दिया।।१७।। शुक, कपोत-कपोती, भ्रमर एवं कोयल अपने-अपने स्वरों में गान करने लगे तथा सबने आनन्द-सिक्त होकर नई-नई तानें प्रकट कीं।।११८।। सम्पूर्ण वन में सुरङ्ग गुलाल की घुमड़न ऐसी प्रतीत हुई, मानो प्रत्येक द्रुम से अनुराग का अरुणिम रङ्ग प्रकट हो रहा हो।।१९।।

कोलाहल सब द्विजनि कौ, तहाँ नाहिनैं थोर।
स्रवननि सुनियत नाहिं कछु, ऐसौ ह्वै रह्यौ सोर।।२०।।
चौंर चलत सखियन करनि, धुज पताक बहुरंग।
सोभा कौ सागर बढ़्यौ, मानौं उठत तरंग।।२१।।
फूलि-फूलि फूली फिरैं, देखत जहँ-तहँ फूल।
झलमलात दीपावली, मनिमय जमुना-कूल।।२२।।
कुंज-कुंज उजियार मनौं, कोटिक भान प्रकास।
मंद सुगंध समीर बहै, सब बन भयौ सुवास।।२३।।
बंदी जन सब खग मनौं, कहत हैं बिरद रसाल।
गावत रागिनि-राग मिलि, गुहि रागनि की माल।।२४।।
चतुरई चित्र करत फिरत, भींनी रँग अनुराग।
उज्जलता कौं सँग लिये, बँधी प्यार के ताग।।२५।।

वन के पक्षियों की समवेत् काकली अन्य शब्दों को कर्ण गोचर ही नहीं होने देती।।२०।। सखियों के कर-कमलों में शोभित चँवर एवं बहुरङ्गी ध्वजा-पताकाओं की फहरान ऐसी प्रतीत हुई, मानो उमड़ते हुए शोभा के समुद्र में तरङ्गें उठ रही हों।।२१।। श्रीवन में व्याप्त प्रफुल्लता को देखकर ऐसा लगा, मानो तटवर्त्ती मणिमयी दीपावली झलमलाहट के द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगी।।२२।। श्रीवन की कुञ्ज-कुञ्ज में कोटि-कोटि सूर्यों का प्रकाश प्रकाशित है। शीतल मन्द एवं सुगन्धित पवन से सम्पूर्ण वन सुवासित हो रहा है।।२३।। श्रीवन के पक्षी बंदीजन बने हुए युगल का रसमय विरद गान कर रहे हैं। इसी प्रकार मूर्त्तिमान राग-रागिनी विविध रागों की माला गूँथ कर गान परायण हैं।।२४।। मूर्त्तिमती चित्रकला अनुराग रङ्ग से भींगी हुई एवं प्रेम के सूत्र से बँधी हुई उज्ज्वलता को साथ लिये कुञ्ज-भवनों को चित्रित करती फिरती है।।२५।।

कुंज महल रतननि खच्यौ, कीने चित्र रसाल।
चहूँ ओर रही झलकि कै, झालरि मोतिनु-माल।।२६।।
झूमि रही फूलनि लता, बहु विधि रंग अनेक।
फूले आनँद रंग भरि, निर्त्तत केकी-केक।।२७।।
ललितादिक निज सहचरी, जुरी तहाँ सब आनि।
कोलाहल आनंद कौ, कहाँ लगि सकौं बखानि।।२८।।
बेदी सेज सुदेस रचि, फूलनि आसन बानि।
नव दूलहु दुलहिनि नवल, बैठाए तहँ आनि।।२९।।
सखियन अंचल दुहुँनिं के, लै गँठजोरौ कीन।
मिलवाई ग्रीवनिं भुजनि, छबि सौं भाँवरि दीन।।३०।।

युगल का रत्न खचित कुञ्ज महल रसमय-चित्रों से चित्रित है। महल के चारों ओर मोतियों की झालरें लटक रही हैं।।२६।। रङ्ग-रङ्ग की अनेकों पुष्प-लताएँ पुष्प-भार से लदी हुई झूम रहीं हैं, जिनके नीचे आनन्द रङ्ग से भरे और प्रसन्न मयूर-मयूरी नृत्य कर रहे हैं।।२७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, ऐसे आनन्दमय वातावरण में ललितादिक सहचरियाँ एकत्र हुईं, जिनके आनन्दमय कोलाहल का वर्णन कहाँ तक किया जाय।।२८।। उन्होंने परम सुन्दर शय्या के रूप में विवाह की वेदी रची, उस पर पुष्प-निर्मित सुखद आसन बिछाए और नव वर-वधू को उन आसनों पर लाकर विराजमान् किया।।२९।। रसिक सहचरियों ने युगल के अञ्चलों की गाँठ बाँधकर गँठजोड़े का रस लिया तथा युगल रसिक नव वर-वधू की भुज-ग्रीवा मिलाकर छवि-पूर्वक विवाह की भाँवरें दिलवाईं।।३०।।

सोभा 'ध्रुव' तेहि समैं की, बरनै ऐसौ कौन।
रसन कोटि धरै सरसुती, तऊ है रहै मौन।।३१।।

नव-वधू की रूप शोभा दोहा

झीने अंचल में चपल, कजरारे कल नैंन।
निरखत पिय व्याकुल भये, गह्यौ आइ मन मैंन।।३२।।
अति सलज्ज सुकुँवारि रही, नख-सिख लौं अँग ढाँपि।
छुयौ चहत छ्वै सकत नहिं, उठत नवल कर काँपि।।३३।।
सखियनि के उर फूल भई, दूधा-भाती हेत।
ऐसी बैठी मुरि कुँवरि, अंचल छुवन न देत।।३४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि भाँवरि की तत्कालीन छवि का वर्णन करने में ऐसा कौन कवि है जो समर्थ हो सकेगा ? और तो और साक्षात् सरस्वती भी कोटि-कोटि जिह्वाएँ प्राप्त करके अन्ततः मूक ही बनी रहेगी अर्थात् वह भी इस सुख का वर्णन करने में अपने आपको असमर्थ ही अनुभव करेगी।।३१।।

झीने वस्त्राञ्चल के अवगुण्ठन में झलकते हुए नव-वधू के अञ्जन-रञ्जित चपल नयनों की छबि का अवलोकन करते ही रसिक प्रियतम व्याकुल हो गए। उनके रसिक मन को मानो प्रेम-स्मर ने अधिगृहीत कर लिया हो।।३२।। प्रियतम के भाव को समझ कर अतिशय लज्जावती सुकुमारी ने अपने अङ्गों को दुकूल से नख-शिख पर्यन्त ढाँप लिया। प्रियतम उनके अङ्गों का स्पर्श तो करना चाहते हैं, किन्तु कर नहीं पाते। उनके कर-कमल काँप उठते हैं।।३३।। सखियों के मन में जब 'दूधाभाती' कराने की उत्कण्ठा हुई, तो उस समय नवल वधू सिमिट कर ऐसी बैठ गयी कि अपना अञ्चल भी स्पर्श नहीं करने देती।।३४।।

सखियनि कीने जतन बहु, जुरवाये चख-चारि।
रहि गये चितवत चित्र से, मोहन वदन निहारि।।३५।।
निरखत छवि कौ ससि-वदन, बाढ़ी फूल अपार।
सुंदर मुख दिखरावनी, पहिरायौ हित-हार।।३६।।
घूँघट पट के छुवत ही, मुरि बैठि सुकुँवारि।
रसिक लाल पाँइनि परत, सकत न धीरज धारि।।३७।।
समुझि दसा पिय की तबहिं, चितई कछु मुसिकाइ।
फूल्यौ पिय कौ हिय कमल, सो सुख कह्यौ न जाइ।।३८।।
नेकहिं घूँघट के खुलत, भयौ प्रकासित चंद।
भई किसोर चकोर गति, परे प्रेम के फंद।।३९।।

सखियों ने बड़े प्रयास के पश्चात् युगल के नेत्र परस्पर में मिलवाये। नवल-वधू के महामोहन श्रीमुख का दर्शन करते ही प्रियतम चित्र की भाँति स्तम्भित से रह गये।।३५।। चन्द्रवदनी प्रिया की मुखच्छवि का दर्शन करके प्रियतम के मन में अपार प्रसन्नता हुई, तब उन्होंने 'मुख दिखरावनी' के सुन्दर नेग के बदले सखियों को प्रेम के हार वितरित किये।।३६।। प्रियतम के द्वारा अपने घूँघट-पट का स्पर्श होते ही सलज्ज सुकुमारी प्रिया लज्जा से भर कर नमित ग्रीवा हुई बैठ गयीं। तब तो प्रेम परवश अधीर प्रियतम उनके श्रीचरणों में निपतित होने लगे।।३७।। उस समय प्रियतम की दशा का अनुभव करके दयामयी नवल किशोरी प्रिया ने मन्द-मधुर मुसकान के साथ अपनी लज्जा-भरी चितवन से प्रियतम की ओर निहारा, जिससे उनका हृदय-कमल प्रफुल्लित हो उठा और वर्णनातीत सुख में मग्न हो गया।।३८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नव-वधू के तनिक ही घूँघट के खुलते ही ऐसा प्रतीत हुआ, मानो चन्द्रमा प्रकाशित हो गया हो, जिससे प्रियतम की नेत्र-गति चकोर की भाँति हो गयी और वे प्रेम-पाश में बँध गये।।३९।।

सखियों का सेवा-सुख दोहा

रतननि के भाजन विविध, धरे सेज ढिंग आँनि।
मधु मेवा फल अमृतमय, धरि-धरि राखे बाँनि।।४०।।
सौंधो पाँन सुगंध सब, रचि-रचि धरे बनाइ।
सखियनि कौ सुख कहा कहौं, तेहि रस रहीं समाइ।।४१।।
मंगल रैंन सुहाग कौ, गावत सखी प्रवीन।
प्रथम बिलास अनंग रस, बाढ्यौ रंग नवीन।।४२।।

युगलका अनङ्ग विलास दोहा

लई लाड़िली अंक भरि, कहा कहौं आनंद।
मानौं छबि की चंद्रिका, लीनी गहि छबि-चंद।।४३।।

तत्पश्चात् सेवा-सुख की एकमात्र अधिकारिणी सहचरियों ने विविध रत्न जटित स्वर्ण-पात्रों में मधुर-मधुर मेवा, रसमय फल एवं अमृतमय सामग्री सजा-सजा कर युगल की शय्या के समीप उपस्थित कीं, साथ ही सुगन्धित पेय-द्रव निर्मित कर-करके युगल की सेवा में प्रस्तुत किये। सेवा के रस में भीनी सखियों के सेवा-सुख की रीति-प्रीति का वर्णन करने में कौन समर्थ है ?।।४०-४१।। अस्तु, आज की मङ्गलमयी रात्रि युगल की प्रथम सुहाग- रात्रि है, जिसका यशोगान रस-प्रवीणा सखियाँ करने लगीं। अनङ्ग-रस के इस प्रथम विलास में युगल को कुछ नये ही प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुई।।४२।।

जब प्रियतम ने लाड़िली प्रिया को अपने क्रोड़ में स्थापित किया, उस समय की छबि एवं आनन्द का वर्णन असम्भव है, जिसका दर्शन करके ऐसा प्रतीत हुआ, मानो चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना को अङ्क में समेट लिया हो।।४३।।

बढ़ि गयौ ऐसौ प्रेम-रस, बिदा लाज की कीन।
चितवनि मुसिकनि सहज की, बतियनि माँहि प्रवीन।।४४।।
कोक-विलास कलानि में, दोऊ प्रिय समतूल।
कहा कहौं तेहि समय की, बाढ़ी जो उर फूल।।४५।।
बर बिहार रस रंग में, नागरि परम उदार।
सींचत पिय-हिय प्यार सौं लालच-लाल निहार।।४६।।
नवल रँगीली रँग भरी, रँग भर्‌यौ मोहन लाल।
बढ़ी दुहुँनि के हीय ते, केलि की बेलि रसाल।।४७।।
बतबतात मुसिकात दोउ, अति छबि सौं लपटात।
गौर स्याम तन रहे मिलि, अंग-अंग झलकात।।४८।।

वर-वधू के इस मिलन में कुछ ऐसे विलक्षण प्रेम का प्रवाह बढ़ा, जिसने लज्जा को विदा कर दिया और तब परम प्रवीण युगल रसिक सहज चितवन, मुसकान एवं बतरस में लीन हो गये।।४४।। युगल प्रियतम शृङ्गार-केलि की कलाओं में सहज समतुल्य-निपुण हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उस समय उनके हृदय में मिलन-रस की उत्फुल्लता का जो वेग वृद्धि को प्राप्त हुआ, अवर्णनीय है।।४५।। इस श्रेष्ठतम रङ्ग-विहार की रस विधाओं में नागरी प्रिया अतिशय उदार हैं। वे रस-लालची रसिक लाल के लालच का अनुभव करके उनके हृदय को निरन्तर प्यार के जल से सींचती रहती हैं।।४६।। नवल-किशोरी प्रिया सदैव रङ्ग-पूरित रहती हैं, इसी प्रकार रसिक मोहन लाल भी सदैव आनन्द रङ्ग से भरे रहते हैं। इसलिए दोनों के हृदयों में रसमयी केलि की लता निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती रहती है।।४७।। जिस समय रँगीले युगल परस्पर रसबतियाँ करते हुए एवं मुस्कुराते हुए अत्यन्त सुहावनी छबि के साथ उल्लसित हुए आलिङ्गित होते हैं, उस समय उनके मिलित गौर-श्याम तनु की कान्ति एक-दूसरे के अङ्गों में प्रतिबिम्बित हो उठती है।।४८।।

दसनांचल अंजन लग्यौ, पलक पीक रस सार।
दयौ बदलि अनुराग के, अधरनि कौ सिंगार।।४९।।
बारनि हारनि की अरुझ, तन मन की अरुझानि।
मानौं हाँसि सिंगार दोउ, मिली आपु में आनि।।५०।।
निसि बीती सब रंग में, उठे भोर सुकुँवार।
सखी सबै अति सोहनी, राजति संग अपार।।५१।।
सुरँग सुहानी तिलक पर, सुरँग चूनरी पाग।
बाँहाँ-जोरी फिरत दोउ, भीने रस-अनुराग।।५२।।
लै-लै फूल सुरंग पिय, प्रियहि बनावत जात।
अंगनि उरजनि छुवनि कौं, अति आतुर अकुलात।।५३।।

रस-विहार की तल्लीनता से किसी के दसनाञ्चल (अधर) में अञ्जन की लीक लग जाती है तो किसी के पलक-पट पर रस-सार ताम्बूल-पीक अनुरञ्जित हो उठती है। इस छबि के दर्शन से ऐसा प्रतीत होता है कि अधर एवं पलकों ने परस्पर अपने-अपने शृङ्गार एवं अनुराग को बदल लिया हो।।४९।। केश-राशि एवं हारावली की उलझन को देखकर ऐसा लगता है, मानो आज हास्य एवं शृङ्गार मूर्त्तिमान् हुए आपस में एकमेक हो रहे हों।।५०।। अस्तु, सम्पूर्ण रात्रि आनन्द रङ्ग-विहार में व्यतीत हो गयी। प्रातः होने से सुकुमार युगल शय्या त्याग पूर्वक उठ बैठे। उनकी सहज सलोनी सखियों के अपार यूथ एकत्र होकर वहाँ की शोभा बढ़ाने लगे।।५१।। युगल का शृङ्गार आज कुछ विचित्र ही है, प्रियतम के ललाट-पटल पर सुहावना अरुण-वर्ण तरल-तिलक एवं मस्तक पर सुरङ्ग (लाल) चूनरी की पाग शोभित है। अनुराग रस से भीने रसिक युगल गलबहियाँ दिये यमुना तट पर विचरण कर रहे हैं।।५२।। विचरण काल में श्री वन के विकसित अरुण पुष्पों का चयन करके प्रियतम, प्राण-प्रिया का साज-शृङ्गार सजाते सँवारते चलते हैं, साथ ही किशोरी के सुखद श्रीअङ्गों एवं कञ्चन-कलश का स्पर्श प्राप्त करके प्रेमातुर एवं आकुल हो उठते हैं।।५३।।

ध्रुवदास जी का निजानुभव दोहा

देखि विपिन जमुना पुलिन, ढरे कुटी की ओर।
सोभा आवनि-चलनि फिरि, जो 'ध्रुव' कहै सो थोर।।५४।।

उपसंहार दोहा

दोहा कहे पच्चास पर, चारि विचार निहारि।
(श्री) राधावल्लभ लाल जस, पल-पल 'ध्रुव' उर धारि।।५५।।
वन-विहार लीला कही, जो सुनि है करि प्रीति।
सहजहि ताके उपजिहै, (श्री) वृंदावन रस-रीति।।५६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, नव वर- वधू ललित लाड़िली लाल श्री वृन्दावन की यमुना तटवर्त्ती वासन्तिक छटा का अवलोकन करके, मुझ "ध्रुवदास' की पर्ण-कुटी की ओर अग्रसर हुए। उनके आगमन की छवि-छटा एवं मेरी सेवाओं को स्वीकार कर पुनः यमुना पुलिन की ओर पदार्पण करने की छवि-छटा का जो भी कुछ वर्णन करूँ, वह थोड़ा ही होगा क्योंकि वह छवि-छटा अभूतपूर्व थी, अतएव अवर्णनीय है।।५४।।

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि 'श्री-वन विहार' नामक इस ग्रन्थ के वर्णन में मैंने विचार एवं अनुभवपूर्ण चौवन दोहे कहे हैं। इसमें वर्णित श्री राधावल्लभ लाल का रसमय यश पल-पल प्रति हृदय में धारण करने के योग्य है।।५५।। मेरे द्वारा कही गयी 'वन-विहार लीला' का जो व्यक्ति प्रीतिपूर्वक श्रवण करेगा, उसके हृदय में सहज (अनायास) ही श्री वृन्दावन की युगल-केलि सम्बन्धी रस-रीति का उद्भव होगा।।५६।।

२८
रङ्ग-विहार

ऐकान्तिक आनन्द-विहार — दोहा

राजत छबि सौं रँगमगे, रँगमग्यौ सहज सिंगार।
बैठे रँगमगी सेज पर, रँगमग्यौ रूप अपार।।१।।
सखी एक दई आरसी, ललित लाड़िली पाँनि।
तेहि छिन पिय कौ मन पर्‌यौ, द्वै छबि के बिच आनि।।२।।
बढ़ी अधिक सोभा झलक, कुंज भवन रह्यौ छाइ।
मानौं कोटिक रूप के, चंद उदै भये आइ।।३।।
निरखि माधुरी सहज की, नैंन न मानत हार।
बढ़ी तहाँ रुचि की नदी, धीरज कूल बिदार।।४।।

आनन्द के उल्लास में निमग्न हुए युगल किशोर रङ्ग-रञ्जित शृङ्गार किये हुए, रङ्ग-रञ्जित शय्या पर विराजमान होकर अपूर्व छवि को प्राप्त हैं। उनका अपार रूप भी आनन्द रङ्ग से रञ्जित है।।१।। उस समय एक सन्निकटवर्ती सखी ने ललित लाड़िली जू के कर-कमलों में स्वच्छ स्फटिक मणि का दर्पण दिया और जब स्वामिनी ने दर्पण को सम्मुख किया तो उसमें उनका स्वच्छ प्रतिबिम्ब झलक उठा। उस समय बिम्ब और प्रतिबिम्ब का दर्शन करके प्रियतम का मन एक ही भाँति की युगल छवि के दर्शन से सम्भ्रम में पड़ गया।।२।। उस प्रतिबिम्ब-छवि की झलक से समस्त कुञ्ज-भवन परिव्याप्त हो गया, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो रूप के कोटि-कोटि चन्द्रमा एक साथ एक ही स्थान पर उदित हो गये हों।।३।। फिर भी प्रियतम के रूप-लालची नयन उस सहज रूप-माधुरी का दर्शन करके परितृप्ति का अनुभव नहीं कर पाते हैं। कारण कि प्रियतम की रुचि रूपी सरिता धैर्य रूपी तटों को विदीर्ण करके उफन रही है।।४।।

पिय प्रवीन रस प्रेम में, चितवत भौंहनि भाइ।
जिहि छिन जैसी होति रुचि, जानत त्यौंहि लड़ाइ।।५।।
छिन-छिन औरै-और छबि, पल-पल में गति और।
नागर सागर रूप के, परम रसिक सिरमौर।।६।।
कबहुँ लाड़िली होति पिय, लाल प्रिया ह्वै जात।
नहिं जानत यह प्रेम रस, निसि-दिन कितहि विहात।।७।।
सुरंग चुनरी एक में, रँग-भींने सुकुँवार।
लपटे ऐसी भाँति सौं, नहिं समात बिच हार।।८।।
इंद्रनील मनि पिय प्रिया, कोमल कुंदन-बेलि।
लसति छबीली भाँति सौं, सुरत समर रस-केलि।।९।।

प्रेमरस के विलास एवं आस्वादन में प्रियतम परम प्रवीण हैं, अतएव वे प्रिया की भृकुटि-भङ्गिमाओं का दर्शन करके प्रत्येक क्षण उनकी रुचि का रुझान समझते हुए उनके लाड़-प्यार की व्यवस्थाएँ बनाते रहते हैं।।५।। और इधर क्षण-क्षण में प्रिया की रूप-माधुरी नित्य नूतन होती चलती है। प्रतिपल उनकी प्रेम-गति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। रसिक युगल-किशोर परम रसिक-सिरमौर एवं रूप-समुद्र हैं तथा परम रसास्वादी भी हैं।।६।। इनकी रसास्वादन-रीति बड़ी विचित्र है। कभी लाड़िली प्रिया, प्रियतम के रूप में तल्लीन होकर प्रियतम बन जाती हैं और कभी रूप-तन्मय हुए प्रियतम, प्रिया बन जाते हैं। प्रेम-रस के विलास में परिवर्तित होते रहने वाले रसिक युगल यह भी नहीं जानते हैं कि दिन-रात का आवागमनमय यह काल-व्यवहार कब और कैसे होता है।।७।। फिर कभी रङ्ग-भीने युगल-किशोर एक ही सुरङ्ग चूनरी में लिपटे हुए ऐसे आलिङ्गित हो जाते हैं कि उनके बीच में एक हार का भी अवकाश नहीं रह जाता।।८।। आज प्रेम-विलास के समराङ्गण में रस-केलि अवसर पर श्रीलाल जी की अङ्ग-कान्ति इन्द्रनीलमणि की भाँति एवं उनसे आलिङ्गित प्रिया सुकोमल स्वर्णलता की भाँति छबीली छबि से शोभा को प्राप्त हैं।।९।।

लाल मगन सुख सेज पर, लटकत रही न सँभारि।
रति नागरि अधरनि सुधा, प्यावति वदन निहारि।।१०।।
नैंन कटोरी रूप की, भरी प्रेम सद मोद।
अद्भुत रुचि पीवत बढ़ी, आनँद रँग दुहुँ कोद।।११।।
अंगनि की छबि माधुरी, निरखतहूँ न अघाहिं।
नैंन-भँवर भूले फिरैं, रूप-कमल-बन माहिं।।१२।।
ऐसौ छिन ह्वै है कबहिं, कुँवरि अंक भरि लेहि।
दसन खंड अति हेत हँसि, पिय मुख बीरी देहि।।१३।।
यह सोचत रहैं चित्त में, भूषन बसन बनाइ।
पहिराऊँ अपने करनि, रहौं रीझि सुख पाइ।।१४।।

रति-केलि अवसर पर प्रेम मग्न हुए प्रियतम अपना देहानुसन्धान न करने के कारण सुख-शय्या पर विथकित हो लटकने लगे हैं, तभी रति-कुशला प्रिया ने उन्हें सँभाल कर मुखावलोकन करते हुए अधर-सुधा का पान कराया।।१०।। युगल की रूप-माधुरी सद्य प्रेम के मोद की भरी हुई रूप-कटोरी है, जिसका पान करने से दोनों ओर आनन्द रङ्ग की अभिरुचि बढ़ने लगती है।।११।। युगल किशोर परस्पर एक-दूसरे की छवि-माधुरी का दर्शन करते हुए भी अतृप्त ही बने रहते हैं, अघाते नहीं। उन दोनों के रूप के कमल बन में, दोनों के ही नेत्र-भ्रमर आत्म-विस्मृत हुए भटकते रहते हैं।।१२।। प्रियतम मनोरथ करते हैं कि क्या कभी ऐसा भी क्षण आवेगा, जब कुँवरि-किशोरी मुझे अपने अङ्क में समेट लेंगी और मुस्कुराते हुए अपने श्रीमुख की ताम्बूल-वीटिका ललित दशनावलि से खण्डित करके मेरे मुख में अर्पित करेंगी ?।।१३।। प्रियतम अपने चित्त में यह भी मनोरथ करते रहते हैं कि क्या कभी मैं प्रिया के योग्य वस्त्राभूषणों की संरचना करके उन्हें अपने हाथों से पहनाकर मुखावलोकन करते हुए उनकी रीझ का सुख प्राप्त करूँगा ?।।१४।।

जद्‌पि पिय देखत रहै, मन की सोच न जाइ।
कैसैहूँ इक बार ये, देखैं नैंन अघाइ।।१५।।
अति आसक्त सनेह बस, मोहन रूप-निधान।
तजि स्यानप राख्यौ न कछु, अपने तन-मन-प्राँन।।१६।।
सौरभता सुकुँवारि की, जब पावत सुकुँवार।
फैलि परत जनु प्रेम रस, रहत न देह सँभार।।१७।।
अतिहि विवस ह्वै जात पिय, ऐसी भाँति अनूप।
सुनि सखि तब ह्वै है कहा, जबहि देखिहै रूप।।१८।।
अधरनि अंगनि परसिवौ, तिनकौ यहै उपाइ।
चितवनि अति अनुराग की, लेत है पियहि जगाइ।।१९।।

यद्यपि प्रिया निरन्तर प्राण-प्रियतम की ओर ही निहारती रहती हैं, तथापि प्रियतम की मनोभिलाषा पूर्ण नहीं होती, वे चाहते हैं कि एक बार ही सही, कैसे भी श्री लाड़िली जू मेरी ओर परितृप्त नेत्रों से निहारें।।१५।। रूप के भण्डार महा-मोहन प्रियतम प्रेम के वशीभूत हुए श्रीलाड़िली के प्रति अत्यन्त आसक्त बने रहते हैं। उन्होंने प्रिया के प्रति मन-प्राण तो समर्पित कर ही रखे हैं, साथ ही अपना समग्र चातुर्य भी उनके लिए त्याग दिया है, तात्पर्य यह है कि कुछ भी शेष नहीं रखा है।।१६।। जब कभी कोमलाङ्गी प्रिया का अङ्ग-सौरभ सुकुमार प्रियतम को प्राप्त होता है, तब उनके हृदय में प्रेमरस का विलक्षण रूप से विस्तार हो जाने के कारण उन्हें अपने देह की सँभाल -सुधि नहीं रह जाती।।१७।। इस प्रेम विवश-स्थिति का वर्णन करती हुई एक सखी अपनी दूसरी सहेली से कहती है कि—हे सखि! प्रिया की प्रत्येक अनुपम बात के श्रवण से ही प्रियतम अत्यन्त विवश हो जाते हैं, किन्तु जब वे प्रिया के अनुपम रूप का दर्शन करेंगे तब क्या होगा?।।१८।। सब प्रकार से विवश एवं बेसुध हुए प्रियतम को जागृत करने का एक ही उपाय है कि उन्हें प्रिया के अधर आदि अङ्गों का रसमय स्पर्श प्राप्त हो अथवा प्रिया की अति अनुराग- पूर्ण चितवन देखने को मिले।।१९।।

छिन छिन माँहिं अचेत है, पल-पल माँहिं सचेत।
नहिं जानत या रंग में, गये कलप जुग केत।।२०।।

कुण्डलिया

एक लाड़िली लाल में, अद्‌भुत सरस सनेह।
रुचि तरंग पल पल बढ़ै, बरषत रस कौ मेह।।
बरषत रस कौ मेह, बढ़ी सुख-सरिता भारी।
मुसिकनि मनु छबि कमल, अंग फूली फुलवारी।।
हाव भाव अंकुर नये, उपजत रंग अनेक।
हित ध्रुव हितसौं बात करैं, तन-मन भये दोउ एक।।२१।।

श्री लाड़िली जू की छबि दोहा

अलक लड़ी सुख लाड़िली, अद्भुत रूप-निधान।
मोहि रहे मोहन निरखि, भूले सबै सयान।।२२।।

रसिक प्रियतम प्रेम रङ्ग में निमग्न रहने के कारण क्षण-क्षण में अचेत एवं सचेत होते रहते हैं। वे यह नहीं जान पाते कि इस आनन्द-रङ्ग में कितने युग या कितने कल्प व्यतीत हो गये।।२०।। अस्तु, लाड़िली लाल में अद्भुत् एवं सरस प्रेमस्थिति सदा सर्वदा एक रस विद्यमान रहती है, जहाँ प्रतिपल रुचि की तरङ्गें बढ़ती रहती हैं एवं रस के मेघ बरसते रहते हैं। इन बरसते हुए रस रूपी मेघों से सुख-रूपी सरिता उफनने लगती है, फलतः मुसकान रूपी छवि का कमल एवं अङ्ग-प्रत्यङ्ग रूपी पुष्प-वाटिका कुसुमित हो उठती है। हाव-भाव के नवीन अङ्कुर, जो अनेक आनन्द रङ्गों के उत्पादक हैं, अङ्कुरित होने लगते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सरस सनेहमय लाड़िली-लाल दोनों ही तन-मन के द्वैत को विस्मृत करके एक हुए प्रीतिपूर्ण वार्त्ता में संलग्न रह जाते हैं।।२१।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सुख स्वरूपा लाड़िली प्रिया अपने प्रियतम एवं सखियों की विलक्षण लाड़-भाजन हैं। वे अनिर्वचनीय रूप की निधि हैं,

तिनके रूपहि कहन कौं, कितिक बुद्धि है मोर।
रस गुन सींवा रूप की, बँधे नैंन की कोर।।२३।।
अति सुरंग मोतिनु सहित, बनी माँग रस-दैंन।
मनौ हास अनुराग मिलि, राजत रसपति ऐंन।।२४।।
फबि रही गौर लिलाट पर, बैंदी की झलकानि।
मनि अनुराग सुहाग की, मानौं प्रगटी आनि।।२५।।
उज्ज्वल स्याम सुरंग दृग, सने सनेह सलौंन।
बार-बार परसत रहैं, अंचल स्रवननि-कौंन।।२६।।
कहि न सकत नासा बनिक, उन्नत सुमिलि अनूप।
चितवत मोती की छबिहि, भूल्यौ रूपहि रूप।।२७।।

विश्व-विमोहन मोहन, श्री लाल जी अपने सम्पूर्ण चातुर्य को विस्मृत करके जिनका अवलोकन करते ही मोहित हो रहते हैं।।२२।।उन रूप-निधान प्रिया के अनिर्वचनीय रूप का वर्णन करने के लिए मेरे पास बुद्धि है ही कहाँ ? जबकि रस, गुण एवं रूप की परमावधि श्री लाल जी स्वयं उन (प्रिया) के नयनों की कोर से बँध गये हैं।।२३।। प्रिया के शिरोभाग पर सिन्दूर रञ्जित रसदायक सीमन्त-रेखा मोतियों की लड़ी के साथ ऐसे शोभा दे रही है, जैसे हास्य एवं अनुराग दोनों एक साथ रसपति शृङ्गार रस के भवन में विराजमान हों।।२४।। नवल-किशोरी के देदीप्यमान् गौर ललाट-पटल पर राजित अरुण बिन्दी की छबि ऐसी शोभित है, मानो अनुराग एवं सौभाग्य की युगल मणि एकत्र भाव से प्रगट हो रही हों।।२५।। नवल-किशोरी के श्वेत, श्याम एवं अरुणिम नयन, जो सलोने और सहज प्रेमा-सिक्त हैं, अपनी चञ्चलता से श्रवणों के समीप जाकर कोनों से बारम्बार उनका स्पर्श करते हैं।।२६।। श्री प्रिया की सुभग नासिका का सुष्ठु आकार उन्नत, अनुपम एवं सुढार है, जिसके नीचे झूलते हुए नासामौक्तिक की छवि का अवलोकन करके मूर्त्तिमान् रूप तत्त्व को अपना स्वरूप विस्मृत हो जाता है।।२७।।

मधुमय अधर सुरंग मृदु, छबि सींवा सुकुँवारि।
दसननि पंकति जोति पर, दामिनि अगनित वारि।।२८।।
उपमा सुंदर चिबुक की, सकत न उर में आनि।
सोभा निधि अद्भुत मनौं, हरि-मन हीरा-खानि।।२९।।
मुसिकन आनँद फूल मनौं, चितवन सुख की सींव।
द्वै लर मोतिनु पोत छबि, झलक रही मृदु ग्रींव।।३०।।
उरजनि की छबि कहा कहौं, तैसी झलकनि हीय।
भूलत नहिं मन के करनि, धरे रहत हैं पीय।।३१।।
तन सौं सारी मिलि रही, सौंधे सनी सुरंग।
मानौं सोभा छाइ रही, झलमलात अँग-अंग।।३२।।

सुकुमारी छवि-सीमा किशोरी के मधुमय सुरङ्ग अधर सुकोमल एवं ताम्बूल रङ्ग रञ्जित हैं। उनकी सुभग दन्तपङ्क्ति की ज्योति पर असंख्य ज्योतिर्मयी दामिनी न्यौछावर हैं।।२८।। नवल किशोरी के सुन्दर चिबुक की उपमा मेरे हृदय में आ सकना असम्भव है। उन का शोभा-निधि चिबुक अद्भुत है। वह ऐसा प्रतीत होता है, मानो श्री लाल जी के मन के लिए हीरक-मणि की खान है। मधुर मुस्कान आनन्द का विकसित पुष्प है एवं उनकी रस-भरी चितवन सुख की परमावधि है। उनकी मृदुल सुढार ग्रीवा पर दुलरी मोतियों की पोतच्छवि अद्भुत प्रकार से झलक रही है।।२९-३०।। प्रिया की युगल वक्षोजच्छवि अवर्णनीय है, ऐसी ही अवर्णनीय उनकी हृदय देश की विस्तृत छवि छटा है, जो प्रियतम को कभी विस्मृत नहीं होती, जिन पर वे अपने मन के करारविन्द रखे ही रहते हैं।।३१।। नवल किशोरी के सुभग तनु पर सुगन्ध-सार से सनी सुरञ्जित अरुण वर्ण की साड़ी बहुत भली फबी है, मानो उनके झलमलाते हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर मूर्त्तिमान् शोभा नख-शिख लिपट रही है।।३२।।

रस भींनी झींनी बनी, अँगिया गोरे गात।
अति सुदेस गाढ़ी कसनि, लसनि ललित उरजात।।३३।।
प्रीतम कौ चित मीन मनौं, परयौ नाभि-ह्रद माँहि।
अति स्वादी सुख स्वाद रस, कैसैहुँ निकसत नाहिं।।३४।।
नख-सिख लौं दोउ अरुझि रहे, नैंकहुँ सुरझत नाहिं।
ज्यौं-ज्यौं रुचि बाढ़ै अधिक, त्यौं-त्यौं अति उरझाहिं।।३५।।
जेहरि रीझे नूपुरनि, निमिष न छाँड़त पाइ।
पाइल सुख की रासि तहँ, ते हरि रहे लुभाइ।।३६।।
चरननि हित जावक लियैं, ललन रहे अति सोहि।
चित्र करत चित चित्र भयौ, छबि-चरित्र रहे जोहि।।३७।।

गौर-वर्ण वक्षस्थल पर झीनी एवं रसभीनी कञ्चुकी शोभित है, जिसकी गाढ़ी और सुहावनी कसावट में ललित उरोजों की उन्नत छबि उल्लसित है।।३३।।प्रिया के नाभि ह्रद (सरोवर) में प्रियतम का मीन रूपी मन जा गिरा है। सुख-स्वरूप आस्वादनीय रूप रस का अति आस्वादी उनका मन अब किसी भी प्रकार वहाँ से निकलना ही नहीं चाहता।।३४।। इस प्रकार रसास्वादी युगल नख-शिख पर्यन्त रूप -रस में उलझे रहते हैं, तनिक भी सुलझ नहीं पाते। उनकी रस-रुचि जैसे-जैसे अधिक बढ़ती है, वैसे ही वैसे वे अत्यधिक रूप से उलझे ही जाते हैं।।३५।। प्रियतम के नेत्र प्रिया-चरणों में धारण किये हुए जेहरि और नूपुरों पर ऐसे रीझे हैं कि वे एक निमिष-मात्र के लिए भी उनका दर्शन नहीं छोड़ना चाहते एवं वहीं समीप ही प्रिया-चरणों में जो सुखपुञ्ज पायल धारण है, उन पर भ्रमररूपी लोभी हरि (प्रियतम) लुभाये रहते हैं।।३६।। प्रिया के श्रीचरणों में जावक रञ्जित करने के लिए प्रियतम जावक-पात्र लिए हुए उत्कण्ठित हैं। श्रीचरणों में चित्र रचना करते हुए उनका चित्त चित्रवत् जाड्य भाव को प्राप्त हो जाता है और वे प्रिया-चरणों के छवि-चरित्र (सौन्दर्य-विस्तार) का अवलोकन करते ठिठके से रह जाते हैं।।३७।।

चाहि रहे छ्वावत चखनि, बाढ्यौ प्रेम कौ प्यार।
रुचि प्रवाह में परयौ मन, चुंबत बारंबार।।३८।।
रस भरी चितवनि नेह की, रँग भीनी मुसिकानि।
जीवन कौ सुख सहज फल, यहै लेत पिय मानि।।३९।।

सूक्ष्म-विरह-वर्णन दोहा

नैंकु कुँवरि मुरि सखी सौं, बात कही लगि कान।
पिय की गति औरे भई, कोटिक विरह समान।।४०।।
पुनि-पुनि प्यारी प्यार सौं, रँवकि लिये उर लाइ।
देखत मुख हिय दुख भयौ, नैंननिं जल भरे आइ।।४१।।

कभी श्रीचरणों को देखते हैं, तो कभी अपने नेत्रों से उन चरणों का कोमल स्पर्श कराते हैं। इस प्रकार उनके मन में प्रेमजन्य लाड़-प्यार की भावना बढ़ती चलती है एवं उनका मन रुचि के प्रबल प्रवाह में प्रवाहित होने लगता है। वे बारम्बार प्रिया-चरणों का चुम्बन करने लगते हैं।।३८।। प्रियतम की यह मान्यता है कि नवल-किशोरी प्रिया की रस-भरी प्रेमपूर्ण चितवन, तथा प्रेम रङ्ग-रञ्जित मुस्कान ही मेरे जीवन का सहज सुखमय फल है।।३९।।

यदि कदाचित् नवल किशोरी मुड़कर अपनी प्रिय सखी के कान में लगकर कुछ बातें करने लग जाती हैं, तो कोटि-कोटि विरह-व्याप्ति जैसी अनुभूति के साथ प्रियतम की गति कुछ से कुछ हो जाती है।।४०।।तभी प्राण-प्रिया अत्यन्त प्यार पूर्वक लपक कर प्रियतम को अपने हृदय से लगा लेती हैं और बारम्बार उन्हें आलिङ्गन दान करती हैं। प्रियतम के विरह-व्यथित मुख का अवलोकन करके करुणामयी किशोरी का हृदय दुःख से भर जाता है एवं नेत्र अश्रु-पूरित हो जाते हैं।।४१।।

श्री प्रिया का प्रेम-चित्र दोहा

गहि कपोल सुंदर करनि, नैंननिं नैंन मिलाइ।
अधरनि रस प्यावति पियहि, लाज नेम बिसराइ।।४२।।
छुटी मूरछा चेत भयौ, चितवत मुख की ओर।
रटत पपीहा तृषित मनौं, व्याकुल तृषित चकोर।।४३।।
चरन कमल कौ निज महल, तहाँ बसत मन प्रान।
इतनौ नातौ मानि कै, देहु अधर रस पान।।४४।।
हारी प्यारी देत रस, पिय पीवत न अघात।
देखि लाड़िली लाल रुचि, रीझि-रीझि मुसिकात।।४५।।

करुणामयी किशोरी अपने सुन्दर सुकोमल कर-कमलों पर प्रियतम के ललित कपोलों को धारण करके, उनके नेत्रों से अपने नेत्र मिला कर तथा लज्जा रूपी नेम का निवारण करके प्रियतम को अधरामृत रस का पान कराने लगती हैं।।४२।। मूर्च्छा भङ्ग होकर सचेत हुए प्रियतम प्रिया-मुख की ओर अपलक नेत्रों से निहारते रह जाते हैं। उनकी वाणी तृषित चकोर की भाँति "प्रिया-प्रिया" रटने लगती है एवं उनके नेत्र प्यासे चकोर पक्षी की भाँति व्याकुल भाव से प्रिया मुखचन्द्र को निरखते रह जाते हैं।।४३।। तत्पश्चात् वे प्रलापपूर्ण निवेदन करने लगते हैं—हे प्रिये! आपके श्री चरण कमल मेरे मन एवं प्राणों के निवास-स्थल-निज महल हैं। ऐसा नाता मान कर मेरी देह-रक्षा हेतु अपना अधररस दान कीजिये।।४४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम के प्रेम-दैन्य के समक्ष करुणामयी प्रिया पराजित हो जाती हैं और तब अपना अधरामृत रस-दान करने लगती हैं; किन्तु प्रेम प्यासे प्रियतम रस-पान करते हुए भी तृप्त नहीं होते। लालची लाल की रसरुचि का अवलोकन करके श्री लाड़िली उन पर बारम्बार रीझ कर मुस्कुराने लगती हैं।।४५।।

करुणा निधि मृदु चित्त अति, उरजनि सौं रही लाइ।
लज्जित ह्वै रहे विवस तहाँ, मदन-केलि सिर नाइ।।४६।।

सोरठा

पिय सौं कहै जु बात, अलबेली अति फूल सौं।
हँसि मृदु उर लपटाति, पिय के जीवन यहै सुख।।४७।।

युगल प्रेम

दोहा

प्रेम रासि दोउ रसिक वर, एक वैस रस एक।
निमिष न छूटत अंग-अँग, यहै दुहुँनि की टेक।।४८।।
अद्भुत गति सखि प्रीति की, कैसेहुँ कहत बनैं न।
थोरेहुँ अंतर निमिष कौ, सहि न सकत पिय-नैंन।।४९।।

अतिशय मृदुल चित्त करुणा-राशि किशोरी प्रियतम को उरोजों से आलिङ्गित कर लेती हैं। इस प्रेममयी छवि का अवलोकन करके कोटि-कोटि मदन लज्जित ही नहीं, अपितु नतमस्तक हुए रहते हैं।।४६।। जब अलबेली प्रिया अतिशय उत्फुल्लता पूर्वक प्रियतम से मधुर-मधुर वार्त्ता करती हुई एवं मृदु-मृदु मुस्कान भरती हुई उनके हृदय से लिपट जाती हैं, तब प्रियतम इस स्थिति को अपने जीवन का परम-सुख अनुभव करके प्रेममग्न हो जाते हैं।।४७।।

युगल रसिक वर प्रेम की राशि हैं, उनकी आयु एवं तज्जन्य रसानुभूति एक हैं। दोनों का एक ही व्रत है कि वे निमिषकाल के लिए भी अङ्ग-प्रत्यङ्ग के आलिङ्गन से छूटना नहीं चाहते।।४८।।हे सखि! प्रीति की गति बड़ी अद्भुत है, जो किसी भी प्रकार से कहने में नहीं आती। देखिए न, प्रियतम के रूपरागी नयन श्रीप्रिया मुख-दर्शन का निमेष-मात्र अन्तराय भी सहन नहीं कर पाते।।४९।।

अद्भुत रुचि सखि प्रेम की, सहज परस्पर होइ।
जैसैं एकहि रंग सौं, भरियै सीसी दोइ।।५०।।
स्याम रंग स्यामा रँगी, स्यामा के रँग स्याम।
एक प्रान तन मन सहज, कहिवे कौं द्वै नाम।।५१।।
सखियनि के नैंना रँगे, नवल विहार सुरंग।
माती नेह आनंद मद, दंपति केलि-अनंग।।५२।।
प्रेम मदन मद नैंन भरे, हियैं भर्‌यौ आनंद।
सुरत रंग के रँग रँगे, विवि वृंदावन-चंद।।५३।।

उपसंहार दोहा

रस समुद्र दोउ लाड़िले, नव-नव भाव-तरंग।
तामें मज्जन करत रहु, 'ध्रुव' दिन मनहिं अभंग।।५४।।

हे सखि ! प्रेम रुचि की यह अद्भुत गति है कि प्रेमी-प्रेमास्पद में सहज ही परस्पर एक ही रुचि का विस्तार होता है, जैसे एक ही रङ्ग के जल से भिन्न-भिन्न दो शीशियाँ भर ली जाँय।।५०।। श्री श्यामसुन्दर की रङ्ग-रुचि से श्री श्यामा रँगी हुईं हैं एवं श्रीश्यामा की रङ्ग-रुचि से श्री श्यामसुन्दर रँगे हुए हैं। ये रसिक युगल कहने को दो नाम से अभिव्यक्त हैं, किन्तु वस्तुतः सहज ही ये एक प्राण, तन एवं मन हैं।।५१।। इस प्रकार नित्य-विहार की सखियों के रसिक-नेत्र युगल के नित्य- नव-विहार के सुरङ्गित रङ्ग से सदैव रँगे रहते हैं। ये सखियाँ दम्पति श्री लाड़िली-लाल जू की अनङ्ग-केलि के प्रेमानन्द-मद से सदा उन्मत्त बनी रहती हैं।।५२।। श्री वृन्दावन-चन्द्र युगल किशोर सदैव सुरत-क्रीड़ा के आनन्द-रङ्ग में रँगे रहते हैं। उनके नयन सदैव प्रेम रूपी मदन के मद से एवं हृदय आनन्द से आपूरित बने रहते हैं।।५३।।

वृन्दावन विलासी युगल लाड़िले नये-नये भाव की तरङ्गों से पूर्ण युगल रस समुद्र हैं, हे ध्रुवदास ! तुम अहर्निश अभङ्ग रूप से इस रस-समुद्र में उन्मज्जन-निमज्जन करते रहो।।५४।।

अद्‌भुत रंग-विहार जस, जो सुनिहै चित लाइ।
रसिक रँगीले विवि कुँवर, तेहि उर झलकैं आइ।।५५।।
छप्पन दोहा कहे 'ध्रुव' रंग-बिहार अनंग।
या रस सौं जे रँगि रहे, तिनही सौं करि संग।।५६।।

जो कोई भाग्यशाली इस अद्भुत् 'रङ्ग-विहार' के निर्मल यश का मनोयोगपूर्वक श्रवण करेगा, निश्चित ही उसके हृदय में रसिक रँगीले युगल कुँवर-वर प्रकाशित होंगे।।५५।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने युगल-किशोर के अनङ्ग रङ्ग-विहार सम्बन्धी छप्पन दोहों का इस ग्रन्थ में गान किया है। रसिक उपासकों को चाहिए कि जिन किन्हीं रसिकों का हृदय इस रस से अनुरञ्जित है, वे उन्हीं का सङ्ग-लाभ करें।।५६।।

●

२९

रस-विहार

नौका विहार दोहा

रूप नदी करिया मदन, नवल नेह की नाव।
चढ़े फिरत दोउ लाड़िले, छिन-छिन उपजत चाव।।१।।
रस बिहार कछु प्रकट कहौं, सुनहु रसिक चितलाइ।
नावनिं चढ़ि वन विहरिवौ, यह उपजी उर आइ।।२।।
कंचन की रतननि खची, रची अनेक अनंग।
जमुना जल में झलक रही, गुमटी नाना रंग।।३।।

['रस विहार' नामक इस लघुकाय ग्रन्थ में श्री ध्रुवदास जी ने युगल श्री श्यामा-श्याम के जल-विहार का वर्णन किया है। इसमें विविध नौकाओं में चढ़कर सखि-सहचरियों के साथ श्री यमुना में जल-क्रीड़ा का मनोरम वर्णन प्रस्तुत है। दो मंजिली, तिमंजिली नौकाओं का सुरम्य निर्माण, सखी सहचरियों की राग-रङ्गमयी सेवा एवं युगल के पारस्परिक प्रेम विलास का वर्णन करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि–] भावात्मक दृष्टि से युगल का रूप ही रसमयी सरिता है और युगल का नित्य-नूतन प्रेम ही उस रूप जल में तैरने वाली नौका है। इस नौका का कैवर्त्तक (नौका को खेनेवाला) साक्षात् प्रेम रूपी कन्दर्प है। रसिक लाड़िली-लाल, जिनके हृदय में प्रतिक्षण नये-नये प्रेमोल्लास प्रगट होते रहते हैं, इस नौका पर विराजमान् होकर रूप की नदी में विहार करते हैं।।१।। हे रसिको, आज मेरे मन में यह अभिलाषा प्रकट हुई है कि मैं नौकाओं पर सवार युगल का श्री यमुना जल-विहार अर्थात् रस-विहार का अपने शब्दों में वर्णन करूँ। [–आप मनोयोगपूर्वक उसका श्रवण कीजिये–]।।२।। श्री यमुना जी में अनेक रङ्ग की स्वर्ण-निर्मित एवं रत्न-खचित गुमटियाँ यत्र-तत्र जगमगा रही हैं, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत

मनिमय छत्री सबनि पर, रहीं अधिक झलकाइ।
कहुँ-कहुँ फूलनिं की लता, रहि गईं सहज सुभाइ।।४।।
नाव बनाव जु कहन कौं, ऐसी मति धरै कौंन।
कुंदन के हीरनि खचे, दुखने तिखने भौंन।।५।।
लै-लै कंज गुलाब दल, आसन सेज रचाइ।
अँबर अरगजा सौं छिरकि, राखी सखिनि बिछाइ।।६।।
तापर रसिकनि रसिक दोउ, नागर नवल किसोर।
अवलोकत मुख माधुरी, जैसें चंद चकोर।।७।।
ललितादिक निज सहचरी, तेई राजत पास।
आनँद के अनुराग रँगि, लूटत सुख की रासि।।८।।
और सतेसनि पर चढ़ीं, लीने सौंज सिँगार।
चंदन बंदन अगरसत, और विविध उपहार।।९।।

होता है, मानो उनकी रचना अनेक सौन्दर्यशाली कामदेवों ने मिलकर की हो।।३।। उन गुमटियों पर मणि-जटित छतरियाँ शोभा की अभिवृद्धि कर रही हैं। कहीं-कहीं सहज प्राकृतिक रूप से उन पर पुष्पित लताएँ छाई हुई हैं।।४।। नौकाओं पर स्वर्ण-निर्मित हीरक मणियों से खचे हुए दो-दो तीन-तीन मञ्जिल के भवन बने हुये हैं।।५।। नौकाओं के अन्तर्भाग में सखियों ने कमल और गुलाब के दलों से विविध आसनों और शय्याओं की रचना की है और उनपर चन्दन एवं केशर-कस्तूरी का सुगन्धित छिड़काव किया है।।६।। उन आसनों पर नागर नवल किशोर रसिक युगल विराजित होकर परस्पर एक दूसरे की मुख-माधुरी का चन्द्र-चकोर की भाँति पान कर रहे हैं।।७।। युगल के समीप ललितादिक निज सहचरियाँ शोभित हैं, जो आनन्द एवं अनुराग के रङ्ग से रँगी रहती हैं और युगल की सुख-राशि का लाभ लेती रहती हैं।।८।। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत सी सखियाँ नौका निर्मित भवनों की अनेकों मञ्जिलों पर चढ़ी हुई युगल सेवा-सौंज सामग्री-चन्दन, बन्दन, अगरसत और अनेक प्रकार के उपहार साथ लिये रहती हैं।।९।।

एकनि कर पाननि डबा, एकनि के कर चौंर।
रस सुगंध भींजी सबै, भ्रमत चहूँ दिस भौंर।।१०।।
जहाँ-तहाँ जल में झलमलै, अंगनि भूषन जोति।
मानौं बरसा रूप की, कालिंदी पर होति।।११।।
भूलि रही नहिं कहि सकति, मति की गति भई पंग।
कोटि भान ससि कमल मनौं, जुरे आइ इक संग।।१२।।

सखियों की सेवा प्रवीणता दोहा

अति प्रवीन सब सहचरी, रँगी राग के रंग।
कोउ बीना कोउ सारँगी, कोउ लिये हुड़क मृदंग।।१३।।
एक लिये किन्नरि मुरज, एक तार कठतार।
सरस एक तें एक सखि, गुन की अवधि अपार।।१४।।

किसी एक सखी के हाथों में ताम्बूल-वीटिका की मञ्जूषा है, तो किसी दूसरी के हाथों में चँवर। समस्त परिकर सुगन्ध एवं रस से भींगा हुआ युगल के चारों ओर भ्रमण करता रहता है।।१०।। युगल के अङ्ग-भूषणों की प्रतिच्छाया श्री यमुना जल में यत्र-तत्र झलकती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो कालिन्दी की जल-धारा पर रूप की वृष्टि हो रही हो।।११।। युगल के श्रीअङ्गों में धारण किये हुए आभूषणों की छवि का अवलोकन करके मेरी बुद्धि-गति विस्मृत एवं थकित है। ऐसा लगता है, मानो युगल के कमलवत् अङ्गों में कोटि-कोटि सूर्य और शशि एक साथ एकत्र हो गये हों।।१२।।

प्रेम रूपी राग-तान के रङ्ग में रँगी हुई समस्त सखियाँ युगल-सेवा में अत्यन्त प्रवीण हैं। कोई सखी वीणा, कोई सारङ्गी, कोई हुड़क (वाद्य विशेष) और कोई मृदङ्ग लिये हुए है।।१३।। एक सखी किन्नरी बजा रही है, दूसरी मुरज और तीसरी तार-वाद्य बजा रही है। इसी प्रकार एक अन्य सखी कठतार बजा रही है। ये सभी सखियाँ गुणों की अपार अवधि हैं तथा एक से बढ़कर एक, अत्यन्त सरस है।।१४।।

एक मधुर सुर गावहीं, अद्‌भुत बाँकी तान।
रीझि लाड़िली लाल दोउ, देत सबनि कौं पान।।१५।।
चलन फिरन छबि कहा कहौं, नैंना रहे लुभाइ।
मानौं रूप छटानि कै, लइ रविजा सब छाइ।।१६।।
सुरँग सुगंध गुलाल अति, सखियनि दियौ उड़ाइ।
अंबर मनौं अनुराग कौ, तेहि छिन लियौ उढ़ाइ।।१७।।

युगल क्रीड़ा

दोहा

कुसुमनि के गैंदुक लियैं, खेलत दोउ सुकुँवार।
आलिंगन चुंबन चपल, छुवत उरज उर हार।।१८।।
हाव-भाव चितवनि चपल, बिच-बिच मृदु मुसिकानि।
अति विचित्र घटि नाँहिं कोउ, कोक कलनि की खाँनि।।१९।।

जब कोई सखी अद्भुत एवं बाँकी तान लेकर मधुर स्वर से गान करने लगती है, तब श्री लाड़िली-लाल रसिक-युगल सखियों की समस्त मण्डली को ताम्बूल वीटिकाएँ प्रदान करके सम्मानित करते हैं।।१५।। श्रीयमुना-जल पर तैरते हुए नौका भवनों में युगल एवं सखियों की इधर-उधर चलने फिरने की अवर्णनीय छवि-छटा का अवलोकन करके नेत्र लुब्ध हो रहते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीयमुना पर रूप की छटा छा गई हो।।१६।। जब सखियाँ सुगन्ध युक्त लाल-लाल गुलाल आकाश में उड़ाने लगती हैं, तब ऐसा लगता है, मानो आकाश को किसी ने अनुराग का वस्त्र उढ़ा दिया हो।।१७।।

सुकुमार रसिक युगल कभी फूलों की गैंदों से खेलते हैं तो कभी आलिङ्गन-चुम्बन का रस लेते हैं और फिर कभी उरोजों तथा हृदय देश पर विराजमान् हारावली का स्पर्श करते हैं।।१८।। युगल की चञ्चल चितवन, मन्द-मधुर मुस्कान प्रतिक्षण रस की अभिवृद्धि करती रहती है। श्री लाड़िली-लाल कोक-कलाओं के भण्डार हैं। विचित्र रस-विलास में समतुल्य रसिक हैं, कोई न्यून नहीं है।।१९।।

जबहि कुँवर नीवी गहत, भौंह भंग ह्वै जात।
वेपथ बात न कहि सकत, पद कमलनि लपटात।।२०।।
देखि दीन आतुर पियहि, ह्वै कृपाल रस ऐंन।
अधर-सुधा प्यावति पियहि, जुरे नैंन सौं नैंन।।२१।।

उपसंहार दोहा

रस विहार के सुनत ही, उपजै जिनकै रंग।
'हित ध्रुव' तौ जाँचत यहै, तिनही सौं ह्वै संग।।२२।।

जब कभी प्रेमावेश में भरे हुए प्रियतम नवल किशोरी के नीवी-बन्धन को स्पर्श करते हैं, तो किशोरी की भृकुटि-प्रणयकोप-भङ्गिमा युक्त हो जाती है। फलतः प्रियतम कम्पित हो उठते हैं, उनकी वाणी रस-प्रभाव से अवरुद्ध हो जाती है और वे प्रिया के चरण-कमलों से लिपट जाते हैं।।२०।। प्रियतम की प्रेमदीन एवं रसातुर स्थिति का अवलोकन करके रस-धाम नवल किशोरी प्रिया कृपालु हुई प्रियतम के नयनों से नयन मिलाकर उन्हें अपनी अधर-सुधा का दान करने लगती हैं।।२१।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उपरिकथित रस-विहार का वर्णन-श्रवण करके, जिनके हृदय में आनन्द रङ्ग की उत्पत्ति होती है, मैं याचना करता हूँ कि ऐसे रसिकों का ही सङ्ग मुझे सदा प्राप्त होता रहे।।२२।।

❐

३०
रङ्ग हुलास

सखियों की सेवा-उत्कण्ठा दोहा

सखी सबै सेवा करैं, जिनके प्रेम अपार।
जैसी रुचि है दुहुँनि की, तैसैं करतिं सिंगार।।१।।
सौरभ सौं तन उबटि कैं, मंजन कियौ सुकुँवारि।
अंगनि की छबि कहा कहौं, मति सरसुति रही हारि।।२।।
मुख तँबोल की अरुनई, झलकनि सहज सुहाग।
मनौं कमल के मध्य तें, प्रगट भयौ अनुराग।।३।।
रची सचिक्कन चंद्रिका, फबि रही मंग सुरंग।
मनु अनुराग सिंगार की, सीवाँ रची अनंग।।४।।

रङ्ग-उल्लास का वर्णन प्रारम्भ करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों का जीवन रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल की सेवा है। सखियों के हृदय में श्री युगल की सेवा का अपार और अथाह प्रेम है, अतएव युगल की जब जैसी रुचि होती है, सखियाँ वैसा ही शृङ्गार आदि का आयोजन करती हैं।।१।। जब परम सुकुमारी प्रिया के दिव्य तनु पर सौरभसार (इत्र) का उबटन करके सखियाँ उनको स्नान कराती हैं तब नवल किशोरी के श्री अङ्गों की छवि अवर्णनीय रूप से निखर उठती है, जिसका वर्णन करने में मूर्तिमान सरस्वती भी असमर्थ हो जाती है।।२।। प्रिया के अधरोष्ठों पर ताम्बूल की अरुणिमा उनके सहज सुहाग की झलक है ; जिसका दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो अरुण कमल के मध्य भाग से अनुराग प्रगट हुआ हो।।३।। सखियों ने प्रिया के सहज सचिक्कन केशों की चन्द्रिका गूँथकर अरुण-वर्ण की सीमन्त-रेखा सजाई, तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो आज दिव्य अनङ्ग ने अनुराग एवं शृङ्गार की सीमा-रेखा खींच दी हो।।४।।

बैंदी नथ अरु तिलक पर, सुरँग चूँनरी सोहि।
निरखतिं धीरज धरैं सखी, तऊ रहीं सब मोहि।।५।।
चिलकनि कच चमकनि दसन, चितवनि मुसिकनि फूल।
झरत रहैं पिय लाल पर, सुख-निधि आनँद मूल।।६।।
कजरारे उज्ज्वल सुरँग, अनियारे दोउ नैंन।
उपमा और कहा कहौं, मोहन-मन हरि लैन।।७।।
अधरनि की छबि कहा कहौं, रसमय मधुर सुरंग।
सींचत पिय हिय लोचननि, पानिप वारि तरंग।।८।।
अति सुंदर वर चिबुक पर, साँवल बिंदु सलौंन।
मनहुँ स्याम मन अलप ह्वै, बैठ्यौ तहाँ धरि मौंन।।९।।

ललाट-पटल पर विराजित बैंदी और तिलक तथा नासिका पर मणिमय चञ्चल नथ, तिस पर सुरङ्गित चूनरी के अवगुण्ठन की अपूर्व शोभा का अमित धैर्य के साथ अवलोकन करने वाली सखियाँ भी आज प्रिया के मुख-सौन्दर्य शृङ्गार से विमुग्ध हो रही हैं।।५।। रूप-लावण्यमयी किशोरी की काली घुँघराली केश-राशि का चाक- चिक्य, देदीप्यमान्, दसनावलि की उज्ज्वल कान्ति तथा रसभरी चितवन एवं मन्द-मधुर मुसकान के पुष्प, जो आनन्द के मूल एवं सुख की निधि हैं, सदैव प्रियतम लाल पर झरते रहते हैं।।६।। प्रिया के अरुण एवं उज्ज्वल, अनियारे, कजरारे युगल नयन, जो मनहरण मोहन लाल के भी मन का सहज मन हरण कर लेते हैं, निरुपम एवं अवर्णनीय हैं।।७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के अरुणिम एवं रसमय मधुर अधर-पल्लवों की छवि कैसे वर्णन की जा सकती है ? वे अपनी लावण्यरूपी जल तरङ्गों से रसिक-प्रियतम के हृदय एवं नेत्रों का सिञ्चन करती रहती हैं।।८।।श्री प्रिया के सुन्दरातिसुन्दर चिबुक पर शोभित सलोना श्याम-वर्ण का बिन्दु ऐसा दिखता है, मानो प्रियतम श्यामसुन्दर का मन ही लघु रूप धारण करके आज मौन हुआ बैठा है।।९।।

कैसैं कै बरनौं सखी, सहजहि भाँति अनूप।
चलै ढरकि मन मैंन ज्यौं, लागत छबि रवि धूप।।१०।।
पानिप झलक कपोल पर, छुटि रही अलक रसाल।
बेसरि कौ मुक्ता चपल, चंचल नैंन बिसाल।।११।।
विविध भाँति भूषन बसन, प्रतिबिंबित अँग-अंग।
रूपनि मनि गन में मनौं, झलकत उठत तरंग।।१२।।
झलकनि झमकनि कहा कहौं, सोभा बढ़ी सुभाइ।
मानौं कोटिक दामिनी छबि सौं चमकीं आइ।।१३।।
मिहँदी परम सुरंग सौं, रचे चरन मृदु पानि।
मनौं रैनी अनुराग की, रँगे कमल दल बानि।।१४।।
नैंननि अंजन देत सखि, काँपत कर अरु हीय।
अति विसाल चंचल चितै, विवस होत हैं पीय।।१५।।

हे सखि ! मैं प्रिया के सहज एवं अनुपम रूप शृङ्गार का वर्णन कैसे करुँ, जिसका दर्शन करके अथवा छवि रूपी सूर्य-ताप से द्रवित हुआ प्रियतम का मन मोम की तरह ढलकने लगता है।।१०।। प्रिया के लावण्यमय कपोलों की झलक और उस पर लहराती हुई रसदायक अलक लट, नासिका पर चपल मुक्ता की तरल गति, उनके चञ्चल विशाल नयन-युगल तथा विविध भाँति के वस्त्रालङ्कार, जो उनके श्रीअङ्गों में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, सब मिलाकर ऐसा लगता है, मानो रूप के मणि- पुञ्ज में छवि-तरङ्गें अठखेलियाँ कर रही हों।।११-१२।। प्रिया के श्री अङ्गों की ज्योतिर्मयी झलक, रूप की आभा और सहज वृद्धि को प्राप्त शोभा का दर्शन करके ऐसा लगता है, मानो कोटि-कोटि दामिनी एक साथ छवि-पूर्वक चमक उठी हों।।१३।। नवल-किशोरी के सुकोमल चरणतल एवं कर-पल्लव मेंहदी के गहरे लाल रङ्ग से रँगे हुए ऐसे लगते हैं, मानो अनुराग के विशद पात्र में डुबा कर कमल के दल विचित्र रङ्गों से रञ्जित किये गये हों।।१४।। सखि ! जब प्रियतम अपनी प्राण-प्रिया के नेत्रों में अञ्जन सारने लगते हैं, तब उनके हाथ और हृदय दोनों काँप

अति प्रवीन सब अंग में, रूप सींव सुकुँवारि।
बाढ़ति है छबि अधिक तब, लालहि लेत सँभारि।।१६।।

प्रिया-प्रेम की विशेषता दोहा

प्रेम प्रिया कौ कहा कहौं, राखे छबि सौं छाइ।
पिय के सर्बस लाड़िली, रहे बिन मोल बिकाइ।।१७।।
उरजनि छवि हारावली, लालन रहे निहारि।
तृपति न कबहूँ भये हैं, पिवत प्रेम रस वारि।।१८।।
नख-सिख मोहनि सोहनी, बारी रति श्री कोटि।
जद्दपि पिय मोहन हुते, रहे चरन तर लोटि।।१९।।

उठते हैं। वे प्रिया के सुदीर्घ एवं चञ्चल नेत्रों का अवलोकन करके प्रेम-विवश हो जाते हैं।।१५।। रूप की परमावधि सुकुमारी प्रिया सौन्दर्य, शोभा, रूप और प्रेम के समस्त अङ्गों में अतिशय प्रवीण हैं। जब उनका रूपच्छवि-भार अधिकाधिक रूप-वृद्धि को प्राप्त होता है और उससे प्रभावित हुए प्रियतम विथकित होने लगते हैं, तब कृपामयी किशोरी प्रियतम को सँभाल लेती हैं।।१६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिन्होंने अपने रूपच्छवि से प्रियतम सहित समस्त परिकर को आच्छादित कर रखा है, उन श्री प्रिया के अनुपम प्रेम का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ? जहाँ प्रियतम अपनी प्राण-सर्वस्व लाड़िली प्रिया के चरणों में बिना मोल बिक चुके हों।।१७।। प्रिया के वक्षस्थल पर लहराती हुई हारावली की छबि का अवलोकन करके प्रियतम ठगे से निहारते ही रह जाते हैं। वे प्रिया-प्रेम-रूपामृत का पान करते हुए कभी तृप्त ही नहीं हो सके हैं।।१८।। नित्य-नवेली प्रिया नख-शिख पर्यन्त परम सुहावनी एवं मनमोहनी हैं। उन पर कोटि-कोटि रति एवं साक्षात् श्री न्यौछावर हैं। यद्यपि प्रियतम श्याम-सुन्दर मोहन ही नहीं अपितु विश्व विमोहन कहे जाते हैं, तथापि श्री प्रिया के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए उनके चरण-तल में विलुण्ठित होते

सखियन मंडल में खरी, तैसीयै झलक सिंगार।
मनु सेवत छबि चंद कौं, रूप के कमल अपार।।२०।।

प्रियतम की शृङ्गार-रुचि दोहा

अब सुनि प्यारे लाल की, रुचि कौ रच्यौ सिंगार।
बेसरि सारी कंचुकी, बैंनी गुही सुढार।।२१।।
बैंदी दई अति प्यार सौं, हँसि लाड़िलि सुकुँवारि।
बाढ़ी ऐसी फूल उर, सकत न लाल सँभारि।।२२।।
कुंदन के रतननि खचे, बने तरौना कान।
मानौं छबि के कमल ढिंग, झलकत छबि के भान।।२३।।

रहते हैं।।१९।। ऐसी रूप-राशि प्रिया आज अपनी सहचरियों के मण्डल में खड़ी जैसी अपूर्व शोभा को प्राप्त हैं, वैसी ही आज उनके शृङ्गार की झलक सर्वोपरि रूप में झलमला रही है, जिसका दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो मूर्त्तिमान् छवि रूपी चन्द्रमा का सेवन कर रहे हों—रूप के अनन्त कमल।।२०।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब प्रियतम लाल जी की अपनी रुचि के अनुसार जो भी वस्त्राभूषण, शृङ्गार श्री प्रिया के द्वारा उन्हें धारण कराया गया है, उसका वर्णन सुनिये। श्री प्रिया ने उन्हें साड़ी एवं कञ्चुकी धारण कराके उनके लम्बमान् केशों की सुललित वेणी गूँथी तथा नासिका में नासा-मौक्तिक धारण कराया।।२१।। पश्चात् सुकुमारी लाड़िली ने मुस्कुराते हुए अत्यन्त प्यार के साथ प्रियतम के ललाट पटल पर बैंदी धारण करायी, जिससे श्रीलाल के मन में इतनी अधिक प्रसन्नता छायी कि वे उसे सँभाल नहीं सके।।२२।। श्री प्रिया ने प्रियतम के कर्णमूल पर रत्न-मण्डित स्वर्ण निर्मित ताटङ्क धारण कराये तो ऐसा लगा, मानो मूर्त्तिमान युगल छवि-कमलों के समीप छवि के सूर्य झलमला रहे हों।।२३।।

जहाँ लगि भूषन कुँवरि के, पहिरे तेइ बनाइ।
कौन भाँति अति लाज सौं, चितई मुरि मुसिकाइ।।२४।।
वेष प्रिया कौ करत ही, पानिप बढ़ी अनूप।
मनौं सबके मन हरन कौं, प्रगटी मूरति रूप।।२५।।
नवल सखी छवि नई-नई, अंग-अंग झलकंत।
मनु सुहाग अनुराग की, सींव सुरँग सीमंत।।२६।।
अति बिसाल चंचल दृगनि, अंजन दियौ बनाइ।
रेख सेख कोरहि लगी, चित्तहि लियौ चुराइ।।२७।।
नासा बेसरि फबि रही, थिरकनि मुक्ता मंग।
मनहुँ खिलावत विधु बुधहि, हित सौं लियैं उछंग।।२८।।

प्रियतम के अङ्गों में प्रिया के लगभग सभी आभूषण सुरुचि पूर्वक धारण कराये गये और जब प्रिया रूप-धारी श्री लाल ने लज्जा पूर्वक मुस्कुराते हुए मुड़कर अनियारे-तिरछे नयनों से प्रिया की ओर देखा, वह छबि कहने में नहीं आती।।२४।। हे सखि ! प्रिया का वेष धारण करते ही प्रियतम का लावण्य अनुपम रीति से वृद्धि को प्राप्त हो गया, जिसे देखकर ऐसा लगा मानो समस्त परिकर का मन हरण करने के लिए कोई अनुपम रूप की मूर्त्ति प्रकट हुई हो।।२५।। इस नयी सखी की नयी-नयी शोभा उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से झलकती हुई यह प्रकट करने लगी कि वह अपनी अरुणिम सीमन्त रेखा के द्वारा अनुराग और सुहाग की चरम एवं परम अवधि है।।२६।। उस सुन्दरी के सुदीर्घ एवं चञ्चल नेत्रों में जब अञ्जन-रेखा धारण करायी गयी और नयन-कोरें कज्जल से श्याम-वर्ण हुईं, तो उसने सबका चित्त हरण कर लिया।।२७।। नव प्रिया की ललित नासिका पर शोभित नासामौक्तिक की, थिरकन सीमन्त स्थित मुक्ता-माल के साथ ऐसी लगी, मानो चन्द्रमा अपने पुत्र बुध को प्रीति-पूर्वक गोद में लिये दुलरा रहा हो।।२८।।

बनी सहेली साँवरी, सोभा रही लुभाइ।
उपमा और कहा कहौं, लाड़िली रही लुभाइ।।२९।।
चितवन अति अनुराग की, रँग भीनी मुसिकानि।
देखि छबीली छबिहि छबि, पाइनि में परी आनि।।३०।।
मोहन तें भई मोहनी, लईं सखी सब मोहि।
अति सुठौंन बानिक बनक, रही कुँवरि मुख जोहि।।३१।।
बीन कुँवरि कौ लियौ कर, बजई बाँकी तान।
अति प्रवीन लीनी रिझै, गाई सुर बंधान।।३२।।
रीझि लाड़िली अंक भरि, लीनी उर सौं लाइ।
द्वै सरिता छबि की मनौं, मिलीं आपु में आइ।।३३।।

साँवरी सहेली की स्वाभाविक शोभा-सज्जा की क्या उपमा दी जाय, जिसका दर्शन करके स्वयं लाड़िली प्रिया भी लुभा जाती हैं।।२९।। साँवरी सहेली की अनुराग पूर्ण चितवन, रङ्ग-रञ्जित मुस्कान एवं छबीली छवि का दर्शन करके मूर्त्तिमती छवि भी उसके चरणों में विलुण्ठित होने लगती है।।३०।। जो मोहन से मोहनी बन गयी है और जिसने अपने रूप लावण्य अथवा शृङ्गार-सज्जा से समस्त सखियों को मोहित कर लिया है, उसकी सहज बानिक (शृङ्गार-छवि) अत्यन्त सुहावनी है, तभी तो कुँवरि किशोरी लाड़िली भी उसका मुख देखकर ठगी सी रह जाती है।।३१।। अस्तु, साँवरी नव-वधू ने जब प्रिया की मधुमती वीणा अपने हाथों में लेकर अद्‌भुत तान बजायी और समुचित स्वर सन्धान के साथ मधुर-मधुर गान किया, तो उसने अपनी अतिशय कलाप्रवीणता के द्वारा परम प्रवीण सङ्गीत विद्या-निपुण नवल-किशोरी को भी रिझा लिया।।३२।। लाड़िली प्रिया ने रीझ कर साँवरी को अपने अङ्क में भर लिया और जब उसे हृदय से आलिङ्गित किया, तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो शोभा की दो सरिताएँ परस्पर मिलकर एक हो गयी हों।।३३।।

बाढ़ी रुचि या वेष पर, उपज्यौ नौतन चाव।
मिटी न मन की चपलता, भूले और सुभाव।।३४।।
पियहि प्रिया कौ वेष रुचै, प्यारी कौं पिय वेष।
हिय तें हिय टूटत नहीं, परि गई प्रेम की रेख।।३५।।
ठाढ़ी जुवती-जूथ में, छबि की उठत झकोर।
मानौं चंदहि घेरि रहे, सब के नैंन-चकोर।।३६।।
करि सिंगार सहचरि सबै, रूपहि रहीं निहारि।
बैठे कुंज सिंगार में, सेज सिंगार सँवारि।।३७।।
राजत नवल निकुंज में, नव किसोर चित चोर।
सखी सहेली सहचरी, झमकि रही चहुँ ओर।।३८।।

अपने इस नूतन वेष पर श्यामल-प्रिया की अत्यधिक रुचि बढ़ने से नये-नये उल्लास प्रगट होने लगे। मन की चञ्चलता तो मिटी नहीं, अपितु पुरुषत्त्व के जो अन्यान्य प्रभाव थे, वे भी विस्मृत हो गये।।३४।। प्रेम-राज्य की रीति बहुधा लोक-विपरीत है, तभी तो प्रियतम को प्रिया का वेष विन्यास रुचता है और प्रिया को प्रियतम का शृङ्गार-वेष धारण करना प्रिय लगता है। युगल के हृदयों में प्रेम की एक विलक्षण रेखा खिंची हुई है, जिससे दोनों के हृदय एक हो कर आबद्ध हैं , जो कभी विलग नहीं होते।।३५।। अस्तु, नित्य-विहार की युवा सखी-सहेलियों के यूथ में खड़ी हुई साँवरी नव-वधू छवि की लहरियाँ उत्पन्न कर रही है। इस छवि-राशि का दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो समस्त परिकर के नेत्र रूपी चकोर किसी अभूत चन्द्रमा को घेरे हुए हों।।३६।। समस्त सहचरियाँ साँवरी नव-वधू का नख-शिख शृङ्गार करके उसके अनुपम रूप को निहारती रह जाती हैं। पश्चात् शृङ्गार-कुञ्ज के अभ्यन्तर भाग में शृङ्गारमयी शय्या सजा कर उस पर उसे प्रिया के साथ विराजित करती हैं।।३७।। नव निभृत-निकुञ्ज में नित्य नव-किशोर चित्त-चोर युगल को विराजमान करके समस्त सखी, सहेली और सहचरियाँ उनके प्रेम से भरी हुईं एवं सेवा सुख में पगी हुईं युगल के चारों ओर झमकती रह जाती हैं।।३८।।

युगल की प्रेम मग्न स्थिति दोहा

प्रेम मदन रस कौ सदन, रदन अदन धरैं पीय।
रस समुद्र में परे दोउ, जुरे नैंन अरु हीय।।३९।।
लटकनि ललित सुहावनी, सो तौ बसि रही हीय।
जब लावति उर प्यार सौं, हँसि-हँसि प्यारी पीय।।४०।।
कजरारे सुठि सोहने, उज्ज्वल स्याम सुरंग।
नैंननिं छबि पर वारि सत, खंजन कंज कुरंग।।४१।।
जिहि-जिहि चितवन चित हर्‌यौ, तेहि चितवन की आस।
रसिक लाल छाँड़त नहीं, निमिष लाड़िली पास।।४२।।

श्री लाल की प्रेमासक्ति दोहा

कुँवरि चाल सखि देखि कै, कुँवरहि भूली चाल।
रहि गये ठाढ़े चित्र से, चितवन नैंन बिसाल।।४३।।

प्रेम रूपी मदन रस के धाम में प्रियतम श्री प्रिया के अधर-रस का पान कर रहे हैं। इस प्रकार युगल रस के समुद्र में मग्न हैं और उनके हृदय एवं नेत्र एक-दूसरे की रूप-माधुरी पान में तल्लीन हैं।।३९।। प्रिया की ललित एवं लड़कानि-पूर्ण लटक प्रियतम के हृदय में बसी रहती है एवं तब और अधिक उनको हृदय में रमा लेती है, जब प्रिया हँस-हँस कर प्रियतम को बारम्बार अपने हृदय से लगाने लगती हैं।।४०।। नवल-किशोरी प्रिया के अञ्जनरञ्जित श्वेत, श्याम, रतनारे, सुहावने एवं सुन्दर नेत्रों की छवि पर शत-शत खञ्जन, कमल एवं हरिण न्यौछावर हैं।।४१।। ऐसे रसीले नयनों की जिस चितवन ने प्रियतम का चित्त हरण कर लिया है, उस मनहरणी चितवन की बारम्बार दर्शन आशा लुब्ध रसिक लाल एक निमेष के लिए भी श्री लाड़िली का सामीप्य नहीं छोड़ना चाहते।।४२।।

नवल किशोरी लाड़िली की मदमन्थर चरण-विन्यास गति का अवलोकन करके नवल-किशोर श्रीलाल जी की गति-मति विस्मृत हो गयी। वे प्रिया के

जो फिरि चितवै लाड़िली, ठाढ़ी जमुना कूल।
फिरि आई अति प्यार सौं, लीने गहि भुज मूल।।४४।।
अद्‌भुत जोरी रूप निधि, नवल लाड़िली लाल।
ऐसैं रहौ 'ध्रुव' हीय में, जैसैं कंठ की माल।।४५।।
जोरी गोरी स्याम की, सोभा निधि सुकुँवारि।
अटके दोऊ आप में, उमड़ी प्रेम की धार।।४६।।
तेहि धारा की बूँद इक, कैसैं बरनी जाइ।
और जतन कछु नाहिं 'ध्रुव', रसिकन संग उपाइ।।४७।।
मदन मोद मद रस मगन, रहत मुदित मन माँहि।
दरसत परसत उरज उर, लपटत हूँ न अघाँहि।।४८।।

विशाल नेत्रों की रसभरी चितवन के ध्यान में तन्मय हुए चित्र की भाँति खड़े के खड़े रह गये।।४३।। यमुना तट पर खड़ी लाड़िली ने मुड़कर जब प्रियतम की रूप-तल्लीन स्थिति का अवलोकन किया, तब वे तत्काल ही लौट पड़ीं और उन्होंने अत्यन्त प्यार पूर्वक प्रियतम के भुजमूल को पकड़ लिया।।४४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नवल लाड़िली लाल की यह अद्‌भुत जोरी रूप की भण्डार है। मेरे हृदय में यह रसीली जोरी कण्ठ-माला बनकर सदा बसी रहे।।४५।। गोरी प्रिया एवं श्यामसुन्दर की यह जोरी सुकुमारता एवं शोभा की निधि है। दोनों ही रसिक युगल परस्पर में अद्‌भुत रीति से अटके हुए हैं। इनकी अटक से प्रेम की एक अद्‌भुत धारा उमड़ती रहती है।।४६।। उस धारा के एक बिन्दु का भी वर्णन असम्भव है तथा उस प्रेम-बिन्दु को प्राप्त करने का रसिक भक्तों के सङ्ग के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।।४७।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मदन-केलि के आनन्द मोदमय मदरस में मग्न रसिक युगल सदैव मुदित मन बने रहते हैं। वे परस्पर में दर्शन-स्पर्श एवं हृदयालिङ्गन से आलिङ्गित रहते हुए भी कभी परितृप्त नहीं होते।।४८।।

कुँवरि कटाच्छनि की छटा, मनु अनियारे बान।
पिय हिय में 'ध्रुव' लगत रहैं, सोई ह्वै गये प्रान।।४९।।
प्रीतम के जीवन यहै, नैंन-कटाछनि पात।
त्यौं-त्यौं पिय कौ सीस सखि, चरननि तर ढर्‌यौ जात।।५०।।

फलस्तुति दोहा

ऐसैं रस में परै मन, जनम सफल 'ध्रुव' होइ।
नैंन सैंन मुसिकन रतन, हिय गुन सौं लै पोइ।।५१।।
लाड़िली लाल के प्रेम कौ, जिनकै रहै विचार।
सुनि ध्रुव तिनकी चरन रज, वंदन करि सिर धार।।५२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्री प्रिया के नयनों की कटाक्ष-छवि क्या है, मानो नुकीले बाण हैं, जो सदैव प्रियतम के हृदय में चुभते रहते हैं। आश्चर्य यह है कि निरन्तर चुभते रहने वाले वे नेत्र-बाण प्रियतम के प्राण बन गये हैं।।४९।। हे सखि! प्रिया के नयनों का कटाक्ष-पात ही प्रियतम का जीवन है। वे ज्यों-ज्यों इस जीवन को प्राप्त करते हैं, त्यों-त्यों उनका शीश प्रिया-चरणों की ओर ढलता ही चला जाता है।।५०।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं यदि उपरिवर्णित रस में किसी का मन लीन हो जाय, तो उस का जीवन धारण करना सफल हो जाय और तब वह अपनी हृदय रूपी डोरी में युगल के नयन-सङ्केत, मुस्कान आदि रत्नों को पिरोने लग जायगा।।५१।। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए वे पुनः कहते हैं कि जिन रसिक उपासकों के मन में सदैव केवल श्री लाड़िली-लाल के प्रेम-चिन्तन का ही विचार बना रहता है, उन की चरण-धूलि का वन्दन करना चाहिए एवं उसे सिर पर धारण करना चाहिए।।५२।।

३१
रङ्ग विनोद

केलि में नव रस-वर्णन दोहा

प्रथमहि चितवन लाज की, दुतिय मधुर मृदु-बैंन।
तृतिय परस अंगनि सरस, उरजनि छबि सुख-दैंन।।१।।
परिरंभन चुंबन चतुर, पंचम भाइ-तरंग।
षट रस बिंजन स्वाद जिमि, उठत अनंग-तरंग।।२।।
विविध भाँति रति केलि कल, सप्त समुद्र अपार।
वचन-रचन अष्टम नवम, रस-निधि रंग-बिहार।।३।।

[साहित्य के क्षेत्र में काव्यात्मक नव-रसों का वर्णन है। श्री ध्रुवदास जी ने अपने इस 'रङ्ग-विनोद-नामक ग्रन्थ में साहित्यिक नव-रसों से भिन्न प्रेम-केलि के गणनात्मक नौ अङ्गों में रस का विवेचन किया है। उनके विचार में] प्रथम रस प्रणयी युगल की लज्जा भरी चितवन है, जिसका उद्भव दम्पति के प्रथम समागम में होता है। द्वितीय रस, दम्पति की रस पूर्ण मृदु एवं मधुर वचनावली किंवा वार्त्ता है। तृतीय उन्मेष अङ्गों का स्पर्श और नेत्रों को सुख देने वाली उरोजों की चित्ताकर्षक छवि का स्वरूप है।।१।। रस का चतुर्थ उन्मेष चुम्बन एवं प्रगाढ़ालिङ्गन है। रस का पञ्चम सोपान है, प्रेमी युगल के अन्तर्मन में एक-दूसरे के लिए तत्सुख-भाव की हिलोरों का उठना। छठा रसोन्मेष है, दोनों का तरङ्गायित होना एवं रसास्वाद की एक मधुर कल्पना; यथा छः भाँति के भोज्य पदार्थों में भोजन करने वालों की आस्वादन सम्बन्धी अनुभूति और अभिरुचि।।२।। भूतल स्थित सप्त समुद्रों की भाँति अथाह एवं अपार जलार्णव जैसी विविध रीति से सुन्दरातिसुन्दर युगल की रति-केलि रस का सप्तम सोपान है। अष्टम सोपान प्रणयी युगल की पारस्परिक रस-वार्ता एवं प्रेम के व्यंग्य-विनोद हैं एवं नवम् रस का भण्डार है युगल का अनन्त रङ्ग-विहार।।३।।

नव किसोर चित-चोर दोउ, अलबेले सुकुँवार।
भीने रंग सुरंग में, रचि रहे प्रेम-विहार।।१३।।
दुलहिनि-दूलहु रसमसे, प्रेम रूप की रासि।
नवल रँगीली सेज पर, करत हास-परिहास।।१४।।
अतिहि छबीले कुँवर दोउ, करत रसीली बात।
मरम भिदी कहि-कहि कछू, हँसि-हँसि उर लपटात।।१५।।
कजरारे चंचल नयन, छबि की उठत झकोर।
को समुझै घन मेघ सुख, बिना रसिक वर मोर।।१६।।
रदन चिन्ह रति के सुरँग, सोभित सुभग कपोल।
मनहुँ कमल के दलनि पर, झलकत रतन अमोल।।१७।।
सुरत रंग पर सुख नहीं, बातनि ऊपर बात।
अधर-पान पर रस नहीं, परसनि पर उरजात।।१८।।

विलक्षण सुकुमार चित्तचोर नवल किशोर युगल प्रेम के सुरङ्ग रङ्ग में सराबोर होकर दिव्य प्रेम-विहार की रचना करते रहते हैं।।१३।। रसमसे नव वर-वधू लाड़िली-लाल प्रेम की राशि हैं। वे नव निकुञ्ज में रँगमगी नवल शय्या पर पौढ़े हुए सदा हास-परिहास में मग्न रहे आते हैं।।१४।। उन अत्यन्त छविमान् युगल कुँवर की वार्त्तायें बड़ी रसभरी होती हैं। वे परस्पर मर्मस्पर्शी बातें कह कर हँसते हुए एक-दूसरे के हृदय से लिपट-लिपट जाते हैं।।१५।। उनके अञ्जन-रञ्जित चपल नयनों की छबि की उठती हुई झकोरों का घनीभूत मेघ-वर्षण जैसा अमित रसदायक सुख, मयूर-मयूरी रूपी रसिक श्रेष्ठों के अतिरिक्त अन्य कौन समझ सकता है।।।१६।। रसिक युगल के सुन्दर कपोलों पर प्रेम-रति के सुरङ्गित रदन-चिह्न शोभित हैं, जिनके दर्शन से ऐसा प्रतीत होता हैं, मानो कमल के अरुणिम दलों पर अमूल्य रत्न झलक रहे हों।।१७।। प्रेम देश में सुरत रङ्ग से बढ़कर अन्य कोई सुख नहीं है अर्थात् युगल की सुरत-केलि ही सुख की सर्वोपरि स्थिति है। इसी प्रकार प्रेमी युगल

सुरत रङ्ग की सर्वोपरिता दोहा

लटकनि लपटनि रंग की, चितवनि हास-विनोद।
यह सुख समुझै को सखी, जो उपजत दुहुँ कोद।।१९।।
कोमल फूली लतनि में, करत केलि रस माँहि।
तहँ तहँ की बल्ली सबै, सकुचि बिवस ह्वै जाँहि।।२०।।
वृंदावन की लता द्रुम, कुंज सबै चिद् रूप।
झनक-झनक बिहरत तहाँ, दंपति सहज सरूप।।२१।।
सौरभ अंगनि कहा कहौं, स्वाँस सुवास अनूप।
रौंम-रौंम आनँद निधि, देखिबौ पानिप रूप।।२२।।

की रस वार्त्ताओं से बढ़कर अन्य वार्त्ताओं का कोई रस-सुख नहीं है। अधर-पान से बढ़कर अन्य कोई रस नहीं तथा प्रिया के उरोजों के स्पर्श की समता अन्य कोई स्पर्श-जनित सुख नहीं कर सकता।।१८।।

हे सखि ! युगल की रसभरी लटक-मटक, रङ्ग पूर्ण आलिङ्गन, रसभरी चितवन एवं हास्य-विनोद के सुख को, जो दोनों में प्रकट होता है, समझ सकने में कौन समर्थ है।।१९।। जब हमारे लाड़िली-लाल वृन्दावन की सुकोमल एवं पुष्पित लताओं के भवन में अपनी रस-केलि सम्पन्न करते हैं, तब उन-उन कुञ्जों की लता-वल्लरियाँ प्रेम-विवश होकर सङ्कुचित हो जाती हैं।।२०।। वृन्दावन की लताएँ, वृक्ष एवं कुञ्ज-निकुञ्ज आदि सभी चैतन्य स्वरूप हैं, जड़ नहीं। उन चिन्मय लता-द्रुमों के भवनों में अपने चरण-नूपुरों की झङ्कार करते हुए सहज स्वरूपमय दम्पति श्रीलाड़िली-लाल विहार करते रहते हैं।।२१।। उनके श्रीअङ्गों की दिव्य सुगन्ध एवं श्रीमुख का सुवासित श्वास अनुपम है। उनका रोम-रोम आनन्द का भण्डार है और उनका रूप-लावण्य तो देखते ही बनता है, कहने में नहीं आता।।२२।।

फूलन में दोउ फूल से, सौरभ रूप सुरंग।
ललितादिक पाछे फिरैं, भीनी तिनके रंग।।२३।।
धन्य-धन्य सखियन सुकृत, देखत ऐसी भाँति।
जबहि लाड़िली लाल तन, प्यार सौं मृदु मुसुकाँति।।२४।।
जब देखी रस रँग ढरी, बाढ्यौ आनँद हीय।
रचि बनाइ मृदु अंगुरिनु, बीरी ख्वाबति पीय।।२५।।
बिचहि लाल चाहत छुयौ, कुच कच अरु भुजमूल।
अति प्रवीन मन में समुझि, ढाँपति नील दुकूल।।२६।।
आतुर पिय अनुराग बस, कहि न सकत कछु बात।
फिरि फिरि पाँइनि में परत, मृदु मुख हा-हा खात।।२७।।

हे सखि ! हमारे रसिक युगल सुगन्ध, रूप एवं वर्ण में पुष्पों के भी पुष्प हैं। वे जब उत्फुल्लता से भरे हुए श्री वृन्दावन के पुष्पित वन-प्रान्त में विचरण करते हैं, तब उनके आनन्द-रङ्ग में सराबोर हुईं ललितादिक सहचरियाँ उनके पीछे-पीछे डोलती रहती हैं।।२३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं —जो नित्य निरन्तर श्री श्यामा-श्याम का दर्शन करती रहती हैं, उन सखियों का सुकृत धन्यवाद के योग्य है; क्योंकि ये सखियाँ इस छबि की दर्शन-अधिकारिणी हैं, जब रँगीली लाड़िली प्यार भरी मृदु मुस्कान के साथ अपने प्रियतम लाल जी की ओर निहारती हैं।।२४।। अस्तु, जब श्री लालजी ने देखा कि प्रिया इस समय रस के रङ्ग से द्रवित हैं, तब उनके हृदय में आनन्द बढ़ चला और वे बड़ी सुघरता से ताम्बूल-वीटिका रच कर अपनी सुकोमल कराङ्गुलियों से प्रिया के ललित मुख में अर्पित करने लगे।।२५।।

तभी श्री लालजी अपनी चतुराई से प्रिया के कुच कुम्भ, केश-लट एवं बाहु-मूल के स्पर्श की चेष्टा सी करने लगे, किन्तु रस-केलि निपुणा प्रिया ने रसिक लाल की चेष्टा को भाँप कर नील निचोल से अपने अङ्गों को ढाँप लिया।।२६।। प्रिया द्वारा किये गये इस रस-पूर्ण अवरोध से अनुराग-विवश रसातुर प्रियतम की वाणी अवरुद्ध हो गयी। वह कुछ कह नहीं सके और

अति सनेह के रँग भरी, रहि न सकी अकुलाइ।
लए लाइ उरजनि तबहिं, अधर-सुधा-रस प्याइ।।२८।।
कहा कहौं या प्रेम की, बात कही नहिं जाइ।
प्यारी मानौं पियहिं लै, राखे प्यार सौं छाइ।।२९।।
देखि प्रिया को प्रेम पिय, मुख तन रहे निहारि।
नैंन सजल अति बिवस ह्वै, रहे प्रान-वपु हारि।।३०।।
वृंदावन में सिंधु द्वै, उमड़े रहत अपार।
प्रेम-मदन रस सौं भरे, रंग तरंग सिंगार।।३१।।
मध्य पुलिन सेज्या बनी, सुंदर सुभग सुढार।
विलसत स्यामा-स्याम तहँ, सोभा निधि सुकुँवार।।३२।।

पुनः-पुनः प्रिया-चरणों में निपतित होते हुए मृदु वचनावली में उनकी चाटुकारी करने लगे।।२७।। अतिशय प्रेम के रङ्ग में निरन्तर परिपूर्ण प्रिया अपने प्रियतम की यह गति देखकर व्याकुल हो उठीं। वे अविलम्ब प्रियतम को अपने वक्षस्थल से लगा कर अधर रस का पान कराने लगीं।।२८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं युगल के इस विलक्षण प्रेम की गति, स्थिति का यदि कुछ वर्णन करना चाहूँ तो कैसे करूँ ? किसी भी प्रकार से इस अवर्णनीय प्रेम का स्वरूप-गुण आदि कहने में नहीं आता। जहाँ प्रिया ने प्रियतम को अपने प्रेमाच्छादन से पूर्णतया आच्छादित कर रखा है।।२९।। श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के अनुपम प्रेम का अनुभव करके उनके मुख की ओर निहारते रह जाते हैं, वे प्रिया-प्रेम पर अपना तन-मन-प्राण बलिहार कर देते हैं।।३०।। इस प्रकार वृन्दावन में मदन-केलि रस से भरे हुए तथा शृङ्गारित प्रिया- प्रियतम रूपी दो-दो समुद्र सदैव उज्जृम्भमाण रहते हैं।।३१।। वृन्दावन रस-समुद्र है, जिसके मध्य पुलिन पर सर्वाङ्ग सुन्दर शोभामयी सुढार शय्या निर्मित है, जहाँ छवि धाम सुकुमार युगल श्री श्याम-श्यामा निरन्तर प्रेम का विलास करते रहते हैं।।३२।।

प्रेम नेम रति रंग सुख, दिनहिं परस्पर होत।
पल-पल नव-नव दसा फिरै, सहजहि ओत-प्रोत।।३३।।
मदन-लहरि के उठत ही, बाढ़त सुरत-बिहार।
प्रेम-लहरि में परत ही, रहत न देह सँभार।।३४।।
अद्‌भुत जुगल-किसोर-रस, छिन-छिन औरै-और।
प्रेम-मगन विलसत दोऊ, रसिकन-मनि सिरमौर।।३५।।
रंगम संगम सागरनि, बाढ्‌यौ रुचि कौ तोइ।
या रस में ललितादिकनि, राखे नैंन समोइ।। ३६।।

सखियों का सुख दोहा

सखियन कौ सुख कहा कहौं, मेरी मति इति नाँहिं।
यह रस उनकी कृपा तें, जौ रहे 'ध्रुव' मन माँहिं।।३७।।

इसी वृन्दावन में नित्य निरन्तर प्रेम क्रीड़ा, रति आनन्द एवं सुख की प्रतिपल सहज ही नयी-नयी स्थितियाँ युगल में ओत-प्रोत रूप से विलसित होती रहती हैं।।३३।। जब युगल के अन्तर्मन में मदन-केलि की तरङ्गें उठती हैं, तब सुरति-केलि का अभिवर्द्धन हो जाता है और जब रसिक युगल प्रेम-तरङ्गों में लीन हो जाते हैं तब उन्हें अपनी देह का भी अनुसन्धान नहीं रह जाता।।३४।। इस प्रकार युगल किशोर श्री लाड़िली-लाल का विलास-रस अद्भुत तो है ही, प्रतिक्षण नित्य नूतन भी है, जिसे रसिक-मणि-स्वरूपा ललितादिक सहचरियों के भी शिरोभूषण श्री श्यामा-श्याम प्रेम मग्न हुए विलसते रहते हैं।।३५।। इस प्रकार अपार रङ्ग-रूपी दो समुद्रों के मिलन में रूचि रूपी जल की वृद्धि ही श्री प्रिया-प्रियतम का प्रेम-रस-सम्वर्धन है। इस रस में ललितादिक सखियों ने अपने नयनों को एकमेक कर रखा है।।३६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मुझमें इतनी विशद् बुद्धि नहीं कि मैं सखियों के सुख की परिकल्पना कर सकूँ। यह रस तो केवल उन सखियों की कृपा

भाग पाइ ठहराइ जौ, यह रस पारौ प्रेम।
ताके उर झलकत रहैं, गौर-नील मनि-हेम।।३८।।
मेरी मति तौ कौन है, यह रस परस्यौ जाइ।
एक लाड़िली-लाल की, सक्तिहि लेत बनाइ।।३९।।
दोहा रंग विनोद के, रचि कीने चालीस।
सुनैं गुनैं हित सहित 'ध्रुव', तेहि पद-रज धरि सीस।।४०।।

से ही मेरे अथवा किसी अन्य रसिक उपासक के मन में ठहर सकता है या उतर सकता है।।३७।। यह प्रेम रस पारद की भाँति गुरुतम भार युक्त एवं तरल है, अतएव किसी भाग्यशाली के ही हृदय में स्थिर रह सकता है और तभी उसके हृदय में कञ्चन जटित इन्द्र नीलमणि की भाँति गौर नील श्यामा-श्याम झलकते रह सकते हैं।।३८।। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए अन्त में ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी तुच्छ बुद्धि का अस्तित्त्व ही क्या है, जो इस दिव्य रस का स्पर्श कर सके। यह जो कुछ मेरे द्वारा हो रहा है, केवल श्री लाड़िली-लाल की कृपा शक्ति ही सब कुछ कर रही है।।३९।। अस्तु, मैंने 'रङ्ग-विनोद' नामक ग्रन्थ के चालीस दोहों की रचना की है, जो रसिकजन प्रेम सहित इन्हें सुनेंगे एवं इनका मनन करेंगे, मैं उनकी पद-रज को शिरोधारण करके अपने आपको धन्य मानूँगा।।४०।।

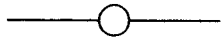

३२
आनन्द दशा विनोद

प्रस्तावना दोहा

प्रथमहिं श्रीगुरु कृपा तें, नित्य-विहार सुरंग।
बरनौं कछु इक जथामति, दंपति-केलि अनंग।।१।।

नायक-नायिका शृङ्गार भेद से विलक्षण वृन्दावनीय–
उज्ज्वल रस दोहा

नायिका तीन प्रकार की, बरनी कोक-कलानि।
प्रिया-चरन उर में धरैं, ठाढ़ी जोरैं पानि।।२।।
नौढ़ा मध्या अति चतुर, प्रौढ़ा परम प्रवीन।
कुँवरि चरन-नख-चंद्रिकनि, सेवत ज्यौं जल मीन।।३।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं सर्वप्रथम श्री गुरुदेव की कृपा प्राप्त करके अपनी बुद्धि के अनुसार श्री श्यामा-श्याम दम्पति की प्रेम-केलि (आनन्दमय नित्य-विहार) का यत्किञ्चित् वर्णन करने का प्रयास करूँगा।।१।। लौकिक कामशास्त्रों में नायिकाओं के तीन भेद वर्णन किये गये हैं। वे प्रौढ़ा, मध्या एवं मुग्धा नायिकाएँ वृन्दावनेश्वरी, नित्य-किशोरी प्रिया श्री राधा के युगल चरणारविन्दों को हृदय में धारण किये हुए उनके समक्ष करबद्ध खड़ी रहती हैं। अर्थात् नित्य-किशोरी प्रिया का स्वरूप तीनों नायिकाओं से परे है।।२।। नवोढ़ा (मुग्धा) एवं मध्या-ये दोनों ही अतिशय रस-चतुरा होती हैं तथा प्रौढ़ा नायिका भी रस-विलास में परम प्रवीण है, तथापि ये सभी प्रवीण नायिकाएँ कुँवरि किशोरी की चरण-नख-ज्योति का ऐसे सेवन करती हैं, जैसे मछली जल का सेवन करती है।।३।।

एकै वय क्रम नाँहिं कछु, सहज अलौकिक रीति।
बिलसत विविध विनोद रति, उपजावत निज प्रीति।।४।।
अपनी-अपनी समै सब, रुचि लै करैं अनुसार।
फिरत रहैं छिन-छिन नई, आनँद-दसा विहार।।५।।
कहा कहौं छबि-माधुरी, छिन-छिन चाह नवीन।
अद्‌भुत सुखमै मधुर मृदु, प्रेम-मदन-रस लीन।।६।।
पल-पल औरै और विधि, उपजत नाना रंग।
सब अंगनि कौ देत सुख, यह कौतुक बिनु अंग।।७।।
प्रेम-सिंधु उमड़े रहैं, कबहूँ घटत जु नाँहिं।
तेहि सुख कौ सुख कहा कहौं, जो उपजत दुँहु माँहिं।।८।।

वृन्दावनेश्वरी श्री नवल-किशोरी, नित्य विहारिणी के स्वरूप में आयु के उतार-चढ़ाव का कोई लौकिक क्रम नहीं है, वे सदा नवनवायमान रूप-लावण्य-धाम किशोरी रहने के कारण नित्य-किशोरी नाम से प्रख्यात हैं, उनके स्वरूप की यही अलौकिकता है। वे अपने नित्य-किशोर प्रियतम श्रीलाल जी के साथ सदैव सहज प्रीति का उदय करती हुई विविध प्रकार के विनोद एवं रति का विलास विस्तार करती रहती हैं।।४।। उनके स्वरूप में उनकी ही रुचि के अनुसार समय-समय पर नवोढ़ा, मध्या एवं प्रौढ़ा की स्थितियाँ आती, ठहरती और जाती रहती हैं। इस प्रकार की प्रतिक्षण आवागमनशील स्थिति को ही "आनन्द विहार दशा" कहा जाता है।।५।। श्रीध्रुवदास जी कहते हैं श्रीप्रिया के स्वरूप में नित्य नूतन रस-लालसा के उद्‌भव के साथ प्रगट होने वाली उनकी छवि-माधुरी अद्भुत, मधुर, मृदु एवं सुखमयी होती है, जिसमें प्रेम किंवा मदन-विलास एवं तज्जन्य रस भी लीन हो रहता है।।६।। यह छवि माधुरी प्रतिपल अनेकानेक रीतियों से नानाविध आनन्द का उद्‌भव करती रहती है। यह छवि माधुरी रूपी कौतुक अङ्गहीन होकर भी व्यापक भाव से विहार के सभी अङ्गों को सुख प्रदान करता रहता है।।७।। श्री वृन्दावन नित्य-विहार देश में प्रेम के दो समुद्र सदैव उफने रहते हैं, जो कभी उद्वेलन

उज्ज्वल रस में नवोढ़ा का स्वरूप दोहा

प्रथमहि नौढ़ा की दसा, रुचि लै प्रगटी आइ।
नख-सिख अंबर लाज कौ, मानौं लियौ उढ़ाइ।।९।।
नमित ग्रीव छवि सींव रही, अंग छुवन नहिं देत।
आतुर पिय अनुराग बस, मृदु भुज भरि-भरि लेत।।१०।।
चाहत उरजनि छुयौ जब, उठत नवल कर काँपि।
समुझि लाड़िली जोरि भुज, कर कमलनि रही ढाँपि।।११।।
परम चतुर चंचल सहज, अंचल में दोउ नैंन।
रौंम-रौंम पिय कै बढ्यौ, निरखि प्रेम-रस-मैंन।।१२।।

रहित नहीं होते। उन दोनों समुद्रों के उमड़न एवं मिलन में जिस अभूतपूर्व सुख की सृष्टि होती है, द्रष्टा के उस सुख का वर्णन असम्भव है।।८।।

सर्वप्रथम प्रिया की रुचि को जानकर उनके स्वरूप में नवोढ़ा (मुग्धा) नायिका की दशा प्रगट हुई। तदनुसार मुग्धा प्रिया नख-शिख पर्यन्त लज्जा से भर गयी, मानो उन्होंने आपाद्मस्तक लज्जा का वस्त्र ओढ़ लिया हो।।९।। छवि-सौन्दर्य की सीमा किशोरी अपनी ग्रीवा नमित करके छुईमुई सी सिकुड़ गयी। वे अपना अङ्ग भी नहीं छूने देतीं और उधर प्रेम-विवश प्रियतम आतुर भाव से उनकी मृदुल भुजाओं को अपनी भुजाओं में लेने का प्रयास करने लगे।।१०।। जब प्रियतम उनके वक्ष का स्पर्श करना चाहते हैं, तब भयवशात् उनके कर काँप उठते हैं। प्रियतम की मनोदशा को भाँप कर लाड़िली प्रिया अपनी दोनों भुजाओं को एकत्रित करके निज कर-कमलों से अपने वक्षस्थल को भली भाँति ढाँप लेती हैं।।११।। परम चतुरा प्रिया के झीने घूँघट में ढँके हुए सहज चञ्चल नयनों का अवलोकन करके प्रियतम के रोम-रोम में प्रेम -रस रूपी मदन हिलोरें लेने लगा।।१२।।

भये अधीर अधीन अति, कहि न सकत कछु बात।
फिरि-फिरि पाँइनि में परत, मृदु मुख हा-हा खात।।१३।।
यह गति देखत पीय की, चितई कछु मुसिकाइ।
करुना करि चूँवत मुखहि, अधर-सुधा-रस प्याइ।।१४।।
लटकि लाल-उर सौं लगी, उपजे अगनित भाइ।
बचन रचन सुख कहा कहौं, प्रीतम रहे लुभाइ।।१५।।
हाव-भाव में अति चतुर, रति-विलास रस-रासि।
चंचल नैंननिं चितवनी, करत मंद मृदु हाँसि।।१६।।
राखै लै अति प्यार सौं, उरजनि मधि भुज-मूल।
रुचि-प्रवाह में परे दोउ, तजि कै लाज-दुकूल।।१७।।

जिससे वे अधीर हो उठे, उनमें अत्यन्त प्रेमाधीनता छा गई, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी और वे बारम्बार अपने कोमल वचनों में चाटुकारी करते, हा-हा खाते श्री लाड़िली के चरणों में विलुण्ठित होने लगे।।१३।। प्रियतम की गति का अवलोकन कर प्रिया ने मन्द-मधुर मुसकान के साथ प्रियतम पर प्रेमपूर्ण दृष्टिपात किया एवं करुणामयी लाड़िली उनका मुख चुम्बन करती हुई अपनी अधर-सुधा का उन्हें पान कराने लगी।।१४।। जिस समय करुणामयी लाड़िली लटक कर प्रियतम के हृदय से लगी, उस समय श्रीलाल के मन में अगणित भावों का रसोद्भव होने लगा तथा प्रिया के मुख से प्रकट हुए मधुमय वचनों की रचना का अवर्णनीय सुख प्रियतम को रसलुब्ध करने लगा।।१५।। नवल किशोरी प्रिया रति-रस की अभूत राशि हैं। वे हाव-भाव के सृजन में अतिशय निपुण हैं। उनके नेत्रों की चितवन सहज-चपल है तथा उनका श्रीमुख सदा-सर्वदा मन्द-मधुर एवं सुकोमल हास्य से मुकुलित रहा आता है।।१६।। प्रियतम की रस-लुब्ध दशा का अवलोकन कर उन्होंने प्रियतम की विशाल बाहुओं को अपने वक्षस्थल पर बड़ी सहजता से धारण कर लिया और तब रसिक-युगल लज्जा रूपी दुकूल का परित्याग करके रसमय रुचि के प्रवाह में निमग्न हो गये।।१७।।

प्रेम-मदन-रस-रंग करि, भरे रहत विवि हीय।
लपटे ऐसी भाँति सौं, द्वै तन-मन इक कीय।।१८।।
अंग-अंग मन-मन मिले, प्रेम-मदन-रस-सार।
ऐसै रंग विहार पै, 'ध्रुव' कीनौ बलिहार।।१९।।

उज्ज्वल रस में प्रौढ़ा नायिका का स्वरूप दोहा

बिवस लाल सुख-रंग में, रही न देह सँभार।
प्रगट भई प्रौढ़ा-दसा, जाके प्रेम अपार।।२०।।
लये अंक भरि प्यार सौं, उरजनि सौं रही लाइ।
सावधान कीने तबै, नासा-पुट चटकाइ।।२१।।
परिरंभन चुंबन अधिक, आलिंगन बहु रीति।
रति-विपरित विलसत विविध, लये मीत रस जीति।।२२।।

प्रेम-केलि और रसानन्द से भरे हुए युगल के हृदय, कुछ ऐसी विलक्षण रीति से आलिङ्गित हुए कि उनके तन और मन की द्वैत स्थिति समाप्त होकर अद्वैत भाव से एक हो गयी।।१८।। इस प्रकार प्रेम-केलि के रस-सार में जिस रङ्ग-विहार के माध्यम से युगल के तन-मन-प्राण रँगे हैं, मैं (ध्रुवदास) एतज्जातीय रङ्ग-विहार पर अपने आपको न्यौछावर करता हूँ, बलिहार हूँ।।१९।।

नवोढ़ा-नायिका के स्वरूप प्राकट्य के पश्चात् जब नवल किशोरी में प्रौढ़ा नायिका की अपार प्रेममयी दशा प्रादुर्भूत हुई, तो श्री लाल जी का मन सुख के विलास में डूब गया। उन्हें अपनी देह का अनुसन्धान नहीं रहा।।२०।। प्रियतम की इस बेसुध स्थिति का अवलोकन करके प्रेम-द्रवित प्रिया ने प्रीतिपूर्वक प्रियतम को अपने अङ्क में समेट कर उन्हें अपने वक्षस्थल से लगा लिया एवं प्रियतम की नासिका के निकट अपनी कराङ्गुलियों से चुटकी-चटका कर उन्हें सावधान कर लिया।।२१।। तत्पश्चात् उदार शिरोमणि प्रिया ने अपने प्राण-प्रियतम को विविध रीतियों से अधिकाधिक आलिङ्गन,

बंक कटाक्षनि हरत मन, बिच-बिच मृदु मुसिकात।
पिय के उर पर लसत मनौ, छबि दामिनि झलकाति।।२३।।
श्रम जलकन मुख गौर पर, अंजन लसत सुदेस।
कहा कहौं छबि सहज की, खुलि रहे सगबग केस।।२४।।
पीक कपोलन फबि रही, कहुँ-कहुँ अंजन-लीक।
मनु अनुराग सिंगार मिलि, चित्र रचे अति नीक।।२५।।
जेती कोक-कला कही, अद्भुत प्रेम अनंग।
छिन-छिन औरै और विधि, उपजत अंगनि अंग।।२६।।
प्रेम-चाह-रस-सिंधु में, मगन रहत दिन-रैन।
उर सौं उर अधरनि अधर, जुरे नैंन सौं नैंन।।२७।।

परिरम्भन एवं चुम्बन दान से कृतकृत्य कर दिया। इस प्रकार विपरीति-रति का विविध विलास करते हुए अपने प्राण-मित्र श्री लाल जी को रस-केलि के माध्यम से जीत लिया।।२२।। उस समय रसपूर्ण तिरछे मनहरण नयन-कटाक्ष एवं बीच-बीच में मृदु मुस्कान पूर्वक प्रिया, अपने प्रियतम के विशाल वक्षस्थल पर विराजित होकर ऐसी शोभित हुई, मानो नव जलद पर छवि रूपी दामिनि झलमला रही हो।।२३।। उस समय सुकुमारी प्रिया के गौर मुख पर श्रम-जनित प्रस्वेद-कण एवं यत्र-तत्र अञ्जन की सुन्दर रेखाएँ अङ्कित हो गयीं। उनके मुख-मण्डल के चतुर्दिक स्नेह सिञ्चित विगलित केश-राशि की सहज छवि छा गयी जो कहने में नहीं आती।।२४।। ललित कपोलों पर अञ्जन की धूमिल रेखाओं के साथ अरुणिम ताम्बूल-पीक कुछ ऐसी फबी, मानों अनुराग एवं शृङ्गार-रस दोनों ने मिलकर उनके कपोलों पर रति के उत्तम चिह्न अङ्कित किये हों।।२५।। शृङ्गार-शास्त्रों में कोक-कला के नाम से जो भी विलास आदि वर्णित हैं, उनसे भी विलक्षण किंवा अद्भुत है—वृन्दावन नित्य-विहार देश का प्रेम रूपी अनङ्ग-विलास। इस प्रेम-विलास की प्रतिक्षण नयी-नयी एवं विचित्र रीतियाँ वृन्दावन-विलासी के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में प्रकट होती रहती हैं।।२६।। नित्य-विहारी प्रिया-प्रियतम प्रेम-लालसा के

रस-समुद्र गहरे परे, त्रिपित होत तउ नाहिं।
नैंन-मीन ललितादिकनि, तिरत फिरत तेहि माँहि।।२८।।
न्यारी-न्यारी दसा कही, एक स्वाद हित जानि।
जैसे एकै बात के कीने विंजन वानि।।२९।।
रति-विलास रस सींव करैं, मदन-विनोद बहु भाँति।
आतुरता पिय दृगन की, निरखि कुँवरि मुसिकाँति।।३०।।
निरखि-निरखि ऐसे सुखहिं, सखी सबै बलि जात।
तिनहूँ तैं फूली अधिक, आनंद उर न समात।।३१।।

रस-समुद्र में अहर्निश मग्न रहते हैं। उनके वक्ष से वक्ष, अधरों से अधर एवं नयनों से नयन सदा मिले रहते हैं।।२७।। यद्यपि रसिक युगल रस-समुद्र की अतिशय गहराई में स्थित हैं, तथापि उनको तृप्ति का अनुभव होता ही नहीं। रस-समुद्र की इस गम्भीरता में ललितादिक सहचरियों के नेत्र रूपी मीन तैरते हुए इतस्ततः (इधर-उधर) कल्लोलमान रहते हैं।।२८।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं इस प्रसङ्ग में प्रेमरस और उसके विलासों की जो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ वर्णित की गयी हैं, वे सब भिन्नताएँ आस्वादन के लिए हैं। वस्तुतः प्रेम, रस आदि नामों से एक हित का ही विलास सम्पन्न होता है, जैसे किसी एक खाद्य वस्तु से नाना नाम-रूप के व्यञ्जन निर्मित किये जाने पर भी उन व्यञ्जनों में मूल वस्तु एक ही होती है।।२९।। रति-विलास एवं रस की सीमा रसिक युगल बहुत-बहुत प्रकार से अनङ्ग विनोद का आस्वादन करते रहते हैं। प्रियतम-दृगों की आतुरता रूपी रस लोलुपता का अवलोकन करके किशोरी मुस्कुराने लगती हैं।।३०।। नित्य-विहार की सभी सहचरियाँ युगल रसिक के ऐसे अनुपम सुख को बारम्बार अवलोकन करके बलिहार होती रहती हैं। वे तत्सुखमयी सखियाँ युगल रसिक की उत्फुल्लता से भी अधिकाधिक उत्फुल्ल बनी रहती हैं। उनके हृदय में आनन्द का प्रवाह समाता ही नहीं, अपितु छलकने लगता है।।३१।।

श्रीप्रिया का तत्सुख भाव दोहा

सहजहिं सील सुभाव मृदु, रहैं प्रसन्न सब काल।
एक लाल सुख-स्वाद हित, करैं विलास नव बाल।।३२।।
प्यारी भौंहनि चितै रहे, परम रसिक सिरमौर।
चलत भाँवती रुचि लियैं, रुचत नहीं कछु और।।३३।।
रुचि-रुचि रस के रचे रुचि, मानौं प्यारी-पीय।
सहज प्रेम के रँग रँगे, द्वै तन-मन इक जीय।।३४।।
दैबैं कौं राख्यौ न कछु, अति उदार सुकुँवारि।
अधर-सुधा प्यावत पियहि, मुख-छबि रही निहारि।।३५।।

नवल किशोरी लाड़िली प्रिया का शील एवं स्वभाव सहज ही अत्यन्त सुकोमल है। वे सदा सर्वदा प्रसन्न बनी रहती हैं, वे सुकुमारी नव बाला हैं। उनके द्वारा जो भी रति-रसमय लीला-विलास सम्पन्न होते हैं, वे सब केवल उनके प्रियतम श्रीलाल जी के सुख-स्वाद के लिए ही होते हैं।।३२।। उन लीला-विलासों में प्रिया का अपना कोई सुख नहीं होता। जब परम रसिक शिरोमणि श्रीलाल जी प्राण-प्रिया की भृकुटियों की ओर इस लालसा से निहारते हैं कि मुझे प्रिया की प्रसन्नता एवं रुचि प्राप्त हो, तब प्रियतम की रुचि एवं लालसा की सदा-सर्वदा ज्ञाता प्रिया, प्रियतम की रुचि के अनुसार ही अपना समस्त आचरण बना लेती हैं और उन्हें तब प्रियतम की रुचि के अतिरिक्त अन्य सब विस्मृत हो जाता है।।३३।। युगल की ऐसी परस्पर रुचि-प्रियता का अवलोन करके लगता है, मानो किसी अभूत रचनाकार ने अत्यन्त रुचि-पूर्वक रस और रुचि की प्रिया-प्रियतम नामक दो व्यष्टियों की रचना की हो, जो सहज प्रेम के रङ्ग में रँगी हुई हों और जिनके तन तो दो हों परन्तु मन और प्राण एक ही हों।।३४।। नवल किशोरी लाड़िली परम उदार, सुकुमारी प्रिया हैं। उन्होंने प्रियतम को अपना सर्वस्व दे रखा है, देने के लिये कुछ शेष नहीं रखा। वे सदैव प्रियतम को अधर-सुधा का पान कराती हुई उनकी मुखच्छवि को निहारती रहती हैं।।३५।।

अति प्रवीन सब अंग में, जानत बहुत लड़ाइ।
सुख समुद्र में लाड़िली, लिये जनु लाल न्हवाइ।।३६।।
रुचि फुलवारी फूलि रही, प्रीतम के उर ऐंन।
सींचत प्यारी प्यार-जल, चितवन मुसिकन सैंन।।३७।।
अलक लड़ी पिय पर लटकि, प्यार सौं रही भुज डारि।
यातैं चित्र से ह्वै रहे, जिन भुज लेहिं उतारि।।३८।।
अंग-अंग छवि माधुरी, निरखत पिय न अघाइ।
देखि लाल के लालचहिं, लालच रहि ललचाइ।।३९।।
कहा कहौं या प्रेम की, पिय के गति नहिं आँन।
एक लाड़िली संग ही, जिनके जीवन प्रान।।४०।।

यों तो प्रिया प्रेम के सभी अङ्गों में प्रवीण हैं, तथापि वे प्रियतम का जैसा लाड़-प्यार करना जानती हैं, उतना अन्य कोई नहीं जानता। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि जैसे श्रीलाड़िली ने अपने लाल को सुख-समुद्र में ही डुबा रखा हो।।३६।। प्रियतम के हृदय रूपी भवन (प्राङ्गण) में रुचि रूपी पुष्प-वाटिका विकसित है, जिसे प्रिया अपनी चितवन, मुसकान एवं नयन -कटाक्ष के प्रेम रूपी जल से सदा सींचती रहती हैं।।३७।। जब अलक लड़ी प्रिया प्रीति-पूर्वक लटक कर प्रियतम की ग्रीवा पर अपनी भुज-लता डाल देती हैं, तब प्रियतम उस सुख से भरकर चित्र की भाँति जाड्य-भाव को प्राप्त हो जाते हैं।।३८।। उनका मन सशङ्कित हो सोचता रह जाता है कि कहीं प्रिया अपनी भुजा ग्रीवा पर से हटा न लें। वे हिलते तक नहीं। प्रिया के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की छवि-माधुरी का अवलोकन करते हुए कभी अघाते नहीं हैं। श्रीलाल की इस ललचान का अवलोकन करके मूर्त्तिमान् लालच भी लालायित हो रहता है।।३९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम की गति लाड़िली प्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। अतः उनके प्रेम की गति-स्थिति का वर्णन असम्भव है। किमअधिकम् एक-मात्र श्रीलाड़िली का सङ्ग-सहवास ही उनका जीवन-प्राण है।।४०।।

प्रियतम की आसक्ति का स्वरूप कवित्त

अलबेली सुकुँवारी नैंननिं के आगे रहै,
तब लगि प्रीतम के प्रान रहैं तन में।
यहै जिय जानि प्यारी रंचकौ न होति न्यारी,
तिनहीं के प्रेम-रंग रँगि रही मन में।।
परम प्रवीन गोरी हाव-भाव में किसोरी,
नये-नये छवि के तरंग उठैं छिन में।
'हित ध्रुव' प्रीतम के नैंन-मीन रस लीन,
खेलिबौ करत दिन-प्रति रूप-वन में।।४१।।

प्रेम का सूक्ष्म स्वरूप दोहा

स्थूल मदन रस कछु कह्यौ, अब सुनि सूक्षम रूप।
जहाँ विराजत एक रस, रहत हैं प्रेम सरूप।।४२।।

प्रियतम श्रीलाल जी की प्रेमासक्ति का यह विलक्षण स्वरूप है कि जब तक अलबेली सुकुमाराङ्गी प्रिया उनके नेत्रों के समक्ष विराजमान् रहकर दर्शन देती रहती हैं, तभी तक प्रियतम के प्राण उनके तन में शान्त एवं सुस्थिर बने रहते हैं। इस बात को अपने हृदय में अनुभव करके प्राण-प्रिया किञ्चित् मात्र भी प्रियतम से वियुक्त नहीं होतीं एवं निरन्तर प्रियतम के प्रेम रङ्ग में ही तन-मन से रँगी रहती हैं। स्वामिनी प्रिया सदा रूप-यौवन सम्पन्न किशोरी हैं। वे प्रेम के हाव-भाव आदि में परम निपुण हैं। उनके स्वरूप में प्रतिक्षण छवि की नयी-नयी तरङ्गें उठती रहती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनका रूप विशाल सागर है जिसमें प्रियतम के नेत्र रूपी मीन निरन्तर रस-लीन हुए जल-क्रीड़ा करते रहते हैं।।४१।।

अस्तु; श्री ध्रुवदास जी कहते हैं मैंने पिछले वर्णनों में मदन-रस अर्थात् प्रेम-विलास के कुछ स्थूल रूपों का वर्णन किया है और अब प्रेम के सूक्ष्म रूपों का वर्णन करुँगा, जहाँ एक रस निरन्तर शुद्धतम निष्काम प्रेम का स्वरूप विराजमान् रहता है।।४२।।

भीने दोउ आसक्ति रस, तन-मन रहे अरुझाइ।
एक प्यार ही दुहुँनि पर, रह्यौ सहज ही छाइ।।४३।।

कवित्त

प्यार ही की कुंज और प्यार ही की सेज रची,
प्यार ही सौं प्यारे लाल प्यारी बात करहीं।
प्यार ही की चितवनि मुसिकनि प्यार ही की,
प्यार ही सौं प्यारी जू कौं प्यारौ अंक धरहीं।।
प्यार सौं लटकि रहैं प्यार ही सौं मुख चहैं,
प्यार ही सौं प्यारौ प्रिया अंक भुज भरहीं।
'हित ध्रुव' प्यार भरी प्यारी सखी देखैं खरी,
प्यारै-प्यार रह्यौ छाइ, प्यार-रस ढरहीं।।४४।।

ऐसे प्रेम के शुद्ध स्वरूप युगल आसक्ति के रस में सराबोर हुए परस्पर में तन-मन से उलझे हुए हैं। दोनों पर केवल प्रेम-प्यार ही सहज रूप से छाया रहता है। प्रेम के अतिरिक्त यहाँ और कुछ है ही नहीं।।४३।।

प्रेम-निर्मित कुञ्ज भवन में प्यार की एक शय्या रची है, जिस पर प्यार के साथ विराजित प्यारे प्रियतम लाल जी अपनी प्यारी प्रिया से प्रेम प्यार की वार्त्ताएँ करते रहते हैं। युगल की चितवन प्यार की है और मुसकान भी प्यार की है। प्रेम-प्यार से उल्लसित प्रियतम अपनी प्यारी को अङ्क में समेटे हुए हैं। वे कभी प्रेम-प्यार की लटकन से लटक जाते हैं और कभी प्यार-पूर्वक परस्पर में एक-दूसरे का मुखावलोकन करते रहते हैं। तब प्यार से उमगती हुई प्यारी प्रिया, प्रियतम को अपनी भुजाओं से लपेट कर अँकवार में भर लेती हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल के इस प्यार भरे लीला-खेलन दृश्य को प्यार भरी सखियाँ अपनी सुध-बुध खोकर खड़ी देखती रह जाती हैं एवं प्रेम-प्यार के रस में प्रवाहित होती रहती हैं।।४४।।

दोहा

चितवन मुसिकन सौं रँगे, प्रेम-रंग रस-सार।
छके रहत मद मत्त गति, आनँद नेह सिंगार।।४५।।
दरसत परसत उरज उर, छुवनि कचनि भुजमूल।
पहिरैं पट दोउ प्रेम के, बिसरे नेम दुकूल।।४६।।
बूड़्यौ मन रस प्रेम में, धीरज धरि सकैं नाहिं।
नैंन-कमल हरुवे हुते, तिरत रूप-जल माहिं।।४७।।
फूल सुरँग अनुराग के, उर-उर में रहे फूलि।
मनहुँ भ्रमर मन दुहुँनि के, छबि-सुगंध रहे झूलि।।४८।।
जीवन मुसिकनि चितैवौ, अधर सुधा-रस स्वास।
लेत मधुप मन पिय मनौं, कोमल कमल सुवास।।४९।।

इस प्रकार रसिक युगल प्रेमरङ्ग रूपी सारातिसार रस से रँगी हुई चितवन एवं मुसकान से रँगे सदैव प्रेम के मद में छके, प्रेम के शृङ्गार से सुसज्जित प्रेमानन्दमय गति को प्राप्त रहते हैं।।४५।। रसिक लाड़िली-लाल कभी परस्पर में वक्षस्थलों का, कभी केशराशि का और कभी बाहु-मूल का स्पर्श करते हैं। दोनों ही प्रेम के वस्त्र धारण किये हुए हैं, नेम का उन्हें स्मरण ही नहीं रहा है।।४६।। रसिक युगल के मन प्रेम के रस में मग्न हो चुके हैं अतएव वे अधीर हैं, धैर्य धारण कर सकना उनके लिए असम्भव है। प्रेम के भार से उनका सब कुछ भारान्वित होकर प्रेम के महासमुद्र में डूब चुका है। यदि कुछ हलका है तो उनके नेत्र-कमल, जो सदैव युगल रूप के जल में तैरते रहते हैं।।४७।। रसिक युगल के हृदयों में अनुराग के अरुणिम पुष्प सदा फूले रहते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो दोनों के भ्रमर रूपी मन अनुराग के अरुणिम पुष्पों की शोभा एवं सुगन्ध से भूले हुए भ्रमित हो रहे हैं।।४८।। प्रियतम का भ्रमर रूपी मन जिस कोमल कमल की सुगन्धि से परिपुष्ट होता

पहिरैं दोउ अति फूल सौं, फूल-बिलास कौ हार।
केलिहुँ तहाँ भारी लगत, ऐसै दोउ सुकुँवार।।५०।।

अनिर्वचनीय प्रेम स्थिति कवित्त

माधुरी की कुंज तामें मोद की लै सेज रची,
तेहि पर राजैं अलबेले सुकुमार री।
रूप तेज मोद के जुगल तन जगमगैं,
हाव-भाव चातुरी के भूषन सुढार री।।
नेह-नीर नैंननिं की सैंननिं में रहे भींजि,
कौन रंग बाढ्यौ जहाँ बोलिबौऊ भार री।
अति ही आसक्त सखी रहीं मोहि जोहि-जोहि,
'हित ध्रुव' प्राननिं कौ यहै है अहार री।।५१।।

रहता है, वह प्रिया की मुसकान एवं चितवन है ; वही उनका जीवन है तथा अधर-सुधा रस का आस्वादन ही उनका श्वास अथवा प्राण तत्त्व है।।४९।। रसिक युगल श्रीश्यामा-श्याम अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रसन्नता- पूर्ण विलासों का हार धारण किये हुए सदा प्रसन्न मन बने रहते हैं। ऐसे परम सुकुमार सदा प्रसन्न युगल को अपने पारस्परिक सूक्ष्म प्रेम के सम्मुख केलि भारी किंवा अरुचिकर सी प्रतीत होने लगती है।।५०।। माधुर्य पुञ्ज की कुञ्ज में मोद किंवा प्रसन्नता की शय्या सुसज्जित है, जिस पर परम सुकुमार रसिक युगल विराजमान् हैं। उनके रूप, तेजस्विता एवं प्रसन्नता के दिव्य देहों पर हाव-भाव एवँ चातुर्य के सुमिल भूषण जगमगा रहे हैं। प्रेम-जल वर्षण करने वाले युगल के नेत्रों की भङ्गिमाओं से दोनों के तन-मन संसिक्त हो रहे हैं। इस भींजन में न जाने कौन सा अनिर्वचनीय आनन्द, वृद्धि को प्राप्त है ; जहाँ परस्पर में कुछ कहना, बोलना भी भार-रूप प्रतीत होता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, इस रसमय दृश्य का बारम्बार अवलोकन करके निकुञ्ज-भवन की रूपासक्त सखियाँ मोहित हो रहती हैं, क्योंकि यह विलास ही उनके प्राणों का आधार है।।५१।।

दोहा

रस ही की मूरति दोऊ, रसिक लाडिली-लाल।
रस ही सौं चितवत रहैं, रस भरे नैंन बिसाल।।५२।।
पिय परसत भुज मूल कर, और उरज हिय-हार।
बूड़ि जात मन रूप में, रहत न देह सँभार।।५३।।
प्रेम-नेम की दसा जिती, उपजत आनहिं आँन।
रस-निधान विलसत रहैं, सुख कौं नाहिं प्रमान।।५४।।

उपसंहार

दोहा

और न कछू सुहाइ मन, यह जाँचत निसि-भोर।
या सुख-धन सौं लगे रहौ, 'ध्रुव' लोइनि दिन मोर।।५५।।

निकुञ्ज विलासी रसिक लाड़िली-लाल प्रेम रस की ही युगल प्रति-मूर्त्तियाँ हैं। उनके विशाल नयन सदैव प्रेम-पूरित रहे आते हैं और उनकी दृष्टि से निरन्तर रस का ही निर्झरण होता रहता है।।५२।। जब रसिक प्रियतम रसवती प्रिया के बाहु-मूल का, उरोज कमलों का एवं वक्षस्थल पर लहराती हुई लोल हारावली का अपने कर कमलों से स्पर्श करते हैं, तो उनका मन रूप के रस-समुद्र में डूब जाता है एवं उन्हें देह का अनुसन्धान नहीं रह जाता।।५३।। इस प्रकार युगल के विलासों में प्रेम एवं नेम की जितनी भी स्थितियाँ हैं, वे सभी भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट होती हैं; अतएव रस-निधान युगल के विलास सुखों की कोई गणना नहीं की जा सकती। वह विलास-सुख वस्तु-प्रमाण और परिमाण दोनों से अतीत है।।५४।।

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे मन के लिए रसिक युगल के रस-विलास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी रुचिकर नहीं है। मेरी अहर्निश एक ही याचना है कि मेरे नेत्र इसी सुख रूपी धन के लोभ से सदा संलग्न रहे आवें।।५५।।

यह सुख निरखत सखिनु के, आनँद बढ़्यौ न थोर।
हेमलता फूली मनौं, झूँमि रही चहुँ ओर।।५६।।
छप्पन दोहा कहे 'ध्रुव', आनँद-दसा-विनोद।
रूप-माधुरी रँग रंगे, पगे प्रेम-रस-मोद।।५७।।

युगल के इस सुख का अवलोकन करके तत्सुखमयी सखियों के हृदय में आनन्द की अपार अभिवृद्धि होती रहती है, मानो उन सखियों का आनन्दातिरेक से भरा हुआ दर्शन करके अनेकों लताएँ चारों ओर रसवती हुईं झूम रही हैं।।५६।। अस्तु, वे पुनः कहते हैं कि मैंने 'आनन्द दशा विनोद' नामक ग्रन्थ में छप्पन दोहों की रचना की है। ये दोहे युगल रसिक की रूप-माधुरी के रङ्ग से रँगे हुए तथा प्रेम रस के उल्लास से पगे हुए हैं।।५७।।

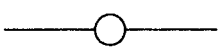

३३
रहस्य-लता

रस धर्म की श्रेष्ठता दोहा

जो कह्यौ श्री हरिवंश रस, बिरलौ समुझनहार।
एक दोइ जो पाइयै, खोजत सब संसार।।१।।
नव किशोर सुकुँवार तन, मृदु भुज मेले अंस।
जोरी सनी सनेह रस, प्रगट करी हरिवंश।।२।।
नव दूलहु नव दुलहिनी, एक प्रान द्वै देह।
वृंदावन बरसत रहै, नवल नेह कौ मेह।।३।।

(रसिकाचार्य शिरोमणि गोस्वामी) श्रीहित-हरिवंश चन्द्र ने वृन्दावनीय दम्पति के विलासमय जिस परमोज्ज्वल रस का उदय किया है, उस अनिर्वचनीय रस की श्रेष्ठतम स्थिति सूक्ष्मता, गम्भीरता एवं विलास की विलक्षणता आदि गुण-लक्षणों को हृदयङ्गम कर लेने वाले हृदयवान् रसिक उपासक सम्पूर्ण संसार में खोजने पर कोई विरले एक दो व्यक्ति ही शायद मिल सकें। तात्पर्य यह है कि श्री वृन्दावन की शृङ्गार-केलिमय रस-भक्ति सामान्य जन तो क्या, बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, योगी, जपी, तपी आदि के लिए भी दुर्गम एवं दुरूह है। यह उपासना परम सुकुमार निर्विकार एवं मृदुल मन की उपासना है।।१।। अस्तु, आचार्य श्री हित हरिवंश ने इस रसोपासना के आलम्बन-विभाव स्वरूप प्रेम-रस से सिक्त जिस युगल तत्त्व का प्रादुर्भाव किया है अर्थात् अपने उपासनीय रस के आश्रय एवं विषय स्थापित किये हैं, वे नव-किशोर सुकुमार तनु-धारी ललित लाड़िली-लाल किंवा श्री राधा-बल्लभ लाल अपनी मृदुल भुजाओं को परस्पर एक-दूसरे के स्कन्धों में आरोपित किये हुए श्री वृन्दावन के प्राङ्गण में अनादि-अनन्त रूप से क्रीड़ा-परायण हैं।।२।। वे नित्य वरवधू दो देहमय होकर भी एक प्राण हैं, तथा श्री वृन्दावन धाम

कहा कहौं पानिप मुखनि की, छबिहिं नाहिं कहुँ ओर।
राजत ऐसी भाँति मनौं, द्वै ससि चतुर चकोर।।४।।
सीस फूल सिखि-चंद्रिका, छबि की उठत झकोर।
मानौं छबि सिंगार ढिंग, निर्त्तत आनँद-मोर।।५।।
विवि भालनि विवि बरन की, बैंदी दई अनूप।
मनु अनुराग सिंगार की, जोरी बनी सरूप।।६।।

सोरठा

लोचन परम रसाल, कजरारे सुठि सोहने।
चंचल नैंन विसाल, अनियारे मन-मोहने।।७।।

में नित्य-निरन्तर नव-नव प्रेम की वृष्टि करते रहते हैं।।३।। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं, उन अनुपम रूप धारी युगल के मुख-लावण्य एवं शोभा का कोई ओर-छोर नहीं है। उनका सौन्दर्य, माधुर्य कुछ ऐसा लगता है, मानो दो चन्द्रमा और उनका रसपान करते हुए चार-चकोर उपस्थित हों।।४।। श्री प्रिया के शिरोभाग पर शृङ्गारित शीश-फूल एवं प्रियतम के आपीड़ पर लहराती हुई मयूर-चन्द्रिका शोभा की लहरें उठाती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो छवि रूपी शृङ्गार के समीप आनन्द रूपी मयूर नृत्य-परायण हों।।५।। लाड़िली-लाल के युगल ललाट-पटल पर विराजमान् भिन्न-भिन्न दो वर्णों की अनुपम दो बिन्दियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो अनुराग एवं शृङ्गार-रस की साक्षात् जोड़ी शोभा दे रही हो।।६।। युगल किशोर के कजरारे, सुहावने, सुन्दर एवं रसमय विशाल लोचन अतिशय चञ्चल, नुकीले एवं मनोमुग्धकारी हैं।।७।।

अरिल्ल

देखत आप में रूप न कबहुँ अघात हैं।
दोऊ इक रस रीति न प्रेम समात हैं।।
पलु-पलु में रुचि बढ़ै सखी मुसिकात हैं।
हरि हाँ, मुख सौं मुख रहे जोरि तऊ ललचात हैं।।८।।

श्रृंगार और रूप की एकता दोहा

झलकनि बेसरि दुहुँनि की, उपमा कही न जाइ।
स्वाँस पवन मुक्तनि डुलनि, सो छबि रही उर छाइ।।९।।
कहा कहौं छबि नासिकनि, सुक तिल फूलनि डारि।
अधर सुरँग बंधूक तें, बिंब पँवारनि वारि।।१०।।

रसिक युगल श्री श्यामा-श्याम अनन्त रूप लावण्यमय हैं। वे परस्पर एक-दूसरे का रूप-दर्शन करते हुए कभी अघाते नहीं हैं। दोनों की प्रीति-रीति एक सी है एवं दोनों का आन्तरिक प्रेम उनके हृदय-पात्रों में समाता नहीं, अपितु छलकता रहता है। युगल की प्रेम, रस, रूप की रुचि प्रतिपल बढ़ती ही रहती है, जिसका दर्शन करके तत्सुखमयी सखियाँ आनन्द-मोद से भर कर मुस्कुराती रहती हैं। यद्यपि रसिक युगल अपने मुख-चन्द्रमाओं को सदैव मिलाए रहते हैं, तथापि उनका प्रेम-लालच घटता नहीं, अपितु बढ़ता ही रहता है।।८।।

रूप धाम युगल के नासा-मौक्तिक की झलक अनुपम है, जो कहने में नहीं आती। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि उनके श्वासोच्छ्वास पवन के स्पर्श से तरलित नासा-मौक्तिक की छबि मेरे हृदय में विशद रूप से छा रही है।।९।। मैं उनकी ललित नासिकाओं की छबि का क्या वर्णन करूँ, जिन पर शुक-पक्षी की नासा-बनिक एवं तिल के पुष्प न्यौछावर हैं। अरुणिम अधर पल्लवों पर बन्धूक पुष्प, बिम्बा-फल एवं अरुण पवार (पुष्प-विशेष) भी वार देने योग्य हैं।।१०।।

चिबुक मध्य बन्यौ सहजहीं, बिंदुकन अतिहि अनूप।
पिय साँवल कौ मन मनौं, पर्‌यौ राग के कूप।।११।।
बंक चितवनी रस भरी, बेधे प्रीतम प्रान।
जद्‌पि सूर प्रवीन हैं, भूले सबै सयान।।१२।।
रूप-छटा छबि की छटा, उमड़ी रहतिं अनेक।
कैसैं सकै सँभारि सखि, पिय-मन-चातिक एक।।१३।।
छुटे बार सौंधे सने, श्रम-जलकन मुख जोत।
मानौं सींव सिंगार की, बनी कंठ पर पोत।।१४।।
जलज हार हीरावली, रतनावली सुरंग।
अनुराग सरोवर में मनौं, उठत हैं रूप तरंग।।१५।।

श्री प्रिया के ललित चिबुक के मध्य में सहजता से शोभित श्याम बिन्दु-कण अत्यन्त अनुपम है, जिसका दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रियतम श्याम सुन्दर का शृङ्गार-रस पूर्ण मन आज अनुराग के कूप में जा गिरा है।।११।।लाड़िली की रसभरी बङ्क चितवन प्रियतम के प्राणों को बेध रही है। यद्यपि प्रियतम श्यामसुन्दर प्रेम रूपी रणाङ्गण के निपुण योद्धा हैं, तथापि प्रिया के नयन-बाणों के आघात से उनका समस्त युद्ध-चातुर्य विस्मृत हो गया है।।१२।। एक सखी अपनी सहेली से कहती है कि हे सखी! हमारी रूप-निधि प्रिया के सर्वाङ्ग से रूप-छवि की अनेक छटाएँ प्रतिक्षण नवीन-नवीन प्रकार से उमड़ती रहती हैं और इधर रसिक प्रियतम का चातक रूपी अकेला मन है, सो उन सब छटाओं को कैसे सँभाल सकता है।।१३।। उनकी सुगन्ध सिञ्चित विगलित केश-राशि एवं ज्योतिर्मय मुख-मण्डल पर उदित प्रस्वेद कणों की छटा अपूर्व है। कण्ठ-कपोत पर धारण की हुई पोतों की दुलड़ी मानो शृङ्गार की सीमा-रेखा है।।१४।। इसी प्रकार वक्षस्थल पर झलकती हुई मोतियों की मालाएँ, हीरों की लड़ियाँ एवं अरुणिम रत्नों की हारावली ऐसी लगती हैं, मानो अनुराग के तड़ाग में रूप की तरङ्गें उठ रही हों।।१५।।

पानिप झलक कपोल पर, अलक रही सुठि सोहि।
रसिक लाल पाइनिं परत, छिन-छिन यह छबि जोहि।।१६।।
कहि न सकत अंगनि-प्रभा, मेरी मति अति हीन।
चंद्र सिमंतक दामिनी, जंबूनद रद कीन।।१७।।
मोतिन की लर बीच-बिच, कंठ गुराई रेष।
निरखि फँस्यौ मन मोद-फँद, बिसर्‌यौ मोहन वेष।।१८।।
कुच कमलनि की छबि निरखि, रहे लाल ललचाइ।
अति विशाल अँखियन निरखि, चितई मुरि मुसिकाइ।।१९।।
अति सुदेश अँगिया बनी, कसनि कसी छबि देति।
भुज मूलन की गौरता, पिय प्रानँनि हरि लेति।।२०।।

कपोलों पर लावण्य की झलक के साथ सुन्दर सुहावनी अलक लट के सौन्दर्य-सङ्गम का अवलोकन करके रसिक लाल क्षण-क्षण में रीझे हुए प्रिया के चरणों में नमित होते रहते हैं।।१६।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि नवल किशोरी लाड़िली की श्री अङ्ग प्रभा ने चन्द्रमा, स्यमन्तक मणि, विद्युल्लता एवं जाम्बूनद-स्वर्ण को भी तुच्छ कर दिया है।।१७।। प्रिया के कण्ठ-देश में मोतियों की लड़ियों के बीच-बीच में दर्शित गौर-कण्ठ की रेखा का अवलोकन करके प्रियतम का मन आनन्द के पाश में फँस गया एवं उनको अपना मोहन रूप भी विस्मृत हो गया।।१८।। नवल-किशोरी प्रिया के वक्षोज-कमलों की छवि का दर्शन करके प्रियतम लाल जी ललचाए रह गये। उनकी ललचान् को निहार कर प्रिया ने अपने विशाल नेत्रों की कनखियों से मुस्कुराते हुए उनकी ओर देखा तो प्रियतम रस-विभोर हो गये।।१९।। लाड़िली के वक्षस्थल पर धारण की हुई कञ्चुकी बड़ी सुहावनी है। उसकी तनियों की कसन अपूर्व छविदात्री है। गौराङ्गी की ललित भुजाओं के मूल में दृश्यमान् गौरता प्रियतम के प्राणों को अपनी अपूर्व शोभा से हरण कर रही है।।२०।।

सोभा की सरिता उदर, नाभि भँवर रस ऐंन।
परे तहाँ निकसत नहीं, प्रीतम के मन-नैंन।।२१।।
बसन सहाने अति सुरँग, चुनि पहिराये बानि।
मिहँदी परम सुरंग सौं, रचे चरन मृदु-पानि।।२२।।

युगल की प्रेम-विवशता दोहा

प्रेम बेलि दुहुँ में बढ़ी, फूली फूल-बिलास।
निसि-दिन पहिरे रहत उर, दंपति हार-हुलास।।२३।।
पिय नैंननिं में प्रिया बसै, प्रिया नैंननिं में पीय।
हिय सौं हिय लागे रहैं, मिलि रहे जिय सौं जीय।।२४।।

लाड़िली का उदर-देश शोभा की सरिता है, जिसमें गम्भीर-नाभि रसधाम आवर्त्त है। इस आवर्त्त में जब प्रियतम के मन और नेत्र जा गिरते हैं, तब वहाँ से उनका निकलना असम्भव हो जाता है।।२१।। युगल के लाड़-प्यार में अनुरक्त रहने वाली सखियों ने चुन-चुन कर एवं सजा-सजा कर लाड़िली प्रिया को नव-बधू के अरुणिम वस्त्रों में सुसज्जित करके उनके मृदुल कर-तलों एवं चरण-तलों को मेंहदी के सुरङ्ग रङ्ग से आरक्त कर दिया है।।२२।।

युगल रसिक के हृदय में प्रेम की मृदुल बेलि वृद्धि को प्राप्त होकर विलास के पुष्पों से सदा पुष्पित रहती है। रसिक दम्पति उस लता-पुष्प से निर्मित उल्लास रूपी हार को अहर्निश अपने हृदयों पर धारण किये रहते हैं।।२३।। युगल के प्रेम की यह विलक्षण स्थिति है कि प्रियतम के नयनों में सदा प्रिया बसी रहती है, और इसी प्रकार, प्रिया के नयनों में सदा प्रियतम बसे रहते हैं। उनके हृदय से हृदय सदैव आलिङ्गित रहते हैं एवं प्राणों से प्राण मिलकर एक हो गये हैं।।२४।।

दरसत परसत हँसत ही, बीते कलप अनेक।
कबहुँ न आई पिय हियैं, मिलि बैठे घरी एक।।२५।।
अति उदार सुकुँवार दोउ, रसिक सूर रस माँहिं।
छिन-छिन बाढ़त चौंप नई, नैंकु मुरत मन नाँहिं।।२६।।
रसिक रँगीले रँग भरे, अति हि रसीले आहि।
अद्‌भुत छबि की माधुरी, जीवत हैं दोउ चाहि।।२७।।
बदन किसोरी चंद मनौं, भये किसोर चकोर।
पल न परत निरखत रहैं, नवल नैंन की कोर।।२८।।
बंक भृकुटि अति सोहनी, बिच-बिच मुसिकनि मंद।
कैसैं निकसै पर्‌यौ मन, रचे जहाँ इते फंद।।२९।।

इस प्रकार परस्पर देखते, स्पर्श करते एवं हँसते-मुस्कुराते हुए यद्यपि अनेकों कल्प व्यतीत हो चुके हैं, तथापि प्रेमाधिक्य के कारण रसिक प्रियतम के मन में यह सन्तुष्टि कभी नहीं हुई कि हम (लाड़िली लाल युगल) कभी एक घड़ी भी सुस्थिर भाव से मिल बैठे हों।।२५।। रस रूपी रणाङ्गण में युगल रसिक सूर अतिशय उदार एवं सुकुमार हैं, तथापि प्रतिक्षण नव-नव उल्लास की वृद्धि के कारण उनका मन सुरत-समर से किञ्चित् भी पीछे नहीं हटता।।२६।। निकुञ्ज विलासी श्री श्यामा-श्याम युगल रँगीले रसिक हैं, जो सदा प्रेम के रङ्ग (आनन्द) से भरे रहते हैं। वे रस की मूर्ति हैं, अतएव अत्यन्त रसीले हैं। उनकी छवि सौन्दर्य माधुरी अनुपम एवं अद्भुत् है और दोनों ही दोनों की परस्पर रूप-माधुरी का दर्शन आस्वादन करके जीवन धारण करते हैं।।२७।। यदि ऐसा माना जाय कि नवल-किशोरी का श्रीमुख चन्द्रमा है, तो नवल-किशोर प्रियतम के नेत्र चकोर बने रहते हैं। चकोर-किशोर अपने डहडहे नेत्रों की कनखियों से अपलक प्रिया-मुख चन्द्र को निरखते रहते हैं।।२८।। रूप राशि नवल किशोरी की अत्यन्त शोभामयी धनुषाकार बङ्क भृकुटियाँ, बीच-बीच में प्रफुल्ल मुख की मन्द मधुर

देखि दसा पिय लाल की, रही वाम तन घूँमि।
कोमल हिय अति हेत सौं, लागी पिय हिय झूँमि।।३०।।

परिकर की युगल-विलास से एक-रूपता सोरठा

अद्‌भुत प्रेम विहार, रह्यौ प्यार ध्रुव छाइ कै।
तैसेई दोउ सुकुँवार, और सखिनु गति एकही।।३१।।

दोहा

पिय कौ मन प्यारी प्रिया, प्यारी कौ मन लाल।
पहिरैं पट तन-तन बरन, चलत एक ही चाल।।३२।।

मुसकान जैसे प्रभावकारी बन्धन जहाँ उपस्थित हों, वहाँ फँसा हुआ प्रियतम का मन भला कैसे निकल सकता है ?।।२९।। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि नवल-किशोरी प्रिया, प्रियतम श्री लालजी की प्रेम-विवश स्थिति का अवलोकन करके विथकित हो जाती हैं क्योंकि वे अतिशय मृदुल हृदय हैं। वे अतिशय भावावेश में झूम कर प्रियतम को अपने हृदय से लगा लिया करती हैं।।३०।।

पुनः श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि श्री वृन्दावन का विशुद्ध प्रेम-विहार अपने आप में अद्भुत, अनुपम एवं विलक्षण है; क्योंकि इस विहार में अटल रूप से केवल प्रेम ही प्रेम छाया रहता है, जैसे प्रेमस्वरूप सुकुमार युगल श्रीलाड़िली- लाल हैं, वैसी ही अभिन्न प्रेम-गति अनन्य रसिक एवं युगल-विहार में ही रसलीन उनकी सखियाँ हैं।।३१।। अर्थात् वृन्दावन-विहार में युगल एवं सखियों का आस्वाद्य रस केवल प्रेम है। जिस प्रकार प्रियतम श्री लालजी का मनस्तत्व केवल प्राण-प्रिया हैं, उसी प्रकार प्रिया का मनस्तत्त्व प्रियतम श्रीलाल हैं। ये एक मन, एक-प्राण युगल अपने श्री अङ्गों में परस्पर एक दूसरे की देहों के रङ्ग के नील-पीत वस्त्र धारण किये हुए मिलित गति अर्थात् एक ही गति से गमन करते हैं।।३२।।

सील सुभाव सनेह गुन, वय अरु रूप समान।
रँगे परस्पर एक रँग, अति प्रवीन रसजान।।३३।।
छिन-छिन बाढत नेह नव, पल-पल रूप-तरंग।
इक रस प्रेम छके रहैं, भीने रंग अनंग।।३४।।
मोहे मोहन मैंन-रँग, चितवनि भौंहनि भाइ।
कबहुँ बिवस चेतत कबहुँ, प्यारी प्यार उपाइ।।३५।।
खेलत रहसि निकुंज में, अतिहि रहसि निजु-केलि।
लपटी प्रेम-तमाल सौं, मनौं रूप की बेलि।।३६।।
नूपुर भूषन मनि झलक, किंकिनि शब्द अपार।
सखियनि हियौ सिरात सुनि, झनक-झनक झनकार।।३७।।

युगल रसिक का शील (चरित्र), स्वभाव (प्रकृति), स्नेह (प्रेम), गुण (वात्सल्य), औदार्य आदि सब समान हैं। वे रस धर्मों के अतिशय निपुण ज्ञाता होने से परस्पर एक दूसरे के प्रेम-रङ्ग में रँगे रहते हैं।।३३।। युगल में प्रतिक्षण नये-नये प्रेम की वृद्धि होती रहती है। पल-पल में रूप की तरङ्गें नित्य नये प्रकार से बदलती रहती हैं, इसलिये अनङ्ग रूपी प्रेम के आनन्द- रङ्ग में भीगे हुए युगल निरन्तर व्यवधान-रहित प्रेम में छके रहते हैं।।३४।। प्रिया की भृकुटियों से उत्पन्न भावों का दर्शन करके सबको मोहित करने वाले मोहन भी मदन-विलास के रङ्ग में मोहित ही नहीं होते, अपितु कभी प्रेम विवश एवं कभी चेतना-युक्त होते रहते हैं। इन सब परिस्थितियों में श्री लाल को सञ्जीवन दान करने का एक ही उपाय है—प्रिया का प्रेम।।३५।। ऐसे रसिक युगल रहस्यमय निकुञ्ज-भवन में अत्यन्त एकान्तिक सहज (निज) केलि की क्रीड़ा करते हैं, तब ऐसा लगता है मानो प्रेम रूपी श्याम तमाल से रूप की गौराङ्ग-लता आलिङ्गित हो रही हो।।३६।। विहारावसर प्रिया के नूपुरों, मणि-भूषणों एवं किङ्किणी की झनक-झनक-झनकार शब्दों का श्रवण करके रसिक सखियों का हृदय शीतल हो जाता है।।३७।।

कबहुँ बात मुसिकात बिच, फिरि-फिरि फिरि लपटात।
ऐसै रंग बिहार में, तदपि न सखी अघात।।३८।।
रीति दुहुँनि की एक ही, हारत नाहिंन कोइ।
जो छिन आवत है सखी, चौंप चौगुनी होइ।।३९।।
लागे आनँद बेलि सौं, चितवनि मुसिकनि फूल।
लाज बसन तजि कैं मनौं, पहिरे फूल-दुकूल।।४०।।
नैंन-कटाक्षनि की चलनि, चितै रहे मुसिकाइ।
तबहिं कुवँरि दै अधर-रस, लीने उर सौं लाइ।।४१।।
पिय कै औषध यहै है, अधर-सुधा-रस पान।
एक लाड़िली सहज ही, जिनकैं जीवन-प्रान।।४२।।

एकान्तिक निकुञ्ज विहार में कभी रसिक युगल रसमयी वार्त्ता करते हुए मुस्कुराते हैं, तो कभी एक-दूसरे को हृदय से लगाने लगते हैं। ऐसे रसमय रङ्ग-विहार का साक्षात् दर्शन-अवलोकन करके भी रस-रूपा सखियाँ कभी अघाती नहीं हैं।।३८।। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि परस्पर में वार्त्ता करती हुई एक सखी दूसरी से कहती है कि हे सखी ! हमारे युगल रसिक लाड़िली लाल की एक ही रीति है, जो अत्यन्त विलक्षण है। वह यह कि इस निकुञ्ज-क्रीड़ा में दोनों में से कभी कोई पराजित ही नहीं होता और यदि किसी की पराजय का क्षण आ उपस्थिति होता है तो उनका उल्लास चौगुना बढ़ जाता है।।३९।। उस समय रसमयी प्रिया की छवि कुछ ऐसी दिखती है, जैसे आनन्द की लता में चञ्चल चितवन एवं मुस्कान के फूल खिले हों तथा उस आनन्द ने लज्जा रूपी वस्त्रों का परित्याग करके प्रसन्नता स्वरूपी साड़ी धारण कर रखी हो।।४०।। यदि किसी समय रूप राशि नवल किशोरी प्रिया के नयन कटाक्षों का सञ्चलन देखकर प्रियतम मुस्कुरा उठे, तभी प्रिया ने उन्हें अधर-रस का दान देकर हृदय से लगा लिया। ऐसा यहाँ का सहज प्रेम-धर्म है।।४१।। प्रेम-रुग्ण प्रियतम के लिये एक ही औषधि है—प्रियतमा प्रिया का अधरामृत-रस-पान, क्योंकि एक मात्र

अंगनि की छबि चितैवौ, यह जीवन पिय जीय।
और भुजनि भरि हेत सौं, रहत लाइ जब हीय।।४३।।
रस-पति रति-पति भूलि रहे, देखत अद्‌भुत रीति।
घटत न कबहुँ बढ़त रहै, छिन-छिन नव-नव प्रीति।।४४।।
हँसि चितवति जब लाड़िली, डगमगात सुकुमार।
अति प्रवीन रस नागरी, थाँभि लेति तेहि बार।।४५।।
बिवस होत जब दोउ प्रिय, माते प्रेम-अनंग।
रहति सहेली-सहचरी, सावधान तिन संग।।४६।।
अधर-अधर हिय सौं हियौ, उरजनि सौं पिय-पान।
अंगनि छ्वावत चेत भये, समुझत सखी सुजान।।४७।।

लाड़िली प्रिया ही सहज स्वाभाविक रूप से उनकी जीवन प्राण हैं।।४२।। प्रियतम के प्राणों का जीवन प्रिया के मधुमय श्री अङ्गों की छवि का अवलोकन एवं प्रिया द्वारा अतिशय प्रीतिपूर्वक अपनी ललित-भुजाओं में भर कर उन्हें हृदय से लगा लेना है।।४३।। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं वृन्दावन-विलासी लाड़िली-लाल की लोक वेद-विलक्षण अद्‌भुत प्रीति-रीति का अवलोकन करके साक्षात् शृङ्गार-रस एवं रति-पति कन्दर्प भी भूले से रह जाते हैं; क्योंकि रसाधिपति शृङ्गार रस एवं रति पति कामदेव के स्वरूप में न्यूनाधिकता (उतार-चढ़ाव) तथा उद्भव-विसर्जन आदि होता रहता है, किन्तु नित्य-विहारी लाड़िली-लाल की प्रीति प्रतिक्षण नवीन एवं सम्वर्धन-शील बनी रहती है। उसमें वृद्धि तो होती है, किन्तु उसका ह्रास नहीं होता।।४४।। अस्तु, जब लाड़िली प्रिया प्रियतम की ओर मुस्कराती हुई दृष्टिपात करती हैं, तब सुकुमार प्रियतम रस-विभोर हुए डगमगाने लगते हैं, तभी रसिक नागरी प्रवीण प्रिया, प्रियतम को सँभाल लेती है।।४५।। इसी प्रकार जब युगल प्रियतम प्रेम-रूपी अनङ्ग से उन्मत्त एवं विवश हो जाते हैं, तब उनके साथ छाया की भाँति रहने वाली सखी-सहचरियाँ उन्हें सावधानी-पूर्वक सँभाल लेती हैं। (रस-विदग्धा सखियाँ अत्यन्त सावधान एवं सुझबूझ

कबहुँ प्रिया पट पीय के, पिय प्यारी के वास।
पहिरैं दोउ आनंद में, निर्त्तत रास-बिलास।।४८।।
हावभाव निर्त्तत मनौं, चितवनि सुलप सुदेस।
उरप-तिरप झटकनि भुजनि, खुले सगबगे केस।।४९।।
अधरनि की जुरी मंडली, करनि फिरनि सुख मूल।
नैंन सैंन देसी सरस, मुसिकनि बरसत फूल।।५०।।
राग बचन धुनि भूषननि, बाजे बजत अनंग।
सखी मृगी रहीं मोहि कै, जिनकै प्रेम अभंग।।५१।।

वाली हैं। वे यह जानती हैं कि युगल को प्रेम विभोर स्थिति रो किन प्रक्रियाओं द्वारा सचेत किया जा सकता है।) तदनुसार वे युगल के अधर-से अधर, वक्षस्थल से वक्ष एवं प्रिया उरोजों से प्रियतम के कर-कमल आदि अङ्गों का संस्पर्श कराके उन्हें सावधान कर लेती हैं।।४७।। प्रेम-खिलाड़ी युगल अत्यन्त रस-विनोदी हैं, कभी श्री प्रिया प्रियतम के पट धारण कर लेती हैं और कभी प्रियतम प्यारी के वस्त्र धारण करके आनन्दित हुए रास-विलास का नृत्य करने लगते हैं।।४८।। जब युगल नृत्य परायण होते हैं, तब ऐसा लगता है, मानो उनके हाव-भाव ही मूर्त्तिमान होकर नृत्य कर रहे हैं। उस नृत्य में सुन्दर सुलप गति ले रही होती हैं युगल की चितवन। भुजाओं की झटक-मटक ही नृत्य की उरप-तिरप गतियाँ बन जाती हैं। नृत्य की अति लाघवता के कारण युगल की स्नेह-सिक्त स्निग्ध केश-राशि विगलित हो उठती है।।४९।। उनके इस अभूत नृत्य में अधरों की नृत्य मण्डली एकत्रित हो जाती है। भुजाओं का नर्त्तन ही सुख का मूल बन जाता है, नेत्रों का सञ्चलन ही रसमय देसी, पूर्वी आदि रागनियाँ हो जाती हैं एवं जहाँ मुस्कान की ही पुष्प-वृष्टि हो रहती है।।५०।। युगल भूषणों की झंकृति, राग रागनियों की संगीतमय वचनावली इस रास में अङ्ग के वाद्य होकर बजती हैं। इस रास-विलास का दर्शन करके जिनके हृदय में युगल

निसि दिन है अवलंब यह, अद्‌भुत जुगल-बिहार।
ललितादिक निज सहचरी, छिन-छिन करतिं सिंगार।।५२।।

रस की सर्वोपरिता रूपी दुरूहता दोहा

सह रस तौ कछु सुगम नहिं, तन-मन तें अति दूर।
जानत तेई रसिक जन, जिनकै जीवन-मूरि।।५३।।
ब्रह्मादिक मुकुटनिं सहित, जिनकौं घसत है सीस।
प्रिया-चरन जावक रचत, तेइ वृंदावन-ईस।।५४।।
यह बिलास जो चिंतवत, चिंता मन मिटि जाहि।
आनंद कौ दीपक दिपै, निसि-दिन तेहि उर माँहिं।।५५।।

के प्रति अभङ्ग प्रेम है, वृन्दावन नित्य-विहार की वे सखियाँ एवं हरिणियाँ मोहित होती रहती हैं।।५१।। ऐसा अद्भुत युगल-विहार ललिता-विशाखा-दिक निज सहचरियों का जीवन अवलम्ब है, अतएव ये सखियाँ इस शृङ्गारकेलि को प्रतिक्षण सँवारती-सजाती रहती हैं।।५२।।

ध्रुवदासजी कहते हैं कि वृन्दावन का यह नित्य-विहार रस युगल का अद्भुत प्रेम एवं उसकी लोक-वेदातीत स्थिति अत्यन्त दुर्लभ एवं दुर्गम गति है। सामान्य कर्म-धर्म आदि की भाँति सुगम नहीं है। इस प्रेम-रस-विहार की स्थिति रसिक-जनों के अतिरिक्त अन्य सभी उपासकों के तन और मन से भी अत्यन्त सुदूर है। इसके ज्ञाता तो वे रसिक-जन ही हैं, जिनका जीवन सर्वस्व है केवल वृन्दावन प्रेम-विलास।।५३।। ब्रह्मादिक देवाधिदेव भी मुकुटों सहित अपना ललाट जिनके चरणों में घिसते रहते हैं, वही श्रीवृन्दावनाधीश नित्य किशोर प्रिया के चरणों में अलक्तक रङ्ग रञ्जित करते रहते हैं।।५४।। जो भाग्यवान उपासक इस युगल विलास का चिन्तन करता है, उसके चित्त की चिन्ता वृत्ति समाप्त हो जाती है। (अर्थात् वह भोजनाच्छादनादि लौकिक चिन्ताओं से सर्व निश्चिन्त हुआ रसमूर्ति लाड़िली-लाल के रूप रस-चिन्तन में निरन्तर मग्न बना रहता है।) इस

यह रस परस्यौ नाँहिं जिन, तिनहिं न नैंकु जताइ।
जैसैं धन कौ धनीं 'ध्रुव', राखत दूरि दुराइ।।५६।।
सहज अलौकिक प्रेम वर, दंपति रहे लुभाइ।
लौकिक रसना कै कहौ, कैसैं बरन्यौ जाइ।।५७।।
वृंदावन वर कल्पतरु, सर्वोपरि 'ध्रुव' आहि।
मनहूँ कै जो चिंतवत, देत तबहिं फल ताहि।।५८।।
दोहा रहसि लतानि के, अष्ट उपरि पंचास।
सुनत सुनावत बढ़त उर, 'हित ध्रुव' प्रेम-विलास।।५९।।

रस-चिन्तन की कृपा से उसके हृदय में अहर्निश आनन्द का दीपक जगम-गाता रहता है।।५५।। इस रस का जिन्होंने कभी स्पर्श भी नहीं किया, उनसे इसकी चर्चा तक नहीं करनी चाहिए वरन उसे ऐसे गोप्य रखना चाहिए जैसे कोई धनवान् पुरुष अपने धन को अन्य सबकी दृष्टि से बचाकर किसी गुह्य स्थान पर छिपाये रखता है।।५६।। आप ही बताएँ श्रीश्यामा-श्याम को भी अपने में रमाये रखने वाले श्री वृन्दावन के इस अलौकिक, सहज एवं श्रेष्ठ प्रेम-विलास रूपी अनिर्वचनीय रस का पञ्चभूतमय लौकिक जिह्वा द्वारा कैसे वर्णन किया जा सकता है?।।५७।। सन्त श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि श्री वृन्दावन धाम सर्वोपरि श्रेष्ठतम कल्पतरू है, जो मन से भी चिन्तन-स्मरण करने वाले को तत्काल वाञ्छित् फल प्रदान करता है।।५८।।अस्तु, वे अब ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए पुनः कहते हैं कि 'रहस्य-लता' नामक ग्रन्थ के अट्ठावन दोहे हैं, जिन्हें सुनने और सुनाने से निश्चित ही श्रोता-वक्ता के हृदय में युगल-प्रेम-विलास के प्रति हित की स्थापना होती है।।५९।।

कुण्डलिया

बार-बार तो बनत नहिं, यह संजोग अनूप।
मानुष तन वृंदाविपिन, रसिकनि सँग विवि रूप।।
रसिकनि सँग विवि रूप;, भजन सर्वोपरि आही।
मन दै 'ध्रुव' यह रंग, लेहु पल-पल अवगाही।।
जो छिन जात सो फिरत नहीं, करहु उपाइ अपार।
सकल सयानप छाँड़ि भजि, दुर्लभ है यह बार।।६०।।

मानव-तन की प्राप्ति, श्री वृन्दावन का निवास, रसिक भक्तों का सङ्ग एवं श्री श्यामा-श्याम युगल रूप की इष्टता का यह अनुपम संयोग जीवन में अथवा अन्य जीवनों में बारम्बार सहज रूप से नहीं बनता। भजन की उज्ज्वल रसमयी सर्वोपरि रीति भी यही है, अतएव मन देकर इस आनन्द रङ्ग का प्रतिपल अवगाहन करना चाहिये, क्योंकि जीवन का जो क्षण व्यतीत हो जाता है, अनेक उपाय करने पर भी वह क्षण लौटकर पुनः हस्तगत नहीं होता। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि अपनी सारी चतुराई छोड़कर श्रीलाड़िली-लाल का भजन ही करना चाहिए; क्योंकि यह उपरिवर्णित संयोग प्राप्ति रूपी अवसर दुर्लभ ही नहीं, दुलर्भतर है।।६०।।

●

३४

आनन्द-लता

श्री वृन्दावन का आनन्दमय स्वरूप दोहा

आनँद कौ रँग नित जहाँ, सोच न दुचितई लेस।
इक-छत विलसत राज-रस, वृंदा विपिन नरेस।।१।।
खेलत फूलनि-कुंज में, बाढ़्यौ रंग अनंद।
आनँद में सब सहचरी, आनँद के विवि चंद।।२।।
बास रँगीली लाड़िली, फूल रँगीलौ पीय।
नेह-देह नागर नवल, नागरि आनँद-हीय।।३।।

[श्री हित ध्रुवदास जी 'आनन्द लता' नामक अपने इस रस-ग्रन्थ में यह बताना चाहते हैं कि वृन्दावन के प्रकट एवं अप्रकट दोनों रूपों में लीला-विलास के लिए जो भी प्राकृत-अप्राकृत सृष्टि दृश्यमान् है, वह सब जड़ एवं चेतन से अतीत, दिव्य एवं चिन्मय है। श्रुति वाक्य-"आनन्दमयोयं ब्रह्म" अर्थात् यह ब्रह्म आनन्दमय है, इस सिद्धान्त की स्थापना आपने श्री वृन्दावन के स्वरूप में घटित की है। अस्तु, वृन्दावन के निज स्वरूप का सङ्केत करते हुए वे कहते हैं कि] श्री प्रिया-लाल के निज धाम में निरन्तर (सदैव) आनन्द-रङ्ग ही छाया रहता है, वहाँ सोच-विचार, चिन्ता एवं दुविधा के अस्तित्त्व का लेश भी नहीं है। वृन्दावन के रसिक सम्राट् श्री ललित लाड़िली-लाल जहाँ एकछत्र राज-रस (सर्वोपरि प्रेम) का उपभोग करते रहते हैं।।१।। जहाँ पुष्प निर्मित निकुञ्ज में 'आनन्द' के रङ्ग की प्रतिक्षण अभिवृद्धि होती रहती है। 'आनन्द' रूपिणी सहचरियों के साथ 'आनन्द' स्वरूप युगल चन्द्र अहर्निश क्रीड़ा करते रहते हैं।।२।। 'आनन्द' ही जहाँ पुष्प हैं रँगीले प्रियतम श्री लाल जी और रङ्ग-रँगीली लाड़िली प्रिया उस पुष्प की जहाँ सुगन्धि है, किंवा प्रेम की प्रतिमूर्त्ति हैं। नव नागर श्री लाल जी ही प्रेम की देह हैं और नागरी प्रिया प्रेमानन्दमय 'आनन्द' रूपी हृदय हैं।।३।।

आनँद-द्रुम आनंद-लता, फूले आनँद-फूल।
आनँद-रस जमुना बहै, मनिमय आनँद-कूल।।४।।
सर्वोपरि आनंद-निधि, वृंदावन सुख-पुंज।
द्रुम-द्रुम बोलत खग मधुर, कुंज-कुंज अलि गुंज।।५।।
जहँ-तहँ फूले कमल वर, और फूल चहुँ ओर।
फूले-फूले फिरत तहाँ, रस में मधुपनि-दौर।।६।।
राजत हैं दोउ रँग भरे, रूप-सींव सुकुँवार।
तन-मन अरुझे प्रेम-रँग, आनँद-रंग सिंगार।।७।।
मदन-हुलास विलास रँग, आनँद-रस को कंद।
कहा कहौं चहुँ ओर सखि, लुठत फिरत आनंद।।८।।

श्री वृन्दावन में 'आनन्द' के वृक्ष एवं 'आनंद' की लताएँ हैं, जिनमें 'आनन्द' के पुष्प विकसित हैं। कुण्डलाकार प्रवहमान् श्री यमुना, जिसके मणि-निर्मित आनन्दमय तट हैं, 'आनन्द' रस का प्रवाह प्रवाहित करती रहती है।।४।। सुखराशि श्री वृन्दावन सर्वोपरि 'आनन्द' की निधि है, जिसके प्रत्येक वृक्ष पर विराजमान् पक्षीगण मधुर-मधुर स्वरों में गान करते रहते हैं तथा जिसकी प्रत्येक 'आनन्दमय' कुञ्ज में 'आनन्द' के भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं।।५।। यत्र-तत्र उत्तम कमल विकसित हैं और चतुर्दिक अनेक भाँति के पुष्प फूले हुए हैं, जिनका रस लेता हुआ 'आनन्द' पुलकित भ्रमर-समूह उन पर मँडराता रहता है।।६।। रूप-सौन्दर्य एवं सुकुमारता की चरम सीमा 'आनन्द' रङ्ग पूरित युगल आनन्दमय वृन्दावन में सदा विराजित होकर तन एवं मन से प्रेम के 'आनन्द' में रँगे हुए शृङ्गारकेलि रूप 'आनन्द' का सुख भोग करते रहते हैं।।७।। उनका मदनोल्लास एवं आनन्द-विलास 'आनन्द' रस का पुञ्ज किंवा मूल है। सखी भावापन्न रसिक सन्त श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि—अरी सखि! मैं वृन्दावन की बात क्या कहूँ? यहाँ तो चारों ओर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द ओत-प्रोत हुआ विलुण्ठित हो रहा है।।८।।

युगल किशोर की आनन्दासक्ति दोहा

नव किसोरता माधुरी, छबि-विद्या सब आनि।
प्रिया-चरन सेवत रहैं, ठाढ़ी जोरैं पानि।।९।।
अधर जुरनि उर-उर घुरनि, मुरनि अंग कोउ भाँति।
सो छबि अद्‌भुत सहज की, कैसैं बरनी जाति।।१०।।
छुवनि कुचनि मन-मन रुचनि, प्रीतम कर धरैं आनि।
कंचन के श्रीफल मनौं, ढँके कमल-दल वानि।।११।।
उरज कलस कुंदन बने, मानौं मंगल साज।
कुँवरि रूप के नगर कौ, पिय पायौ सुख-राज।।१२।।

वृन्दावनेश्वरी स्वामिनी श्री राधा की नित्य नव किशोरावस्था-जन्य माधुरी के समक्ष स्वयमेव मूर्त्तिमान् छवि और विद्याएँ सम्मुख कर-बद्ध हुईं उनके मञ्जुल चरणों का सेवन करती रहती हैं।।९।। प्रिया-लाल के अधरों का मिलन, उनका परस्पर हृदय-स्पर्श एवं विलक्षण सौन्दर्य के साथ ललित अङ्गों के मरोड़ की छवि सहज और अद्भुत है, जिसका वर्णन सम्भव नहीं है।।१०।। प्रियतम के कर-कमलों से उन्नत-उरोजों का स्पर्श एवं आच्छादन और तब युगल के मनों की रुचि का संवर्धन एक अनुपम 'आनन्द' की स्थिति है, जिसका अवलोकन करके ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्ण के श्री-फल कमल-दल से आच्छादित हों।।११।। [श्रीलाल जी के कर-कमलों द्वारा प्रिया के उरोजों के आच्छादन का पुनः एक रूपक प्रस्तुत करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि] नवल-किशोरी के कञ्चन-कलश रूपी उरोजों पर श्रीलाल का कराच्छादन ही 'आनन्द' मङ्गल की साज-सज्जा है, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो नवल-किशोरी प्रिया का रूप 'आनन्द' रूपी नगर है, जिसका सुखमय राज्याधिकार प्रियतम श्रीलाल जी ने प्राप्त कर लिया है।।१२।।

कजरारे चंचल नयन, निरखत अति सुख होइ।
मानौं छबि के कंज पर, खेलत खंजन दोइ।।१३।।
नैंन जुरनि भौंहनि मुरनि, संधि छबीली ठौर।
कैसै निकसै परयौ जहँ, चित्त रसिक सिरमौर।।१४।।
प्यारौ तन प्यारौ सबै, करत नैंन मग पान।
अधर नाभि भुज मूल कुच, तहाँ बसत पिय प्रान।।१५।।
ललित लड़ैती कुँवरि की, चलनि छबीली भाँति।
विवस लाल पाछैं फिरत, अवलोकत तन काँति।।१६।।
जहँ-जहँ मनिमय धरनि पर, चरन धरति सुकुँवारि।
तहँ-तहँ पिय दृग-अंचलनि, पहिलेहिं धरहिं सँवारि।।१७।।

प्रिया के अञ्जन-रञ्जित चञ्चल नेत्रों का दर्शन करके प्रियतम को अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है। वे चञ्चल नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे शोभारूपी कमल पर दो चञ्चल खञ्जन क्रीड़ा कर रहे हों।।१३।। नेत्रों का मिलन और भृकुटियों की मरोड़ एवं प्रिया के श्रीअङ्ग की छविमयी वयः सन्धि के सम्मिलित सौन्दर्य का दर्शन करके आनन्द-पङ्क में फँसा हुआ रसिक शिरोमणि श्रीलाल जी का चित्त कैसे निकल कर बाहर हो सकता है।।१४।। प्रिया के सुभग श्रीअङ्ग का सभी कुछ प्रियतम को अत्यन्त प्रिय है, वे जिसका अपने नेत्रों द्वारा निरन्तर रस-पान करते रहते हैं। प्रिया के अधर, नाभि, कुच एवं भुज-मूल के सौन्दर्य में सदैव प्रियतम के प्राण बसे रहते हैं।।१५।। ललित-लाड़िली कुँवरि की पाद-विन्यास गति अत्यन्त शोभामयी है, जिससे आकृष्ट हुए प्रियतम उनकी देहकान्ति का अवलोकन करते हुए प्रेमानन्द-विवश हुए उनका अनुगमन करते रहते हैं।।१६।। वृन्दावन की मणि-जटित भूमि पर जहाँ-जहाँ सुकुमारी प्रिया अपने मञ्जुल-चरणों से गति-विन्यास करती हैं, वहाँ-वहाँ रसिक प्रियतम श्री किशोरी के चरण-स्थापन से पूर्व ही अपने नेत्रों के पाँवड़े बिछा देते हैं।।१७।।

सोरठा

श्री वृंदावन माहिं, आनंद-सिंधु तरंग उठैं।
घन अनुराग चुचाँहि, फूले छबि के फूल द्वै।।१८।।

सवैया

रूप कौ फूल रसीली विहारनि, मैंन कौ फूल रसीलौ बिहारी।
फूलि रहे अनुराग के बाग में, राग कौ रंग बढ़्यौ रुचिकारी।।
भावै यहै पिय के मन कौं, सुख खेलैं हँसैं रस में सुकुवाँरी।
सखी चहूँ ओर विलोकति हैं 'ध्रुव', आनँद वारि किधौं फुलवारी।।१९।।

दोहा

भुजनि भरत मन मन हरत, करत रंग रस-केलि।
आनँद-स्याम तमाल सौं, लपटी आनँद-बेलि।।२०।।

इस प्रकार श्री वृन्दावन धाम में 'आनन्द' समुद्र की नित्य-नूतन तरङ्गें उज्जृम्भित होती रहती हैं, 'आनन्द' और अनुराग के मेघ झरते ही रहते हैं तथा शोभा-सौन्दर्य के युगल पुष्प श्री लाड़िली-लाल निरन्तर फूले रहते हैं।।१८।। 'आनन्द' वाटिका रूपी वृन्दावन में रसीली विहारिणी प्रिया मूर्त्तिमान् रूप की पुष्प हैं और रसीले विहारी मूर्तिमान् मदन पुष्प हैं। अनुराग की वाटिका में विकसित हुए इन दोनों पुष्पों से रुचिकारक राग अर्थात् आसक्ति का 'आनन्द' रङ्ग बढ़ता ही रहता है। प्रियतम का मन-भाँवता सुख केवल एक ही है कि सुकुमारी प्रिया सदा रस मग्न हुई खेलती, हँसती रहें, कभी उनकी भ्रकुटियाँ मैली न हों। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसे प्रेमानुरागमय युगल पुष्पों के विलास एवं विकास का चारों ओर से सखियाँ ऐसे अवलोकन करती हैं, जैसे उन्होंने 'आनन्द' की बाड़ फुलवारी के चारों ओर लगा रखी हो।।१९।। अस्तु, आनन्दमय युगल कभी परस्पर बाहु-बद्ध होकर आलिङ्गित होते हैं, तो कभी सम्मुख विराजमान हुए परस्पर मुख दर्शन से एक-दूसरे के मन का अपहरण करते हैं। तब ऐसा दिखता है, मानो

नख-सिख भूषन झलकि रहे, प्रतिबिंबित अँग-अंग।
झलमलात अगनित मनौं, दर्पण दीप-अनंग।।२१।।
अद्‌भुत रंग अनंग-रस, बिच-बिच प्रेम-तरंग।
इहि कौतुक न अघात कोउ, जदपि मिले अँग-अंग।।२२।।
श्रम-जलकन मुख गौर पर, छुटे बार अरु हार।
पलटि परे पट सहजहीं, सोभा बढ़ी अपार।।२३।।

सखियों का दर्शनानन्द दोहा

यह सुख निरखत सहचरी, भरी रंग दुहुँ ओर।
अँखियाँ तो दुचिती भईं, परीं रूप-झकझोर।।२४।।

'आनन्द' रूपी श्यामवर्ण के तमाल-तरु से 'आनन्द' की लता लिपट रही हो।।२०।। उस समय उनके नख-शिख पर्यन्त धारण किये हुए अलङ्कार एक- दूसरे के दर्पणाभ अङ्गों पर प्रतिबिम्बित होकर अगणित रूप में ऐसे झलमलाते हैं; जैसे अनङ्ग रूपी दीपक किसी अभूत दर्पण में प्रतिबिम्बित हों।।२१।। अद्भुत मदन-रस में अनुरञ्जित हुए युगल बीच-बीच में विशुद्ध प्रेम की लोल-लहरियों में तरङ्गायित हो जाते हैं। यद्यपि वे सदैव अङ्ग-अङ्ग से मिले हुए अद्वय विग्रह हैं, तथापि प्रेम-मदन के अद्भुत एवं आनन्दमय कौतुक से कभी अघाते नहीं हैं।।२२।। उस समय सुकुमारी प्रिया के गौर मुखारविन्द पर श्रम-जनित प्रस्वेद-कण, विगलित केश-राशि, त्रुटित-हारावली एवं परिवर्त्तित पीत-पट की सहज शोभा अपार एवं अनन्त 'आनन्दमय' रूप धारण कर लेती है।।२३।।

युगल के 'आनन्द'-विलासमय केलि-सुख की दर्शनाधिकारिणी सहचरियाँ 'आनन्द' रङ्ग से भरी हुईं कभी श्री प्रिया की छवि, तो कभी प्रियतम की शोभा को निहारती हुईं रूप की झकझोर में जा पड़ती हैं। उनके मन आन्दोलित हो उठते हैं। युगल की पृथक्-पृथक् रूप सेवा का दर्शन करके दुचिते में पड़ जाती हैं। वे उभयत्र रूप-राशि को पृथक्-पृथक् रूपेण समेटने

नैंन श्रमित मुद्रित मनौं, प्रीतम रहे छबि जोहि।
मानौं कंचन माल में, छबि के अलि रहे सोहि।।२५।।
निरखत छबि मुख-माधुरी, बाढ़्यौ प्रेम-अनंग।
जैसैं सिंधु-तरंग उठैं, बिधु तन अतिहि उतंग।।२६।।
तबहिं लाड़िली लाल तन, हँसि चितवति मुख ओर।
मानौं प्यावत प्यार सौं, प्रेम-रसासव घोर।।२७।।
निरखत मोहन रूप तन, छिन-छिन होत अचेत।
प्याइ अधर-रस-माधुरी, करवावति है चेत।।२८।।

सोरठा

रुचि कौ यहै अहार, प्यारी की उनहारि सखि।
जीवत तेहि आधार, प्रान-प्रिया हिरदै बसै।।२९।।

का लाभ संवरण नहीं कर पातीं।।२४।। रस से अलसायी हुई प्रिया के थकित एवं मुँदे हुए नेत्रों की छवि ऐसी लगती है, मानो स्वर्ण के कमल में शोभा रूपी भ्रमर विश्राम करते शोभित हों।।२५।। इस आलस-वलित प्रिया-मुखच्छवि का दर्शन करके प्रियतम रसानन्द में डूब जाते हैं। श्री प्रिया की मुखच्छवि माधुरी को निहार कर प्रियतम के अन्तर्मन में कुछ ऐसी प्रेम एवं अनङ्ग की लहरें उठती हैं, जैसे चन्द्रमा का दर्शन करके समुद्र में उत्तुङ्ग लहरें उठने लगती हैं।।२६।। जब लाड़िली प्रिया मुस्कुराती हुईं प्रियतम के मुखारविन्द की ओर निर्निमेष निहारती रह जाती हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो वे प्रेम रूपी रसासव को घोलकर प्रियतम को प्रीति-पूर्वक पान करा रही हों।।२७।। और इधर प्रियतम की यह दशा है कि वे प्रिया के मोहन रूप का दर्शन करके क्षण-क्षण में अचेत होते रहते हैं। तब उदार प्रिया उन्हें अपनी अधर-सुधा माधुरी का बारम्बार पान कराके सचेत बनाती रहती हैं।।२८।। सखियाँ परस्पर में कहती हैं—हे सखि! हमारी प्राण-प्रिया की

श्री लाल जी का अति लालच एवं प्रेम सम्भ्रम दोहा

परम रसिक नागर नवल, और न कछू सुहात।
कै भावै छवि देखिबौ, कै सुन्यौ चाहत बात।।३०।।
पानिप कौ पानी पियत, त्रिपित होत नहिं नैंन।
उमड़्यौ रहत है एक रस, प्रेम-रंग उर ऐंन।।३१।।
जब-जब मुख देखत रहैं, कज्जल नैंननिं कोर।
पिय-लोइन निर्त्तत मनौं, आनँद के द्वै मोर।।३२।।

सौन्दर्यमयी मुखाकृति ही प्रियतम की रुचि की पोषक है। आसक्त प्रियतम केवल इस आधार पर जीवित हैं कि उनके हृदय में निरन्तर प्राण-प्रिया बसी रहती हैं।।२९।।

परम रसिक नव नागर प्रियतम को दो ही बातें अच्छी लगती हैं, प्रथम नवल किशोरी प्रिया की छवि का दर्शन, द्वितीय उनके श्री मुख-वचनों का श्रवण; इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं सुहाता।।३०।। रूप रसिक श्री लाल जी प्रिया-मुख के लावण्य का ही मानो जल पीते रहते हैं, किन्तु उनके प्यासे नेत्र कभी तृप्त नहीं होते। प्रियतम के हृदय-रूपी आगार में सदैव एक सा प्रेम का 'आनन्द' उमड़ा रहता है।।३१।। जब कभी श्री लाल जी प्रिया-मुख का दर्शन करते हैं, तो उनकी नेत्र-कोरों में धारण की हुई झीनी कज्जल-रेखा के सौन्दर्य से प्रभावित हुए प्रियतम के नेत्र चञ्चल हो उठते हैं। तब उन चञ्चल नेत्रों की छवि ऐसी दीखती है, मानो 'आनन्द' के दो मयूर नृत्य कर रहे हों। [अथवा इस दोहे का यह भी अर्थ हो सकता है कि प्रियतम जब-जब प्रिया का मुख-दर्शन करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में श्री प्रिया की अञ्जन-रञ्जित नयन-कोरों के प्रतिबिंब ऐसे प्रतिबिम्बित होते हैं, मानो 'आनन्द' के युगल मयूर नृत्य कर रहे हों]।।३२।।

मेघ महल परदा फुँही, राजत कुंज-निकुंज।
बैठे नेह की सेज पर, करत केलि सुख पुंज।।३३।।
अतिहिं लालची लाल पिय, निरखत हूँ न अघात।
प्रिया-रूप तन-विपिन में, रहे नैंन उरझात।।३४।।
फूलनि देखत फिरत हैं, तदाकार इहि भाइ।
प्रिया-चरन पावत जहाँ, तहँ-तहँ रहत लुभाइ।।३५।।
महाभाव-गति अति सरस, उपजत नव-नव भाव।
मोहन छबि निरख्यौ करत, बढ़्यौ प्रेम कौ चाव।।३६।।
राजति अंक में लाड़िली, प्रीतम जानत नाहिं।
विलपत रुदन बढ़्यौ जहाँ, महाभाव उर माहिं।।३७।।

विविध प्रकार की कुञ्ज-निकुञ्जों से शोभायमान् वृन्दावन के आकाश को आच्छादित किये हुए रस-वृष्टि करने वाली मेघ-माला रसिक युगल का राज-प्रासाद(महल) है, जिससे झरती हुईं रस की फुहारें ही अन्तर्पट अर्थात् महल के द्वार पर लटके हुए पर्दे हैं। महल के अभ्यन्तर भाग में बिछी हुई प्रेम-शय्या पर विराजित युगल सुखपुञ्ज-केलि का विस्तार करते रहते हैं।।३३।। श्री प्रिया के रूप-पुञ्ज देह रूपी वृन्दावन में लाल के नेत्र उलझे रहते हैं। अतिशय रूप के वन का दर्शन कर कभी परितृप्त नहीं होते।।३४।। इस प्रकार प्रिया-रूप में तन्मय हुए प्रियतम श्री वन में पुष्पों का दर्शन करते यत्र-तत्र विचरण करते रहते हैं। वे जहाँ कहीं प्रिया-चरण-चिन्ह देखते हैं, वहीं-वहीं लुभाए से रह जाते हैं।।३५।। उनके हृदय में नये-नये भावों का सृजन होकर अतिशय सरस महाभाव की स्थिति प्रकट हो जाती है। तब वे प्रिया की महामोहन छवि का ही सर्वत्र व्यापक रूप से अवलोकन करते हैं। उनके अन्तर्मन में प्रेम का उल्लास कुछ ऐसा बढ़ जाता है कि श्री प्रिया-रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ शेष रह ही नहीं जाता।।३६।। महाभाव दशा का निरूपण करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि यद्यपि प्रियतम की गोद में

अति प्रवीन सब सहचरी, जानत रस की रीति।
अंगनि छ्वावतिं करनि पिय, होत न तऊ प्रतीति।।३८।।
हँसि लागी जब कंठ सौं, लये जगाइ अनुराग।
मानौं दीनौं रीझि कै, आनँद-हार सुहाग।।३९।।

युगल किशोर का प्रेम सम्भ्रम दोहा

एक समैं भ्रम प्रेम कौ, बढ़्यौ दुहुनिं के हीय।
पीय कहत हौं ही प्रिया, प्रिया कहति हौं पीय।।४०।।
अटपटी चाल है प्रेम की, को समुझै यह बात।
रँगे परस्पर एक रँग, अदल-बदल ह्वै जात।।४१।।

प्रिया विराजमान् हैं, तथापि उन्हें प्रेम तन्मयतापूर्ण महाभाव की आत्म-विभोरता में इसका बोध ही नहीं है। इसीलिये वे वियोग-भ्रम में विलाप-कलाप एवं रोदन करने लगते है।।३७।। युगल की सहचरियाँ रस-रीति की ज्ञाता हैं और रसविलास-विधा में परम निपुण हैं; वे श्रीलाल के कर-कमलों से प्रिया के श्रीअङ्गों का स्पर्श कराती तो हैं, किन्तु फिर भी प्रियतम को श्रीप्रिया की उपस्थिति की प्रतीति नहीं होती।।३८।। प्रियतम की महाभाव-दशा का अवलोकन करके जब प्रिया हँसती हुईं उल्लासपूर्वक उनके कण्ठ से जा लगती हैं, तब वे प्रियतम के अनुराग को उद्दीप्त कर देती हैं किंवा सुप्त प्राय अनुराग को जाग्रत कर देती हैं, उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो श्री प्रिया ने श्रीलाल के कण्ठ में 'आनन्दमय' सुहाग का सुशोभन हार पहना दिया हो।।३९।।

नव-निकुञ्ज में विहार करते किसी समय प्रिया-प्रियतम दोनों के ही मन में एक-साथ प्रेम का विचित्र भ्रम उत्पन्न हो गया। प्रियतम को ऐसा लगने लगा कि मैं ही प्रिया हूँ एवं प्रिया को भी यही अनुभूति होने लगी कि मैं प्रियतम अर्थात् श्री लाल हूँ।।४०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की गति अटपटी है, इसका समझना कठिन है। प्रेम राज्य में परस्पर एक-दूसरे के प्रेम रङ्ग

उपजत अंगनि-अंग रँग, छिन-छिन औरै और।
अति प्रवीन विलसत रहैं, परम रसिक सिरमौर।।४२।।

वृन्दावन की आनन्द रूपता दोहा

वृंदावन आनंद की, बारि सुदृढ़ 'ध्रुव' आहि।
माया काल प्रपंच की, पवन न परसति ताहि।।४३।।
दुःख निसानी नैंकु नहिं, इक छत सुख कौ राज।
मत्त भये खेलत दोऊ, सखियनि संग समाज।।४४।।
छबि-वितान आनंद कौ, वृंदावन रह्यौ छाइ।
सोच-धूप कौ ताप तहाँ, कबहुँ न परसत आइ।।४५।।
वृंदावन-छबि झलक की, उपमा नहिं कछु आँन।
जेहि आगे ससि-भान दोउ, होत हैं तिमिर समान।।४६।।

में रँगे हुए प्रेमी-प्रेमास्पद पारस्परिक प्रेम-तन्मयता के कारण परिवर्त्तित हो जायँ अर्थात् नायक नायिका हो जाय तथा नायिका नायक हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं अपितु सहज एवं स्वाभाविक है।।४१।। इस प्रकार युगल रसिक के अङ्ग-अङ्गों में प्रतिक्षण नव-नव भाँति के 'आनन्द' रङ्ग प्रकट होते रहते हैं तथा परम रसिक-शिरोमणि रस-प्रवीण श्री लाड़िली-लाल अहर्निश इस आनन्द-विलास में मग्न रहे आते हैं।।४२।।

श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि वृन्दावन 'आनन्द' की सुदृढ़ बाड़ है, जहाँ माया-काल एवं प्रपञ्च के वायु का प्रवेश एवं स्पर्श तक नहीं है।।४३।। जहाँ किञ्चित भी दुःख-दैन्य का चिन्ह नहीं है, वरन् सदैव एक-छत्र सुख का साम्राज्य है। जहाँ आनन्दमयी सखियों के अनन्त समाज को साथ लिये प्रेमोन्मत्त युगल रसिक सदा-सर्वदा प्रेम-क्रीड़ा रत हैं।।४४।। वृन्दावन के निज स्वरूप में 'आनन्द' का छविपूर्ण मण्डप छाया रहता है, जिसके कारण वहाँ कभी भी चिन्ता रूपी घाम का तज्जन्य ताप किंवा ऊष्मा का कभी स्पर्श तक भी नहीं हो पाता।।४५।। वृन्दावन की जाज्ज्वल्यमान् शोभा की उपमा के लिए अखिल विश्व में कहीं कुछ नहीं है। वृन्दावन जैसा वृन्दावन ही है।

भूली छबि श्री मोहनी, सोहनी रहि गई पानि।
झनक-भनक श्रवननि परी, नैंननिं मृदु मुसिकानि।।४७।।

ग्रन्थकार की भजन-निष्ठा दोहा

भजन आहिं बहु भाँति के, नहिं आवत उर-ऐंन।
जुगल-रूप-घन विपिन-तन, तहाँ उरझैं 'ध्रुव' नैंन।।४८।।

फलस्तुति दोहा

दोहा तीस उन्नीस कहे, "आनँद लता अनंग"।
सुनत हिये 'ध्रुव' प्रेम कौ, फूलै कमल-सुरंग।।४९।।

इसकी शान्त, शीतल प्रभा के समक्ष सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों ही अन्धकार की भाँति प्रतीत होने लगते हैं।।४६।। विष्णु प्रिया लक्ष्मी एवं भगवदावतार मोहिनी; जो अपनी श्री-शोभा के लिये प्रसिद्ध हैं, वह भी वृन्दावन के प्राङ्गण का सम्मार्जन करने की भावना से हाथों में सोहनी लिये हुए ठिठकी, भूली, भ्रमी सी रह जाती हैं, जब वे वृन्दावन के दिव्य निसर्ग का अवलोकन करती हैं। तब और अधिक स्तब्ध रह जाती हैं, जब उनके श्रवणगोचर होती है वृन्दाविलासी के चरण-नूपरों की झङ्कार एवं दृष्टिगोचर होती है, रसिक -युगल की अमृतमयी मन्द-मधुर मुसकान।।४७।।

श्री ध्रुवदासजी कहते हैं भगवद् भजन तो बहुत प्रकार के हैं और वे सभी श्रेष्ठ होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु मेरे हृदय-क्षेत्र में उन सब के लिये अथवा किसी एक के लिये भी कोई स्थान नहीं है; क्योंकि मेरे नेत्र श्री हित ललित लाड़िली-लाल के युगल रूप-सौन्दर्य रूपी सघन वन के स्वरूप में भली प्रकार से उलझ चुके हैं।।४८।।

ग्रन्थकार पुनः कहते हैं कि मैंने उन्चास दोहों में 'अनङ्ग-आनन्द लता' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जिसका श्रवण करने से श्रोता के हृदय में प्रेम का सुरङ्ग कमल निश्चित ही विकसित होगा।।४९।।

३५
अनुराग-लता

प्रेमी की आन्तरिक स्थिति — चौपाई

प्रेम-बीज उपजै मन माँहीं। तब सब विषै-वासना जाँहीं।।१।।
जग तें भयौ फिरै वैरागी। वृंदावन-रस में अनुरागी।।२।।
सो अनुराग परम सुखदाई। तेहि बिनु ताहि न और सुहाई।।३।।
नवल प्रेम-रस अटक्यौ जोई। धनि वैराग ताहि कौ होई।।४।।
निस्प्रेही होइ देह तें न्यारौ। जहाँ मन लाग्यौ सोई प्यारौ।।५।।

[श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सांसारिक विषय-वासनाओं के विनाश पूर्वक साधक के मन में भक्ति के उत्पन्न करने वाले साधनों का शास्त्र एवं विविध सम्प्रदायों में बहु-विध वर्णन है, तथापि सत्य तो यह है कि] उपासक के मन में परमाराध्य श्रीहरि के प्रति जब तक निष्काम प्रेम का बीज अङ्कुरित नहीं होता, तब तक चित्त में बसी हुई विषय-वासनाओं का समूल एवं सर्वथा विनाश कभी नहीं होता।।१।। जब उपासक के मन में श्री वृन्दावन-रस [अर्थात् प्रिया-प्रियतम के नित्य-विहार] के प्रति अनुराग का उदय हो जाता है, तभी उसे संसार से वास्तविक वैराग्य होता है।।२।। यह वृन्दावनानुराग रसोपासना का सर्वोपरि सुख है, जिसकी प्राप्ति होने पर उस प्रेमी उपासक को अनुराग के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता।।३।। जो उपासक वृन्दावन-विलासी श्री श्यामा-श्याम के नित्य-नवनवायमान् प्रेम के रस से अटक जाता है, उसी प्रेमी उपासक का वैराग्य धन्यवाद के योग्य है।।४।। ऐसा वह परम विरागी उपासक निस्पृह (समस्त इच्छाओं से रहित) हुआ देह के धर्मों से भी ऊपर उठ जाता है, तब उसका प्रेमी मन जहाँ (अर्थात् श्री श्यामा-श्याम में) लगा होता है, वही एकमात्र उसे प्रिय लगता है।।५।।

ताही के रस घूमत डोलै। भरे नैंन जल मुख नहिं बोलै।। ६ ।।

दोहा

तीन लोक कौ राज सुख, देखौ तुला चढ़ाइ।
निमिष प्रेम सुख गरुव अति, तेहि आगैं घटि जाइ।। ७ ।।

प्रेम प्राप्ति का साधन चौपाई

याही रस जाकौ मन भीनौं। देह धरे कौ तेहि फल लीनौं।। ८ ।।
रहै भूलि विवि-रूप मँझारी। छिन-छिन चाह बढ़ै अति भारी।। ९ ।।
या रस कौ साधन नहिं कोई। एक कृपा तें जो कछु होई।।१० ।।

और तब वह प्रेमी अपने प्रेमास्पद के प्रेम-रस-पान से मदोन्मत्त सा हुआ श्री वृन्दावन की वीथियों में, श्री यमुना के तट पर यत्र-तत्र घूमता फिरता है। प्रेम के प्रभाव से उसके नेत्र सदैव अश्रुपूरित रहते हैं और उसकी वाणी गद्‌गद एवं अवरुद्ध रही आती है।।६।। उसके प्रेम-सुख के सन्तुलन में तीनों लोकों का राज्य-सुख-वैभव कुछ नहीं है। अर्थात् तुला पर रख कर तोलें तो उस प्रेमी के एक निमेष-काल के गुरुतर प्रेम-सुख के सम्मुख त्रिलोकी का राज्यसुख तुच्छ किंवा हलका ठहर जाता है।।७।।

जिस किसी रसिक उपासक का मन वृन्दावन-रस में सराबोर हो गया, वस्तुतः मानव देह धारण करने का फल उसने ही प्राप्त कर लिया है।।८।। ऐसा उपासक नित्य नव किशोर श्री लाड़िली-लाल के सौन्दर्य माधुर्यमय रूप पर मुग्ध हुआ सब कुछ (अर्थात् सारे विश्वविलास को) भूल जाता है, उसके मन में केवल युगल-प्रेम की ही एकमात्र लालसा प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होती रहती है।।९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस अलौकिक प्रेम-रस की प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं हैं, केवल उनकी कृपा ही साधन है अर्थात् कृपा से ही प्रेम की उपलब्धि है।।१०।।

कहौ कृपा उपजै किहि भाँती। रसिकनि-संग फिरै दिन-राती।।११।।
भक्त-कृपा सँग एकै मानौं। बृच्छ बीज फल भिन्न न जानौं।।१२।।
बहुत कहत विस्तारहि करई। प्रेम-कथा में अंतर परई।।१३।।
मान-अपमान न मन में आनैं। चित्त जुगल-छबि-रस में सानैं।।१४।।
रुदत हँसत नाँचत कछु गावै। प्रेम मगन दोउ लाल लड़ावै।।१५।।
इहि विधि कौ जब ह्वै वैरागी। तेहि समान नहिं कोउ बड़भागी।।१६।।

यदि कोई व्यक्ति कृपा-प्राप्ति का साधन पूछता है कि कृपा कैसे होगी ? तो उसका उत्तर यह है कि कृपा-प्राप्ति का इच्छुक उपासक प्रेमी-रसिक-भक्तों का ही अहर्निश सङ्ग करे।।११।। "भक्तों की कृपा" एवं "भक्तों का सङ्ग" दोनों बातें एक ही हैं अर्थात् कृपा का फल सङ्ग है और सन्त-सङ्ग का फल है भगवद् कृपा। "वृक्ष-बीज न्याय" से वृक्ष में और बीज में कोई भेद नहीं करना चाहिये [अर्थात् वृक्ष से बीज की तथा बीज से वृक्ष की उत्पत्ति है]।।१२।। पुनश्च ग्रन्थकार महानुभाव कहते हैं कि कृपा और सङ्ग की वार्त्ता का विस्तृत वर्णन करने से कथनीय प्रेम-कथा में अन्तराय उपस्थित होगा, इसलिए मैं इस प्रसङ्ग को यहीं विश्राम देकर प्रेम-कथा को ही अग्रसर करता हूँ।।१३।। अस्तु, रसिक उपासक को चाहिये कि वह अपने मन में मान-अपमान को किञ्चित् भी स्थान न दे अर्थात् उससे ऊपर उठ जाय एवं द्वन्द्वातीत हुआ श्री श्यामा-श्याम युगल की माधुर्यमयी छबि के रस में अपने चित्त को तन्मय कर दे।।१४।। प्रेम-मग्न हुआ रोता, हँसता, गाता एवं नाचता श्री लाड़िली-लाल युगल के लाड़-प्यार भाव में तल्लीन हुआ उन्हें लाड़ लड़ाता रहे।।१५।। इस प्रकार संसार को विस्मृत करने वाला एवं श्री लाड़िली-लाल में प्रेम-तन्मय रहने वाला रसिक-भक्त ही सर्वोपरि है, उसके समान अथवा उससे बढ़कर भाग्यशाली अन्य कोई नहीं है।।१६।।

प्रेम-हीन वैराग्य व्यर्थ है दोहा

बिनु नैंननिं लै मुकुर अरु, बिना लवन रस साग।
बिनु पिय तिय सिंगार सजि, बिना प्रेम वैराग।।१७।।

प्रेमी की दशा चौपाई

ऐसी विधि कब फिरि है वन में। तन अति छीन प्रेम रँग मन में।।१८।।
जहँ लगि स्वाद कहे जग माँहीं। सहजहि ते फीके ह्वै जाँहीं।।१९।।
जुगल रूप उर अंतर सचई। निसि-दिन एक प्रेम-रँग रचई।।२०।।
बिना नेम जहाँ प्रेम बिराजै। सो निहकाम एक रस गाजै।।२१।।

जिस प्रकार नेत्रहीन व्यक्ति का दर्पण लेकर मुखावलोकन करना व्यर्थ है और जैसे विविध मिर्च-मसालों के योग से रन्धित लवण-हीन साग स्वाद-रहित होने के कारण व्यर्थ है तथा पतिविहीन किंवा विधवा नारी का नख-शिख शृङ्गारित होना व्यर्थ है, उसी प्रकार श्री श्यामा-श्याम के प्रेम से रहित शुष्क वैराग्य भी निरर्थक है। आशय यह कि वैराग्य भगवद्-प्रेम युक्त होकर ही शोभा को प्राप्त होता है।।१७।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे जीवन में कभी ऐसा भी दिन आवेगा जब मैं कुछ ऐसे प्रकार से प्रेम-धाम श्री वृन्दावन में यत्र-तत्र विचरण करता होऊँगा कि मेरे मन में युगल-प्रेम का रङ्ग छाया होगा, मेरा पाञ्च-भौतिक देह प्रेम-जन्य विरह-भाव से कृश किंवा क्षीण होगा।।१८।। मेरी जिह्वा संसार के समस्त स्वादिष्ट पदार्थों में सहज ही स्वादहीनता का अनुभव करेगी अर्थात् सुस्वाद पदार्थ भी मुझे नीरस प्रतीत होने लगेंगे।।१९।। मेरा हृदय केवल युगल स्वरुप श्री श्यामा-श्याम की रूप-माधुरी को ही अकिञ्चन के परमधन की भाँति अत्यन्त तृष्णापूर्वक सञ्चित करता हुआ अहर्निश केवल प्रेम के आनन्द-रङ्ग में ही रस रञ्जित हो जायेगा।।२०।। विशुद्ध एवं निष्काम प्रेम की परिभाषा करते हुए आप कहते हैं कि जो प्रेम नेम-रहित है, वही सदा एक रस, व्यवधान-रहित, पूर्ण एवं निष्काम है।।२१।।

राई सम जौ नेम मिलाई। काँजी दूध-प्रेम ह्वै जाई।।२२।।
गोपिनु के सम भक्त न आँही। उद्धव विधि तिनकी रज चाही।।२३।।
तिन मन कछु सकामता आई। तातें बिच अंतर परयौ माई।।२४।।

दोहा

दुख कौ मूल सकामता, सुख कौ मूल निहकाम।
विरह वियोग न तहाँ कछु, रसमय 'ध्रुव' सुखधाम।।२५।।

निष्काम प्रेम की अविच्छिन्न धारा का स्थल चौपाई

अब सोई ठाँव कहौं सुनि लीजै। तहाँ सुप्रेम एक रस पीजै।।२६।।

ऐसे विशुद्ध-प्रेम में राई जितना अल्प सा भी यदि नेम मिला दिया जाय, तो उसकी विशुद्धता समाप्त होकर वह प्रेम ऐसे ही अशुद्ध बन जाता है, जैसे दुग्ध की अपार-राशि में काँजी (खटाई) का एक बिन्दु मिलाने से वह दुग्ध-राशि अशुद्ध हो जाती है।।२२।। [इस बात को गोपियों के प्रेम सम्बन्धी उदाहरण से समझा जा सकता है कि] गोपियाँ सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं ; जिनकी चरण-धूलि की आकाङ्क्षा उद्धव एवं ब्रह्मा आदि भी करते हैं।।२३।। [उन ब्रज-बालाओं के मन में शारदीय रास-क्रीड़ा के समय परम कान्त श्री कृष्ण का अधरासव पान करने की कामना का उदय हुआ अर्थात्] जब उनके मन में सकामता रूपी नेम आया तो तत्काल ही उन्हें श्री कृष्ण के अन्तर्धान होने का विरह-जन्य दुःख भोगना पड़ा।।२४।। इसलिए निश्चित है कि प्रेम के देश में दुःख का मूल सकामता है और सुख का मूल निष्कामता है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि निष्काम प्रेम ही प्रेम की परा स्थिति (सर्वोपरि स्थिति) है, जहाँ न विरह है, न वियोग। ऐसा रसमय अनन्त प्रेमपूर्ण सुख-धाम केवल श्री वृन्दावन है, जिसका वर्णन मैं आगे करूँगा।।२५।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें, अब मैं उस स्थल का वर्णन करूँगा, जहाँ सर्वोपरि प्रेम की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती रहती है तथा प्रेमीगण जिसका निरन्तर पान करते रहते हैं।।२६।।

वृंदाविपिन एक रस ऐंना। तहाँ सेवति मैंननिं की सैंना।।२७।।
नवल लता द्रुम नवल सुहाये। सुमन सुरंग सुवासनि छाये।।२८।।
तामें बिहरत नवल बिहारी। संग प्रिया प्राननिं तें प्यारी।।२९।।
जेहि द्रुम फूल बेलि तन हेरैं। मनौं मदन-रस सींचत फेरैं।।३०।।
चितवनि-मुसिकनि सहज सुहाई। जीवन यहै दुहुँनि की माई।।३१।।
प्रेम-मदन के मद में माते। मनौं गयंद अपने रँग राते।।३२।।

दोहा

तेज-पुंज रस-पुंज दोउ, रूप-पुंज सुकुँवार।
मंजुल कुंज निकुंज तर, रचि रहे प्रेम-विहार।।३३।।

ऐसा वह अनादि-अनन्त धाम, जहाँ प्रेम रूप कन्दर्पों के यूथ सन्तत सेवा-परायण हैं, वह श्री वृन्दावन है।।२७।। वह वृन्दावन सदैव नूतन, सुहावने, सघन लता-द्रुमों से मण्डित रहता है। वे लताद्रुम सुरङ्गित एवं सुगन्धित सुमनों से आच्छादित रहते हैं।।२८।। इसमें अपनी प्राण-प्रिया श्री राधा के सङ्ग नवल विहारी लाल निरन्तर विहार करते रहते हैं।।२९।। युगल रसिक श्री राधा लाल जिस वृक्ष, लता एवं पुष्प की ओर अपनी रस-दृष्टि का निक्षेप करते हैं, मानो उन लता-द्रुमों को प्रेम-रस से सिञ्चित करके उन्हें जीवन प्रदान कर देते हैं।।३०।। नवल युगल की चितवन एवं मुसकान सहज शोभामयी है और यही प्रसन्नतापूर्ण चितवन एवं मुस्कान दोनों का जीवन है।।३१।। प्रेम एवं मदन के मद में मतवाले हुए युगल, श्री वृन्दावन में ऐसे स्वच्छन्द विचरते हैं, जैसे आनन्द रङ्ग में उन्मत्त हुए मदमत्त गयन्द दम्पति विचरण कर रहे हों।।३२।।सुकुमार युगल तेज-पुञ्ज रस-पुञ्ज एवं रूप-पुञ्ज हैं। वे वृन्दावन की सुहावनी कुञ्ज-निकुञ्जों में प्रेम-विहार की रचना करते रहते हैं।।३३।।

चौपाई

परे प्रेम एकै रस फंदा। विवि वृंदावन चंद स्वछंदा।।३४।।
अति रस बढ़्यौ कह्यौ नहिं जाई। देखत-देखत कल नहि माई।।३५।।
तिनके प्रेम-रंग रस भरी। डोलतिं संग लगी सहचरी।।३६।।
प्रेम-मगन तन नेम बिसारे। सखियनि प्रान प्रान दोऊ प्यारे।।३७।।
छिन-छिन नवल रूप रस रंगा। तहाँ प्रेम कौ राज अभंगा।।३८।।

दोहा

प्रेम रासि दोउ रसिक वर, बिलसत नित्य-विहार।
ललितादिक निजु लेति हैं, तेहि रस कौ सुखसार।।३९।।

वृन्दावनचन्द्र युगल किशोर परम स्वतन्त्र एवं सहज स्वच्छन्द सबके एकमात्र स्वामी हैं, वे सदा निरङ्कुश हैं, निर्बन्ध हैं ; तथापि प्रेम के बन्धन में सदा के लिए बँध गये हैं।।३४।। उनके अन्तर्मन में प्रेम की जो आत्यन्तिक रसमय आनन्दानुभूति है, वह सर्वथा अवर्णनीय है। युगल रसिक परस्पर एक-दूसरे की रूप-माधुरी का पान करते हुए दर्शनानन्द से तृप्त होना चाहते हैं, किन्तु प्रेम की उत्कट आकाङ्क्षा उन्हें सदैव बेचैन बनाये रखती है।।३५।। युगल के प्रेम-रङ्ग रस से भरी हुईं सहचरियाँ उनके साथ लगी सदा अनुगमनशील बनी रहती हैं।।३६।। प्रेम-मग्न हुई उन सखियों को और ऐसे ही प्रेम-मग्न युगल को अपने-अपने देह के सुख-विलासादि नेम विस्मृत हो चुके हैं। प्राण-प्रिय युगल समस्त सखियों के प्राण हैं।।३७।। इस प्रेमी समाज में प्रतिक्षण नित्य-नूतन रूप रस एवं आनन्द का उद्‌भव होता रहता है। तात्पर्य यह है कि इस नित्य-विहार-परिकर में प्रेम का अखण्ड एवं अविच्छिन राज्य है।।३८।। प्रेम की निधि युगल रसिकवर जिस नित्य-विहार का विलास करते हैं; उस रस के सारातिसार सुख का सहज लाभ लेती हैं—युगल की ललितादिक सहचरियाँ।।३९।।

चौपाई

नित्य किसोर रूप की रासी। विलसत प्रेम निकुंज विलासी।।४०।।
ऐसैं दोऊ रस में भीनैं। चंद-चकोर नैंन-मन कीनैं।।४१।।
एक प्रान द्वै देह बिहारी। तिनके बीच प्रेम अधिकारी।।४२।।
सहजहि ताके रस बस प्यारे। एक सुभाइ दुहुँनि मन हारे।।४३।।
तेहि रस कौ सुख अद्भुत आही। ललितादिक दिन लेति हैं ताही।।४४।।

दोहा

अनुराग लता लागे सुफल, ललित लाड़िली लाल।
ललितादिक निजु लेति हैं, तेहि रस सुरस रसाल।।४५।।

नित्य-किशोर श्री लाड़िली लाल रूप के भण्डार हैं। निकुञ्ज रस के विलासी हैं। वे सदा प्रेम-विलास में मग्न रहते हैं।।४०।। रसिक-युगल रस में ऐसे भींज गये हैं कि उन्होंने अपने मन एवं नेत्रों को चन्द्रमा और चकोर बना दिया है।।४१।। वस्तुतः लाड़िली-लाल एक-प्राण होकर भी प्रेम-विहार के लिए युगल तनु धारण किये हुए हैं। इन दोनों के मध्य में केवल एक प्रेम ही हृदयों में निवास किये हुए इन्हें वशवर्त्ती बनाकर रस-केलि सम्पन्न कराता है।।४२।। प्राण-प्रिय युगल सहज स्वाभाविक रूप से प्रेम रस के वशवर्त्ती बने रहते हैं। दोनों ने सहज स्वाभाविक रूप से अपना मन केवल एक प्रेम को ही समर्पित कर दिया है। अतः वह सदा प्रेम पराजित हैं।।४३।। युगल के आस्वाद्य प्रेम-रस का सुख अद्भुत एवं अनिर्वचनीय है, जिसका निरन्तर आस्वादन करती रहती हैं—तत्सुखमयी ललितादिक सहचरियाँ।।४४।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि वृन्दावन में एक अनुराग की लता है, जिसमें ललित-लाड़िली लाल नामक दो सुन्दर फल लगे हुए हैं, जो सुष्ठुरस से सदा रसान्वित हैं किंवा परम रस-स्वरूप हैं। उस युगल के रस का निरन्तर आस्वादन करती हैं, ललितादिक सहचरियाँ।।४५।।

चौपाई

प्रीति की रीति सबनि तैं न्यारी। को समुझै बिनु लाल-बिहारी।।४६।।
तृन सम तहाँ राखी जु बड़ाई। तेहि रस आप गही सेवकाई।।४७।।
छिन-छिन नव सत नवल बनावै। रचि-रचि बीरी आपु खवावै।।४८।।
चरननिं जावक चित्र सुहाये। चतुर चतुरई सौं जु बनाये।।४९।।
ऐसौ रूप विचारत आही। मेरी डीठि लगौ जिनि ताही।।५०।।
यातें साँवल सरस सलौंना। सुंदर मुख पर दिया दिठौंना।। ५१।।
पुनि लै मुकर ठाड़े कर जोरैं। चितवत नवल-प्रिया दृग-कोरैं।।५२।।

प्रेम की रीति [श्रुति-स्मृति-पुराणादि जप, तप, योग, समाधि, ज्ञान, कर्म, धर्मादि] सबसे विलक्षण है। इस प्रीति-रीति को श्री बिहारी लाल के अतिरिक्त समझने में कौन समर्थ है।।४६।। जिन्होंने प्रेम के सम्मुख अपने मान, महत्त्व एवं बडप्पन को तृणवत् त्याग दिया है एवँ उस प्रेम-रस के वशीभूत होकर अपने प्रेमास्पद की सर्वतोभावेन समर्पण-पूर्ण सेवा स्वीकार कर ली है।।४७।। वे क्षण-क्षण प्रति अपनी प्रेमास्पदा प्राण-प्रिया के नूतन-नूतन सोलहों शृङ्गार की रचना करते रहते हैं। ताम्बूल वीटिकाएं निर्मित कर अपने कर- कमलों से श्री प्रिया-मुख में अर्पित करते रहते हैं।।४८।। प्रिया-चरणों में महावर (जावक) से सुहावने विविध चित्र रचते हैं। अपना समस्त चातुर्य चित्र-चित्रण में नियोजित करके अपने आपको धन्य मानते हैं।।४९।। वे सदा प्रिया के अनूप रूप का चिन्तन एवं दर्शन करते हुए अभिलाषा करते हैं कि प्रिया के इस मनमोहन रूप को मेरी डीठ (नजर) न लग जाय।।५०।। और तब वे सरस-सलोने श्याम, अपनी प्रिया के सुन्दर मुख पर "दिठौंना लगा देते हैं।।५१।। तत्पश्चात् दैन्य-भाव से हाथों में दर्पण लिये हुए प्रिया के सम्मुख खड़े होकर अपनी नवल प्रिया की कृपा-दृष्टि किंवा प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उनकी ओर निहारने लगते हैं।।५२।।

तिनकौं प्रभुता देखि भुलानी। चितवत दूरि भई बिलखानी।।५३।।
जो कछु प्रीति लाल की गाई। तातें अधिक कुँवरि की माई।।५४।।

दोहा

प्रिया-प्रेम के सिंधु में, पैरत नवल किसोर।
रहे हारि यातें तहाँ, पावत नहिं कहुँ ओर।।५५।।

प्रेम का अधिकारी चौपाई

सुक सनकादि न जानत भेवा। जद्दपि करत बहुत विधि सेवा।। ५६।।
वैभवता में सब अरुझानैं। नित्य-विहारी नहिं पहिचानैं।।५७।।

प्रियतम के इस सेवामय स्वरूप का अवलोकन करके साक्षात् प्रभुता भी आत्म-विस्मृत हो रहती है एवं विलखती हुई दूर जा खड़ी श्याम-सुन्दर के सेवा-परायण प्रेम रूप का अवलोकन करती रह जाती है।।५३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम के वशीभूत प्रियतम की श्री प्रिया के प्रति जिस प्रीति एवं सेवा का ऊपर की पङ्क्तियों में वर्णन किया गया है, अपने आप में अनुपम एवं विलक्षण है किन्तु कुँवरि किशोरी कृष्णाराध्या श्री राधा की अपने प्रियतम लाल के प्रति जो भी अन्तः प्रीति है, वह लाल से कई गुणा अधिक एवं गम्भीर है।।५४।। प्रिया का प्रेम एक अपार और अथाह समुद्र है, जिसमें नवल- किशोर प्रियतम तैरते रहते हैं किन्तु उस प्रेम समुद्र का न तो कोई ओर-छोर पाते हैं और ना ही उसकी गम्भीरता की थाह ले पाते हैं। इसलिए सदा अपने आपको पराजित अनुभव करते रहते हैं।।५५।।

यद्यपि परमहंस शिरोमणि भगवान् श्री शुकदेव एवं सनकादिक ऋषीश्वर भगवद् तत्त्व के परम ज्ञाता, उपदेष्टा एवं आचार्य हैं और वे भगवत्-धर्म के प्रचारक होने के नाते श्रीहरि की बहुत बड़ी सेवा करते हैं, तो भी वृन्दावन के प्रेम-रस रहस्य से अनभिज्ञ हैं।।५६।। ये और इनके जैसे अन्य बहुत से आचार्य भगवद्-भक्त, सन्त भगवद् ऐश्वर्य से प्रभावित एवं ऐश्वर्यमयी

यह रस जो समझै सो जानैं। और भजन विधि मन नहिं आनैं।।५८।।
प्रेम-सुभाव जाहि उर आवै। ताहि न बात दूसरी भावै।।५९।।
नवल राज नित रूप नवेला। तेहि ठाँ राजत प्रेम अकेला।।६०।।
बिना भाग अनुराग न आवै। बिनु अनुराग तिनहिं क्यौं पावै।।६१।।

दोहा

नागर दोउ अनुराग बस, नवल नेह रँग-रात।
अनुरागे तिनके भजन, और न दूजी बात।।६२।।

चौपाई

माया भ्रम सब जग जंजाला। जात न जान्यौ दुर्लभ काला।।६३।।

माधुर्यहीन भक्ति, ज्ञान, मोक्ष आदि में उलझे हुए हैं। उन्होंने वृन्दावन-विलासी नित्य-विहारी के माधुर्य-विलास को तो अभी पहचाना भी नहीं है।।५७।। अस्तु, जो कृपावान् अधिकारी इस वृन्दावन-रस को समझ जाता है, वह इसके प्रति अनन्य भाव से परिनिष्ठित हो जाता है और तब वह अपने मन में भगवद् -भजन के अन्यान्य विधि-विधानों को कोई स्थान नहीं देता।।५८।। क्योंकि उसे वृन्दावनीय प्रेम-रस भजन के समक्ष अन्यान्य भजन एवं रस-विधान फीके किंवा नीरस प्रतीत होने लगते हैं। जिसके हृदय में प्रेम का सुष्ठु भाव आ बसता है, फिर उसे प्रेम के अतिरिक्त अन्य दूसरी बातें सुहाती नहीं।।५९।। वृन्दावन का रसमय साम्राज्य नित्य नवनवायमान् रूप का विलासमय साम्राज्य है, जिसका एकमात्र सम्राट् केवल प्रेमदेवता है [जिसके अनुशासन में युगल सहित सम्पूर्ण वृन्दावन का रसिक परिकर है]।।६०।। यह प्रेम किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है एवं इस अनुराग किंवा प्रेम के बिना युगल रसिक श्रीराधावल्लभ लाल की प्राप्ति असम्भव है।।६१।। नित्य-नूतन प्रेम से अनुरञ्जित नवल-नागर लाड़िली-लाल युगल सदैव अनुराग के बस में हैं। जो भक्त श्री लाड़िली लाल के रसभजन में अनुरक्त हैं, उन्हें प्रेम के अतिरिक्त अन्य कुछ सुहाता ही नहीं है।।६२।। जगत एक जञ्जाल है, एक गोरखधन्धा है। माया जनित होने से जगत सत्य न होकर सत्य की मिथ्या प्रतीति कराने

जगत सगाई साँची जानी। मति पितु तिय सुत सौं अरुझानी।।६४।।
जैसे चित्र-पेखना पेखै। जग के सब सुख ऐसै देखै।।६५।।
जेतिक द्यौस जिवै जग माहीं। ते बितवै वृंदावन छाँहीं।।६६।।
तेई भये जगत तैं न्यारे। जिन वृंदावन-चंद सँभारे।।६७।।
परम धन्य तिनही की देही। जिन भजे दंपति परम सनेही।।६८।।

फलस्तुति चौपाई

यह अनुराग लता जो गावै। निश्चै सो अनुरागहि पावै।।६९।।

प्रेम-प्राप्ति का साधन दोहा

अनुरागे जिनके भजन, युगल किसोर-विहार।
तिन रसिकनि की चरन रज, लै-लै 'ध्रुव' सिर धार।।७०।।

वाला एक भ्रम-मात्र है। इस में फँसा हुआ अज्ञानी-जीव जानते समझते हुए भी नहीं जान पाता कि जीवन का दुर्लभ काल किस प्रकार व्यर्थ व्यतीत होता जा रहा है।।६३।। वह जगत् के मिथ्या सम्बन्धों को ही सत्य मानकर उसकी मति, पिता, पत्नी एवं पुत्रों के मोह में उलझी रहती है।।६४।। किन्तु वास्तव में संसार के सभी सुख ऐसे ही हैं, जैसे कोई चित्रों द्वारा दिखाये जाने वाला खेल तमाशा।।६५।। अतएव, बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि जितने भी दिन पृथ्वी पर जीवित रहे, वे सभी दिन वृन्दावन की सुखद-शीतल छाया में ही व्यतीत करे अर्थात् जीवन पर्यन्त श्री वृन्दावन वास करे।।६६।। जो भी बुद्धिमान् लोग जगत् मोहजाल से पृथक् होकर श्री वृन्दावन धाम एवं युगल रसिक श्री लाड़िली लाल को परम धन की भाँति सँभालने में लग गये।।६७।। परम प्रेमी दम्पति के भजन में रत हो गये, उन्हीं का मानव देह धारण करना सार्थक एवं धन्य है।।६८।।

जो व्यक्ति इस 'अनुराग-लता' का गान-पठन करेगा, वह निश्चित ही प्रेम-रस की प्राप्ति करेगा।।६९।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो रसिक जन युगल-किशोर के प्रेम रस-विहार के भजन-चिन्तन में अनुरक्त हैं, उन

अनुरागे जिनके भजन, ते तौ पैयत थोर।
जिनके हीयैं झलमलैं, रसमय मधुर किसोर।।७१।।
अनुरागे जिनके भजन, दूजी बात न और।
तिन रसिकनि की चरन-रज, 'ध्रुव' के सिर कौ मौर।।७२।।
भाग पाइ जो पाइयै, ऐसे रसिक रसाल।
जिनके हिय तें टरत नहिं, श्री राधावल्लभलाल।।७३।।

उपसंहार दोहा

परम सनेही जुगल वर, जानत प्रीति की रीति।
मन वच कै 'ध्रुव' जिन भजे, तेइ गये जग जीति।।७४।।

रसिकभक्तों की चरण-धूलि को प्राप्त करके पूर्ण श्रद्धा-भक्ति पूर्वक बारम्बार शिरोधार्य करना चाहिये।।७०।। रसिक युगल श्री श्यामा-श्याम के भजन में अनुरक्त रहने वाले एवं जिनके हृदय में मधुर-रस सिक्त युगल किशोर झलमलाते रहते हैं, ऐसे रसिक-भक्त दुर्लभ एवं विरले ही है।।७१।। जो भक्त श्री लाड़िली-लाल के अनुरागमय भजन में रँगे हुए हैं, उन्हें भजन के अतिरिक्त अन्य कोई वार्त्ता रुचती ही नहीं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसे रसिकों की चरण-धूलि मेरे सिर का मुकुट है।।७२।। कभी भाग्य उदय होने पर ही इन रस-मत्त रसिकों की प्राप्ति होती है, जिनके हृदय से श्री राधावल्लभ लाल कभी एक क्षण के लिये भी नहीं टलते।।७३।।

परम सनेही युगल-वर श्री लाड़िलीलाल ही एकमात्र प्रेम-प्रीति की रीति के ज्ञाता एवं पारखी हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं जो कोई मनसा-वाचा ऐसे प्रेमी युगल का भजन करते हैं, वस्तुतः वे ही संसार पर विजय प्राप्त करके, रसिक युगल के प्रेमाधिकारी हैं।।७४।।

●

३६
प्रेमलता

मङ्गलाचरण एवं प्रस्तावना — चौपाई

प्रथमहि सुभ गुरु-पद उर आनौं। बात प्रेम की कछुक बखानौं।।१।।
और कृपा रसिकनि की चाहौं। तब या रस कौ सर अवगाहौं।।२।।
लाल-लाड़िली जो उर आनी। तैसी मोपै जात बखानी।।३।।
घटि बढ़ि अक्षर जो कहुँ होई। लेहु बनाइ कृपा करि सोई।।४।।
रसिक-रसिकनी कौ जस जानौं। और कछू जिय जिन उर आनौं।।५।।
कही प्रेम की गति 'ध्रुव' यातैं। सुनतहि सरस होत हिय तातैं।।६।।
अरु रस-रीति पंथ पहिचानै। तब या रस के स्वादहि जानै।।७।।

'प्रेमलता' ग्रन्थ का प्रणयन करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के शुभकारी चरणों को अपने हृदय में विराजमान् करके प्रेम की कुछ बातें वर्णन करना चाहता हूँ।।१।। तथा रसिक-भक्तों की कृपाभिलाषा की याचना करता हूँ, तभी मैं श्री वृन्दावन के रस-सरोवर का अवगाहन करने में समर्थ हो सकूँगा।।२।। वृन्दावनविलासी श्री लाड़िली-लाल जी ने मेरे हृदय में जैसी कुछ प्रेम की बात प्रकट की है, मैं उसे यथा-रूप वर्णन करने का प्रयास करूँगा।।३।। रसिक-भक्तों से प्रार्थना है कि मेरे द्वारा कहीं कोई वार्त्ता न्यूनाधिक रूप में कह दी जाय, तो उसे वे अपनी कृपा से सँभाल लेंगे।।४।। मेरे इस 'प्रेमलता' नामक ग्रन्थ के प्रणयन में केवल रसिक-रसिकनी श्रीप्रिया लाल के यशोगान का ही एक-मात्र लक्ष्य है, अन्य कुछ नहीं।।५।। प्रेम की गति-स्थिति का वर्णन करने का लक्ष्य यह है कि इन वार्त्ताओं को सुनने-कहने से हृदय में सरसता आ जाती है।।६।। रसोपासना के मार्ग से परिचय होता है एवं रस के स्वरूप का स्वादविशेष जानने में आ जाता है।।७।।

दोहा

जिन नहिं समुझ्यौ प्रेम-रस, तिन सौं कौंन अलाप।
दादुर हूँ जल में रहै, जानै मीन मिलाप।।८।।

प्रीति की रीति चौपाई

खान-पान सुख चाहत अपनै। तिनकौ प्रेम छुवत नहिं सपनै।।९।।
जो या प्रेम-हिंडोरे झूलै। तिनकौं और सबै सुख भूलैं।।१०।।
प्रेम-रसासव चाख्यौ जबहीं। औरे रंग चढ़ै 'ध्रुव' तबहीं।।११।।
या रस-प्रेम परै मन आई। मीन-नीर की गति ह्वै जाई।।१२।।
निसि-दिन ताहि न कछू सुहाई। प्रीतम के रस रहै समाई।।१३।।

जिन लोगों ने प्रेम रस को जाना-समझा नहीं उनसे प्रेम सम्बन्धी वार्त्ता करना व्यर्थ है। यों तो जल में मेंढक भी निवास करता है, किन्तु जल से प्रेम करना तो मीन ही जानती है।।८।।

जो व्यक्ति अपने देह सम्बन्धी खान-पान आदि सुखों में आसक्त है, उसे प्रेम-देवता कभी स्वप्न में भी स्पर्श नहीं करता। [अर्थात् विषय-लोलुप व्यक्ति कभी प्रेम का पात्र नहीं बन सकता]।।९।। इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रेम के सुखद हिंडोल में झूल चुका होता है अर्थात् प्रेम का अनुभवी है, उसे देह के समस्त विषय-सुख विस्मृत हो जाते है।।१०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम रूपी रसासव का आस्वादन करते ही आस्वादक पर प्रेम का कुछ और ही रङ्ग चढ़ जाता है, [अर्थात् इस प्रेम की प्राप्ति करने वाला व्यक्ति सब ओर से परितृप्त, निर्द्वन्द्व, वासना शून्य, चिन्ता-रहित, विषय-विरत एवं जगत की ओर से उत्साह-हीन हो जाता है]।।११।। प्रेम-रस के साथ मन की एकात्मता होने पर प्रेमी की मनोगति मीन-नीर की भाँति एकमेक हो जाती है।।१२।। तब उस प्रेमी को अपने प्रियतम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सुहाता। वह केवल अपने प्रियतम के रस में अहर्निश मग्न रहता है।।१३।।

जाकौ है जासौं मन मान्यौ। सो है ताके हाथ बिकान्यौ।।१४।।
अरु ताके अँग-सँग की बातैं। प्यारी लगत सबै तेहि नातैं।।१५।।
रुचै सोई जो ताकौं भावै। ऐसी नेह की रीति कहावै।।१६।।

नित्य-विहार की सर्वोपरिता चौपाई

जो रस लाल-लड़ैती माँहीं। ऐसौ प्रेम और कहुँ नाहीं।।१७।।

दोहा

ब्रज-देविनु के प्रेम की, बँधी धुजा अति दूरि।
ब्रह्मादिक वांछत रहैं, तिनके पद की धूरि।।१८।।

चौपाई

तिनहूँ कौ मन तहाँ न परसै। ललितादिक जेहि ठाँ छबि दरसै।। १९।।

जिस प्रेमी का मन जिस किसी प्रेमास्पद से संलग्न हो गया, वह प्रेमी अपने उस प्रेमास्पद के हाथों बिक जाता है [अर्थात् उसका ही हो रहता है]।।१४।। और उसे अपने प्रियतम के अङ्ग-सङ्ग की सभी बातें इस लिए प्रिय लगती हैं कि उसका अपने उस प्रियतम से आत्मिक सम्बन्ध होता है।।१५।। प्रेम की रीति ऐसी है कि प्रेमास्पद की रुचि ही प्रेमी की रुचि बन जाती है [अर्थात् प्रेमी की अपनी कोई स्वतन्त्र रुचि नहीं रह जाती]।।१६।।

[प्रेम रस की सर्वोत्तम स्थिति की ओर सङ्केत करते हुए श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि] नित्य-विहारमय वृन्दावन के नित्य निभृत निकुञ्जों के प्रेम की जो सर्वोपरि स्थिति है, वह अनिर्वचनीय प्रेम-स्थिति अन्यत्र कहीं नहीं है।।१७।। यद्यपि व्रज सीमन्तनी गोपीगणों की श्री कृष्ण-प्रेम स्थिति अत्यन्त समुन्नत है अर्थात् उनकी प्रेम-ध्वजा बहुत ऊँचाई पर फहरा रही है, चतुर्मुख ब्रह्मा एवं प्रेमी-भक्त उद्धव जैसे महान् भक्त भी उन गोपियों की चरण-धूलि-प्राप्ति की वाञ्छा करते रहते हैं।।१८।। तथापि श्री कृष्ण की परम-प्रेमिका गोपी-जनों का मन भी श्री वृन्दावन के नित्य-विहारमय प्रेम-रस का

नित्य-विहार अखंडित धारा। एक वैस रस मधुर विहारा।।२०।।
नित्य-किसोर रूप-निधि सीवाँ। विलसत सहज मेलि भुज-ग्रीवाँ।।२१।।
तिन बिच अंतर पल कौ नाहीं। तऊ तृषित प्रीतम मन माहीं।।२२।।
अद्भुत सहज रंग सुखदाई। तहाँ प्रेम की एक दुहाई।।२३।।

श्री लाल जी का स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व चौपाई

पिय गज मत्त न अंकुस के बस। परम स्वछंद फिरत अपने रस।।२४।।
देखतहीं तिनकी परछाँहीं। मदन कोटि व्याकुल ह्वै जाँहीं।।२५।।

स्पर्श नहीं कर पाता है, जहाँ युगल रसिक श्री लाड़िली-लाल की तत्सुख सेवा-रति में ललितादिक सहचरियों का निष्काम एवं तत्सुखमय प्रेम विराजमान् है।।१९।। युगल किशोर श्री श्यामा-श्याम का अनादि अनन्त नित्य-विहार एक अखण्डित रस-धारा है, जिसमें समवयस् नित्य-किशोर का रस-मय मधुर विहार ही निरन्तर प्रवाहित है।।२०।। अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमय नित्य किशोर युगल, रूप की निधि ही नहीं, परम एवं चरम सीमा हैं, जो सहज गलबहियाँ दिये निरन्तर प्रेम-विलास में मग्न हैं।।२१।। ऐसे नित्य-विहारी युगल में कभी एक निमेष का भी विरह-वियोग तो क्या ? उसका आभास भी नहीं है, तो भी प्रेमाधिक्य के कारण युगल प्रियतम तृषा से सदैव तृषित हैं।।२२।। वृन्दावन नित्य-विहार का यह विलक्षण आनन्द अद्भुत तो है ही, सहज सुखद भी है। इस सहज, सुखद, अद्भुत नित्य-विहारमय वृन्दावन में एकमात्र प्रेम की ही सर्वोपरिता है।।२३।।

प्रियतम श्रीलाल जी मत्त गजराज की भाँति निरङ्कुश एवं परम स्वतन्त्र हैं। वे स्वेच्छा पूर्वक जो चाहें सो कर सकते हैं।।२४।। रूप-लावण्य के तो धाम हैं, जिनकी परछाईं भी इतनी सुन्दर है कि उसका दर्शन करके कोटि-कोटि कामदेव भी विमोहित एवं व्याकुल हो जाते हैं।।२५।।

श्री प्रिया जी का स्वरूप प्रभाव चौपाई

ते मोहन बस कीनें गोरी। राखे बाँधि प्रेम की डोरी।।२६।।
छुटत न क्यौं हूँ ऐसै अटके। प्रान हारि चरननि तर लटके।।२७।।
प्रीति की रीति लाल ही जानैं। तजि प्रभुता बिन मोल बिकानैं।।२८।।
तैसीय रसिक प्रवीन किसोरी। रस निधि नेह के सिंधु झकोरी।।२९।।
पिय कौं राखत नैंननिं आगै। हुलसि-हुलसि प्रीतम उर लागै।।३०।।

युगल किशोर की एकात्मता चौपाई

अवधि प्रेम की सहजहि प्यारे। परबस प्रेम दुहुँनि मन हारे।।३१।।

श्री प्रिया जी की सौन्दर्य एवं प्रेमराशि का प्रकट प्रभाव यह है कि निरङ्कुश स्वच्छन्द एवं कोटि काम-कमनीय रसिक-शेखर मनमोहन को भी नवल किशोरी गोरी प्रिया ने प्रेम की डोरी में बाँध कर अपने बस में कर रखा है।।२६।। परम स्वतन्त्र प्रियतम अपनी स्वछन्दता का विस्मरण करके तन-मन-प्राण के समर्पण-पूर्वक उनके श्री चरणों से लटके हुए से इतने अटक गये हैं कि किसी भी प्रकार छूट नहीं पाते।।२७।। वस्तुतः प्रेम की परमोज्ज्वल रीति का स्वरूप श्री लालजी ही जानते हैं तभी तो वे अपनी प्रेमास्पद प्रिया के प्रति अपने सम्पूर्ण प्रभुत्त्व-स्वामित्व का समर्पण करके बिना मोल बिक गये हैं।।२८।। प्रीति की रीति के जैसे सम्यक् ज्ञाता एवं निर्वाहक श्रीलालजी हैं, वैसी ही निपुण रसिक शिरोमणि रसनिधि नवल-किशोरी हैं जो नख-शिख प्रेम के समुद्र में सराबोर हैं।।२९।। वे सदा प्रियतम को अपने नेत्रों के सम्मुख रखकर उनका अपलक भाव से दर्शन करते हुए रूप-रस का पान करती रहती हैं और बारम्बार प्रेमोल्लसित होकर प्रियतम के हृदय से आलिङ्गित होती रहती हैं।।३०।।

युगल रसिक लाड़िली-लाल सहज प्रेम की चरम सीमा हैं। दोनों ने दोनों को अपना-अपना मन सम्पूर्ण भाव से समर्पित कर दिया है और दोनों ही दोनों के प्रेम से सदा वशवर्ती बने रहते हैं।।३१।।

एक रंग रुचि है सब काला। उज्ज्वल प्रेम लाड़िली-लाला।।३२।।

दोहा

तन मन रूप सुभाव मिलि, ह्वै रहे एकै प्रान।
जीवन मुसिकनि चितैवौ, अधर-रसासव-पान।।३३।।

परम रस का केन्द्र चौपाई

वृंदावन घन राजत कुंजैं। विहरत तहाँ रसिक रस-पुंजैं।।३४।।
एक प्रान विवि देह हैं दोऊ। तिन समान प्रेमी नहिं कोऊ।।३५।।
सब पर अधिक जान यह प्रेमा। ताके बस भए तजि सब नेमा।।३६।।
या सुख पर नाहिन सुख कोई। जानै सो जो भेदी होई।।३७।।

दोनों का सर्वकाल एक ही रङ्ग, एक ही रुचि है। इस प्रकार श्रीलाड़िली-लाल का प्रेम परमोज्ज्वल है अर्थात् निष्काम है और तत्सुखमय है।।३२।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल तन, मन, रूप एवं स्वभाव की एकता के कारण युगल-तनु होकर भी एक ही प्राण हैं। इन रसिक युगल का जीवन परस्पर मुस्कान, रूप-दर्शन एवं अधर-रसासव-पान ही है।।३३।।

श्री वृन्दावन परम रस—प्रेम का एकमात्र सर्वोपरि धाम है, जिसमें अनेक सघन कुञ्जें निर्मित हैं, जिन कुञ्जों में रस-पुञ्ज रसिक लाड़िली-लाल नित्य निरन्तर प्रेम-विहार करते रहते हैं।।३४।। श्रीलाड़िली-लाल एक-प्राण उभय तनु धारी रसिक युगल हैं, जिनके समान कहीं कोई प्रेमी ही नहीं है अर्थात् ये अद्वितीय प्रेमी है।।३५।। ये रसिक युगल समस्त नियमों का परित्याग कर जिस प्रेम के वशवर्त्ती हैं, वह प्रेम सर्वोपरि एवं सर्वाधिक है।।३६।। इस प्रेम के सुख से बड़ा किंवा अधिक कोई अन्य सुख नहीं है। इस रहस्य को वही भाग्यवान् जानता है, जो प्रेम-रस का मर्मी है।।३७।।

दोहा

अद्भुत नित्य अभूत रस, लाल-लाड़िली प्रेम।
छिन-छिन नख मनि चंद्रिकनि, सेवत है सुख नेम।।३८।।

सूक्ष्म प्रेम का स्वरूप चौपाई

प्रेममयी रस मैंन विनोदा। नव-नव उपजत हैं दुहुँ कोदा।।३९।।
तेहि विहार रस मगन बिहारी। जानत नहिं कित द्यौस निसा री।।४०।।
जो कोउ कोटिक भाँति बखानैं। बिनु स्वादी या रसहि न जानैं।।४१।।
रहत है दिनहि प्रेम सरसाई। तहाँ मान की नहीं समाई।।४२।।
सूच्छम प्रेम न मन में आवै। स्थूल प्रेम सब ही कौं भावै।।४३।।

श्री लाड़िली-लाल का आस्वादनीय प्रेम अद्भुत और नित्य तो है ही, अभूत अर्थात् जो पहले कभी हुआ ही नहीं, ऐसा विलक्षण रस है। तभी उस प्रेम-देवता की नख-मणि ज्योत्सना का प्रतिक्षण सेवन अन्य सारे सुख और नेम करते रहते हैं।।३८।।

वृन्दावन की निभृत निकुञ्जों में रसिक-लाड़िली लाल, प्रेमी-प्रेमास्पद के मध्य में उज्ज्वल प्रेममय रस के लीलापूर्ण नये-नये केलि-विनोद प्रकट होते रहते हैं।। ३९।। और उन विहार-लीलाओं में श्री विहारी-विहारिणि ऐसे रस-मग्न रहते हैं कि वे यह बोध ही नहीं कर पाते कि किधर रात्रि होती है और किधर दिवस।।४०।। ग्रन्थकार महानुभाव कहते हैं कि भले ही कोई वाक्पटु विद्वान् इस प्रेम-रस का पाण्डित्यपूर्ण शब्दों द्वारा कोटि-कोटि प्रकार से वर्णन क्यों न करता रहे, किन्तु प्रेम-रस के आस्वादक अनुभवी उपासक रसिक के बिना प्रेम-रस का अनुभव-जन्य ज्ञान नहीं कर सकता।।४१।। जिस हृदय में निरन्तर एक रस प्रेम की सरसता छाई रहती है, वहाँ किञ्चित् भी मान किंवा अहम् के लिए स्थान नहीं है।।४२।। प्रेम के दो रूप हैं—एक सूक्ष्म, दूसरा स्थूल। सूक्ष्म प्रेम का स्वरूप-ज्ञान सर्व-साधारण के मन में—समझ में आ सकना कठिन है। किन्तु प्रेम का स्थूल रूप यथा—प्रवास, कुञ्जान्तर,

महा मधुर रस सब तैं न्यारौ। जिहिं ठाँ दुहुँनि अपुनपौ हारौ।।४४।।
तिनहिं देखि आसक्ति हूँ भूली। ह्वै आसक्त सुरस में झूली।।४५।।

नित्य-सहचरियों का उत्कृष्ट प्रेम दोहा

लाल-लाड़िली प्रेम तें, सरस सखिनु कौ प्रेम।
अटकी हैं निज प्रीति रस, परसत तिनहिं न नेम।।४६।।

चौपाई

सखियनि के सुख पर सुख नाहीं। आनँद मोद रँगी मन माहीं।।४७।।
रूप रसासव यहै अहारा। तन मन की कछु नाहिं सँभारा।।४८।।

विरह, वियोग, स्वकीया, परकीया, दान, मान आदि लगभग सभी को प्रिय हैं एवं बुद्धिगत भी हो जाता है।।४३।। प्रेम के जिस बिन्दु पर स्थित होकर युगल रसिक लाड़िली-लाल ने अपना स्व (अहम्) एक दूसरे को समर्पित करके केवल प्रेम-तृषामय रूप धारण कर रखा है, वह महामधुर रस ही, रस का सर्वोपरि केन्द्र-बिन्दु है, जो समस्त प्रेम-स्थितियों से भिन्न है।।४४।। युगल के इस प्रेमासक्तिमय महामधुर प्रेम का अवलोकन करके मूर्तिमती आसक्ति भी आत्म-विस्मृत हो रहती है और रसिक युगल की पारस्परिक प्रेमासक्ति रूपी सुरस पर, रसासक्त होकर झूलती रह जाती है।।४५।।

नित्य-विहार की सहचरियाँ प्रेम की विलक्षण प्रतिमूर्त्तियाँ हैं। इनका प्रेम लाड़िलीलाल के सूक्ष्म और सर्वोपरि प्रेम से भी अधिक सरस है। यह कोई अत्युक्ति एवं प्रशंसा नहीं है वरन् परम सत्य है, इसलिए कि यह सखियाँ सहज रूप से युगल की प्रीति-रस में निरन्तर सलग्न हैं। नेम-रूपी स्वसुख से अछूती एवं युगल के तत्सुख में निरन्तर पगी रहती है।।४६।। आनन्द एवं आमोद के रङ्ग में अन्तर्मन से रँगी हुईं इन सखियों के प्रेमसुख से बढ़कर अन्य कोई सुख नहीं है।।४७।। युगल के रूप-रस का मादक आसव ही इनका पोषक-आहार है, जिसकी मद-मत्तता में इन्हें तन एवं मन की कोई सँभाल ही नहीं रहती।।४८।।

एकै रस नित भींजी रहहीं। साँझ-भोर समझ्यौ नहिं कबहीं।।४९।।
सो रस करतिं रहतिं नित पानैं। निसि-वासर बीतत नहिं जानैं।।५०।।
या रस सौं जाकौ मन मान्यौ। सोइ 'ध्रुव' रसिकनि प्रान समान्यौ।। ५१।।

युगल की प्रेम-दशा

दोहा

छिन-छिन नवल विहार में, करत हैं नवल सिंगार।
रुचि तरंग पल-पल तहाँ, बाढ़ति रहति अपार।।५२।।

चौपाई

करि सिंगार जबै दोउ निबरे। छबि सौं नव निकुंज तैं निकरे।।५३।।
भयौ प्रकास नख-मनि दुति ऐसी। कोटि चंद-आभा नहिं तैसी।।५४।।
तिनके रूप न बरने जाहीं। मोहत मैंन देखि परछाहीं।।५५।।

ये सब सखियाँ नित्य निरन्तर श्रीप्रिया-लाल को सुख देने वाले तत्सुख भाव से एक सी भींजी रहती है। इनको कभी भी सायं प्रातः का काल-बोध होता ही नहीं।।४९।। रात्रि-दिवस के आगमन-निर्गमन से रहित प्रेमपगी ये सखियाँ सदैव युगल के मध्य विलसित प्रेम-रस का पान करती रहती हैं।।५०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों के इस आस्वाद्य रस से जिस रसिक उपासक का मन रचि पूर्वक आसक्त किंवा संलग्न हो गया, वह भाग्यशाली उपासक रसिक भक्त-जनों का प्राणोपम-प्रिय हो जाता है।।५१।।

युगल किशोर का प्रेम-विहार प्रतिक्षण नित्य-नूतन है। अतएव वे नित्य नये शृङ्गार से शृङ्गारित होते रहते हैं। उनके हृदय में प्रतिपल प्रेम की अपार रुचि एवं तरङ्गें बढ़ती रहती हैं।।५२।। जब वे शृङ्गार करके गलबहियाँ दिये हुए छबि-पूर्वक नव-निकुञ्ज से बाहर आते हैं, तब उनकी नख-मणि से अपूर्व प्रकाश फैल जाता है, जिसकी समता कोटि-कोटि चन्द्रमाओं की सम्मिलित आभा भी नहीं कर सकती।।५३-५४।।

तब उनके रूप-लावण्य का वर्णन कैसे सम्भव है? जिनकी परछाई का दर्शन करके मूर्तिमान् कामदेव भी मोहित हो रहता है।।५५।।

हित की सींव सहेली सोहैं। चहुँ दिसि मनौं चकोरी जोहैं।।५६।।
अंगनि की निज सौरभताई। जहँ-तहँ पूरि रही बन माई।।५७।।
सो सुवास जो नैंकहुँ पावै। प्रेम-विवस तन सुधि बिसरावै।।५८।।
परै प्रेम के फंद मंझारी। सर्वसु प्रान रहै तहाँ हारी।।५९।।
तेहि बिन ताहि न और सुहाई। बिनु देखैं हीयौ अकुलाई।।६०।।
सुनत स्रवन भूषन-झनकारा। खग-मृग चकित थकित जलधारा।। ६१।।
मैंहँदी रँग पद-अंबुज बनै। धरत अवनि पर छबि को गनै।।६२।।

नव-निकुञ्ज से बाहर निकलते हुए रसिक युगल के आस-पास चारों ओर सहेलियों का समूह शोभित है। ये सहेलियाँ युगल के हित की प्रतिमूर्ति तो हैं ही, चरम सीमा भी हैं। सभी सखियाँ रूप की रसिक हैं, अतएव युगल चन्द्र का, चकोरी की भाँति निर्निमेष अवलोकन करती रहती हैं।।५६।। वृन्दावन-विहारी रसिक लाड़िली-लाल के श्री अङ्गों के सहज सौरभ से यत्र-तत्र सम्पूर्ण वन सुगन्धित हो जाता है।।५७।। यदि कोई भाग्यशाली उस दिव्य अङ्ग-गन्ध का लेशमात्र भी प्राप्त कर ले तो वह प्रेम-विवश होकर अपनी देह-सुधि भूल जाता है।।५८।। वह युगल प्रेम के पाश में फँस जाता है तथा अपना प्राण एवं सर्वस्व युगल चरणों में समर्पित कर देता है, फिर उस रसिक-भक्त को इस प्रेम-राज्य के सुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुहाता। युगल रूप-दर्शन के अभाव में उसका हृदय सदा व्याकुल बना रहता है।।६०।। अस्तु, श्रीवन में विहार करते हुए रसिक युगल के श्रीअङ्गों के भूषणों की झङ्कृति का श्रवण करके श्रीवन के पशु-पक्षी चकित एवं थकित हुए अपने नेत्रों से प्रेम-जल की धारा प्रवाहित करने लगते हैं अथवा श्रीयमुना की जलधारा युगल का दर्शन करके स्तम्भित हो जाती है।।६१।। मेंहदी के अरुणिम रङ्ग से रञ्जित युगल चरण-कमल जब श्री वृन्दावन की स्वर्णिम-भूमि पर पाद-विन्यास करते हैं, तब उस शोभा का बखान करना कठिन हो जाता है।।६२।।

लटकि-लटकि अलबेली भाँति। लपटि लाल-उर मृदु मुसिकाति।।६३।।
ऐसी छबि 'ध्रुव' नैननिं माँझ। रहौ निरंतर भोर अरु साँझ।।६४।।
प्रेम-बेलि वृंदावन फूली। पिय-तमाल-अंसनि पर झूली।।६५।।
देखि महा छबि सुधि-बुधि भूली। सब सखियनि की जीवन-मूली।।६६।।

ग्रन्थकार की रसाभिलाषा चौपाई

तिन सखियनि की कृपा मनाऊँ। या रस की कनिका जौ पाऊँ।।६७।।

दोहा

निसि दिन तौ जाँचत रहौ, वृंदावन रस-रैन।
छिन-छिन दंपति छबि छटा, छाइ रहौ 'ध्रुव' नैंन।।६८।।

जब शोभाशील प्रिया लड़कान-पूर्वक विलक्षण रीति से लटक-मटक के साथ मन्द-मधुर मुस्कुराती हुईं प्रियतम के हृदय से लिपट पड़ती है, तब वह छवि देखते ही बनती है।।६३।। श्री हित ध्रुवदास जी अभिलाषा करते हैं कि श्रीलाड़िली-लाल की यह छवि मेरे नेत्रों में प्रातः-सायं निरन्तर बसी रहे।।६४।। प्रेम की लता वृन्दावन में सदा फूली रहती है तथा तमाल रूपी प्रियतम श्रीलालजी के स्कन्धों पर झूलती रहती है।।६५।। इसका दर्शन करके छवि तो क्या महाछवि भी सुधि-बुधि भूल जाती है। वह 'प्रेम-लता' नित्य-विहार की समस्त सखियों की सञ्जीवनी जड़ी है।।६६।।

श्रीध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं उन सखियों की कृपा की याचना करता हूँ कि वे कृपालु सहचरियाँ अपने आस्वाद्य रस का कण-मात्र प्रदान करके मुझे कृतार्थ करें।।६७।। वे पुनः कहते हैं कि मैं वृन्दावन की रस-रेणु की अहर्निश कृपा-याचना करता हूँ कि रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल दम्पति की प्रतिक्षण नवनवायमान् छवि-छटा मेरे नेत्रों में छाई रहे।।६८।।

३७

रसानन्द

मङ्गलाचरण

दोहा

हरिवंश हंस उदित दिनहिं, परम रसिक रस-रासि।
उभै प्रेम-रस किरन मनौं, करी जु जगत प्रकासि।।१।।

चौपाई

प्रथम चरन हरिवंश जी ध्याऊँ। तातैं कछुक प्रेम रस पाऊँ।।२।।
प्रेमारस तबही पै पावै। श्री हरिवंश नाम गुन गावै।।३।।
नित्य-विहार तबहिं तौ जानैं। श्री हरिवंश-पदनि उर आनैं।।४।।
जो रस श्री हरिवंश जी गायौ। सो रस तौ काहूँ नहिं पायौ।।५।।
❀ अगम-निगम की कौन चलावै। महा विष्णु के मन नहिं आवै।।६।।

रस की राशि, परम रसिक (आचार्य) श्री हित हरिवंश सदा उदित रहने वाले वह सूर्य हैं, जिन्होंने (प्रिया-प्रियतम श्री राधाश्यामसुन्दर) युगल-किशोर की प्रेम-रस रूपी दो किरणें इस पृथ्वीतल पर प्रकाशित कीं।।१।। सर्वप्रथम मैं श्री हित हरिवंश जी के श्री चरणों का ध्यान करता हूँ, जिनकी कृपा से यत्किञ्चित्(अपनी पात्रता के अनुसार) प्रेम-रस पा सकूँ।।२।। अन्य कोई व्यक्ति भी इस प्रेम-रस को तभी पा सकेगा, जब वह श्री हरिवंश के नाम और गुणों का गान करेगा।।३।। (रसिकाचार्य गोस्वामी) श्री हित हरिवंश के द्वारा प्रवर्त्तमान् नित्य-विहार को उपासक तभी जान-पहचान सकेगा, जब वह (श्रद्धा-भक्ति पूर्वक) श्री हित हरिवंश के युगल चरणों को अपने हृदय में बसायेगा।।४।। श्री हित हरिवंश जी ने जिस नित्य-विहार रस का गान-वर्णन किया है, उसे आज-तक किसी अन्य ने प्राप्त नहीं किया।।५।। शास्त्रों और वेदों की तो बात ही क्या ? यह तो महाविष्णु के मन से भी ओझल

पाठान्तर– ❀ ब्रह्म रुद्र की कौन चलावै।

या रस कौ तबही अधिकारी। करहिं कृपा श्री राधा प्यारी।।७।।
कृपा नागरी तबही करै। श्री हरिवंश सुकर सिर धरै।।८।।

सोरठा

भजि रे मन दिन-रैन, श्री हरिवंश जु पद-कमल।
देखौ भरि जुग नैंन, तेहि प्रताप तें जुगल-छबि।।९।।

चौपाई

यह उपजी मन अति अभिलाषा। करहु कृपा जु करौं कछु भाषा।।१०।।
मौपै है अबहीं मति थोरी। कैसैं बरनौं यह रस-जोरी।।११।।
दीजै मोहि बुद्धि-परकासा। यह पुरवौ मेरी तुम आसा।।१२।।
रसिक-अनन्य चरन-रज पाऊँ। सहज केलि नव-दंपति गाऊँ।।१३।।

है, उनके मन में भी इसका प्रकाश नहीं होता है।।६।। केवल नित्य किशोरी-नित्य विहारिणि श्री राधा प्यारी की कृपा से ही भाग्यशाली जीव इस रस का अधिकार पा सकता है।।७।। और नागरी श्री राधा तभी कृपा करती हैं, जब उपासक के सिर पर श्री हित हरिवंश का कृपामय सुन्दर कर-कमल स्थापित हो जाता है।।८।। अतएव हे मेरे मन ! तुम दिन-रात श्री हित हरिवंश महाप्रभु के युगल-चरण-कमलों का ही भजन-चिन्तन किया करो, जिसके प्रताप से श्री युगल-किशोर की छबि को अपने युगल नेत्रों से देखते रहने का सौभाग्य पा सकोगे।।९।। मेरे मन में एक अतिशय बलवती अभिलाषा उत्पन्न हुई है कि मैं उपरोक्त नित्य-विहार केलि का अपनी भाषा में वर्णन करूँ किन्तु यह तभी सम्भव है, जब आप (श्री हित हरिवंश) कृपा करें।।१०।। क्योंकि मेरे पास बुद्धि का अभाव है, मैं अल्पज्ञ हूँ और यह युगल-तत्त्व अवर्णनीय है।।११।। इसलिये हे श्री हरिवंश ! मुझमें बुद्धि का प्रकाश करके मेरी आशा को पूर्ण कीजिये।।१२।। अब मैं श्री वृन्दावन-विलासी प्रिया-प्रियतम के अनन्य रसिक उपासकों की चरणरेणु का आश्रय प्राप्त करके नित्य नव दम्पति (श्री राधा-वल्लभ लाल) की सहज-केलि का गान करूँगा।।१३।।

दोहा

[1]अगम ते अगम अगाध अति, पहुँचत नहिं मन वेद।
श्री हरिवंश प्रताप-बल, पावत सुगम सु भेद।।१४।।

श्रीवृन्दावन वर्णन चौपाई

वृन्दावन-रस अतिहि अगाधा। नित्य-केलि मोहन श्री राधा।।१५।।
वृंदा-विपिन करैं नित-केली। पिय मोहन अरु प्रिया नवेली।।१६।।
सोभित कंचन-भूमि सुहाई। हंस-सुता-छबि कही न जाई।।१७।।
मनिनु जटित विवि कूल विराजैं। नव मराल नव कुंजनिं राजैं।।१८।।
अति कमनीय बनी नव कुंजा। मधुकर तहाँ करत मधु-गुंजा।।१९।।
बिच-बिच कनक कंज छबि न्यारी। अति अनूप झलकत सोभा री।।२०।।

जो आगम शास्त्रों के लिए अगम्य एवं अत्यन्त अगाध (गम्भीर) है, जहाँ वेदों का भी मन नहीं पहुँच पाता है किन्तु श्री हरिवंश के बल-प्रताप से उस नव दम्पति-केलि का प्राप्त करना और उसका रसमय रहस्य जान-समझ पाना सुगम और सहज है।।१४।।

वृन्दावन-रस अत्यन्त गम्भीर (रस क्रीड़ा) है, जहाँ केवल श्री राधा एवं मोहन श्री कृष्ण की नित्य-कैशोर केलि सम्पन्न होती है।।१५।। प्रियतम मोहन एवं श्री नवल किशोरी राधा ही इस नित्य-विहार केलि के नित्य नायक-नायिका हैं।।१६।। इन युगल की लीला-भूमि श्री वृन्दावन दिव्य कञ्चन-मयी है। इसके चारों ओर बहने वाली सूर्य-पुत्री श्री यमुना की छवि अवर्णनीय है।।१७।। श्री यमुना के दोनों तट विविध मणि-माणिकों से जड़े हुए हैं। जहाँ तटवर्ती नयी-नयी कुञ्जों में नव-नव रूप-सौन्दर्यमय हंस गण शोभित हैं।।१८।। वहाँ ऐसी अनेकानेक नयी-नयी कुञ्जें हैं, जिनमें रस-पायी भ्रमर मीठी-मीठी गुञ्जार करते रहते हैं।।१९।। वृन्दावन में अनेक सरोवर हैं, जिनमें स्वर्ण-कमलों की अति अनुपम शोभा विकसित है।।२०।।

पाठान्तर–१ आगम अगम अगाध अति.....

वल्लिनु कुसुम बने बहु भाँती। बरन-बरन सुंदर इक पाँती।।२१।।
वृंदा सकल रची वन-संपति। निरखि-निरखि आनँद मन-दंपति।।२२।।
फूले सुमन विविध नव रंगा। अति अनुराग होत प्रिय संगा।।२३।।
त्रिविध पवन तहाँ बहै सुहाई। शुक कपोत कोकिल कुहुकाई।।२४।।

दोहा

सहज कुंज अतिही बनी, मधुप करत गुंजार।
सकल सुगंधनि लै रच्यौ, अद्भुत मदन-अगार।।२५।।

चौपाई

सखियनि सिज्या रुचिर बनाई। विविध भाँति सौरभ बुरकाई।।२६।।
तापर बैठे नवल दंपती। सखियनि हित सुख सदा संपती।।२७।।
अंसनि भुजा परस्पर धारी। मोहन-लाल राधिका-प्यारी।।२८।।

लता-वल्लरियों में रङ्ग-विरङ्गे विविध प्रकार के सुमन पङ्क्तिबद्ध रूप से शोभित हैं।।२१।। यह सब वन-सम्पत्ति श्री वृन्दादेवी (जो वृन्दावन की व्यवस्थापिका सखी हैं) के द्वारा रचित है, जिसे देख-देखकर श्री प्रिया-प्रियतम रसिक-दम्पति आनन्दित होते हैं।।२२।। नये-नये रङ्ग के विविध पुष्पों की प्रफुल्लता को देख-देखकर स्वामिनी श्री राधा अपने प्रियतम के साथ अनुराग-रस में डूब जाती हैं।।२३।। वृन्दावन में सदैव शीतल, मन्द और सुगन्ध युक्त त्रिविध पवन बहता रहता है। ऐसे ही सदैव तोते, कपोत और कोकिल कुहुकते रहते हैं।।२४।। सहज शोभामय लता-कुञ्जें निर्मित हैं, जिन पर भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं तथा जो सब प्रकार की सुगन्धि से परिपूरित होने से साक्षात् प्रेमरूपी कामदेव का भवन बनी हुई हैं।।२५।। उस लता निर्मित अद्भुत मदन-आगार में सखियों ने विविध-भाँति की सुगन्धि बखेर कर अत्यन्त रुचिर पुष्पमयी शय्या रचकर तैयार की है।।२६।। जिस पर समस्त सखीजनों की हित-सम्पत्ति, सुखद नवल दम्पति श्री राधामोहन लाल परस्पर अंस-भुज-लता-धारी रूप में विराजमान् हैं।।२७-२८।।

ईषद हासि दोऊ मुसिकाहीं। अति अनुराग भरे मन माहीं।।२९।।

प्रियतम द्वारा प्रिया का शृङ्गार सोरठा

मोहन जू निजु पानि, प्रिया अंग भूषन सजे।
सुभग मनोहर ठानि, विविध कुसुम बैंनी गुही।।३०।।

चौपाई

मौरी . सीस सुरंग सुहाई। मोतिन माँग रची सुखदाई।।३१।।
बैंनी फूल देखि छबि न्यारी। मनौं घन में प्रगटी उजियारी।।३२।।
मृगमद-तिलक भाल पर कियौ। मधि बिंदुका कुंकुम कौ दियौ।।३३।।
खुटिला खुभी श्रवन झलकाई। बने नैंन प्रतिबिंब की झाँई।।३४।।

दोनों ही अत्यन्त अनुराग से भरे हुए मन्द-मन्द मधुर मुस्कान युक्त हैं।।२९।।

प्रियतम श्री मोहन लाल ने अपने हाथों से श्री प्रिया के श्री अङ्गों में सुन्दर और मनोहर अनेक आभूषण सुसज्जित किये तथा अनेक पुष्पों से उनकी वेणी गूँथी।।३०।। प्रियतम ने श्री किशोरी जी के शिरोभाग पर लाल रङ्ग की मौरी (विशेष प्रकार का वस्त्र शृङ्गार) सज्जित की है एवं सुखद और सुन्दर मोतियों की माँग रची है।।३१।। वेणी के फूलों की शोभा विलक्षण ही है (काली-काली वेणी के साथ श्वेत मल्लिका के) पुष्प ऐसे लगते हैं, मानो सजल घन में चन्द्रमा की चाँदनी (उजियारी) प्रकट हो गयी हो।।३२।। श्री प्रिया जी के ललाट पर कस्तूरी का तिलक रचकर उसके मध्य में केशर का बिन्दु स्थापित किया।।।।३३।। खुटिला एवं खुभी नामक कर्ण-भूषण धारण कराया तो, ऐसा लगा जैसे विशाल युगल नेत्रों का प्रतिबिम्बि ही खुटिला खुभी के रूप में प्रकट हो गया हो।।३४।।

दोहा

नैंन सुरंग अनूप अति, चंचल बंक बिसाल।
रुचिर रेख अंजन बनी, चितवनि चपल रसाल।।३५।।

चौपाई

वाम कपोल श्याम बिंदु सोहै। अलप अलक मोहन-मन मोहै।।३६।।
चितवनि चंचल परम सुहाई। खंजन मीन लजी[1] चपलाई।।३७।।
वेसरि-झलक अधिक छबि पाई। मुसिकनि बरषत सुंदरताई।।३८।।
अरुन अधर दसननि की शोभा। निरखि-निरखि मोहन-मन लोभा।।३९।।
चिबुक मध्य श्यामल बिंदुकनी। कहि न जात जैसी छबि बनी।।४०।।
कंचुकि कसुँभि विराजति प्यारी। नील वसन शोभति तनु सारी।।४१।।

अहा, हा ! श्री प्रिया जी के रतनारे युगल-नयन अनुपम तो हैं ही, चञ्चल, तिरछे और विशाल भी हैं। चपल और रसभरी चितवन और तिस पर अञ्जन की झीनी रुचिर रेखा अपार सौन्दर्य राशि है।।३५।। श्री किशोरी जी के बाँए कपोल पर श्याम रङ्ग का विन्दु शोभित है, वहीं समीप ही झीनीं सी अलक-लट मुख-कमल की शोभा बढ़ा रही है और प्रियतम मोहन के मन को मोहित कर रही है।।३६।। नेत्रों की चितवन अत्यन्त चञ्चल और परम शोभामय है, जिसके सम्मुख खञ्जन और मीन (मछली) की चपलता भी लज्जित है।।३७।। नासिका पर वेसर (नासा-मुक्ता) बहुत फबी है एवं मुख की मुस्कान तो मानो सुन्दरता की वर्षा करती है।।३८।। अरुण अधर-पल्लव और उज्ज्वल दन्त-पङ्क्तियों की शोभा देख-देख कर मोहन का भी मन लुभा गया है।।३९।। चिबुक के मध्य में श्याम रङ्ग का विन्दु, कहते नहीं बनता कि कितना सुन्दर है।।४०।। स्वामिनी के अङ्ग पर नील वर्ण की साड़ी के साथ कसूँभे रङ्ग की कञ्चुकी शोभित है।।४१।।

पाठान्तर – १ तजी

कुंदन-दुलरी कंठ सुहाई। मनौं रूप की सींव बनाई।।४२।।
ता पर झलकत मोतिनु माला। बीच पदिक झलमलत रसाला।।४३।।
भुजनि वलय अंगद सुठि सोहैं। रतन खचित पहुँची मनमोहैं।।४४।।
झलकि रहीं गोरी मृदु अँगुरी। रँग-रँग की सोभित हैं मुँदरी।।४५।।
त्रिबली उदर नाभि-ह्रद जहाँ। मीन रहत मोहन-मन तहाँ।।४६।।
कटि राजति रसना रस-ऐंनी। झुनकति पिय मन कौं सुखदैनी।।४७।।
पाइल नूपुर की धुनि सोहै। गति पर गज-मराल-मन मोहै।।४८।।
चरननि जावक चित्र सुरंगा। छबि लागी डोलति तिहि संगा।।४९।।
सुंदर नवल नखनि के आगैं। अतनु रतन सब फीके लागैं।।५०।।

कण्ठ पर कुन्दन की दुलरी क्या है, मानो रूप की सीमा-रेखा है।।४२।। उस दुलरी के साथ शुभ्र मोतियों की माला और फिर वक्षस्थल पर जगमग-जगमग सरस पदिक।।४३।। भुजाओं पर अङ्गद, कलाइयों पर चूड़ियाँ और रत्नखचित पहुँची सभी एक से एक मन के मोहक हैं।।४४।। गोरी-गोरी कोमल उँगलियों में रङ्ग-बिरङ्गे मणि एवँ नगों से जटित मुद्रिकाओं की शोभा अपूर्व है।।४५।। उदर-देश में त्रिवली, नाभि-सरोवर, जहाँ मोहन का मन मीन बनकर सदा क्रीड़ा करता रहता है।।४६।। कटि पर झुनकती किङ्किणी रस की भण्डार है। अतः प्रियतम के मन को सदैव सुखदायक है।।४७।। श्रीचरणों में पायल और नूपुरों की झङ्कार-ध्वनि बड़ी मनोरम है। चरण-गति, पाद-विन्यास पर गजराज और हंस का भी मन मुग्ध हो रहता है।।४८।। चरण-तल पर जावक की सुरङ्ग चित्रावली पर तो साक्षात् छवि भी मुग्ध भाव से पीछे लगी फिरती है।।४९।। कोमल पादाङ्गुलियों की सुन्दर नखावली के समक्ष तो दिव्य रत्न एवं चन्द्र-कान्ति भी फीकी लगने लगती है।।५०।।

दोहा

रूप-रासि अति नागरी, भूषन अंग रसाल।
निरखि नैंन मोहन फँदे, मनौं मीन छबि-जाल।।५१।।

चौपाई

कछु दृग सजल देखि निज रूपहि। पिय चित पर्‌यौ प्रेम के कूपहिं।।५२।।
निरखि-निरखि सोभा सुंदर वर। प्रेम विवश लटके सिज्या पर।।५३।।

रति-उद्दीपन

चौपाई

तब प्रिया लै मोहन उर लायौ। होइ दयालु अधरनि रस प्यायौ।।५४।।
रति विपरित चुंबन इक संगा। करत विविध नव-केलि अनंगा।।५५।।
नूपुर-रव किंकिनि रुचिदाई। उठति तरंग-मैंन अधिकाई।।५६।।
कोक-कला में निपुन विहारी। केलि-बेलि रस की विस्तारी।।५७।।
रति-रन-रंग रह्यौ अति भारी। बढ़ी चौंप जद्यपि सुकुवाँरी।।५८।।

ऐसी अति रूप-राशि नागरी, जिनके अङ्ग ही रसमय भूषण हैं उनका दर्शन करते ही स्वयम् मोहन श्री कृष्ण का मन श्री प्रिया की छबि में ऐसे फँस गया, जैसे मछुवारे के जाल में मछली फँस जाती है।।५१।। श्री प्रिया जी ने अपने रूप-लावण्य की अधिकता या विशेषता पर दृष्टि डाली, जिस रूप के दर्शन-मात्र से प्रियतम का चित्त (रूप-प्रभाववशात्) प्रेम के कूप-गहराई में गिर पड़ा है, ऐसा देखकर उनके करुणा-पूर्ण नेत्र सजल हो गये।।५२।। और इधर रसिक प्रियतम प्रिया की रूप-माधुरी का अवलोकन करते-करते तन-मन की सुधि खोकर प्रेम विवश हुए विथकित भाव से शय्या पर निपतित हो गये।।५३।।

तब प्रिया ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और दया भाव-भावित होकर अधरामृत पान कराया।।५४।। तत्पश्चात् चुम्बन, आलिङ्गनादि रति-भावों का विस्तार करके प्रियतम को तुष्ट-पुष्ट किया।।५५।। इस केलि-विहार में नूपुर-रव किङ्किणि की झणकार और अनेक कोक-कलाओं के विस्तार में

दोहा

सुरत-रंग विवि वदन पर, श्रम-जल-कन रहे सोहि।
रसिक सखी ललितादि सब, छबि अनूप रहीं जोहि।।५९।।

सखियों का सेवा सम्बन्धी चाव चौपाई

कोमल अंचल पवन डुलावैं। अति आसक्त नैंन भरि आवैं।।६०।।
एक बैस सब सखी सहेली। मानौं नेह-बाग की बेली।।६१।।
सींची नवल कटाच्छनि जल सौं। फूलीं चाह फूल फल दल सौं।।६२।।
एक रूप तन-मन अनुरागी। जुगल हेत हित-रस सौं पागी।।६३।।
तिन में आठ सखी मन भाई। देखत रूप न कबहुँ अघाई।।६४।।

प्रवीण प्रियतम की केलि चातुरी द्वारा रति-रण में अनिर्वचनीय रस की वृद्धि हुई।।५६-५७-५८।। सुकुमार युगल के मुख-मण्डल पर झीने-झीने श्रम-जल-बिन्दु उदित हो गए। इस अनुपम छबि का रसिक सखी ललिता आदि दर्शन करके अपने आप को धन्य-धन्य अनुभव करने लगीं।।५९।।

[युगल किशोर प्रिया-प्रियतम की तन-मन प्राणों से सेवा-कैङ्कर्य ही जिन सखी-सहेलियों का जीवन है] वे सखियाँ युगल की इस रति-विगलित दशा में अपने कोमल वस्त्राञ्चलों से मन्द-मधुर बयार करती हैं। युगल के प्रति अतिशय प्रेमासक्ति के कारण उनके नेत्रों में बारम्बार जल भर आता है।।६०।। वे सब सखी-सहेली एक ही आयु की अर्थात् किशोरावस्था सम्पन्न हैं। देखने में ऐसी लगती हैं, मानो किसी प्रेम-वाटिका की कोमल और सचिक्कन लताएँ हों।।६१।। जो प्रिया-प्रियतम के नयन-कटाक्ष रूपी जल से सींची जा कर चाह रूपी दल, फूल और फल से परिपूरित हों।।६२।। सभी एक रस, रूप, तन, मन और अनुराग में परस्पर समतुल्य हैं। जो निरन्तर युगल-रसिक के तत्सुख हित भाव एवं रस में पगी हुई हैं।।६३।। इन अनन्त सखियों में मुख्यतः आठ सखी युगल किशोर की मन-भायी सखी हैं, जो युगल-किशोर की श्री मुख-छबि का दर्शन करते कभी अघाती नहीं हैं।।६४।।

ललित विसाखा वृंदा श्यामा। चंद्रा मुदिता नंदिनि भामा।।६५।।
अपनी-अपनी टहल कराहीं। प्रेम-मगन आनंद रहाहीं।।६६।।
ललिता लड़िली-लाल लड़ावै। मधुर वचन कहि तिनहिं हँसावै।।६७।।
जुगल-मिलन-सुख अतिही भावै। नेह बढ़नि की बात चलावै।।६८।।
सखी विसाखा मन की प्यारी। कबहुँ न होति संग तें न्यारी।।६९।।
पाननिं बीरी रुचिर बनावै। लटकि कुँवरि तेहि पर ढरि आवै।।७०।।
वृंदा वन कौं दिनहि सिंगारै। सोभा भरि-भरि नैंन निहारै।।७१।।
बहु विधि दल-फल-फूल सुहाये। सुमन सुरंग दुहुँनिं मन भाये।।७२।।
श्यामा चीर विविध नव-रंगा। लियैं रहति अनुराग अभंगा।।७३।।

ऐसी युगल रूपासक्त सखियों के नाम हैं—ललिता, विशाखा, वृन्दा, श्यामा, चन्द्रा, मुदिता, नन्दिनी और भामा।।६५।। ये आठों सखी अपनी-अपनी सुनिश्चित सेवाओं को करती हुईं, प्रेम और आनन्द में मग्न रहती हैं।।६६।। "श्री ललिता" ललित लाड़िली-लाल को लाड़ लड़ाते हुए मधुर-मधुर वचनावली से युगल को हँसाती रहती हैं।।६७।। इन्हें युगल-किशोर के मिलने का सुख सहज प्रिय है, अतएव युगल से ऐसी बातें करती हैं, जिससे उनके पारस्परिक प्रेम में वृद्धि हो।।६८।। "विशाखा" श्री किशोरी जी की मन-भाँवती सखी है। वह कभी भी श्री प्रिया जी के सामीप्य को छोड़ कर पृथक् नहीं होती।।६९।। ताम्बूल-वीटिका (बीरी) की रचना में अति निपुण है। श्री विशाखा जी की सेवा और प्रेम से रीझ-रीझकर श्री किशोरी जी बारम्बार विशाखा पर लटक-लटक जाती हैं।।७०।। "वृन्दा" नामक सखी श्री वृन्दावन नामक वन को सदैव सँवारती-सजाती रहती है और श्रीवन की शोभा को आँखें भर-भर कर देखती रहती है।।७१।। वृन्दा सखी के ललित श्रीवन में विविध प्रकार के लता- द्रुमों में मनोरम पत्रावली, फूल और फल, सुहावने सुरङ्ग सुमन सदा शोभित हैं, जो युगल किशोर को बड़े प्यारे लगते हैं।।७२।। "श्यामा" सखी अभङ्ग अनुराग से भरी रहकर युगल के धारण करने योग्य विविध प्रकार के वस्त्र लिये सेवा में तत्पर रहती है।।७३।।

अंचल कचनि सँभार्‌यौ करई। षट-रस विंजन आगैं धरई।।७४।।
चंदा चन्दन ठाढी लीयैं। और अरगजा मृगमद कीयैं।।७५।।
अंगनि चित्र विचित्र बनावै। फूलनि माल फूल पहिरावै।।७६।।
मुदिता मदन-मोद उपजावै। हित सौं चरन-कमल सहरावै।।७७।।
बिच-बिच कहति है प्रेम-पहेली। हँसि हँसि समुझत नवल नवेली।।७८।।
नंदिनि अति आनन्द बढ़ावै। मधुर-मधुर सुर बीन बजावै।।७९।।
बिच-बिच मंद-मंद सुर गावै। सुनत हिये के श्रवन सिरावै।।८०।।
कुसुम-बीजना मृदु कर लीयैं। करति पवन हुलसति अति हीयैं।। ८१।।
भामा भूषन दिनहिं सिंगारै। सोभा भरि-भरि नैंन निहारै।।८२।।

वह श्री किशोरी जी के अञ्चल और केश-राशि को (गुम्फन आदि से) सदा सँवारती रहती है और साथ ही उत्तमोत्तम षट् रस व्यञ्जन-भोज्य पदार्थों का रन्धन करके युगल को परोसती और प्यार से खिलाती-पिलाती रहती है।।७४।। "चन्द्रा" सखी अरगजा, चन्दन, कस्तूरी केशर आदि के लेप एवं अङ्गराग निर्मित कर युगल की सेवा में सदैव तत्पर रहती है।।७५।। वह युगलकिशोर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में विचित्र-विचित्र प्रकार की चित्र रचना करके किशोरी-किशोर को सुगन्धित पुष्प-मालाएँ धारण कराती हैं।।७६।। "मुदिता" सखी 'यथा नाम तथा गुण' हैं। प्रीति- पूर्वक युगल-सरकार का पाद-सम्वाहन करती हुई।।७७।। बीच-बीच में प्रेम-पहेली बुझाती हैं, जिन्हें सुनने-समझने के पश्चात् युगल दम्पति नवल लाड़िली-लाल खिलखिला उठते हैं।।७८।। 'नन्दिनी' सखी आनन्द वर्द्धिनी हैं। मधुर-मधुर ध्वनि से वीणा-वादन करती हुई।।७९।। बीच-बीच में मन्द- मन्द गान करती हैं, जिसे सुनकर युगल के अन्तर्मन के श्रवण शीतल हो जाते हैं।।८०।। कभी पुष्प रचित व्यजन (पंखा) अपने हाथों डुलाती हुई युगल को शीतलता दान करके स्वय-मेव शीतलता लाभ करती है।।८१।। 'भामा' सखी युगल-किशोर को दिव्य आभूषण अलङ्कारों से सजाती-सँवारती रहती है और नेत्र भर-भर कर छबि का अवलोकन करती रहती हैं।।८२।।

यह सुख निज सहचरी दिखाहीं। वारि-वारि अंचल बलि जाहीं।।८३।।

दोहा

(श्री) राधा वल्लभ नव कुँवर, करत निकुंज-विहार।
प्रवल चौंप तन-मन बढ़ी, रसमै दोउ सुकुँवार।।८४।।

चौपर क्रीड़ा चौपाई

खेलत नवल नागरी - नाइक। चौपर-खेल महा सुखदायक।।८५।।
इक-इक सखी भई दुहुँ कोदा। बढ़्यौ युगल मन में अति मोदा।।८६।।
अंगनि भूषन दाव लगावैं। कहुँ-कहुँ झगरत अति छबि पावैं।।८७।।
हारत लाल लगावत जोई। त्यौं-त्यौं चौंप चौगुनी होई।।८८।।
हारे मोतिनु-हार विहारी। तब कटि तें किंकिनी उतारी।।८९।।

श्री प्रिया जी की ये अष्ट प्रधान सहचरियाँ सेवा-सुख का आस्वादन करतीं और युगल पर न्यौछावर जाती रहती हैं।।८३।। इस प्रकार श्री राधा एवं उनके वल्लभ नव-नवायमान् युगल किशोर रसमय नव सुकुमार प्रबल चौंप-चाड़ से भरे हुए तन और मन से निरन्तर नवल निकुञ्ज विहार करते हैं।।८४।। आज नवल नागरी श्री राधा और नवल नायक श्री लालजी महान् सुखदायक खेल चौपड़ खेल रहे हैं।।८५।। खेल के दोनों पक्षों में एक-एक सखी दोनों ओर पक्षधर बनीं हैं। खेल में युगल दम्पति के मन में अत्यन्त आनन्द-मोद की वृद्धि हुई।।८६।। तब तन्मय होकर दोनों ही अपने-अपने अङ्ग-भूषण दावों में लगाने लगे और बीच-बीच में स्वपक्ष-विजय के लिये झगड़ते-झकझोरते बड़े सुहावने प्रतीत हुए।।८७।। मजे की बात यह रही कि श्री लाल जी द्यूतक्रीड़ा के दाव में जो भी भूषण लगाते हैं, वही हार जाते हैं। उनकी हार से श्री प्रिया-पक्ष को चौगुनी चौंप बढ़ती जाती है।।८८।। देखते-देखते श्री विहारी लाल अपना मुक्ता-हार हार गये, तब ताव-तैश में आकर उन्होंने कटि से किङ्किणी उतार कर दाव में लगा दी।।८९।।

पीत वसन वंशी पुनि हारी। छबि सौं हँसति मधुर सुकुँवारी।।९०।।
छके लाल मुंख छबिहि निहारी। चलतहि छकि पर सार विसारी।।९१।।

दोहा

नैंना तो अटके रहैं, अद्भुत रूप निहारि।
परत कछू खेलत कछू, छह कहि छाँड़त सारि।।९२।।

चौपाई

'हित ध्रुव' प्रेम खेल के आगे। और खेल सब फीके लागे।।९३।।

दोहा

प्रेम-स्वाद कैसैं कहौं, नाहिंन कछू समान।
भूषन पट की को कहै, रहे हारि जहाँ प्रान।।९४।।

और उसे भी वे हार गए। अधिक क्या कहें ? पीताम्बर, उपरैना और **वंशी** भी हार गये। तब तो सुकुमारी प्यारी श्री राधा खिलखिला कर हँस **पड़ी**।।९०।। उस समय उनकी छबि दर्शनीय बन गयी। श्रीलाल जी इस **उन्मुक्त** हास्यमयी छवि-राशि का दर्शन करके स्वयं छक गये और छकनि **में** भर जाने के कारण अपनी गोट (सार) का चलना ही भूल गये।।९१।। **छवि**-निधि किशोरी की अद्भुत छवि निहार कर प्रियतम के नयन एक टक **उस** रूप-राशि पर अटक गए। फलतः पाँसे में अङ्क कुछ पड़ता है और वे **सार** (गोट) की चाल कुछ और ही चलते हैं। संभ्रम में आकर 'छह' कह कर **पाँसे** फेंकते हैं पर अङ्कों का ध्यान नहीं रहता।।९२।। श्री हित ध्रुवदास जी **कहते** हैं कि प्रेम-खेल के समक्ष विश्व के समग्र खेल फीके लगते हैं।।९३।। **प्रेम के** स्वाद-सुख का वर्णन कैसे किया जाय, जिसकी समता में कुछ भी **नहीं है**। भूषन और वस्त्रों के हारने की तो बात ही क्या है, जहाँ प्रेमी अपने **प्रेमास्पद** के लिए प्राणों को भी हार चुका होता है; स्वयं बलिहार हो जाता **है**।।९४।।

वन-विहार चौपाई

नवल कुँवरि दोउ बाहाँ-जोरी। विहरत निपट साँक री खोरी।।९५।।
अति सुदेश भूषन-झनकारा। सुनत श्रवन सुख होत अपारा।।९६।।
सुभग मंद-गति कमल फिरावैं। बिच-बिच सरस चारु कल गावैं।।९७।।

दोहा

एक प्रान द्वै सहज तन,गौर-स्याम निजु रूप।
वृंदावन आनँन्द सदन, विलसत विविध अनूप।।९८।।

चौपाई

कोमल बेलि द्रुमनि लपटानी। डोलतिं मृगी परम सुखदानी।।९९।।
मोतिनु-दुलरी कण्ठ बनाई। बिच-बिच मनि अनूप पहिराई।।१००।।
अति आनंद फिरैं बन माहीं। करतिं कलोल द्रुमनि की छाँहीं।।१०१।।

अस्तु, दोनों नवल कुँवर परस्पर गलबहियाँ दिये अब वृन्दावन की अत्यन्त सङ्कीर्ण गलियों में एकमेक से हुए लिपटे-चिपटे विचरण करते हैं।।९५।। उस समय उनके अति सुन्दर चरण-आभूषणों की झनकार होती है, जिसे सुनकर कानों को अपार सुख मिलता है।।९६।। विचरण करते समय युगल कुँवर अपने कर कमलों में लिये हुए लीला-कमलों को बड़े ही मनोरम प्रकार से घुमाते हैं और बीच-बीच में मधुर, सरस और कल-गान भी करते हैं।।९७।। प्रेम और शृङ्गार की युगल मूर्त्ति गौर-श्याम प्रिया-प्रियतम वस्तुतः एक प्राण और दो देह हैं। वे आनन्दधाम श्री वृन्दावन में अनुपम रीति से विविध क्रीड़ा-विलास करते हैं।।९८।। वृन्दावन के सुरम्य द्रुमों में कोमल-कोमल लताएँ लिपटी हुई हैं। वहाँ सुन्दर और सुखद मृगी-समूह क्रीड़ा करता फिरता है।।९९।। उन मृगियों के कण्ठ-देश में मोतियों की दोलड़ी कण्ठी धारण है, जिनमें बीच-बीच में मणि पिरोये हुए हैं।।१००।। वे हरिणियाँ वृन्दावन के सघन वृक्षों की छाया में कल्लोल करती रहती हैं एवँ अतिशय आनन्द पूर्वक श्रीवन में विचरण करती रहती हैं।।१०१।।

नवल विपिन में सुमन सुरंगा। निरखत फिरैं दोऊ इक संगा।।१०२।।
मान-सरोवर जबहीं आये। नाचत मोर देखि मुसिकाये।।१०३।।
ठाढ़े भये सरोवर तटहीं। कोकिल कीर मधुर सुर रटहीं।।१०४।।
अरुन असित-सित अंबुज सोहैं। चलत मराल मंद-गति मोहैं।।१०५।।

कुण्डलिया

नव वन नव मोहन बने, नव राधा वर नारि।
नव वसंत तहाँ नित रहै, नवल पुहुप नव डारि।।
नवल पुहुप नव डारि, रसिक मधुकर लपटाहीं।
करत गुंज अति चारु, रागु सौरभ मन माहीं।।
सुनत श्रवन रुचि होइ, रहत फूलत आनँद मन।
परम रसिक जुग चंद, सदा विहरत मोहन-वन।।१०६।।

प्रिया-प्रियतम युगल इन मृगियों का एवं सुरभित पुष्पों का अवलोकन करते हुए नवल वृन्दावन में विचरण करते आनन्दानुभव करते हैं।।१०२।। जब विचरण करते हुए मान-सरोवर आये तो नृत्य करते हुए मयूरों को देखकर बड़े हर्षित हुए—मुस्कराने लगे।।१०३।। जिस मान-सरोवर तट पर कोकिला, शुक आदि पक्षी अपनी मधुर-मधुर बोली बोल रहे हैं, उस रमणीय तट पर युगल खड़े हो गये।।१०४।। सरोवर में श्वेत, नील एवं लाल रङ्ग के अनेक कमल विकसित हो रहे हैं, जिनमें मद-मन्थर गतिशील मराल (हंस) क्रीड़ा कर रहे हैं, जो युगल के मन को मोहित कर रहे हैं।।१०५।। श्री वृन्दावन नित्य नवीन वन है। ऐसे ही जहाँ नव-नव रूप- लावण्य धाम मोहन श्री लाल जी और समस्त विश्व-सुन्दरियों की शिरोमणि श्री राधा नागरी हैं, जिस वृन्दावन में सदा नव-निसर्गमय वन-राजि है, नव वसन्त है, नित नये पुष्प हैं, एवं नित्य नयी तरु शाखाएँ शोभित हैं। जहाँ रसिक भ्रमरों का समूह मुग्ध-भाव से संश्लिष्ट है। मधुकर पुञ्ज मधुर-मधुर गुञ्जार करता हुआ विथकित हो रहा है, जिसके मन में श्री वृन्दावन के दिव्य पुष्पों के सौरभ (सुगन्ध) का अनिवार्य राग भरा है। दर्शन तो दूर जिस वृन्दावन का अमल यश श्रवण करते ही प्राणि मात्र

वसन्त-क्रीड़ा चौपाई

खेलत फाग तहाँ रस-सागर। नव राधे अरु मोहन नागर।।१०७।।
ताल मृदंग मधुर धुनि बाजैं। सखियनि वृंद माँहि दोउ राजैं।।१०८।।
चंदन वंदन और अबीरा। सुरँगित भये दुहुँनि के चीरा।।१०९।।
एकनि डफ इक बीन बजावैं। एक गुलाल सुरंग उड़ावैं।।११०।।
निर्त्तत फिरत किसोर-किसोरी। मधुर वचन कहि हो-हो होरी।। १११।।
ज्यौं-ज्यौं दोऊ तारी पटकैं। अति सुदेस पहुँची कर लटकैं।। ११२।।
यह सोभा मन ही तौ जानै। बलि बलि दैहिं दासि निजु प्रानैं।। ११३।।

के मन में तत्सम्बन्धी रुचि उत्पन्न हो जाती है और अन्तर्मन में आनन्द का कमल विकसित हो जाता है। ऐसे मोहनशील वृन्दावन में परम रसिक युगल चन्द्र श्री राधावल्लभ लाल सदा-सदा विहार करते रहते हैं।।१०६।।

ऐसे मनोरम वृन्दावन में रस-सागर नवल राधिका और नागर (चतुर) मोहन युगल आज फाग खेल रहे हैं।।१०७।। समस्त सखी-समूह के मध्य में दोनों-प्रिया-प्रियतम शोभित हैं और ताल, मृदङ्ग आदि बाजे मधुर ध्वनि से बज रहे हैं।।१०८।। चन्दन, वन्दन और अबीर के छिरकाव से युगल के वस्त्र रङ्ग-रञ्जित हो गये हैं।।१०९।। कोई सखी डफ बजाती है, कोई वीणा बजाती है और कोई एक लाल-लाल गुलाल उड़ाती है।।११०।। इनके बीच में युगल किशोर 'हो हो होरी' के मधुर शब्द बोलते हुए नृत्य कर रहे हैं।।१११।। जब युगल दम्पति अपने हाथों की ताली पटकते हैं तब उनकी कलाइयों की पहुँचियाँ (रेशमी झुमके) बड़ी ही सुन्दर छबि से लटकती शोभा देती हैं।।११२।। युगल की वसन्त-केलि की यह शोभा तो केवल सखियों का भाग्यशाली मन ही जानता है, वे सखियाँ बारम्बार बलिहार जाती हुईं युगल छबि पर अपने प्राण न्यौछावर करती हैं।।११३।।

सोरठा

एक प्रान द्वै देह, नवल रसिक अरु रसिकनी।
अति आसक्त सनेह, रँगे परस्पर प्रेम-रँग।।११४।।

होरी-डोल चौपाई

कंचन रुचिर हिंडोरा बन्यौ। मनिमय जटित मनोहर ठन्यौ।।११५।।
झूलत रसिक राधिका-मोहन। निरखि नैंन भावत दिन जोहन।।११६।।
भूषन-दुति अंगनि दमकाई। नील-पीत अंचल फहराई।।११७।।
सखियनि नैंन-निमेष भुलाये। निरखत रूप अंबु भरि आये।।११८।।

दोहा

सहज इंदु दंपति वदन, सखियनि-नैंन चकोर।
निरखि रूप इक-टक रहे, बँधे प्रेम दृढ़ डोर।।११९।।

सखियों के सर्वस्व युगल रसिक अतिशय प्रेमासक्त, प्रेम रङ्ग में रँगे हुए एक प्राण दो देह लीला विलासी रस-तत्त्व हैं।।११४।।

मणिगण जटित स्वर्ण निर्मित हिण्डोल बड़ा ही रुचिर और मनोहर सुसज्जित हुआ।।११५।। जिस पर श्री राधा मोहन झूलने लगे। उनकी झूलन सखियों को बड़ी भायी, जिसे देखकर देखते रहना ही प्रिय लगा।।११६।। झूलते हुए नव-दम्पति की अङ्ग-कान्ति, भूषणों की चमक और नील-पीत वस्त्राञ्चलों की फहरानि एक से एक विलक्षण थी।।११७।। सखियाँ तो पलकें गिराना भूल कर अपलक नेत्रों से युगल-छवि को देखती रह गयीं। प्रेमावेग से उनके नेत्रों से जल बरसने लगा।।११८।। दम्पति के श्रीमुख सहज चन्द्र हैं और सखियों के नेत्र चकोर हैं, जो एकटक रूप का अवलोकन प्रेम की डोर से बँधे हुए करते रहते हैं।।११९।।

चौपाई

तिनकौ रूप कहत नहिं आवै। जो देखै तन-सुधि बिसरावै।।१२०।।
परै प्रेम के फंद मँझारी। सर्वसु प्रान रहै तहाँ हारी।।१२१।।
निसि-दिन ताहि न और सुहाई। बिनु देखे हीयौ अकुलाई।।१२२।।
यह रस जो मन वच कै गावै। निश्चै सो सहचरि-पद पावै।।१२३।।
इनहीं नैंननिं सब सुख देखै। जनम सफल अपनौं करि लेखै।।१२४।।
नव मोहन श्री राधा प्यारी। हित ध्रुव निरखि जाइ बलिहारी।।१२५।।

युगल छवि-वर्णन दोहा

दंपति वारिधि रूप के, उठतिं तरंग जु मैंन।
दृग अगस्त नहिं तृपित ही, पान करत दिन-रैंन।।१२६।।

युगल का ऐसा विलक्षण सौन्दर्यमय रूप वाणी द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता। जो भी कोई उस रूप को देखता है, अपनी सारी सुधि-बुधि भूल जाता है।।१२०।। वह प्रेम के फन्दे में फँस कर तन-मन तथा प्राण क्या सर्वस्व ही दम्पति पर न्यौछावर कर देता है।।१२१।। फिर तो उसे दिन-रात उस रूप-राशि-दर्शन के सिवाय अन्य कुछ सुहाता ही नहीं हैं। रूप-माधुरी दर्शन के लिए उसके प्राण छटपटाते रहते हैं।।१२२।। जो कोई अन्य भाग्यशाली इस दम्पति-प्रेम विहार का मनसा-वाचा भाव-पूर्वक गान करेगा, वह निश्चित ही युगल किशोर की सहचरी का पदाधिकार प्राप्त करेगा।।१२३।। और अपने इन्हीं चर्म-चक्षुओं से नित्य-विहार के समस्त सुखों का दर्शन कर सकेगा एवं अपने जीवन तथा जन्म की सफलता प्राप्त करेगा।।१२४।।। ऐसे कृपामय रूप-लावण्य-धाम नव-मोहन और श्री राधा प्रिया का दर्शन करके मैं (हित ध्रुवदास) बलिहारी जाता हूँ।।१२५।।

[वलिहारी जाने योग्य रूप-राशि का वर्णन करते हुए श्री ध्रुवदास जी पुनः कहते हैं कि] दम्पति रूप के समुद्र हैं, जिनमें काम रूपी प्रेम की तरङ्गें

चौपाई

आजु बनी अति सुंदर जोरी। पिय मोहन अरु राधा गोरी।।१२७।।
नवल कुँवर नटवर वपु कीने। सीस मुकट अंजन दृग दीने।।१२८।।
नासा-जलज अधिक छबि पाई। मुसिकनि वरषति सुंदरताई।।१२९।।
प्रिया सुभग काछिनि कटि सोहै। कज्जल नैंन रेख मन मोहै।।१३०।।
बेसरि सुभग मंद गति डोलै। ईषद हँसनि सरस मृदु बोलै।।१३१।।
बदन-कमल छबि कही न जाई। सखियनि अलि दृग रहे लुभाई।।१३२।।
नील-पीत पट तरल सुहाई। भूषन झलक बरनि नहिं जाई।।१३३।।

कुण्डलिया

दंपति रूप अनूप अति, भूषन दमकत अंग।
तरल झलक प्रतिबिंब अति, निरखि होत दृग पंग।।

उठती रहती हैं। सखियों के अगस्त्य मुनि रूपी नेत्र दिन-रात रूप-जल का पान करते हुए भी कभी तृप्त नहीं हो पाते।।१२६।।श्री राधा-मोहन गौर-श्याम की अति सुन्दर जोड़ी आज तो अधिकाधिक सुहावनी बनी है—छविमान् है।।१२७।। नवल कुँवर ने सिर पर मुकुट और नेत्रों में अञ्जन धारण करके नटवर-वपु धारण किया है।।१२८।। उनकी नासिका में नासा-मुक्ता आज अधिक छबि दे रहा है और मन्द मुस्कान तो मानो सुन्दरता की ही वर्षा कर रही है।।१२९।। इधर श्री प्रिया जी ने कटि में काछिनी धारण कर रखी है। उनके नेत्रों की कज्जल-रेखा तो सभी का मन मोहित कर रही है।।१३०।। नासिका के बेसर का सुभग छवि के साथ कम्पन, श्री मुख का मन्द मधुर सरस, ईषद् (अल्प) एवँ, मृदु हास्य मधुर स्वर-लहरी (बोलनि) युक्त वदन-कमल की छबि कुछ कहते नहीं बनती, जहाँ सखियों के नेत्र-रूपी भ्रमर मुग्ध हो रहे हैं।।१३१-१३२।। युगल के नील-पीत पटों की तरल फहरानि, भूषणों की झलक एक से एक बढ़कर है, जो वर्णन में नहीं आती।।१३३।। दम्पति के अति अनुपम रूप के साथ श्रीअङ्गों की झलक, भूषणों की झमक और

निरखि होत दृग पंग, सुभग अति सुंदरताई।
सहज माधुरी अंग चितै, छिन पलक न लाई।।
पानि सरस फेरत कमल, राजत परम स्वरूप।
मंद हास चितवनि चपल, मोहन दंपति-रूप।।१३४।।

शरद रास नृत्य चौपाई

पावन सुभग कलिंदी तीरा। कंचन रास खचित मनि-हीरा।।१३५।।
कनक कंज तिहिं मध्य विराजै। सोभा निरखि कोटि रवि लाजै।।१३६।।
चहुँ दिसि फूल रही फुलवारी। तैसी सरदनि उजियारी।।१३७।।
आनंद कौ घन बन में बरसै। खग मृग सब सखियन मन हरसै।।१३८।।

उस पर प्रतिबिम्बित छवि की लहराती हुई झलक को देख कर नेत्र-गति पङ्गु हो जाती है। युगल के अङ्गों का सौष्ठव, अतिशय सौन्दर्य एवं सहज माधुर्य का दर्शन करके पलकें अपनी गति भूल जाती हैं। जब युगल किशोर अपने कर-कमलों में कमल-पुष्प ले कर सरस गति से फिराते हुए मन्द मधुर हास्य पूर्वक चपल चितवन से निहारते हैं, तब दम्पति का रूप विलक्षण मोहक बन जाता है।।१३४।।

पवित्र एवं सुन्दर कलिन्दनन्दिनी श्री यमुना के तट मणि-माणिक्यों से खचित हैं। जहाँ दिव्य स्वर्णभूमि के मध्य में एक कनक कमल शोभित है, जिसकी शोभा को निरख कर कोटि-कोटि सूर्य लज्जित हो जाते हैं।।१३५-१३६।। उस वृन्दावन में चारों ओर अत्यन्त सुन्दर फुलवारी फूल रही है, वैसी ही चन्द्रिकामयी शरद् की उज्ज्वल रात्रि है।।१३७।। मानो श्री वृन्दावन में दिव्य प्रकृति का आनन्दरूपी घन बरस रहा है, जो वहाँ के खग-मृग और समस्त सहचरियों के मन को हर्षित कर रहा है।।१३८।।

दोहा

सहज चंद निज सहजही, सहज वृंदावन रास।
सहज पवन सुख सहजही, दंपति सहज विलास।।१३९।।

चौपाई

खेलत रास तहाँ दोउ नागर। निपुन सुधंग-कला रस-सागर।।१४०।।
विविध वाद्य निजु सहचरि साजैं। एकहि ताल मधुर धुनि बाजैं।।१४१।।
एक बीन लियैं एक उपंगा। एक ताल लियैं मधुर मृदंगा।।१४२।।
अति कल मधुर दोऊ मिलि गावैं। हस्तक भेद अनेक दिखावैं।।१४३।।
उघटत शब्द थेई-थेई बोलैं। नासा बिच बेसरि अति डोलैं।।१४४।।
लटकत अंग सुभग अति सोहैं। बंक विलोकनि मन कौं मोहैं।।१४५।।

श्री वृन्दावन की चन्द्रिकामयी रात्रि सहज स्वाभाविक है, कृत्रिमता से रहित है, वहाँ का चन्द्रमा सहज प्रकाशमय है और सहज है वहाँ का रास। जिसमें सहज त्रिविध पवन प्रवाहित है और उस पवन से प्राप्त स्पर्श-सुख भी स्वाभाविक है एवं अत्यन्त सहज है एवँ नवल दम्पति का ऐकान्तिक रस विलास भी सहज है।।१३९।। नृत्य रूपी रस-समुद्र की विविध कलाओं में परम विदग्ध युगल नागर इस वृन्दावन में रास-क्रीड़ा-परायण हैं।।१४०।। युगल की निकटवर्ती सहचरियाँ विविध वाद्य लिये हुए मिलित स्वर में मधुर धुनि से सङ्गीत वादन कर रहीं हैं।।१४१।। एक सखी वीणा लिये हुए है, दूसरी उपङ्ग और तीसरी मधुर ताल-वाद्य मृदङ्ग बजा रही है।।१४२।। उनके मध्य में युगल प्रियतम मिलकर अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर स्वर में गान करते हुए नृत्य पूर्वक हस्त मुद्राओं के भेद प्रकट कर रहे हैं।।१४३।। वे थेई-थेई शब्दों का उच्चारण करते हुए थिरक रहे हैं, जिससे उनके नासा-मोक्तिक भी थिरक रहे हैं।।१४४।। नृत्य में युगल के ललित अङ्गों की लटक, मटक और बङ्क अवलोकन सभी के मन को मोहित कर रही है।।१४५।।

यह सोभा निजु सखी निहारैं। प्रेम विवस प्राननिं कौं वारैं।।१४६।।

दोहा

जेतिक अंग सुधंग के, अरु संगीत प्रमान।
औरैं विधि निर्त्तत नवल, नवल-नवल सुर गान।।१४७।।

चौपाई

अलग लाग जहँ लेहिं परस्पर। अधिक चौंप सौं दोउ सुघरवर।।१४८।।
निपट विकट गति लेति पियारी। निरखत रहे लजाइ विहारी।।१४९।।
करहि जतन वह लाग न आवै। त्यौं-त्यौं हँसि-हँसि प्रिया बतावै।।१५०।।
अति आनंद भरे मन माँहीं। कमल दलनि पर निर्त्त करौंहीं।।१५१।।
निर्त्तनि श्रमित भये अति भारी। नव किसोर नवला सुकुँवारी।।१५२।।

नृत्य की इस अपूर्व शोभा को युगल की निज सखियाँ निहार कर प्रेम-विवश भाव से प्राणों को न्यौछावर कर रहीं हैं।।१४६।। नृत्य-कला के सुधङ्ग आदि जितने भी अङ्ग हैं और सङ्गीत-शास्त्रों में जो प्रामाणिक सङ्गीत हैं, विविध राग-रागिनियाँ हैं, उन सब के स्वरूप को निरस्त कर के युगल नवल कुछ नवीन प्रकार से नव-नव भाँति के स्वर-गान कर रहे हैं, एवँ नृत्य कर रहे हैं।।१४७।। और जब युगल सुन्दरवर अधिक उमङ्ग से भरकर परस्पर अलग लाग (नृत्य की विशेष गति) लेते हैं और उस नृत्य में श्री प्रिया जी अतिशय विकट गति पूर्ण नृत्य करती हैं।।१४८।। तब श्री बिहारी लाल देख कर लजा जाते हैं और प्रिया जू द्वारा प्रगटित उस विकट गति को लेने का प्रयत्न करते हैं।।१४९।। और जब वह लाग-गति नहीं बन पाती तब हँस-हँस कर श्रीप्रिया जू उन्हें सिखाती हैं।।१५०।। इस प्रकार अत्यन्त उत्साह से भरे हुए युगल कमल-पुष्पों के दलों पर लाघवतापूर्ण नृत्य कर रहे हैं।।१५१।। अतिशय सुकुमार नवल किशोर-युगल नृत्य करते-करते अतिशय श्रमित हो गये।।१५२।।

श्रम जल बूँद जु मुख पर राजैं। मनौं कन ओस कमल पर राजैं।।१५३।।
यह सुख तौ नैंना ही जानैं। रसना हित ध्रुव कहा बखानैं।।१५४।।

सोरठा

रसना कोटिक पाइ, कोटि कलप लौं जीजियै।
तऊ बरनि नहिं जाइ, सहज माधुरी वदन की।।१५५।।

जल विहार चौपाई

मान-सरोवर निर्मल नीरा। कंचन-मनिनय जटित सुतीरा।।१५६।।
क्रीड़त तहाँ नवल पिय-प्यारी। छिरकत हँसत बढ़ी सोभा री।।१५७।।
सखियनि प्रिया सैंन जब पाई। छिरकतिं लालहि अति अधिकाई।। १५८।।
अंबुधार छूटत अति भारी। परम सुगंध रुचिर सुखकारी।।१५९।।

उनके मुख पर श्रम जल विन्दु (स्वेदकण) झलक उठे, मानो नील-पीत कमलों पर ओस कण शोभित हो रहे हों।।१५३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस सुख को तो केवल नेत्र ही जानते हैं। बेचारी जिह्वा क्या वर्णन करे।।१५४।। यदि कोई कोटि-कोटि जिह्वा प्राप्त करके कोटि-कोटि कल्पों का जीवन प्राप्त कर ले, तो भी वह युगल की सहज मुख-माधुरी का वर्णन करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकेगा।।१५५।।

श्री वृन्दावन में कञ्चन और मणियों से जटित सुन्दर तटवाला मान सरोवर निर्मल जल से पूरित है।।१५६।। जिसमें नवल प्रियतम एवं नवल प्रिया जलक्रीड़ा कर रहे हैं, वे परस्पर जल छिरकते हैं और हँसते हैं, जिससे उनकी अपार शोभा बढ़ रही है।।१५७।। प्रिया-पक्ष की सहचरियों ने जब अपनी स्वामिनी का सङ्केत पाया, तो श्रीलाल जी पर अत्यधिक जल छिड़कने लगीं।।१५८।। जल की वे धाराएँ परम सुगन्ध से भरी हुई, रुचिदायक और सुखकारी थीं। एक दूसरे पर अपार जल धाराओं का प्रवाह सा फूट पड़ा।।१५९।।

गज-करिनी ज्यौं केलि करॉहीं। प्रेम-मत्त क्रीड़त जल मॉहीं।।१६०।।

दोहा

सहज सरोवर सुभग में, नव नागर विवि-चंद।
खेलत अति आनंद मन, दोऊ परम सुछंद।।१६१।।

चौपाई

मंदिर-कनक मध्य अति सोहै। निरखत चित्र सुचित्तहि मोहै।।१६२।।
तापर लता मंजु नव कुंजा। अति अनूप सुंदर सुख पुंजा।।१६३।।
परम रुचिर बहै त्रिविध-समीरा। गुंजत भृंग रटत पिक कीरा।।१६४।।
किसलय दलनि सुरंग सुहाई। रचित सैंन कोमल सुखदाई।।१६५।।

दोहा

सहज कुंज सुख पुंज में, रची कंज-दल-सैंन।
रहत दिनहिं सेवत तहॉ, कोटि वृंद कुल मैंन।।१६६।।

श्री युगल मत्त गजराज और करिणी (गजी) की भाँति प्रेम-मग्न होकर जल-क्रीड़ा करने लगे।।१६०।। मान-सरोवर सहज सौन्दर्यमय है, उसकी सुखद क्रीड़ा में नव-नव केलि निपुण युगल चन्द्र श्री लाड़िली-लाल परम स्वच्छन्द भाव से आनन्द मग्न होकर जल क्रीड़ा करते हुए अपार शोभा को प्राप्त हुए।।१६१।। मान-सरोवर के मध्य में एक दिव्य मन्दिर है, जिसकी चित्र रचना देखते ही मन को मोह लेती है।।१६२।। उस मन्दिर में एक लता-मण्डित मञ्जुल नव कुञ्ज है, जो अति अनुपम है, सुन्दर है एवं सुखों का आगार है।।१६३।। वहाँ परम रुचिदायक, शीतल, मन्द सुगन्धित पवन प्रवाहित होता रहता है। जहाँ भृङ्ग समूह की गुञ्जार और कोयल-कीर की काकली निरन्तर सुनाई पड़ती रहती है।।१६४।। कुञ्ज के अन्तर भाग में कमल एवं किसलय दलों की कोमल सुखद सुरङ्ग शय्या रचित है।।१६५।। उस सहज सुखपुञ्ज कुञ्ज में कमल दल रचित शय्या प्रेम की पुञ्ज हैं, जहाँ निरन्तर कोटि-कोटि मदन वृन्द उसको सँवारते (सजाते) रहते हैं।।१६६।।

चौपाई

करि जल केलि तहाँ दोउ आये। अंगनि चीर सुरंग बनाये।।१६७।।
सरस सुगंध माँहिं दोऊ भीनें। लटकत हँसत अंस-भुज दीनें।।१६८।।
अति विचित्र दंपति मन माँहीं। छिन-छिन प्रति नव केलि करौंहीं।।१६९।।

वेष परिवर्त्तन

चौपाई

पलटि वेष पिय भये सुकुँवारी। भूषन पहिरि सुरँग तनु सारी।।१७०।।
बेसर खुभी झलक अति चमकै। दुलरी जलज कंठ पर दमकै।।१७१।।
मुसिकनिं कछुक लाज की सोहै। चमकनि दसन चपल मन मोहै।।१७२।।
खेलत हँसत किसोर-किसोरी। मानस मिथुन लेत छवि चोरी।।१७३।।
बीरी खंड दसन वर गोरी। देत परस्पर प्रीति न थोरी।।१७४।।
सखी भाँवती यह सुख देखैं। नैंन सफल अपने करि लेखैं।।१७५।।

रसिक युगल जल-क्रीड़ा से निवृत्त होकर इस सुख-पुञ्ज कुञ्ज में आए। उनके श्री अङ्गों में भीगे हुये झीने सुरङ्ग वस्त्रों की अपूर्व शोभा थी।।१६७।। दोनों ही सरस सुगन्ध से भीगे हुए थे और गलबहियाँ दिए हुए लटकते हँसते आनन्दित हो रहे थे।।१६८।। ये अति विलक्षण दम्पति अपने मन में प्रतिक्षण नयी-नयी रस-केलियों को जन्म देते रहते है।।१६९।।

प्रियतम अपना शृङ्गार बदल कर सुकुमारी प्रिया बन गए, उन्होंने सुरङ्ग साड़ी धारण कर ली और प्रिया जू के भूषण धारण कर लिये।।१७०।। उनकी नासिका पर बेसर एवं कानों पर खुभी की झलक शोभा देने लगी। कण्ठ-देश में मोतियों की दुलड़ी दमकने लगी।।१७१।। अधरों पर लज्जायुक्त मन्दस्मित दन्तावलि की चञ्चल चमकान मन को मोहित करने लगी।।१७२।। ऐसे नव-नव वेष धारी किशोर-किशोरी खेलते हँसते हुए अपनी छवि से परस्पर मन-हरण करने लगे।।१७३।। असीम प्रीति-विवश युगल ताम्बूल-वीटिका खण्डित कर-कर के आरोगने लगे।।१७४।। युगल की मन-भाँवती सखियाँ इस सुख का दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल मानने लगीं।।१७५।।

दोहा

रसिक कुँवर दंपति सदा, बसत रहौ मम चित्त।
प्रेम-सजल ध्रुव नैंन दोउ, रहैं निरखि छवि नित्त।।१७६।।

उपसंहार चौपाई

ऐसी भाँति नवल विवि नागर। करत विहार दिनहिं सुख सागर।।१७७।।
वृन्दा-विपिन प्रेम निज धामा। संतत राजति तहाँ श्री श्यामा।।१७८।।
जो यह रस मन-रुचि कै गावै। प्रेम-प्रसाद सहजही पावै।।१७९।।
जो या रस में नित अनुरागी। परम धन्य तेई बड़भागी।।१८०।।
यह रस तो मन ही में राखौ। भक्तिहीन सौं कबहुँ न भाखौ।।१८१।।
जथा-बुद्धि तौ यह रस गायौ। रसिक-कृपा तें जो उर आयौ।।१८२।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ऐसे रसिक कुँवर युगल सदा-सर्वदा मेरे चित्त में बसे रहें, और मैं प्रेम-सजल नेत्रों से युगल की इस छवि का नित्य-प्रति दर्शन करता रहूँ।।१७६।।

इस प्रकार सुख-समुद्र नव-नव केलि विदग्ध युगल श्री वृन्दावन में अहिर्निश विहार करते हैं।।१७७।। श्री वृन्दावन प्रेम का सहज निज धाम है, जहाँ रसिक शिरोमणि श्री श्यामा नित्य विराजती हैं।।१७८।। अस्तु, जो कोई भी उपरिकथित रस-विलास का सुरुचिपूर्ण मन से गान करेगा, वह अनायास ही प्रेमदेव की कृपा प्राप्त कर लेगा।।१७९।। एवं अन्य जो कोई भी इस रस से निरन्तर अनुराग करेगा वही बड़भागी जीवन में परम धन्य कहलाएगा।।१८०।। [इस रस के उपासक का कर्त्तव्य है कि] वह इसे अपने मन में छिपा कर रक्खे, और हरि-भक्ति-रहित व्यक्ति से कभी इसकी चर्चा न करे।।१८१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक सन्त-भक्तों की कृपा से मेरे हृदय में इस रस का जैसा कुछ आविर्भाव हुआ, मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इसका गान-वर्णन किया।।१८२।।

रसानंद याकौ नाम कहावै। कहत सुनत आनँद-रस पावै।।१८३।।
संवत षोडस सौ पंचासा। बरनत जस ध्रुव युगल विलासा।।१८४।।

दोहा

यह रस तो अति अमल है, कह्यौ बुद्धि अनुमान।
पंछी उड़ै आकास कौं, जाहि सक्ति पखांन।।१८५।।

इस ग्रन्थ का नाम–"रसानन्द है, अतएव इसके कथन-श्रवण से आनन्द रस की प्राप्ति होगी।।१८३।। विक्रम संवत सोलह सौ पचास में मुझ ध्रुवदास ने इस युगल विलास यश का वर्णन किया।।१८४।। यह रस अत्यन्त निर्मल है, जिसे मैंने अपनी बुद्धि के अनुमान-प्रमाण से ही वर्णन करने का प्रयास किया है। प्रत्येक पक्षी उड़ान से सम्पूर्ण आकाश को नापना तो चाहता है किन्तु उसकी शक्ति सीमित होती है।।१८५।।

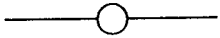

३८
व्रज-लीला

नित्य विहारी युगल की अवतार भूमिका — चौपाई

एक समै विहरत बन माँही। कियौ मतौ विवि द्रुम की छाँही।।१।।
यह निजु-रस कीजै विस्तारा। रसिक जननिं कौं अति ही प्यारा।।२।।
नंदलाल वृषभान-किसोरी। रसिकनि हित प्रगटी यह जोरी।।३।।
नित्य-केलि दिन ऐसैंहिं करहीं। अति आनंद प्रेम-रस ढरहीं।।४।।
रस-निधि लीला ब्रज प्रगटाई। रसिक जननिं कौं अति सुखदाई।।५।।

[श्री वृन्दावन धाम, श्री श्यामा-श्याम युगल किशोर की नित्य-लीला भूमि है, जहाँ श्री प्रिया-प्रियतम अपनी नित्य सहचरियों के साथ अनादि अनन्त कैशोर लीला करते रहते हैं।] ऐसे नित्य वृन्दावन में विहार करते हुए किसी समय नित्य-विहारी युगल श्री लाड़िली-लाल ने दिव्य कल्पतरु की शीतल छाया में विराजमान होकर निश्चय किया।।१।। कि भूतल पर निवास करने वाले रस-मर्मज्ञ रसिक-भक्त जनों को अतिशय प्रिय जो हमारा यह 'नित्य-रस' है, उनके हित के लिए प्रकट करके विस्तृत करना चाहिए।।२।। इस प्रकार निर्णय लेकर रसिक-जनों के लिए नित्य किशोरी-किशोर की आराध्य हितमयी युगल मूर्त्ति श्री नन्दलाल एवं श्री वृषभान-नन्दिनी के रूप में भूतल पर प्रकट हुई।।३।। युगल का यह प्रादुर्भाव प्रत्येक युग में पूर्वकाल में भी होता आया है और उन कालों में भी वे अतिशय आनन्द एवं प्रेम-रस को प्रवाहित करते रहे हैं।।४।। सम्प्रति, युगल किशोर ने अपनी रस-निधि लीला को व्रज-भूमि में प्रकट किया, क्योंकि यह लीला रसिक भक्त-जनों को अत्यन्त सुखदायक है।।५।।

प्रथम-मिलन विधि जो उर आई। जथा-बुद्धि जैसी कछु गाई।। ६।।
रस-विहीन के मन नहिं भावै। पाहन चित्तहि को समुझावै।। ७।।
नवल नेह-रस अद्भुत आही। रसिकनि बिनु को समुझै ताही।। ८।।

दोहा

रसिकनि हित विवि कुँवर वर, भये प्रगट ब्रज आँनि।
प्रथम-मिलन सुख कहत हौं, जहँ लगि बुद्धि प्रमाँनि।। ९।।

प्रथम मिलन उपक्रम चौपाई

वैस किसोर भये मन-मोहन। अंग-अंग सुंदर अति सोहन।।१०।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ही यथाभाव हृदय में स्फूर्त युगल की प्रथम मिलन-विधि का गान करूँगा।।६।। यह रस-लीला, रस-हीन (नीरस) व्यक्तियों के मन में प्रवेश नहीं करती। कारण कि उनका चित्त पाषाण की भाँति कठोर एवं दृढ़ होता है। और यह प्रेम-रस नित्य नूतन तथा अद्भुत है। रसिकजनों के अतिरिक्त इसके मर्म को समझना अन्य सबके लिए दुष्कर है।।७-८।। निश्चित ही युगल किशोर वर रसिक-जनों के लिए ही व्रज-भूमि में आविर्भूत हुए। अब मैं अपनी बुद्धि के प्रमाण से उनके प्रथम मिलन का सुख वर्णन करता हूँ।।९।।

[श्री नन्दराय जी व्रज के राजा थे, उनका प्रथम निवासस्थान था महावन। पश्चात् वे महावन छोड़ कर वृन्दावन आ बसे। पौराणिक मत से वृन्दावन की सीमा पञ्चयोजन अर्थात् बीस कोस के विस्तार में है। इस न्याय से श्री नन्दगाँव श्री नन्दराय की द्वितीय राजधानी वृन्दावन के सीमान्तर्गत है, ऐसा मानना चाहिये।] अस्तु, आनन्द-कन्द नन्द-नन्दन बाल, पौगण्ड एवं कौमार आयु को व्यतीत करके नव किशोरावस्था को प्राप्त हुए। उनका रूप अत्यन्त मन-मोहक था। प्रत्येक अङ्ग सुन्दर एवं अतिशय सुहावना था।।१०।।

छवि-तरंग कछु कहे न जाहीं। मदन कोटि लुठैं चरननि छाँहीं।।११।।
इहि दिसि श्री वृषभाँन दुलारी। वैस किसोर भई सुकुँवारी।।१२।।
अद्भुत रूप कुँवरि कौ माई। सखी एक पिय पै कह्यौ जाई।।१३।।
अति सुकुँवारि नवीन किसोरी। जुवतिन के मन लेति है चोरी।।१४।।
अँग-अँग बाँनिक कही न जाई। जित चितवत वरषत छवि माई।।१५।।
रति कमला देवांगना नारी। पद-नख की दुति ऊपर वारी।।१६।।
याकौ रूप जु देखै आई। सोऊ रूपवंत ह्वै जाई।।१७।।

उनकी किशोरावस्था की छबि-तरङ्गों का वर्णन करते नहीं बनता। सौन्दर्य की चरम सीमा श्री नन्दलाल के चरणों पर कोटि-कोटि कामदेव विलुण्ठित होने लगे।।११।। उधर परम सुकुमारी श्रीवृषभानुदुलारी भी नव-नवायमान् कैशोर आयु को प्राप्त करके सौन्दर्य के शिखर पर विराजमान हुईं।।१२।। उनका रूप अद्भुत एवं वर्णनातीत था। (ललिता सखी ने श्री किशोरी जी के रूप-लावण्य का दर्शन किया तो उसके मन में प्रियतम नन्द-लाल को श्री किशोरी जी के रूप का वर्णन सुना देने की बात उत्पन्न हुई) तो उसने नन्दगाँव जाकर एकान्त में श्री नन्दलाल से कहा—हे श्याम-सुन्दर! एक ऐसी अत्यन्त सुकुमारी नव यौवन सम्पन्न किशोरी है, जो हम समस्त सुन्दर युवतियों के भी मन को चुराती रहती है।।१३-१४।। उसके प्रत्येक अङ्ग की शोभा, सुन्दरता, बनाव कहने में नहीं आता। वह सुन्दरी जिस दिशा में अपनी दृष्टि डालती हैं मानो वहाँ रूप और छवि की वृष्टि कर देती है।।१५।। पृथ्वी तल की सुन्दरियों की तो बात ही क्या, देवताओं की नारियाँ, कामदेव की पत्नी रति और साक्षात् भगवान् नारायण-प्रिया कमला भी उस सुन्दरी की चरण-नख छटा पर न्यौछावर हैं।।१६।। अधिक क्या कहूँ? उस किशोरी के रूप में एक जादू है कि जो भी कोई उसके रूप को देखता है, वह कुरूप भी परम रूपवान् (सुन्दर) बन जाता है।।१७।।

वट संकेत अनूप विराजै। ताके निकट सरोवर राजै।।१८।।
सुंदर ठौर सघन बन आही। फूलि रही कहुँ जूही जाही।।१९।।
कबहुँ-कबहुँ तहाँ खेलन आवै। खेलत-खेल जोई मन भावै।।२०।।

प्रियतम की उत्कण्ठा दोहा

कुँवरि रूप की बात सुनि, परम रसिक-सिरमौर।
अंग-अंग सब सिथल भये, चित्त रह्यौ नहिं ठौर।।२१।।

चौपाई

सुनत चौंप प्रिय मन भई भारी। किहि विधि देखियै नवलकुँवारी।।२२।।
ताही तक अब लागे रहही। काहू सौं कछु बात न कहही।।२३।।
नित उठि बरसाने तन जाही। जित संकेत सघन वन आही।।२४।।

नन्दगाँव और बरसाने के मध्य में सङ्केत नामक एक वट है, उसके समीप एक बड़ा ही रमणीय सरोवर है।।१८।। उस सुन्दर वनस्थली एवं रमणीय भूमि पर अनेक प्रकार के जूही-जाई आदि के सुवासित एवं सुन्दर पुष्प विकसित हैं।।१९।। कभी-कभी वह सुन्दरी किशोरी क्रीड़ा करने के लिए अपनी निज सहचरियों के साथ उस वन एवं सरोवर पर आती है और अपने मनभाये खेल खेलती है।।२०।।

ललिता सखी द्वारा नवीन कुँवरि किशोरी की बात सुनकर परम रसिक शिरोमणि नन्द-नन्दन का प्रत्येक अङ्ग प्रेम से शिथिल हो गया एवं उनका चित्त रूप-दर्शन के लिए विचलित हो उठा।।२१।। प्रियतम के मन में यह उल्लास होने लगा कि अब इस नवल कुमारी का किस प्रकार दर्शन हो।।२२।। अब वे उसी चिन्तन एवं उद्योग में रहने लगे। सब ओर से शान्तप्राय हो गये। किसी से कुछ बात नहीं कहते।।२३।। नित्य-प्रति प्रातः उठ कर बरसाने की ओर जाते तथा सङ्केत वट की सघन कुञ्ज में जा बैठते ।।२४।।

सघन कुंज इक हुती सुहाई। बैठे लाल तहाँ अरगाई।।२५।।
उत देख्यौ इक कौतिक भारी। सुंदर सर अंबुज छबि न्यारी।।२६।।
तहाँ देखे जुवतिनु के वृन्दा। मानौं कोटि उदित भये चंदा।।२७।।

साक्षात् प्रथम-दर्शन चौपाई

तिनमें नवल किसोरी सोहै। मोहन मन लाये छबि जोहै।।२८।।
पहिरैं नील बरन तन सारी। मोतिन-माँग बनाइ सँवारी।।२९।।
अति विसाल लोइनि अनियारे। उज्वल अरुन सहज कजरारे।।३०।।
फगुवा सुभग सुरंग विराजै। तापर मृगमद बैंदी राजै।।३१।।
झलकि रह्यौ बेसरि कौ मोती। फीके भये धरैं जे जोती।।३२।।

एक समय की बात है कि वे सङ्केत वट के सघन वन की किसी सुहावनी कुञ्ज में चुपचाप जा बैठे।।२५।। त्यौं ही उन्होंने देखा। सुन्दर सरोवर में विकसित कमलों की छवि विलक्षण है।।२६।। वहीं अनेक सुन्दर युवतियों का एक समूह क्रीड़ा कर रहा है। ऐसा लगता है मानो एक साथ कोटि-कोटि चन्द्रमाओं का उदय हो गया हो।।२७।। उन सुन्दरी नवल किशोरियों के मध्य में एक अनुपम रूप लावण्यमयी नवल किशोरी शोभित है। रसिक शेखर मनमोहन नन्दनन्दन तन्मय भाव से उस नवल किशोरी की छबि का एकटक दर्शन करने लगे।।२८।।

वह सुन्दरी अपने गौर तन पर नीलवर्ण की साड़ी धारण किये हुए थी। उज्ज्वल शुभ्र मोतियों से उसकी माँग सँवारी हुई (सुसज्जित) थी।।२९।। अतिशय विशाल, उज्ज्वल, अरुण, अनियारे और सहज कजरारे उसके नेत्र बड़े मनमोहक थे।।३०।। गुम्फित केश-राशि और सिन्दूर-रञ्जित फगुआ उस पर कस्तूरी की श्याम-वर्ण बैंदी गौर ललाट-पटल पर रञ्जित थी।।३१।। नासिका के अग्र भाग में दोलायमान् नासा-मौक्तिक समस्त छवि-धरियों को लज्जित कर रहा था।।३२।।

ईषद हाँस दसन अति झलकैं। छुटि रही कहुँ-कहुँ मुख पर अलकैं।।३३।।
चंचल चितवनि परम सुहाई। मुख-पानिप कछु कही न जाई।।३४।।
सहज नवेली अति अलबेली। तैसीय सोभित संग सहेली।।३५।।
सखियनि खेल रच्यौ सुखकारी। एक ते एक रहैं दुरि न्यारी।।३६।।
चली दुरनि तिहि ठाँ सुकुँवारी। बैठे हे जहाँ कुंज-विहारी।।३७।।

दोहा

अद्भुत कौतिक अधिक इक, बढ़्यौ सहज सुख पुंज।
चली दुरनि तहाँ लाड़िली, हुते लाल जिहि कुंज।।३८।।

मुख की मंद मधुर मुस्कान के मध्य शुभ्र श्वेत दन्तावलि की द्युति अपूर्व थी। मुख-मण्डल पर कहीं-कहीं अलकावली की बिखरी हुई झीनी-झीनी लटें मुख-शोभा की अभिवृद्धि कर रही थीं।।३३।। परम शोभनीय चञ्चल चितवन और श्री मुख का लावण्य अनिर्वचनीय था।।३४।। यह नवल किशोरी स्वाभाविक नव-नव रूप-लावण्य के कारण अपने आप में जैसी विलक्षण थीं, उसके साथ वैसी ही सुन्दर सहेलियों का समूह था।।३५।। सरोवर पर पहुँचकर उन सखियों ने एक सुखमय खेल की रचना की, जिसमें प्रत्येक सखी अलग-अलग अकेली छिपेगी और (एक दूसरी सखी उन छिपी हुई सखियों को खोजेगी। खोज कर जिसे स्पर्श करेगी वह पराजित मानी जाएगी एवं उसे खोजने का दाव देना पड़ेगा)।।३६।। अस्तु, क्रीड़ा के क्रम में परम सुकुमारी श्री वृषभानु-नन्दिनी जिस सघन कुञ्ज में एकाकी ही छिपने के लिए चली, संयोग की बात है कि श्री किशोरी के दर्शन हेतु रसिक नन्द-नन्दन पहले से ही प्रतीक्षा-रत उस कुञ्ज में विराजमान थे।।३७।। श्री ध्रुवदासजी कहते हैं कि अत्यधिक अद्भुत एवं सहज सुख-पुञ्ज एक कौतुक किंवा संयोग यह बना कि श्री लाड़ली जू जिस कुञ्ज में छिपने गयीं, श्री लालजी पहले से ही वहाँ थे।।३८।।

युगल रूप-दर्शन का प्रेम-प्रभाव चौपाई

[1]**कुँवरि तहाँ अनजानत आई। जहाँ लाल ह्वै रहे लुभाई।। ३९।।**
चारौं नैंन एक भये ऐसैं। बिछुरे खंजन मिलत है जैसैं।। ४०।।
सकुचि कुँवरि पुनि घूँघट कीनौ। नवल लाल तिनके रँग भीनौ।। ४१।।
पिय-मन मीन-पर्‌यौ छबि-जाला। व्याकुल देह सनेह बिसाला।। ४२।।
नैंकहि चितवत रूप रसाला। मूर्छा आइ गई तेहि काला।। ४३।।
तबही लाल गिरे घर माई। सो ठाँ मनौं प्रेम कै झाँई।। ४४।।

दोहा

रूप-सिंधु में मन पर्‌यौ, ढरत नैंन दोउ नीर।
डगमगाइ धरनी परे, रही न सुधि जु सरीर।। ४५।।

जिस कुञ्ज में श्रीलालजी रूप-दर्शन के लालच में बैठे प्रतीक्षारत थे, श्रीकिशोरीजी अनजाने ही वहाँ जा पहुँचीं।।३९।। कुञ्ज में प्रवेश करते ही किशोर-किशोरी के चारों नेत्र सहज रीति से इस प्रकार मिलकर एकात्म भाव में मग्न हो गये जैसे दीर्घकाल से बिछुड़े हुए खञ्जन-दम्पति मिले हों।।४०।। तत्क्षण कुँवरि किशोरी ने सङ्कोचपूर्वक जब घूँघट किया, तो नवल रसिक नन्द-नन्दन उनकी हाव-भावमयी छवि के रङ्ग में प्रेम-सराबोर हो गये।।४१।। प्रियतम का मन-मीन प्रिया जी के रूप-छबि-जाल में फँस गया। विशाल प्रेम-प्रभाव से उनका देह व्याकुल हो गया।।४२।। प्रियतम एक क्षण के दर्शन प्रभाव से ही विमूर्छित हो गये और पृथ्वी पर निपतित हो गये, मानो उस कुञ्ज का समस्त वातावरण, प्रेम-तन्मय हो गया हो।।।४३-४४।। प्रियतम का मन रूप के समुद्र में डूब गया। उनके दोनों नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी, वे कम्पित हो कर धराशायी हो गये और देह की सुधि जाती रही।।४५।।

---

१. कुंवरि तहाँ अनजानत आई, जहाँ लाल ह्वै रहे लुभाई।.....यह चौपाई प्राचीन प्रतियों (सं. १८६० एवं १८९० वि.) में नहीं है।

चौपाई

पिय कौ मनु आपनु हरि लीनौ। अपनौ चित प्रीतम कौं दीनौ।।४६।।
मन रह्यौ उहीं कुँवरि फिरि आई। और न कछुवै बात सुहाई।।४७।।
नैंननिं छाई पिय की सोभा। सुधि तन न रहि फिरै उहि लोभा।।४८।।

दोहा

देखि बात आश्चर्ज की, भूलि रही सुकुवाँरि।
सहजहि बाढ़्यौ प्रेम रस, ह्वै गई नई चिन्हारि।।४९।।

प्रेमोदय और उसकी व्याख्या चौपाई

भूल्यौ खेल कुँवरि कौं तबही। नवल नेह रस उपज्यौ जबही।।५०।।
यह सहचरि किनहूँ नहिं लेखी। कुँवरि-कुँवर की देखा-देखी।।५१।।

श्री वृषभानु नंदिनी ने प्रियतम नन्दनन्दन का मन हरण कर लिया एवं प्रीति-प्रभाव वश सहज रूप से अपना मन प्रियतम को समर्पित कर दिया।।४६।। वह अपना मन प्रियतम के समीप छोड़कर सखियों में आ मिलीं, किन्तु मनःस्थिति परिवर्तित हो चुकी थी। उन्हें सखियों के साथ क्रीड़ा करना, वार्तालाप करना आदि सब अप्रिय सा हो गया।।४७।। उनके नयनों में प्रियतम की रूपराशि एवं शोभा छवि छा गयी देह-स्मृति समाप्त प्राय हो गयी। वे प्रियतम के रूप-दर्शन के लालच से बावली सी यत्र-तत्र फिरने लगीं।।४८।। प्रियतम के आश्चर्यमय रूप का दर्शन करके परम सुकुमारी किशोरी श्री वृषभानुदुलारी जैसे अपने आपको भूल गयीं। इस नयी जान-पहचान से उनका प्रेम नैसर्गिक रूप से प्रियतम की ओर बढ़ने लगा।।४९।।

जिस क्षण श्री वृषभानु-नन्दिनी के हृदय में प्रियतम-प्रेम का अङ्कुर उदित हुआ, उसी क्षण से उनकी बाल-क्रीड़ाएँ समाप्त हो गयीं।।५०।। लुका-छिपी के खेल में सहसा किशोर-किशोरी के मिलन-दर्शन का किसी भी सखी को कोई पता नहीं चला।।५१।।

दोहा

चलीं सखी मिलि भवन कौं, लीनी कुँवरि सँभारि।
येई सबके प्रान है, अलबेली सुकँवारि।।५२।।

चौपाई

पिय की गति सुनि अब मो पाहीं। नैननिं नौंक चुभी मन माँहीं।।५३।।
भूली सुधि-बुधि मूर्छा आई। छवि अनूप उर-नैननिं छाई।।५४।।
घरी चारि सुख माँहि बितानी। पुनि चित चेत सुरति उर आनी।।५५।।
कहाँ देखौ जिनि दई दिखाई। हरि लिये प्राँन देह अकुलाई।।५६।।
वह सहचरि मन में अति मानी। जिनि यह छबि मोपै जु बखानी।।५७।।

विलक्षण सुकुमारी श्री वृषभानु-दुलारी सब सहचरियों की शिरोमणि ही नहीं, प्राण-प्यारी हैं, अतएव संध्या समय खेल समाप्त करके सहचरियों ने उन्हें सहेज सँभाल कर अपने-अपने भवन की ओर प्रस्थान किया एवं उन्हें राजभवन में पहुँचा दिया।।५२।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि अब मुझसे प्रियतम नन्द-नन्दन की स्थिति का वर्णन सुनिये—श्रीवृषभानु दुलारी के दर्शन से उनके अन्तर्मन में नवल किशोरी के अनियारे नयनों की नोंक चुभ गयी।।५३।। वे सुधि भूल गये, मूर्छावस्था को प्राप्त हो गये। उनके हृदय एवं नेत्रों में श्री वृषभानु-नन्दिनी जू की छवि छा गयी।।५४।। वे चार घड़ी पर्यन्त उसी कुञ्ज स्थली में अचेतन स्थिति में प्रिया की रूप-माधुरी के रूप-सुधा आस्वादन में मग्न दशा में पड़े रहे, पश्चात् सचेत होकर विरह-व्यथित भाव से सोचने लगे।।५५।। आज मुझे जिसने दर्शन दिया है, अब वे मुझे कहाँ मिलेगी ? उन्होंने तो मानो मेरा प्राण-हरण कर लिया है, उनके दर्शन बिना मेरा शरीर व्यथित है।।५६।। प्रियतम सोचने लगे, जिस सहचरी ने मुझे नवल किशोरी प्रिया का रूप-राशि-वर्णन श्रवण कराया, मेरे लिए वह बड़ी हितैषी एवं आदरणीय है।।५७।।

दोहा

जो कछु रूप कह्यौ हुतौ, ताते सतगुन आहि।
बार-बार तिहि सखी कौं, लालन उठत सराहि।।५८।।

चौपाई

तबतें मोहन रहत उदासा। प्रेम-खटक तें भरैं उसाँसा।।५९।।
रूप-छटा करकै हिय माँहिं। छिन-छिन माँहि विकल ह्वै जाँहीं।।६०।।
तन की गति ऐसी भइ माई। ज्यौं जल बिनु वारिज कुँभिलाई।।६१।।
भोजन-पान न कछू सुहाई। हृदै ध्यान नव-प्रिया रहाई।।६२।।
अति ही छीन जु भयौ सरीरा। दिनहिं नैंन भरि आवै नीरा।।६३।।

दोहा

नैंन सरोवर से भरे, नवल नेह के नीर।
ढरि-ढरि मुक्ता से परत, रहे भींजि तन-चीर।।६४।।

उस सखी ने नवल किशोरी के रूप का जो कुछ भी वर्णन किया था, वह रूप वर्णन की अपेक्षा दर्शन में शत-शत गुणा अधिक था। रसिक प्रियतम उस सखी की बारम्बार भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।।५८।। श्री किशोरी जी के दर्शनों के उपरान्त नन्दनन्दन विरह भाव में मग्न होने के कारण सब ओर से उदासीन रहने लगे। प्रेमाङ्कुर उदय होने के पश्चात् उनका हृदय प्रेम के आघातों से बारम्बार व्यथित हो उठता और वे दीर्घ-निश्वास भरते रहते।।५९।। प्रिया-रूप की छटा उनके हृदय में कसक उत्पन्न करती और वे क्षण-क्षण में विह्वल हो जाया करते।।६०।। उनका शरीर जल-विहीन कमल की भाँति मुरझा गया।।६१।। उन्हें भोजन, जलपान आदि सब अप्रिय जो गया। उनके हृदय में केवल नवल किशोरी प्रिया का ही ध्यान-चिन्तन शेष रह गया।।६२।। शरीर कृश हो गया एवं उनके नेत्रों से निरन्तर प्राय जल झरता रहता।।६३।। उनके नेत्र रूपी सरोवर नूतन प्रेम के जल से आप्लावित रहने लगे एवं बार-म्बार उनका अश्रु-बिन्दु रूपी जल, ढल कर शरीर रूपी वस्त्र को भिगाने लगा।।६४।।

चौपाई

सीस चंद्रिका धरी न भावै। सौरभ परसत अति सुख पावै।।६५।।
रुचै न उर बैजंती-माला। मारुत भई पावक सम ज्वाला।।६६।।
पीत वसन वंसी बिसराई। बाढ्यौ प्रेम कह्यौ नहिं जाई।।६७।।
बरसाने तन चितवत रहहीं। मौन धरैं कछुवै नहिं कहहीं।।६८।।
उहि दिसि ते जु पवन सखि आवै। सो रज अधिक लाल मन भावै।।६९।।
मन अरु नैंन कुँवरि के पासा। देह रही मिलिवे की आसा।।७०।।
कल न परत तन व्याकुल भारी। जब ते श्यामा, श्याम निहारी।।७१।।
प्रेम की बात निपट अटपटी। सोई जानै जेहि लगै चटपटी।।७२।।

उन्हें अपने शिरोभाग पर मयूर चन्द्रिका धारण करना अप्रिय लगने लगा। सुगन्धित वायु का स्पर्श दुख का कारण बन गया।।६५।। हृदय पर वैजयन्ती माल धारण करना अरुचिकर हो गया। शीतल वायु उन्हें अग्नि के समान दाहक प्रतीत होने लगा।।६६।। वे पीतवर्ण, उत्तरीय परिधान (पटुका) एवं वंशी को तो भूल ही गये। सारांश यह कि अकथनीय प्रेम ने उन्हें सब ओर से शून्य-प्राय कर दिया।।६७।। वे निरन्तर श्री किशोरी के निज धाम बरसाने की ओर टकटकी लगाये देखते ही रहते, मौन धारण किये रहते, किसी से कोई बात ही नहीं करते।।६८।। बरसाने की दिशा से आने वाले पवन प्रवाह एवं रज का संस्पर्श प्राप्त करके श्रीलाल का मन शान्ति का अनुभव करता।।६९।। उनके मन और नयन मानो कुँवरि किशोरी के समीप ही रहने लगे। प्रिया-मिलन की आशा से आबद्ध नन्द-नन्दन जिस-तिस प्रकार देह धारण किये हुए थे।।७०।। उनका तन-मन उस दिन से ही अत्यन्त व्याकुल हो गया था, जिस दिन से श्यामसुन्दर ने श्री श्यामा वृषभानुनन्दिनी का दर्शन किया था।।७१।। अस्तु, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेमानुभूति का व्याख्यान कर सकना अत्यन्त जटिल प्रसङ्ग है। इसे वर्णन के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। प्रेम अनुभव-गम्य होता है।।७२।।

दोहा

प्रीति-रीति अति कठिन है, कहै न समझै कोइ।
प्रेम-बान जेहि उर लगै, निसि-दिन जानै सोइ।।७३।।

चौपाई

इतहि अनमनी रहै किसोरी। चित्त पर्‌यौ पिय-प्रेम की डोरी।।७४।।
छुटि गई नैंननिं तें चपलाई। उपजी अंग-अंग शिथिलाई।।७५।।
चितै रहै अवनी तन ठाढ़ी। नेह-बेलि उर-अंतर बाढ़ी।।७६।।
जे सखि साथ की खेलन-हारी। तेऊ मन तैं सबै बिसारी।।७७।।

दोहा

भूल्यौ हँसिबौ खेलिबौ, भूल्यौ अंग-सिंगार।
निसि-दिन रहैं या सोच में, रुचत नाहिं उर-हार।।७८।।

प्रीति की रीति कठिन होने के कारण कह बोल कर समझायी नहीं जा सकती। जिसका हृदय प्रेम के बाणों से बिंध जाता है, केवल वही प्रेम का वास्तविक ज्ञाता होता है।।७३।। श्री नन्दलाल के दर्शनोपरान्त बरसाने में नवल किशोरी अन्यमनस्क रहने लगीं, क्योंकि उनका चित्त प्रियतम के प्रेम-बन्धन में आबद्ध हो चुका था।।७४।। उनके नेत्रों से बाल-स्वभाव-सुलभ चपलता छूट गई एवं अङ्ग-अङ्ग में नवल प्रेमजन्य शैथिल्य उत्पन्न हो गया।।७५।। वे स्तम्भित-भाव से खड़ी-खड़ी एकटक पृथ्वी को देखती रहती। उनके हृदय में प्रियतम-प्रेम की लता लहलहा उठी थी।।७६।। श्री वृषभानुनन्दिनी के साथ निरन्तर क्रीड़ा करने वाली सहचरियाँ भी उनके मन से विस्मृत हो चुकी थीं।।७७।।

उन्हें हँसना, खेलना भी विस्मृत हो चुका था। और तो और अपना अङ्ग-शृङ्गार करना भी वे भूल चुकी थीं। वे निरन्तर प्रियतम प्रेम के चिन्तन में ही लीन रहने लगीं। उन्हें हारावली एवं आभूषणों में भी रुचि नहीं रह गयी।।७८।।

चौपाई

हित की सखी अधिक अकुलानी। देखी कुँवरि कछुक कुँभिलानी।।७९।।
गद-गद कंठ नेह-रस सानी। बोली तहाँ कछुक मृदु बानी।।८०।।
चलहुँ लाड़िली प्रिया नवेली। जाँहिं सरोवर कहैं सहेली।।८१।।
नाक सँकोरि स्वाँस अति लेही। सहचरि कौं उत्तर को देही।।८२।।
प्रेम-विवस कछुवै न सुहाई। मोहन-मूरति हृदै बसाई।।८३।।
बढ़ गई प्रीति कहत नहिं आवै। विसरत नहिं जेतिक बिसरावै।।८४।।
मन पर्‌यौ प्रेम पेच में जाई। बल कियैं कैसैं निकसत माई।।८५।।
ठाढ़ी नखनि अवनि कौं खनैं। फिरत न कैहूँ फेरत मनैं।।८६।।

राजकुमारी श्री वृषभानु नन्दिनी की यह दशा देखकर कि कुँवरि का मुख-मण्डल मलीन एवं मुरझाया हुआ है, हितमयी सखियाँ अधिकाधिक चिन्तित एवं आकुल हो उठीं।।७९।। उनका कण्ठ गद-गद हो गया। उन्होंने प्रेम रससिक्त मधुर वाणी से सम्बोधन करते हुए किशोरी को अपने पास बुलाया और कहा, " हे नवेली, लाड़िली प्रिया, चलो, प्रेम सरोवर पर चलकर कोई खेल खेलें।।८०।। सहचरियों की बात सुनकर मुख से कुछ कहने में असमर्थ श्री किशोरी ने नासिका सङ्कुचित करके एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।।८१।। इस प्रकार किशोरी जी ने सरोवर न जा सकने की असमर्थता का प्रकाश किया; क्योंकि वे प्रेम-विवश थीं।।८२।। उनको प्रियतम के सिवाय अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उनके हृदय में प्रियतम की मन-मोहनी छबि बसी हुई थी।।८३।। उनके हृदय की प्रीति अवर्णनीय रूप से वृद्धि को प्राप्त हो चुकी थी। वे प्रियतम को विस्मृत करने का प्रयास करतीं, पर असफल हो जातीं।।।८४।। अपितु, प्रियतम विस्मृत होने के स्थान पर अधिकाधिक स्मृति-पटल पर छा जाते। प्रेम की गुत्थियों में फँसा हुआ उनका मन, बल-प्रयोग से भी नहीं निकल पा रहा था।।८५।। वे खड़ी-खड़ी अपने चरण-नखों से पृथ्वी तल को कुरेदतीं और प्रिय-प्रेम में फँसे हुए मन को लौटाने का प्रयास

नैंना अति ही सजल रहाहीं। प्रीतम-प्रेम जानि मन माहीं।।८७।।

दोहा

अति विसाल लोइनि सुरंग, सहज रसीले आहि।
प्रेम-लाज जल सौं भरे, रही अवनि तन चाहि।।८८।।

सखी से अन्तरङ्ग-वार्त्ता प्रकाश चौपाई

और सखी ढिंग ते जब आई। आठौ रहीं कुँवरि मन भाई।।८९।।
ललिता कहै श्री राधा प्यारी। मोसौं बात कहौ सुकुँवारी।।९०।।
मैं हूँ तौ मन की कछु पाई। सो तुम मोहि कहौ समुझाई।।९१।।
अपने सौं दुराव नहिं कीजै। दिन-दिन देखत देही छीजै।।९२।।

करतीं, किन्तु सफलता नहीं पातीं।।८६।। प्रियतम के प्रेम का (अपने प्रति) मन ही मन अवबोध करके उनके नेत्र सजल ही बने रहते।।८७।। श्री किशोरी के रतनारे, विशाल नयन, जो सहज रसीले हैं, प्रेम-पूर्ण लज्जा एवं अश्रु-बिंदुओं से पूरित रहने लगे। श्री किशोरी स्तम्भित भाव पूर्वक स्थिर दृष्टि से पृथ्वी की ओर ताकती रह जातीं।।८८।।

श्री किशोरी जी की समीपवर्ती ललिता-विशाखा आदि आठ सहचरियों से अतिरिक्त अन्य अनेक सखियाँ जब अपने-अपने सेवा-कार्यों के लिए इधर-उधर चली गईं, तब एकान्त पाकर अष्ट सखियों में प्रमुख श्री ललिता ने श्री किशोरी जी से कहा,—"हे राधा प्यारी! तुम्हारे मन में जो कोई ऐसी बात है, जिससे तुम चिन्तित एवं अनमनी रहती हो, मुझसे खोल कर कहो।।८९-९०।। मैंने भी तुम्हारे मन की बातों का कुछ-कुछ तो अनुमान कर लिया है।।" हे प्रिये! मैं देखती हूँ कि दिन-प्रतिदिन तुम्हारा सुन्दर शरीर क्षीण होता जा रहा है। मैं तुम्हारी हितकारी एवं अपनी हूँ। अतएव अपने जन से छल-छिपाव नहीं करना चाहिए।।९१-९२।।

जानी प्रिया सखी सुखदाई। तब मन में की बात चलाई।।९३।।
एक द्यौस खेलत बन माहीं। सखियन-संग सरोवर पाहीं।।९४।।
अतिही सघन कुंज है जहाँ। नवल कुँवर इक देख्यौ तहाँ।।९५।।
साँवल बरन पीत उपरैना। बड़ड़े आहिं सलौने नैंना।।९६।।
अरुन अधर मुसिकनि छबि राजै। मोर-चंद्रिका सीस बिराजै।।९७।।
नासा बनि रह्यौ जलज सुढारा। कंचन दुलरी मोतिनु हारा।।९८।।
मुख पर पानिप झलक सुहाई। नेह रूप मनौं प्रगट चुचाई।।९९।।
मो तन चितै गिरे मुरझाई। वह खसि परनि न बिसरति माई।।१००।।
तेहि छिन तें जु गयौ मन मेरौ। को सुधि कहै न कीयौ फेरौ।।१०१।।

श्री प्रिया जी ने ललिता सखी की बात सुनकर यह समझ लिया कि यह सखी मेरे लिए सुखदायी है, तब उन्होनें अपने मन की बात कहना प्रारम्भ किया।।९३।। वे बोलीं—हे सखी! एक दिन की बात है कि मैं वन में क्रीड़ा करते-करते अपनी सखियों के साथ प्रेम-सरोवर गई थी।।९४।। वहाँ एक सुन्दर सघन कुञ्ज में एक सुन्दर नवल कुमार को अकेले ही बैठे देखा।।९५।। उनका शरीर स्याम-वर्ण का था। वह पीत-वर्ण के वस्त्र धारण किये हुये थे। उनके सलौने नयन विशाल एवं अत्यन्त सुन्दर थे।।९६।। उनके अरुण अधरों पर मन्द-मधुर मुस्कान की छवि विराजमान् थी। शिरोभाग पर मयूर-चन्द्रिका शोभित थी।।९७।। ललित नासिका पर सुढार मोती की बेसर शोभित थी। कण्ठ देश में स्वर्ण की दुलरी एवं हृदय पर मोतियों के मञ्जुल हार रुरक रहे थे।।९८।। मुख-मण्डल का लावण्य बड़ा ही मनोमोहक था। ऐसा लगता था मानो उनकी मुख-ज्योति के रूप में प्रेम ही निर्झरित हो रहा है।।९९।। हे ललिते! कुञ्ज में प्रवेश करते ही वे मेरी ओर देख कर मुग्ध भाव से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनका इस प्रकार स्खलित होकर गिर पड़ना मुझे एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होता।।१००।। उसी क्षण मेरा मन उन नव किशोर का हो गया मानो उनके साथ ही चला गया। तब से वह मेरा

हौं नहिं बोली लाज की लई। तेहि पाछैं धौं कौंन गति भई।।१०२।।
वहै करक तब तें मन माहीं। खटकति पल-पल निकसति नाहीं।। १०३।।
इतनौ कहत हियौ भरि लीनौं। बहुरि न कछुवै उत्तर दीनौं।।१०४।।

दोहा

प्रेम-सुरति पिय की हियै, तेहि छिन करकी आइ।
मुख निरसत नहीं बैंन कछु, रही कुँवरि सिर नाइ।।१०५।।

चौपाई

यह गति देखत सखी भुलानी। भरि आये दोउ लोइनु पानी।।१०६।।
पुनि धरि धीर विचारनि लागी। नवल कुँवरि के हित अनुरागी।।१०७।।

कहा जाने वाला मन लौट कर नहीं आया।।१०१।। उनका सन्देश अब कौन लाकर दे ? हे सखी ! उन नव किशोर का दर्शन करके मैं लज्जा से नमित हो गई। कुछ बोल भी नहीं सकी। अब एक ही चिन्ता मुझे संत्रस्त करती रहती है कि उस मिलन-दर्शन के पश्चात् उन श्याम किशोर की क्या गति हुई होगी।।१०२।। मैं लौट कर अपनी-सहेलियों के साथ आ तो मिली किन्तु वह पीड़ा मेरे मन में से नहीं निकलती। प्रतिपल मेरे चित्त में कसक पैदा करती रहती है।।१०३।। इतना कहते-कहते श्री वृषभानुनन्दिनी जी का हृदय भर आया और वह आगे कुछ न कह सकीं।।१०४।। तत्क्षण उनके हृदय में प्रियतम की प्रेम-स्मृति आकर चुभ गयी। उनके मुख से शब्दों का निकलना बन्द हो गया। वे प्रेम-भार से नमित होकर पृथ्वी की ओर देखती रह गयीं।।१०५।। नवल किशोरी वृषभानु-नन्दिनी की अनुरागमयी स्थिति का दर्शन करके सखी आत्म-विस्मृत हो गयी। उसके दोनों नेत्र सजल हो गये।।१०६।। नवल-किशोरी के तत्सुख प्रेम में पगी अनुरागी सखी धैर्य-धारण करके नवल किशोरी को सुखित करने का उपाय-चिन्तन करने लगी।।१०७।।

करौं जतन नँद-लालहिं लाऊँ। पिय-प्यारी में रंग बढ़ाऊँ।।१०८।।
मिलहिं दोउ रस बाढ़ै भारी। बिरह-बिथा विचतें हो न्यारी।।१०९।।

दोहा

सहचरी मन आनँद भयौ, सुनत बचन अति सार।
प्रेम-मगन आनँद भयौ, मिलवन नंद-कुमार।।११०।।

सखी द्वारा युगल-मिलन का उद्योग चौपाई

नंदगाम तेही छिन आई। मनमोहन कौं सैंन जनाई।।१११।।
सैंन बूझि लालन उठि आये। ललिता देखि कछुक मुसिकाये।।११२।।
बूझत सखी चतुर तब बाता। काहे मोहन हौ कृस गाता।।११३।।
तब मोहन मन की सब कही। जो जो पाछैं ही गति भई।।११४।।
ललिता एक किसोरी देखी। मनौं रूप की सीवाँ पेखी।।११५।।

उसने निश्चय किया कि मैं यत्नपूर्वक श्री नन्द-नन्दन को जिस-किस प्रकार से यहाँ लाकर प्रिया-प्रियतम युगल का मिलन कराऊँगी।।१०८।। तभी दोनों के बीच से विरह व्यथा का विमोचन होगा एवं रस की वृद्धि होगी।।१०९।। सहचरी आनन्द से भर गयी और किशोरी जी को भी प्रियतम मिलन की सम्भावना का आनन्द मिला।।११०।। अस्तु ; तत्पश्चात् ललिता सखी शीघ्रता पूर्वक नन्दगाँव आई और उसने मनमोहन नन्दलाल को सङ्केत देकर एकान्त में बुलाया।।१११।। सखी का सङ्केत पाकर श्री लाल जी समीप आये एवं ललिता जी का दर्शन पाकर प्रसन्न हो उठे।।११२।। चतुर सखी ने बातों ही बातों में उनसे पूछा कि–हे मनमोहन तुम्हारा शरीर कृश क्यों हो रहा है ?।।११३।। तब श्री लाल जी ने अपने मन की सारी वे बातें भी कह सुनाई, जो किशोरी जी से वियुक्त होने के पश्चात् अब तक बीती थीं।।११४।। उन्होंने कहा–हे ललिते ! मैंने एक किशोरी का दर्शन किया था। वह किशोरी तो रूप-सौन्दर्य की परमावधि थी।।११५।।

कौन भाँति मुख की छबि कहियै। चितवत सखी चित्र ह्वै रहियै।।११६।।
कहा कहौं अँग-अंग निकाई। छिनक माँहिं लियौ चित्त चुराई।।११७।।
मनौं मोहनी और ठगौरी। तीन लोक की करि इक ठौरी।।११८।।
नव-किसोरता कछुक भुराई। लाज भरी अँखियनि मुसिकाई।।११९।।
रूपहि कहत विवस भयौ प्यारौ। प्रेम-नीर नैंननिं तें ढारौ।।१२०।।

दोहा

नख-सिख तें अति सोहनी, नाँहिन कछु समतूल।
रूप-लता लागे मनौं, चितवनि-मुसिकनि फूल।।१२१।।

हे सखी ! उसके श्री मुख लावण्य-छवि का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिसका दर्शन, अवलोकन दर्शकों को चित्र की भाँति स्तम्भित कर देता है।।११६।। उस रूप-लावण्य-धाम किशोरी के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की सुन्दरता, सुढारता, लावण्य, छवि सब अवर्णनीय थी। उसने क्षण-मात्र में मेरे चित्त का हरण कर लिया।।११७।। उसका रूप क्या था मानो तीनों लोकों की मोहनी और आकर्षण शक्ति उसके रूप में एकत्र थी।।११८।। नव-नव कैशोरावस्था की छवि-माधुरी के साथ किञ्चित् भोलापन, लज्जा से छविमान् उनकी बड़ी-बड़ी आँखें, सरस अधरों की मधुर मुस्कान सब कुछ देखते तो बना पर कहते नहीं बन रहा है।।११९।। इस प्रकार रूपाधिक्य का वर्णन करते-करते प्रियतम नन्द लाल भाव-विभोर हो गये। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का निर्झरण होने लगा।।१२०।। उन्होंने साहस बटोर कर पुनः कहना प्रारम्भ किया—हे सखि ! वह नवल किशोरी अत्यन्त शोभामयी सुन्दरी थी, जिसके समतुल्य उपमा देने के लिए अन्य कुछ है ही नहीं। मानो वह रूप की लता थी, जिसमें रस-भरी चितवन और मन्द मधुर मुस्कान के दो पुष्प खिले हुए थे।।१२१।।

चौपाई

अब तो जतन करौ वर नारी। मिलै मोहि वृषभानु-दुलारी।।१२२।।
तिनकी छबि उर नैंननिं छाई। अटपटी भाँति चटपटी लाई।।१२३।।
तेहि छबि-पावक-प्रीति जरावै। चतुर सोई जो प्रिया मिलावै।।१२४।।

दोहा

मैं तो यह जानी सखी, हितू न तोहि समान।
यह गुन तेरौ मानि हौं, जब लगि घट में प्रान।।१२५।।

चौपाई

जा दिन तें मोहि दई दिखाई। चकित चित्त कछुवै न सुहाई।।१२६।।
अब लगि तौ दिन बितये ऐसैं। अब धौं प्रान रहैंगे कैसैं।।१२७।।

हे ललिते ! तुम समस्त सखियों में परम चतुर एवं श्रेष्ठ हो, अब तुम यह प्रयत्न करो, जिससे मैं श्री वृषभानुदुलारी का दर्शन प्राप्त कर सकूँ।।१२२।। मेरे हृदय एवं नयनों में केवल उन्हीं श्री वृषभानुनन्दिनी जू की छबि समाई हुई है। उनके प्रेम की चटपटी विलक्षण रीति से मेरे हृदय में घर कर गई है।।१२३।। किशोरी जू की छबि रूपी अग्नि, प्रीति की ज्वाला बनकर मुझे अहर्निश जलाती रहती है। अब तो मेरा परम हितैषी वही होगा, जो प्रिया जी का दर्शन-मिलन कराके मुझे सुखित करे।।१२४।। हे सखी ! मैं यह भली प्रकार जानता हूँ कि तुम मेरी असामान्य हितैषिणी हो। मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारा आभारी रहूँगा।।१२५।। जिस दिन से नवल किशोरी जी ने मुझे दर्शन दिया है, मैं विभ्रमित सा हो गया हूँ। मुझे विश्व में कुछ भी अच्छा नहीं लगता।।१२६।। आज तक तो मैंने अपने जीवन के दिन, मिलन की आशा में जैसे-तैसे व्यतीत किये हैं, किन्तु भविष्य में मेरे प्राण कैसे शेष रहेगें, नहीं जानता।।१२७।।

दोहा

गहवर आई सहचरी, सुनत लाल की बात।
प्रेम दुहुँनि कौ समुझि मन, रीझि-रीझि बलिजात।।१२८।।

चौपाई

ललिता कहै सुनौ नँदलाला। मिलऊँ तुमैं आज नव बाला।।१२९।।
इतनी सुनत सरस ह्वै आये। विछुरे प्रान फेरि मनौं पाये।।१३०।।
सुनत बचन आनँद न समाई। पग ललिता के सिर धरयौ जाई।। १३१।।

दोहा

रसिक-सिरोमनि रसिक पिय, जानत रस की रीति।
प्रभुता राखी दूरि कै, भये दीन बस-प्रीति।।१३२।।

चौपाई

सखि मोहन सौं जब बदि लई। तब भीतर जसुदा पै गई।।१३३।।

प्रियतम नन्द-नन्दन की प्रेम-दशा का उनके मुख से वर्णन श्रवण कर सखी चिन्ता की गहराई में डूब गयी एवं युगल की प्रेम-गरिमा को समझकर मन ही मन रीझ-रीझ कर बलिहार जाने लगी।।१२८।। ललिता जी ने कहा—हे नन्दलाल! मैं आज नवल लाड़िली से तुम्हारा मिलन अवश्य करा दूँगी।।१२९।। सखी की बात सुनते ही नन्द-नन्दन प्रफुल्लित हो गये। उन्हें ऐसे लगा जैसे उनके वियुक्त प्राण लौट कर फिर शरीर में प्रविष्ट हो गये हों।।१३०।। सखी के वचनों को श्रवण करके उनके मन का आनन्द उफन पड़ा। उन्होंने भाव-विभोर होकर ललिता जी के चरणों पर अपना सिर रख दिया।।१३१।। रसिक प्रियतम नन्द-नन्दन रस-रीति के ज्ञाता एवं रसिकों के शिरोमणि हैं, उन्होंने अपने ऐश्वर्य एवं प्रभुत्त्व को त्याग कर प्रेम को महत्त्व दिया। तभी तो वे प्रेम के वशीभूत होकर परम दीन हो जाते हैं।।१३२।। जब सखी ने नन्द-नन्दन को आश्वासन देकर सन्तुष्ट कर दिया, तत्पश्चात् वह नन्दरानी श्री यशोदा के समीप पहुँची।।१३३।।

पकरि चरन बैठी ढिंग जाई। घरी इक पाछैं बात चलाई।।१३४।।
कीरति जू पाँइ लागन कहियाँ। कुँवरहिं न्यौंतन पठईं मईयाँ।।१३५।।
पुनि मन में कछु आहि विचारी। देख्यौ चाहत कुँवर विहारी।।१३६।।
भूषन बसन बनाइ सबैरैं। अबही संग देहु तुम मेरैं।।१३७।।

दोहा

मुदित महरि अति चाव सौं, भूषन वसन सुरंग।
नवल लाल अति बानि कै, दयौ सहचरी संग।।१३८।।

चौपाई

अति आनंद बढ़्यौ मन माँहीं। बैठे जाइ निकुंजनि छाँहीं।।१३९।।
सहचरि तब मन करति बिचारा। सोच-नदी तहाँ बढ़ी अपारा।।१४०।।
अब किहि विधि बरसाने जैयै। जो न लखै सोई जु बनैयै।।१४१।।

रानी की चरण-वन्दना करके उनके समीप बैठ गयी। कुछ समय पश्चात् उसने वार्त्ता प्रारम्भ की।।१३४।। ललिता ने कहा—हे रानी जू! हमारी रानी कीर्तिदा जू ने आपको चरण-वन्दना कही है एवं आपके कुँवर कन्हैया को भोजनार्थ निमन्त्रण देने को मुझे भेजा है।।१३५।। उनके मन में कुछ और भी विचार हैं, वे आपके कुमार रसिक बिहारी को देखना चाहती हैं।।१३६।। इसलिए आप शीघ्रतापूर्वक इन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके अभी इसी क्षण मेरे साथ भेज दीजिये।।१३७।। सखी की बात सुनकर नन्दरानी यशोदा बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने बड़े उत्साह से अपने नवल लाल को नवीन-नवीन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके सखी के साथ भेज दिया।।१३८।। नन्दग्राम से चलकर नन्द-नन्दन एवं सखी आनन्दित मन से एक निकुञ्ज की छाया में आ बैठे।।१३९।। सहचरी मन ही मन विचार करने लगी एवं चिन्ता में डूबने—उतराने लगी।।१४०।। कि अब किस प्रकार इन्हें बरसाने के राज-महलों में ले जाया जाए। कौन सा बानिक बनाऊँ, जिससे इन्हें कोई पहचानने न पावे।।१४१।।

गुरुजन-भीर तहाँ अति भारी। सब के प्रान वहै सुकुँवारी।।१४२।।
फनि मनि ज्यौं लिये रहैं सँवारी। जीवत हैं सब ताहि निहारी।।१४३।।
ऐसी कठिन ठौर सुनि प्यारे। तेहि ठाँ लागे नैंन तिहारे।।१४४।।
सुनत सखी की बानी मानी। प्यासौ माँगै पानी-पानी।।१४५।।
सब विधि मोहिं भरोसौ तेरौ। पूरन करौ मनोरथ मेरौ।।१४६।।
एक बार कैसैहूँ दिखावौ। तौ ललिता मोहि जीव जिवावौ।।१४७।।
नासा अग्र प्रान रहे आई। बुधिबल करि कछु बेगि उपाई।।१४८।।
ऐसैं वचन सुनत गहवरी। सहचरि सोच-कूप में परी।।१४९।।
धीरज धरहू जाउँ बलिहारी। तुमतें मोहि अधिक दुख भारी।।१५०।।

बरसाने में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ अधिसंख्य-गोपगण विराजते हैं और सुकुमारी भानु-नन्दिनी सबकी प्राण हैं।।१४२।। सभी गुरुजन उन्हें ऐसे सम्हालते हैं जैसे मणिधर सर्प अपनी मणि को सम्हालता है और सभी ब्रजवासी उनका दर्शन करके जीवन धारण करते हैं।।१४३।। सखी ने नन्द-नन्दन से कहा—हे प्यारे ! ऐसी कठिनाइयों के बीच तुम्हारे नेत्रों का सम्बन्ध जा लगा है, (जहाँ पवन का भी प्रवेश नहीं)।।१४४।। सखी की इस स्वाभिमान् पूर्ण मार्मिक वचनावलि का श्रवण करके प्रियतम विह्वल हो गये। उनकी स्थिति तो उस पिपासु की स्थिति बन गयी, जो पानी के सिवाय कुछ नहीं जानता।।१४५।। वे कहने लगे—हे सखी ! मुझे सब प्रकार से केवल तुम्हारा ही भरोसा है। तुम जैसे भी हो मेरी अभिलाषा पूर्ण करो।।१४६।। कैसे भी एक बार ही सही, उनका दर्शन करा दो तो मैं मानूँगा कि तुमने मुझे जीवन दान दिया ।।१४७।।हे ललिते ! मेरे प्राण प्रस्थान करने के लिए नासिकाग्र भाग पर आ लगे हैं, अतएव तुम यावत् बुद्धि बलोदय शीघ्र ही कोई उपाय करो, जिससे मेरा प्राण-प्रयाण रुके।।१४८।। प्रियतम के इन वचनों को सुनकर सहचरी चिन्ता के गर्त में डूब गयी।।१४९।। उसने कहा—हे प्यारे ! मैं आपकी बलैया लूँ, किञ्चित् धैर्य धारण करो। तुम्हारे दुःख से अधिक मैं दुःखी हूँ।।१५०।।

बचन करौं तुम सौं दै तारी। मिलऊँगी बलि प्रान-पियारी।।१५१।।
तजि कैं लोक-वेद की लाज। देहौं प्रान तिहारे काज।।१५२।।

दोहा

नैंन भरैं धीरज धरैं, मन में थापि विचारि।
पलटि वेष लै जाइयै, जहाँ कुँवरि सुकुँवारि।।१५३।।

श्री नन्दलाल का छद्म शृङ्गार (सखी वेष धारण) चौपाई

तब ललिता इक मंत्र विचार्‌यौ। पिय कौं तिय कौ वेष सिंगार्‌यौ।।१५४।।
भये चाव सौं सखी विहारी। देखन हित श्री राधा-प्यारी।।१५५।।
पहिरे लाल कसूँभी सारी। गुही सीस कल माँग सँवारी।।१५६।।
लाल-भाल पर बैंदी फबी। त्रिभुवन की सोभा सब दबी।।१५७।।

मैं ताली मार कर तुम्हें वचन देती हूँ कि प्राण-प्रिया से तुम्हारा मिलन करा दूँगी।।१५१।। मैं तुम्हारे हित में लोक एवं वेद की मर्यादा-लज्जा का त्याग तो करूँगी ही, प्राणों का भी उत्सर्ग कर दूँगी।।।१५२।। इस प्रकार प्रियतम को ढाढस बँधाते हुए सखी के नेत्र करुणावश सजल हो गये। पश्चात् उसने धैर्य धारण करके यह विचार सुनिश्चित किया कि नन्द-नन्दन का वेष बदल कर सुकुमारी राज-किशोरी के समीप तक ले जाया जा सकता है।।१५३।।

तत्पश्चात् ललिता जी ने एक गोप्य मत निश्चित किया कि प्रियतम को सखी के वेष में शृङ्गारित करके ले जाना ही समीचीन होगा।।१५४।। सखी की बात को स्वीकार करके श्री व्रज-विहारी रसिक प्रियतम अपनी प्राणेश्वरी प्यारी श्री राधा का दर्शन करने के लिए उत्साहपूर्वक सखी बन गये।।१५५।। उन्होंने पलाश-कुसुम के रङ्ग की लाल साड़ी धारण की। सखी ने उनकी वेणी को गूँथ कर सिन्दूर से उनकी माँग अनुरञ्जित कर दी।।१५६।। लाल के विशाल भाल पर बैंदी की शोभा ने त्रिलोक की एकत्रित शोभा को भी धर्षित कर दिया।।१५७।।

नासा बेसरि अतिहि सोहनी। प्रान हरन कौं मनौं मोहिनी।।१५८।।
नैंननिं अंजन दियौ बनाई। चिबुक बिंदु अतिही सुखदाई।।१५९।।
कंचन-मोतिन की गरैं दुलरी। तेहि छबि की नाहिंन कछु तुलरी।।१६०।।
कंचुकि उरज बनाइ सँवारे। मानौं श्रीफल नौतन धारे।।१६१।।
जेहि विधि के भूषन मन भाये। सुमिलि सुदेस सोइ पहिराये।।१६२।।
साजि लिये जब सब सिंगारा। निरखि रूप सुख भयौ अपारा।।१६३।।
नवल सखी तब अधिक विराजै। जुवतिनि-वृंद देखि सब लाजै।।१६४।।

दोहा

स्याम अंग पर अति बनी, सारि कसूँभि सुरंग।
नख-सिख भूषन तियनि के, भूषित मोतिनु-मंग।।१६५।।

उनकी ललित नासिका पर सुहावनी बेसर की छटा मानो किसी के प्राणहरण के लिए मोहनी मन्त्र की भाँति शोभित हुई हो।।१५८।। छबीले नेत्रों में अञ्जन-रेख अङ्कित करके, चिबुक पर नेत्रों को सुख देने वाले छवि-विंदु की रचना की।।१५९।। कण्ठ-देश में कञ्चन-तारों से गुम्फित मोतियों की दुलरी धारण कराई, जिसकी छवि की समता करने को कोई समर्थ नहीं।।१६०।। वक्षस्थल पर कञ्चुकी धारण कराके कृत्रिम उरोजों की रचना ऐसी प्रतीत हुई मानों नूतन श्रीफल हों।।१६१।। और भी जिस-जिस प्रकार के मन भाये अलङ्कार हो सकते हैं, उन सभी आभूषणों को सुन्दर सुढार रीति से धारण कराया।।१६२।। इस प्रकार जब ललिता जी ने रसिक लाल को नख से शिख तक सम्पूर्णतया सखी-रूप में शृङ्गारित कर दिया तब उनका सखी रूप-दर्शन करके वे बहुत प्रसन्न हुईं।।१६३।। उस समय नवनवायमान् रूप-लावण्य -धाम नवल स्याम-सखी ऐसी अद्भुत शोभा को प्राप्त हुई, जिसे देखकर व्रज की युवतियों के वृन्द लज्जित हो गये।।१६४।। प्रियतम के श्यामल अङ्ग पर कसूँभी सुरङ्ग साड़ी बड़ी फबी। उनका नख-शिख पर्यन्त

चौपाई

तब ललिता बरसाने आई। सखी संग लै परम सुहाई।।१६६।।
जब प्रवेस रावर में कीनौं। सकुच सहित मुख अंचल दीनौ।।१६७।।
बूझतिं सकल जुवति जन हेरैं। यह को आई सखि सँग-तेरैं।।१६८।।
ललिता परम चतुर अति स्यानी। उत्तर दियौ बेगि मृदु बानी।।१६९।।
यह उपनंद गोप की बेटी। मोकौं खोरि साँकरी भेटी।।१७०।।
जानि अवार संग लै आई। कहिकै वचन ताहि समुझाई।।१७१।।
गई लिवाइ तहाँ कर जोरैं। राजति जहाँ कुँवरि तन गोरैं।।१७२।।
ललिता देखि कुँवरि मुसिकानी। सखी चतुरई मन में जानी।।१७३।।

नारी-वस्त्राभूषण शृङ्गार एवं मोतियों से सज्जित सीमन्त रेखा सब कुछ अपूर्व था।।१६५।। तब श्री ललिता परम शोभामयी श्यामसखी को अपने साथ लेकर बरसाने आयी।।१६६।। जब उन्होंने राज-महलों में प्रवेश किया, त्यों ही श्याम सखी ने सङ्कोचपूर्वक अपने मुख-मण्डल पर अवगुण्ठन कर लिया।।१६७।। बरसाने की अन्य सखियाँ उस सुन्दर युवती को देखकर पूछने लगीं कि—ललिता तुम्हारे साथ आने वाली यह कौन सखी है।।१६८।। बुद्धिमान एवं परम चतुरा ललिता जी ने अत्यन्त मृदुल वाणी में उनको उत्तर दिया।।१६९।। यह सखी नन्द ग्राम निवासी उपनन्द नाम के गोपराज की पुत्री है। साँकरी खोर में इससे मेरा मिलन हो गया।।१७०।। दिवस का अन्त अर्थात् संध्या होते देखकर इसे समझा-बुझाकर मैं यहाँ ले आई हूँ।।१७१।। ऐसा उत्तर देकर ललिता उन पूछने वाली सब सखियों की जिज्ञासा शान्त करके नवल श्याम सखी का हाथ पकड़े हुए उसे राजमहलों के भीतर ले गयीं, जहाँ कञ्चन-तनी श्री वृषभानुदुलारी का एकान्त महल था।।१७२।। एक नवीन सखी के साथ ललिता को आते देख उनकी चतुराई को समझ कर राजकुमारी राधा मुस्करा उठीं।।१७३।।

निरखि परस्पर आनँद भारी। विरह विथा बिचतें भई न्यारी।।१७४।।
सखी दोइ आईं सँग लागी। अटक्यौ चित्त रूप अनुरागी।।१७५।।
कछुक ब्याज ललिता तब कीनौ। नवल प्रिया-प्रीतम सुख दीनौ।।१७६।।
उठी बेगि जानै नहिं कोई। लीनी संग सहचरी दोई।।१७७।।
कहति है तिन सौं बचन बनाये। करहु न टहल आज मन भाये।।१७८।।
माला सुमन सुरंग बनावौ। चित्र विचित्र गूँथि लै आवौ।।१७९।।
ऐसी चतुर चतुरई कीनी। टहल ब्याज सबही कौं दीनी।।१८०।।
मिले मोहन श्री राधा-प्यारी। 'हित ध्रुव' निरखि जाइ बलिहारी।। १८१ ।।

और जब प्रिया और प्रियतम के तृषातुर नयन परस्पर मिले तो अपार आनन्द की वृष्टि हुई एवं उनके हृदयों की विरह-व्यथा परिसमाप्त हो गयी।।१७४।। जिस समय ललिता जी ने बरसाने में प्रवेश किया था, उस समय श्याम सखी का आकर्षक रूप-दर्शन करके अनुराग से लटकी खिंची हुईं दो सखियाँ उनके पीछे लगी हुईं श्री किशोरी जी के महल तक आ गयी थीं।।१७५।। इन युगल सखियों को ललिता जी ने वहाँ से टालने के लिए एवं नवल प्रिया एवं नवल प्रियतम को सुख देने के लिए एक बहाना बनाया।।१७६।। वे बड़ी शीघ्रता से उठीं और दोनों नवागन्तुक सखियों को साथ लेकर बाहर आईं।।१७७।। वे उनसे बोली आज तो बड़ा सुखमय दिवस है। हमारी किशोरी जी की प्रिय अतिथि की सेवा करना हमारा-तुम्हारा कर्त्तव्य है।।१७८।। जाओ, सुन्दर-सुन्दर पुष्पों की रङ्ग-विरङ्गी सुहावनी एवं चित्र-विचित्र मालाएँ गूँथ लाओ।।१७९।। परम चतुर ललिता ने टहल-सेवा के बहाने चातुरी-पूर्वक वहाँ से उन सखियों को हटा दिया।।१८०।। तब रसिक-शेखर नन्द-नन्दन एवं वृषभानुनन्दिनी श्री राधा प्यारी का रसमय प्रेम-मिलन सम्पन्न हुआ। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं इस मिलन सुख का दर्शन करके ललिता सखी बलिहारी जाने लगी।।१८१।।

युगल का मिलन-सुख

दोहा

नवल लाल नव लाड़िली, नवल केलि सुख-रासि।
नवल प्रीति नव-नव बढ़ी, करत मंद मृदु हासि।।१८२।।

•चौपाई

वचन-रचन सुख कह्यौ न जाई। बाढ़्यौ प्रेम-सिंधु अधिकाई।।१८३।।
मनोज-रंग कीने पिय-प्यारी। मन-मन सुख बाढ़्यौ अति भारी।।१८४।।
प्रेम-पगी ललितादिक आईं। अति आनंद न अंग समाई।।१८५।।
सोभित सिथिल दुहुँनि के अंगा। निरखतिं सहचरि प्रेम-अभंगा।।१८६।।
श्रमित जानि तब पवन डुलावैं। अति आसक्त नैंन भरि आवैं।।१८७।।

जैसे नवल लाल हैं, वैसी ही नव लाड़िली हैं और उनकी नित्य नव-केलि भी परम सुख की राशि है। उनकी यह नूतन प्रीति नित्य नयी एवं प्रतिक्षण वर्धमान् है, जहाँ नित्य नव, मन्द, मृदुल एवं आनन्दमय हास्य विस्तृत होता रहता है।।१८२।। प्रिया श्री राधा एवं प्रियतम मोहन के इस मिलन से प्रेम का सिन्धु अधिकाधिक वृद्धि को प्राप्त हुआ। उनकी पारस्परिक वार्त्ता का सुख वर्णन में नहीं आता ।।१८३।। युगल प्रिया-प्रियतम ने विविध भाँति से प्रेम-सुख का आनन्द-लाभ किया, जिससे दोनों के मनों में आत्यन्तिक सुख की वृद्धि हुई।।१८४।। पश्चात् प्रेम-सिक्त ललितादिक सहचरियों ने आकर जब युगल का दर्शन किया तो उन्हें अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ।।१८५।। वह आनन्द उनके अन्तर में भर कर छलक उठा। उन्होंने देखा युगल के श्री अङ्ग प्रेम-केलि के कारण शिथिल हैं। तब वे समस्त सहचरियाँ युगल के शाश्वत-प्रेम को देखती ही रह गयीं।।१८६।। वे युगल श्रीलाड़िली-लाल को श्रमित देखकर व्यजन करने लगीं। युगल प्रियतम की पारस्परिक आसक्ति को देख एवं समझ कर उनके नेत्र भर-भर कर झरने लगे।।१८७।।

दोहा

कुँवरि-कुँवर दोउ रसिक वर, सब सखियनि के प्रान।
दंपति सुख सुख जिनहिं के, नाहिंन गति कछु आन।।१८८।।

चौपाई

सखियनि जुत तब मतौ कराहीं। नित्य मिलहिं हम वा बन माँहीं।।१८९।।
यह मत जब मन में धरि लीनौ। निज सखियनि कौं अति सुख दीनौ।।१९०।।
तब तें खेलैं वा वन माहीं। सुंदर सुभग सरोवर पाहीं।।१९१।।

उपसंहार चौपाई

यह लीला 'ध्रुव' जो नित गावै। प्रेम-भक्ति सो दृढ़ करि पावै।।१९२।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल रसिकवर किशोर एवं किशोरी समस्त सखियों के प्राण हैं। इस रसिक दम्पति का सुख ही तत्सुखमयी सखियों का आस्वाद्य सुख है। इस सुख-लाभ के अतिरिक्त इनकी अन्य कोई गति-मति ही नहीं है।।१८८।। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए ग्रन्थकार महानुभाव कहते हैं कि इस मधुर-मिलन के पश्चात् युगल ने सखियों के साथ परामर्श-पूर्वक यह निर्णय लिया कि हम नित्य-निरन्तर उसी बन में ही मिला करेंगे जहाँ हमारा प्रथम-मिलन हुआ था।।१८९।। ऐसा निश्चय करके युगल किशोर ने अपनी निज सखियों को अतिशय सुख प्रदान किया।।१९०।। तभी से उस वन में जहाँ परम सुन्दर और परम रम्य सरोवर (प्रेम-सरोवर) है, आनन्द-कन्द नन्द-नन्दन एवं श्री वृषभानु-नन्दिनी रसिक-युगल अपने अन्तरङ्ग सखी-परिकर सहित नित्य-निरन्तर क्रीड़ा-परायण हैं।।१९१।।

अस्तु, श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई भक्त इस मधुर-मिलन लीला का नित्य-प्रति गान करेगा, वह सुनिश्चित रूप से अचल-प्रेमाभक्ति को प्राप्त करेगा।।१९२।।

दोहा

प्रथम नेह ऐसैं भयौ, बिना जतन अनियास।
यह रस गावत सुनत 'ध्रुव', होत जु प्रेम प्रकास।।१९३।।

पुनः वह कहते हैं कि अनायास सहज ही अवतार-लीला में युगल का प्रथम प्रेम मिलन उक्त रीति से सम्पन्न हुआ। इस रस का गान एवं श्रवण करने से उपासक के हृदय में निश्चित ही प्रेम का प्रकाश होता है।।१९३।।

●

३९

युगल-ध्यान

ध्यानारम्भ दोहा

(श्री) प्रिया वदन-छबि चंद मनौं, प्रीतम-नैंन चकोर।
प्रेम-सुधा रस-माधुरी, पान करत निसि-भोर।।१।।
अंगनि की छबि कहा कहौं, मन में रहत विचार।
भूषन भये भूषननिं कौं, अति सरूप सुकुँवार।।२।।

युगल शृङ्गार दोहा

सुरँग माँग मोतिनु सहित, सीस-फूल सुख-मूल।
मोर-चंद्रिका मोहिनी, देखत भूली भूल।।३।।

श्री प्रिया का मुख-मण्डल चन्द्रमा है, तो प्रियतम के नयन चकोर हैं, जो प्रिया-मुख चन्द्र की रूपामृत-माधुरी का अहर्निश पान करते रहते हैं।।१।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं युगल-किशोर के अङ्गों की रूप-माधुरी एवं छवि-सौन्दर्य का क्या वर्णन करूँ? मन में सोच सा बना रहता है, किन्तु वर्णन बन नहीं पाता, क्योंकि अतिशय रूपवान्, परम सुकुमार युगल के अङ्ग-प्रत्यङ्ग तो आभूषणों को भी शोभा प्रदान करने वाले आभूषण हैं।।२।।

प्रिया की शुभ सीमन्त-रेखा अरुणवर्ण सिन्दूर से मण्डित है, तथा शुभ्र मुक्ताओं की लड़ी एवं सुखकन्द शीश-फूल नामक भूषण से अलङ्कृत है। इसी प्रकार प्रियतम का शिरोभाग, मोहिनी मयूर-चन्द्रिका से आभूषित है, जिसका दर्शन करके साक्षात् विस्मृति भी अपना आपा विस्मृत करके भूली सी रह जाती है।।३।।

स्याम-लाल बैंदी बनी, सोभा बढ़ी अपार।
प्रगट विराजत ससिनु पर, मनौं अनुराग सिंगार।।४।।
कुंडल कल ताटंक चल, रहे अधिक झलकाइ।
मनौं छबि के ससि-भानु जुग, छबि कमलनि मिले आइ।।५।।
नासा बेसरि-नथ बनी, सोहत चंचल नैंन।
देखत भाँति सुहावनी, मोहे कोटिक मैंन।।६।।
सुन्दर चिबुक कपोल मृदु, अधर सुरंग सुदेस।
मुसिकनि बरसत फूल सुख, कहि न सकत छबि-लेस।।७।।
अंगनि भूषन झलकि रहे, अरु अंजन रँग पान।
नव-सत सरवर तें मनौं, निकसे करि अस्नान।।८।।

प्रिया के ललाट-पटल पर श्याम वर्ण की तथा प्रियतम के ललाट-पटल पर अरुण वर्ण की बैंदी-(बिन्दी) विराज रही हैं, जिससे युगल के मुख-मण्डल की अपार शोभा-वृद्धि हो रही है। दर्शन करके ऐसा प्रतीत होता है, मानो पृथक-पृथक दो चन्द्रमाओं पर अनुराग एवं शृङ्गार (अरुण और श्याम रूप में) मूर्त्तिमान हों।।४।। श्री लाल के कर्ण-भूषण कुण्डल एवं श्री प्रिया के कर्ण-भूषण ताटङ्क अपनी-अपनी चञ्चलता से युक्त होकर अधिकाधिक दीप्तिमय दृष्टिगत हो रहे हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो शोभा के दो सूर्य और दो चन्द्रमा छवि-रूप युगल कमलों से आकर मिल गये हों।।५।। प्रियतम की नासिका पर नासा-मौक्तिक एवं प्रिया की ललित नासा पर नथ शोभित है तथा युगल किशोर के चञ्चल नेत्रों की छवि, सुहावनी एवं चपल चितवन कोटि-कोटि कामदेवों के भी मन को मोहित कर रही है।।६।। युगल के सुन्दर चिबुक, सुकोमल कपोल एवं अति सुरम्य अरुणिम अधरों पर खेलती हुई मुस्कान सुख-रूपी पुष्पों की वर्षा करती रहती है, जिसकी छवि-छटा का लेश-मात्र भी वर्णन असम्भव है।।७।। युगल के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में विविध आभूषणों की छबि झलक रही है। नेत्र अञ्जन से तथा अधर ताम्बूल के अरुणिम रङ्ग से रञ्जित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि युगल रसिक अभी-अभी षोडश

कहि न सकत अंगनि-प्रभा, कुंज-भवन रह्यौ छाइ।
मानौं बागे रूप के, पहिरे दुहुँनि बनाइ।।९।।
रतनांगद पहुँची बनी, वलया-वलय सुढार।
अँगुरिनु मुँदरीं फबि रहीं, अरु मिहँदी रँग-सार।।१०।।
चंद्रहार मुक्तावली, राजति दुलरी-पोति।
पान-पदिक उर जगमगै, प्रतिबिंबित अँग-जोति।।११।।
मनिमय किंकिनि-जाल छबि, कहौं जोइ सोइ थोर।
मनौं रूप दीपावली, झलमलात चहुँ ओर।।१२।।
जेहरि सुमिलि अनूप बनी, नूपुर अनवट चारि।
और छाँड़ि कै या छबिहि, हिय के नैंन निहारि।।१३।।

शृङ्गार रूपी सरोवर में स्नान करके निकले हैं।।८।। उनके अङ्गों की कान्ति से सम्पूर्ण कुञ्ज-भवन प्रकाशमय बन गया है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। लगता है युगल ने रूप को ही वस्त्रों की भाँति सजाकर धारण कर रखा हो।।९।। प्रियतम की भुजाओं पर रत्न-जटित बाजूबन्द (अङ्गद) एवं कलाइयों पर पहुँचियाँ शोभित हैं। इसी प्रकार प्रिया की ललित भुजाओं पर सुढ़ार मणि-जटित चूड़े एवं कलाइयों पर चूड़ियाँ शोभित हैं। कराङ्गुलियों में मुद्रिकायें और उनके करतलों पर मेंहदी का अरुण रङ्ग जगमगा रहा है।।१०।। प्रिया के वक्षस्थल पर चन्द्रहार, श्री लाल के वक्षस्थल पर मुक्ता-मालाएँ तथा युगल के कण्ठदेश में पोतों की दुलरियाँ शोभित हैं। इसी प्रकार दोनों के वक्षस्थलों पर अनेक मणि-जटित पान एवं पदिक जगमगा रहे हैं, जिन पर युगल के श्री अङ्गों की ज्योति प्रतिबिम्बित हो रही है।।११।। युगल किशोर के क्षीण कटि-देश पर मणिमयी किङ्किणियों के जाल शोभित हैं, जिनकी छबि का ओर-छोर नहीं है। किङ्किणी-जाल की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो युगल के कटि-देश के चारों ओर रूप की दीपावली झलमला रही हो।।१२।। श्री चरणों पर जेहरि, नूपुर एवं सुन्दर अनवट की सुमिलि सुढार छबि अनुपम रीति से शोभित है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक

बिछुवनि की छबि कहा कहौं, उपजत रव रुचि-दैंन।
मनौं सावक कल हंस के, बोलत अति मृदु बैंन।।१४।।
नख-पल्लव सुठि सोहने, सोभा बढ़ी सुभाइ।
मानौं छबि चंद्रावली, कंज-दलनि लगी आइ।।१५।।
गौर वरन सांवल चरन, रचि मिहँदी के रंग।
तिन तरुवनि तर लुठत रहैं, रति-जुत कोटि अनंग।।१६।।

अभिलाषा दोहा

अति सुकुमारी लाड़िली, पिय किसोर सुकुँवार।
इक छत प्रेम छके रहैं, अद्भुत प्रेम बिहार।।१७।।
अनुपम स्यामल-गौर छबि, सदा बसौ मम चित्त।
जैसे घन अरु दामिनी, एक संग रहै नित्त।।१८।।

उपासक का कर्त्तव्य है कि वह अन्य सर्वस्व का परित्याग करके युगल चरणों की इस अनुपम छवि का अपने अन्तर्नेत्रों (हृदय के) से दर्शन करे।।१३।। श्री प्रिया की पादाङ्गुलियों में धारण बिछुओं की छवि अवर्णनीय है। उन बिछुओं से उत्पन्न रुचिपूर्ण ध्वनि ऐसी मधुर प्रतीत होती है, मानो राजहंस के सुन्दर शिशु अपनी मधुर बाल-वाणी से चहक रहे हों।।१४।। युगल के चरण-नख रूपी पल्लवों की सहज शोभा सुन्दर और सुहावनी है। दर्शन करने पर ऐसा लगता है, मानो छबि रूपी चन्द्रमाओं की पङ्क्ति कमल के विविध दलों पर आ जुटी हो।।१५।। मदयन्तिका के अरुणिम रङ्ग से रञ्जित गौर-श्याम वर्ण के चारु-चरणतल, जिनके नीचे कोटि-कोटि रति सहित कामदेव विलुण्ठित होते रहते हैं, अपूर्व शोभा को प्राप्त हैं।।१६।। अत्यन्त सुकुमारी लाड़िली प्रिया एवं नित्य किशोर सुकुमार प्रियतम-युगल निरन्तर एक-रस प्रेम में छके हुए अद्भुत रस-विहार में तल्लीन रहे आते हैं।।१७।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह अनुपम श्याम-गौर युगल छबि मेरे चित्त में ऐसे ही बसी रहे, जैसे आकाश में मेघ और दामिनी निरन्तर एक साथ मिले हुए निवास करते हैं।।१८।।

बरने दोहा अष्ट-दस, जुगल-ध्यान रसखान।
जौ चाहत विश्राम 'ध्रुव', यह छबि उर में आन।।१९।।
पलकनि के जैसैं अधिक, पुतरिनु सौं अति प्यार।
ऐसैहिं लाड़िली-लाल के, छिनु-छिनु चरन सँभार।।२०।।

पुनः श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि 'युगल ध्यान' सम्बन्धी रस-निधान अठारह दोहों का गान-वर्णन मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ है। जो व्यक्ति अटल विश्राम अथवा परम शान्ति का इच्छुक है, वह अपने हृदय में उपरिवर्णित छवि को बसाने का प्रयास करे।।१९।। अस्तु, जिस प्रकार नेत्रों की पलकें, अत्यधिक रूप से नेत्र-पुतलियों के प्रति प्रेम-प्यार रखती हैं तथा उनकी रक्षा के लिए तत्पर रहती हैं, इसी प्रकार रसिक उपासक जीवन-सर्वस्व ललित लाड़िली लाल के श्री चरणों को प्रतिक्षण अपने हृदय में सँभालता रहे।।२०।।

●

४०
नृत्य-विलास

मान सरोवर वर्णन — चौपाई

एक समै नागरि नव नागर। प्रेम रूप गुन के दोउ सागर।।१।।
परम प्रवीन सखी तहँ रहहीं। छिन-छिन प्रति नव-नव सुख लहहीं।।२।।
मंडल जोरि चहूँ दिसि ठाढ़ीं। प्रेम चितेरे चित्र सी काढ़ीं।।३।।
राजत मान सरोवर तीरा। आवत परम सुगंध समीरा।।४।।
सारस हंस चकोर चकोरी। निर्त्तत फिरत बरहि सँग मोरी।।५।।
देखि मुदित भई नवल-किसोरी। आनँद में झलकत छबि गोरी।।६।।

प्रियतम की आकाङ्क्षा — चौपाई

उपजी बात एक मन माँहीं। सकुचत हैं पिय कहि न सकाँहीं।।७।।

वृन्दावन विलासी नव नागरी-नागर युगल प्रेम, रूप, सौन्दर्य एवं गुणों के अपार समुद्र हैं।।१।। जिस प्रकार रसिक युगल प्रेम, रूप एवं गुणों में परम प्रवीण हैं, वैसे ही उनकी सखियाँ भी हैं। वे साथ रह कर युगल की सेवा करती हुई प्रतिक्षण नित्य नूतन सुख का लाभ लेती रहती हैं।।२।। एक बार वे सब सखियाँ युगल किशोर को अपने बीच लेकर मण्डलाकार खड़ी हो गयीं। उस समय उनकी छवि अपूर्व सुन्दर थी, मानो स्वयमेव प्रेम रूपी चित्रकार ने उन्हें चित्रित कर दिया हो।।३।। वृन्दावन सीमान्तर्गत मान-सरोवर का सुहावना तट, जहाँ सुगन्ध युक्त मन्द पवन प्रवाहित हो रहा था।।४।। सारस, हंस, चकोर और चकोरी आदि पक्षी तरु-शाखाओं पर चहक रहे थे। भूमि पर मयूरों को घेरे हुए मयूरियाँ नृत्य कर रहीं थीं।।५।। इस छवि को देख कर नवल किशोरी प्रिया प्रसन्न हो रहीं थीं; उनके गौर मुखमण्डल पर सहज आनन्द झलक रहा था।।६।। उस समय नवल-किशोरी प्रिया की आनन्द-पुलकित छवि का अवलोकन करके प्रियतम के मन में एक अभिलाषा उत्पन्न हुई, किन्तु वे सङ्कोचवश उस अभिलाषा को

कबहूँ नूपुर धाइ बनावैं। याही मिस चरननि छ्वै आवैं।।८।।
कबहूँ सुंदर बीन बजावैं। नवल प्रिया मन रुचि उपजावैं।।९।।
निरखत मुख कहि सकत न प्यारौ। हेत लाल कौ प्रिया बिचारौ।।१०।।

नृत्य-कला का प्रकाश चौपाई

परम प्रवीन मुकट-मनि प्यारी। निर्त्तकला गुन की बिस्तारी।।११।।
तिरप बाँधि कमलनि पर चली। निरखत थकित रहीं ह्वै अली।।१२।।
अद्भुत कमल मध्य सर माँहीं। ताके सिर पर निर्त्त कराँहीं।।१३।।

दोहा

निर्त्त बिलासहि देखि सखि, रही सोच बिस्माइ।
निर्त्त जू मूरतिवंत ही, ठाढ़ी लेति बलाइ।।१४।।

कह नहीं पाये।।७।। उस अभिलाषा की अभिव्यक्ति के लिए कभी तत्परतापूर्वक प्रिया के चरण-नूपुरों को सजाने-सँवारने लगते, मानो इस बहाने से चरणस्पर्श पूर्वक अपना अव्यक्त आवेदन स्वीकार कराना चाहते हों।।८।। फिर कभी श्री प्रिया की सुन्दर वीणा को अपने हाथों में लेकर बजाने लगते, जिसका आशय शायद यह हो कि वे प्रिया के मन में उस समय नृत्य-सङ्गीत विषयक रुचि उत्पन्न कर रहे हों।।९।। श्रीलाल जी उपरोक्त चेष्टाओं के द्वारा श्रीप्रिया के नृत्य को देखने की लालसा सङ्कलित कर रहे थे, किन्तु सङ्कोचवश वाणी से निर्देश नहीं दे सके। श्री प्रिया ने प्रियतम के मनोभाव को उनके बिना कहे ही समझ लिया।।१०।।

श्रीलाल जी की अभिलाषा को समझ कर नृत्य-कला मुकुट-मणि प्रिया ने अपनी नृत्यगुण कलाओं का विस्तार प्रारम्भ किया।।११।। प्रथमतः नृत्य की तिरप-गति का बन्धान करके वे मान सरोवर में विकसित कमल-पुष्पों पर नृत्य का पाद-विन्यास करने लगीं, जिसका दर्शन करके सब सखियाँ चकित एवं विथकित रह गयीं।।१२।। सरोवर के मध्य में एक अद्भुत एवं विशद कमल था, जिसकी कर्णिका पर पहुँच कर श्रीप्रिया नृत्य करने लगीं।।१३।। श्रीप्रिया के अपूर्व नृत्य-विलास का दर्शन करके सब सखियाँ विस्मित-चित्त हो गयीं;

चौपाई

हुड़क रबाब गजक बहु बाजे। सखियनि अति आनँद सौं साजे।।१५।।
किन्नरि मुरज मृदंग बजावैं। गति में गति नव-नव उपजावैं।।१६।।
अति सुकुँवारि नित्त रँग भीनी। भाइ भेद गति लेति नवीनी।।१७।।
जो गति सुनी न देखी कबहीं। नौतन प्रकट करीं ते अबहीं।।१८।।
अलग लाग हुरमई जु लीनी। प्रकट कला निज गुन की कीनी।।१९।।
परत आइ मान जेहि दल पर। बैसेई रहत चरन के तरहर।।२०।।
लाघवता सौं पग रहे ऐसैं। परस न होत दूसरे जैसैं।।२१।।
सुलप अनूप चारु चल ग्रीवाँ। सहज सुधंग विलास की सीवाँ।।२२।।

क्योंकि यह नृत्य उनकी कल्पना से परे था। इस नृत्य का अवलोकन करके मूर्त्तिमती नृत्य-कला भी स्तम्भित हुई बलिहार जाने लगी।।१४।। उस सयम सखियाँ आनन्दपूर्वक बहुत से वाद्य यथा हुड़क, रबाब, गजक, किन्नरी, मुरज एवं मृदङ्ग आदि बजाती हुईं नये-नये प्रकार की गतियाँ एवं परण आदि उत्पन्न करने लगीं।।१५-१६।। इधर अतिशय सुकुमारी नवल-किशोरी नृत्य के आनन्द-रङ्ग में भीनी हुईं नृत्य की नवीन-नवीन विविध गतियाँ एवं उनके भाव-भेदों का प्रकाश करने लगीं।।१७।। अभी तक नृत्य की जो गतियाँ न कभी देखी गयी थीं, न सुनी ही गयी थीं, वह सब नये-नये प्रकार से उन्होंने प्रकट कीं।।१८।। इस प्रकार अलग लाग एवं हुरमई (नृत्य गति विशेष) लेते हुए श्री प्रिया ने अपनी सहज नृत्य-कला का प्रकाश किया।।१९।। नृत्य के समय उनके चरण-कमल जिस दल पर पहुँच कर सम (मान) की ताल देते थे, वह दल जहाँ का तहाँ चरणों के नीचे स्थिर हो रहता था।।२०।। नृत्य की लाघवता (अति शीघ्रता) के कारण उनके चरण अनेक दलों का स्पर्श करते हुए भी ऐसे लगते थे, जैसे उन्होंने किसी दूसरे दल का स्पर्श ही न किया हो।।२१।। अनुपम रीति से सुलप नृत्य करती हुई प्रिया की सुन्दर ग्रीवा अपूर्व भाँति से अपना चाञ्चल्य प्रकट करती थी; क्योंकि श्री प्रिया सहज सुधङ्ग-नृत्य के विलास की परावधि हैं।।२२।।

थेइ-थेइ कहत मोहनी बानी। सखियनि नैंन चले ह्वै पानी।।२३।।
मुसिकनि मधुर चित्त कौं हरही। चितवनि पासि दूसरी परही।।२४।।

दोहा

नित्त-सुधंग कला जिती, कही प्रगट परमाँन।
छुई न तिन में एक ही, उपजी आनहिं-आँन।।२५।।

चौपाई

पुनि केसर पर लसत रँगीली। झलकति वेसरि परम छबीली।।२६।।
कछुक अलाप मधुर धुनि कीनी। मति बुधि सबही की हरि लीनी।।२७।।
कबहुँ सुनी न राग धुनि ऐसी। कीनी अबहि कुँवरि सखि जैसी।।२८।।

जब वे अपने कल-कण्ठ की मधुर-वाणी से 'थेई-थेई' इन मोहन शब्दों का उच्चारण करतीं, तब प्रेम-विवश सखियों के नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती।।२३।। उस समय उनकी मधुर मुस्कान सबके चित्त का हरण कर रही थी, तिस पर रस-भरी चितवन एक अन्य ही प्रकार के बन्धन का कार्य कर रही थी।।२४।। सङ्गीत-शास्त्रों में सुधङ्ग आदि नृत्य की जितनी कलाओं का प्रामाणिक वर्णन प्राप्त है, सङ्गीत-मुकुटमणि प्रिया ने उन में से किसी का भी अपने नृत्य में प्रयोग तो क्या स्पर्श भी नहीं किया, वरन् अन्य ही अन्य सर्वोत्कृष्ट नृत्य-कलाओं का स्वरूप प्रकट किया।।२५।। तत्पश्चात् रँगीली प्रिया कमल-कर्णिका की केशर पर नृत्य के लिए प्रस्तुत हुईं। उस समय उनके नासिकाग्र पर छवि-पुञ्ज नासा-मौक्तिक की शोभा अपूर्व भाँति से झलक रही थी।।२६।। जब किशोरी ने अपनी अमृतमयी मधुर ध्वनि से राग का आलाप किया, तो उनके श्रुति-मधुर आलाप ने सम्पूर्ण परिकर की मानसिक चेतना का हरण कर लिया।।२७।। एक सखी अपनी दूसरी सहेली से कहने लगी—हे सखि! हमारी कुँवरि-किशोरी ने अभी-अभी जो राग-ध्वनि प्रकट की है, ऐसा मधुर सङ्गीत तो पहले कभी सुना ही नहीं गया।।२८।।

राग-रागिनी जूथ लजाए। खोजि रहे ते सुर नहिं पाए।।२९।।
भृंगी मृगी सुनत मृदु बानी। थक्यौ पवन अरु चलत न पानी।। ३०।।
स्रवत द्रुमनि तें रस की धारा। आनँद प्रेम कियौ विस्तारा।। ३१।।
राग पुंज बरसत बरसा सी। 'हित ध्रुव' गुन सीवाँ सुख-रासी।। ३२।।

प्रिया के नृत्य का प्रभाव दोहा

सुनत राग-अनुराग धुनि, मोहे नागर लाल।
सक्यौ न धीरज धरि सखी, मरम लग्यौ सर बाल।।३३।।

कुण्डलिया

लाल विवस सहचरि सबै, मोरी मृगी बिहंग।
गावति रस में नागरी, नव-नव तान तरंग।।

श्रीप्रिया के इस राग-गान ने राग-रागनियों के समस्त समुदायों को लज्जित कर दिया है। वे राग-रागनियाँ प्रिया-गान के सरगम सम्बन्धी स्वरों का अनुसन्धान करते हुए भी कोई निर्णय नहीं ले पा रही हैं कि उन्होंने किन स्वरों में अपना गान प्रकट किया।।२९।। श्रीप्रिया-मुख-निःसृत सुकोमल सरस वाणी-गान का श्रवण करके श्री वन की हरिणी एवं भ्रमरी तो थकित हो ही गयीं, वायु भी थक गया, उसकी गति अवरुद्ध हो गयी एवं श्री यमुना का जल-प्रवाह भी स्तम्भित हो गया।।३०।। आनन्द एवं प्रेम का कुछ ऐसा विस्तार हुआ कि वृन्दावन के वृक्षों से रस-धारा स्रवित होने लगी।।३१।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सङ्गीतादि गुणों की परावधि एवं सुखों की राशि श्रीप्रिया के गान से विलक्षण राग-रागनियों के समूह की वृष्टि सी होने लगी।।३२।। श्रीप्रिया द्वारा गाये गए रागों की अनुरागपूर्ण सुमधुर ध्वनि का श्रवण करके वेणुसम्राट रसिक लाल जी भी मोहित हो गये। उनके हृदय में नवल बाला के संगीत का मर्म-स्पर्शी बाण बिंध गया, जिससे हे सखि! वे धैर्य धारण करने में असमर्थ हो गए।।३३।। श्री लाल तो विवश हुए ही, सभी सहचरियाँ भी विवश हो गईं। यहाँ तक कि रसमयी नागरी प्रिया की नयी-नयी तान-तरङ्गों से श्री वन की मयूरी, मृगी एवं अन्य पक्षी-गण भी

नव-नव तान तरंग, सप्त सुर सौं मन हरही।
ऐसी को सखि आहि, सुनत जो धीरज धरही।।
नव-नव गुन की सींव सब, अति प्रवीन वर बाल।
नागर-कुल-मनि तैसेई, स्रोता सुदंर लाल।।३४।।

चौपाई

अति विह्वल ह्वै गये विहारी। भूषन पट सुधि देह बिसारी।।३५।।
रही सँभारि सखी हितकारी। नैननिं होत प्रेम बरसा री।।३६।।
प्रिया-प्रिया रव मुख ते निसरै। नाम रूप गुन कबहुँ न बिसरै।।३७।।
यह गति देखि लाल की प्यारी। नेह रँगमगी अति सुकुँवारी।।३८।।
महा प्रेम समुझत उर घूँमी। तेहि छिन आइ लाल पर झूँमी।।३९।।

रस-विवश हो गए। इन नयी-नयी तान-तरङ्गों के सप्त-स्वरों ने जड़-चेतन सभी का मन हरण कर लिया। हे सखि! तब ऐसा कौन है, जो धैर्य-धारण पूर्वक अपने आप को सँभाले रखे। श्री किशोरी जू नित्य-नूतन गुणमयी कलाओं की चरम-सीमा हैं। अपने परिकर की सहचरियों में अतिशय निपुण हैं और उनके अनुपम सङ्गीत के श्रोता परम सुन्दर श्री लाल जी भी सङ्गीत-निपुण समाज के मुकटमणि हैं।।३४।। तथापि वे भी श्री प्रिया मुख-निःसृत मधुर सङ्गीत का श्रवण करके अतिशय प्रेम-विह्वल हो गये। उन्हें वस्त्राभूषणों की तो बात ही क्या? अपने देह का भी अनुसन्धान न रहा।।३५।। उनके नेत्रों से प्रेम-जल की वृष्टि होने लगी। वे अपने आपको सँभाल सकने में असमर्थ हो गये। तब उन्हें हितकारी सखियों ने सँभाला।।३६।। प्रेम-विह्वल दशा में उनके मुख से 'प्रिया-प्रिया' के मधुर शब्द मात्र निःसृत हो रहे थे। उनके मन पर प्रिया के अविस्मरणीय नाम, रूप एवं गुण छाये हुये थे।।३७।। अस्तु, प्रेम के रङ्ग में सराबोर तन-मन सुकोमल प्रिया ने जब लाल की यह गति देखी एवं जब उन्होंने प्रियतम के इस महाप्रेम को अपने हृदय में अनुभव किया तो उनका हृदय उसी क्षण प्रीति से द्रवित हो गया और वे प्रियतम लाल पर तन्मयता पूर्वक झूम गयीं।।३८-३९।।

देखत बिबस भुजनि भरि लीनौ। चितै बदन नैंना भरि दीनौं।।४०।।
महाप्रेम सौं उर लपटानी। तिनकी प्रीति न जाति बखानि।। ४१।।
भरि अनुराग लाल उर लायौ। अधर सुधा जीवन रस प्यायौ।।४२।।
खुलि गये नैंन प्रान घट आये। प्रिया प्रेम झकझोरि जगाये।।४३।।
ललित लाल डोलत सँग लागे। प्रिया प्रेम नख-सिख लौं पागे।।४४।।

दोहा **नख-सिख लौं सखि पगि रहे, प्रीतम प्रेम सुरंग।**
तेही भाँति पुनि लाड़िली, रँगी लाल के रंग।।४५।।

उपसंहार कुण्डलिया

नागरि-नित्त-विलास जस, जे अवगाहत नित्त।
'हित ध्रुव' अद्‌भुत प्रेम सौं, सरस रहै दिन चित्त।।

देखते ही देखते उन्होंने प्रेम-विवश प्रियतम को अपनी ललित भुजाओं में समेट लिया। लाल का मुखावलोकन करके उनके नेत्र सजल हो गए।।४०।। वे महानतम प्रेम की उमङ्ग के साथ प्रियतम के हृदय से लिपट गयीं। उनकी इस विलक्षण प्रेमदशा का वर्णन असम्भव है।।४१।। उन्होंने अनुराग-भरित भाव से श्री लाल को हृदय से लगा कर, (उनका जीवन-पाथेयरस) अपनी अधर-सुधा का पान कराया।।४२।। प्रिया के अधरामृत-रस का पान करते ही श्री लाल के नेत्र खुल गये, प्रेम-मूर्च्छा भङ्ग हो गयी। प्रिया के प्रेम ने रस-विवश प्रियतम को अपनी 'झकझोरन' से जागृत कर दिया।।४३।। अब तो ललित-लाल प्रिया के प्रेम में नख से शिख तक पगे हुए उनके साथ लगे डोलते फिरते हैं।।४४।। हे सखि ! जिस प्रकार प्रियतम, प्रेम के सुष्ठु रङ्ग में नख से शिख तक पगे हुए हैं, वैसे ही श्री लाड़िली जी भी श्री लाल के रङ्ग में रँगी रहती हैं।।४५।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई नागरी श्री प्रिया के नृत्य-विलास यश का नित्य अवगाहन करेगा अर्थात् इसका नित्य भजन, चिन्तन,

सरस रहै दिन चित्त, और कछु सुन्यौ न भावै।
बिनु विहार-रस-प्रेम, और उर में नहिं आवै।।
अद्‌भुत सुख की सीव, सकल अंगनि गुन आगरि।
प्रीतम मन हरि लेत सहज रस में नव नागरि।।४६।।

दोहा

जुगल-प्रेम रस-सार सर, रसिक-हंस अवगाहि।
जगत काक-बक बिमुख जे, पलकहुँ पहुँचत नाँहि।।४७।।

पाठादि करेगा, उसका चित्त भली प्रकार प्रेम से सरस रहेगा। चित्त की सरसता के साथ उसे रस की अनन्यता भी प्राप्त होगी। अर्थात् प्रिया के नृत्य-विलास के अतिरिक्त उसे अन्य कुछ सुनने में अच्छा नहीं लगेगा एवं वृन्दावन के प्रेममय विहार-रस के बिना उसके हृदय में अन्य कुछ प्रवेश ही नहीं पायेगा। नव नागरी-प्रिया विलक्षण सुखों की सीमा हैं एवं ललित-गुण कलाओं की समुद्र रूपा हैं। वे अपने सहज रस के द्वारा प्रियतम के मन को हरण कर लेने में सदा समर्थ हैं।।४६।। अन्त में श्री ध्रुवदास जी कहते हैं रसिक युगल श्री लाड़िली-लाल के सर्वोपरि प्रेम-रस सार के सरोवर में केवल हंस रूपी रसिक ही अवगाहन कर सकने में समर्थ हैं। शेष जगत के विषय-रस-रञ्जित कौए एवं बगुलों की भाँति जीवन व्यतीत करने वाले भगवद्-विमुख अधम जीव एक पलक के लिए भी इस-रस सरोवर के समीप नहीं पहुँच पाते।।४७।।

●

४१
मान-लीला

मान का हेतु दोहा

रची कुंज मनिमय मुकुर, झलकत परम रसाल।
राजत हैं दोउ रंग में, ह्वै गयौ बिच इक ख्याल।।१।।
देखि प्रिया प्रतिबिंब छबि, चकित ह्वै रही लुभाइ।
तिहि छिन बैठी लाड़िली, मान-कुंज में जाइ।।२।।

श्री लाल जी की दीन-दशा दोहा

रहे सोच बिस्माइ तब, तन की गति भई आँन।
लेत स्वाँस दीरघ बचन, कहत कहाँ प्रिया-प्राँन।।३।।

किसी समय सखियों ने श्रीप्रिया-लाल के लाड़-प्यार के लिए एक मणिमय कुञ्ज की रचना की, जो विविध दर्पणों से सुसज्जित थी। कुञ्ज की शोभा परम रसमयी झलक रही थी। जब सखियों ने श्री लाड़िली-लाल को कुञ्ज के मध्य में मणिमय सिंहासन पर विराजमान किया तो आनन्द-रङ्ग में अपनी छवि देखते-देखते एक विनोद-पूर्ण भ्रान्ति में जा फँसे।।१।। हुआ यह कि जब लाड़िली प्रिया ने अपने प्रतिबिंब की अनुपम शोभा का अवलोकन किया, तो वे उस पर विमुग्ध हो गयीं और उस रूप-माधुरी को देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं [उन्हें यह भ्रम हो गया कि यह कोई अन्य सुन्दरी है, जिससे श्री लाल जी संगुप्ततया प्रेम रखते हैं।] तब वे उसी क्षण प्रियतम का सङ्ग त्याग कर मान-कुञ्ज में जा बैठीं।।२।।

श्रीलाड़िली के इस आकस्मिक एवं अकारण सम्भ्रम मान का अवलोकन करके प्रियतम का मन चिन्ता एवं विस्मय से भर गया। उनके शरीर की स्थिति खेद-खिन्नता पूर्ण हो गयी। वे दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए बारम्बार दीन वचनों में कहने लगे—"हे प्राण-प्रिये! तुम कहाँ हो?"।।३।।

कौन चूक मोतें परी, गई कहाँ दुख पाइ।
हे सखि मैं समुझी नहीं, इतनी सुधि लै आइ।।४।।
बार-बार सोचत यहै, मैं तो कह्यौ कछु नाँहिं।
मन दै नीके समुझि तू, कहा आई, जिय माँहिं।।५।।
कहा कहौं अब प्रान ये, नैंननिं में रहे आइ।
जो गति देखी जाति है, तैसी जाइ सुनाइ।।६।।

सोरठा

को समुझै यह बात, कहा कहौं हिय-चटपटी।
प्रान चले ये जात, रहि न सकत हैं प्रिया बिनु।।७।।

दोहा

सुनत बचन पिय के सखी, भरि आये दृग नीर।
रहि न सकी व्याकुल भई, चली प्रिया के तीर।।८।।

मुझसे कौन सा ऐसा अपराध बन गया, जिससे दुःखी होकर तुम जाने कहाँ चली गयीं।" और फिर तत्काल ही अपनी सखियों से कहने लगे–"हे सखि ! मेरे किस अपराध से दुःखी होकर प्रिया यहाँ से चली गयी, तुम जाकर इस बात का पता लगा कर आओ।।४।। मैं बारम्बार स्मरण करता हूँ कि मैंने तो ऐसा कुछ कहा ही नहीं है, जिससे उनके मन को कोई खेद पहुँचे। हे सखि ! तू भली प्रकार से समझ-बूझ कर आना कि उनके मन में मान जैसी क्या बात आ गयी है ?।।५।। मैं अपनी मनः स्थिति का क्या वर्णन करुँ, अब तो मेरे प्राण उनके बिना नेत्रों से आ लगे हैं, अर्थात् उनके ही ध्यान में विसर्जित हो जाना चाहते हैं। अधिक क्या कहूँ, तू मेरी जो दशा देख रही है, जाकर वह सब उनको सुनाना।।६।। हाय ! मेरे हृदय की प्रेमातुरता को समझने वाला कौन है ? श्री प्रिया के बिना यह प्राण इस शरीर में रह नहीं पायेंगे, निश्चित ही इस देह का परित्याग कर देंगे"।।७।। अस्तु, प्रियतम के करुणापूर्ण दीन वचनों का श्रवण करके सखी के नेत्र जल-पूरित हो गए। वह व्याकुल हो कर श्रीप्रिया की ओर चल पड़ी।।८।।

आवत देखी सखी जब, मुरि बैठी सुकुँवारि।
भौंह रुखाई मौन धरि, नीचे रही निहारि।।९।।
मान-कुंज अद्भुत बनी, मानिनि-मान अनूप।
रस में कछु रिस नैंन भरि, बाढ्यौ सतगुन रूप।।१०।।

सखी वचन दोहा

चतुर सखी परि चरन में, रुचि लै करत है बात।
देखैं पिय की गति प्रिया, हीयौ दरक्यौ जात।।११।।
लुठत धरनि अँसुवनि भरनि, बाढ़ी नदी अपार।
गहि रहे गुन इक नेह कौ, राधा नाम अधार।।१२।।
मुकट कहूँ वंसी कहूँ, भूषन कहुँ पट-पीत।
मैंन-सैंन लिये घेरि कै, तातें भये अति भीत।।१३।।

मान-कुञ्ज में विराजमान सुकुमारी प्रिया ने जब सखी को आते देखा, तब अपनी भृकुटियों को रूखी सी बनाकर मौन धारण करके सिर नीचा किये मुड़कर अपने चरण-नखों की ओर निहारने लगीं। जिस मान-कुञ्ज में लाड़िली बैठी हैं।।९।। वह मान कुञ्ज अपने आप में अद्भुत है और उस में विराजित मानिनी प्रिया का मान भी अनुपम है। मानिनी के रस भरे नयन आज रोष-संवलित होकर उसके रूप को शत-शत गुणा अधिक सौन्दर्यमय बना रहे हैं।।१०।। प्रियतम का सन्देश लेकर आने वाली चतुरा सखी प्रिया के समीप पहुँचते ही उनके श्रीचरणों में दैन्य-भाव पूर्ण निपतित होकर प्रिया की तात्कालिक रुचि को भाँप कर सावधानी के साथ विनम्र वार्त्ता करने लगी। वह कहने लगी—"हे प्रिये ! आपके वियोग में प्रियतम की गति देखकर तो मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।।११।। वे पृथ्वी पर विलुण्ठित होते हैं, उनके अश्रु-प्रवाह की अपार सरिता वृद्धि को प्राप्त हो रही है। वे केवल एक प्रेम की ही डोर पकड़े हुए हैं। उनके जीवन का आधार मात्र 'राधा' नाम ही शेष है।।१२।। उनका तन एवं मन अस्त-व्यस्त है, कहीं मुकुट, कहीं वंशी, कहीं आभूषण एवं कहीं उनके पीत-परिधान बिखरे पड़े हैं। ऐसा लगता है, मानो

सेज कुंज भूषन बसन, अरु फूलनि के हार।
देखि सबै अनखात हैं, पावक कैसी झार।।१४।।
चंदन चंद समीर बन, कंज कपूर समेत।
सब दिन तौ यह सुखद हे, तुम बिनु अब दुख देत।।१५।।
नेह-रीति समुझत सबै, तुम तैं कौन प्रवीन।
जल तें न्यारौ होइ जौ, कैसै जीवै मीन।।१६।।
तुम मग जोवत छिनहि-छिन, और न कछू सुहाइ।
पत्र पवन खरकत जबहि, उठि धावत अकुलाइ।।१७।।
जहाँ लगि तुम मग लाड़िली, राखे नैंन बिछाइ।
ऐसौ नेही नवल पिय, लीजै कंठ लगाइ।।१८।।

मदन की सेना ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया है, जिससे वे अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं।।१३।। हे प्रिये ! इस समय प्रियतम शय्या, कुञ्ज-भवन, भूषण, वसन एवं पुष्प माला आदि सुख सामग्रियों को देखकर ऐसे चिढ़ने से लगते हैं, जैसे अग्नि की ज्वाला देख रहें हों।।१४।। सखी कहती है कि चन्दन, चन्द्रमा, सुगन्धित पवन, हरे-भरे वन उपवन, कमल-पुष्प, कपूर आदि सभी वस्तुएँ सदा तो उनको सुखद प्रतीत होती थीं, किन्तु आपके बिना अब ये सभी वस्तुएँ दुःखदायी हो गयी हैं।।१५।। प्रेम की परिपाटी को जितनी अच्छी प्रकार से आप जानती-समझती हैं, आप से अधिक कौन जान-समझ सकता है। आप ही बताइए कि जल से विलग होकर भला मछली कैसे जीवित रह सकती है ?।।१६।। हे प्रिये ! प्रेम-विह्वल प्रियतम प्रतिक्षण आप का ही मार्ग जोह रहे हैं, उन्हें और कुछ भी नहीं सुहाता। यदि पवन-प्रवाह से श्रीवन का कोई पत्ता भी खरक उठता है, तो वह आकुल हो आपके स्वागत के लिए उठ दौड़ते हैं।।१७।।हे लाड़िली, आपके आगमन के जितने भी मार्ग हैं, सभी में प्रियतम ने अपने नेत्र बिछा रखे हैं। ऐसे प्रेमी नवल-प्रियतम को तो आप अपने कण्ठ से लगाये रखें, यही उचित है।।१८।।

राधा-राधा रट लगी, धरि धारा इक ध्यान।
तदाकार तुव-रूप भये, अब जिनि करहु निदान।।१९।।

अरिल्ल

कहत हिये की बात सुनौ जौ कान दै।
बढ्यौ सरस अनुराग प्रान-प्रिय दान दै।।
इती समुझि कै बात विलंब न कीजियै।
(पुनि हाँ) हँसि कै प्यारौ लाल भुजनि भरि लीजियै।।२०।।

दोहा

जब जान्यौ कछु मन भयौ, चतुर चित्त की पाइ।
ल्यावन प्यारे लाल कौं, तेहि छिन आई धाइ।।२१।।
सुनहुँ लाल नव बाल बलि, बैठी अति हठ ठाँन।
मौंन धरैं नैंना भरैं, दै कपोल तर पाँन।।२२।।

हे किशोरी जू! प्रियतम एक ध्यान से तैलधारावत् आप का 'राधा-राधा' नाम रट रहे हैं, वे आपके रूप-चिन्तन में तन्मय हो रहे हैं। आप अब उन्हें निराश मत कीजिये।।१९।। सखी ने फिर कहा, "हे प्राण-प्रिये! यदि आप मेरे हृदय की बात को ध्यानपूर्वक कान देकर सुनें तो मेरा निवेदन है कि प्रियतम के बढ़े हुए सरस अनुराग को देखकर आप अपने प्रियतम को प्राणों का दान करें; क्योंकि इस समय वे प्राण-कण्ठगत् स्थिति को प्राप्त हैं। मेरी प्रार्थना को समझ कर आप अब विलम्ब न करें और प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण-प्रिय को अपनी ललित भुजाओं में भर लें,।।२०।। प्रियतम का सन्देश लाने वाली कुशल सखी ने श्रीप्रिया के चित्त की प्रेम-द्रवित स्थिति को भाँपकर जब यह जाना कि उनका मन कुछ-कुछ प्रियतम के अनुकूल हो गया है तो वह उसी क्षण श्रीलाल जी को प्रिया के समीप ले आने के लिए भागी-भागी वहाँ पहुँची।।२१।। वह कहने लगी, "हे लाल जी, सुनो! तुम्हारी नव-बाला प्रिया, मैं उसकी बलिहारी जाऊँ; आज तो बहुत बड़ा हठ ठाने बैठी है। वह

पाइनि परि तृन दंत धरि, कीने जतन अनेक।
लाल तिहारी लाड़िली, छाँड़ति नहिं हठ टेक।।२३।।
बहुत जतन बिनती करी, बातें अधिक बनाइ।
चलियै अब पिय प्रिया कौं, लीजै बेगि मनाइ।।२४।।
मन तौ कछु कोमल भयौ, बातें लगीं सुहान।
मान छूटि है जातही, यह पायौ उनमान।।२५।।
आइ लाल ठाढ़े भये, आगे दोउ कर जोरि।
सुनि-सुनि प्यारे बचन मृदु, रही कुँवरि मुख मोरि।।२६।।
सुहृद अली अति हेत सौं, बातें कहत निहोरि।
रसिक लाल बलि प्रेम सौं, बँधे तिहारी डोरि।।२७।।

मौन धारण किये हुए अपने कपोल के नीचे हाथ दिये शोक मुद्रा में, नेत्र डबडबाये हुए अडिग-भाव से स्थित है।।२२।। मैंने उसके समीप पहुँच कर अपने दाँतों में तृण धारण करके उसके चरणों में प्रणाम किया और उसे प्रसन्न करने के अनेकों यत्न किये परन्तु आपकी उस लाड़िली को मनाने में सफल न हो सकी। वह अपने हठ के व्रत को मानो छोड़ना ही नहीं चाहती।।२३।। मैंने विविध चाटु-वचन रचना पूर्वक उन्हें मनाने के अनेकों यत्न किये, बहु-बहु प्रार्थनाएँ की, किन्तु मैं असफल प्राय ही रही। अब तो आप शीघ्र चलकर अपनी प्रिया को मनाने का प्रयास करें।।२४।। मेरा अनुमान है, आपके जाते ही उनका मान छूट जायेगा, क्योंकि उनका मन कुछ-कुछ कोमल तो हो गया है। उन्हें आपके सम्बन्ध की बातें कुछ सुहाने लगी हैं"।।२५।। सखी की बात श्रवण करके प्रियतम श्री लाल जी श्रीप्रिया जी के आगे पहुँच कर कर-बद्ध खड़े हो गये और मृदु-मृदु वचनों में निवेदन करने लगे। प्रियतम के उन मृदु वचनों को सुनकर भी मानवती कुँवरि किशोरी ने प्रियतम की ओर से अपना मुख मोड़ लिया अर्थात् प्रियतम की ओर पीठ कर दी।।२६।। तब सुहृद अलि हित सजनी ने अतिशय प्रीतिपूर्वक अनुनय-विनय के साथ

श्री प्रिया जी के वचन दोहा

कैतव स्याम सनेह में, समुझावत सखि तोहि।
अंतर सित वाहिर सुरंग, हिय के नैननिं जोहि।।२८।।
जाके उर कछु प्रीति है, कहत न अधिक बनाइ।
जैसे लहरि समुद्र की, फिरि-फिरि तहीं समाइ।।२९।।
रति-लंपट रस हेत ही, अति अधीन ह्वै जाइ।
मधुर बचन सब कपट के, कहत बनाइ-बनाइ।।३०।।
अब तौ कीनौ नेम यह, चलौं न तिनकी गैंन।
कैसौ हँसिबौ बोलिबौ, सनमुख करौं न नैंन।।३१।।

प्रिया से कहा—"हे स्वामिनी ! मैं आपकी बलिहारी जाऊँ, आपके रसिक प्रियतम श्रीलाल जी आप की ही प्रेम-डोरी से सर्वथा आबद्ध हैं, [अतएव प्रेम और कृपा के पात्र हैं। इनके अनन्य-प्रेमी स्वरूप में भ्रम के लिये कोई स्थान ही नहीं है]" ।।२७।।

सुहृद अलि की बात सुनकर श्री प्रिया जी ने कहा, "अरी सखि ! ये श्यामसुन्दर, जिनकी तू मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रही हैं प्रेम के सम्बन्ध में बड़े कपटी हैं। ये वचन-रचना में बड़े नागर हैं। [दूसरों को समझा कर बहला देना बहुत जानते हैं।] मैं तुम्हें यथार्थ बात बताती हूँ, जिसे मैंने अपने हृदय के नेत्रों से देखा है, वह यह कि वस्तुतः श्याम सुन्दर बाहर से ही रङ्ग-रँगीले हैं, अनुनय-विनय करना जानते हैं किन्तु भीतर से ये एकदम कोरे अथवा श्वेत हैं अर्थात् प्रेमहीन हैं।।२८।। जिसके हृदय में कुछ प्रीति होती है, वह गढ़-छोल करके बनावटी बातें नहीं करता, जैसे समुद्र से उठी हुई लहरें पुनः पुनः उछल कर अन्ततः समुद्र में ही लीन हो जाती हैं अर्थात् प्रेम में प्रदर्शन नहीं होता।।२९।। ये रतिलम्पट अपना रस-सुख प्राप्त करने के लिए ही केवल वचनों में अत्यन्त अधीन हुए से दिखते हैं। ये जो सवाँर-सँवार कर मधुर-मधुर वचनावली प्रस्तुत कर रहे हैं, वह सब कपट की बातें हैं।।३०।। हे सखि ! तू मेरी बात कान खोल कर सुन, अब तो मैंने यह व्रत ले लिया है कि मैं

श्रीलाल जी के वचन दोहा

तुम प्रवीन सब अंग में, ऐसी जिय न विचारि।
तासौं ऐसी चाहिये, तन-मन जो रह्यौ हारि।।३२।।
कैसैं कै सहि जात है, नैंकु रुखाई भौंह।
यातैं नाहिंन और दुख, प्यारी तेरी सौंह।।३३।।
जौ जानत अपराध कछु, दीजै दंड विचारि।
भुजन बाँधि रद अधर धरि, नख-छद करि सुकुँवारि।।३४।।
तुम जीवन भूषन प्रिये, तुम ही हौ निज प्राँन।
और करहु जो जो रुचै, बिच जिनि आनौ माँन।।३५।।

तो न कभी इनका अनुगमन करूँगी ना ही सहगमन। हँसना-बोलना तो दूर की बात है, मैं तो कभी इन से नयन भी नहीं मिलाऊँगी"।।३१।।

मानवती प्रिया के मान-गर्वित वचनों को श्रवण करके चाटु वचनावली निपुण प्रियतम ने कहा, "हे प्रिये ! आप प्रेम-प्रीति के सभी अङ्गों में सदा निपुण हैं, अतएव आपको यह मान शोभा नहीं देता। उस व्यक्ति के लिए इस प्रकार के मान का क्या औचित्य है जो आपके श्रीचरणों में अपना तन-मन-प्राण एवं सर्वस्व अर्पित कर चुका हो।।३२।। आप ही बताइये कि आप की किञ्चित् भी उपरामता एवं उपेक्षा मुझ से भला कैसे सही जा सकती है। हे प्रिये ! मैं सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि मेरे लिए आपके इस मान से बड़ा और कौन सा दुःख हो सकता है ?।।३३।। यदि आप ऐसा मानती हैं कि मुझसे कुछ अपराध बन गया है तो मुझे उचित दण्ड दीजिये। मैं स्वयं दण्ड स्वीकार करता हूँ कि आप मुझे भुजाओं के बन्धन में बाँधे, दन्तरूपी शस्त्रों से मेरे कोमल अधरों को खण्डित करें और नख-रूपी शस्त्रों से मेरे अङ्गों को क्षत-युक्त बनावें।।३४।। हे सुकुमारी प्रिये ! आप मेरी जीवन हैं, मेरे जीवन की भूषण रूपी शोभा हैं। किमअधिकं आप मेरी प्राण सर्वस्व हैं, आपको जो रुचिकर हो वह सब कीजिये, किन्तु अपने हृदय में मान को स्थान मत दीजिए।।३५।।

सोरठा

मेरैं है गति एक, तुम पद-पंकज की प्रिये।
अपने हठ की टेक, छाँड़ि कृपा करि लाड़िली।।३६।।

मान भञ्जन एवं उपसंहार दोहा

मोहन के मोहन वचन, सुनि मोहनि मुसिकाइ।
प्यारौ प्यारी प्यार सौं, ढरकि लियौ उर लाइ।।३७।।
जब देखे खेलत हँसत, रस में दोउ सुकुँवार।
'हित ध्रुव' तेहि छिन सखी सब, करतिं प्रान बलिहार।।३८।।

हे लाड़िली प्रिये ! मेरी तो एकमात्र गति केवल आपके श्री चरण-कमल हैं। अतएव आप कृपा करके अपने हठ का आग्रह त्याग दीजिये।।३६।।श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम मोहन की मधुमय-विनम्र वचनावली का श्रवण करके मोहनी प्रिया मुस्कुरा उठीं एवँ उन्होंने मान का त्याग कर, उल्लसित होकर प्राण-प्रियतम को हृदय से लगा लिया।।३७।। जब सखियों ने देखा कि रसमय युगल सुकुमार श्रीलाड़िली-लाल हँसते-खेलते प्रसन्नमुद्रा में हैं, तब सब सखियाँ उन पर अपने प्राणों को बलिहार करने लगीं।।३८।।

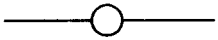

४२
दान-लीला

प्रस्तावना—

दान-केलि का नित्य-विहार में कोई विशेष स्थान नहीं है। दान की लीला विशुद्ध रूप से व्रज की लीला है। दूध-दही बेचने के लिए मथुरा नगर की ओर जाने वाली व्रज-बालाओं के साथ नन्द-नन्दन नवल किशोर श्री कृष्ण द्वारा छेड़छाड़ अथवा रोक-टोक करना तथा दान के ब्याज से रसवती नायिकाओं के साथ रसिक नायक श्री कृष्ण का प्रणय-रस पूर्ण वार्त्तालाप, स्पर्श, मिलन एवं दर्शन का सुख ही दान-लीला का मुख्य प्रयोजन है। व्रजभाषा में दान का अर्थ 'कर' किंवा राजस्व प्राप्त करना है।

अस्तु, नित्य-विहार उपासना में न दूध-दही बेचने वाली गोपियाँ हैं और न ही दान माँगने वाले नंद कुमार श्री कृष्ण। नित्य-विहार सिद्धान्त में एक प्रेम ही चार रूपों में विभाजित होकर नित्य-मिलन की रसलीला सम्पन्न करता है, अतएव प्रिया-प्रियतम एवं सहचरियों में भेद न होने के कारण दान-लीला का कोई स्थान नहीं बन पाता।

श्री ध्रुवदास जी ने अपने ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में नित्य-विहार में 'दान-लीला' का आरोपण करके यह प्रकट करना चाहा है कि नायक रसिक शेखर श्री लालजी को रस-भोग का अधिकार रसाधिष्ठात्री नवल-किशोरी श्री राधा के सम्मुख याचक बनकर ही प्राप्त होता है, दानी बन कर नहीं।

सखियों का मनोरथ दोहा

एक समै उर सखिन कैं, बाढ़्यौ आनँद-मोद।
देखैं लाड़िली-लाल की, लीला दान-विनोद।।१।।

प्रियतम द्वारा दान-लीला-अभिनय दोहा

वंसीवट तट हंसजा, सघन कुंज की खोर।
दानी ह्वै ठाढ़े भये, नागर नवल-किसोर।।२।।
भाँति रँगीली सखिनु जुत, नवल छबीली बाल।
आइ गई तेहि छिन तहाँ, मत्त गयंदनि चाल।।३।।
सरकि लाल ठाढ़े भये, ललिता लई बुलाइ।
दान हमारौ लगत कछु, कहौ प्रिया सौं जाइ।।४।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि एक बार नित्य-विहार की सखियों के हृदय में एक आनन्दमय मनोरथ उदित हुआ कि हम श्री लाड़िली-लाल की दान-लीला रूपी हास्य-विनोद का सुखमय दर्शन करें।।१।। सखियों की सुखाभिलाषा-पूर्त्ति के लिए प्रियतम ने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया और वे सूर्य-नन्दिनी श्री यमुना के तट पर वंशीवट-क्षेत्र की सघन वीथी में दान (कर) माँगने के लिए "दानी" बन कर जा खड़े हुए।।२।। उसी क्षण अपनी रङ्ग-रँगीली सखियों के साथ छबीली प्रिया मदमत्त गयन्दिनी (करिणी) जैसी गन्थर गति से पाद-विन्यास करती हुईं वहाँ जा उपस्थित हुईं।।३।। स्वामिनी नवल-किशोरी का दर्शन करके श्री लाल जी सङ्कुचित हो गये और मार्ग से थोड़ा दूर सरक कर खड़े हो गये। उन्होंने सङ्केत द्वारा ललिता जी को समीप बुलाकर विनम्र शब्दों में निवेदन किया कि, "हे ललिते ! तुम जाकर प्रिया जी से कहो कि यहाँ आने-जाने वालों पर हमारा कुछ दान (कर) लेने का नियम है"।।४।।

श्री ललिता द्वारा निवेदन की उपेक्षा दोहा

ललिता ललित प्रवीन अति, बीचहि उत्तर दीन।
नई रीति कब तें गही, यह सिखवनि किन दीन।।५।।
कहौ दान कबही भयौ, कहत न आवत लाज।
यह बन राधा कुँवरि कौ, इक-छत राजत-राज।।६।।
उलटी कैसैं होति है, छाँड़हु अधिक सयान।
ठकुराइत जिनकी तहाँ, तिन पै माँगत दान।।७।।
दान-दान तुम कहत हौ, सुन्यौ न कबहूँ कान।
इहि ठाँ बिन कुंजेश्वरी, नहिं काहू की आन।।८।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि ललिता सखी अतिशय मधुर स्वभाव वाली चतुरा सखी हैं। उन्होंने श्री प्रिया जी के समीप जाकर दान माँगने की बात कहने से पूर्व ही श्री लाल जी को उत्तर दिया कि—हे प्यारे ! आपने यह एक नयी अटपटी रीति कबसे ग्रहण कर रखी है और किसने आपको दान माँगने की यह उल्टी शिक्षा दे डाली।।५।। यह तो बताइये कि इस नित्य वृन्दावन में दान का विधान पहले कब हुआ ? आपको यह कहते लज्जा नहीं आती। ध्यान रखिये ! यह श्री वृन्दावन राधा-किशोरी का निजु-वन है, यहाँ कुँवरि किशोरी का ही एकछत्र साम्राज्य है, तब आपके द्वारा दान माँगने का क्या तुक है ?।।६।। आपके द्वारा दान माँगा जाना इस साम्राज्य के विधि-विधानों के विपरीत कार्य है, अतएव यह कैसे सम्भव है ? आप अपनी इस अति चातुरी का प्रयोग यहाँ न करें। आश्चर्य है कि जिनका यहाँ साम्राज्य है, आप उन्हीं से दान माँगते हैं।।७।। हे लाल जी ! आप बारम्बार 'दान-दान' कहते हैं, हमने इस साम्राज्य में आपके इस दान शब्द को तो पहले कभी सुना भी नहीं है। इस वृन्दावन-धाम में निकुञ्जेश्वरी श्री राधा के अतिरिक्त अन्य किसी का कोई स्वामित्त्व ही नहीं हैं।।८।।

श्रीलाल जी का पुनः दान सम्बन्धी आग्रह दोहा

बहुत मोल की सौंज लै, इहि मग आवत जात।
यह तौ हम साँची कहीं, तुम काहे अनखात।।९।।
ललिता तुम मानत नही, जे हम कहत जु बैंन।
नवल किसोरी रूप के, दिनही दानी नैंन।।१०।।
इक-इक मुक्ता माँग के, झलकत विमल अमोल।
नासा पर वेसरि लसै, कुंडल तरल कपोल।।११।।
हीरा हार हमेल वर, मुक्तनि माल रसाल।
अंगद पहुँची मुद्रिका, कटि-तट किंकिनि-जाल।।१२।।
जेहरि पायल अति बनी, बिछिया अनवट नीक।
झलकि रही नख चंद्रिका, ह्वै गये बिधु-सत फीक।।१३।।

ललिता जी की बात सुनकर श्रीलाल जी ने कहा, "हे सखि ! आप लोग बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ लिए हुए इस मार्ग से सदा आती-जाती हैं अतएव मैंने दान लेने की जो बात कही, वह सत्य ही तो है। आप कुपित क्यों होती हैं।।९।। हे ललिते ! मैंने जो बात कही है आप उसे भले ही स्वीकार न करें, किन्तु आपकी नवल-किशोरी की रूप-सम्पत्ति के, मेरे नेत्र सदैव दानी अर्थात् राजस्व लेने वाले हैं।।१०।। किशोरी की सीमन्त पर शोभित मुक्ता-माल का प्रत्येक उज्ज्वल मोती अनमोल है। उनकी नासिका पर बहुमूल्य नासा-मौक्तिक एवं कपोलों पर तरल कुण्डलों का प्रतिबिम्ब झलमला रहा है।।११।। मणियों की हारावली, मोतियों की मालाएँ, स्वर्ण निर्मित्त हार-हमेल, बाहुओं पर शोभित बाजूबन्द, कलाइयों की पहुँचियाँ, कराङ्गुलियों में सुसज्जित मुद्रिकाएँ, कटि प्रान्त में शोभित मणिमय किङ्किणी-जाल शोभित हैं।।१२।। इसी प्रकार चरणों में धारण की हुई जेहरि, पायल, बिछियाँ और सुहावने अनवट-ये सभी तो अधिकाधिक मूल्यवान हैं एवं चरणों के प्रकाशमान् नखमणि जिनके समक्ष शत-शत चन्द्रमा भी कान्तिहीन से लगते हैं।।१३।।

नैंन-सिखा नासा स्रवन, लै आये दिन दान।
अब तू बिच ह्वै द्याइ सखि, राखि हमारौ मान।।१४।।

ललिता द्वारा उचित परामर्श दोहा

तब ललिता हँसि कै कह्यौ, सुनहु रसिक-मनि जाँन।
यह रस तौ तब पाइयै, जो हारौ निज प्राँन।।१५।।
चरन गहौ विनती करौ, आगैं दोउ कर जोरि।
अति भोरी है लाड़िली, लेहु तेहि मन ढोरि।।१६।।

श्रीलाल जी द्वारा सखी के परामर्श की स्वीकृति दोहा

पिय प्रवीन रस प्रेम में, कह्यौ सहचरि कौ कीन।
दान-मान बल छाँड़ि कै, सीस पगनि तर दीन।।१७।।

हे सखि ! समय-समय पर पहले भी मेरे नेत्र, एवं नेत्रों से शिक्षा प्राप्त करके मेरी नासिका-श्रवणादि इन्द्रियाँ श्री नवल किशोरी की रूप-सम्पत्ति का सदैव राजस्व लेते ही आए हैं। अतएव, आप मध्यस्थ होकर अब भी राजस्व (कर) दिला कर हमारा मान-सम्मान रखिए, उपेक्षा मत कीजिए।।१४।।

श्री लाल जी की बात सुनकर श्री ललिता जी ने हँसते हुए कहा-हे प्राण प्यारे ! आप तो रसिक-मणि ही नहीं, रस के मर्मज्ञ हैं, यह रस तो तभी प्राप्त होता है, जब प्रेमी, प्रेमास्पद के लिए प्राण सहित अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है।।१५।। अतएव दान का दुराग्रह छोड़कर, कर-बद्ध हुए प्रिया के श्रीचरणों को पकड़िए और उनसे विनती कीजिए। आपको ज्ञात है कि लाड़िली प्रिया अत्यन्त भोली हैं, इसलिए हे लाल जी ! आप दैन्य और विनय के द्वारा सहज ही उनके मृदुल मन को अपने अनुकूल बना लीजिए।।१६।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम श्रीलाल जी प्रेम-रस के कुशल ज्ञाता हैं। उन्होंने तत्काल ही श्रीललिता सखी की बात मान ली एवं दान-मान का प्रयोग किंवा अभिनय त्याग कर अपना मस्तक श्री प्रिया के चरण-तल पर रख दिया।।१७।।

लये अंक भरि लाड़िली, मृदु भुज ग्रीवा मेलि।
फूले कुंज निकुंज में, करत रँगीली-केलि।।१८।।
विविध भाँति रति-दान दै, पोषे पिय के प्रान।
अति उदार मुसिकाइ कै, देति अधर-रस पान।।१९।।
जुरि-मुरि कै उर सौं घुरी, सोभित सहज सिंगार।
मानौं पिय पहिरयौ हियैं, रति-विलास कौ हार।।२०।।
जो रस उपजत दुहुँनि में, प्रेम रंग सुकुँवार।
प्रेम रँगी निजु सहचरी, निरखतिं प्रेम-विहार।।२१।।

फलस्तुति दोहा

नित उठि जो गावै सुनै, यह लीला रस-रूप।
'हित ध्रुव' ताके हिय-कमल, उपजै प्रेम अनूप।।२२।।

प्रियतम के समर्पण से प्रेम-द्रवित हुईं श्री लाड़िली ने उनको अपनी गोद में भर लिया। उन्होंने प्रियतम के स्कन्धों पर अपनी ललित भुजा डाल दी और तब परम प्रसन्न हुए युगल वृन्दावन की ऐकान्तिक कुञ्जों में रङ्ग भरी क्रीड़ा करने लगे।।१८।। परम उदार प्रिया ने विविध प्रकार से रति-दान पूर्वक प्रियतम के प्राणों का पोषण किया एवं मुस्कुराते हुए उन्हें पुनः-पुनः अधर-रस-दान दिया।।१९।। जब सहज शृङ्गार शोभित प्रिया, प्रियतम के साथ गलबहियाँ दिये हुए हृदय से हृदय मिला कर ललित भाव से जुड़-मुड़ कर एकमेक सी मुद्रा में विराजमान हुईं तो ऐसा लगा मानो आज प्रियतम ने रति-विलास रूपी हार को हृदय में धारण कर रखा हो।।२०।। इस प्रकार प्रेम-रङ्ग में रँगे परम सुकुमार युगल रसिक में जो अभूत पूर्व रस प्रकट होता है, प्रेम-रङ्ग से रँगी उनकी निज सहचरियाँ सदैव उस प्रेममय विहार का दर्शन करती रहती हैं।।२१।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, जो कोई श्रद्धालु नित्य प्रातः काल इस रस-रूपमयी लीला का गान एवं श्रवण करेगा, उसके हृदय-कमल में अनुपम प्रेम की उत्पत्ति होगी।।२२।।

लीलानुक्रम

जीवदसा गाइ सब जीवन की अविद्या ढाइ,
वैद्यक सुनाइ भव-रोग सो नसाये हैं।
पुष्टता दै मनशिक्षा, भाखी है भाषा बृहद–
बावन पुरान नित्य वस्तु परसाये हैं।।
सिद्धान्त विचार भक्तिनामावलि हियैं धारि,
प्रीति चौवनी अष्टक जुगल लखाये हैं।
भजन कुंडलिया त्यौं भजन सतहूँ तैसैं,
वृंदावन सत हित ख्याल हुलसाये हैं।।
सिंगार-सत हित-सिंगार मनि-सिंगार,
आनंद दसा रसानंद रंग हुलसायौ है।
रसमुक्तावली रसरत्नावली प्रेमावली,
रसहीरावली सभामंडल रचायौ है।।
निर्त-विलास रहस्यमंजरी, रति नेह मंजरी,
यौं मंजरी सुख बढ़ायौ है।
रंग विनोद रंगविहार त्यौं बन बिहार,
रस विहार जुगल ध्यान मन भायौ है।।
आनंदलता रहस्यलता अनुरागलता प्रेमलता,
रसानंद प्रियाजू के नामनिं की माला है।
दानलीला मानलीला व्रजलीला ऐसैं मिलि,
बयालीस लीला पद्यावलि हूँ रसाला है।।
टीका हितवानी की सुवानी ध्रुवदास जू की,
वृंदावन बसिबे कौ बानक बिसाला है।
करत निहाला सद प्रीति की प्रनाला हद,
परम कृपाला सब जग प्रतिपाला है।।

●

पद्यावली

मङ्गलाचरण (१) राग ललित

प्रगटित श्री हरिवंश सुधाकर।
प्रचुरित विसद प्रेम-कर दिसि-दिसि, नसत सकल कर्मादिक तत्पर।।१।।
विकसत कुमुद सुजस निजु संपति, सरस रहसि जुत अमी अवनि पर।
करत पान रस रसिक भृंग ह्वै, 'हित ध्रुव' मन आनंद उमगि भर।।२।।

गोस्वामी श्री हित हरिवंश महाप्रभु का प्रादुर्भाव मानो अमृतमय चन्द्रमा का प्रादुर्भाव है। उनका प्रादुर्भाव होने से विशद प्रेम की अमृतमय किरणों का दिग्-दिगन्त में प्रचार-प्रसार हो गया, जिसके फलस्वरूप कर्म प्रधान निष्ठाओं तथा उपासनाओं का तिरोभाव होने लगा।।१।। नित्य-विहार की निजी (सहज) सम्पति एवं उसके सुयश रूपी कुमुद का विकास होकर पृथ्वीतल पर ऐकान्तिक एवँ सरस प्रेमोपासना का अमृत झरने लगा। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रस लोलुप रसिक-जन भृङ्ग की भाँति रसपान करके रसोन्मत्त हो गये एवं उनका मन आनन्द के उल्लास-प्रवाह में आप्लावित हो गया।।२।।

(२) राग ललित

श्री व्यास-सुवन तन मन वच भजि रे।
लोक, ग्याति, कुल, वेद, कर्म, व्रत, साधन सकल धर्म तू तजि रे।।१।।
अद्भुत अनुपम श्री वृंदावन, तिनमें बसौ लसौ नित गजि रे।
नव-निकुंज में दंपति-संपति, नीकैं लै अघाइ 'ध्रुव' सजि रे।।२।।

हे मेरे मन ! तू व्यासनन्दन श्री हित हरिवंश चन्द्र का तन, मन एवं वाणी के द्वारा भजन करता रह। प्रेम-भजन के बाधक लोक (संसार की व्यावहारिक विधि), जाति (ऊँच एवं नीच वर्गों का भेद जन्य अहङ्कार एवं हीनता), कुल

(वंश परम्पराओं के आग्रह), वेद (विधि-निषेध के बन्धन), कर्म (फलों की आसक्ति), व्रतपुण्य प्राप्ति की लालसा आदि सम्पूर्ण साधनों एवं लोक-समाज में प्रचलित वर्ण एवं आश्रमों के धर्म संज्ञात आचरणों का तू सर्वतोभावेन त्याग कर दे।।१।। तथा लोक-वेद विलक्षण उपमा-रहित प्रेम-धाम श्री वृन्दावन का समाश्रय करके उसकी पावन धूलि से लिप्त हो कर प्रेम की सदा गर्जना कर। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस सब के फलस्वरूप श्री वृन्दावन के आनन्दमय नव-निकुञ्ज में नित्य रस-केलि परायण दम्पति-श्री ललित लाड़िली लाल रूपी प्रेम-सम्पत्ति को हृदय में विराजमान् करके परितृप्त हो कर परम शोभा को प्राप्त हो।।२।।

प्रिया जी की नामावली (३) राग गौरी

ललित रँगीली गाइये। तातें प्रेम रंग रस पाइये।।
राधा गोरी मोहिनी, नवल किसोरी भाँम।
नित्य विहारिनि लाड़िली, अलबेली वर वाम।।१।।
स्यामा प्यारी भाँवती, नागरि परम उदार।
वृंदाविपिन विनोदिनी कुंजनि-मनि सुकुँवारि।।२।।
मृगनैंनी गजगामिनी, पिकबैंनी नव बाल।
अति सुदंर मृदु हासिनी, चंचल नैंन विसाल।।३।।
कुंज-कामिनी भामिनी, छबि-दामिनी अनूप।
पिय-हिय-मोद-प्रकासनी, चंद वदनि रस रूप।।४।।
रसिक रँगीली रँगभरी, रही लाल उर-पूरि।
पियहि लड़ावनि सुख लड़ी, प्रीतम जीवन-मूरि।।५।।
मनहरनी सुठि सोहनी नवल छबीली भाँति।
वृंदावन जगमगि रह्यौ अंगनि की छबि काँति।।६।।
कुंज-बिलासिनि दुलहिनी, आनँद-रूप-निधान।
सखियनि-मोद-बढ़ावनी, पिय प्राननि के प्रान।।७।।

'हित ध्रुव' यह नामावली, जो करि है उर-माल।
ताके हियैं दिनहिं बसैं, नेही मोहन लाल।।८।।

ललित रँगीली लाड़िली श्री राधा के रसमय नाम एवं गुणों का गान करने से उनके श्री चरणों का प्रेम एवं तज्जन्य आनन्द रस प्राप्त होता है। उनके मञ्जुल नामों की माला इस प्रकार है— राधा गोरी (नवयौवना), मोहिनी (प्रियतम के मनको मोहित करने वाली) नवल-किसोरी भाँम (नित्य नव किशोरावस्था प्राप्त प्राण-प्रिया), नित्य विहारिनि (अनादि-अनन्त विहार परायण), लाड़िली (प्रियतम एवं सखियों की लाड़-भाजन), अलबेली वर वाम (प्रेम, रस, रूप, सौन्दर्य में विलक्षण एवं श्रेष्ठ युवती)।।१।। श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त नव यौवना सुन्दरी), प्यारी भाँवती (प्रिय लगने वाली शोभामयी सुन्दरी), नागरि परम उदार (परम चतुरा एवं परम रिझवार सर्वस्व दानी), वृन्दाविपिन विनोदनी, (श्री वृन्दावन में हास-विनोदादि की क्रीड़ाएँ करनेवाली)। श्री वृन्दावन के निभृत निकुञ्जों की भूषणरूपा मणि।।२।। सुकुमारी, हरिण के से नेत्रों वाली, मत्त गजराज की सी मन्थर गति वाली, कोयल के से मीठे स्वर वाली, नित्य नवीन सुन्दरी, एवं मन्द-स्मितमयी, चपल एवं विशाल नयनों वाली।।३।। वृन्दावन की सघन कुञ्जों में प्रियतम की आकाङ्क्षाओं को पूर्ण करने वाली प्रिया एवं छविरूपा अनुपम विद्युल्लता। प्रियतम के हृदय में आनन्द मोद प्रकाशित करने वाली, रसरूपिणी, चन्द्र-वदनी, प्राणवल्लभा।।४।। निरन्तर प्रेम के रस-रङ्ग से भरी, रसिक रँगीली, जो श्री लाल जी के हृदय में परिपूर्ण रूप से छाई हुई हैं। जो समस्त परिकर के लाड़-सुख से पलित रह कर प्रियतम को लाड़ प्यार देती रहती हैं, अतएव प्रियतम की जीवन-मूल हैं।।५।। जो नवल छबीले प्रकार से सुन्दरातिसुन्दर हैं और प्रियतम का मन हरण करने वाली हैं। जिनके छवि-धाम श्रीअङ्गों से श्री वृन्दावन सदैव जगमगाता रहता है।।६।। जो कुञ्जों में विलास करने-वाली एवं आनन्द की निज स्वरूपा नव-वधू हैं एवं सखी-समाज को आनन्द-मोद प्रदान करने वाली प्राण-प्रिया एवं प्रियतम के प्राणों की भी प्राण हैं।।७।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि वृन्दावनेश्वरी ललित लाड़िली श्री राधा की इस नामावली को जो कोई अपना हृदय-हार बनावेगा, उसके निर्मल हृदय में प्रेमी मोहन लाल (प्रियतम) सदैव निवास करेंगे।।८।।

श्री लाल जी की नामावली (४) राग गौरी

लाल रँगीलौ गाइयै। तातें प्रीति रँगीली पाइयै।।
(श्री) राधावल्लभ लाड़िलौ, दूलह नित्य-किसोर।
कुंजविहारी भावँतौ, मुख-प्यारी चंद-चकोर।।१।।
रसरंगी राधा-धनी, राधाधव सुकुँवार।
कुंज-रवन सोभा-भवन वर सुंदर सुघर उदार।।२।।
रसिक रँगीलौ रँगमग्यौ श्री वृंदावन-चंद।
विपिनविलासी छवि-चहा, पिय-राधा आनँद-कंद।।३।।
रसिक-मौलि आनंदमनि मोहन कृष्ण कृपाल।
सहज सलौनौ साँवरौ, अंबुज नैंन-विसाल।।४।।
'हित ध्रुव' यह नामावली, मन-गुन सौं लै पोइ।
ताही की रसना रटै, कुँवरि-कृपा जब होइ।।५।।

प्रेम-रङ्ग रँगीले श्री लाल जी का नाम गान करने से उनके चरणों की रस रङ्गमयी प्रीति प्राप्त होती है। प्रेम प्रदान करने वाले प्रियतम के मृदुल नामों की शृङ्खला इस प्रकार है – राधावल्लभ लाड़िले (श्री राधा के प्रियतम एवं लाड़ भाजन), दूलह नित्य किसोर (सदैव किशोरावस्था प्राप्त नित्य दूलह), कुंज विहारी भाँवतौ (कुञ्जों में विहार-रत शोभा युक्त प्रियतम) जो श्री राधा-मुख-चन्द्र के रूप-पिपासु चकोर हैं।।१।। रस क्रीड़ा में आनन्द लेने वाले राधा रूपी धन के धनी, सुकुमार राधापति, वृन्दावन की कुञ्जों में रमण करने वाले शोभा-धाम, परम सुन्दर एवं परम उदार।।२।। रङ्ग रँगीले रसिक जो सदैव आनन्द रङ्ग में भीने रहते हैं, ऐसे श्री वृन्दावन चन्द्र, वृन्दावन के

रस विलासी, रूप सौन्दर्य लालची, श्री राधा के आनन्द-कन्द प्रियतम हैं।।३।। रसिक जनों के शिरोमणि, आनन्द रूप मणि, मोहन एवं कृपामय श्रीकृष्ण जो स्वाभाविक सौन्दर्य निधान श्याम कान्तिमय हैं, जिनके नेत्र विशाल एवं कमल के समान हैं।।६।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जो कोई भक्त, रसिक लाल श्री श्याम सुन्दर की इस नामावली को मन रूपी सूत्र में गूँथकर धारण करेगा, श्री राधा-कृपा से पूरित होकर उसकी वाणी प्रियतम श्री लाल जी के रसमय नामों का गान करेगी।।५।।

सुरतान्त छवि (५) राग भैरव

सोवत भोर लाड़िली लाल।
भूषन सिथिल भये अँग-अँग के, अरुझि रही कंठनि पर माल।।१।।
अंचल नील वदन विवि ऊपर, निरखत लोचन हियौ सिरात।
तन न सँभार रैंन सब जागे, सुरत-केलि कीनी बहु भाँत।।२।।
यह सुख सार निहारि नैंन भरि, वेपथ भईं सखी सब गात।
'हित ध्रुव' कंठ प्रेम-जल रोक्यौ, मुख निसरत नाहिंन कछु बात।।३।।

प्राण-रमण ललित लाड़िली-लाल निशान्तकाल में सुख-शय्या पर शोभित हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग के वस्त्रालङ्कार शिथिल हैं तथा हारावलियाँ कण्ठ देश पर स्थित, परस्पर में उलझी हुई हैं।।१।। दम्पति के वदन-विधु पर आच्छादित नीलाञ्चल की शोभा का अवलोकन करके सखियों के हृदय एवं नेत्र शीतल हो रहे हैं। श्री युगल ने सम्पूर्ण रात्रि जागृत रह कर विविध प्रकार से सुरत-केलि सुख-लाभ किया है, उन्हें तन बदन की सम्हाल विस्मृत हो गई है।।२।। इस सुख-सर्वस्व-सार का दर्शन करके सखियों के नेत्र प्रेम-सजल हो उठे हैं तथा शरीर प्रेम से कम्पित है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसभीनी सहचरियाँ प्रयास पूर्वक उमड़ते हुए प्रेम-जल को कण्ठ-देश में अवरुद्ध कर रही हैं तथा उनकी वाणी विथकित है।।३।।

(६) राग विलावल

भोर मृदुल तलप उपरि बैठे उठि दोऊ जन,
रति-विलास चिन्ह निरखि नैननिं मुसिकाने।
सुरँग पीक गंडनि पुनि अंजन पिय अधर और,
उरजनि फबि रहे अंक नवल नख निवाने।।१।।
भूषन पट सिथिल अंग बिथुरे कच कछुक मंग,
रही अरुन नैंन बैंन आरस रस साने।
जद्‌पि निसि इहि विहार सार सुख में बितई सब,
'हित ध्रुव' उर दंपति तऊ नाहिनैं अघाने।।२।।

रसिक युगल श्री लाड़िली लाल प्रातःकाल उठकर कोमल शय्या पर विराजमान् हैं। वे अपने अङ्गों में रात्रि-कालीन प्रेम-केलि-चिह्नों को देखकर नेत्रों में मुस्करा रहे हैं। उनके कपोलों पर ताम्बूल की अरुणिम पीक अनुरञ्जित है। प्रियतम के अधर पर अञ्जन की रेखा एवं प्रिया के वक्षोजों पर नूतन नख-क्षत-अङ्क चिह्नित हैं।।१।। अङ्गों के वस्त्रालङ्कार शिथिल हैं, केश-राशि विगलित है, सीमन्त-रेखा फीकी हो गयी है, नेत्र अरुण हैं एवं रससिक्त वाणी आलस्य-वलित है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल किशोर ने सम्पूर्ण-रात्रि विहार के सर्वोपरि सुख में व्यतीत की है, तथापि उनके हृदय में तृप्ति नहीं है।।२।।

(७) राग विलावल

राजति कुँवरि परम सुकुँवारि।
भोर कुंज तें निकसि खरी भई, रुचिर बाहु पिय अंसनि डारि।।१।।
कबरी सिथिल सकल अँग भूषन, लटकि रही प्रियतम उर लागि।
सुरत सरस रँग-भरी लाड़िली, आरस में राखी मनौं पागि।।२।।
मुद्रित होत नैंन छिन ही छिन, रैंन जगी तातें अधिक जँभाति।
'हित ध्रुव' यह सुख निरखि मुदित मन सहचरि, दै चुटकी बलि जाति।।३।।

आज परम सुकुमारी श्री किशोरी अपूर्व शोभा को प्राप्त हैं। वे प्रातःकाल ही कुञ्ज-भवन से निकल कर अपनी ललित बाहु-लताओं को प्रियतम के स्कन्धों पर डाले हुए प्रसन्न-मन खड़ी हैं।।१।। उनकी केश-कबरी (जूड़ा) एवं अङ्गों के समस्त आभूषण शिथिल हैं तथा वे आलस्य से भरी हुई प्रियतम के हृदय से लिपट रही हैं। उनकी इस छबि का अवलोकन करके ऐसा लगता है, मानो प्रेम के सरस केलि-रङ्ग से भरी हुई लाड़िली-प्रिया आज आलस्य से पग गयी हैं।।२।। रात्रि-जागरण के कारण प्रिया के नेत्र क्षण-क्षण में बारम्बार मुँद- मुँद जाते हैं एवं वे अधिकाधिक जँभाई लेती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस सुख का अवलोकन करके सखियों का मन प्रसन्न हो उठता है और वे चुटकी दे-दे कर बलिहार जाती हैं।।३।।

(८) राग विलावल

भोर खरी आरस अरसानी। रसिकलाल के उर लपटानी।।१।।
अरुझि अलक बेसरि सौं सोहै। पिय किसोर नैंननिं छबि जोहै।।२।।
अँग-अँग सुरत-रंग-रस पागे। अरुन नैंन घूमत निसि जागे।।३।।
कंचुकी दरकि रही बँद टूटे। किरत कुसुम राजत कच छूटे।।४।।
अधरनि अंजन पीक सुरंगा। लगी कपोल सुकेलि अनंगा।।५।।
छिन-छिन मुरि-मुरि लेत जँभाई। 'हित ध्रुव' दै चुटकी बलि जाई।।६।।

रसिक लाल के हृदय से आलिङ्गित प्रिया आज प्रातः आलस्य से अलसाई हुई शोभित हैं, उनकी एक अलक-लट नासा-मौतिक से उलझ कर अपूर्व छवि को प्राप्त है। नवल-किशोर प्रियतम के नेत्र इस छबि का मुग्ध-भाव से अवलोकन कर रहे हैं।।२।। प्रिया का प्रत्येक अङ्ग सुरत-क्रीड़ा के रङ्ग-रस से अनुरञ्जित है। रात्रि जागरण के कारण उनके नेत्र अरुण एवं घूर्णमान् हैं।।३।। दरकी (तड़की) हुई कञ्चुकी के बन्ध खण्डित हो चुके हैं। विगलित केश-राशि से पुष्प झर रहे हैं।।४।। सुष्ठु अनङ्ग-केलि के कारण अधरोष्ठ पर अञ्जन एवं कपोलों पर अरुणिम ताम्बूल-पीक अनुरञ्जित है।।५।। वे

आलस्य के कारण बारम्बार अँगड़ाई एवं जँभाई लेती हैं। इस छवि का दर्शन करके हित ध्रुवदासी चुटकी बजाती हुई बलिहार जाती है।।८।।

(९) राग विलावल

आवत लाल-प्रिया भुज जोरैं।
डगमगात आरस रस भीने, अति सुरंग नैननिं की कोरैं।।१।।
चितवनि सहज चारु अति चंचल, मुसिकनिं मंद मिथुन-चित चोरैं।
'हित ध्रुव' निरखि रसिक ललितादिक, डारि वारि प्रान तृन तोरैं।।२।।

श्री प्रिया-लाल परस्पर बाहु-बद्ध हुए निकुञ्ज-भवन से निकल कर आ रहे हैं। वे आलस्य के रस में भींगे हुए डगमगाते हुए चल रहे हैं। उनकी नेत्र-तटी अरुणिम है।।१।। उनकी चितवन स्वाभाविक ही सुन्दर एवं अतिशय चञ्चल है तथा मन्द मधुर मुस्कान परस्पर में दोनों का चित्त चुरा रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि ललितादि रसिक सखियाँ युगल की इस छवि का अवलोकन कर अपने प्राणों को न्यौछावर करती हुई तृण तोड़ती हैं।।२।।

(१०) राग विलावल

प्यारी लाल ठाढ़े आरस भीने हँसत नैननि निसि के चिह्न देखैं।
परे हैं पलटि पट भूषन अंगनि राजत उर नख-रेखैं।।१।।
गंडनि पीक सोहत कहुँ अंजन छूटे बार हार अरुझे रुचि बाढ़त पेखैं।
'हित ध्रुव' अवलोकत सहज सुख दोऊ लागत पल न निमेखैं।।२।।

आज प्रिया-लाल आलस्य से सराबोर हुए अपने अङ्गों में रात्रि के चिह्नों का अवलोकन कर नयनों ही नयनों में हँस रहे हैं। उनके अङ्गों के वस्त्र एवं आभूषण परिवर्त्तित हैं एवं वक्षःस्थल पर नख-रेखाएँ शोभित हैं।।१।। कपोलों पर ताम्बूल-पीक के चिह्न हैं एवं कहीं-कहीं अञ्जन भी लगा हुआ है। बिखरे हुए केश एवं हार परस्पर में उलझे हुए हैं। इस छवि को देखकर

देखते रहने की रुचि में वृद्धि होती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि दोनों परस्पर में छवि-दर्शन का सहज सुख लाभ कर रहे हैं। फलतः एक पल के लिए भी उनकी पलकें नहीं लगती हैं।।२।।

(११) राग चर्चरी

विहरत वरजोर भोर नवल कुंज सघन खोर,
खिसत नील-पीत छोर लसत अंग री।
पागे रस-रंग-मैंन जागे निसि अरुन नैंन,
रही गंड पीक-लीक अति सुरंग री।।१।।
गहैं लाल मनु मृनाल प्रिया-बाहु मृदु रसाल,
चलत मंद-मंद चाल ज्यौं मतंग री।
आरस अति ही जँभाति 'हित ध्रुव' दुति दसन-पाँति,
निरखि-निरखि हियौ सिरात छबि तरंग री।।२।।

वृन्दावन की सघन वीथी स्थित नवल कुञ्ज में सर्वोपरि युगल रसिक रात्रि के अन्तिम प्रहर में विहार-रत हैं, जिससे उनके श्रीअङ्ग-शोभित नील-पीत दुकूलाञ्चल खिसक रहे हैं। विहार-रत युगल मदन के रस-रङ्ग में अनुरञ्जित हैं। रात्रि-जागरण के कारण उनके नेत्र रतनारे हो रहे हैं। गण्ड-मण्डलों पर अरुणिम पीक की रेखाएँ अङ्कित हैं।।१।। श्रीलाल जी प्रिया जी की मृणालवत् (कमल नाल की भाँति) सुकोमल एवं रसमयी भुज-लता को सँभाले हुए मत्त गजराज की भाँति मन्द-मन्द गति से चल रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया अतिशय आलस्य के वशीभूत हुई जब जँभाई लेती हैं, तो उनकी शुभ्र दन्त-पङ्क्ति प्रकाशित हो उठती है, जिसकी शोभा-लहरी का दर्शन कर-कर के समस्त परिकर का हृदय शीतल होता है।।२।।

(१२) राग चर्चरी

रूप रासि करत हासि समर सहज निसि विलास,
नवल कुंज कुंज तरैं विवि किसोर री।
पागे रति अंग-अंग उठत अधिक छवि तरंग,
अधर पीक भये सुरंग नैंन-कोर री।।१।।
बिथुरी अलकैं रसाल खंडित उर जलज माल,
सिथिल नीवि तिलक भाल लसत थोर री।
निरखि-निरखि बदन झलक लागत नहिं नैंकु पलक,
मोहित 'ध्रुव' सहचरि गति भई चकोर री।।२।।

रूप की राशि युगल-किशोर वृन्दावन की नव-नव कुञ्जों में मन्द-मधुर हास-युक्त हुए रात्रि-कालीन सहज सुरत-संग्राम में रत हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग प्रेम-रति से पगे हुए हैं। उन अङ्गों से शोभा की लहरियाँ उठती रहती हैं। युगल की नयन-पलकें अधर अरुणिम पीक से सुरञ्जित हो रही हैं।।१।। युगल की असंयत सगबगी अलकावलियाँ विगलित हो चुकी हैं। उनके हृदय देश पर विराजित कमलों की माला खण्डित है। नीवी-बन्धन शैथिल्य को प्राप्त है एवं ललाट-पटल पर शोभित तिलक छबि अल्प प्राय शेष दिख रही है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल के वदनारविन्दों की कान्ति का अवलोकन करके सखियों के नेत्र, पलक झपकना भूल गये हैं। वे रूप-विमुग्ध हुई चकोर-गति को प्राप्त हैं।।२।।

(१३) राग टोड़ी

रँगमगे रंग-महल तें आवत, भोर ही रति-विहार सुख कीयैं।
चलत डिगत घूमत प्रीतम दोउ, अति उनमत्त महारस पीयैं।।
कछु मुसिकात आरस भरे नैंननि, सुमिर समर अंसनि-भुज दीयैं।
जद्दपि सुख जामिनि जगि विलसे 'हित ध्रुव' तृपिति नाहिं तउ हीयैं।।२।।

आज प्रातः रति-विहार सुख से रँगमगे युगल, रङ्ग-महल से निकलते हुए आ रहे हैं। युगल प्रियतम महारसपान के कारण उन्मत्त हुए चलते समय डगमगाते एवं घूमते से हैं।।१।। उनके नेत्र आलस्य से भरे हुए हैं तथा सुरत-समर का स्मरण करके कुछ मुस्कुराते हुए गल-बहियाँ दिये चल रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यद्यपि वे सम्पूर्ण रात्रि सुख में ही जागे हैं, तथापि उनके हृदय में रस की अतृप्ति भी उतनी ही अधिक है।।२।।

(१४) राग रामकली

रति के रंग-तरंगनि में सखि, भींजे लाल विहारी।
मुख-पानिप अवलोकि प्रिया की, गहि-गहि चिबुक कहत हा-हारी।।१।।
चंचल नैंन नासिका-मोती, सबै अंग चंचलता री।
श्रम-जलकन तन मानौं रस की, प्रगट भई बरसा री।।२।।
अंचल पवन करत अपने कर, जानी कुँवरि श्रमित सुकुँवारी।
'हित ध्रुव' तिहिं छिन की सोभा पर, सहचरि प्रान करत बलिहारी।।३।।

कोई एक सखी अपनी दूसरी सखी से कह रही है—हे सखि! आज श्रीविहारी लाल रति-रङ्ग रूपी क्रीड़ा समुद्र की तरङ्गों में भींजे हुए हैं। वे श्रीप्रिया-मुखारविन्द के लावण्य का अवलोकन करके बारम्बार उनके चिबुक को सहलाते हुए श्रीमुख को ऊपर उचकाने अथवा श्रीमुख को सम्मुख देखने की लालसा से ऊँचा करते हुए प्रिया से अनुनय-विनय कर रहे हैं।।१।। उस समय प्रिया के चञ्चल नेत्र, नासिका पर थिरकती हुई उनकी बेसर एवं अङ्ग-अङ्ग की चञ्चलता तथा उनके श्रीअङ्गों पर झलकते हुए प्रस्वेद-कण ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो प्रकट रूप से रस की वृष्टि हो रही हो।।२।। सुकुमारी कुँवरि को श्रमित जानकर लाल जी अपने पीताम्बर के छोर से बयार कर रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उस क्षण की शोभा पर सखियाँ अपने प्राण न्यौछावर करने लगती हैं।।३।।

(१५) राग विभास

अलक लड़े दोउ नवल किसोर।
अलक लड़ी गति आवत सखि री, सघन नवीन कुंज ते भोर।।१।।
बिथुरे बार हार-उर अरुझे, सिथिल पीत-नीलांचल छोर।
सहजहि रूप-पुंज मन मोहन, अति प्रवीन प्राननि के चोर।।२।।
रही लटकि सखि सुरँग पाग पर, सुभग चंद्रिका-मोर।
झलकत सीस-फूल नक-बेसरि, वदन-मिथुन सोभा नहिं थोर।।३।।
छिन-छिन रोम-रोम छवि नौतन, तृषित नैंन चितवत विवि ओर।
'हित ध्रुव' नवल कुँवर रस-रंगी, अद्भुत गौर-स्याम वर जोर।।४।।

पुनः कोई एक सखी अपनी सहेली से युगल की छबि का वर्णन करती हुई कह रही है कि विलक्षण लाड़िले नवल किशोर युगल आज भोर ही लाड़-भरी चाल से लड़कानि पूर्वक सघन नूतन कुञ्ज से निकल कर चले आ रहे हैं।।१।। उनकी केश-राशि विगलित है एवं हृदय-हार उलझे हुए हैं। नीलाञ्चल एवं पीताम्बर के छोर शिथिल हैं। युगल-किशोर सहज ही रूप के पुञ्ज हैं एवं सबके मनों को मोहित करने वाले हैं, सब सखियों के प्राण-मन को चुराने में अत्यन्त निपुण हैं।।२।। हे सखि! श्री लाल जी के शिरोभाग पर शोभित सुरङ्ग पाग पर सुन्दर मयूर चन्द्रिका लटक रही है। इसी प्रकार श्री प्रिया के शिरोभाग पर शशिफूल एवं नासिका के अग्र भाग पर बेसर झलमला रही है जिससे दोनों के वदनारविन्द की अपार शोभा प्रगटित है।।३।। युगल के रोम-रोम से प्रतिक्षण नित्य नूतन छवि प्रकट होती रहती है, जिसे दोनों के ही प्यासे नेत्र परस्पर में अवलोकन करते हुए मानो रूप-रस का पान कर रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि तभी तो यह गौर-श्याम की सर्वोत्तम जोड़ी अति अद्भुत है।।४।।

स्नान-शृङ्गार समय के पद (१६) राग आसावरी

कौन भाँति सुसिकाति रँगीली, दुरि प्रीतम तिहिं छबिहि निहारत।
निरखत रूप प्रकास माधुरी, रीझि प्रान तन मन धन वारत।।१।।
चहुँ दिसि सखी सहचरी जे निजु, सादौ कछु सिंगार विचारत।
प्रेम चाइ के रंग रँगीं सब, एक हार अरुझे निरवारत।।२।।
इक सौंधौ फुलेल लियैं ठाढ़ी, एक फूल सौं केस सवाँरत।
मज्जन करि पहिरे पट भूषन, छिन-छिन प्यार सौं पियहि सँभारत।।३।।
हिय कौ प्रेम समझि रस-नागर, चरननिं चूँवत अँखियनिं लावत।
'हित ध्रुव' प्रीति परस्पर ऐसी, ये उनकौ वे इनहिं लड़ावत।।४।।

स्नान के समय शीतल जल के स्पर्श से सी-सी करके सिसकती हुई प्रिया की छबि का प्रियतम छिप कर दर्शन कर रहे हैं। प्रिया की रूप-छवि माधुरी का अवलोकन करके रीझे हुए प्रियतम अपने तन-मन-प्राण, प्रिया पर न्यौछावर करने लगे।।१।। उस समय प्रिया के चारों ओर जो उनकी निज सखी-सहचरियाँ उपस्थित हैं, वे सादे एवँ हल्के शृङ्गार से उन्हें सुसज्जित कर रही हैं। सभी सखियाँ प्रेमोल्लास के रङ्ग से रञ्जित हैं। एक सखी प्रिया के उलझे हुए हार को सुलझा रही है।।२।। अन्य एक सखी इत्र एवं फुलेल लिये खड़ी है। तीसरी कोई एक प्रसन्नता से भरी उनकी केश-राशि को सँवार रही है। जब प्रिया ने स्नान करके वस्त्र एवं आभूषण धारण कर लिये, तब सखियों ने प्रीतिपूर्वक श्री लाल को भी स्नान कराके वस्त्राभूषणों से सवाँरा-सजाया।।३।। रस-निपुण प्रियतम अपने प्रति, प्रिया का हार्दिक प्रेम समझ कर उनके चरणों को अपने नेत्रों से लगा कर चूमने लगे। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रसिक युगल लाड़िली लाल की प्रीति कुछ ऐसी है कि ये उनको, वे इनको प्रति-क्षण लाड़-लड़ाते रहते हैं।।४।।

(१७) राग आसावरी

कुंज सदन में प्यारौ प्रिया की, बैंनी गूँथत माई।
फूले अधिक समात न तन-मन, टहल भाँवती पाई।।१।।
रचि-रचि सुमन गहर सौं बानत, जैसैं पहुँचनि जाई।
परम चतुर वर नवल रसिक पिय, तिहिं रस रहे लुभाई।।२।।
सहचरि एक मुकुर लियैं ठाढ़ी, बाढ़ी झलक सुहाई।
'हित ध्रुव' (यह) सुख अखियाँ ही जानत, कैसैं कहौं समुझाई।।३।।

हे सखि ! आज कुञ्ज-भवन में विराजमान् प्रियतम प्राण-प्रिया की वेणी गूँथ रहे हैं। उन्हें आज अपनी मन भाँवती टहल मिल गयी है, इसलिये प्रसन्नता के मारे फूले नहीं समाते।।१।। वे बड़े चाव से पुष्पों के हार गूँथ-गूँथ कर वेणी में संलग्न कर रहे हैं। परम चतुर नवल रसिक प्रियतम, प्रिया की पुष्प-गुम्फित वेणी शोभा पर लुब्ध एवं मुग्ध हो रहे हैं।।२।। वहीं पर एक सहचरी सेवा में दर्पण लिये खड़ी है, जिससे उस दर्पण में प्रिया की सुहावनी छबि झलक कर शोभा को बढ़ा रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस छबि-दर्शन के सुख को तो केवल मेरी आँखें ही जानती हैं, मैं उसका वर्णन-विवेचन कैसे करूँ ?।।३।।

(१८) राग आसावरी

रंग-महल में बैठे प्रीतम, करत सिंगार प्रिया कौ माई।
रचि-रचि मंग सुरंग तिलक बिच, बेंदी लाल अनूप बनाई।।१।।
रतन-खचित ताटंक श्रवन युग, नासा-पुट मृदु बेसरि बानी।
चिबुक कपोल स्याम बिंदु दीनौ, तापर अलक भेद सौं आनी।।२।।
चंचल नैंननि अंजन दै पिय, अनी रेख रचि-पचि कैं कीनी।
निरखि मुकर हँसि रीझि प्रिया तब, नवल लाल मुख बीरी दीनी।।३।।

नख-शिख लौं भूषन पहिराये, चरन-चित्र जावक के कीने।
'हित ध्रुव' सीस परसि पद-कमलनि, निरखत रूप मुदित रस भीने।।४।।

हे सखि! रङ्ग-महल में विराजमान् प्रियतम आज अपनी प्रिया का शृङ्गार कर रहे हैं। उन्होंने केशों को सँवार कर प्रिया के सीमन्त का सुरङ्ग शृङ्गार किया है, ललाट पर तिलक धारण करा के लाल रङ्ग की अनुपम बिन्दी लगायी है।।१।। प्रिया के दोनों कानों में रत्न-खचित ताटङ्क धारण कराके नासिकाग्र भाग में सुन्दर बेसरि धारण करायी है। चिबुक एवं कपोल पर श्याम वर्ण का बिन्दु लगा कर, उस पर एक झीनी सी अलक लटका दी है।।२।। प्रियतम ने प्रिया के चञ्चल नेत्रों में अञ्जन सार कर अतिशय सुहावनी पैनी अञ्जन-रेखा अर्थात् अनी खींच दी है। दर्पण में अपनी इस छबि का अवलोकन करके प्रिया रीझ गयी हैं, तब उन्होंने नवल लाल को अपने मुख की चर्वित ताम्बूल वीटिका अर्पित की है।।३।। प्रियतम ने प्रिया को नख से शिख तक भूषण धारण कराके उनके चरणों में महावर से चित्र रचना की है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि तत्पश्चात् प्रियतम ने अपने सिर से प्रिया के श्री चरणों का स्पर्श किया तथा रस में भींजे हुये प्रसन्न मन से उनका अनुपम रूप निहार रहे हैं।।४।।

(१९) राग टोड़ी

सुरँग कसूंभी सारी पहिरैं रँगीली प्यारी,
आज की छबीली छबि जात ना बखानी है।
सौंधे सगबगे बार बन्यौ है सादौ सिंगार,
जगमग रही बैंदी स्याम-सखी बानी है।।१।।
बेसरि कौ मोती सोहै चितवनि मन मोहै,
बरसत सोभा फूल जब मुसिकानी है।
'हित ध्रुव' प्रेम पगे तिनही के रंग रँगे,
ठाढ़े हैं बिहारी लाल लियैं पीक दानी है।।२।।

आज रँगीली प्रिया ने चटकीले कुसुम्ब (पलाश पुष्प) रङ्ग की साड़ी धारण कर रखी है। उनकी सौन्दर्य-छबि की बात कहने में नहीं आती। उनकी केश-राशि सुगन्ध से तरबतर (सगबगी) है। वे बहुत ही सादा अर्थात् हल्का शृङ्गार धारण किये हुए हैं। निज सखी द्वारा धारण कराई हुई श्याम-वर्ण की बैंदी उनके भाल पर जगमगा रही है।।१।। नासिका के अग्रभाग पर थहराता हुआ बेसरि का मोती बड़ा ही सुहावना दिखता है। उनकी चितवन मन को मोहित करती है। वे जब-जब मन्द-मन्द मुस्कुराती हैं, तब मानो छबि के फूल बरसने लगते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनके प्रेम से पगे एवँ आसक्ति के रङ्ग में रँगे प्रियतम विहारी लाल पीक-दानी लिये हुए सम्मुख, खड़े हैं।।२।।

शृङ्गार आरती (२०) राग सारंग

श्री राधावल्लभ लाल की आरती।
रतन जटित कंचन की मनिमय, हित सौं सहचरि वारती।।१।।
अंग-अंग की आभा झलकत, अद्भुत रूप निहारती।
'हित ध्रुव' सखी प्रेम की सीवा, कैसेहुँ पलक न टारती।।२।।

श्री राधावल्लभ लाल की आरती जो कञ्चन निर्मित मणिमयी एवं रत्न-जटित है; सहचरियाँ प्रीतिपूर्वक वार (उतार) रही हैं।।१।। आरती के समय श्री राधावल्लभ लाल के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की प्रभा एवं उनके अद्भुत रूप को सखियाँ निहार रही हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की अवधि—सखियाँ श्री राधावल्लभ लाल के रूप पर विमुग्ध हैं, वे एक पलक का भी अन्तराय सहन नहीं कर सकतीं।।२।।

(२०) राग सारंग

आरती राधिका-लाल पर वारौं।
सहज अति चारु प्रति अंग भूषन झलक, माधुरी रूप नैंननि निहारौं।।१।।

कोटि रति काम विवि रूप अभिराम पर, इंदु पग नखनि पर टारौं।
दिनहिं सुख-रासि मृदुहासि 'ध्रुव' निरखि कैं, सहज है नैंनमन वारि तनडारौं।।२।।

मैं श्री राधिका लाल की आरती उतारती हुई उनके सहज सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्गों पर शोभित आभूषणों की माधुरी एवं रूप-सौन्दर्य को अपने नेत्रों से निहारूँ (अवलोकन करूँ)।।१।। मैं परम रमणीय रूप पर कोटि-कोटि रति एवं कामदेव तथा युगल चरणों की नखच्छबि पर कोटि-कोटि चन्द्रमा न्यौछावर करूँ। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि अनन्त सुख-राशि युगल के मृदु-हास्य का अवलोकन करके मैं सहज ही नयन, मन एवँ तन को बलिहार कर दूँ।।२।।

(२२) राग धनाश्री

हँसि-हँसि कुँवरि कुँवर मन मोहै।
सहज सुदेस सुरंग अधर छबि, दसन स्याम चौका सित सोहै।।१।।
झलकत कनक-कंज मुख प्यारी, नव-सत अंगनि अंग सँवारे।
अति कोमल नासा-पुट सोभित, मुक्ता तरल नैंन अनियारे।।२।।
अलक चिबुक साँवल बिंदु ऊपर, भए लटू पिय नैंन विसारे।
नव-नव छबि निरखत मनमोहन, 'हित ध्रुव' प्रान-प्रिया कर हारे।।३।।

कुँवरि किशोरी अपने हास्य से प्रियतम का मन बारम्बार मोहित कर रही हैं। उनके सहज सुन्दर अरुणिम अधरों की छवि, दन्तावलि की मिस्सी के रङ्ग से रँगी हुई श्यामता एवं श्वेतता विलक्षण रूप से शोभित है।।१।। प्रिया का श्रीमुख ऐसे झलक रहा है, जैसे विकसित स्वर्ण-कमल हो। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों में सोलहों शृङ्गार सुसज्जित हैं। अतिशय कोमल नासिका-पुट पर तरलित मुक्ता की छवि शोभित है और उनके नेत्र अनियारे हैं।।२।। अलकावलि एवं चिबुक के श्याम बिन्दु की शोभा पर रीझे हुए प्रियतम पलक मारना भूल कर एक-टक छबि जोह रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मन-मोहन प्रियतम प्रिया की नित्य छवि का दर्शन कर उनके कर-कमलों में अपने प्राण अर्पित करते रहते हैं।।३।।

(२३) राग धनाश्री

सीतल भए नैंन छवि हेरैं।
हँसत कुँवर दोउ रँगे प्रेम-रँग, निकसे आइ निपट ही नेरैं।।१।।
चाहन चपल कमल-दल नैंननिं, कंचन नील कंज-कर फेरैं।
सुनत स्रवन नूपुर धुनि जहाँ-जहाँ, मुदित मयूर हंस कल टेरैं।।२।।
अंग-अंग सोभा अवलोकत, रही न तन मन कछु सुधि मेरैं।
नहिं सुहात सखि औरै निसि-दिन, यह 'ध्रुव' अँखियनि माँहि रहैंरे।।३।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की छबि का दर्शन करके मेरे नेत्र शीतल हो रहे हैं। प्रेम रङ्ग से रँगे हुए युगल कुँवर हँसते हुए मेरे अत्यन्त समीप से होकर चले गये।।१।। उस समय उनकी चञ्चल दृष्टि एवं कमल-दल की भाँति नेत्र-शोभा देखते ही बनती थी। वे अपने हाथों में स्वर्ण-कमल एवं नील-कमल लिये हुए लीलापूर्वक घुमा रहे थे। उनके नुपूरों की सुमधुर ध्वनि का श्रवण करके प्रसन्न हुए मयूर एवं हंस जहाँ-तहाँ से आकर एकत्र हो गये, मानो किसी ने उन्हें बुलाया हो।।२।। उस समय उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की छवि-छटा का अवलोकन करके मुझे अपने तन तथा मन की कोई भी स्मृति नहीं रही। हे सखि! अब मुझे और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। मैं चाहती हूँ कि दिन-रात यही छबि मेरे नेत्रों में समायी रहे।।३।।

(२४) राग काफी

लाड़िली लाल रसाल रँगीले विहारहीं।
अद्भुत रूप अनूप सखी जु निहारिहीं।।१।।
निर्त्तत रास विलास, मोहन संग मोहनी।
राख्यौ रंग अपार, छबीली सोहनी।।२।।
रीझि लाल रस भींजि, महा सुख पावहीं।
'हित ध्रुव' सर्वसु वारि, पगनि सिर लावहीं।।३।।

रसीले लाड़िली-लाल रँगीले विहार में मग्न हैं। उनके अनुपम एवं अद्भुत रूप-सौन्दर्य का सखी जन दर्शन कर रही हैं।।१।। रसिक प्रियतम मोहन के साथ मोहनी प्रिया रास-विलास का नृत्य कर रही हैं। इस रास में छबिमयी शोभाशाली प्रिया ने नृत्य का अपार माधुर्य प्रकट किया। अतएव वे सर्वोपरि सिद्ध हुईं।।२।। उनकी रास-विलास सर्वोपरिता पर रीझ कर श्री लाल रस में भींज गये और बहुत सुखी हुए। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम अपना सर्वस्व उन पर न्यौछावर करके चरणों से अपना शीश-स्पर्श कराके धन्य-धन्य हो रहे हैं।।३।।

(२५) राग सुघराई

आज बने नव रंग विहारी।
सकल अंग भूषन प्यारी के, पहिरैं सुरँग रंग तनु सारी।।१।।
स्रुति ताटंक माँग मोतिनु युत, कुमकुम आड़ सँवारी।
अंजन नैंन लसै नक-बेसरि चिबुक बिंदु छबि न्यारी।।२।।
दुलरी जलज पीत उर अँगिया, करनि बनी बलया री।
हँसत मंद अंचल मुख दीयैं, आरसी जबहिं निहारी।।३।।
निरखत अंग-अंग की सोभा, नैंन निमेष बिसारी।
'हित ध्रुव' भई अधिक छबि तन की, करत वेश सुकुमारी।।४।।

आज श्री विहारी लाल कुछ नयी ही शृङ्गार-सज्जा से सुसज्जित हैं। उन्होंने अपने समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में प्रिया के प्रसादी आभूषण एवं श्रीअङ्ग पर उनकी उतीरन सुरञ्जित साड़ी धारण कर रखी है।।१।। कानों में ताटङ्क, सीमन्त पर मोतियों की लड़ी तथा ललाट पर केशर की बिन्दी सजा रखी है। नेत्रों में अञ्जन, नासिका में बेसरि तथा उनके चिबुक-बिन्दु की छवि विलक्षण है। विहारी लाल के कपोत-कण्ठ पर मोतियों की दुलड़ी (माला), वक्षःस्थल पर पीत-कञ्चुकी एवं कलाइयों पर चूड़ियाँ खनक रही हैं। जब वे हाथ में दर्पण लेकर अपनी छवि का अवलोकन करते हैं, तब मुख पर अञ्चल

ओट देकर मन्द-मन्द मुस्कुराते रह जाते हैं।।३।। अपनी अङ्ग-अङ्ग शोभा को निहार कर उनके नेत्र, पलकें गिराना भूल जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि आज सुकुमारी प्रिया का वेष-शृङ्गार धारण करते ही प्रियतम के तन की शोभा अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो गयी है।।४।।

(२६) राग नट

लालहि और न कछू सुहाई।
निरख्यौ चाहत दिनहिं प्रिया कौ, सुंदर मुख सुखदाई।।१।।
जे पट भूषन कुँवरि उतारति, तेई पहिरैं भावत।
बीरी खंड देति जब नागरि, तबहीं पै सचु पावत।।२।।
परिमल उवटि अंग जो बाचत, सोई आप लगावत।
जिहि मग चलति लाड़िली राधे, लोचन अवनि बनावत।।३।।
इहि रस मगन रहत सुनि सजनी, और न मन उर आवत।
'हित ध्रुव' विकट बात अति प्रेम की, बिन मोहन को जानत।।४।।

श्री लाल को कुछ सुहाता ही नहीं। वे अहर्निश श्री प्रिया के सुन्दर सुखद मुख का ही दर्शन करते रहना चाहते हैं।।१।। कुँवरि किशोरी जिन वस्त्राभूषणों को अपने तन से उतार देती हैं, प्रियतम को उन्हीं उतीरन वस्त्राभूषणों को धारण करना अच्छा लगता है। जब नागरी उन्हें खण्डित ताम्बूल- वीटिका देती हैं, तब वे अमित सुख का अनुभव करते हैं।।२।। प्रिया-अङ्गों में उवटित अवशेष परिमल प्रियतम को अपने अङ्गों में लगाना प्रिय लगता है। लाड़िली राधा जिस पथ से होकर चलती हैं, रसिक प्रियतम उस भूमि-पथ को अपने नेत्रों पाँवड़ों से आस्तरित कर देते है।।३।। हे सखि ! रसिक लाल केवल इसी रस में मग्न रहते हैं। उनके मन में इसके अतिरक्ति और कुछ आता ही नहीं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम की वार्ता बड़ी अटपटी है, जिसे प्रियतम मोहन के अतिरिक्त अन्य कौन जान-समझ सकता है।।४।।

(२७) राग नट

लाल कैं यह मन ललक रहै।
कबहूँ प्रिया प्रसन्न बदन ह्वै, मो तन नैंकु चहै।।१।।
अरु युग चरन चारु जावक के, चित्र सुरंग बनाऊँ।
पुनि अनुराग कमल मुख तें जब, बीरी खंडित पाऊँ।।२।।
अपनें ही कर ते नख-सिख लौं, भूषन वसन बनाऊँ।
'हित ध्रुव' अहनिश यहै बिचारत, कैसैहुँ प्रियाहि रिझाऊँ।।३।।

श्री लाल जी के मन में यह लालसा सदा बनी रहती है कि कभी प्रसन्न-मुख प्रिया मेरी ओर किञ्चित् भी दृष्टिपात करेंगी ?।।१।। क्या कभी मैं उनके युगल चारु चरणों में अलक्तक रस से सुरञ्जित चित्र अङ्कित करूँगा ? जिससे प्रसन्न हुई प्रिया अपने अनुराग पूर्ण मुखारविन्द से खण्डित ताम्बूल-वीटिका मुझे प्रदान करेंगी।।२।। क्या कभी मैं अपने इन हाथों से उन्हें नख-शिख पर्यन्त अलङ्कार एवं वस्त्र शृङ्गारित करने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा ? श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम अहर्निश इसी चिन्तन में निमग्न रहे आते हैं कि मैं किस प्रकार से प्रिया को रिझाऊँ ?।।३।।

(२८) राग नट

देखि पिय-नैंन भरे आनंद।
प्रिया बदन अंबुज तें पीवत, मनौं मधुप मकरंद।।१।।
रहित-निमेष इक टक ह्वै चितवत, इंदु सहज छबि ओर।
करत पान रस सुधा माधुरी, मानौं उभय चकोर।।२।।
इहि विधि मुदित प्रेम रस भीने, छिन-छिन रुचि उपजात।
'हित ध्रुव' मानहुँ रूप स्वाति जल, चातक चख न अघात।।३।।

हे सखि ! प्रियतम के आनन्द-पूरित नेत्रों का दर्शन तो करो, जो श्री प्रिया के मुखारविन्द का रस-पान करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो भ्रमर,

कमल का पराग पान कर रहा हो।।१।। वे अपलक एकटक हुए प्रिया के सहज चन्द्रवत् श्री मुख-छवि की ओर निहार रहे हैं, मानो उनके दोनों नेत्र-चकोर रसामृत माधुरी का पान कर रहे हों।।२।। इस प्रकार प्रेम-रस से भींजे हुए प्रसन्न मन प्रियतम प्रति-क्षण नयी-नयी रुचि उत्पन्न करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो प्रिया के रूप-सौन्दर्य रूपी स्वाति-जल का पान करते हुए चातक रूपी नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हों।।३।।

(२९) राग सारंग

अति विचित्र नवल कुँवर, राजत हैं दोऊ री।
सघन कुंज में खेलत ढिंग, सहचरि नाहिंन कोऊ री।।१।।
कहि-कहि कछू बात हँसि जात, मुदित रँग भीने री।
झलकत विवि बेसरि छवि, प्रान चोर लीने री।।२।।
कुँवर उरज परसन हित, जबहिं उर बिचारैं री।
कुँवरि अति प्रवीन तबहिं, नील पट सँभारैं री।।३।।
इहि विधि घन लतनि रंध्र, मगन सखी देखैं री।
'हित ध्रुव' तिहिं सुख में मगन, नैंन सफल लेखैं री।।४।।

अरी सखि ! आज युगल नवल कुँवर अत्यन्त विलक्षण शोभा को प्राप्त हैं। वे वृन्दावन की पत्र-पुष्प मण्डित सघन कुञ्ज में एकाकी क्रीड़ा परायण हैं। उनके समीप कोई सखी-सहचरी नहीं है।।१।। प्रसन्न एवं रँग भीने युगल परस्पर में कुछ रसभरी बातें कह-कह कर जब हँसने लगते हैं, तब दोनों के तरलित नासा-मौक्तिकों की झलमलाती छबि हमारे प्राणों को चुरा लेती है।।२।। जब रसिक कुँवर मन में प्रिया के उरोजों का स्पर्श करने की सोचते हैं, तभी अतिशय नागरी कुँवरि किशोरी अपना नीलाञ्चल सँभाल लेती है।।३।। सघन लता-कुञ्ज रन्ध्रों से लगी मग्न सहचरियाँ इस प्रकार की रस-लीला का दर्शन कर रही हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते है कि वे इसी सुख में सदा तल्लीन रहती हुई अपने नेत्रों को सफल मानती हैं।।४।।

(३०) राग सारंग

सोभित आज छबीली जोरी।
सुंदर नवल रसिक मन मोहन, अलबेली नव वैस किसोरी।।१।।
बेसरि उभय हँसनि में डोलत, सो छबि लेत प्रान चित चोरी।
'हित ध्रुव' फँदी मीन ये अखियाँ, निरखत रूप प्रेम की डोरी।।२।।

आज श्री लाड़ली-लाल की छवि पूरित जोड़ी अनुपम शोभा दे रही है। सुन्दर एवं नित्य नव-नवायमान् रूप-लावण्य-धाम रसिक मन-मोहन श्रीलाल जी और रूप विलक्षण नित्य-नूतन कुँवरि किशोरी की जोड़ी अपूर्व है।।१।। हँसते समय दोनों के नासा-मौत्तिक की विलक्षण थिरकन-छवि हमारे चित्त एवं प्राणों का अपहरण कर रही है । श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम रूपी बनसी की डोर में फँसी हुई हमारी ये मीन रूपी आँखें युगल के रूप का दर्शन करती रहती हैं।।२।।

(३१) राग सारंग

तैं जु लाल कैं बेंदी दीनी, रचि-रुचि सौं रँग-भीनी।
मनि अनुराग भाग की मानौं, प्रगट भाल पर कीनी।।१।।
मुकुर निहारि रीझि हँसि प्रीतम, प्रिया अंक भरि लीनी।
'हित ध्रुव' रस बस नागर दोऊ, छिन-छिन प्रीति नवीनी।।२।।

श्री प्रिया जी की निज सखी उनसे कहती है कि "हे प्यारी जू, आपने श्री लाल जी के भाल पर जो रुचि-पूर्ण रङ्ग भीनी रचना कर-कर के बेंदी धारण करायी है, मानो आपने उनके ललाट पर प्रत्यक्ष अनुराग एवं सौभाग्य की मणि जगमगा दी है।।१।। धारण की हुई बेंदी को जब प्रियतम ने दर्पण में देखा, तो वह प्रसन्नता से भर गये एवं उन्होंने रीझ कर प्रिया को अपने अंक में भर लिया। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि तब युगल नागर रस में सराबोर हो गये। इस प्रकार उनकी पारस्परिक प्रीति प्रतिक्षण नवीन होती रहती है।।२।।

(३२) राग सारंग

नवल चंद प्रिया वदन अति अनूप रूप सदन,
हँसनि नवल मंद चपल चितवनि सुखदाई।।
नवल अधर सरस लाल दसन झलक छबि रसाल,
छिन-छिन छबि होत नवल मन नहिं ठहराई।।१।।
निरखत सोभा गँभीर बिसरे पिय नैंन-चीर,
मनहुँ कमल रहे फूल तरनि उदय माई।।
नवल-प्रिया नव-किसोर नवल सखी चहूँ ओर,
नवल विमल प्रेम ऊपर 'हित ध्रुव' बलि जाई।।२।।

श्री प्रिया का सुन्दर मुख एक नूतन चन्द्रमा है, जो अतिशय एवं अनुपम रूप का धाम है। उनका नव-नव हास्य, मन्द एवं मधुर है तथा उनकी चञ्चल चितवन सहज सुखद है। प्रिया के रसमय अरुणिम नव अधर-पल्लव एवं रसमयी छवियुक्त दशनावली की झलक, जो प्रतिक्षण नयी-नयी होती रहती है उनके नित्य नवीन लावण्य पर मन टिक नहीं पाता, फिसल पड़ता है।।१।। प्रिया मुख की गम्भीर शोभा का दर्शन करके प्रियतम श्रीलाल जी पलकें गिराना भूल जाते हैं, तब ऐसा लगता है मानों सूर्योदय होने पर कमल विकसित हो रहे हों। ऐंसी नित्य नव प्रिया एवं नित्य नये किशोर लाल, जिन्हें चारों ओर से नित्य नयी सखियाँ घेरे रहती हैं, इन सब के नित्य-नूतन एवं उज्ज्वल प्रेम पर ध्रुवदास बलिहार जाते हैं।।२।।

(३३) राग सारंग

राजत वदनारविंद लसत चिबुक चारु बिंदु,
निरखि सरस हास मंद हियौ सिरात री।।
भूषन दुति अंग-अंग मनहुँ रूप-दधि तरंग,
अधरनि तें भये सुरंग दसन पाँत री।।१।।

गूँथित अति रुचिर केश लटकत बैंनी सुदेस,
सुंदर छवि सहज वेश कहि न जात री।।
चंचल लोचन विसाल कुंडल मनि जटित लाल,
गंडनि पर बनी रसाल तरल कांति री।।२।।
झलकत आनंद रूप नासा छबि जलज भूप,
डोलत अतिही अनूप रुचिर भाँति री।।
'हित ध्रुव' अलि लाल नैंन पायौ सुख कमल ऐंन,
बसत अहरु-रैन होत छिन महाँत री।।३।।

प्रिया का श्रीमुख कमल की भाँति शोभित है, जिसके चिबुक पर सुन्दर श्याम विन्दु जगमगा रहा है। उस छविपूर्ण मुखारविन्द के रसमय मन्द हास्य का अवलोकन करके हृदय शीतल हो जाता है। अङ्ग-अङ्गों के भूषणों की कान्ति ऐसी दीखती है, मानो रूप के समुद्र में लहरें उठ रही हों। अधर-पल्लवों की अरुणिमा से प्रतिविम्बित शुभ्र दन्त-पङ्क्ति अरुणिम वर्ण की दीख रही हैं।।१।। उनके अतिशय सुन्दर केशों की गुम्फित वेणी लटकती हुई बड़ी सुहावनी लगती है। छबियुक्त वेष-विन्यास की सुन्दरता कहने में नहीं आती। उनके नेत्र-द्वय विशाल और चञ्चल है। लाल मणियों से जड़े हुए युगल कर्ण-कुण्डलों की तरलित छवि कपोलों पर प्रतिबिम्बित हो रही है।।२।। प्रिया की आनन्दरूपिणी नासिका पर श्रेष्ठ मुक्ताफल की तरलित छवि अत्यन्त अनुपम एवं रुचिर है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि आज श्रीलाल के भ्रमर-रूपी नेत्रों ने सुखमय कमल का धाम प्राप्त कर लिया है, जहाँ वे अहर्निश निवास करते हुए प्रतिक्षण विक्षेप रहित भाव से रसलीन रहे आते हैं।।३।।

(३४) राग सारंग

हौं निज सखियनि की बलिहारी।
जुगल-प्रीति अरु रूप जिनहिं कै, जीवन यहै सुधा री।।१।।

नैननिं मग है पान करत दिन, तिहिं रस में रहैं लीन।
सहि न सकत पल पलकनि अंतर, जैसैं जल में मीन।। २ ।।
छिन-छिन नवल प्रिया सुख चाहत, और न मन कछु भावत।
'हित ध्रुव' जिहिं विधि रुचि प्यारी मन, तिहिं-तिहिं भाँति लड़ावत।। ३ ।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं नित्य विहारिणी श्री प्रिया की निज सहचरियों की बलिहारी जाता हूँ, जिनका आस्वादनीय जीवन अमृत है—लाड़िली-लाल युगल के प्रति सहज प्रीति एवं अहर्निश उनका रूप-दर्शन।।१।। वे अपने नेत्र-मार्ग से युगल के रूप-रस का निरन्तर पान करती हुईं उसी रस में सदैव लीन रही आती हैं। ये रूपानुरागी सखियाँ रूप-दर्शन में एक पलक का भी अन्तराय सहन नहीं कर सकती, जैसे मछली जल का किंचित् भी वियोग नहीं सह सकती।।२।। ये प्रतिक्षण नवल किशोरी प्रिया का ही सुख चाहती रहती हैं। उनके मन को प्रिया-रूप दर्शन के अतिरिक्त अन्य कुछ सुहाता ही नहीं। ये सखियाँ प्रिया के मन की जब और जैसी रुचि होती है, उसी भाँति उनको लाड़-लड़ाती रहती हैं।।३।।

(३५) राग सारंग

रसिक रंगीले मन हर्‌यौ, श्री राधावल्लभ लाल।
सखी री! जुगल जूथिका की बनी, उर बैजंती माल।।१।।
भीने रंग सुरंग में, दोऊ नवल किसोर।
खेलत नवल निकुंज में, चोरत चित चख-कोर।।२।।
सखी री! नील पीत पट अति बने, सोभित भूषन अंग।
लसत सीस पर चंद्रिका, दमकत मोतिनु मंग।।३।।
कुंडल खुभी बिराजहीं, स्रवननि अति छबि देत।
झलकत ओप कपोल की, सुंदर अलक समेत।।४।।
बेसरि उभय सुभग बनी, झलकत जलज सुदेस।
नैंन तृपित नहिं मानहीं, निरखत मोहन वेस।।५।।

झलकत कटि-तट किंकिनी, मोहत मृदु गति चाल।
हँसनि मंद मन बसि रही, चितवनि चपल रसाल।।६।।
मृदुल अंग वर सुंदरी, गहैं कुँवर भुज मूल।
विहरत अति अनुराग सौं, दिन-मनि-तनया कूल।।७।।
मधुर चारु सुर गावहीं, सुंदर वर सुकुँवार।
खग कुरंग सब मोहियै, ढरत नैन जलधार।।८।।
नवल सखी सब सोहईं, प्रेम मत्त रस लीन।
मिथुन रूप रस सिंधु में, रहति दिनहिं ज्यौं मीन।।९।।
अति अपार छवि अंग की, बरनत बनै न बैंन।
'हित ध्रुव' सुख मुख-कंज कौ, जानत हैं अलि नैंन।।१०।।

सखियाँ कहती हैं कि रङ्ग-रँगीले रसिक श्री राधावल्लभ लाल युगल ने हमारा मन हरण कर लिया है। हे सखि। युगल के हृदय-देश पर जूही के फूलों की बनी हुई माला शोभित है।।१।। दोनों ही नवल किशोर-किशोरी प्रेम-रङ्ग में भींजे हुए हैं एवं नव निकुञ्ज में क्रीड़ा करते हुए अपनी चितवन से सबका चित्त चुरा रहे हैं।।२।। हे सखी उनके अङ्गों में धारण पृथक्-पृथक् नील-पीत वस्त्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा उनके अङ्गों में विविध प्रकार के अलङ्कार सुशोभित हैं। लाल के शिरोभाग पर मयूर चन्द्रिका एवं प्रिया के शिर पर मोतियों की माँग शोभित है।।३।। इसी प्रकार लालजी के कर्णों में कुण्डल एवं प्रिया के कर्ण-मूल में खुभी विराजित हैं, जो सुन्दर अलकावली के साथ कपोलों को कान्ति प्रदान कर रहे हैं।।४।। दोनों की नक-बेसरों के मोतियों की कान्ति सुभग एवं सुहावनी है युगल के इस मन-मोहन रूप का दर्शन करते नेत्र कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करते।।५।। युगल के कटि-प्रान्त में किङ्किणियाँ तथा उनकी मद-मन्थर गति बरबस मन को मोहित करती रहती हैं। हे सखि ! युगल की मन्द मधुर मुसकान एवं उनकी रसमयी चपल चितवन हमारे मन में बस रही है।।६।। कोमलाङ्गी एवं श्रेष्ठ सुन्दरी

प्रिया की वाहु-लता को अपनी भुजाओं में धारण किये प्रियतम, प्रिया के साथ अतिशय अनुराग पूर्वक सूर्य-नन्दिनी श्री यमुना के तट पर विचरण करते बड़े सुहावने प्रतीत होते हैं।।७।। और जब हमारे सुन्दर वर सुकुमार युगल मधुर-मधुर स्वरों से गान करते हैं, तब वे श्रीवन के पशु एवं पक्षियों को भी मोहित कर लेते हैं और तब उन विमुग्ध खग-मृगों के नेत्रों से प्रेम-जल की धारा प्रवाहित होने लगती है।।८।। हे सखि ! श्री राधावल्लभ लाल के आस-पास सदैव प्रेम रस से मतवाली हुई सखियाँ शोभा देती हैं, मानो युगल के रूप एवं रस के समुद्र में मीन की भाँति वे निरन्तर लीन हों। श्री राधावल्लभ लाल के अत्यन्त एवं अपार छबिमय अङ्गों की शोभा वाणी से वर्णित नहीं की जा सकती। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल के मुख-कमल दर्शन-जन्य सुख को तो केवल भ्रमर रूपी सखियों के नेत्र ही जानते हैं।।१०।।

(३६) राग धनाश्री

राजति राधा नागरी, सुंदरता की रासि।
निरखत पिय मोहे सखी, सहज मंद मृदु हासि।
हो ! रसिक रँगीली सोहनी, मेरी नवल छबीली मोहनी।।१।।
अंग-अंग भूषन बने, सुंदर नील निचोल।
रतन कनक कुंडल खचे, तरलित रुचिर कपोल।।२।।
लटकति ललित सुहावनी, बैंनी गूँथित-केस।
मृगमद तिलक जु अति लसै, बैंदा मध्य सुदेस।।३।।
नैंन चपल अति सोहहीं, उज्ज्वल स्याम सुरंग।
चितवन पर वारौं सखी, खंजन मीन कुरंग।।४।।
अलक जलद छबि ऊनई, दसन बीजु चमकात।
अधर स्वाति रस बरषई, पिय चातिक न अघात।।५।।

नासा पुट बेसरि बनी, झलकत जलज सरूप।
दसन वसन प्रतिबिंब तें, सोभित सुरँग अनूप।।६।।
चिबुक स्याम बिंदु सहजही, निरखत अति सुख देत।
मनौं मधुप मन पीय कौ, वदन-कंज रस लेत।।७।।
कंठ वृंद-मुक्तावली, सोभित नग मनि लाल।
कर वलया कटि किंकिनी, अंगद बाहु मृनाल।।८।।
त्रिबली उदर तरंगिनी, नाभि रूप-रस ऐंन।
नवल रसिक पिय लाड़िलौ, करत पान दिन-रैंन।।९।।
जेहरि पायल अति बनी, नूपुर अति अभिराम।
चलत रुचिर सुनि राव पर, बंशी वारत स्याम।।१०।।
इंदु कोटि नख सम नहीं, कहाँ लगि कहौं बखान।
सहज सुभगता अंग की, बनति न उपमा आँन।।११।।
चरन चारु विवि सोहने, चित्रित जावक रंग।
'हित ध्रुव' नैंननिं में बसौ, सो छबि दिनहि अभंग।।१२।।

हे सखि ! सुन्दरता की राशि नागरी प्रिया श्री राधा आज विलक्षण शोभा से युक्त हैं , जिनकी सहज मन्द एवं मृदु मुसकान का अवलोकन करके प्रियतम श्री लाल जी मुग्ध हो रहे हैं, ऐसी हैं हमारी रसिक रँगीली शोभामयी नव-नव छबियुक्त मोहनी प्रिया।।१।। प्रिया के प्रत्येक अङ्ग में भूषण सुसज्जित हैं। उनके दिव्य देह पर नील-वर्ण का दुकूल शोभित है। रत्न-खचित स्वर्ण- कुण्डल रुचिर कपोलों पर तरल भाव से प्रतिविबिंत हैं।।२।। लम्बमान् केशों से गूँथी गई शिथिल एवं सुहावनी वेणी पीठ पर झूल रही है। ललाट-पटल पर कस्तूरी का तिलक अपार शोभा दे रहा है। साथ ही सीमन्त के मध्य-भाग में सुहावना बैंना (शीश-फूल) शोभित है।।३।। श्वेत-श्याम एवं अरुणिम नेत्रों की चपलता अनुपम है, जिनकी चितवन पर खञ्जन, मीन और हरिण न्यौछावर हैं।।४।। अलकावलि की छवि ऐसी दिखती है, मानो जल-पूरित श्याम मेघ उमड़ पड़े

हों, जिनके बीच दन्तावलि रूपी चपला चमक रही हो। अधर मानो स्वाति जल की वर्षा तो कर रहे हों परन्तु चातक रूपी प्रियतम उस का पान करके भी तृप्त नहीं हो पाते हों।५।। ललित नासिका-पुट पर तरलित बेसरि का उज्ज्वल मोती अरुण अधरों से प्रतिबिंबित होकर अनुपम अरुणिमा को धारण कर रहा है।।।६।। चिबुक पर आरोपित श्याम बिन्दु अवलोकन करते सहज ही अत्यन्त सुख देता है। ऐसा लगता है मानो प्रियतम का भ्रमर रूपी मन प्रिया के मुख-कमल का रस पान कर रहा हो। सुढ़ार ग्रीवा पर लाल मणि एवं अन्य नगों से युक्त मोतियों की मालाएँ शोभित हैं। हाथों की पहुँचियों में चूड़ियाँ, कटि देश में किङ्किणी एवं मृणालवत् भुजाओं पर बाजू-बन्द शोभा दे रहे हैं।।८।। उदर पर नाभि रूपी रस की कुण्डिका शोभित है, जिसमें त्रिवली तरङ्गित है, जिसका नवल रसिक रँगीले प्रियतम अहर्निश पान करते रहते हैं।।९।। श्री चरणों पर जेहरि, पायल एवं नूपुर अभिराम रूप से अलङ्कृत हैं। पाद-विन्यास के समय मुखरित ध्वनि पर प्रियतम श्याम-सुन्दर अपनी मधु-वर्षिणी वंशी को न्यौछावर करते रहते हैं।।१०।। प्रिया-चरणों के उज्ज्वल नखों की समता कोटि-कोटि चन्द्रमा भी नहीं कर सकते, तब मैं भला उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? नवल किशोरी के अङ्गों की सहज सुन्दरता के लिए अन्य उपमाएँ दी नहीं जा सकती।।११।। ऐसी सौन्दर्य राशि प्रिया के जावक-रङ्ग-रञ्जित् सुहावने युगल-चरण हित- ध्रुवदास के नेत्रों में अभङ्ग रूप से सदा बसे रहें, यही लालसा है।।१२।।

(३७) राग ईमन

प्रीतम के प्रान प्यारी, प्यारी जी के प्रान पिय,
प्रेम रासि एक रस, दोऊ छबि देखहीं।।
तृपित न होत क्यौं हूँ, बढ़त अधिक रुचि,
छिन-छिन चौंप नई लागै नैन न निमेषहीं।।१।।

रीझि-रीझि रंग-भरे उमगि लोइन ढरे,
अंक-अंक रहे भरि विवस विसेषहीं।।
'हित ध्रुव' यह गति हेरि कैं मगन भईं,
सखी सब ऐसैं रही मानौं चित्र रेख हीं।।२।।

श्री प्रिया जू प्रियतम के प्राण हैं और प्रिया के प्राण हैं प्रियतम। ऐसे प्रेम-राशि युगल परस्पर एक दूसरे की छवि का निरन्तर अवलोकन करते रहते हैं, तथापि किसी भी प्रकार तृप्त नहीं होते, वरं उनकी रूचि अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।।१।। प्रतिक्षण रूप-दर्शन की नयी-नयी उमङ्गें उठने के कारण युगल की नेत्र-पलकें लगती ही नहीं। उनके आनन्दपूरित नेत्र रीझ-रीझ कर प्रेमनीर ढलकाते रहते हैं। वे रस-विवश हुए परस्पर एक दूसरे को अङ्क में भरते रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल की ऐसी प्रेम-विवश स्थिति का अवलोकन कर रस मग्न हुई सब सखियाँ ऐसे स्तम्भित रह जाती हैं, मानो चित्र की रेखाएँ हों।।२।।

(३८) राग ईमन

राधिकावल्लभ प्यारी सोहै तन नील सारी,
सौंधे भींजी अँगिया सुदेस कसि कैं तनी।।
अंग-अंग सुमिलि सुभूषन सुदेस अति,
नील मनि पदिक की सोभा कंठ ते बनी।।१।।
नवल चपल अनियारे कजरारे नैंन,
महा मैंन मन हर्‌यौ नैंकु ही की चितवनी।।
लटक्यौ मुकट और खसि पर्‌यौ पीत-पट,
'हित ध्रुव' अंक भरे गज-गति-गवनी।।२।।

श्री वल्लभ लाल जू की प्रिया श्री राधिका के सुन्दर तन पर नील वर्ण की साड़ी एवं सुगन्ध से सनी हुई सुन्दर कञ्चुकी भली प्रकार कसी हुई

शोभित है। उनके अङ्गों में सुढार एवं सुन्दर आभूषण धारण हैं तथा कण्ठ-देश में इन्द्र-नील-मणि पदिक से युक्त हारावली शोभा दे रही है।।१।। किशोरी के चपल नेत्र अनियारे और कजरारे हैं, जिन्होंने एक ही चितवन में महामदन रूपी प्रियतम का भी मन हरण कर लिया है, जिससे उनका मुकुट एवं पीताम्बर अपने स्थान से च्युत हो रहा है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि यह देखकर गज-गामिनी प्रिया ने प्रियतम को अपने अङ्क में भर लिया है।।२।।

(३९) राग ईमन

राधिका वल्लभ प्यारी, सहजहि सुकुँवारी,
अंग-अंग गुन निधि रूप रासि रस की।।
सलज सुरंग सित असित दीरघ दृग,
चितवनि सहजहिं सुखद सरस की।।१।।
सारी नील रही फबि भूषन झलक छबि,
हरै दुति दामिनी अरु भान कोटि-दस की।।
प्रीतम किसोर जू के लोइनि चकोर भए,
चितवत 'हित ध्रुव' सोभा नख-ससि की।।२।।

प्रियतम श्री लाल जी की प्रिया श्री राधा सहज ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोमलाङ्गी, गुणों की भण्डार तथा रस एवं रूप की राशि हैं। उनके सुदीर्घ नयन सलज्ज तो हैं ही श्वेत, श्याम और रतनारे भी है, जिनकी सहज चितवन रसपूर्ण एवं सुखद है।।१।। प्रिया के श्री अङ्ग पर नील-वर्ण की साड़ी फब रही है। अङ्गों में धारण किये हुए भूषणों की छवि विद्युल्लता की दुति एवं दस कोटि सूर्यों की कान्ति हरण कर रही है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया के नखचन्द्र की शोभा देखकर किशोर प्रियतम श्रीलाल जी के नेत्र चकोर हो रहे हैं।।२।।

(४०) राग ईमन

नवल चपल कजरारी अँखियनि चितै, हँसी मुरि कै कछु पिय तन।
सरस कनक अंबुज विकसत ही, निकसत अलि मुद्रित मनौं तिहि छिन।।१।।
रहे चकित लाल बाल-मुख चितवत, पल-पल प्रति उपजत सोभा गन।
'हित ध्रुव' दिनहीं लाल रासि रस लोभी, तिहि बिन और सुहात न कछु मन।।२।।

जब नवल प्रिया अपनी चञ्चल-कजरारी आँखों से प्रियतम की ओर देखकर अँगडाई लेती हुई हँसी, तब उनके नेत्र-गोलकों की शोभा ऐसी प्रतीत हुई, मानो रसपूर्ण स्वर्ण-कमल का विकास होते ही मुद्रित पीत कमल-कोष से तत्क्षण श्याम-वर्ण के भ्रमर बाहर निकल पड़े हों। नव बाला के मुख-मण्डल से प्रतिपल उत्पन्न होते हुए शोभा-समूह का दर्शन करते ही रसिक प्रियतम चकित रह गये। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सदा सर्वदा रस-राशि के लोभी श्रीलालजी के मन को श्री प्रिया-रूप-दर्शन के अतिरिक्त अन्य कुछ सुहाता ही नहीं हैं।।२।।

(४१) राग ईमन

तेरे नैंन देखत नैंन भूले, उपमा कही न जाइ।
मोहि रहे बिसरी सुधि तन की, रूप-तरंग रहे हिय छाइ।।१।।
परम प्रवीन प्रेम रँग सींवा, रुचि लियैं चितवत मोहन भाइ।
'हित ध्रुव' रीझि रसिक रँग भीनें, पाइ-पाइ सुख चूँवत पाँइ।।२।।

सखी ने कहा, " हे प्रिये ! तुम्हारी नेत्र-छवि का दर्शन करते ही प्रियतम के नेत्र अन्य सब कुछ देखना भूल गये, ऐसे अनुपम हैं तुम्हारे नेत्र, जिनकी उपमा कहीं मिलती ही नहीं। तुम्हारे नेत्रों की छवि देखते ही प्रियतम को अपनी देह की सुधि सर्वथा ही विस्मृत हो चुकी है और उनके हृदय में तुम्हारे रूप की तरङ्गें छाई हुई हैं।।१।। यद्यपि प्रियतम चतुर शिरोमणि एवं प्रेमानन्द की अवधि हैं, तथापि ऐसे मोहन लाल तुम्हारी रुचि एवं प्रसन्नता की वाञ्छा

करते रहते हैं। श्रीहित ध्रुवदास जी कहते हैं रीझे हुए रङ्ग-भीने रसिक तुमसे बारम्बार सुख प्राप्त करके तुम्हारे चरणों को चूमते रहते हैं"।।२।।

(४२) राग केदारौ

नवल कुँवरि मुख-कमल रूप-रस, करत पान नागर-नैंना अलि।
त्रिपित होत नहिं नव-नव भाइनु, अटके सकत न इत-उत कहुँ चलि।।१।।
परत न पलक अलक-छबि निरखत, बैंदी-भाल कंठ-मुक्तावलि।
'हित ध्रुव' चाहत यहै रहै अब, नासा-मूल कपोल चिबुक रलि।।२।।

श्री नवल-किशोरी का मुख मानो कमल है, जिस रूप-कमल का रस-पान करते हैं परम चतुर प्रियतम के नेत्र रूपी भ्रमर। प्रियतम के नेत्र-रूपी भ्रमर प्रिया-मुखारविन्द पर प्रकट होने वाले नये-नये भावों का दर्शन-पान करते हुए भी कभी तृप्त नहीं होते और ऐसे अटके हुए हैं कि कहीं इधर-उधर जा भी नहीं सकते।।१।। आश्चर्य है कि नागर प्रियतम के ये नेत्र-द्वय अपनी पलकें गिराना भी भूल गए हैं। निरन्तर प्रिया की केश-कुन्तल छवि, ललाट की बैंदी एवं कण्ठ देश की मुक्तावली को ही एकटक देखते रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि वे यह चाहते रहते हैं कि मैं अब प्रिया के नासिका-मूल, कपोल एवं चिबुक से अपना आत्मसात् कर लूँ।।२।।

(४३) राग केदारौ

प्रिया मुख निरखत नवल किसोर।
मनहुँ सहज राकेस अमी प्रति, चितवत चकित चकोर।।१।।
छिन-छिन नई-नई छबि उपजत, पल-पल में रुचि और।
'हित ध्रुव' बसौ कुँवर उर ऐसैं, परम रसिक सिरमौर।।२।।

श्रीप्रिया जी के मुख-मण्डल का दर्शन करते नवल-किशोर प्रियतम ऐसे दिखते हैं, मानो राका-पति चन्द्रमा में निवसित अमृत को प्राप्त करने

की लालसा से चकित हुआ चकोर अपने प्रिय चन्द्रमा को सहज एकटक निहारता रहता है।।१।। और इधर प्रिया के श्रीमुख की विशेषता है कि उसमें प्रतिक्षण नूतन-नूतन छवियों का उद्‌भव होता रहता है तथा प्रतिपल रोचकता भी बढ़ती रहती है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी यही कामना है कि ऐसे परम रसिक शिरोमणि युगल-किशोर प्रियतम सदा-सर्वदा मेरे हृदय में बसे रहें।।२।।

(४४) राग मारू

एरी हौं दंपति रंग रँगी।
प्यारौ प्यारी के प्रेम रँग्यौ, रहै रूप लुभाई।
विकच कनक कंज वदन, निरखत न अघाई।।१।।
अलक एक वेसरि सौं, अरुझी जब आई।
अवलोकत ही प्रान वारत, नवल रसिक-राई।।२।।
पिय किसोर ओर जबहि, चितवत मुसिकाई।
विवस होइ रहत सीस, चरननि सौं लाई।।३।।
अति अभूत दसा देखि, भरे अंक धाई।
मिथुन कुँवर नेह सखी, कैसेहुँ कह्यौ न जाई।।४।।
भईं अधीर चितै सखी, सुख समुद्र पाई।
रह्यौ प्रेम-नीर सबहिनु के, नैंननि झलकाई।।५।।
धरैं धीर क्यौं न चित्त, निरखौ छबि माई।
'हित ध्रुव' भई मगन आप, सखियनि समुझाई।।६।।

सखी भावापन्न रसिक सन्त श्री हित ध्रुवदास जी अपनी भावानुभूति को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं कि, हे सखि ! मैं रसिक दम्पति श्री लाड़िली-लाल के प्रेम रङ्ग से रँग गयी हूँ। दम्पति का प्रेम दर्शनीय है, देखिये तो सही प्रियतम अपनी प्रिया के प्रेम में रँगे हुए तो हैं ही, उनके रूप पर भी लुब्ध हैं। वे विकसित स्वर्ण-कमल रूपी प्रिया के श्री मुख का अवलोकन करते

अघाते नहीं हैं।।१।। प्रिया की केश-राशि से वियुक्त हुई एक लट जब उनकी ही नक-बेसरि से आ उलझती है तब नित्य नवल-रसिक-राय उस शोभा का अवलोकन करते ही अपने प्राणों को न्यौछावर करने लगते हैं।।२।। जब कभी नवल किशोरी प्रिया मुस्कराती हुई प्रियतम की ओर देखने लगती हैं, तब तो प्रियतम प्रेम-विवश हुए अपना सिर प्रिया चरणों में विलुण्ठित करने लगते हैं।।३।। तब प्रियतम की अभूत दशा को देखकर प्रेम-निधि प्रिया आतुर-भाव से उन्हें अपने अङ्क में भर लेती हैं। हे सखि! युगल रसिक कुँवर का यह पारस्परिक प्रेम किसी भी प्रकार कहने में नहीं आता है।।४।। अस्तु, श्री लाड़िली लाल की पारस्परिक प्रेम-स्थिति का दर्शन करके सभी राखियाँ प्रेम के समुद्र में मग्न हो गई हैं। सभी के नेत्रों में प्रेम-जल छलक आया है।।५।। श्री हित ध्रुवदास रूपा सखी स्वयं युगल प्रेम में मग्न होकर भी सब सखियों को समझा रही हैं कि "हे सखियो! आप सब चित्त में धैर्य धारण करके युगल की प्रेम-छवि का अवलोकन करें।।६।।

(४५) राग मारू

जब चितई कजरारे नैंननि।
बिवस भये मनमोहन घेरे, चहूँ ओर तें प्रेम के मैंननि।।
मुसिकनि मंद रहे चितवत ही, बस किये लाल मधुर मृदु बैंननि।
'हित ध्रुव' रज बंदत अति प्यार सौं, धरति चरन प्यारी जिहि गैंननि।।४५।।

जब प्रिया ने अञ्जन-रञ्जित नेत्रों से प्रियतम की ओर दृष्टिपात किया, तो मनमोहन लाल प्रेम-विवश तो हुए ही वरं उनको चारों ओर से प्रेम रूपी कामदेवों ने घेर लिया। तब तो प्रियतम सुन्दरी प्रिया की मन्द मुसकान को ही देखते रह गये, मानो लाड़िली ने उन्हें अपनी मृदु एवं मधुर वचनावली से वशवर्ती कर लिया हो। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि तभी तो प्रियतम अतिशय प्रीतिपूर्वक उस चरण-धूलि की वन्दना करते रहते हैं, जिस मार्ग पर प्रिया अपने चरणों को स्थापित करती हुई गमन करती हैं।।४५।।

(४६) राग बिहागरौ

मन मोहन मन मोहनी।
चितवनि मुसिकनि सहज रँगीली, अतिहि छबीली सोहनी।।
कहा कहौं रँग प्रेम की सींवा, पिय तन प्यार की जोहनी।
'हित ध्रुव' मनहुँ सुधा-रस ढारति, आनँद सौं पति-रोहनी।।४६।।

श्री लाड़िली प्रिया मन-मोहन प्रियतम के भी मन को मोहित करने वाली महामोहनी हैं। उनकी चितवन एवं मुसकान स्वाभाविक ही रङ्ग रँगीली है। वे आत्यन्तिक रूप से छविमयी एवँ शोभना हैं। मैं उनका क्या वर्णन करूँ? वे आनन्द एवं प्रेम की परावधि हैं, जो सदा प्रियतम की ओर प्रेम-दृष्टि से ही निहारती रहती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनकी प्रेम-दृष्टि को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो चन्द्रमा आनन्दपूर्वक अमृत रस प्रवाहित कर रहा हो।।४६।।

(४७) राग बसंत

राजैं श्री वृंदावन नव निकुंज। तहाँ मधुप करत अनुराग गुंज।।टेक।।
जहाँ गौर-स्याम छवि नवल रास। आई रितु बसंत भयौ हिय हुलास।।
जहाँ चंदन-बंदन मथि सुवास। दोउ छिरकत हँसि-हँसि करैं बिलास।।१।।
जहाँ नवल-नवल सखी यूथ संग। कर एकनि बीना डफ मृदंग।।
लियैं एक गुलाल सुरंग रंग। भए सुरँगित बसन सुदेस अंग।।२।।
जहाँ निर्त्तत रसिक किसोर जोर। छवि निरखि थके चहुँ ओर मोर।।
जहाँ बंसी-रव सुनि स्रवन थोर। खग-कुरंग बँधे प्रेम डोर।।३।।
जहाँ कुम-कुम जलकन तन सुदेस। फवि रहे कुंचित रुचिर केस।।
जहाँ 'हित ध्रुव' निरख अनूप वेस। कछु कहि न सकत छबि छटा लेस।।४।।

ऋतुराज वसन्त के आगमन पर वृन्दावन की नव निकुञ्जें अपूर्व शोभा को प्राप्त हैं। जहाँ भ्रमरगण अनुरागपूर्ण गुञ्जार करते रहते हैं। नित्य नवीन

छवि पुञ्ज गौर-श्याम लाड़िली-लाल का हृदय वसन्त ऋतु के आगमन से उल्लसित हो उठा है। युगल ने अगरू-चन्दन, सिन्दूर एवं सुवासित परिमल द्रव्यों का मन्थन करके विलक्षण पङ्क निर्मित की है और वे परस्पर में छिड़कते हँसते हुए विलास-सुख परायण हैं।।१।। उनके साथ नव-यौवना सखियों के अनेक यूथ हैं, जिनमें किसी के हाथ में वीणा, किसी के डफ और किसी के मृदङ्ग वाद्य हैं। कोई-कोई सखियाँ झोलियों में अरुणिम रङ्ग का गुलाल लिये हुए हैं। गुलाल के छिड़काव से रसिक युगल के वस्त्र एवं श्रीअङ्ग सुरञ्जित हो रहे हैं।।२।।युगल नव किशोर रसिक, आज नृत्य-परायण हैं, जिनकी नृत्यमयी छवि का अवलोकन करके चारों ओर से घेरे हुए मयूरगण विथकित हो रहे हैं। वंशी का मधुर रव जो अपने आप में अत्यन्त मोहक है, श्रवण करके श्री वन के खग-मृग मानो प्रेम की डोरी से बँध गये हैं। युगल किशोर के श्रीवपु पर केशर मिश्रित जल-कण अत्यन्त सुहावने लग रहे हैं। उनके काले, घुँघरालेु, सुहावने केश रङ्ग एवं गुलाल से सने हुए अपूर्व शोभा को प्राप्त हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि लाड़िली-लाल का यह वासन्तिक वेष देखते ही बनता है। इस छवि छटा के लेशमात्र का भी वर्णन कर सकना मेरे लिये असम्भव कार्य है।।४।।

(४८) राग आसावरी

देखि सखी नव कुंज, (श्री) राधा-लाल बने री।
रँगमगे अंगनि चीर, प्रेम सुरंग सने री।।१।।
मोर चंद्रिका सीस, बैंनी ललित गुही री।
बरन-बरन बहु रंग, मेदिनी चंप जुही री।।२।।
कुम-कुम तिलक सुचारु, मृगमद आड़ करी री।
बैंदी मध्य सुदेस, मोतिनु माँग भरी री।।३।।
कुंडल कल तांटंक, गंडनि झलक सुहाई।
बरसत मनौं छवि रंग, अधरनि की अरुनाई।।४।।

नासा जलज अनूप, वेसरि सुभग बनी री।
चंचल नैंन विसाल, अंजन-रेख ठनी री।।५।।
करि षोडस सिंगार, सखियनि अधिक बनाये।
भाँति-भाँति के लाड़, लाड़िली-लाल लड़ाये।।६।।
खेलत दोउ जन फाग, अति अनुराग भरे री।
करत चारु कल गान, मानस-मृगनि हरे री।।७।।
सोभित सखियनि वृंद, मध्य किसोर-किसोरी।
छिरकत कुम-कुम नीर, हँसि-हँसि पिय दिसि गोरी।।८।।
बाजत मधुर मृदंग, किंकिनि रुचिर सुनी री।
ताल बीन मुँहचंग, बंसी मधुर धुनी री।।९।।
कंचन डफ लियैं हाथ, बोलत हो-हो होरी।
डोलत भरे आनंद, दोऊ जन बाहाँ-जोरी।।१०।।
लटकत पहुँची चारु, पटकत ज्यौं-ज्यौं तारी।
भीने रस अनुराग, प्रीतम नवल प्रिया री।।११।।
यह सुख अद्भुत देखि, चित्त न नैंकु टरै री।
'हित ध्रुव' आनँद-वारि, नैंननिं तें जु ढरै री।।१२।।

हे सखि ! देखो तो सही, आज श्री राधा-लाल युगल बसन्त-कालीन-वृन्दावन की शोभापूर्ण नूतन कुञ्ज में विराजमान् होकर क्या ही अपूर्व छवि को प्राप्त हैं। उनके हृदय प्रेम के सुन्दर रङ्ग से सराबोर तो हैं ही श्रीअङ्गों के वस्त्र भी होली के रङ्ग से अनुरञ्जित् हैं।।१।। श्री लाल के शिरोभाग पर मयूर चन्द्रिका शोभित है और श्री प्रिया की ललित वेणी कितनी सुढ़ार गूँथी गई है, जिसमें अनेक रङ्ग के बहुत से डहडहे पुष्प, मेदिनी, चम्पक एवं जूथिका आदि गुम्फित हैं।।२।। लाल के ललाट पर केशर का सुन्दर तिलक एवं कस्तूरी की कृष्ण वर्ण-बिन्दी शोभित है। इसी प्रकार प्रिया के ललाट पर

सुन्दर बैंदी एवं समिन्त भाग में मोतियों की लड़ी जगमगा रही है।।३।। लाल के कर्ण-कुण्डलों एवं प्रिया के सुहावने ताटङ्कों का प्रतिविम्ब उनके कपोलों पर झलक रहा है। युगल के अधरों की अरुणिमा मानो सौन्दर्य छवि की वृष्टि कर रही हो।।४।। युगल के नासिकाग्र पर उज्जवल मोतियों की झलक अतिशय सुहावनी है तथा उनके चञ्चल एवं विशाल नेत्रों में अञ्जन की रेखा बड़ी ही मन-हरण है।।५।। सखियों ने युगल को सोलहों शृङ्गार से अधिकाधिक सुसज्जित किया है एवं अपने प्रेमास्पद लाड़िली-लाल को अनेक प्रकार के लाड़-प्यार अर्पित किये हैं।।६।। सखियों के लाड़िले युगल अत्यन्त अनुराग से भरे हुए आज फाग खेल रहे हैं। उनका परम सुन्दर एवं मधुर गान मानव तो क्या मृगादि पशुओं को भी मोहित कर रहा है।।७।। सखी समूह के मध्य में शोभित किशोर-किशोरी युगल वारम्वार हँसते मुस्काते हुए परस्पर केशर-रञ्जित जल छिड़क रहे हैं।।८।। हे सखी! केलि प्रसङ्ग में मृदङ्ग की मधुर ध्वनि के साथ नृत्य-परायण युगल की किङ्किणी का भी रुचिमय स्वर मिला हुआ सुनाई दे रहा है। साथ ही ताल-वाद्य, वीण, मुखचङ्ग एवं वंशी की मधुर ध्वनी भी श्रवण-गोचर हो रही है।।९।। युगल अपने हाथों स्वर्ण निर्मित डफ (होली के अवसर पर बजाया जाने वाला वाद्य विशेष) लिये हुए "हो-हो-होरी" के रसोन्मादक शब्द उच्चारण कर रहे हैं एवं दोनों ही अपनी भुजलताओं को मिलाये हुए अर्थात् बाहु-बद्ध हुए आनन्दपूरित तन-मन से यहाँ-वहाँ विचरण कर रहे हैं।।१०।। वे ज्यों ज्यों ताली पटकते हैं, त्यों-त्यों उनकी कलाइयों की सुन्दर पहुँचियाँ लटकती हुईं बड़ी सुहावनी लगती हैं। नवल-प्रिया एवं नवल-प्रियतम अनुराग के रस में भीजे हुए हैं।।११।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस अद्भुत सुख का अवलोकन करके मेरा चित्त वहाँ से किञ्चित् भी नहीं हटता अपितु नेत्रों से अनवरत जल की धारा प्रवाहित हो रही है।।१२।।

(४९) राग गौरी

प्रथम नवल वृंदावन गाऊँ, अति ही रसाल।
रँग भीने जहाँ खेलत, राधावल्लभ लाल।।१।।

नवल प्रिया मन उपज्यौ, अतिही आनँद मोद।
कछुक सखी न्यारी कै, दीनीं प्रीतम कोद।। २।।
नवल विनोद रच्यौ है, नवल तरनिजा कूल।
जानि फाग-रितु बाढ़ी, सबहिनु के मन फूल।। ३।।
मृगमद चंदन कुम-कुम, वंदन अतिहि सुरंग।
कनक कलसियन भरि-भरि, लीने हैं वहु रंग।। ४।।
प्रियहि भरन हित नागर, आए निकटहिं धाइ।
सखियनि अंचल ओटि कै, लीनी कुँवरि बचाइ।। ५।।
चहुँ-दिसि तें तब सबहिनु, दियौ गुलाल उड़ाइ।
फिरि पाछैं ह्वै जब गहे, रहे कुँवर सिर नाइ।। ६।।
सखी एक पिचकारी, आनि प्रिया कर दीन।
भरे लाल बहु भाँतिनु, मन भायौ सोइ कीन।। ७।।
वसन भींजि लपटाने, सोभा बढ़ी सुभाइ।
मनहुँ रूप-रस-सिंधु तें, निकसे हैं दोउ न्हाइ।। ८।।
तारी तार डफ किन्नरी, स्वर मंदर मुँहचंग।
एकहि स्वर बाजैं सबैं, बीना मधुर मृदंग।। ९।।
नवल-नवल गति निर्त्तत, सहचरि सरस सुधंग।
बिच लटकत दोऊ लाड़िले, रँग भरे अँग-अंग।।१०।।
अति सुदेस पहुँचिनु के, लटकन रहे सखि सोहि।
ऐसी को जु न मोहै, प्राननि यह छबि जोहि।।११।।
अति अभूत रस बाढ्यौ, करत हास-परिहास।
'हित ध्रुव' नवल रँगीले, दंपति सुख की रासि।।१२।।

आज मैं सर्व प्रथम नित्य नव-नवायमान् अतिशय रसमय श्री वृन्दावन का यशोगान करूँगा, जहाँ नित्य आनन्द रङ्ग-रञ्जित् रसिक मुकुट-मणि श्री राधावल्लभ लाल नित्य क्रीड़ा-परायण रहते हैं।।१।। किसी समय प्राण-

वल्लभा नवेली प्रिया के मन में अतिशय आनन्दोल्लास का मनोरथ हुआ, त्यों ही उन्होंने अपने पक्ष की कुछ सखियों को क्रीड़ा के लिए अपने यूथ से पृथक् करके प्रियतम के पक्ष में दे दिया।।२।। तत्पश्चात् उन्होंने नित्य नव छविमयी श्री यमुना के तट पर एक नूतन विनोद-क्रीड़ा की रचना की। वसन्त-कालीन फाग-क्रीड़ा की ऋतु का अवसर समझ कर सभी सखियों के मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई।।३।। तब तो उन सखियों ने कस्तूरी, चन्दन, केशर, सिन्दूर आदि सुरङ्गित एवं सुगन्धित द्रव्यों के बहुत से संयुक्त घोल बना कर स्वर्ण-निर्मित छोटे-बड़े कलशों में भर-भर कर अपने हाथों में ले लिए। उस समय चतुर शिरोमणि रसिक राय प्रियतम भी प्रिया को रङ्ग-रञ्जित करने के लिये उनके समीप भागते आ पहुँचे और उन्होंने प्रिया पर रङ्ग की पिचकारी भी छोड़ दी; किन्तु प्रिया पक्ष की सावधान एवं चतुर सखियों ने अपने-अपने अञ्चलों की ओट करके प्रिया पर रङ्ग की छींट पड़ने से बचा लिया।।५।। तत्पश्चात् इन सखियों ने एक साथ चारों ओर से आकाश में लाल-लाल गुलाल उड़ा कर धुन्ध उत्पन्न कर दी और तब पीछे से जाकर प्रियतम को पकड़ लिया लज्जित और विवश हुए प्रियतम सिर झुका कर रह गये।।६।। तत्काल ही एक सखी ने श्रीप्रिया के हाथों में रङ्ग से भरी हुई पिचकारी थमा दी और तब तो प्रिया ने लाल को बहुत प्रकार से रङ्ग-रञ्जित ही नहीं किया अपितु जो चाहा सो कर लिया।।७।। उस समय रङ्ग-भींजे वस्त्रों में लिपटे हुए युगल प्रियतम की शोभा ऐसी-मनभावनी लगी मानो युगल प्रियतम रूप एवं रस के समुद्र में से डुबकी लगा कर निकले हों।।८।। तभी ताल-वाद्य, तान वाद्य, डफ, किन्नरी, स्वर-मञ्जरी, मुखचङ्ग, मधुर -मधुर वीणा और मृदङ्ग सभी वाद्य साथ-साथ एक स्वर से बज उठे।।९।। सहचरियाँ नयी-नयी गतियों से सुधङ्ग नृत्य करने लगीं। उनके मध्य, अङ्ग-अङ्ग रङ्ग-रञ्जित् युगल लाड़िले नृत्य मुद्रा में लटकने एवं झूमने लगे।।१०।। हे सखि ! उस समय युगल की पहुँचियों की लटकन बड़ी सुहावनी लग रही थीं। इस छवि का अवलोरकन करके जिसके प्राण विमुग्ध न हों ऐसी कौन है ? अर्थात् कोई नहीं।।११।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस वासान्तिक क्रीड़ा के अवसर पर हास-परिहास परायण युगल-परिकर में अभूत रस की वृद्धि हुई; क्योंकि वृन्दावन विलासी नवल रँगीले दम्पति श्री लाड़िली-लाल अनन्त सुखों के भण्डार हैं।।१२।।

(५०) राग गौरी

खेलत लाड़िली लाल होरी।
मृगमद चंदन-बंदन-डारत, अरु सुरंग कुमकुम घोरी।।१।।
डफ मृदंग बीना मिलि बाजत, सुदेस वंसी र व थोरी।
चहुँ-दिसि सखियनि मंडली निर्त्तत, बिच लटकत दोउ बाहाँ जोरी।।२।।
अलक हार छूटे पट भूषन, छुटि रही कबरी की डोरी।
अति अनुराग मगन नहिं जानत, श्रमित भई कछु नवल-किसोरी।।३।।
भरि लई अंक रसिक मनमोहन, करत पवन निज अंचल छोरी।
'हित ध्रुव' प्रेम सिंधु रस बाढ़्यौ, सहज ही मेड़ नेम की तोरी।।४।।

श्री लाड़िली-लाल होली खेल रहे हैं। वे परस्पर में एक-दूसरे पर कस्तूरी, चन्दन, बन्दन एवं केशर का चटकीला रङ्ग घोल कर डाल रहे हैं।।१।। खेल के समय डफ, मृदङ्ग, वीणा के मिलित वादन में सुमुधर वंशी का रव भी सुनाई देता है। चारों ओर नृत्य करती हुई सखियों की मण्डली के मध्य में बाहु-बद्ध युगल लटकते हुए नृत्य करते शोभा देते हैं।।२।। उनकी अलकावली, हारावली, वस्त्र एवं आभूषण सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो चुके हैं। कबरी-बन्धन की डोरी भी खुल गई है। यद्यपि प्रेम की अतिशय मग्नता के कारण स्वयं को श्रम का बोध तो नहीं है किन्तु नवल-किशोरी कुछ-कुछ श्रमित अवश्य हो गई है।।३।। उन्हें श्रमित जानकर रसिक मन-मोहन प्रियतम ने उन्हें अपने अङ्क में ले लिया है एवं अपने पीताम्बर के छोर से उन पर बयार कर रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस होली के खेल में प्रेम-रस का जो समुद्र उमड़ा, उसने नेम की मर्यादा को सहज ही तोड़ दिया।।४।।

(५१) राग गौरी

खेलत फाग अधिक छबि पावैं।
नवल-किसोर किसोरी रँग भरे, सुरँग सुगंध गुलाल उड़ावैं।।१।।
ताल मृदंग हुड़क डफ बीना, सुघर सखी चहुँ ओर बजावैं।
लटकनि झटकनि पटकनि करननि, बचननि हो-हो होरी गावैं।।२।।
चंदन कुमकुम मृगमद सौं मथि, आपुन में छिरकैं छिरकावैं।
'हित ध्रुव' ज्यौं-ज्यौं प्यारी की रुचि, त्यौं-त्यौं हित सौं लाड़ लड़ावैं।।३।।

आज युगल फाग खेलते अधिक शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। आनन्द-रङ्ग से भरे हुए नवल किशोर-किशोरी युगल सुगन्धित एवं सुरङ्गित गुलाल उड़ा रहे हैं।।१।। उनके चारों ओर सुन्दरी सखीगण ताल-वाद्य, मृदङ्ग, हुड़क, डफ एवं वीणा बजा रही हैं। मध्य में हाथों की ताली पटकते हुए लटकन-झटकन के साथ रसिक युगल हो-हो का उच्चारण करते हुए होली के गीत गा रहे हैं।।२।। फिर कभी चन्दन, केशर एवं कस्तूरी का मन्थन करके परस्पर छिड़कते-छिड़काते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की जैसी-जैसी रुचि होती है रसिक प्रियतम उन्हें उसी प्रकार लाड़ लड़ाते हैं।।३।।

(५२) राग काफी

लाड़ लड़ैती जू खेलहीं, आजु होरी कौ त्यौहार हो।
फूली संग सखी सबै, निरखतिं प्रेम-विहार हो।।१।।
प्यारी पहिरैं सारी केसरी, दियैं बैंदी लाल गुलाल हो।
मोहे मोहन मोहनी, चितवनि नैंन विसाल हो।।२।।
अद्‌भुत उड़नि गुलाल की, पिचकारिनु धार निहार हो।
मानौं घन अनुराग के, बरसत आनँद वारि हो।।३।।

लटकनि ललित सुहावनी, पद पटकनि करनि सुदेस हो।
झटकनि उर हारावली 'ध्रुव' कहि न सकत छबि लेस हो।।४।।

आज होली का त्यौहार (पर्व) है, अतएव लाड़िली-लाल होली खेल रहे हैं। उनके प्रेम-विहार का दर्शन करके साथ की सभी सखियाँ परम प्रसन्न हैं।।१।। खेल के समय प्रिया ने केशरी रङ्ग की साड़ी धारण कर रखी है एवं ललाट पर लाल रङ्ग के गुलाल की बिन्दी लगा रखी है। मोहनी प्रिया के विशाल नयनों की चितवन का दर्शन करके श्री मोहनलाल मोहित हो रहे हैं।।२।। इस क्रीड़ा के अवसर पर उड़ते हुए गुलाल की घुमड़न अद्‌भुत है तथा रङ्ग भरी पिचकारियों की धाराएँ देखने योग्य हैं। इस रङ्ग-गुलाल के दृश्य का अवलोकन करके ऐसा लगता है, मानो अनुराग के अरुणिम मेघ आनन्द रूपी जल की वर्षा कर रहे हों।।३।। नृत्य करते हुए युगल की लटकन-मटकन बड़ी ही ललित एवं सुहावनी है। उनके चरणों की पटकन लय ताल-युक्त हैं एवं कर-कमलों के इङ्गित बड़े सुन्दर दिखते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि परस्पर में युगल की हारावली झटकने की छवि-छटा का लेशमात्र भी वर्णन करना असम्भव है।।४।।

(५३) राग विहागरौ

रँग भरे राधा-लाल अति रस फूले। खेलत फिरत होरी रविजा के कूले।।१।।
गोरी-गोरी सखी जेती तिन मधि गोरी। साँवरी सहेली भईं साँवरे की ओरी।।२।।
चंदन-अगरसत-कुमकुम कौ नीरा। सुरँग सुगंध बहु भाँतिनु अबीरा।।३।।
भाजन विविध रंग भरि-भरि लीने। छिरकैं घातिनि तकि रस में प्रवीने।।४।।
सुरँगित भए सोहैं अंगनि के चीरा। रंगनि की बूँदें बनी सुभग सरीरा।।५।।
हुड़्क, गजक, बीना, मृदंग स्वर साजैं। किंकिनी-नूपुर धुनि एक स्वर बाजैं।।६।।
निर्त्तत सुधंग अंग निज न्यारी-न्यारी। गोरी औ साँवरी सखी बदि-बदि वारी।।७।।
सरस अलग लाग लेतिं निरधारी। जीती जेंहैं प्यारी तन सखी रंग डारी।।८।।

उड़्यौ है गुलाल बहु रह्यौ नभ छाई। छल सौं चतुर सखी लालहि गहि लाई।।९।।
आगैं आनि ठाढ़े कीने रहे ग्रीवाँ नाई। देखत लड़ैती ऐसी भाँति मुसिकाई।।१०।।
बंसी पीतपट छीनि चूँनरी उढ़ाई। नैननिं अंजन दीनौ नथ पहिराई।।११।।
'हित ध्रुव' अंक भरि लीने हैं किसोरी। हित सौं अधर रस देति मुख जोरी।।१२।।

प्रेम रङ्ग से भरे हुए श्री राधा-लाल आज रस की अतिशयता का आस्वादन करके अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे रवि-नन्दिनी श्री यमुना के तट पर यत्र-तत्र होली का खेल खेलते हुए विचरण कर रहे हैं।।१।। गौर-वर्ण की समस्त सखियों के मध्य में गौराङ्गी प्रिया शोभा दे रही हैं और श्याम-वर्ण की समस्त सखियाँ श्याम-सुन्दर लाल जी की ओर कर दी गई हैं।।२।। दोनों पक्ष की सखियों ने चन्दन, अगरुसत (अगरु नामक काष्ठ का सार) एवं केशर निर्मित सुरङ्गित और सुगन्धित जल तथा बहुत प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे अबीर स्वर्ण पात्रों में भर-भर कर साथ ले रखे हैं। रस-निपुण युगल अपना-अपना दाव-घात लगा कर जिसे एक-दूसरे पर छिड़क रहे हैं।।४।। जिससे उनके श्री अङ्गों के वस्त्र विविध रङ्गों से सुरङ्गित होकर बड़े सुहावने दीख रहे हैं। युगल की देह-यष्टि पर रङ्गों की बूँदें अपूर्व शोभा दे रही हैं।।५।। होली खेल के समय उन्होंने हुड़क, गजक, वीणा एवं मृदङ्ग के स्वर सुसज्जित कर रखे हैं। उस समय उनकी किङ्किणी एवं नूपुरों की ध्वनि एक साथ बज रही हैं।।६।। गोरी और साँवली सखियाँ बारी-बारी से होड़ लगा कर अपना-अपना सुधङ्ग नृत्य क्रमानुसार पृथक्-पृथक् प्रकट कर रही हैं।।७।। इस होड़ में रसमय अलग-लाग नामक नृत्य को लेते हुए निर्णय हुआ कि प्रिया पक्ष की गोरी-गोरी सखियाँ विजयी हुईं और श्याम-वर्ण की सखियाँ पराजित हो गयीं हैं।।८।। उसी समय सखियों ने एक साथ बहुत सा गुलाल उड़ाया। तभी एक चतुर सखी गुलाल की धुन्ध में श्री लाल को छलपूर्वक पकड़ लायी और उसने उन्हें श्रीप्रिया के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया।।९।। पराजित प्रियतम सिर नीचा किये स्तम्भित खड़े रह गये। लाल की ऐसी स्थिति देखकर लाड़िली

प्रिया मुस्कुरा गयीं।।१०।। फिर तो प्रिया-पक्ष की सखियों ने श्री लाल की वंशी और पीताम्बर छीन कर उन्हें प्रियाकी प्रसादी चूनरी उढ़ा दी। नेत्रों में अञ्जन सार कर नासिका में नथ पहना दी, तात्पर्य उन्हें नर से नारी बना दिया।।११।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं तत्पश्चात् विजयी किशोरी ने प्रियतम को अपने अङ्क में भर लिया और मुख से मुख मिला कर प्रीति पूर्वक उन्हें अधर-रस दान किया।।१२।।

(५४) सारंग

झूलत लाड़िली लाल झुलावत देखौ सखी सुख आई।
नवल कुँवर प्रान-प्रिया रिझावत हैं मधुर तानन गाई।।१।।
झोटनि के देत माल तरल होत, भूषन-छबि कहत न जाई।
नागरि अनुराग मृदुल श्रमित जानि, वल्लभ तब लई कंठ लाई।।२।।
पुहुप वृष्टि करत लता मुदित-हंस, मोर नाँचत आनँद-रस पाई।
मुकुट-मंग झलकत निरखि नील-पीत, अंचल 'ध्रुव' नैंन रहे लुभाई।।३।।

(सङ्केत होलिका-दहन के उपरान्त चैत्रकृष्ण प्रतिपदा को हिंडोला की रचना करने का साम्प्रदायिक विधान है। यह पद इसी क्रम में वर्णित है।) हे सखि ! आकर तुम इस सुख का दर्शन तो करो। श्रीलाड़िली जी हिंडोले में झूल रही हैं और श्रीलाल जी झुला रहे हैं। आज नवल कुँवर मधुर-मधुर गान-तान से अपनी प्रिया को रिझा रहे हैं।।१।। जिस समय प्रियतम हिंडोले को झोटा देते हैं; उस समय झोटा की बढ़न में तरलित माला एवं भूषणों की छवि देखते तो बनती है किन्तु कहते नहीं बनती। अनुरागी एवं कोमल चित्त प्रियतम श्री लाल ने जब प्रिया को श्रमित हुई जाना, तो उन्हें कण्ठ से लगा लिया।।२।। उस समय वृन्दावन की लताएँ पुष्पों की वर्षा करने लगीं, हंस और मयूर प्रसन्न होकर ऐसे नाचने लगे, मानो उन्होंने रसानन्द की उपलब्धि कर ली हो। लाल के मुकुट, प्रिया की सीमन्त शोभा एवं युगल

के नील-पीत-अञ्चल की फहराती हुई छवि का दर्शन करके ध्रुवदास के नेत्र लुब्ध हुए रह गये हैं।।३।।

उत्थापन समय (५५) राग गौरी

वृंदावन सुखदाई लाल। अवनी कनक सुहाई लाल।।
अवनी कनक सुरंग चित्र छवि, कालिंदी मनि-कूले।
लतनि रहे बहुरंग फूल फल, नव कंचन-द्रुम मूले।
जलज थलज रहे विकसि जहाँ-तहाँ, बरन-बरन छवि छाई।
सहज ऐंन रुचि दैंन विराजत, वृंदावन सुखदाई।।१।।
राजत नवल निकुंजैं। निरखि होत सुख पुंजैं।।
निरखि होत सुख पुंज कंज दल, रची है सुदंर सैंन।
बहत समीर त्रिविध गुन लीयैं, आकरषत मन मैंन।।
नाँचत केकी कीर पिक बोलत, जित-तित मधुपनि गुंजैं।
रतन खचित फूलनि सौं फूली, राजतिं नवल निकुंजैं।।२।।
करत निकुंज-विहारा। सखियनि प्रान अधारा।।
सखियनि प्रान अधार रसिक वर, नवल किसोर किसोरी।
हँसि मुख चित चोरति प्यारे कौ, सब अँग नागरि गोरी।।
रति विलास नव-नव रुचि उपजति, वलय किंकिनि झनकारा।
अति प्रवीन रति कोक कलनि में, करत निकुंज-विहारा।।३।।
निरखि-निरखि बलि जाहीं। श्रम-जलकन झलकाहीं।।
श्रम-जलकन रहे झलकि वदन विवि, कहुँ-कहुँ पीक जु सोहै।
यह छवि निरखि अनूप माधुरी, ऐसी को जु न मोहै।।
चितै चिह्न रजनी के सजनी, नैंननि में मुसिकाहीं।
'हित ध्रुव' सखी सरस रस भीनी, निरखि-निरखि बलि जाहीं।।४।।

श्री लाड़िली-लाल का निज धाम वृन्दावन सहज सुखद है, जहाँ की भूमि स्वर्णमयी है। कलिन्द-नन्दिनी यमुना के मणिमय तट की स्वर्णिम-भूमि विचित्र रङ्गों की छवि-छटा से परिपूर्ण है, जहाँ विविध रङ्गों की लताएँ फूल एवं फलों से भारान्वित हुईं नव-नव कञ्चन वृक्षों के मूल से आलिङ्गित हैं। वहीं तट पर जल एवं थल में उत्पन्न होने वाले कमल यत्र-तत्र विविध वर्णों की छवि बिखेर रहे हैं। इस प्रकार सुखद वृन्दावन, जो सहज ही रुचिदायक है, शोभायुक्त हुआ विराजमान् है।।१।। यमुना तट पर अनेक नयी-नयी कुञ्जें शोभित हैं, जिनका दर्शन करके मन में सुख-समूह की सृष्टि होने लगती है। उन कुञ्जों में सुख-पुञ्ज कमल-दलों की शय्या निर्मित है, जहाँ शीतल, मन्द एवं सुगन्धित पवन सदा प्रवाहित होता रहता है। ऐसा निकुञ्जमय वृन्दावन कामदेव के भी मन को आकर्षित करता रहता है, जहाँ मयूरों के नृत्य, शुक एवं कोयल की मधुमय वाणी एवं यत्र-यत्र भ्रमरों की मधुर गुञ्जारें होती रहती हैं तथा यमुना के मणिमय कूल पर रत्नखचित एवं पुष्प-आच्छादित अनेक कुञ्जें शोभा देती रहती हैं।।२।। सखियों के प्राणाधार नित्य-विहारी श्री लाड़िली-लाल इन कुञ्ज-निकुञ्जों में सदा विहार करते रहते हैं। ये नवल किशोर एवं नवल-किशोरी सखियों के प्राणाधार तो हैं ही, रसिक श्रेष्ठ भी हैं। प्रेम एवं रस के समस्त अङ्गों में परम विदग्धा (चतुरा) नित्य नव किशोरी प्रिया अपनी मन्द मधुर मुसकान से प्रियतम श्री लाल जी का प्रतिक्षण चित्त चुराती रहती हैं। युगल प्रियतम की रति-विलास केलि में वलय, किङ्किणी और अन्य आभूषणों की ध्वनि से नित्य नयी-नयी रुचि का उद्भव होता रहता है। इस प्रकार रति एवं कोक अर्थात् दाम्पत्य-विलास में अतिशय निपुण युगल सदैव निकुञ्ज-विहार परायण बने रहते हैं।।३।। निकुञ्ज-विहार रति-केलि से प्रकट हुए श्रमजन्य जल-कणों की झलक का पुनः-पुनः दर्शन करके सखियाँ बलिहार जाती हैं। युगल के मुखारविन्द पर श्रमजन्य प्रस्वेद कणों के मध्य में कपोलों पर अङ्कित ताम्बूल-पीक की अरुणिमा रसिक युगल की सुरतान्त-छवि की वृद्धि कर रही है, जिसकी अनुपम माधुरी का अवलोकन करके सब

सखियाँ विमुग्ध हैं। इस छवि का दर्शन करके कौन मोहित नहीं होता ? श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि रात्रिकालीन विहार से प्रकट हुए रति-चिह्नों का दर्शन करके रसिक सहचरियाँ अपने नेत्रों में मुस्कुराती हैं एवं सरस रस से भींग जाती हैं। अतृप्त भाव से बारम्बार रसिक युगल की छवि का अवलोकन करके उन पर अपने आपको न्यौछावर करती हैं।।४।।

(५६) राग विहागरौ

सघन कुंज के द्वारैं सोभा बहु बाढ़ी।
अति अलबेली भाँति अलबेली ठाढ़ी।।१।।
सहज आपने उर अंचल विसारैं।
रूप पानिप देखैं सखी प्रान वारैं।।२।।
तैसेई चंचल अलबेले दोऊ नैंना।
बेसरि बैंदी की छबि कहत बनैंना।।३।।
सखी अंस पर रही मृदु भुज दीने।
सुरंग फूलनि की नौलासी कर लीने।।४।।
हँसनि छबीली छटा कहाँ लौं विचारौं।
मुख-छवि पर कोटि चंद कंज वारौं।।५।।
सनमुख चितै रहे लालन विहारी।
भूले पट भूषन सुधि देह की बिसारी।।६।।
अतिहि विवस पिय जाने प्रान प्यारी।
रहि न सकी भरि लीने अँकवारी।।७।।
चाहि रही मुख ओर मन मृदु कीनौ।
लाड़िले की दसा देखि हियौ भरि लीनौ।।८।।
अधर-सुधा प्याइ सावधान कीने।
परम प्रवीन दोऊ केलि रंग भीने।।९।।

ऐसी गति देखैं सखी चित्र सी ह्वै रही।
आनंद के रंग रँगी ठाढ़ी जहीं-तहीं।।१०।।
रसनिधि गुननिधि नेहनिधि गोरी।
'हित ध्रुव' बस भए बँधे प्रेम-डोरी।।११।।

आज रूप विलक्षण नागरी प्रिया एक विलक्षण प्रकार से सघन कुञ्ज के द्वार पर खड़ी हैं, जिससे कुञ्ज द्वार की शोभा अपूर्व वृद्धि को प्राप्त हो रही है। वे अपनी भाव-मग्नता में वक्षस्थल का अञ्चल सँभालना भूल गयी हैं। उनके इस क्षण के रूप-लावण्य का दर्शन करके सखियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर कर रही हैं। जैसी रूप-लावण्यमयी सर्वाङ्ग सुन्दरी प्रिया हैं; वैसे ही रूप-विलक्षण उनके चञ्चल युगल नयन हैं। उनकी नासिका पर शोभित वेसरि एवं भाल पर विराजमान् बैंदी की छवि कहने में नहीं आती। सुन्दरी प्रिया ने सखी के स्कन्ध पर अपनी सुकोमल भुज-लता को अर्पित कर रखा है। उनके दूसरे कर-कमल में सुरङ्गित पुष्पों की गूँथी हुई फूल-छड़ी शोभित है। भक्त-कवि कहते हैं प्रिया मुख हास्य की छविपूर्ण छटा का अनुमान लगा सकना कठिन है। उनकी मुखच्छवि पर कोटि-कोटि चन्द्रमा एवं कमल न्यौछावर हैं। श्री विहारीलाल प्रियतम सदैव उनके सम्मुख हुए उनकी मुखच्छवि का अवलोकन करते हुए अपने वस्त्राभूषण तो क्या देह की भी सुधि भूल गये हैं। प्रियतम की इस प्रेम-विवश दशा का बोध होते ही प्राण-प्रिया प्रेमातुर हो उठीं और उन्होंने शीघ्रता-पूर्वक प्रियतम को अपनी भुजाओं में भर लिया। उनका मन प्रेम से द्रवित हो गया और वे एकटक श्रीलाल के मुख की ओर देखती रह गयी। लाड़िले प्रियतम की रूप-विवश-दशा का अवलोकन करके उनका हृदय भर आया। तब प्रिया ने तत्काल अधर-सुधा पान करा के उन्हें सावधान किया। ऐसे परम प्रवीन रङ्ग-रञ्जित युगल रसिक की प्रेम-गति का दर्शन करके सभी सखियाँ चित्र की भाँति स्तम्भित हो गयीं। वे आनन्द-रङ्ग से रञ्जित् हुई जहाँ की तहाँ खड़ी रह गयीं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया उज्ज्वल रस की निधि है; दिव्य गुण-गण की भण्डार हैं एवं प्रेम

की पुञ्ज हैं। रसिक प्रियतम उनके प्रेम की डोरी से बँधे हुए सदा परवश बने रहते हैं।।५६।।

(५७) राग विहागरौ

छबीली छबि सौं रँगीले दोऊ, राजत जमुना-तीर।
अंग-अंग भूषन प्रतिबिंबित, स्यामल-गौर सरीर।।१।।
गावत मोर, मराल, भँवर, पिक, संग सखिनु की भीर।
'हित ध्रुव' रूप माधुरी निरखत, ह्वै गये सबै अधीर।।२।।

सुहावनी छवि से युक्त रँगीले युगल यमुना तट पर विराजमान हैं। उनके युगल-गौर तनु पर अङ्ग-अङ्ग के भूषण प्रतिबिम्बित हैं। साथ में सखियों के समूह हैं और श्रीवन के मयूर, राजहंस, भ्रमर एवं कोयल आदि पक्षी गान परायण हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल प्रियतम की रूप-माधुरी का अवलोकन करके सखियों सहित सभी खग-मृग मोहित हो रहे हैं।।५७।।

(५८) राग विहागरौ

नवल रँगीले लालहि, लाड़िली संग सुहावनौ।
और कछू नहिं भावई हो, देखि रूप मन-भावनौ।। १।।
कुंज-कुंज सुख पुंजनि, डोलत अंस भुजा दियैं।
परिरंभन रस सौं करत, मोद-विनोद बढ़ौ हियैं।। २।।
कहुँ कहुँ सेज बनाइ कैं, मोहन चरन पलोटहीं।
मंद-मंद मुसिकानी हो, नीलांबर दै ओटहीं।। ३।।
पर्‌यौ है लाल मन जाइ जिहिं, छवि के सिंधु कलोलहीं।
चंचल परम प्रवीन रुचि, लै कंचुकी खोलहीं।। ४।।
सुरति सार कौ सार तिहिं, सुख माँहि अलोलहीं।
नवल कुँवर बलिजाइ, जबहि कुँवरि मृदु बोलहीं।। ५।।

सखी रहीं सब चाहि, लै अंचल झकझोलहीं।
'हित ध्रुव' चख नरजा कियैं, रूप दुहुँनि कौ तोलहीं।। ६ ।।

नित्य नव रँगीले लाल जी को लाड़िली प्रिया का ही सङ्ग सुहावना लगता है। प्रिया के मन-भाँवते रूप का दर्शन कैरके उन्हें अन्य कुछ नहीं भाता।।१।। श्री लाल जी प्रिया के स्कन्धों पर अपनी भुज-लता डाले हुए वृन्दावन की सुख-पुञ्ज कुञ्जों में विचरण करते रहते हैं। कभी रसपूर्ण परिरम्भन दान करते हुए मोद एवं विनोद की वृद्धि करते हैं।।२।। कहीं किसी कुञ्ज में पुष्प-पल्लवों की शय्या रचकर श्री प्रिया को विराजमान् कर मोहन प्रियतम उनके चरण-पलोटते हैं। तब प्रिया मन्द-मन्द मुस्कुराती हुईं लज्जा-पूर्वक नीलाम्बर के अञ्चल से अपना मुख ढक लेती हैं।।३।। उस समय श्री लाल का मन झीने नीलाम्बर से आच्छादित श्रीमुख छवि पर विमुग्ध हो जाता है, जैसे उनका मन रूपी मीन छवि के समुद्र में कल्लोल कर रहा हो।।४।। श्रीलाल रस-निपुण, परम चञ्चल रसिक हैं। वे प्रिया की रुचि को भाँप कर उनकी कञ्चुकी का विमोचन करते हैं। तत्पश्चात् रसिक युगल सुरत सार के रस में उन्मज्जन-निमज्जन करने लगते हैं। जब कुँवरि किशोरी अपनी मधुमयी कोमल वाणी से कुछ बोलने लगती हैं, तो नवल कुँवर उन पर बलिहार जाने लगते हैं।।५।। युगल की रसिक सहचरियाँ इस रस का अवलोकन करके अपने अञ्चलों से उन पर बयार करने लगती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम रसास्वादी सखियाँ अपने नेत्रों की तुला (तराजू) बनाए हुए दोनों के रूप का सन्तुलन करती रहती हैं।।६।।

(५९) राग सारंग

प्रेम की बाट अटपटी माई।
झुक आई प्यारे लालन सौं, मन में रह्यौ न जाई।।१।।
गहि रहे चरन और दस अंगुलि, मुखधरि हा-हा खाई।
रहे मनाइ बहुत नहिं मानी, अवनि पर्‌यौ अकुलाई।।२।।

तोसौं कही सखी तू प्यारी, यातैं नाहिं दुराई।
उनकी सोच रहत मन मेरैं, दुख पैहैं अधिकाई।।३।।
इतनी कहत आइ गए मोहन, तब सहचरि तन मुरि मुसिकाई।
'हित ध्रुव' लई अंक भरि मानौं, रंक महानिधि पाई।।४।।

अपनी अभिन्न-प्राण हित सजनी से श्री किशोरी जी कहती हैं कि—हे सखि! प्रेम का स्वभाव बड़ा विलक्षण है। यद्यपि मैं अपने प्रियतम श्रीलाल जी से अकारण ही अप्रसन्न सी होकर यहाँ आ तो गई हूँ किन्तु मेरा मन उनके बिना व्याकुल है और मुझसे रहा नहीं जाता।।१।। उस समय मुझ मानवती के चरणों को पकड़ कर एवं अपनी दसों कराङ्गलियों को मुख में लेकर प्रियतम 'हा-हा' खाते रहे; बहुत प्रकार से मुझे मनाते रहे; किन्तु जब मैं नहीं मानी तब वे आकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।।२।। हे सखि! तू मेरी बहुत प्रिय सखी है, इसलिए मैं तुझ से कुछ छिपाती नहीं स्पष्ट कहती हूँ कि मैं चली तो आई किन्तु मेरे मन में यही चिन्ता व्याप्त है कि वे बहुत-बहुत दुःख पा रहे होंगे।।३।। श्री हित ध्रुवदासजी कहते हैं कि प्रिया जी अपनी सहचरी से ऐसा कह ही रही थीं, तब तक श्री मोहनलाल वहाँ आ पहुँचे। श्रीलाल को आया देखकर प्रिया अपनी सहचरी की ओर मुड़कर मुस्कुरा उठीं और तत्काल ही उन्होंने प्रियतम को अपने अङ्क में ऐसे भर लिया, जैसे किसी महा निर्धन ने परम-धन प्राप्त कर लिया हो।।४।।

(६०) राग नट

देखौ अद्‌भुत प्रीति की चालहि।
सुनि सखी पियहि प्यार सौं प्यारी, राखति ज्यौं उर मालहि।।१।
ह्वै-ह्वै जात विवस मनमोहन, निरखि नैंन नव-बालहि।
'हित ध्रुव' सरस मधुर अधरामृत, प्याइ जिवावति लालहि।।२।

नव निकुञ्ज देश की कोई सहचरी अपनी सहेली से कहती है— हे सखि ! प्रीति की अद्भुत गति का अवलोकन तो करो, जहाँ प्रिया अपने प्रियतम को प्रीति पूर्वक हृदय पर ऐसे धारण करती हैं जैसे कोई माला को धारण करता है।।१।। नव बाला सुन्दरी प्रिया के नेत्रों में स्थित प्रेम का अवलोकन करके प्रियतम मोहन प्रीति से बारम्बार विवश हो जाते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उनकी विवशता को देख करुणामयी प्रिया सरस एवं मधु-मय अमृत देकर उन्हें जीवन धारण कराती हैं।।२।।

(६१) राग विहागरौ

रस भरे लाल रस भरी राधे, रस भरी सखी अवलोकत रंगहि।
मदन हुलास बाढ़्यौ प्रीतम मन, अतिहि चाव सौं भरत उछंगहि।।१।।
अद्भुत कोक-कलनि की उमगनि, लज्जित करत अनंगहि।
'हित ध्रुव' चतुर सिरोमनि दोऊ, विलसत प्रेम-तरंगहि।।२।।

रस-पूरित लाल एवं रस-पूरित प्रिया की रङ्ग-केलि का रस-पूरित सखियाँ अवलोकन कर रहीं हैं। प्रियतम के मन में मदनोल्लास की वृद्धि हो रही है, अतः वे उत्साहपूर्वक प्रिया को बारम्बार अपनी गोद में ले रहे हैं।।१।। युगल में कोक-कलाओं का यह अद्भुत उद्गम कामदेव को भी लज्जित कर रहा है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि कोक-कलाओं में चतुर शिरोमणि-युगल इन प्रेम लहरियों में मग्न हुए विलास करते रहते हैं।।२।।

वन-विहार समय (६२) राग विहागरौ

प्रेम की रासि साँवरौ प्यारौ।
नैंकु चितै दृग-कोर कुँवरि की, भूले अंगनि-अंग सँभारौ।।१।।
वृंदावन अद्भुत रजधानी, संपति सहित अपुनपौ हारौ।
जहाँ-जहाँ चरन धरति सुकुमारी, सो मग दृग-अंचलनि सँवारौ।।२।।

भये दीन रस रसिक सिरोमनि, रंग मनोरथ करन विचारौ।
नैंकु प्रसन्न होइ रति नागरि, बिच-बिच मो तन करहि निहारौ।।३।।
रुचि लियैं भौंहनि भाइ विलोकत, एकौ पल रहि सकत न न्यारौ।
'हित ध्रुव' हार सिंगार बनावत, याही तैं वाँकौ व्रत धारौ।।४।।

प्यारे श्यामसुन्दर प्रेम की राशि है, परम प्रेमी रसिक हैं, जो कुँवरि किशोरी की दृग-छटा का किञ्चित् दर्शन करके ही अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों की सँभाल (सावधानी) भूल जाते हैं।।१।। श्री वृन्दावन प्रेम-देश की अद्‌भुत राजधानी है, जहाँ प्रियतम अपनी समस्त आत्म-सम्पति के सहित अपने अहम् को भी प्रिया चरणों में हार चुके हैं। सुकुमारी प्रिया वृन्दावन की वीथियों में जहाँ कहीं पाद-विन्यास करती हैं, प्रेमी रसिक प्रियतम उस पथ को अपने दृगञ्चलों से बुहारते एवं सँभालते सजाते रहते हैं।।२।। वे रसिक-शिरोमणि रस के वशीभूत हुए दीन बने रहते हैं तथा प्रिया को आनन्दित करने के विचारों का ही मनोरथ करते रहते हैं। वे अभिलाषा करते हैं कि रति-नागरी प्रिया किञ्चित् ही प्रसन्न होकर कभी समयानुसार बीच-बीच में ही मेरी ओर दृष्टिपात् करती रहें।।३।। हे सखि ! रसिक लाल श्री प्रिया की रुचि और प्रसन्नता को लिए हुए उनकी भृकुटि-जन्य भावनाओं का अवलोकन करते रहते हैं तथा परम-आसक्त होने के कारण वे प्रिया से एक पल भी वियुक्त नहीं रह सकते। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम कभी प्रिया के लिए हार गूँथते हैं, कभी उनके लिए शृङ्गार सजाते हैं और यही उनके जीवन का विलक्षण व्रत है।।४।।

(६३) राग विहागरौ

खेलत नवल किसोर-किसोरी, नव-निकुंज में सजनी।
त्रिविध समीर बहै सुखदैनीं, सोहति राका-रजनी।।१।।
लालन ललित सुमनिमय भूषन, रचि-रचि प्रियहि बनावै।
तिनहीं की रुचि लियैं रँगीलौ, नव-नव भाँति लड़ावै।।२।।

रूप-सिंधु गंभीर गौर-तनु, नाभि भँवर सुखदानी।
रहत लाल दृग मीन भये तहाँ, त्रिपिति तऊ नहिं मानी।।३।।
निरखि-निरखि छवि बदन माधुरी, नैंन अंबु-कन झलकैं।
लटक्यौ मौलि सिखंड प्रेमवस, परत तऊ नहिं पलकैं।।४।।
अतिहि मृदुल मन स्यामा प्यारी कुँवर अंक भरि लीनौ।
जानि अधीर विवस मनमोहन अधर-सुधा-रस दीनौ।।५।।
विलसत सुरत-विहार अमित विधि, निपुन दोऊ पिय-प्यारी।
यह सुख अवलोकत निज सहचरि, दुरि-दुरि सघन लता री।।६।।
सब सुख कौ रस सार यहै है, दिन आनंद बढ़ावैं।
'हित ध्रुव' सुख सखियनि कौ कैसैं, रसना पै कहि पावैं।।७।।

हे सजनी ! आज नव-निकुञ्ज में नवल किशोर एवं नवल किशोरी प्रिया-प्रियतम क्रीड़ा-परायण हैं। श्रीवन में सुखदायक शीतल, मन्द एवं सुगन्धित पवन प्रवाहित है तथा पूर्णिमा की चन्द्रिकामयी रात्रि है।।१।। ऐसे रसमय अवसर पर प्रियतम श्रीलाल जी मणि-युक्त सुन्दर एवं ललित भूषणों की रचना कर करके श्रीप्रिया को शृङ्गारित कर रहे हैं तथा रँगीले प्रियतम प्रिया की रुचि के अनुसार नयी-नयी रीतियों से उन्हें लाड़-लड़ा रहे हैं।।२।। गौर-तनुधारी प्रिया, रूप की गम्भीर समुद्र हैं। उनकी नाभि रूप-समुद्र की सुखद भ्रमरी है, जहाँ प्रियतम के नेत्र रूपी मीन निरन्तर लीन रहकर भी तृप्ति का अनुभव नहीं करते।।३।। प्रिया के वदनारविन्द की छवि-माधुरी का बारम्बार दर्शन करके प्रियतम के नेत्रों में प्रेम के अश्रु-कण छलछलाते रहते हैं। प्रेम की विवशता के कारण उनका मयूर-पङ्खधारी मस्तक लटक जाता है, फिर भी उनके नेत्रों की पलकें नहीं गिरतीं।।४।। प्रियतम की इस दशा का अवलोकन करके अतिशय सुकोमल-मना प्रिया श्यामा ने प्रियतम कुँवर को अपने अङ्क में भर लिया है तथा उन्हें प्रेमाधीर एवं रस-विवश जानकर अपना अधरामृत-रस दान किया है।।५।। इस प्रकार रस-निपुण प्रिया-प्रिय युगल

अमित विधि से सुरत-विहार का विलास कर रहे हैं। युगल की निज सहचरियाँ सघन लताओं में छिप-छिपकर इस सुख का अवलोकन कर रही हैं।।६।। समस्त सुखों का सारातिसार रस युगल का यह निकुञ्ज-विहार ही है, जो निरन्तर रसिक जनों के आनन्द का विवर्द्धन करता रहता है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि नित्य-विहार की निज सखियों का यह सुख मेरी वाणी में कैसे आ सकता है?।।७।।

(६४) राग गौरी

देखि री नैंन भरि वैस किसोर वर, राजत अनूप सरस रूप जोरी।
सघन लतनि मौरी आवत गावत, नवल रँगीलौ लाल रंग भरी गोरी।।१।।
चकित मृगज खग विसरे गवन मग, ढरत लोचन वन बँधे प्रेम डोरी।
हँसि-हँसि लेत तान हरैं सखियनि प्रान, 'हित ध्रुव' जाइ वलि चितै छबि ओरी।।२।।

हे सखि! श्रेष्ठ किशोरावस्था को प्राप्त अनुपम एवं सरस रूपमयी इस युगल छवि का नेत्र भर कर अवलोकन तो करो। देखो, मुकुलित सघन लताओं से निकलते हुए गान-परायण नवल रँगीले लाल एवं नवल रङ्ग भरी गौराङ्गी प्रिया कैसी विलक्षण शोभा को प्राप्त हैं।।१।। जिनका दर्शन करके मृग-शिशु एवं पक्षी-गण चकित हुए अपना गमन मार्ग भी भूल गये हैं। उनके नेत्रों से प्रेम-जल बरस रहा है एवं वे प्रेम की डोरी से बँध गये हैं। जब ललित किशोर युगल हँसते हुए बारम्बार सङ्गीत की तानें छेड़ते हैं, तब मानो सखियों के प्राणों का हरण कर लेते हैं। इस अनुपम छवि की ओर दृष्टिपात करके हित ध्रुवदास बलिहार जाते हैं।।२।।

(६५) राग गौरी

राधा दुलहिनि दूलहु लाल।
तैसियै रूप माधुरी अँग-अँग, तैसेयै दुहुँनि के नैंन विसाल।।१।।
तैसियै लटकनि लपटनि अटकनि, तैसियै हंस-हंसिनी चाल।
तैसियै चतुर सखी चहुँ ओरैं, गावत राग सुहाग रसाल।।२।।

यह रस जो सुनि है अरु गावै, मन लावै सब काल।
'हित ध्रुव' धन्य-धन्य तेई जन, भजन दीपमनि दिपैं जिहि भाल।।३।।

जैसी नव वधू श्री राधा हैं, वैसे ही रूप-लावण्यमय दूलह श्री लाल जी हैं और तैसी ही उनकी अङ्ग-अङ्ग रूप-माधुरी है। उस रूप-माधुरी के अनुरूप ही दोनों के रस भरे विशाल लोचन हैं। तदनुरूप उनकी लटकनि है, पारस्परिक आलिङ्गन एवं एक-दूसरे के प्रति हिलग है तथा ऐसी ही विलक्षण हंस-हंसिनी की भाँति उनके चरणों की गति है।।१।। जैसे अलबेले रसिक युगल हैं, वैसी ही चतुर सखियाँ उनके चारों ओर शोभित हैं, जो सतत रसमय युगल सुहाग के रागों का गान करती रहती है।।२।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, जो कोई व्यक्ति मन लगा कर सर्व-काल इस रस का श्रवण एवं गान करता है, वही धन्य-धन्य है। निश्चय ही उसके ललाट पर भजन रूपी प्रकाशमय मणि जगमगाती रहेगी।।३।।

(६६) राग गौरी

रसिक कुँवर दंपति छबि सीवाँ, वंसीवट के तीर।
खेलत कुसुम गैंद कर लीयैं, संग सखिनु की भीर।।१।।
निर्त्तन करत सुधंग कला सब, अँग-अँग गुननि गँभीर।
भूषन-रव सुनि रहे रटत ते, हंस, केकि, पिक, कीर।।२।।
भये श्रमित बनि रहे स्वेद-कन, कोमल सुभग सरीर।
इहि हित कमल तरनिजा परसैं, आवत मंद समीर।।३।।
रुचिर स्वेद-सौरभ जल भीनें, नील-पीत तन चीर।
'हित ध्रुव' निरखि मगन भईं सहचरि, रहे नैंन भरि नीर।।४।।

छवि की परावधि रसिक किशोर दम्पति लाड़िली-लाल वंशीवट के तट पर सखियों के समूह को साथ लिए हुए कुसुम कन्दुक (गेंद) क्रीड़ा कर रहे हैं।।१।। नृत्य की विविध कलाओं में परम निपुण एवं गम्भीर गुणज्ञ युगल कन्दुक-क्रीड़ा के साथ नृत्य भी कर रहे हैं। नृत्य-परायण युगल के भूषणों

की ध्वनि का श्रवण करके हंस, मयूर, कोयल एवं शुकादि पक्षी अपने गान को भूल स्तब्ध हो रहे हैं।।२।। नृत्य से युगल के कोमल एवं सुभग तनु श्रमित हैं, उन पर प्रस्वेद-कण झलक उठे हैं। युगल की इस श्रम-पूरित दशा का अवलोकन करके रविनन्दिनी यमुना में विकसित कमलों का स्पर्श करते हुए मन्द-मन्द पवन प्रवाहित होने लगा है।।३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्याम-गौर-तनुधारी युगल के अङ्गों से रुचि दायक प्रस्वेद जल की सुगन्ध से भीगे हुए उनके नील-पीत दुकूल की छवि का दर्शन करके सखियाँ प्रेममग्न हो रही हैं तथा उनके नेत्रों में प्रेम-जल छलक आया है।।४।।

(६७) राग सारंग

बंसीवट मूल खरे दंपति अनुराग भरे,
गावत हैं सारँग पिय सारंग वर नैंनी।।
उमहि कुँवरि करत गान सिखवति पिय विकट तान,
सप्त सुर सौं मधुर-मधुर लेति कोकिल बैंनी।।१।।
चित्रित चंदन सुअंग भूषन फूलनि सुरंग,
दसन-वसन सहज रंग वेसरि छबि-दैंनी।।
लसत कंठ जलज माल झलक स्वेद कन रसाल,
दीरघ वर लोचन मषि रेख बनी पैंनी।।२।।
चहुँ दिसि सखियनि की भीर सकल प्रेम रस अधीर,
उभय रूप राग रंग सुख अभंग लैंनी।।
उमड़्यौ जल प्रेम नैंन रहित भये रसन-बैंन,
इहि गति रहौ मत्त चित्त 'हित ध्रुव' दिन रैंनी।।३।।

आज अनुरागी दम्पति युगल कमल-नयन प्रियतम एवं कमल-नयनी प्रिया वंशीवट के नीचे खड़े हुए सारङ्ग राग गा रहे हैं। उमङ्ग से भरी हुई किशोरी गान करते हुए प्रियतम को विकट (विलक्षण) राग-तानों की शिक्षा दे रही हैं। कोकिल-बैंनी प्रिया मधुर-मधुर स्वरों में तान ले रही हैं।।१।। उनके

सुन्दर अङ्गों में चन्दन-पङ्क चर्चित है। श्री अङ्गों पर पुष्पों के रङ्ग-बिरङ्गे भूषण धारण हैं। अधर पर सहज छविमयी वेसरि तरलित है। कण्ठ पर मोतियों की माला शोभित है। मुख-मण्डल पर प्रस्वेद-कण झलक रहे हैं। उनके बड़े-बड़े उज्ज्वल नेत्रों में कज्जल की पैंनी रेखा शोभित है।।२।। प्रेम-रस से विह्वल हुआ सखियाँ का समूह उनको चारों ओर से घेरे हुए है। वे सखियाँ युगल रसिक के अभङ्ग राग-रङ्ग का सुख ले रही हैं। उनके नेत्रों से प्रेम-जल उच्छलित हो रहा है, वाणी अवरुद्ध है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी भी अहर्निश ऐसी ही प्रेम-दशा बनी रहे, यही अभिलाषा है।।३।।

(६८) राग मलार

गरजनि घन अरु दामिनी, चातिक पिक सुक बोलति मोरनि।
स्याम घटा काजर हूँ तें कारी, उमड़ि-उमड़ि आई चहुँ ओरनि।।१।।
नान्हीं-नान्हीं बूँदनि बरषनि लाग्यौ, तैसियै रोचक पवन झकोरनि।
'हित ध्रुव' प्यारी प्यार सौं झूलत, पियहि झुलावति नैंननि कोरनि।।२।।

पावस के आगमन पर मेघों की गर्जना एवं सौदामिनी की दमक, चातक, कोयल, शुक एवं मयूरों का सरस गान, अपूर्व सुखदायक है। कज्जल से भी अधिक काली मेघ-माला का चारों ओर से उमड़-घुमड़ कर आना तथा छोटी-छोटी बूँदों से बरसने लगना और तदनुरूप शीतल पवन की झकझोर परम रसदायक है।।१।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रकृति के इस दान से प्रिया प्रेम के हिंडोले में झूलने सी लगती हैं और प्रियतम को अपनी नेत्र-तटी के हिंडोले में झुलाने लगती हैं।।२।।

(६९) राग मलार

काम रस भींजे हैं दोउ लाल।
पानिप रूप बढ़ी कछु औरै, घूमत नैंन विसाल।।१।।
छुटी अलक टूटी हारावलि, श्रम जलकन बने भाल।
सुरत-समर-सर तें नहिं निकसत, 'हित ध्रुव' उभय मराल।।२।।

आज पावस के रसमय पर्व पर श्री लाड़िली-लाल युगल प्रेम-रूपी काम-रस से भींज रहे हैं। उनकी रूप-लावण्य-छवि कुछ विलक्षण ही प्रकार से वृद्धि को प्राप्त है। उनके विशाल युगल नयन प्रेम-मद से घूर्णित हैं।।१।। केश-राशि विगलित है, वक्षस्थल की हारावलि खण्डित है और उनके ललाट पर श्रमजन्य प्रस्वेद-कण झलक रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि फिर भी सुरत-संग्राम रूपी सरोवर में क्रीड़ा करने वाले ये युगल राजहंस, उस सरोवर से निकलना ही नहीं चाहते, अहर्निश वहीं रमते रहना चाहते हैं।।२।।

(७०) राग मलार

आज छबि बरसत है अँग-अंग।
मनौं अलक राजत घन दामिनि, दसन धनुष वर मंग।।१।।
मोतिनु माल बुलाक चंद्र-वधू, सोभित अधर सुरंग।
श्रम जल फुँही रहीं कछु मुख पर, जीति समर पिय संग।।२।।
भूषन रव कूजत खग मानौं, अति अनुराग अभंग।
प्रफुल्लित रोम-रोम पिय तरु तन, भींजे रति-रस-रंग।।३।।
'हित ध्रुव' निरखि सहज छवि-सीवाँ, भये सखिनु चख पंग।
ज्यौं श्रुति सुनत गान-रस मोहित, चकित ह्वै रहत कुरंग।।४।।

आज श्री लाड़िली के अङ्ग-अङ्ग से छवि की वृष्टि हो रही है। ऐसा लगता है मानो उनकी अलकावलि ही सजल मेघ के रूप में शोभित है। दन्त-पङ्क्ति विद्युत की भाँति चमक रही है तथा सीमन्त-रेखा इन्द्र-धनुष जैसी प्रतीत हो रही है।।१।। श्वेत-श्वेत मोतियों की माला बकपङ्क्ति की भाँति एवं उनके अरुण-अधर चन्द्र-वधू अर्थात् वीर-बहुटी की भाँति शोभित हैं। जब प्रिया सुरत-संग्राम में प्रियतम पर विजय प्राप्त करके प्रस्वेद-कण-युक्त होती है, तब ऐसा लगता है, मानो उनके मुख पर जल-वृष्टि की फुहारें छाई हों।।२।। रति-

विलास-काल में झनकते हुए भूषणों की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है, मानो अभङ्ग अनुराग से भरे हुए पक्षी-गण कूज रहे हों। रति-रस के आनन्द से भीगे हुए प्रफुल्लित प्रियतम का वृक्ष-रूपी देह पावस की बूँदों से भींग गया हो।।३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सहज छवि-सीवाँ लाड़िली का अवलोकन करके सखियों के नेत्र पङ्गु हो गये हैं अर्थात् पलकें गिराना भूल गये हैं। जैसे व्याध के गान को श्रवण करके गान-रस मोहित हुआ हरिण चकित हो ठगा सा रह जाता है।।४।।

(७१) राग मलार

आज सखि नाँचत हैं वन मोर।
निरखि-निरखि सोभा घन दामिनि, गौर-स्याम तन ओर।।१।।
बरसत रूप अमित वर वीथिनु, विकसत सुमन सुरंग।
अति अनुराग मुदित बन बोलत, द्रुम-द्रुम लतनि विहंग।।२।।
डोलत हंस हंसजा के तट, बाढ़त आनँद मोद।
'हित ध्रुव' रही भींज सुख में सखी, चितै मिथुन मुख कोद।।३।।

हे सखी! आज गौर-श्याम तनु श्री लाड़िली-लाल की छवि को मेघ और दामिनी के रूप में देख-देख कर संभ्रम में पड़े हुए श्रीवन के मयूर-गण नृत्य कर रहे हैं।।१।। गौर-श्याम युगल का अमित रूप ही पावस की वर्षा की भाँति श्रीवन की वीथियों में बरस रहा है, जिससे सुरङ्गित पुष्प विकसित हो रहे हैं। वन में वृक्ष-वृक्ष और लताओं में बैठे हुए पक्षी घन-दामिनीवत् गौर-श्याम का दर्शन करके अत्यन्त मुदित हुए कुहक रहे हैं।।२।। इसी प्रकार हंसजा श्री यमुना के तट पर आनन्द एवं प्रसन्नता से भरे हुए हंसगण यत्र-तत्र विचरण कर रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियाँ युगल के मुख का दर्शन करके प्रेम-रस की वर्षा से भींज रही हैं।।३।।

(७२) राग मलार

स्यामा जू के चरननि की बलिहारी।
जे हैं बसत किसोर लाल के, प्राँननि मध्य सदा री।।१।।
विहरत कुसुम पराग लगत जब, पीत वसन लै झारत।
लुठत मयूर चंद्रिका तिन पर, अद्‌भुत छबिहि निहारत।।२।।
जावक चित्र बनाइ सँवारत, करनि सफल तब मानत।
'हित ध्रुव' ते दुर्लभ सबहिनु तें, रसिक मरम पै जानत।।३।।

नव-किशोर श्री लाल जी के प्राणों में सदैव बसने वाले, श्री श्यामा जू के चरणों की मैं बलिहारी जाता हूँ।।१।। जब श्री प्रिया जी अपने सुकोमल चरणों से श्री वन में विचरण करती है और जब उन चरणों में पुष्पों का पराग अनुरञ्जित हो जाता है, तब प्रियतम अपने पीताम्बर से उस पराग को झाड़ने-पौंछने लगते हैं। इन चरणों की अद्भुत छवि को निहार कर बलिहार जाते हुए प्रियतम अपनी मयूर-चन्द्रिका इन्हीं चरणों पर विलुण्ठित करने लगते हैं।।२।। जब प्रियतम इन चरणों पर अलक्तक रङ्ग से चित्र रचना करने का सौभाग्य प्राप्त करते है, तब वे अपने हाथों की सफलता अनुभव करते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि नित्य-विहारिणी श्रीश्यामा के ये चरण अन्य सभी के लिए दुर्लभ हैं तथापि इन चरणों की महिमा एवं उनका रस- रहस्य तो केवल रसिक प्रियतम किंवा रसिक उपासक जन ही जानते हैं।।३।।

(७३) राग मलार

ललित लतानि तरैं नान्हीं-नान्हीं बूँदै परैं,
भींजत रँगीले दोऊ प्रीतम प्यारी।।
हँसि-हँसि बातैं करैं भुज-मूल अंस धरैं,
लाग्यौ पीत-पट तन सुरँग कसूँभी सारी।।१।।

विवि वदननि छवि रही कछु फुँहीं फबि,
उपमा न जात कछू मन में विचारी।।
रसिक उभय उदार गावत राग मलार,
'हित ध्रुव' सुनि तान देत प्रान वारी।।२।।

वृन्दावन की ललित लताओं के नीचे जहाँ पावस की झींनी-झींनी बूँदे बरस रही हैं, रँग-रँगीले प्रिया-प्रियतम (युगल) खड़े भींग रहे हैं। वे गलबहियाँ दिए हुए हँसते-मुस्कुराते वार्ता कर रहे हैं। वर्षा की बूँदों से भींगे हुए उनके वस्त्र पीताम्बर एवं कसूँभी साड़ी अङ्गों से लिपटे हुए हैं।।१।। युगल के मुखारविन्दों की छवि वर्षा की फुहारों से कुछ ऐसी विलक्षण दर्शित हो रही है जिसके लिए मेरे मन में कोई उपमा स्फुरित ही नहीं हो पा रही है। उदार रसिक युगल मलार राग का समवेत स्वर में गान कर रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास इस तान का श्रवण करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर रहे हैं।।२।।

(७४) राग मलार

रस भरे सुभग हिंडोरे झूलत।
अति सुकुमार रूप-निधि दोऊ, सो छबि देखि परस्पर फूलत।।१।।
नवल तरुनता अँग-अँग भूषन, लसत सुभग उरजनि मनिमाल।
उभय सिंधु मनौं बढ़े रूप के, बिच-बिच झलकत रंग रसाल।।२।।
रुचिर नील-पट-पीत पवन वस, उड़त उठत मनौ लहरि उतंग।
'हित ध्रुव' दिनहि मीन सखियनि दृग, तृषित फिरत रस में तिन संग।।३।।

आज रस-पूरित युगल सुन्दर हिंडोल पर विराजमान् हुए झूल रहे हैं। अतिशय सुकुमार एवं रूप-निधान युगल परस्पर में एक-दूसरे की छवि का अवलोकन करके प्रसन्न हो रहे हैं।।१।। उनके नव तारुण्यमय अङ्गों में सुसज्जित अलङ्कार एवं प्रिया के सुभग उरोजों पर शोभित मणिमाला ऐसी प्रतीत होती है, मानो रूप-लावण्य के दो समुद्र उमड़ पड़े हों, जिनके बीच-बीच

में रसमय रङ्ग झलक उठता हो।।२।। जब वायु वेग से युगल के नील-पीत वस्त्र उड़ने लगते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो रूप के समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हों। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियों के मीन रूपी नेत्र युगल के साथ निरन्तर रूप-समुद्र में तैरते हुए भी प्यासे बने रहते हैं।।३।।

(७५) राग कल्याण

छबीली छबि सौं लाल-छबीली आवत गावत,
वेष एक ही कीने।।
अरुन-पीत सारी रसाल बनी कंचुकी हरित-लाल,
कर नौलासी लीने।।१।।
सोभित भूषन अंग-अंग लसत सीसनि मुकता मंग,
हँसत मुकर देखि-देखि प्रेम रंग भीने।।
'हित ध्रुव' सुख सहज अनूप निरखि नवल बानिक रूप,
प्रान न्यौछावर कीने।।२।।

आज श्री प्रिया लाल अनुपम छवि-छटा से सुसज्जित हुए एकसा वेष बनाये हुये आ रहे हैं। दोनों के अङ्गों पर अरुण-पीत साड़ी के साथ रसमयी हरित एवं लाल वर्ण की कञ्चुकियाँ शोभित हैं। दोनों ने अपने हाथों में फूल की नौलासी (छड़ियाँ) ले रखी हैं।।१।। दोनों के अङ्ग-अङ्ग में भूषण जगमगा रहे हैं एवं शिरोभाग पर मोतियों की माँगे हैं। वे दर्पण में अपना रूप देख-देखकर प्रेम-रङ्ग से भर कर हँस रहे हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि युगल के इस सहज एवं अनुपम रूप-शृङ्गार बनाव के सुख का दर्शन करके मैं अपने प्राणों को न्यौछावर कर रहा हूँ।।२।।

(७६) राग मलार

खेलत रास प्रेम रस भीने।
ललन वसन प्यारी के पहिरैं, प्रिया वेष प्रीतम कौ कीने।।१।।

मंग सुरंग रही फबि सजनी, झलकनि मुकुट कहत नहिं आवै।
कुंडल खुभी अरुन सारी तन, गौरांबर अतिही छबि पावै।।२।।
अति आनंद विकच मन दोऊ, लटकनि अंग ललित सुखदाई।
काछनी सुदेस किंकिनी सोभित, उर वनमाल रही बनि माई।।३।।
सहचरि एक लियैं कर बीना, एकनि सुभग मृदंग सज्यौ री।
एकही ताल उठत भूषन धुनि, बाढ्यौ रंग अनंग लज्यौ री।।४।।
नाँचत अंग सुधंग लियैं दोउ, गावत राग मिले सुर गौरी।
अति नागर लावन्य सिंधु में, भृकुटिनु भाव बढ़त छिन सौ-री।।५।।
थेई-थेई कहत मंद गति लीयैं, चलत सुलप प्रीतम पिय-प्यारी।
ललितहि साखि दै दै पुनि बिच-बिच, लागि लेत दोउ बदि-बदि वारी।।६।।
सुंदर मुख कमलनि पर सोभित, श्रम जल कै अलकैं झलकारी।
या सुख की छबि निरखि-निरखि कैं, 'हित ध्रुव' सब सहचरि बलिहारी।।७।।

प्रेम रस से भींगे हुए युगल रास-क्रीड़ा कर रहे हैं। आज श्री लाल जी ने श्री प्रिया के वस्त्र एवं प्रिया ने प्रियतम के वस्त्र धारण कर रखे हैं, तात्पर्य यह कि दोनों ने परस्पर में रूप-वेष परिवर्त्तित कर रखा है।।१।। प्रिया के शिरोभाग पर सुरङ्ग सीमन्त-रेखा एवं मुकुट की झलमलाहट अपूर्व है एवं प्रिया के कानों में कुण्डल एवं प्रियतम के युगल कर्ण में खुभी और शरीर पर अरुण-वर्ण की साड़ी शोभित है।।२।। इसी प्रकार प्रिया के गौर-तन पर गौर-वर्ण पीले रङ्ग की साड़ी अत्यन्त शोभा दे रही है। दोनों के मन आनन्द से मुकुलित हैं। नृत्य के समय उनके श्रीअङ्गों की लटक-मटक बड़ी ही सुखद और ललित दिखती है। युगल के कटि-भाग पर सुन्दर किङ्किणी और काछनी शोभित है तथा दोनों के हृदय-देश पर आपाद-लम्बिनी पञ्च-पुष्पा सुगन्ध-निधि वन-मालाएँ धारण हैं।।३।। रास-नृत्य के समय एक सहचरी ने अपने हाथों में वीणा ले रखी है और अन्यान्य सखियों ने सुन्दर मृदङ्ग-वाद्य सजा रखे हैं। युगल के नृत्य करते समय उनके अङ्ग-भूषण एवं अन्यान्य ताल-वाद्यों की

ध्वनि जब उत्थित होती है, तो उसे सुनकर अनङ्ग भी लज्जित हो जाता है।।४।। रास-विहारी युगल नृत्य की सुधङ्ग-कला के अङ्ग को सँभालते हुए समवेत स्वर में गौरी राग का गान कर रहे हैं। नृत्य-परायण युगल रसिक नृत्यकला में परम निपुण तो हैं ही रूप एवं लावण्य के समुद्र भी हैं, अतएव वे अपनी भृकुटियों के नर्त्तन में शत-शत प्रकार से प्रीति-भावों का अभिवर्द्धन कर रहे हैं।।५।। जब युगल प्रिया-प्रियतम नृत्य की सुलप गति लेते हुए मन्द-मन्द गति से पाद-विन्यास करते हैं, तब थेई-थेई शब्द उच्चारण करते हुए अपूर्व छवि को प्राप्त होते हैं। उस समय दोनों ही ललिता सखी को साक्षी बनाकर बारम्बार होड़ लगाकर बारी-बारी से नृत्य की गतियाँ लेने लगते हैं।।६।। नृत्य-सङ्गीत-जन्य श्रम के कारण युगल के सुन्दर मुख-कमलों पर प्रस्वेद विन्दु झलक उठते हैं और उनकी अलकें विगलित होकर झलक उठती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं इस सुखमयी छवि का अवलोकन करके समस्त सहचरियाँ बलिहार होने लगती हैं।।७।।

(७७) राग मलार

जाँचत रहत यहै दिन-रैन।
बोलौ हँसौ लाड़िली मो पर, करहु कुटिल कबहुँ जिनि नैंन।।१।।
परम रसिक सुंदर मनमोहन, चितवत छबि इतनी कहि बात।
अति आसक्त सनेह रंग में, भये सजल लोचन-जलजात।।२।।
परम उदार मृदुल श्री स्यामा, रुचिर अंक लीने भरि स्याम।
'हित ध्रुव' उभय उरज में राखे, दयौ परम सुंदर सुख-धाम।।३।।

श्री लाल जी अहर्निश श्री नवल किशोरी से यही याचना करते रहते हैं कि—हे लाड़िली प्रिया! आप मुझसे सदैव प्रसन्नतापूर्वक हँसती-बोलती रहें और कभी मुझ पर अपनी दृष्टि टेढ़ी न करें।।१।। इतनी बात कह कर परम रसिक सुन्दर मन-मोहन प्रियतम, प्रिया की ओर एकटक देखते रह गये। प्रेम के रङ्ग में अतिशय आसक्त होने के कारण उनके कमलवत् नेत्रों में अश्रु-

धारा छलछला उठी।।२।। प्रियतम की ऐसी सरस स्थिति को देखकर उदार-शिरोमणि सुकोमल हृदया श्री श्यामा-प्रिया ने प्रियतम श्याम को अपने सुरुचिर अङ्क में भर लिया। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उन्होंने तब प्रियतम को अपने युगल उरोजों में स्थान क्या दिया, परम-सुन्दर सुखमय धाम में निवास दे दिया।।३।।

(७८) राग गौरी

नवल लाल संग बाल निर्त्तत गति चंद-चाल,
मोहित भये सिखि-मराल छबि निहारि री।।
गावत सुर एक ताल भूषन रव अति रसाल,
सुनत स्रवन मृगज पवन थकित वारि री।।१।।
लटकत सब अंग-अंग होत नैंन मैंन पंग,
श्रम जलकन वदन बने रुचिर चारु री।।
बाढ्यौ रस अति अपार नवल कुँवर विवि उदार,
निरखत 'ध्रुव' सहचरि हित नित विहारु री।।२।।

श्री लाल जी सदैव नित्य-नूतन किशोर हैं। इसी प्रकार उनकी प्रिया नव-बाला भी नित्य नवला किशोरी हैं। ऐसे युगल आज चन्द्रचाली गति से नृत्य कर रहे हैं, जिसे निहार कर मानव तो क्या मयूर और मराल पक्षी भी मोहित हो गये हैं। जब वे एक स्वर, एक ताल से गान करते हैं, तब उसी स्वर-ताल से उनके आभूषणों की भी ध्वनि उठ रही है, जिसे श्रवण करके मृगों के शिशु, वायु और जल भी थकित हो गये हैं।।१।। नृत्य करते समय उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की लटकन-मटकन का दर्शन करके कामदेव के भी नयन और मन पङ्गु हो रहते हैं अर्थात् अपनी गति भूल जाते हैं। नृत्य के श्रम से युगल के मुखारविन्द पर झलकते प्रस्वेद कणों की शोभा अत्यन्त रुचिदायक है। अतिशय उदार युगल नवल-किशोरी के इस रास-नृत्य में अपार रस की

वृद्धि हो रही है, जिसे 'ध्रुव' सहचरी एवं अन्य सहचरियाँ हित के नित्य- विहार रूप में अवलोकन कर रही हैं।।२।।

(७९) राग सारंग

यह छवि निरखि जाऊँ बलिहारी।
राजत रसिक रँगीलौ मोहन, संग रँगीली राधा प्यारी।।१।।
लसत सीस सिखि-पिच्छ मनोहर, जलजनि जुत सीमंत सँवारी।
बंसी कनक-कमल कर सोभित, पिय पट-पीत नील तनु सारी।।२।।
अंग-अंग छवि सहज विराजत, भूषन की दुति न्यारी।
श्रमित झलक बाढ़त नैननि पै, 'हित ध्रुव' नाहिंन जात सँभारी।।३।।

आज रसिक रँगीले श्री मोहन लाल के साथ रँगीली श्री राधा प्यारी की शोभा का दर्शन करके मैं बलिहार हो रही हूँ।।१।। श्री लाल के शिरोभाग पर विराजित पाग में मोर-पिच्छ की मनोहर छवि के साथ प्रिया के सिन्दूर-रञ्जित सीमन्तभाग पर शुभ्र मुक्ता-पङ्क्ति सुसज्जित है। प्रियतम की वंशी प्रिया के स्वर्ण-कमलवत् कर-तल में सुशोभित है। प्रियतम ने नील-पट एवं श्री प्रिया ने अपने तनु पर पीताम्बर धारण कर रखा है।।२।। युगल के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की छवि सहज शोभामयी है तथा उन अङ्गों में धारण किये हुए आभूषणों की कान्ति भी विलक्षण है। सुकुमार युगल की आलस-वलित एवं वृद्धि-प्राप्त छवि 'हित ध्रुवदास' के नेत्रों से सँभाली नहीं जाती।।३।।

"व्याहुला"

'व्याहुला' नित्य-दम्पति श्री श्यामा-श्याम का विवाहोत्सव है, जिसका मनोरथ करती हैं, युगल की सखी-सहचरियाँ। इस मनोरथ (अभिलाषा) का प्रयोजन है—युगल रसिक नित्य दम्पति में पारस्परिक अनुराग की अभिवृद्धि एवं नित्य सहचरियों का तत्सुखमय रसास्वादन। श्री वृन्दावन नित्य-लीला

का धाम है, जहाँ अनादि-अनन्त रसिक दम्पति श्री श्यामा-श्याम की रस-राशि प्रणय-लीला अनवरत रूप से सम्पन्न होती रहती है। निष्काम युगल-रसिक सखियों के प्रेम-खिलौने हैं। यह परिकर नित्य निष्काम और तत्सुखमय है।

इस पद में श्री हित ध्रुवदास जी महाराज ने श्री हित राधावल्लभीय रसोपासना को, 'व्याहुला'—मनोरथ के रूप में प्रस्तुत करके रसिक-जनों को रस का अभूत आस्वादन ही नहीं कराया है वरं रसोपासना का मार्ग भी प्रशस्त किया है।

(८०) राग मलार

सखियनि के उर ऐसी आई। ब्याह-विनोद रचैं सुखदाई।
यहै बात सबकैं मन भाई। आनँद-मोद बढ्यौ अधिकाई।।
बढ्यौ आनँद मोद सब कैं, महा प्रेम सुरँग रँगीं।
और कछु न सुहाइ तिनकौं, जुगल सेवा-सुख पगीं।।
निसि-द्यौस जानत नाँहि सजनी, एक रस भींजी रहैं।
गोप-गोपिनु आदि दुर्लभ, तिहिं सुखहि दिन-प्रति लहैं।।१।।
यह नव दुलहिनि अति सुकुमारी। ये नव दूलहु लाल-विहारी।
रँग-भीने दोउ प्रान-पियारे। नवसत अंगनि अंग सिंगारे।।
नवसत सिंगारे अंग-अंगनि, झलक तन की अति बढ़ी।
मौर-मौरी सीस सोहैं, मैंन-पानिप मुख चढ़ी।।
जलज सुमन सुसेहरे रचि, रतन हीरे जगमगैं।
देखि अद्भुत रूप मनमथ, कोटि रति पाँइनिं लगैं।।२।।
सोभा मंडप कुंज द्वारैं। हित की बाँधी बंदनवारैं।
कुम-कुम सौं लै अजिर लिपायौ। अद्भुत मोतिनु चौक पुरायौ।।
पुराइ अद्भुत चौक मोतिनु, चित्र-रचना बहु करी।
आइ दोउ ठाढ़े भये तहाँ, सबनि की गति-मति हरी।।

सुरँग मिहँदी रंग राचे, चरन-कर अति राजहीं।
विविध रागिनि किंकिनी, अरु मधुर नूपुर बाजहीं।।३।।
वेदी सेज सुदेस सुहाई। मन दृग अंचल ग्रंथि जुराई।
रीति-भाँति विधि उचित बनाई। नेह की देवी तहाँ पुजाई।।
पूजि देवी नेह की दोउ, रति-विनोद विहारिहीं।
तिहि समैं सखि ललितादि हित सौं, हेरि प्राँननि वारहीं।।
एक वैस सुभाव एकै, सहज जोरी सोहनी।
एक डोरी प्रेम की 'ध्रुव', बँधे मोहन-मोहनी।।४।।

श्री लाड़िली-लाल की तत्सुखमयी सखियों के हृदय में अभिलाषा हुई कि हम नित्य-दम्पति श्री श्यामा-श्याम के विवाह-विनोद की सुखद रचना करें और यह बात सब सखियों के मन को बहुत प्रिय लगी, जिससे अधिकाधिक आनन्दोल्लास की वृद्धि होने लगी। यों तो नित्य-विहार देश की ये सहचरियाँ महान्तम प्रेम के रङ्ग से सदा रञ्जित् ही रही आती हैं; तथापि विवाह-उत्सव की बात से सब का उल्लास अतिशय वृद्धि को प्राप्त हो गया; क्योंकि रसिक-युगल श्री लाड़िली-लाल के सेवा सुख में सदा अनुरञ्जित् रहने वाली इन सखियों को अपने प्रिय युगल की सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सुहाता, निरन्तर केवल रस में भींगी रहने के कारण इन्हें न दिन का बोध होता है, न रात्रि का। जो रस, जो प्रेम का सुख व्रज परिकर के गोप-गोपी आदि को भी अत्यन्त दुर्लभ है, उस अनिर्वचनीय सुख को ये नित्य-सहचरियाँ निरन्तर प्राप्त करती रहती हैं।।१।। इन सखियों के प्राणाराध्य रसिक युगल हैं—नित्य नव-वधू अत्यन्त कोमलाङ्गी प्रिया एवं नित्य नव-दूलह श्री विहारी लाल प्रियतम। ये युगल रसिक प्राण-प्रियतम सदैव प्रेम के रङ्ग में भींने रहते हैं, जिन्हें आज सखियों ने वर-वधू के रूप में षोडश

शृङ्गारों से सर्वाङ्ग-रूपेण सुसज्जित किया है। आज सोलह शृङ्गारों द्वारा अङ्ग-अङ्ग से सुसज्जित होकर युगल-तनु की कान्ति अतिशय वृद्धि को प्राप्त हो रही है। प्रियतम के शिरोभाग पर विवाहोचित मौर एवं प्रिया के शीश पर मौरी सुशोभित है तथा दोनों के मुखारविन्दों पर प्रेम-काम-रस जनित लावण्य उद्दीप्त हो रहा है। सखियों ने पुष्प-गुम्फित मोतियों के सेहरे, जो रत्न एवं हीरों से जगमगा रहे हैं, रच-रच कर युगल के मुखारविन्द पर धारण कराये हैं, जिससे रूप का अद्‌भुत वैभव प्रकट हो रहा है, जिसका दर्शन करके कोटि-कोटि कामदेव एवं काम-प्रिया रति युगल के श्रीचरणों में विलुण्ठित हो रहे हैं।।२।। आज नव-निकुञ्ज के द्वार पर विवाह-मण्डप की शोभा दर्शनीय है। जहाँ हित रूपी बन्दन-मालाऐं लटक रही हैं। नव-निकुञ्ज के प्राङ्गण का विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में केशर- पङ्क से लेपन किया गया है एवं अद्‌भुत मोतियों से सुन्दर-सुन्दर चौक पूरे गये हैं। सखियों ने मोतियों द्वारा विविध प्रकार की रचनाओं से प्राङ्गण को बहुविध सुसज्जित किया है। तत्पश्चात् जब युगल रसिक दम्पति वर-वधू के रूप में वहाँ लाकर खड़े किये गये, तब उन्होंने अपनी अमित रूप-राशि से उपस्थित समाज की गति-मति का हरण कर लिया। अहा ! गहरे लाल रङ्ग की मेंहदी से अनुरञ्जित् उनके चरण-कमल एवं कर-कमल अत्यन्त शोभा को प्राप्त हैं तथा श्रीचरणों के नूपुर एवं कटि की किङ्किणियों का मधुर-स्वर विविध राग-रागनियों की सृष्टि कर रहा है।।३।। सखियों के द्वारा रचे गये इस विवाहोत्सव की सम्पन्नता के लिए जो यज्ञ-वेदी रची गई है, वह स्थूल-वेदिका न होकर युगल की प्रणय-केलि को सम्पन्न करने वाली सुरत-शय्या ही, इस रस प्रसङ्ग में वेदिका है। इसी प्रकार जैसे लोक में वर-वधू के अञ्चलों की ग्रन्थि बाँधी जाती है, यहाँ वह स्थूल ग्रन्थि-बन्धन न करके नित्य वर-वधू के मन एवं नेत्र-रूपी अञ्चलों का रूप-रस के माध्यम से परस्पर में बँध जाना ही अञ्चल-ग्रन्थि है। युगल के मन एवं नेत्रों को बाँधना सखियों का परम सुख है। पश्चात् सखियों ने विवाह की विविध रीति और पद्धतियों को उचित रीति से पूर्ण करके युगल के द्वारा

अन्त में प्रेम की देवी का पूजन कराया (जैसा कि लोक में विवाह के अन्त में देवी-पूजन के द्वारा विवाह की सम्पूर्णता मानी जाती है।) अस्तु, प्रेम की देवी का पूजन करके नव-दम्पति ने रति- विनोद विहार के लिए निभृत-निकुञ्ज में पदार्पण किया। उस समय के सुख का दर्शन करके ललितादिक समस्त सखियाँ प्रेम के सुख में भरकर अपने प्राणाराध्य-युगल पर प्राणों को न्यौछावर करने लगीं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते है कि सहज सुहावने युगल दम्पति का द्वैत-रहित एक ही स्वभाव है, उनकी एक ही वयस् है। वे केवल अनन्य प्रेम की डोरी में बँधे हुए परस्पर में एक-दूसरे के मोहन और मोहनी है।।।४।।

(८१) राग विहागरौ

श्री वृंदावन धाम रसिक मन मोहई।
दूलहु दुलहिनि ब्याह सहज तहाँ सोहई।।१।।
नित्य सहाने पट अरु भूषन साजहीं।
नित्य नवल सम वैस एक रस राजहीं।।२।।
सोभा कौ सिरमौर चंद्रिका मोर की।
बरनी न जाइ कछू छबि नवल किसोर की।।३।।
सुभग माँग रँग-रेख मनौं अनुराग की।
झलकत मौरी सीस सुरंग सुहाग की।।४।।
मनिनु-खचित नव-कुंज रही जगमग जहाँ।
छबि कौ बन्यौ वितान सोई मंडप तहाँ।।५।।
बेदी सेज सुदेस रची अति बानि कैं।
भाँति-भाँति के फूल सुरँग बहु आँनि कैं।।६।।
गावत मोर मराल सुहाये गीत री।
सहचरि भरी आनंद करति रस-रीति री।।७।।
अलबेले सुकुँवार फिरत तिहिं ठाँव री।
दृग-अंचल परी ग्रंथि लेत मन भाँवरी।।८।।

कँगना प्रेम अनूप कबहुँ नहिं छूटही।
पोयौ डोरी-रूप सहज सो न टूटही।।९।।
रचि रहे कोमल कर अरु चरन सुरंग री।
सहज छबीले कुँवर निपुन सब अंग री।।१०।।
नूपुर कंकन किंकिनी बाजे बाजहीं।
निर्त्तत कोटि अनंग-नारि सब लाजहीं।।११।।
बाढ्यौ है मन माहिं अधिक आनंद री।
फूले फिरत किसोर वृंदावन-चंद री।।१२।।
सखियनि किये बहु चार अनेक बिनोद री।
दूधाभाती हेत बढ्यौ मन मोद री।।१३।।
ललित लाल की बात जबहि सखियनि कही।
लाज सहित सुकुवाँरि ओट पट दै रही।।१४।।
नमित ग्रीव छबि सींव कुँवरि नहिं बोलही।
बुधि-बल करत उपाइ घूँघट पट खोलही।।१५।।
कनक-कमल कर-नील कलह अति कल बनी।
हँसतिं सखी सुख हेरि सहज सोभा घनी।।१६।।
वाम-चरन सौं सीस लाल कौ लावहीं।
पानी वारि कुँवरि पर पियहि पिवावहीं।।१७।।
मेलि सुगंध उगार सौं बीरी खवावहीं।
समझि कुँवर मुसिकाइ अधिक सुख पावहीं।।१८।।
और हास-परिहास रहसि रस-रँग रह्यौ।
नित्य-विहार विनोद जथामति कछु कह्यौ।।१९।।
अंचल ओटि असीस सखी सब दैहिं री।
पल-पल बढ़ौ सुहाग नैंन-सुख लैहिं री।।२०।।

जैसैं नवल-विलास नवल-नवला करैं।
मन-मन की रुचि जानि नेह-विधि अनुसरैं।। २१।।
बैठी है निज कुंज कुँवरि मन-मोहनी।
झलकत रूप अपार सहज अति सोहनी।। २२।।
चाहि-चाहि सो रूप रसिक-सिरमौर री।
भरि आये दोउ नैंन भई गति और री।। २३।।
अति आनँद कौ मोद न उरहि समात री।
रीझि-रीझि रस भींजि आपु बलि जात री।।२४।।
अरुझे मन अरु नैंन बढ्यौ अनुराग री।
एक प्रान द्वै देह नागर अरु नागरी।।२५।।
यौं राजत दोउ प्रीतम हँसि-मुसिकात री।
निरखि परस्पर रूप न कबहुँ अघात री।। २६।।
तिनही के सुख रंग सखी दिन रँग-मँगी।
और न कछू सुहाइ एक-रस सब पगी।।२७।।
उभय रूप रस-सिंधु मगन जहाँ सब भये।
दुर्लभ श्रीपति आदि सोई सुख दिन नये।।२८।।
'हित-ध्रुव' मंगल सहज नित्य जो गावही।
सर्वोपरि सोइ होइ प्रेम-रस पावही।। २९।।

रसमय श्री वृन्दावन धाम समस्त रसिकों के मन को आनन्द-मुग्ध कर देने वाला धाम है। नित्य वर-वधू श्री श्यामा-श्याम का रसमय विवाहोत्सव यहीं सहज रूप से शोभा देता है।।१।। ये सखियों के मनोरथ के अनुसार सम्पन्न होने वाले विवाहोत्सव में रसिक युगल प्रायः नित्य ही विवाह-कालीन वस्त्र एवं भूषण धारण करते ही रहते हैं। ये नित्य नवल-युगल श्री वृन्दावन धाम में सदा-सर्वदा समवयस् नव-किशोर के रूप में विराजते हैं।।२।। और जब वे विवाह के समय अपने शिरोभाग पर शोभा-सुन्दरता की शिरोमणि रूपा

मयूर-चन्द्रिका धारण करके दूलह रूप में सुसज्जित होते हैं, तब उन नवल-किशोर की छवि वर्णन में नहीं आ पाती।।३।। इसी प्रकार नवल-किशोरी के सुभग-शीश पर अरुणिम रङ्ग से भरी हुई माँग (सीमन्त-रेखा) ऐसी प्रतीत होती है, मानो अनुराग की चरम-सीमा हो। आज नवल-वधू के शिरोभाग पर सुहाग की सुरङ्ग मौरी अपूर्व छवि से झलक रही है।।४।। विविध मणि-रत्नों से जटित जाज्वल्यमान् नव-निकुञ्ज के प्राङ्गण में अवर्णनीय छवि का विस्तार रूपी वितान ही वैवाहिक मण्डप है।।५।। नित्य-विहारिणी सखियों ने विविध प्रकार के सुरङ्गित पुष्पों को सँजोकर जिस सुखद-सुन्दर पुष्प-शय्या का रुचिपूर्वक निर्माण किया है, वही शय्या वैवाहिक यज्ञ-वेदी है।।६।। विवाह के इस रसमय अवसर पर श्रीवन के मयूर एवं हंस सुहावने गीत गा रहे हैं और आनन्द-पूरित सहचरियाँ विवाह की रस-रीतियों का विस्तार कर रही है।।७।। विलक्षण सुकुमार युगल वेदी के चारों ओर परिक्रमा दे रहे हैं। उनके नेत्र-रूपी अञ्चलों की गाँठ जुड़ी हुई है तथा तन के साथ-साथ उनके मन भी भाँवरी ले रहे हैं।।८।। प्रेम रूपी अनुपम कङ्कन जो वर-वधू की पहुँचियों में आबद्ध हैं, छुड़ाने के नाना प्रयासों के पश्चात् भी छोड़ा-छुड़ाया नहीं जा सका है, क्योंकि वह नित्य-नव लावण्यमय युगल के सुन्दर रूप की डोरी से आबद्ध है—पिरोया गया है अतएव सहज-सहज छूटता ही नहीं है।।९।। वर-वधू के सुकोमल हाथ एवं चरण अलक्तक रङ्ग से अनुरञ्जित् हैं। छविमान् युगल-किशोर सौन्दर्य गुण एवं समस्त शृङ्गार कलाओं में परम प्रवीण हैं एवं सहज सौन्दर्य राशि हैं।।१०।। युगल-किशोर के श्रीअङ्गों में धारण किये हुए आभूषण यथा हाथों के कङ्कण, कटि-देश की किङ्किणियाँ, चरणों के नूपुर आदि अलङ्कार विविध वाद्यों की भाँति उनके गतिमान् होने पर बज उठते हैं। ऐसी सौन्दर्य-शाली सखियों का नृत्य-दर्शन करके नृत्य कलाकोविद कोटि-कोटि काम-पत्नियाँ भी लज्जित हो जाती हैं।।११।। हे सखि! आज श्रीलाल जी के मन में अत्यधिक आनन्द की वृद्धि हो रही है, इसीलिए नव-किशोर वृन्दावन-चन्द श्री लाल जी प्रसन्न मन फूले-फूले फिर रहे हैं।।१२।। जब सखियों

ने विवाह-विनोद के अनेक रसमय उपचार सम्पन्न कराये, और जब उनके मन में वर-वधू की 'दूधाभाती' कराने का उल्लास हुआ तो इससे दम्पति का मन आनन्द मोद से भर गया। (तभी कुछ सखियों ने मिष्टान्न पक्वान्न आदि दूधाभाती की सामग्री प्रस्तुत की। उस समय रसिक दम्पति एक-दूसरे के मुख में ग्रास देने लगे और इधर सखियाँ हास्य-विनोद पूर्ण व्यंग्य-भाषा में रस उत्पन्न करने वाली उक्तियाँ प्रकट करने लगीं)।।१३।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि जब विनोदी सखियों ने प्रिया से प्रियतम श्रीलाल जी की रस-सम्बन्धी कुछ अतरङ्ग बातें हास्य-रूपक से कहीं तो सुकुमारी नव-वधू लज्जा से नत हो गयीं और उन्होंने अपने मुखारविन्द को घूँघट-पट की ओट में छिपा लिया।।१४।। छवि-सौन्दर्य की अवधि किशोरी अपनी ग्रीवा को झुका कर छुईमुई सी होकर मौन रह गयी और इधर श्रीलाल जी अपने सम्पूर्ण बुद्धि-बल द्वारा उनके घूँघट- पट को खोलने में संलग्न हो गये।।१५।। उस समय गौराङ्गी प्रिया के स्वर्ण कमलवत् करों एवं लाल के नील करों में जो प्रेम-कलह प्रकट हुआ उसकी रमणीयता का वर्णन असम्भव है। उस सहज सुख की घनीभूत शोभा का अवलोकन करके रसिक सहचरियाँ खिल-खिला उठीं।।१६।। सखियाँ श्रीलाल जी के मस्तक को अपनी चातुरी किंवा युक्ति से श्री प्रिया-चरणों से स्पर्श कराने लगीं। कुछ अन्य सखियाँ प्रिया पर जल न्यौछावर करके प्रियतम को पिलाने लगीं।।१७।। कुछ सखियों ने प्रिया-मुख निर्गलित ताम्बूल-वीटिका में अन्य कुछ सुगन्धित द्रव्य मिलाकर प्रियतम के मुख में अर्पित किया। इस बात को (कि यह श्रीप्रिया मुख का उगार है) समझ कर प्रियतम श्रीलाल मन ही मन अधिक सुखी होकर मुस्कुराने लगे।।१८।। इस प्रकार "दूधाभाती" के अवसर पर अनेक प्रकार के ऐकान्तिक एवं गूढ़-कोटि के रस-रङ्गमय हास-परिहास हुए, जिनका वर्णन सम्पूर्ण रूप से किया ही नहीं जा सकता। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने अपनी अल्प-बुद्धि के अनुसार विवाह-विनोद लीला का किञ्चित् ही वर्णन किया है।।१९।। पुनः सब सखियाँ अपने-अपने अञ्चलों की ओट करके नव दम्पति को आशीर्वाद देते हुए कहने

लगीं—"हे प्रिये ! आपका दाम्पत्य-सौभाग्य प्रतिपल वृद्धि को प्राप्त होता रहे और आपके इस नव दम्पति रूप का दर्शन करके हम अपने नेत्रों का सुख प्राप्त करती रहें।।२०।। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि इस प्रकार नित्य नवल किशोर प्रियतम एवं नित्य नवेली प्रिया नये-नये कुञ्ज-विलास करते रहते हैं। त्योंही युगल-मन की रुचि को जान-पहचान कर सखियाँ तत्सुखमयी प्रेम-विधि का अनुसरण करती रहती हैं। आज अपने निज निकुञ्ज भवन में नव-वधू मन-मोहिनी कुँवरि किशोरी विराजमान् हैं। उनका रूप-सौन्दर्य अपार-अमित होकर झलक रहा है, वे सहज शोभा की मूर्ति है। उनके सुहावने मन-मोहन रूप का निर्निमेष अवलोकन करके रसिक-शिरोमणि प्रियतम के युगल नयन प्रेम-जल पूरित हो गये हैं, उनकी गति एवं स्थिति प्रेम-विवशता के कारण कुछ विलक्षण ही हो गयी है।।२३।। आनन्द का अतिशय उल्लास उनके हृदय में समाता नहीं है। वे प्रिया के रूप पर बारम्बार रीझ कर रससिक्त हुए स्वयमेव बलिहार हो रहे हैं।।२४।। नव-दम्पति श्री लाड़िली-लाल के मन एवं नयन परस्पर रूप-राशि का अवलोकन करके उलझ गये हैं एवं उनके हृदयों में अनुराग की अपार वृद्धि हो रही है। वस्तुतः नित्य-विहारी युगल रस-निपुण श्रीलाल जी एवं रस-विदग्धा प्रिया सदा-सर्वदा एक-प्राण युगल तनु हैं, उनमें द्वैतात्मक भेद है ही नहीं।।२५।। नित्य नव वर-वधू युगल परस्पर रूप-दर्शन पूर्वक हँसते-मुसकाते शोभा को प्राप्त हैं। वे परस्पर एक दूसरे का रूप-दर्शन करके कभी परितृप्त नहीं होते।।२६।। इन रसिक युगल के सुख-विलास की लालसा में निरन्तर अनुरञ्जित रहने वाली सखियाँ भी अहर्निश आनन्द-रङ्ग से रँगमगी बनी रहती हैं। इन सखियों को जो सदा एक-सी रस में पगी हुई हैं, युगल के रसमय सुख से अतिरिक्त अन्य कुछ सुहाता ही नहीं है।।२७।। इस प्रकार नित्य-दम्पति के नित्य नव-विवाह की सर्जना करके श्री वृन्दावन नित्य-विहार का समस्त रसिक परिकर निमग्न रहा आता है। यह नित्य-नूतन सुख लक्ष्मी-पति आदि के लिये भी दुर्लभ है।।२८।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं, जो कोई भी श्रद्धालु इस सहज एवं नित्य मङ्गल-मय

मनोरथ रूपी व्याहुले का गान करेगा, उसे प्रेम-रस की प्राप्ति होगी तथा वह संसार में सर्वोपरि रसिकता का यश-लाभ करेगा।।२९।।

(८२) राग विहागरौ

राजत नव निकुंज पिय प्यारी।
चहुँ दिसि दीप मनिनु के सखियनि, रचि-रचि धरे निसि जानि दिवारी।।१।।
भूषन लाइ परस्पर खेलत, नव-किसोर नवला-सुकुमारी।
हारत लाल लगावत जोई, त्यौं-त्यौं चौंप बढ़ी अति भारी।।२।।
अंगद हार हारि पहुँची पट, तब कटि तें किंकिनी उतारी।
सोऊ जीति लई मृगनैंनी, नमित ग्रीव करि रहे विहारी।।३।।

आशीष का पद—गो॰ श्री रूपलाल जी महाराज

लाड़ी जू थारौ अविचल रहौ जी सुहाग।
अलक लड़े रिझवार छैल सौं, नित नव बढ़ौ अनुराग।।
यौं नित विहरौ ललितादिक सँग, वृंदावन निजु बाग।
'रूप अली' हित जुगल नेह लखि, मानति निजु बड़ भाग।।

राधावल्लभीय रसोपासना निष्काम एवं तत्सुखमयी प्रीति की उपासना है। इष्ट-तत्व को आशीष देकर उनके सुख की अभिलाषा करना यहाँ की प्रेम-पद्धति का भूषण है, अतएव नव-दम्पति को आशीष देती हुईं सखियाँ कहती हैं कि—"हे लाड़िली जू! आपका दाम्पत्य सौभाग्य सदा-सर्वदा अचल रहे। विलक्षण लाड़िले रिझवार छैल प्रियतम से आपका नित्य नव अनुराग बढ़ता ही रहे। ललितादिक सहचरियों के साथ अपनी निजु-वाटिका वृन्दावन में इसी प्रकार आप सदा विहार-परायण रहें। श्री हित रूपलाल जी कहते हैं कि आपके नव-दाम्पत्यमय युगल रूप का पारस्परिक प्रेम-दर्शन करके हम सब सखियाँ अपना सहज अहो-भाग्य अनुभव करती हैं।

पुनि लिये दाव बदलि मनमोहन, बहुरयौ खेलि चंद्रिका हारी।
जब जान्यौ नहिं दाव परत कछु, तब मुसिकाइ सोरहीं डारी।।४।।
भूषन-पट कैसैं कै द्याए, सकुचौ जिनि बलि कहैं ललिता री।
फूली कुँवरि हँसति आनँद भरि, 'हित ध्रुव' तिहि सुख की बलिहारी।।५।।

दीप-मालिका के पुण्य-पर्व पर आज नव-निकुञ्ज में प्रिया-प्रियतम (युगल) सुखासन पर विराजमान् हैं। दीपावली की रात्रि जानकर सखियों ने विविध मणियों के दीपक यथा-स्थान सुसज्जित किये हैं।।१।। नव किसोर लाल जी एवं नव किशोरी सुकुमारी प्रिया अपने-अपने आभूषणों की बाजी लगा कर परस्पर में द्यूत-क्रीड़ा परायण हैं। श्रीलाल जी जो भी आभूषण दाव पर लगाते हैं, हार जाते हैं। हारने से प्रिया जी एवं सखियों का उत्साह अधिकाधिक बढ़ता जाता है।।२।। जब प्रियतम पहले दाव में अपने बाजूबन्द हार गये और दूसरी बार कलाइयों की पहुँचियाँ भी हार गये, तब उन्होंने अपनी कटि से किङ्किणी भी उतार कर दाव पर लगा दी। संयोग की बात मृगनयनी प्रिया ने वह किङ्किणी भी जीत ली, तब तो पराजित प्रियतम की ग्रीवा स्वाभाविक ही लज्जा से नत हो गयी।।३।। यद्यपि बारम्बार पराजित होते रहने के कारण उन्होंने पाली तो बदल ली; फिर भी खेल के दाव में लगाई हुई चन्द्रिका भी पुनः हार ही गये। जब उन्होंने देखा कि मेरा अनुकूल दाव पड़ता ही नहीं है; तब उन्होंने लज्जा-पूर्ण मुस्कान के साथ परिसमाप्ति के लिए "सोरहीं" नामक कौड़ियाँ (द्यूत-क्रीड़ा के उपकरण) इस मुद्रा के साथ डाल दी कि मैं खेलना नहीं चाहता।।४।। ललिता सखी ने कहा, "हे प्यारे आप लज्जित न हों, संकोच भी न करें, हम श्री प्रिया जी से अनुनय-विनय करके जीते हुए आपके आभूषणादि आपको वापस दिलवाये देती हैं।" यह सब देखकर द्यूत-क्रीड़ा में विजयी प्रिया प्रसन्नता से भर कर आनन्द-पूर्वक हँसने लगीं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैं युगल के इस सुख की बलिहार जाता हूँ।।५।।

(८३) रांग विहागरौ

रँगीली भामिनी।।टेक।।
दुलहिनी मन-मोहिनी, दूलहु रसिक लाल।
रची है सेज सुहावनी, दल लै लै कंज गुलाल।।१।।
चंचल नैंननि चितवनी, बिच भौंहनि की भंग।
हुलसि-हुलसि पिय कौ हियौ, भर्‌यौ जू रंग अनंग।।२।।
कबहुँ-कबहुँ लपटि जात, दसन-वसन जोरि।
पीवत रस माधुरि दोऊ, नागर नवल किसोर।।३।।
सुरँग रंग के तरँग, उपजत है अँग-अंग।
'हित ध्रुव' वलि वलि जात सखि, निरखि सुख अभंग।।४।।

जैसी रङ्ग-रँगीली भामिनी, नव-दुलहिनी, मनमोहिनी श्रीप्रिया हैं, वैसे ही रसिक दूलह श्री लाल जी हैं। आज दोनों ने मिलकर अरुण-कमल के दलों से सुहावनी एवं सुखद शय्या की रचना की है। प्रिया की चञ्चल नेत्र-चितवन एवं उनकी भृकुटियों की कुटिल भङ्गिमा बारम्बार उल्लसित होकर प्रियतम के हृदय को अनङ्गानन्द से परिपूरित कर रही हैं।।२।। कभी-कभी रसिक-युगल अधरों का समागम करते हुए आलिङ्गित हो जाते हैं, तब वे दोनों परम-चतुर नवल किशोर रस-माधुरी का पान करके मुग्ध हो रहते हैं।।३।। उनके अङ्ग-अङ्ग से प्रेम-विलासमय सुरतानन्द की तरङ्गें उठने लगती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि सखियाँ नित्य सहज सुख को निहार कर बलिहार जाती हैं।।४।।

(८४) राग राइसो

सोहैं कुंज सुहाग में, सेज सुदेस सहानी।।टेक।।
दुलहिनि दूलहु राजहीं, कोक-कला कल ठानी।
लाल-लड़ैती रँग भरे, सब सखियनि-सुखदानी।।१।।

मैंहदी कौ रँग अति बन्यौ, भूषन वसन सहाने।
सुंदर मुख पाननि भरे, अँग-अँग नव-सत बाने।।२।।
बाढ्यौ रंग अनंग कौ, लोइनि रूप लुभाने।
भीने प्रेम-सुरंग में, रजनी-द्यौस न जाने।।३।।
मोहे मोहन मोहनी, चितवनि नैंन विसाल।
सोइ प्यारी उर यौं लसै, 'हित ध्रुव' रूप की माल।।४।।

सुहाग कुञ्ज में सुहावनी सुहाग-रात (प्रथम समागम) की शय्या निर्मित है। जहाँ वर-वधू श्री श्यामा-श्याम विराजित हैं। उन्होंने परम सुन्दर दाम्पत्य केलि का उपक्रम कर रखा है। कुञ्ज विलासी लाड़िली-लाल सदा आनन्द से परिपूरित बने रहते हैं। वे समस्त सखी-सहचरियों के सहज सुखदाता हैं।।१।। युगल के श्रीकर एवं चरण-कमलों में मैंहदी के रङ्ग की अरुणिमा सुहावने रूप से सुसज्जित है तथा श्री अङ्गों में दाम्पत्य-सौभाग्य के सूचक वस्त्राभूषण शोभित हैं। युगल अपने सुन्दर मुखों में सुगन्धित ताम्बूल-वीटिकाएँ लिये हुए चर्वण कर रहे हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में षोडश शृङ्गार सुसज्जित हैं।।२।। युगल के हृदय में प्रेम-अनङ्ग का आनन्द-रङ्ग छाया हुआ है तथा उनके नयन पारस्परिक रूप-राशि से लुब्ध हैं। वे प्रेम के सुष्ठु रङ्ग में इतने अधिक अनुरञ्जित हैं कि उन्हें रात्रि एवं दिवस का बोध ही नहीं रह गया है।।३।। मोहनलाल प्रियतम अपनी मोहनी प्रिया के विशाल नेत्रों की चितवन से परम-विमुग्ध हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं उपरिवर्णित ऐसी शोभामयी प्रिया रूप-माला की भाँति मेरे हृदय में सदा विराजित हुई शोभा देती रहे।।४।।

(८५) राग गौरी

देखि सखि नवल निकुंज-विहार।
राजत सखी सेज पर दोऊ, रूप-सींव सुकुँवार।।१।।
परम चतुर वृंदावन-रानी, करत अंक-पिय सैंन।
निरखत सहज अंग छवि मोहन, भये सजल पिय-नैंन।।२।।

यह गति जान प्रिया प्रीतम की, परम मृदुल मन कीनौं।
जिहिं विधि रुचि प्यारे लालन की, तिहिं-तिहिं विधि सुख दीनौं।।३।।
मुदित सखी अवलोकत जिनकैं, यह सुख जीवन माई।
इहि रस पगी और कछु सुपने, 'हित ध्रुव' मन न सुहाई।।४।।

हे सखि ! रसिक दम्पति श्री लाड़िली लाल के नव निकुञ्ज में विलसित रसमय विहार का अवलोकन तो कीजिये ! रूप सौन्दर्य की परमावधि युगल रसिक सुकुमार सुखद शय्या पर विराजमान् हैं।।१।। विहारावसर निपुण नागरी वृन्दावनेश्वरी प्रिया, सहज स्वभाव से प्रियतम की क्रोड़ में शयन किये हुए हैं। जिनकी सहज माधुर्यमय अङ्गच्छवि को निरख कर प्रियतम मोहन लाल के नेत्र प्रेमाश्रु से सजल हो गये हैं।।२।। प्रियतम की ऐसी गति देख-समझ कर प्रिया का मन अतिशय मृदुल हो उठा, अतएव प्यारे लालन की जैसी कुछ रुचि एवं लालसा थी उसी के अनुसार उदार-शिरोमणि प्रिया ने उन्हें सुखित किया।।३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि जिन सखियों का जीवन-सर्वस्व-सुख, प्रिया-लाल का निकुञ्ज-विहार ही है, वे सखियाँ आज के निकुञ्ज-विहार का अवलोकन करके महा मुदित हैं; क्योंकि ये सखियाँ इस विहार-रस से ही निरन्तर पगी हुईं हैं। इनके मन को इसके अतिरिक्त अन्य कुछ स्वप्न में भी नहीं सुहाता।।४।।

(८६) राग गूजरी

आज अति सोभित नवल निकुंज।
लता मंजु नव कंज विविध रँग, रची सहज सुख पुंज।।१।।
त्रिविध समीर बहै सुखदाई, बोलत पिक मधु-बैंन।
अति सुरंग कोमल दल कमलनि, रची तहाँ सखि सैंन।।२।।
तापर रसिक राधिका-मोहन, विलसत सहज विलास।
करत विहार-सुरत नाना विध, बिच-बिच ईषद हास।।३।।

सो सुख सार परम निजु दासी, वर विहार बढ़वति दुहुँ ओरी।
'हित ध्रुव' रही एक टक जोहत, ज्यौं प्रति चंद चकोरी।।४।।

आज नव-निकुञ्ज की शोभा कुछ नवीन ही प्रकार से शोभित है; क्योंकि कुञ्ज, मञ्जुल लताओं एवं नूतन कमल-दलों से रङ्ग-बिरङ्गे रूप में रची गई है, अतएव सहज सुख-पुञ्ज है।।१।। श्री वृन्दावन का त्रिविध पवन शीतल एवं सुखद रूप से प्रवाहित हो रहा है। कुञ्ज-शिखर पर विराजित कोकिला अपनी मधुर-वाणी से गान कर रही है। कुञ्ज के अभ्यन्तर भाग में हित-रूपा सखियों ने सुरञ्जित अरुण कमल-दलों से सुखद शय्या की रचना कर रखी है।।२।। जिस पर रसिक राधा-मोहन सहज सुख का विलास विलस रहे हैं। वे विविध रूप से सुरत-विहार परायण हुए बीच-बीच में मन्द-मधुर ईषद् (अल्प) हास्य-युक्त हो जाते हैं।।३।। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रिया की निज दासी—श्री हित सजनी युगल के परम सुखसार रूपी विहार का उभय पक्ष में प्रतिक्षण अभिवर्द्धन करती रहती है एवं चन्द्र-चकोरीवत् इस श्रेष्ठतम विहार का निर्निमेष दर्शन करती रहती है।।४।।

(८७) राग आसावरी

देखौ प्रेम की अधिकाई।
निरखत रूप प्रिया कौ मोहन, तऊ नाहिं कल माई।।१।।
बैठे एक सेज पर दोऊ, तृपिति हियैं नहिं आई।
चाहत हौंन नैंन में नैंना, अंगनि अंग समाई।।२।।
अति अनुराग रँगे मन-मोहन, पलक निमेष भुलाई।
छिन-छिन होत चौंप चौगुनी अति, निरखत अंग-निकाई।।३।।
यौं आधीन सनेह विवस पिय, और न कछू सुहाई।
चरन जानि सर्वस प्यारी के, राखे उर मृदु लाई।।४।।
और कहाँ लगि कहौं सखी री रुचति न रंच बड़ाई।

हे सखियो ! प्रेम की वर्द्धमान् (प्रतिक्षण बढ़ती हुई) स्थिति का अवलोकन तो करो, जहाँ मोहन अपनी प्रियतम प्रिया के प्रतिक्षण नूतन होते हुए रूप का अपलक दर्शन करते हुए भी अतृप्त एवं विकल बने रहते हैं।।१।। यद्यपि युगल शय्या पर विराजमान् हैं, तथापि उनके हृदय में इतने से ही तृप्ति नहीं है। वे चाहते हैं कि परस्पर में हमारे नयन में नयन एवं अङ्गों में अङ्ग मिलकर एक हो जाएँ अर्थात् हम दो न रहें।।२।। अतिशय अनुराग के रङ्ग में रँगे मन-मोहन श्रीलाल जी अपने नेत्रों की पलकें गिराना भी भूल गए हैं और श्री प्रिया के अङ्ग-सौन्दर्य को निरन्तर निरखते हुए भी उनकी रूप-दर्शन लालसा प्रतिक्षण चौगुनी होती जाती है।।३।। प्रियतम श्रीलाल जी अपनी प्राण-प्रिया के प्रेम से इतने अधीन हो गये हैं कि उन्हें प्रिया के अतिरिक्त अन्य कुछ सुहाता ही नहीं; इस लिए उन्होंने श्री प्रिया के चरणों को ही सर्वोपरि एवं सर्वस्व जान-कर अपने कोमल हृदय में स्थापित कर रखा है। हे सखि ! मैं श्री लाल जी के अत्यधिक प्रेमाधीन स्वभाव किंवा उनके प्रेमाधिक्य की कहाँ तक प्रशंसा करूँ, उन्हें तो अपनी भी प्रसंशा किंवा मान-बड़ाई नहीं रुचती। वे अपने अहं का त्याग करके अहर्निश दैन्य-भाव में डूबे रहते हैं। उनकी इस स्वरूपस्थिति पर "ध्रुवदास" बारम्बार बलिहार जाता है।।५।।

(८८) राग विहागरौ

मोहनता की रासि किसोरी।
जे मोहन मोहत सबकौ मन, बँधे बंक चितवन की डोरी।।१।।
अंगनि पट-भूषन बिसराये, चितै रहे सुंदर मुख ओरी।
"हित ध्रुव" चैन हियैं तबही लौं, जब लगि देखत नैंननि गोरी।।२।।

नवल-किशोरी प्रिया के रूप-लावण्य में सबको प्रेम विमुग्ध करने की अपार क्षमता है, अतएव वे मोहनता की राशि हैं।।१।। जो श्रीलालजी अखिल-

वस्त्र एवं आभूषणादि भी विस्मृत हो गये हैं तथा वे श्रीप्रिया के सुन्दर मुख की ओर अपलक नेत्रों से निरखते ही रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम के हृदय में तभी तक चैन रहता है, जब तक वे गौराङ्गी किशोरी का अपने नेत्रों से दर्शन करते रहते हैं।।२।।

(८९) राग विहागरौ

मेरी लाड़िली राजत रंग भरी।
अधिक प्यार सौं मृदु भुज प्यारी, हँसि पिय-अंस धरी।।१।।
चित्र से ह्वै रहे नागर नागरी, कौंन भाग ते इहि रस ढरी।
'हित ध्रुव' अवधि प्यार की दोऊ, लगीं अखियाँ शुभ घरी।।२।।

श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरी आराध्या लाड़िली-किशोरी सदैव आनन्द से परि-पूरित ही रही आती हैं। जब कभी वे अत्यधिक प्रेम से भर कर अपनी सुकोमल भुजलता को प्रियतम के स्कन्ध पर प्रसन्नता पूर्वक रख देती हैं।।१।। तब तो परम चतुर प्रियतम चित्र की भाँति जाड्य-भाव को प्राप्त हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं कि—अहो ! आज मेरा कौन सा भाग्य उदय हुआ, जो नागरी प्रिया ऐसे रस में ढल गयीं। पुनः श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं हमारे परमाराध्य युगल श्री लाड़िली-लाल प्रेम की पराकाष्ठा हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि जिस किसी शुभ-घड़ी में हमारे नेत्र इनसे लग गयें।।२।।

(९०) राग विहागरौ

मेरी अखियाँ रूप के रंग रँगीं।
जुगल चंद अरविंद बदन-छबि, तिहिं रस माहिं पगीं।।१।।
नव-नव भाइ विलास माधुरी, रहीं सुख स्वाद लगीं।
'हित ध्रुव' और जहाँ लगि रुचि ही, ते सब छाँड़ि भगीं।।२।।

हे सखि ! मेरे नेत्र रूप के रङ्ग में रँग गये हैं। वे चन्द्रमा रूपी युगल [illegible] के रूप में पगे हुए हैं। मेरे ये नेत्र लाड़िली-

लाल के नित्य-नूतन भाव एवं उनकी विलासमयी माधुरी के सुख-स्वाद में ही निरन्तर संलग्न रहे आते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि मेरे पूर्व जीवन की अन्य जितनी भी रुचियाँ एवं प्रवृत्तियाँ थीं, उन सब का त्याग करके मेरे नयन युगल चरणों में आकर तत्परता के साथ संलग्न हो गये हैं।।२।।

(९१) राग विहागरौ

आज सखि निरख रूप भरि नैंन।
लता ऐंन रचि सैंन मिथुन वर, बोलत अति मृदु बैंन।।१।।
हँसत जबहि दोउ लसत दसन-दुति, सोभा कहत बनैंन।
'हित ध्रुव' निरखि सहज छवि सीवाँ, मैंन होत मन मैंन।।२।।

हे सखि ! आज आप आँख भर अर्थात् पूर्ण परितृप्ति पूर्वक (युगल के रसमय) रूप का दर्शन करें। जहाँ रसिक श्रेष्ठ युगल ने लता-भवन में सुखद शय्या की रचना करके एवं उस पर विराजमान् होकर अतिशय सुकोमल वाणी में परस्पर वार्त्तालाप प्रारम्भ कर रखा है।।१।। जब दोनों वार्त्ता के बीच में हँसने लगते हैं, तब उनके चमकते हुए दशनों की द्युति—शोभा कहते नहीं बनती। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि उस समय छवि की परावधि श्री लाड़िली-लाल का दर्शन करके साक्षात् कामदेव का भी मन मोम की भाँति पिघल कर ढलने लगता है।।२।।

(९२) राग विहागरौ

नवल निकुंज रँगीले दोऊ, करत रँगीली बात।
अति आनंद विकच मन सजनी, हँसि-हँसि उर लपटात।।१।।
परसत कुँवर जबहि उरजनि कर, कछु भृकुटी चढ़ि जात।
गहैं चिबुक तब रसिक लाड़िलौ, मृदु मुख हा-हा खात।।२।।
मन जु बिवस प्रीतम नहिं बूझत, प्यारी अधिक लजात।
मन कौ हेत जानि तब सहचरि, उठी कछक मसिकात।।३।।

अति प्रवीन रति-रंग कलनि में, उठत नवल नव घात।
'हित ध्रुव' यह सुख सार निहारत, अब क्यौं और सुहात।।४।।

आज नवल-निकुञ्ज में रङ्ग-रँगीले युगल रङ्ग-भरी वार्त्ता करने में मग्न हैं। अतिशय आनन्द के कारण उनके मन सहज ही मुकुलित हैं। हे सखि! वे बारम्बार हँसते हुए परस्पर आलिङ्गित हो जाते हैं।।१।। फिर कभी जब रसिक किशोर प्रियतम अपने कर-कमलों से प्रिया के सुभग उरोजों का स्पर्श कर देते हैं तो प्रिया की बाँकी भृकुटियाँ कुछ तन जाती हैं तब तो रसिक लाड़िले प्रियतम उनके चिबुक को सहलाते हुए अपनी कोमल वाणी से हा-हा खाने लगते हैं अर्थात् दैन्य-परायण हो जाते हैं।।२।। जब कभी काम रूपी प्रेम से विवश हुए प्रियतम, प्रिया के प्रणय-कोप का भय-निक्षेप नहीं मानते और धृष्टता सी करने लगते हैं, तब मृदुल-हृदय प्रिया अधिकाधिक ब्रीड़ा (लज्जा) से भर जाती हैं उस समय युगल के अन्तर्भाव की ज्ञाता सहचरी उन दोनों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए मुस्कराती हुई सन्नद्ध हो जाती है।।३।। तत्पश्चात् रति-रङ्ग क्रीड़ा में निपुण युगल-रसिक के मधुर मिलन में रस विलास की विविध कलायें प्रकट होने लगती हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रेम-विलास के इस सारातिसार सुख का दर्शन करने वाले रसिकों किंवा सखियों को इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कैसे अच्छा लग सकता है।।४।।

(९३) राग विहागरौ

रँगीली करत रँगीली बात।
सुनि-सुनि नवल रसिक मन-मोहन, फिरि-फिरि फिरि ललचात।।१।।
चितै-चितै मुख मधुर माधुरी, उरजनि सौं लपटात।
'हित ध्रुव' रस कौ सिंधु उमड़ि चल्यौ, पिय के हिय न समात।।२।।

आज रङ्ग-रँगीली प्रिया अपने प्रियतम से उमग-उमग कर रस-भरी वार्त्ता

कर रही हैं। जिसे पुनः पुनः श्रवण करके श्री नवल रसिक मन-मोहन प्रियतम उस वार्त्ता को सुनते ही रहने के लिए बार-बार ललचा रहे हैं।।१।। रसिक-प्रियतम श्री प्रिया मुख की महा-मधुर माधुरी का बारम्बार अवलोकन करके रस-विभोर हुए प्रिया के हृदय से लिपट-लिपट पड़ते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि प्रियतम के हृदय में रस का समुद्र उमड़ चलता है, जो किसी भी प्रकार रोका नहीं जा सकता और बाहर उछल आता है।।२।।

(९४) राग भैरव

श्री राधावर भज श्री राधावर भजि।
और सकल धर्मनि कौं तू तजि।।१।।
होइ अनन्य एक रस गाहौ।
रसिकनि-संग जु सदा निवाहौ।।२।।
आँन धर्म व्रत नेम न कीजै।
जुगल किसोर-चरन चित दीजै।।३।।
श्री वृंदावन घन-कुंज निहारौ।
'हित ध्रुव' तेहि ठाँ वास बिचारौ।।४।।

श्री हित ध्रुवदास जी रसिक उपासकों को उपदेश करते हैं कि तुम श्री राधावल्लभ का ही भजन करो, केवल श्री राधावल्लभ का ही भजन करो और अन्य धर्मों को सर्वथा त्याग दो।।१।। अपने इष्ट के प्रति अनन्य होकर निरन्तर व्यवधान-रहित उपासना के द्वारा रसका अवगाहन करो। जैसे भी हो सदा-सर्वदा रसिक महापुरुषों के सत्सङ्ग का तथा श्रद्धाभक्ति, सेवा का कर्त्तव्य-धर्म निबाहो।।२।। अन्य धर्मों में बताये गये व्रत-नियमादि का किञ्चित् भी आश्रय मत लो, केवल युगल-किशोर श्री लाड़िली-लाल के चरणों में ही चित्त का सर्वतोभावेन् समर्पण करो।।३।। नित्य धाम श्री वृन्दावन के प्रेम-पुञ्ज सघन कुञ्जों का ही ध्यान-भावना में दर्शन करते रहो और जैसे बने

(९५) राग भैरव

नित्य किसोरी नित्य किसोर। नित वृंदावन नित निसि-भोर।।१।।
नित्य सहचरी नित्य विनोद। नित आनँद बरसत चहुँ कोद।।२।।
नित्य मयूरी हंस चकोर। नित रस-भीने नाचत मोर।।३।।
सुक सारौ पिक रँगे अनुराग। गावत लाड़िली-लाल-सुहाग।।४।।
नित्य हंसजा निर्मल नीर। सीतल मंद सुगंध समीर।।५।।
नित राजत राजिव बहु रंग। मधुप मते गुंजत नित संग।।६।।
कोमल लतनि बहुत रँग फूल। झूमि रहीं जमुना के कूल।।७।।
कंचन मनिमय अवनि सुढार। झलमलात छवि झलक अपार।।८।।
जहाँ प्रेम की अतिही भीर। खेलत साँवल-गौर सरीर।।९।।
नित्य चितवनी मृदु मुसिकानि। नितहीं अद्‌भुत उर लपटानि।।१०।।
नित्य-विहार नितहिं सिंगार। पल-पल पावत सुख कौ सार।।११।।
नित्य सखिनु कैं यहै अहार। नित्य सुरत-रस करत विहार।।१२।।
कुंज-कुंज नित केलि अनन्त। करत फिरत कामिनि वर कंत।।१३।।
अतिही रसिक छबीली जोर। कहा कहौं कछु सुखहि न ओर।।१४।।
यह रस अद्भुत जो उर आयौ। श्री हरिवंश कृपा तें गायौ।।१५।।
'हित ध्रुव' हित सौं सुनै सुनावै। प्रेम माधुरी सहजहिं पावै।।१६।।

श्री हित ध्रुवदास जी अपने आचार्य अनन्त श्री विभूषित रसिकाचार्य शिरोमणि वंशी स्वरूप गोस्वामी श्री हित हरिवंश चन्द्र जी महाराज के द्वारा प्रकाशित नित्य-विहार उपासना के मूल सिद्धान्त-स्वरूप को संक्षिप्त रूप में निरूपित करते हुए एक रूपक से रसोपासना-योगपीठ का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि अनादि अनन्त अखण्ड श्री वृन्दावन धाम में नित्य-निरन्तर अहर्निश नित्य-विहारी नित्य-किशोर एवं नित्य विहारिणी नित्य-किशोरी की

विधायिका नित्य-सहचरी ललिता-विशाखा आदि अनन्त सखियाँ हैं। ये सखियाँ युगल में विनोद रूपी आनन्द की उत्पत्ति के लिए सदा-सचेष्ट रहती हैं। अतएव, श्री वृन्दावन धाम में चारों ओर नित्य-निरन्तर चारों ओर रस की वृष्टि होती रहती है।।२।। वृन्दावन के रस-भीने मयूर-मयूरी, हंस और चकोर आदि पक्षी-गण नित्य आनन्द का नृत्य करते रहते हैं।।३।। शुक-सारिका और कोकिला नित्य अनुराग रञ्जित हुए श्री लाड़िली-लाल के सौभाग्य सुख का नित्य-गान करते रहते हैं।।४।। श्री वृन्दावन में प्रवाहित सूर्य-नन्दिनी यमुना नित्य-निरन्तर शीतल, मन्द एवं सुगन्धित वायु तथा निर्मल-शीतल जल का प्रवाह-प्रवाहित करती रहती हैं।।५।। युगल के नित्य-विहार धाम श्री वृन्दावन में अनेक रङ्गों के कमल सदैव विकसित रहे आते हैं, जिन पर मधुमत्त भ्रमरगण सदैव गुञ्जार करते रहते हैं।।६।। अनेकानेक सुगन्धित एवं सुरङ्गित पुष्पों से भारान्वित कोमल-कोमल लताएँ यमुना के सुरम्य-तट पर सदा झूमती रहती हैं।।७।। श्री वृन्दावन की मणि-जटित कञ्चनमयी-भूमि सुढ़ार एवं समतल है, जिसकी अपार छवि निरन्तर जगमगाती रहती है।।८।। ऐसे श्री वृन्दावन में केवल प्रेम का ही अतिशय बाहुल्य है, जहाँ श्याम-गौर-कान्ति युगल रसिक किशोर सदा क्रीड़ा करते रहते हैं।।९।। उनकी रस-भरी चितवन एवं मृदु-मृदु मुसकान नित्य एक-रस प्रकट है। उनका पारस्परिक हृदयालिङ्गिन अद्भुत और नित्य है।।१०।। वे नित्य विहारमय हैं तथा नित्य-नित्य नयी उनकी शृङ्गार-लीला है। वे प्रतिपल समस्त सुखों के सार का आस्वादन करते रहते हैं।।११।। वह सुख-सार ही नित्य सहचरियों का आत्मिक-आहार है और उस आहार का स्वरूप है—नित्य सुरत-रसपूर्ण-विहार।।१२।। वृन्दावन की अनन्त कुञ्जों में अनन्त-केलि की नित्य क्रीड़ा सर्वश्रेष्ठ कामिनी-कन्त श्री प्रिया-लाल करते रहते हैं।।१३।। इस छवीली रसमयी जोड़ी की न तो कोई उपमा है और न इनके सुख का कोई ओर-छोर है।।१४।। मेरे हृदय में प्रकट हुआ यह अद्भुत-रस, अद्भुत तो है ही अवर्णनीय भी है। मैंने यहाँ

अस्तु, नित्य-विहार देश का संक्षिप्त सार वर्णन करते हुए श्री हित ध्रुवदास जी वार्त्ता के उपसंहार में फलस्तुति निरूपण करते हैं कि जो कोई श्रद्धालु प्रीति-पूर्वक इसे सुनेगा अथवा किसी को सुनावेगा, वह सहज ही युगल-किशोर की प्रेम-माधुरी को प्राप्त कर लेगा।।१६।।

(९६) राग कान्हरौ

सुन सखी दसा होत जब प्रेम की।
ज्ञान-कर्म-विधि-वैभवता सब, नहिं ठहरात व्रत, नेम की।।१।।
रहत अधीर ढरत नैंननि जल, मिटत सकल चंचलता मन की।
परत चित्र आनंद-सिंधु में, लजि तजि जात लाज गुरुजन की।।२।।
निद्रा आदि लगत सब नीरस, घटत विषय तृष्ना सब घटकी।
रहत मगन औरै रस सजनी, जब येही दोउ अखियाँ अटकी।।३।।
रुचत न रसन-स्वाद षट-रसके, अरु कछु होत छीन गति तन की।
'हित ध्रुव' रहत एक सुख नैंननि, छिन-छिन चौंप जुगल-दरसन की।।४।।

हे सखि! जब किसी भाग्यशाली हृदय में प्रेम की स्थिति प्रकट हो जाती है, तब वहाँ अद्वैत-ज्ञान, कर्म-काण्ड, वेद-विधि, ऐश्वर्य-बोध, व्रत-उपवास एवं यम-नियम आदि के लिए केई स्थान नहीं रह जाता।।१।। उस प्रेमी के मन में प्रियतम-मिलन की अधीरता अर्थात् चटपटी छा जाने से उसके नेत्र सदैव अश्रु-जल ढलकाते रहते हैं, साथ ही उस प्रेमी के मन की चञ्चलता सब ओर से समाप्त हो जाती है। प्रियतम के चिन्तन-स्मरण से उसका चित्त आनन्द के समुद्र में मग्न रहा आता है एवं लोक-समाज तथा गुरुजनों (आदरणीय जनों) के प्रति की जाने वाली मान-मर्यादा रूपी लज्जा भी समाप्त हो जाती है।।२।। निद्रा-क्षुधा आदि देह के स्वाभाविक एवं अनिवार्य-सुख नीरस प्रतीत होने लगते हैं एवं उस प्रेमी के हृदय की विषय सम्बन्धी तृष्णा, लालसा भी क्षीण हो जाती है। जब प्रेमी की आँखें प्रेमास्पद की अनन्त रूप-राशि में अटक जाती हैं तब वह प्रेमी किसी विलक्षण एवं अवर्णनीय रस में मग्न

रहने लगता है।।३।। उसकी जिह्वा को, भोज्य छः रसो का स्वाद भी अरुचिकर हो जाता है, जिससे उसके शरीर में कुछ-कुछ कृशता भी आ जाती है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, इस सब के साथ उस प्रेमी के नेत्रों में एक अलौकिक सुख यह छाया रहता है कि उसके नेत्र प्रतिक्षण युगल-दर्शन के उत्साह में प्रतीक्षारत बने रहते हैं।।४।।

(९७) राग कान्हरौ

ऐसौ और सनेही कौन।
रँगे एकही रंग रँगीलौ, तजि कैं विभौ चतुरदस भौंन।।१।।
छिन-छिन चरन-कमल सहरावत, कबहुँ करत पट-पीत सौं पौंन।
ऐसौ प्रेम कहा कोउ बरनै, जहाँ सकल सुख गौंन।।२।।
अद्‌भुत रूप माधुरी निरखत, भरि-भरि लोइनि दौंन।
'हित ध्रुव' तजि मर्जाद बड़ाई, ह्वै रहै सबै बात में मौंन।।३।।

रसिक शेखर श्रीलाल जी के अतिरिक्त ऐसा और कौन रँगीला-प्रेमी है, जो चौदह लोकों के ऐश्वर्य-वैभव तथा स्वामित्त्व का त्याग करके केवल एक प्रेम के ही रङ्ग में रँग गया हो।।१।। जो प्रतिक्षण प्राण-प्रिया के चरण-कमलों को सहलाता हो और फिर कभी अपने पीत-पट से उन पर मृदु-मृदु बयार करता हो। भला इनके ऐसे प्रेम का यदि कोई वर्णन करना चाहे तो क्या वर्णन करे, जिसके समक्ष उन्होंने अपने कायिक-मानसिक एवं आत्मिक समस्त सुखों को सर्वथा पीछे धकेल दिया है।।२।। ऐसे रूप-लालची प्रिय-तम हैं, जो नित्य-निरन्तर नवल-प्रिया की अनुपम रूप-माधुरी का अपने नयन-पात्रों में भर-भर पान करते रहते हैं। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उन्होंने लोक- वेद की मर्यादा एवं अपनी मान-बड़ाई का तो सर्वथा त्याग कर ही दिया है, अपितु सब ओर से अपने आपको समेट कर श्री प्रिया-प्रेम में ही तल्लीन हैं।।३।।

(९८) राग कान्हरौ

प्रान दियैं यह प्रेम न पैयै।
ऐसौ महँगौ आहि सखी री, कहि धौं सो कैसैं कैं लैयै।।१।।
लाल-लाड़िली कौ यह सर्वसु, तिहिं रस कौं ललचैयै।
अद्‌भुत छवि विवि रस की धारा, 'ध्रुव' मन तहाँ न्हवैयै।।२।।

हे सखि ! प्राणों का उत्सर्ग करने पर भी लाड़िली-लाल का आस्वाद्य यह सर्वोपरि प्रेम नहीं मिलता, ऐसा विलक्षण-मूल्यवान् अर्थात् महँगा है यह प्रेम, अतएव हे सखि ! तुम्हीं बताओ इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?।।१।। क्योंकि यह तत्सुखमय निष्काम प्रेम वृन्दावन-विलासी श्री लाड़िली-लाल का भी सर्वस्व एवं आराध्य है। सत्य तो यह है कि इस की प्राप्ति का कोई साधन नहीं है, अतएव इसे प्राप्त करने के लिए प्रेमी के मन में इस रस की लोलुपता ही सर्वोपरि उपासना है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि उपासक को चाहिए कि वह सब ओर से निर्वेद (वैराग्य) प्राप्त करके युगल-छवि की अद्भुत रस-धारा में अपने मन को निमज्जन करावे।।२।।

(९९) राग विहागरौ

सनेही एक विहारी-विहारिनि।
एक प्रेम रुचि रचे परस्पर, अद्‌भुत भाँति निहारिनि।।१।।
तन सौं तन, मन सौं मन, अरुझ्यौ, अरुझनि वारनि-हारनि।
यह छबि देखत ही 'ध्रुव' चित कौं, भूली देह-सँभारनि।।२।।

अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड में यदि कोई प्रेमी है, तो वह केवल श्री वृन्दावन निकुञ्ज-विलासी विहारी-विहारिणी श्री लाड़िली-लाल ही हैं, जो केवल अनन्य प्रेम की रङ्ग-रुचि में अद्भुत रूप से अनुरञ्जित् हुए देखे जाते हैं।।१।। जिनके परस्पर में तन से तन, मन से मन तथा केश कुन्तल एवं हारावली भी उलझी रहती है। युगल की ऐसी उलझी हुई छवि को देखकर ध्रुवदास को अपने चित्त एवं देह की सँभाल एवं सावधानी भी भूल गयी है।।२।।

(१००) राग विहागरौ

आराधहि मन राधा दुलहिनि, जिहिं आराधत लाल विहारी।
कुंज-कुंज डोलत सँग लागे, कृपा कटाक्ष करैं सुकुमारी।।१।।
रुचि लै नैंननि भौंहनि जोवत, छिन-छिन नवसत करत सँभारी।
'हित ध्रुव' अद्‌भुत प्रीति निहारत, देत सखी सब प्राननि वारी।।२।।

हे मेरे मन! तू श्री राधा नामक नित्य नव-वधू नवल-किशोरी की ही आराधना कर, जिनकी आराधना रसिक शेखर श्री विहारीलाल भी सदा करते हैं। वे अपनी आराध्या श्री राधा के साथ लगे हुए वृन्दावन की कुञ्ज-निकुञ्जों में इसलिए विचरण करते हैं कि सुकुमारी श्रीप्रिया मुझे अपने कृपा-कटाक्ष से कृत-कृत्य कर दें।।१।। रसिक लाल अपनी नवेली किशोरी प्रिया की रुचि अनुकूलता को प्राप्त करने के लिए किशोरी के कृपामय नेत्रों एवं भृकुटियों की ओर अपनी लालच भरी दृष्टि लगाये रहते हैं तथा क्षण-क्षण नवल किशोरी के षोडश-शृङ्गार की संरचना एवं संयोजन करते रहते हैं। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्रीलाल जी की इस अद्भुत प्रीति-प्रणाली का अवलोकन करके समस्त सखिजन अपने प्राणों को उन पर बलिहार करती हैं।।२।।

(१०१) राग विहागरौ

अवधि प्रेम की दोऊ प्यारे।
तन-मन-नैंन रहे एकै ह्वै, कबहूँ होत न न्यारे।।१।।
रुचि-रुचि सौं रचि रहे दोउ जन, ज्यौं नैंननि के तारे।
'हित ध्रुव' रीझि परस्पर छवि पर, तन-मन देत हैं वारे।।२।।

हे सखि! हमारे युगल प्रियतम प्रेम की चरम सीमा हैं, जिनके तन-मन एवं नयन भिन्न होकर भी एक हो रहे हैं, जो कभी एक दूसरे से वियुक्त होकर भी पृथक्-पृथक् नहीं होते।।१।। रसिक-युगल परस्पर की रुचि से सदा ऐसे अनुरञ्जित् रहते हैं, जैसे आँखों के तारे। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि वह परस्पर रीझ-रीझकर अपने तन-मन न्यौछावर करते रहते हैं।।२।।

(१०२) राग विहागरौ

खेलत चौपर मैंन की माई।
हास सिंगार भाव अनुराग की, सारें बनी सुखदाई।।१।।
रूप बिसात प्रेम के पाँसे, नैंन जुगनि की चलनि सुहाई।
चाह-चाह की सखी-सखी मन, रुचि कौ रंग कह्यौ नहिं जाई।।२।।
पिय प्रवीन प्यारी रस भोरी, अधर पान की बाजी लाई।
'हित ध्रुव' जीते हारे कौतुक, दुहूँ भाँति पिय की बनि आई।।३।।

हे सखि ! आज हमारे युगल प्रियतम काग-क्रीड़ा रूपी चौपड़ का खेल, खेल रहे हैं। उन्होंने हास्य, शृङ्गार, भाव एवं अनुराग की सारें अर्थात् गोटियाँ बनाई हैं। रूप की बिछायत हैं, जहाँ प्रेम के पाँसे फेके जाते हैं। युगल रसिक के युगल नयनों के रसपूर्ण कटाक्ष ही इस खेल में गोटियों की चालें हैं।।१।। हे सखि ! उभय पक्ष में प्रेमाभिलाषा (चाहत) रूपी सखियाँ ही युगल खिलाड़ी की सहयोगी किंवा सहायिका हैं। इस द्यूत-क्रीड़ा में युगल के मनो में जो रुचि का आनन्द-रङ्ग अभिवर्द्धित होता है, वह वर्णन में नहीं आता।।२।। प्रियतम श्रीलाल जी रस-लाभ लेने में अत्यन्त निपुण हैं तथा श्री प्रिया सहज ही रस-भोली हैं। उनके भोलेपन का लाभ उठाते हुए चतुर लाल ने पराजय किंवा विजय पर एक दूसरे द्वारा परस्पर में अधर-रस-पान की होड़ (बाजी या शर्त) स्वीकृत करा रखी है। श्री हित ध्रुवदास जी कहते हैं कि पराजय किंवा विजय में दोनों ही प्रकार से प्रियतम को ही लाभ है। यही इस द्यूत-क्रीड़ा का अद्भुत कौतुक है।।३।।

रसिक नामावली

प्रेमानन्दोत्पुलकित गात्रौ विद्युद्धाराधर सम कान्तिः।
राधा कृष्णौ मनसि दधानं वन्देहं श्री हित हरिवंशम्।।

नमो-नमो जय श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य वेणु कुल मंडन लीला मान-सरोवर हंस।।
नमो जयति श्री वृंदावन सहज माधुरी रास-विलास प्रसंस।
आगम-निगम अगोचर श्री राधे चरण-सरोज व्यास अवतंस।।

श्री नरवाहन के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री नाहरमल के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री बीठलदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री मोहनदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री छबीलेदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री स्वामी जी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री नवलदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री व्यासदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री परमानंद के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री प्रबोधानंद के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री गंगा जमुना के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री कर्मठी बाई के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हरिवंशदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हरिदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री तुलाधार के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री सेवक जू के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री चत्रभुज स्वामी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।

श्री वैष्णव दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री खरगसैन के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री जैमल जी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री जसवंस जी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री सुंदर दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री पूरन दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री लाल स्वामी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री दामोदर स्वामी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री रसिकदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हित धुवदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री नागरीदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री भागमती के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री कल्याण पुजारी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री गोविंद दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हरेकृष्ण के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री पुहकर दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री द्वारिका दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री रंगा मेदा के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री कृष्णदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री गोसाई दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री मोहन दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री माधुरी दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री स्याम साह के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री सहचरि सुख के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री अनंत भट्ट के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री अनन्य अली के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।

श्री भोरी सखी के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हितदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री प्रेम दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री हरिलाल व्यास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री प्रियादास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री सर्वसुख दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री रतन दास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री वृंदावन चाचा के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
श्री केलिदास के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।
सब रसिकन के प्रान जीवन धन श्री हरिवंश।।

जै-जै राधावल्लभ श्री हरिवंश,
श्री वृंदावन श्री वनचंद।।

अरिल्ल

मानुष कौ तन पाइ भजौ व्रजनाथ कौं।
दर्बी लैकैं मूढ़ जरावत हाथ कौं।।
जय श्री हित हरिवंश प्रपंच विषय-रस मोह के।
(हरि हां) बिनु कंचन क्यौं चलैं पचीसा लोह के।।

परिशिष्ट

राग कान्हरौ

रसिकनी रसिक सिरमौर।
प्राननि प्रान नैन के नैना, शोभा निधि तन गौर।।
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी, छिन-छिन औरै और।
(श्री) हित ध्रुव वदन कमल छवि ऊपर, भ्रमत लाल मन भौंर।।

– हस्तलिखित सं॰ १८७२ वि॰ सं॰

होरी छन्द चारि।
फागुन मास अनूपं। दीपन[1] सुख ऋतु-भूपं[2]।।
दीपन सुखऋतु-भूप रूप तरु, प्रफुलित विविध प्रकारं।
ललित कदम्ब तमाल नीप कुल, मणि व्रत भू आधारं।।
चम्पक बकुल अशोक नूत छवि, मालतिका युग रूपं।
सूरसुता लहरी सीकर युत, फागुन मास अनूपं।।
राजत कुंज कुटीरे। गावत अलिगन तीरे।।
गावत अलि गन तीर धीर युत, वीन रवाव सुसाजैं।
इक मुखचंग मुरलिका किन्नरि, आञ्झ[3] पखावज बाजैं।।
मृदु पदन्यास नर्तकी नृर्तत, कर-कटि भंग शरीरे।
किंकिणि जाल माल उर रुरकत राजत कुंज कुटीरे।।
पूरित रंग कमोरी। मृगमद कुमकुम घोरी।।
मृगमद कुमकुम घोरि अरगजा, चन्दन युत घन सारं।
पचरँग कुसुम पराग घटित वर, बूका वन्दन थारं।।
वरन-वरन जलयंत्र चहूँदिशि, पिचक सुशोभित वोरी।
छिरकत जुगल कुपित मघवा मनु पूरित रंग कमोरी।।
खेल उमाहैं होरी। डोलत बाहाँ जोरी।।
डोलत वाहाँ जोरि रसिकवर, श्रीवृषभानकिशोरी।
बाजत साज चाँचरी निर्तत, धूम गुलाल न थोरी।।
निर्मित वर हिंडोल विटप तर, चढ़ि झूलत जु बहोरी।
(श्री) हित ध्रुव निरखि नयन शीतल हिय, खेल उमाहैं होरी।।

१. उद्दीप्त करने वाला २. बसन्त ऋतु ३. आवझ नामक एक वाद्य

प्राप्ति स्थान :- रस भारती संस्थान, वृन्दावन क्रमांक ५५६, ५७५

हित साहित्य प्रकाशन

१. **श्री बयालीस-लीला**
(रसिक-भूषण सन्त श्री हित ध्रुवदास जी की वाणी)
अनुवादक – स्वामी हितदास

२. **श्री हित रसिक-त्रिवेणी** (शब्दार्थ-सहित)
संकलनकर्ता – स्वामी हितदास

३. **श्री राधा-रस-सुधा-निधि**
अनुवादक – स्वामी हितदास

४. **श्री राधा-रस-सुधा-निधि** (सानुवाद)
अनुवादक – स्वामी हितदास

५. **श्री भक्तमाल पूर्वार्द्ध** (भक्ति रस-बोधिनी टीका सहित)
अनुवादक – स्वामी हितदास

६. **श्री भक्तमाल** (भक्ति रस-बोधिनी टीका सहित)
श्री नाभा स्वामी कृत सानुवाद
अनुवादक – स्वामी हितदास

७. **श्री हिताश्रम रजत जयन्ती स्मारिका**– राधावल्लभीय रसोपासना सम्बन्धी लेखों का अपूर्व संग्रह

८. **श्री राधावल्लभ अष्टयाम** (संकलन कर्त्ता – स्वामी हितदास)

९. **श्री लाल स्वामी की वाणी**

१०. **रास लीलाभिनय पञ्चयामिका** (लेखक-श्री किशोरी शरणजी 'अलि')

११. **श्री हित वाणी मासिक** (वर्ष १, २, ३ के फुटकर अंक)